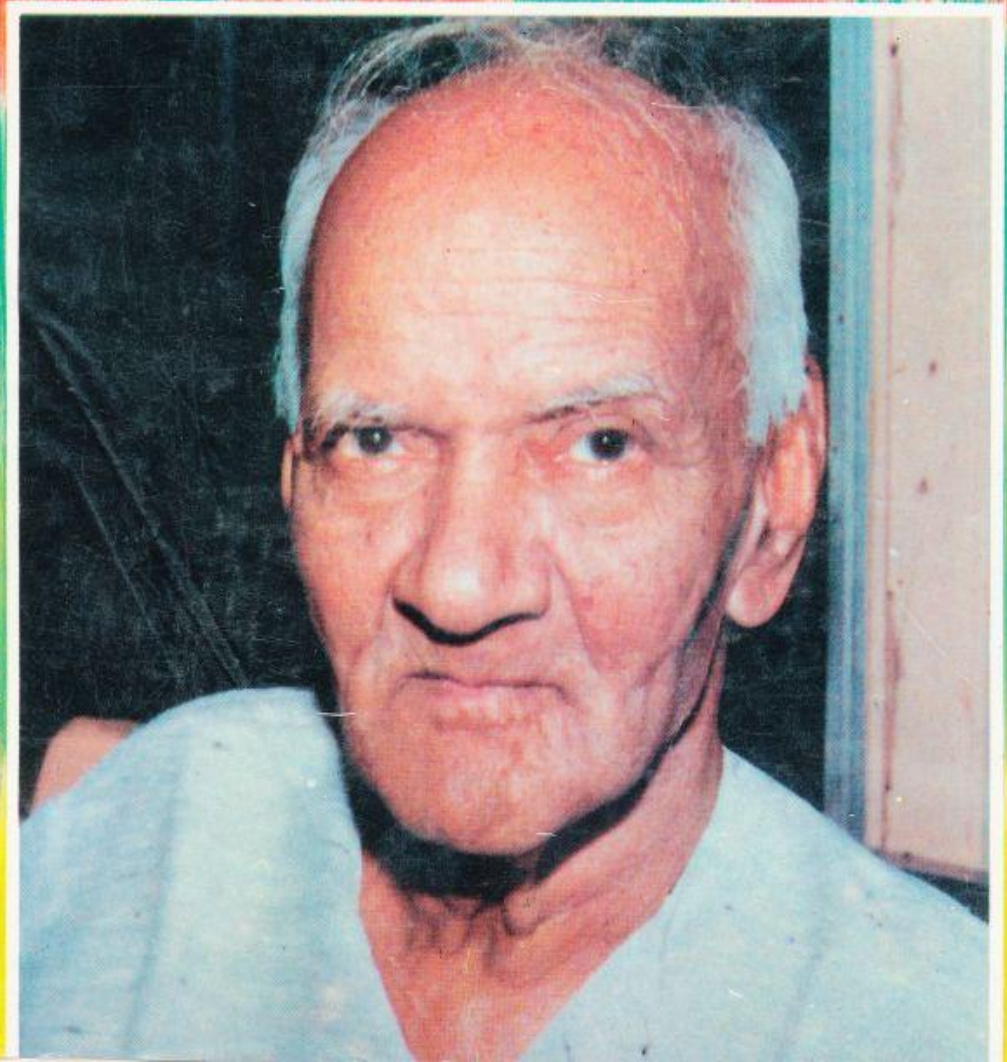
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत् एवं गीता



www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संस्कृति संजीवनी : श्रीमद्भागवत एवं गीता

सम्पादक
ब्रह्मवर्चस

प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा - २८१००३

© सर्वाधिकार सुरक्षित

द्वितीय संस्करण १९९८

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org



मूल्य १२५)

मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्पणम्

ॐ मातरं भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ॥

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ॥

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ॥

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ॥

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है । परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है । परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी मां शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही है । उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया । आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं है किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानी गणों के, वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है ।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देख सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये । इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबा कर लिखा गया हो । हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता मन को, विचारों को बदलता चला जाता है । लाखों करोड़ों के मनों के अंत:स्थल को छू कर उसने उनका कायाकल्प कर दिया । रूसो के प्रजातंत्र की, कार्ल मार्क्स के साम्यवाद की क्रांति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है । उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्‌बोधन से एक विराट गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े रहते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाय, कैसे छन्दबद्ध, लिपिबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को ।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पंद्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता । वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता-श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आसपास के दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्‌भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंत:करण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था । साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा । जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे । छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे । किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुत: अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी । जाति-पाँति का कोई भेद नहीं । जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवाकर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा ।

उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छत का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किन्तु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय, अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय, यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजा स्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं० मदन मोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में संपन्न क्रिया कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषि सत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष के चौबीस महा- पुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रांति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसने भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि "प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरु सत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गई, संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।"

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने तोड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख सुन कर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद पैदल लम्बा रास्ता पारकर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल

भी गये । छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई । जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अंग्रेजी सीखकर लौटे । आसन- सोल जेल में वे श्री जवाहर लाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से-मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना । यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश ।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जन आक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रांतिकारी स्थिति की तरह उनने भी वै कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था । नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं । बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये । जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा छीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्य चकित रह गये । उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्त जी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधी जी के समक्ष पेश किये गये । बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए । कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुज में सम्मानित किया । उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधान मंत्री राहत फण्ड, हरिजन फण्ड के नाम समर्पित कर दीं । वैरागी जीवन का, सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है ?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरु हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये । सांस्कृतिक आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्री कृष्णदत्त पालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रह कर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया । प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अत: पुन: सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमश: उनके अध्यवसाय घर-घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदय स्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है ।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ, स्थान बदला, आगरा से मथुरा आ गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे । पुस्तकों का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंत: स्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही । साथ देने आ गयीं

परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुखी था-पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रांति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परम वंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५८ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्त्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देश भर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की अपनी रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्रायः पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनमें महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूल थाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञान सम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तपःपूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों, यज्ञायोजनों के द्वारा विचार क्रांति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों में विशेष कार्य भार सौंप, परम वंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़ कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्त्तन संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट् परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके

लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी बूटी, यज्ञविज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञान सम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युग शिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता, आस्तिकता संवर्धन एवं जन जागृति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञा संस्थान - शक्तिपीठ-प्रज्ञामण्डल-स्वाध्याय मंडल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तप साधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी को दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देव संस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नव निर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरु सत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युगसंधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेध महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नव निर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रांति के निमित्त सौर ऊर्जा के दोहन द्वारा विशिष्ट प्रयोगों के माध्यम से विशिष्ट मंत्राहुतियों द्वारा सम्पन्न किये गये इन अश्वमेधों ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस. ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु संपन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९५ में कार्त्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी जा रही है। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो सत्तर खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हो रहा है। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जायेंगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़ चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेंगे' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी-उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

भूमिका

भारतीय अध्यात्म-दर्शन को जिन सांस्कृतिक थाती रूपी ग्रन्थों ने सर्वाधिक प्रभावित किया है, उनमें श्रीमद्भागवत् एवं श्रीमद्भगवद्गीता इन दो का नाम शिखर पर है । विशेष रूप से इस कलियुग में श्रीमद् भागवत् कथा के श्रवण-मनन-निदिध्यासन का सर्वाधिक महत्व बताया गया है क्योंकि इसकी मूलभूत प्रेरणाएँ व्यक्ति में ईश्वरीय सत्ता के सद्गुणों को जीवन में उतारने पर केन्द्रित हैं । दूसरी ओर गीता को सभी धर्म शास्त्रों का निचोड़ सार माना गया है व यह बताया गया है कि व्यक्ति के नवनिर्माण के लिये—दैनन्दिन जीवन की समस्याओं के समाधान के लिये इससे श्रेष्ठ कोई ग्रन्थ नहीं है ।

परमपूज्य गुरुदेव की यह विशेषता है कि उनने भारतीय संस्कृति के प्रत्येक पक्ष का विवेचन करते समय हरेक का विज्ञान सम्मत आधार ही नहीं बताया अपितु प्रत्येक का प्रगतिशील प्रस्तुतीकरण किया है । कथा मात्र सुन लेने- एक कान से ग्रहण कर दूसरे से निकाल देने से समय बिगाड़ना मात्र है । यह बात इतनी स्पष्टता के साथ मात्र आचार्य श्री ही लिख सकते थे। पुराणों में श्रीमद्भागवत् को विशिष्ट स्थान प्राप्त है । इसके पारायण, पाठ विभिन्न रूपों में आज भी देश-विदेश में संपन्न होते रहते हैं । अनेकानेक भागवत कथाकार हमें विचरण करते दिखाई देते हैं । इसका अर्थ यह नहीं कि संसार में चारों ओर धर्म ही संव्याप्त है, कहीं भी अधर्म या अनास्था नहीं है । आस्था का मूल मर्म यह है कि जो सुना गया, उसे जीवन में कितना उतारा गया—आचरण में उतारा गया कि नहीं । इसके लिये कथा के मात्र शब्दार्थों को नहीं—भावार्थ को, उनके मूल में छिपी प्रेरणाओं को हृदयगंम करना अत्यधिक आवश्यक है । परमपूज्य गुरुदेव ने श्री मद्भागवत् की प्रेरणा प्रधान प्रस्तुति के साथ-साथ वे शिक्षाएँ दी हैं जो हमें विभिन्न अवतारों के लीला संदोह का विवेचन करते समय ध्यान में रखना चाहिए । श्रीमद्भागवत् में अनेकानेक स्थानों पर अलंकारिक विवेचन हैं, उन्हें उन रूपकों को वास्तविकता में न समझकर लोग बहिरंग को ही सब कुछ मान बैठते हैं किन्तु आचार्य श्री की लेखनी का कमाल है कि उनने महारास से लेकर—अवतारों की प्रकटीकरण प्रक्रिया—प्रत्येक के साथ प्रेरणाप्रद प्रगतिशील चिन्तन प्रस्तुत किया है जो जीवन में उतरने पर **"श्रवणं श्रुत गुणं मननं सहस्रं निदिध्यासनम्"** के शास्त्र वचन को सार्थक करता है ।

जहाँ तक संस्कृति संजीवनी में दूसरी श्रीमद्भगवत् गीता का प्रश्न है - यह अपने आप में एक समग्र धर्मशास्त्र देव संस्कृति के ज्ञान-समुच्चय का सार है । कहा गया है **"गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यै शास्त्र विस्तरैः"** जहाँ कर्तव्य पारायणता को अंतः में उतारने का पाठ पढ़ाने वाली गीता रूपी श्रेष्ठ ग्रन्थ है, वहाँ किसी और ग्रन्थ शास्त्र के विस्तार की ढूँढ तलाश की आवश्यकता ही क्या है । गीता संपूर्ण वेद-उपनिषदों का सार निचोड़ है । सरल-सुन्दर संस्कृत में यह भक्ति योग, ज्ञान योग, कर्म योग की त्रिवेणी का सर्वाधिक सुगम प्रस्तुतीकरण है । "व्यक्ति-प्रबन्ध" मैन-मैनेजमेण्ट की इसे एक पाठ्य पुस्तक कहा जाता है जो कि अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है । भगवत् सत्ता के गुण-प्रभावों व युगधर्म का जैसा वर्णन गीता में है, ऐसा कहीं और नहीं दिखाई देता । अन्यान्य ग्रन्थों में लौकिक—मिथक वाला अंश किन्हीं रूपों में जुड़ा ही रहता है किन्तु योगीराज श्री कृष्ण के - परम सत्ता के मुख से निकला यह अमृतोपदेश हर युग में—हर परिस्थिति में व्यक्ति को सम्बल प्रदान करने वाला व सत्प्रेरणाएं देने वाला है, इसमें किसी को कोई संशय नहीं करना चाहिए ।

परमपूज्य गुरुदेव यों तो "गीता विश्वकोष" की समग्र भूमिका तैयार करके दे गए हैं । उसे अगले दिनों लोग एक वृहत् ग्रंथ के रूप में देखेंगे ही किन्तु इस वाङ्मय में जो विवेचन गीता के विभिन्न पक्षों का हुआ है वह अपने में अनूठा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सांख्ययोग व कर्म योग की दो धुरियों पर आधारित इस ग्रंथ के माध्यम से **"कर्मणान्यासःइति कर्म संन्यासः"** की चर्चा करते हुए जहाँ दैनन्दिन जीवन में व्यक्ति का आचरण किस प्रकार का होना चाहिए, इसकी विशद व्याख्या की गयी है, वहाँ **"मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय निवसिष्यसि मय्येव अतऊर्ध्वं न संशयः"** व **सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज"** आदि उक्तियों से समर्पण योग के माहात्म्य को बताया है । अर्जुन का असमंजस हम सबके मन का असमंजस है । अंतःकरण रूपी कृष्ण सत्प्रेरणा के रूप में सतत मन को ऊर्ध्वगामी बनाने—स्वयं को योगी की स्थिति में लाने का संदेश देते रहते हैं । जो सुन लेते हैं, वे इस महाभारत रूपी जीवन संग्राम को पार कर जाते हैं । दैवी विभूतियों के वर्णन से लेकर ईश्वर के अवतरण का हेतु एवं अन्यान्य व्याख्याएँ बड़े ही व्यावहारिक रूप में पाठक-परिजन इसमें पढ़ सकते हैं ।

देव संस्कृति की संजीवनी के प्रतीक रूप में वर्णित दो महान ग्रंथों—ऋषियों की स्थापनाओं के रूप में इस खण्ड को एक विलक्षण ग्रन्थ माना जा सकता है । लेखनी का शिल्प इन्हें जिस ढंग से प्रस्तुत करता है, वह निश्चित ही अद्भुत है।

— **ब्रह्मवर्चस**

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
अध्याय १			
गीता कथा			
गीता कथा और उसका स्वरूप	१.१	छत्रपति शिवाजी	१.३१
धर्म तन्त्र के माध्यम से जन जागरण	१.२	राणा प्रताप	१.३१
गीता कथा की शैली और प्रणाली	१.३	राणा सांगा	१.३२
गीता धर्मानुष्ठानों की पृष्ठ-भूमि	१.४	महाराजा रणजीत सिंह	१.३२
लोक-शिक्षण की सरल प्रक्रिया	१.४	हठीवीर हमीर	१.३२
जन मानस का परिष्कार	१.५	वीर दुर्गादास	१.३२
प्रखर एवं सार-गर्भित प्रवचन	१.५	राणा राज सिंह	१.३२
अधिक लोगों की अधिक सुविधा	१.६	कर्मावती देवी	१.३२
मनोरम एवं आकर्षक कार्यक्रम	१.७	बारह वर्षीय वीर बादल	१.३३
आर्थिक व्यवस्था और उसकी पवित्रता	१.८	बाजीराव पेशवा	१.३३
गीता कथा-प्रथम प्रवचन	१.८	१८५७ के गदर की दो मुख्य विभूतियाँ	
धर्मरक्षा के लिये अवतार	१.११	रानी लक्ष्मीवाई	१.३३
मत्स्य-अवतार	१.१२	पेशवा नाना साहब	१.३३
कच्छप-अवतार	१.१३	कांग्रेस आन्दोलन के कुछ नर-नाहर	१.३४
वाराह-अवतार	१.१४	लोकमान्य तिलक	१.३४
नृसिंह-अवतार	१.१५	महात्मा गांधी	१.३४
वामन-अवतार	१.१७	सरदार पटेल	१.३४
परशुराम-अवतार	१.१९	महामना मालवीय	१.३४
राम-अवतार	१.२०	लाला लाजपतराय	१.३५
कृष्ण-अवतार	१.२१	सरोजिनी नायडू	१.३५
बुद्ध-अवतार	१.२३	सुभाष चन्द्र बोस	१.३५
चौबीस-अवतार	१.२५	जवाहर लाल नेहरू	१.३५
दूसरा प्रवचन	१.२७	क्रान्तिकारी संघर्ष के कुछ सेनानी	
पुरुषार्थ और संघर्ष	१.२७	ला. हरदयाल, श्याम जी कृष्ण वर्मा	१.३६
धर्मरक्षा के लिये संघर्ष वाले		घोष बन्धु	१.३६
शिष्य का गुरु पर आक्रमण	१.२९	शचीन्द्र नाथ सान्याल	१.३६
ब्रह्मचारी लक्षण	१.२९	खुदीराम बोस	१.३६
महावीर हनुमान	१.२९	कन्हाईलाल दत्त	१.३६
गिद्धराज जटायु	१.२९	राम प्रसाद बिस्मिल	१.३६
वानरों का पुरुषार्थ	१.३०	चन्द्रशेखर आजाद	१.३६
पराक्रमी भीम	१.३०	वीर भगत सिंह	१.३७
देवताओं की सहायता	१.३०	तेजस्वी महात्मा-जगद्गुरु शंकराचार्य	१.३७
साहसी गिलहरी	१.३०	समर्थ रामदास	१.३७
स्वाधीनता का धर्म युद्ध लड़ने वाले		गुरु गोविन्द सिंह	१.३७
वीर बलिदानी-साहसी स्कंदगुप्त	१.३०	बन्दा बैरागी	१.३८

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
फतेसिंह जोरावर	१.३८
समाज सुधारक स्वामी दयानंद	१.३८
ठक्कर बापा	१.३८
हरि विलास शारदा	१.३८
महर्षि कर्वे	१.३८
स्वामी श्रद्धानंद	१.३९
पंजाब के दो महात्मा	१.३९
राजा राम मोहन राय	१.३९
ईश्वर चन्द्र विद्या सागर	१.३९
कस्तूरी बाई	१.४०
तीसरा प्रवचन	
दुर्गुणों से सर्वनाश	१.४२
कामुकता का दावानल	१.४४
कामी चन्द्रमा और इन्द्र को गौतम का शाप	१.४५
भस्मासुर का सर्वनाश	१.४५
वासना का दावानल	१.४५
दुष्टता पतन का कारण	१.४५
कुचेष्टाएँ देखी भी न जायें	१.४५
कीचक का अन्त	१.४६
कामान्ध व्याध-भस्म	१.४६
गुरु नानक द्वारा अनर्थ का विरोध	१.४६
क्रोध और उसकी विभीषिका	१.४६
क्रोधी दुर्वासा पर भगवान का कोप	१.४६
आत्महन्ता क्रोध	१.४६
अहंकार से आत्म-विनाश	१.४६
पत्नी के अपमान का फल	१.४७
तनिक से व्यंग ने महाभारत रचा दिया	१.४७
उपहास का दुष्परिणाम	१.४७
लोभ एवं स्वार्थ	१.४७
कुधान्य का दुष्प्रभाव	१.४८
जुआ (द्यूत) का दुष्परिणाम	१.४८
बिना परिश्रम का धन सर्वनाश कर देता है	१.४९
स्वर्ण ष्ठीवी पुत्र	१.४९
पारस का राजा	१.४९
तृष्णा जीवन को दुखदायी बना देती है	१.४९
लोभी ही सबसे बड़ा गरीब होता है	१.५०
निन्यानवे का फेर	१.५०
जयचंद का देश द्रोह	१.५०
मीर जाफर द्वारा विश्वासघात	१.५०
लोभी अमीचंद	१.५०
कुसंग और दुष्ट	१.५१
कुसंग और सत्संग	१.५१
कुसंग से प्राण हानि	१.५१
संगति का प्रभाव	१.५१
दुष्ट के साथ भलाई का दुष्परिणाम	१.५१
दोष और दुर्गुण जिन्हें त्यागना ही चाहिये	१.५१
शक्तियों का दुरुपयोग करने से स्वयं का विनाश	१.५२
आत्म-प्रशंसा से ययाति का पतन	१.५२
कृतघ्न हिरन	१.५२
जैसी करनी वैसी भरनी	१.५२
आलस्य का अभिशाप	१.५२
चौथा प्रवचन	
सद्गुणों के सत्परिणाम	१.५७
पारस्परिक प्रेमभाव	१.५९
युधिष्ठिर की उदारता	१.५९
भाई का प्रेम	१.६०
लक्ष्मी कहाँ रहती है?	१.६०
मिलजुलकर रहना	१.६०
स्वामी और सेवक आदर्श स्वामिभक्त	१.६०
कर्त्तव्य पालन का अपूर्व उदाहरण	१.६१
माता-पिता की सेवा	१.६१
पिता के लिये पुत्र का त्याग	१.६१
पुरु का पिता को यौवन दान	१.६१
माता-पिता की सेवा में सिद्धि	१.६१
पिता के ऋण का भुगतान	१.६१
भारतीय नारी और पतिव्रत धर्म	१.६२
सावित्री और सत्यवान के चरित्र की दृढ़ता	१.६२

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
सुकन्या का त्याग और सेवामय जीवन	१.६२
पति सेवा की शक्ति	१.६२
पत्नी द्वारा पति जीवन परिवर्तन	१.६२
सेवा का वशीकरण मंत्र	१.६३
पत्नी व्रत आवश्यक	१.६३
तुकाराम की सहनशीलता	१.६३
सहिष्णु सुकरात	१.६३
अर्जुन और उर्वशी	१.६४
परतिय मात समान	१.६४
भाभज माता तुल्य	१.६४
कच द्वारा चरित्र रक्षा	१.६४
मर्यादा और नियमों का पालन	१.६४
गुरुजन का सम्मान, युधिष्ठिर की नैतिकता	१.६५
गुरु भक्त एकलव्य	१.६५
शिष्य का कर्तव्य पालन	१.६५
सदाचरण का तप-तेज	१.६५
अधर्म का प्रायश्चित	१.६६
संयम की शक्ति	१.६६
परमहंस की निरभिमानिता	१.६६
गांधी जी जनता के पैसे का मूल्य समझते थे	१.६६
मान बड़ाई से दूर	१.६७
दम, दान और दया	१.६७
विद्रूप द्वारा स्वर्ग का त्याग	१.६७
मैं झूठा नहीं हूँ	१.६७
गोखले की सच्चाई	१.६७
श्रद्धा और अनुशासन	१.६७
श्रम से सौभाग्य	१.६८
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कृतज्ञता	१.६८
आकर्षण से बचकर अध्ययन	१.६८
पाँचवाँ-प्रवचन	
यज्ञमय जीवन जिएँ	१.७५
धर्म-रक्षा के लिये प्राणदान	१.८०
दधीचि का अस्थिदान	१.८०
परहित के लिये आत्म त्याग	१.८०
पुरोहित का कर्त्तव्य पालन	१.८०

विषय	पृष्ठ
हाड़ी रानी का अपूर्व त्याग	१.८०
श्रद्धा और त्याग	१.८१
देशद्रोही पति का अन्त	१.८१
परमार्थ में मानव जीवन की सार्थकता	१.८१
देवता बड़े या असुर	१.८१
युधिष्ठिर द्वारा यातना ग्रस्त लोगों का छुटकारा	१.८२
लोक सेवक की तो भगवान भी भक्ति करते हैं	१.८२
निस्पृह त्याग की शक्ति	१.८२
युधिष्ठिर के यज्ञ की अपूर्णता	१.८३
दानवीर कर्ण की दानशीलता	१.८३
हरिश्चन्द्र का सत्य प्रेम	१.८३
अक्षय यज्ञ	१.८४
विश्व हित के लिये आत्म त्याग	१.८४
उपकारी की सहायता	१.८४
प्रहलाद का दान	१.८४
भावनापूर्ण दान का महत्व	१.८४
कणाद की उदारता और आतिथ्य प्रेम	१.८४
परोपकारी विद्यासागर जी	१.८५
श्री अरविन्द घोष का त्याग	१.८५
आत्मा की भूख कैसे शान्त होती है ?	१.८५
अंग्रेज डाक्टर का जातीय प्रेम	१.८५
वचन का पालन	१.८६
असमर्थ की सामर्थ्य	१.८६
लोक कल्याण के लिये धन दान	१.८६
सर्वस्व दानी वाजिश्रवा	१.८६
अशोक का त्याग	१.८७
सेठ जमना लाल बजाज	१.८७
राजा महेन्द्र प्रताप	१.८७
भामाशाह	१.८७
वर्मा के भारतीय	१.८८
दाता की नम्रता	१.८८
पुत्र-वधू द्वारा श्वसुर को बोध	१.८८
त्याग और त्यागियों की परंपरा	१.८८
छठा प्रवचन	
ज्ञान और विवेक की आवश्यकता	१.९२
ज्ञान प्रसार की ऋषि परंपरा	१.९५

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
कठिनाइयों में विद्याभ्यास	१.९७
विद्योत्तमा और कालिदास	१.९७
महावैयाकरण वोपदेव	१.९७
मन्द बुद्धि लड़का	१.९८
संस्कृत की पढ़ाई	१.९८
नाई गुरु	१.९८
ज्ञान प्रसार के पुण्य प्रयास	
लोक हित के लिये मोह का त्याग	१.९८
ज्ञान प्रसार के त्याग	१.९८
अध्यापक गोखले	१.९९
विद्या का उपयोग	१.९९
ज्ञान वृद्धि के पुण्य प्रयास	१.९९
हरिकथा का मूल्य	१.१००
ज्ञान साधना और उसके साधक	
भगवान बुद्ध	१.१००
दत्तात्रेय के २४ गुरु	१.१०१
कच का संजीवन विद्या प्राप्त करना	१.१०३
कैभट की ज्ञान साधना	१.१०३
ज्ञानी का सम्मान	१.१०३
विद्या प्रेमी राजा भोज	१.१०४
तपोधन को इन्द्र का उपदेश	१.१०४
सद्ग्रन्थों की रक्षा	१.१०४
ज्ञानियों के साथ नरक भी स्वर्ग बन जाता है	१.१०४
विदुषी महिलाएँ	१.१०४
ज्ञान साधन का लक्ष्य और प्रयोजन	१.१०६
आत्मबल ही सर्वोत्तम बल	१.१०६
शोक का समाधान	१.१०७
सात को रोऊँ या एक को	१.१०७
अन्त: शुद्धि सर्व प्रथम	१.१०७
ज्ञानी की पहिचान	१.१०७
सत्संग का प्रतिफल	१.१०७
विद्या से विनय	१.१०८
विद्वान का निरहंकार	१.१०८
माँ नीति की ही शिक्षा दो	१.१०८
सारी दुनिया ही स्कूल है	१.१०८
आचरण द्वारा शिक्षा	१.१०८
जो कहो सो करो भी	१.१०८
गर्भ में शिक्षा	१.१०८
बच्चे का शिक्षाकाल	१.१०८
छोटों से भी सीखना	१.१०९
मूर्तिकार की साधना	१.१०९
अहंकार और उपेक्षा का दुष्परिणाम	१.१०९
सातवां-प्रवचन	
समता और सम्यक् दर्शन	१.१११
भगवान के यहाँ जाति भेद नहीं	१.११४
असफल यज्ञ	१.११५
सत्यकाम जाबाल	१.११५
सूत पुत्र कर्ण	१.११५
निषाद कन्या से विवाह	१.११६
क्षत्रिय से ब्राह्मण	१.११६
आत्मज्ञान और भेदभाव	१.११६
शुद्धि का साधन	१.११६
जाति और पानी	१.११६
क्या गंगा कभी अशुद्ध होती है	१.११६
शूद्र और ब्राह्मण	१.११७
ऊँच-नीच की पहिचान	१.११७
कुल नहीं कर्म	१.११७
जगद्बन्धु की समदृष्टि	१.११७
सिख धर्म का आदर्श	१.११७
भेद भाव से विनाश	१.११७
समता के लिए प्रयास	१.११८
विधर्मियों को धर्म दीक्षा	१.११८
मनुष्य की पहिचान	१.११८
वेश्या से तपस्विनी	१.११८
दृष्टिकोण का परिवर्तन	१.११८
छोटा शुभारंभ भी उत्तम	१.११९
छोटा काम करने वाले अर्जुनदेव	१.११९
परिस्थिति से परिवर्तन	१.११९
पत्थर कौन मारे ?	१.११९
सन्तों की विवेक दृष्टि	१.१२०
फूट और उसके दुष्परिणाम	१.१२०
साम्प्रदायिकता से हानि	१.१२१
ब्राह्मणों का पतन कैसे हुआ ?	१.१२१
फूट का परिणाम	१.१२१
एकता की आवश्यकता	१.१२१
मार्ग की एक बड़ी बाधा	१.१२१
कुल्हाड़ी का बेंट	१.१२१

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
आठवां-प्रवचन	
अपना उद्धार आप करें	१.१२४
श्रम और निष्ठा से सफलता	१.१२८
तप कर ! तप कर !	१.१२८
श्रम के बाद सफलता	१.१२९
अटूट निष्ठा	१.१२९
कलि का साम्राज्य कैसे बढ़ा ?	१.१२९
अपना बचाव आप करें	१.१२९
जैसा मनुष्य वैसा उसका संसार	१.१२९
तप की महान शक्ति	१.१२९
लक्ष्य के प्रति तन्मयता	१.१३०
अध्यवसाय से विद्या प्राप्ति	१.१३०
प्रतिभा-संपन्न कर्ण	१.१३०
विदुर और कृष्ण	१.१३०
जो अपने बल बूते आगे बढ़े	
दुस्साहसी दयानन्द	१.१३१
प्रधानमन्त्री श्री शास्त्री	१.१३१
साहसी सुभाष	१.१३१
अभाव ग्रस्त विद्यासागर	१.१३१
औचित्य की प्रधानता	१.१३१
साहस के धनी रामतीर्थ	१.१३१
हवलदार पद्मा	१.१३२
अपनी आन और महानता जातीय गौरव	
और स्वाभिमान न छोड़ने वाले	१.१३२
शास्त्र व्यवस्था जरूरी नहीं	१.१३२
स्वयं आगे बढ़ें	१.१३२
पौरुष का आत्म गौरव	१.१३३
आततायी को सलाम नहीं	१.१३३
नारी के सम्मान की रक्षा	१.१३३
विश्वासघात बनाम मौत	१.१३३
वचन तोड़ने पर क्षोभ	१.१३३
बिना मेहनत का न लेना	१.१३३
निन्दा की चिन्ता	१.१३३
गिलहरी का योगदान	१.१३४
अगस्त्य की करुणा	१.१३४
हम परिस्थितियों के दास नहीं	१.१३४
भिक्षा नहीं पुरुषार्थ	१.१३४
फरिहाद का नहर निकालना	१.१३४

विषय	पृष्ठ
शूरवीर शासक	१.१३४
दूसरों की सहमता काफी नहीं	१.१३५
विवेक का आश्रम	१.१३५
घोड़ा और बाप-बेटा	१.१३५
स्वावलम्बन-परावलम्बन	१.१३५
हिलमिल कर परिश्रम करना	१.१३६
हनुमान जी की सहायता	१.१३६
संख्या बल नहीं उत्कृष्टता	१.१३६
त्याग का प्राप्त फल	१.१३६
विपत्ति का वरदान	१.१३६
अकारण का भय दुःखदायी	१.१३६
नवम-प्रवचन	१.१४१
सबमें एक ही आत्मा देखना	१.१४१
आत्मवत् सर्वभूतेषु की भावना	१.१४३
ईश्वर के बाद मनुष्य का उत्तरदायित्व	१.१४३
साथी को न छोड़ना	१.१४३
मिल बांट कर खाओ	१.१४४
गांधारी और युधिष्ठिर की महानता	१.१४४
प्रतिशोध का शमन	१.१४४
रावण का कर्तव्य पालन	१.१४४
दुष्कर्मों का प्रतिफल अटल	१.१४४
घटोत्कच का प्रत्युपकार	१.१४५
रक्षक और घातक	१.१४५
उपगुप्त और वासवदत्ता	१.१४५
भामाशाह की उदारता	१.१४५
पीड़ितों की सेवा भगवान की पूजा	१.१४६
भगवान की परोपकार से प्रसन्नता	१.१४६
मानवता की सेवा	१.१४६
दूसरे के दुःख को अपना दुःख समझो	१.१४७
अपने सुख के लिये दूसरों को दुख नहीं	१.१४७
कोढ़ी का उद्धार	१.१४७
बढ़िया सौदा	१.१४७
आत्मीयतामय रामतीर्थ	१.१४७
तीन की भी गुजर है	१.१४८
पिता का ऋण चुकाया	१.१४८
उऋण होने की प्रेरणा	१.१४८
किसान का त्याग	१.१४८

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
दूसरों का अहित क्यों करें ?	१.१४८
जब भगवान बीमार पड़े	१.१४९
दूसरों की भलाई	१.१४९
उदारता का लाभ लेना ही नहीं देना भी सीखें	१.१४९
तीर्थों का पुण्य फल	१.१४९
भगवान के लिये सर्वश्रेष्ठ उपहार	१.१४९
परोपकार एवं सामूहिकता	१.१५०
महात्मा जी की भूल	१.१५०
जनसेवी का आदर्श	१.१५०
उपकारी राजा	१.१५०
असाधारण उदारता	१.१५०
दसवां-प्रवचन	
विराट ब्रह्म-प्राणी मात्र में एक आत्मा	१.१५४
दिव्य दृष्टि से ईश्वर दर्शन	१.१५७
काकभुसुण्डि का प्रभु दर्शन	१.१५७
परम शक्ति का उपाय	१.१५७
धैर्य और श्रद्धा	१.१५७
शोक का शमन	१.१५७
वास्तविक भक्त	१.१५८
अहंकार की कुपात्रता	१.१५८
हठ क्यों करें ?	१.१५८
पत्थर में मेंढ़की	१.१५८
सच्चे भक्त की पहचान	१.१५८
एकान्त कहीं नहीं	१.१५९
तुलसी दास का परिवर्तन	१.१५९
भेदभाव का कारण	१.१५९
कावा कहाँ नहीं	१.१५९
वह देख रहा है	१.१५९
नाम ही नहीं काम भी	१.१६०
पाप का पत्थर फेंको	१.१६०
आत्म कल्याण के लिये त्याग	१.१६०
संकीर्णता का त्याग	१.१६०
भगवत प्राप्ति की मनोदशा	१.१६०
पाप से बचने का भय	१.१६१
उपासना का परिणाम	१.१६१
प्रेमी की परीक्षा	१.१६१
मैं और मेरे का त्याग	१.१६१

विषय	पृष्ठ
ग्यारहवाँ-प्रवचन	
मानसिक सन्तुलन संयमी जीवन	१.१६५
सन्तुलन और धैर्य की महत्ता	१.१६५
भगवान विष्णु का बड़प्पन	१.१६७
अम्बरीष का धैर्य	१.१६८
साधना की सफलता का मार्ग	१.१६८
दुर्भावनाओं की वापिसी	१.१६८
छानवीन जरूरी	१.१६८
जीवन मुक्ति का आधार	१.१६९
सादगी का ध्यान	१.१६९
अयुक्त वचनों का दुष्परिणाम	१.१६९
श्री रामचन्द्र की नम्रता	१.१६९
शील की सराहना	१.१६९
उदारता और सहृदयता	१.१७०
स्वास्थ्य सन्तुलन का आधार	१.१७०
ठोस संरचनात्मक कार्य	१.१७०
नम्रता और सौजन्य	१.१७०
बिना क्लोरोफार्म सुँघाये आपरेशन	१.१७०
भीष्म पितामह की शर-शैय्या	१.१७१
सन्त ज्ञानेश्वर की सहिष्णुता	१.१७१
फांसी के दिन भी कसरत करने वाले बिस्मिल	१.१७१
कवि गंग की निर्भयता	१.१७१
गेरुए वस्त्र और सेवा	१.१७१
आवेश अविवेक	१.१७२
अपने से छोटों के साथ तुलना करो	१.१७२
बंधन मुक्त संन्यासी	१.१७२
सन्त स्वभाव	१.१७२
गंभीरता और नम्रता	१.१७२
नम्रता और ऐंठ	१.१७२
ऊपर देख नीचे उतर	१.१७३
संसार को देखने से पहले अपने आपको भी देखें	१.१७३
बारहवाँ-प्रवचन	
ज्ञान और कर्म का समन्वय	१.१७५
ज्ञान और कर्म के समन्वय की आवश्यकता	१.१७९

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
जीवन का महान ध्येय	१.१८०
कर्म-साधना से ज्ञान प्राप्ति	१.१८०
शुभ कर्म में विलम्ब नहीं	१.१८०
त्रिशूल से पेट फाड़ा	१.१८०
कोई काम छोटा नहीं	१.१८०
प्रयत्न करते रहने पर सफलता मिलती ही है	१.१८१
ऐश्वर्य की रक्षा संयम से	१.१८१
कर्म साधना से ज्ञान	१.१८१
पूर्व तैयारी	१.१८१
भावनाओं की उत्कृष्टता आवश्यक	१.१८१
अज्ञान का पश्चाताप	१.१८२
बुद्धिमान बनाम मूर्ख	१.१८२
लक्षाधीश गरीब	१.१८२
अधिक लोभ से अधिक हानि	१.१८२
अपंगों का अनुदान	१.१८२
मनुष्य श्रेष्ठ या निकृष्ट	१.१८३
अन्धे की लापरवाही	१.१८३
आत्मा को न भूलें	१.१८३
जीवन को सूर्यकान्त मानें	१.१८३
रामकृष्ण मिशन	१.१८३
आदर्श सन्त विनोबा	१.१८४
न्यायाधीश का न्याय	१.१८४
जीवन की खेती	१.१८४
श्रद्धा और शक्ति	१.१८४
ईमानदारी और अनीति की कमाई	१.१८४
सज्जनों से सद्व्यवहार	१.१८४
मनोबल का कल्प वृक्ष	१.१८५
ज्ञान में व्यवहार का समावेश	१.१८५
ज्ञान कर्म का सहयोग	१.१८५
सन्तुलित विकास की आवश्यकता	१.१८५
व्यावहारिक ज्ञान की आवश्यकता	१.१८६
अथ श्रीमद्भगवद् गीता माहात्म्य	१.१८९
अध्याय २	
श्री मद्भगवद् गीता मूल और पद्यानुवाद	
प्रथम अध्याय	२.१
द्वितीय अध्याय	२.५
तृतीय अध्याय	२.११
चतुर्थ अध्याय	२.१४
पंचम अध्याय	२.१८
षष्ठोऽध्याय	२.२०
सप्तमोऽध्याय	२.२४
अष्टमोऽध्याय	२.२६
नवमोऽध्याय	२.२९
दशम अध्याय	२.३२
एकादश अध्याय	२.३५
द्वादशोऽध्याय	२.४२
त्रयोदश अध्याय	२.४४
चतुर्दश अध्याय	२.४७
पंचदश अध्याय	२.४९
षोडश अध्याय	२.५१
सप्तदशोऽध्याय	२.५३
अष्टादश अध्याय	२.५५
अध्याय ३	
हिन्दू धर्म का एक प्रधान स्तंभ-गीता	
नियम	३.१
कर्म	३.२
प्रज्ञान	३.२
भक्ति	३.२
आचरण शास्त्र का अनुपम ग्रन्थ गीता	३.३
गीता क्या है ?	३.५
गीता का मनोवैज्ञानिक विवेचन	३.६
गीता का प्रतिपाद्य-अनासक्त, कर्म योग	३.९
गीता का कर्म योग	३.१०
निष्काम कर्मयोग एक दार्शनिक विश्लेषण	३.१४
निष्काम कर्म योग एवं मुक्ति	३.१६
गीता का दिव्य सन्देश	३.१८
भगवदार्पण गीता का प्रेरक आदर्श	३.१९
गीता करती है आज की समस्याओं का समाधान	३.२१
गीता ही हमारी पथ प्रदर्शक है	३.२३
गीता में भाग्य	३.२५
गीता में मानवता के लक्षण	३.२६
गीता का विश्व दर्शन	३.२६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
अध्याय ४	
श्रीमद्भागवत कथा	
(श्रीकृष्ण कथा)	४.१
श्री कृष्ण कथा प्रथम अध्याय	४.२
द्वितीय अध्याय	४.१४
तृतीय अध्याय	४.२५
चतुर्थ अध्याय	४.३५
पंचम अध्याय	४.४४
षष्ठम् अध्याय	४.५३
सप्तम् अध्याय	४.६२
श्री मद्भागवत् और गायत्री की एकरूपता	४.७०
अध्याय ५	
श्रीमद्भागवत् के प्रेरक तत्व	५.१
मानव जीवन की महत्ता और उपयोगिता	५.२
सिद्धियों सफलताओं का केन्द्र मनुष्य का अन्तःकरण	५.७
ईश्वर का स्वरूप और उससे सम्बन्ध	५.१४
अकाट्य कर्मफल सिद्धान्त	५.२०
सत्पुरुष-स्वरूप और महत्ता	५.२७
परमार्थ वृत्ति की अनिवार्यता	५.३२
ज्ञान और विवेक की साधना करें	५.३८
धर्म का स्वरूप समझें और अपनायें	५.४४
सद्गृहस्थ का आदर्श	५.४९
धन और उसका सदुपयोग	५.५६
भेद हीन सामाजिक दृष्टिकोण	५.६१
अनीति का उन्मूलन भी अनिवार्य है	५.६७
अध्याय-६	
सत्यनारायण व्रत-प्रेरणा उद्देश्य	६.१
प्रथमोऽध्याय	६.२
द्वितीयोऽध्याय	६.८
तृतीयोऽध्याय	६.११
चतुर्थोऽध्याय	६.१६
पंचमोऽध्याय	६.१८
आरती सत्यनारायणजी की	६.२१
सत्यनारायण व्रत कथा	६.२२
श्री सत्यनारायण व्रत कथा की क्रिया पद्धति	६.२२
सत्यनारायण व्रत कथा प्रथम अध्याय	६.२४
सत्यनारायण व्रत कथा द्वितीय अध्याय	६.२६
सत्यनारायण व्रत कथा तृतीय अध्याय	६.३०
सत्यनारायण व्रत कथा चतुर्थ अध्याय	६.३४
सत्यनारायण व्रत कथा पंचमोऽध्याय	६.३६
आरती सत्यनारायण जी की	६.४०

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गीता-कथा

गीता कथा और उसका स्वरूप

गीता तो एक छोटी सी पुस्तक है। महाभारत के ७०० श्लोकों का एक संकलन मात्र है, पर मानव-जीवन की समस्याओं के सुलझाने का उसे एक अनुपम हल ही कहना चाहिए। समस्त धर्मशास्त्रों का यह निचोड़ है। ज्ञान और विज्ञान का इसे अथाह समुद्र कहा जा सकता है, इसमें सब कुछ है। लोग अपनी आवश्यकता और रुचि के अनुसार इसमें से सब कुछ ढूँढ़ सकते हैं और सब कुछ पा सकते हैं। समस्त विश्व के विचारकों ने इसकी महत्ता स्वीकार की है। यही कारण है कि बाइबिल के बाद केवल गीता ही ऐसी पुस्तक है, जिसका अनुवाद विश्व की समस्त जीवित भाषाओं में हुआ है और भारत की तरह इसे संसार भर में समान रूप से सम्मान प्राप्त हुआ है।

गीता का सम्बल लेकर भारत पिछले १०० वर्षों में तेजी से अपने आत्मबल को बढ़ाता चला आ रहा है। विदेशी दासता का जुआ उतर फेंकने के लिये आकुल भारतीय आत्मा को जितनी प्रेरणा गीता ने दी है, उतनी और किसी ने नहीं दी। इसे पढ़ने, सुनने और मनन करने के बाद भारत के लाखों सपूत जीवन की नश्वरता और कर्तव्य की महत्ता को पहचान कर अपने तन-मन,धन को मातृभूमि का गौरव बढ़ाने के निमित्त उत्सर्ग करने को तत्पर हो गये।

क्रांतिकारी आन्दोलन के शूरवीर सैनिक गीता को छाती से चिपकाये हुए फाँसी के तख्तों पर उछलते हुए चढ़े। योगी अरविन्द ने गीता के माध्यम से नई पीढ़ी को त्याग और बलिदान के लिये प्रोत्साहित किया। बंगाल से लेकर सारे भारतवर्ष में फैले हुए क्रांतिकारी संगठनों की प्रेरणा का स्रोत गीता ही बनी रही। अरविन्द घोष द्वारा वह तत्वज्ञान जिसके भी अन्तःकरण में उतार दिया गया वे फौलाद जैसे पक्के और मजबूत हो गये। स्वतन्त्रता संग्राम का दूसरा दौर लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में जन आन्दोलन के रूप में सामने आया। उन्होंने राष्ट्रीय जागरण के एक महान सम्बल के रूप में 'गीता रहस्य' लिखा। कर्मयोग का मार्ग अपनाने के लिये भारतीय शौर्य को ललकारा। तिलक ने राष्ट्रीय जागरण के लिये बहुत कुछ किया। इस कर्तृत्व के पीछे उनकी गीता का अपरिमित योग दान रहा है।

महात्मा गांधी ने उस अमर-ज्योति को जलाये रखा और सत्याग्रह आन्दोलन चला। उस ज्योति को प्रज्ज्वलित करने में गीता अपनी महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करती रही। गाँधीजी की दैनिक प्रार्थना में गीता को प्रमुख स्थान प्राप्त था। उन्होंने उस महान धर्म ग्रन्थ का अनुवाद भी किया और टिप्पणियाँ भी लगाईं। 'अनासक्ति योग' के नाम से प्रकाशित अनुवाद उन दिनों प्रत्येक सत्याग्रही के हाथ में रहता था। जेल में हर सत्याग्रही एक गीता भी अपने साथ जरूर ले जाता था।

कहते हैं कि अंग्रेजी सरकार को गुप्तचर विभाग ने सूचना दी कि गीता ने स्वराज्य की आग भड़काई है तो एक बार गीता को पकड़ने के लिये वारंट जारी कर दिया गया। पीछे जब यह पता चला कि गीता कोई मनुष्य नहीं वरन् पुस्तक है तब वह वारन्ट रद्द करना पड़ा।

नव-निर्माण के लिए गीता की उपयोगिता-

राष्ट्रीय उत्कर्ष का एक रोल समाप्त हुआ। राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली गई। बाह्य दृष्टि से उसका श्रेय राजनैतिक पार्टियों को या व्यक्तियों को मिल सकता है पर उसका आध्यात्मिक श्रेय गीता को प्राप्त है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

अब हमें आगे बढ़ना है। दूसरे कदम उठाने हैं। राजनैतिक स्वतन्त्रता से हमें केवल अपने भाग्य को बनाने और बिगाड़ने का अधिकार मिला है । विदेशी शासन के जुये के नीचे जुते हुए हम पराधीन पशु की तरह थे, जिसमें न हमें, अपना भाग्य बनाने की आजादी थी न बिगाड़ने की। पर अब स्थिति बदल गई है। स्वराज्य प्राप्त कर अब हम उस स्थिति में आ गये हैं कि चाहे तो अपना भविष्य उज्ज्वल एवं आशा-जनक बनावें और चाहे तो उसे बिगाड़ कर अन्धकारमय भी बना लें। वास्तविकता यह है कि अभी तो आत्म-निर्माण के मार्ग में जो बाधा थी वह हटी है। पुनरुत्थान का कार्य तो हमें अब करना होगा, करने का समय तो अब आया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

राजनैतिक स्वाधीनता ने इसके लिये पथ प्रशस्त मात्र किया है। मार्ग की अड़चन मात्र को हटाया है।

पिछले अन्धकारमय दिनों में हमने बहुत कुछ खोया है। विदेशी गुलामी के दिनों में हमें अपार क्षति उठानी पड़ी है। उन हानियों में सबसे बड़ी क्षति मानसिक और नैतिक स्थिति गिरने की है। किसी समाज के यही दो आधार स्तम्भ होते हैं। उसी पर उसकी स्थिति, उन्नति एवं अवनति निर्भर रहती है। हम इन दोनों ही क्षेत्रों में कितने पिछड़े, इसकी चर्चा करने मात्र से किसी भी भावनाशील अन्तःकरण में पीड़ा उठ पड़ती है। हमें बौद्धिक भ्रमजंजालों ने इतना अधिक घेर रखा है कि सही तरीके से सोच सकना भी हमारे लिये कठिन हो रहा है। भाग्यवाद एवं परावलम्बन की कुत्सित वृत्तियाँ जन-साधारण के मन में घर किये बैठी हैं। अपनी अवनति का कारण वे भाग्य, ईश्वर, समय या ग्रह नक्षत्रों को मानते हैं और कोई अवतार प्रकट होकर उनके दुःख दूर करेगा यह आशा लगाये बैठे रहते हैं। आलस्य और अकर्मण्यता के कारण ८० करोड़ की आबादी का हमारा देश अपने पुरुषार्थ से जो कर सकता था उसका सौवां भाग भी कर नहीं पा रहा है।

आध्यात्मिकता एवं धर्म का उद्देश्य मनुष्य को उज्ज्वल-चरित्र एवं लोक सेवी बनाना था। उसके स्थान पर उंनने मामूली से कर्मकाण्ड करने पर बड़े से बड़े पापों से छुटकारा मिलने की बात कहकर मनमाने पाप करने की छूट दे दी है। कर्तव्य पालन की तत्परता धर्म का रूप न रहकर अमुक क्रिया-काण्डों की चिन्ह पूजा ही धार्मिकता की प्रतीक बन बैठी है। अध्यात्म का प्रकाश मिलने पर व्यक्ति को अधिक परमार्थी एवं लोक-सेवी बनना चाहिए था, वह बिल्कुल उलटा हो गया। लोग एकाकीपन पसन्द करने लगे, व्यक्तिवादी बन गये। संसार को माया एवं मिथ्या कहने लगे और समाज की स्थिति क्या है ? इसकी ओर से उपेक्षा करके व्यक्तिगत स्वर्ग, मुक्ति या ऋद्धि-सिद्धि के गोरख-धन्धे में उलझ गए। ५६ लाख व्यक्ति भारत में ऐसे हैं जो अध्यात्म के नाम पर आजीविका उपार्जित करते हैं और जनता के लिये एक अतिरिक्त भार बने बैठे हैं। यदि हमारे अध्यात्म का स्वरूप सही रहा होता तो इतने लोग राष्ट्र-निर्माण के कार्यों में संलग्न होकर समाज की स्थिति को कितनी अधिक समुन्नत बना सकते थे ?

सामाजिक कुरीतियों का तो कहना ही क्या है ? विवाह शादियों के नाम पर होने वाले अपव्यय ने हिन्दू-जाति की आर्थिक कमर ही तोड़ दी है और हर औसत हिन्दू को लालची, कंजूस, स्वार्थी एवं अनीतियुक्त कमाई करने के लिए विवश किया है। मृत्युभोज जैसी उपहासास्पद प्रथाएँ हमारे यहाँ मौजूद हैं। देवी-देवताओं और भूतपलीतों का जो स्वरूप सामने प्रस्तुत है, उससे भोली जनता का कितना शोषण होता है और इस भ्रम जंजाल से कितने सन्डे-मुसतण्डे गुलछर्रे उड़ाते हैं, वह हमारे पिछड़ेपन का एक करुण चित्र है।

सामूहिकता का महत्व भूलकर हम व्यक्तिवादी बन गए हैं। संकीर्ण स्वार्थ से ऊँचा उठकर दूर की बात सोचने की क्षमता कितने लोगों में कितनी मात्रा में रह गई है इसे हम रोज ही देख सकते हैं। व्यक्तिवाद के कारण स्वार्थ बढ़ा है, और स्वार्थपरता ने अनीति एवं अपराधों की वृद्धि की है। अनैतिक कार्यों के प्रति तीव्र घृणा हमारे मन में कहाँ रही है ? उसके स्थान पर दुष्प्रवृत्तियों को अपनाने और उनसे समझौता करने में लाभ समझा जाने लगा है। जन-मानस की धाराऐं इसी दिशा में चलती रहीं तो हमारा उत्थान होना तो दूर दिन-दिन पतन ही होता चला जायगा।

इन विपन्न परिस्थितियों से हमें लड़ना ही होगा। राष्ट्र का पुनरुत्थान होना ही चाहिये। हमें अपने अतीत जैसे, महान् गौरव को प्राप्त करने का प्रयत्न करना ही चाहिए और संसार जिस तेजी से आगे बढ़ रहा है उसे देखते हुए पिछड़ जाने का जोखम उठाने से इन्कार कर ही देना चाहिए। यह कार्य वाह्य उपकरणों से नहीं, अन्तः चेतना का विकास एवं परिष्कार होने से ही संभव होगा। हमें राष्ट्र की आत्मा जगानी पड़ेगी। जन-साधारण के सोचने का ढंग सुधारना होगा और उसे रचनात्मक कर्तव्यों से संलग्न होने की प्रेरणा देनी होगी। प्रत्येक विचारशील एवं देशभक्त भारतीय के लिए आज की परिस्थितियों में सबसे श्रेष्ठ, सबसे आवश्यक कर्तव्य यही बन गया है कि वह अपना एवं अपने परिवार का, अपने समाज का बौद्धिक एवं नैतिक स्तर ऊँचा उठाने के लिए सामर्थ्य भर प्रयत्न करे। उत्थान का यही सच्चा आधार हो सकता है।

धर्म तन्त्र के माध्यम से जन-जागरण

आर्थिक उत्कर्ष के लिये सरकारी और गैर सरकारी योजनायें चल रही हैं, उन्हें चलना ही चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देश में धन बढ़े यह आवश्यक है। पर इससे भी आवश्यक यह है कि लोगों की भावनायें और क्रियायें आदर्शवाद की ओर अग्रसर बनें। अन्यथा गिरी हुई मानसिक एवं चारित्रिक स्थिति रहने पर, बढ़ा हुआ धन और उलटे उपद्रव उत्पन्न करेगा। लोग उसका दुरुपयोग करेंगे और अपेक्षाकृत जल्दी विनाश की ओर अग्रसर होंगे। इसलिये आर्थिक प्रयासों से भी अधिक ध्यान हमें राष्ट्र के बौद्धिक एवं चारित्रिक उत्कर्ष की ओर देना चाहिये।

यह कार्य राजतन्त्र के द्वारा संभव नहीं, इसे तो धर्मतन्त्र द्वारा ही पूरा किया जा सकता है। सरकारी कर्मचारियों की वह नैतिक स्थिति नहीं होती कि वे जन साधारण के अन्तःकरण में प्रवेश कर उनकी दिशा परिवर्तन कर सकें। आस्थाओं का बदलना और पलटना धर्म का काम है, उसकी रचना ही इस प्रयोजन के लिये हुई है। अस्तु बौद्धिक और नैतिक क्रांति का उत्तरदायित्व स्वभावतः धर्म तन्त्र के ऊपर जा पड़ता है। विशेषतया भारत जैसे धर्मभीरु एवं ग्रामीण क्षेत्र में बिखरे हुए अशिक्षित देश के लिये तो इस प्रयोजन के लिये धर्म तन्त्र ही उपयुक्त हो सकता है। बौद्धिक क्रान्ति, नैतिक क्रान्ति की, राजनैतिक क्रान्ति के बाद अनिवार्य आवश्यकता है। उसकी पूर्ति धर्म तन्त्र को करनी चाहिये। धर्म तन्त्र के कन्धे पर अगणित समस्यायें पहले से ही मौजूद हैं उसे उन्हें सुलझाने देना चाहिये।

बौद्धिक एवं नैतिक क्रान्ति की वास्तविक जिम्मेदारी धार्मिक क्षेत्र की है। उसे वह उत्तरदायित्व उठाना ही चाहिये। प्रसन्नता की बात है कि जहाँ धर्म क्षेत्र में अपना उल्लू सीधा करने वालों का बाहुल्य है वहाँ ऐसे भी कुछ लोग हैं जो अपनी जिम्मेदारियों को समझने और संभालने के लिये उन्मुख हो रहे हैं। ऐसे लोगों की एक कार्यपद्धति का नाम "युग-निर्माण योजना" है। अखण्ड-ज्योति परिवार के सदस्यों ने उसे आरम्भ किया है, पर उसका कार्यक्षेत्र समस्त भारत-समस्त विश्व है।

गीता के माध्यम से हम जन-जागरण की आवश्यकता की पूर्ति पर बहुत विश्वास करते हैं। अतएव यह सोचा गया है कि राष्ट्र की बौद्धिक एवं नैतिक क्रांति के लिए गीता के माध्यम से मोह-ग्रस्त अर्जुन की तरह अवसाद में डूबे हुए समाज को कर्तव्य-पथ पर अग्रसर होने के लिए नव-निर्माण का पांचजन्य बजाने और प्रगति के गांडीव पर प्रत्यन्चा चढ़ाने के लिए तत्पर किया जाय। हमारा विश्वास है कि गीता में वह क्षमता समुचित रूप से विद्यमान है। राजनैतिक स्वतन्त्रता संग्राम में वह अपनी महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत कर चुकी है। बौद्धिक एवं नैतिक क्रांति के लिए उसका योगदान अद्वितीय रह सकना सुनिश्चित है।

गीता-कथा की शैली और प्रणाली

प्रस्तुत पुस्तक इसी दिशा में आरम्भ किया एक विनम्र प्रयास है। श्रीमद्भागवत् के सप्ताहों का प्रचलन हमारे देश में बहुत समय से है। सात दिनों में भागवत का पाठ करने एवं उसके विशिष्ट स्थलों पर प्रवचन होने वाला धर्मानुष्ठान कई शताब्दियों से प्रचलित है। यह एक उत्तम शैली है। कथा बालकों से लेकर वृद्धों तक को पसन्द होती है। उनके आधार पर किसी निष्कर्ष तक पहुँचना अधिक सुगम होता है। विचारपूर्ण भाषणों एवं गवेषणापूर्ण निबन्धों की अपेक्षा कथा और संगीत वाले माध्यम सदा से लोकप्रिय रहे हैं। साधारण जनता तक विचारों का पहुँचाया जाना इन्हीं माध्यमों से सम्भव है। यही कारण है कि प्राचीनकाल में अठारह पुराण, अठारह उपपुराण आदि बने और आज भी पुस्तकों की बिक्री में तीन चौथाई कथा साहित्य ही होता है। धर्म प्रचार के लिए भी यही माध्यम सरल पड़ता है। इसीलिए पुराणों की कथायें कहने, सुनने का प्रचलन हमारे देश में बहुत समय से रहा है। भागवत सप्ताह की शैली इस दृष्टि से एक सुधारी हुई और व्यवस्थित पद्धति मानी जा सकती है। उसी शैली का अनुसरण करते हुए गीता-सप्ताहों का कार्यक्रम "युग-निर्माण योजना" के अन्तर्गत निर्धारित किया गया है।

गीताकथा में १२ प्रवचन हैं। गीता के १२ श्लोकों की व्याख्या है। ७ दिन में १४ बैठकें होंगी इसमें से प्रथम दिन का आधा भाग भूमिका के लिए एवं आधा उपसंहार के लिए रखा गया है। शेष १२ में प्रवचन होते हैं। अतएव १२ श्लोक ही पर्याप्त समझे गये। प्रत्येक श्लोक साथ-साथ उस में सन्निहित आदर्श की भावना हृदयंगम कराने वाली अनेकों पौराणिक, ऐतिहासिक, कथाऐं तथा दृष्टान्त जुड़े हुए हैं। श्लोक, दोहे तथा रामायण की चौपाइयाँ परिशिष्ट के रूप में दी गई हैं। यह सब सामग्री कथा-वाचक की सुविधा के लिए एक स्थान पर एकत्रित कर दी गई हैं और यह अपेक्षा की गई है कि कथा-वाचक इतना व्युत्पन्नमति होगा कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सामने उपस्थित जनता के अनुरूप उस प्रस्तुत सामग्री के आधार पर कथा कहने की अपनी स्वतन्त्र शैली का विकास कर लेगा।

किस कथा को किस रूप में कहा जाय उनमें से कौन-सी कथा छोड़ दी जाय या किसे प्रमुखता दी जाय, कौन-सा श्लोक, दोहा या रामायण प्रसंग कहाँ फिट किया जाय यह निर्णय करना कथा-वाचक पर छोड़ा गया है। उसे वह अध्याय भली प्रकार पढ़ समझ और याद कर लेना चाहिए ताकि पुस्तक का अक्षर-अक्षर पढ़ने की अपेक्षा उससे यदा-कदा ही सहायता लेने की आवश्यकता पड़े और अधिकांश भाग कंठस्थ ज्ञान के आधार पर ही प्रस्तुत किया जा सके।

गीता धर्मानुष्ठानों की पृष्ठभूमि

राष्ट्र के भावनात्मक नव जागरण के लिए गीता ज्ञान से बढ़कर और कोई माध्यम हो नहीं सकता। सच्ची प्रगति वही है जो भावना स्तर पर हो। भौतिक प्रगति अस्थिर है। कोई भी वाह्य प्रतिकूलता या दुर्घटना उसे नष्ट कर सकती है पर यदि आन्तरिक-भावनात्मिक समृद्धि बची रही तो कुछ ही दिन में जो खोया था उसे पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त कर लिया जायगा। इसके विपरीत यदि मनोबल ऊँचा न रहा, विचारधारा निकृष्ट कोटि की रही तो सम्पन्नता रहते हुए भी मनुष्य दुखी रहेगा और एक दूसरे से टकरा कर अपने विनाश का पथ प्रशस्त करेगा। सच्ची प्रगति भावनात्मक उत्कर्ष को ही माना गया है। उसी के आधार पर मानव जीवन की समग्र प्रगति संभव होती है। अतएव हमें मूल को सींचना चाहिए ताकि राष्ट्रीय विकास का वृक्ष पत्र पल्लव और फल-फूलों से लदा हुआ दृष्टिगोचर हो सके।

संसार में धर्म और राजनीति यह दो ही शक्तियाँ प्रधान हैं। राजनीति का भौतिक जीवन पर नियंत्रण रहता है तो धर्म नीति का आन्तरिक क्षेत्र पर। इसलिए जहाँ मनुष्य के भावनात्मक उत्कर्ष का प्रश्न आता है वहाँ राजनीति नहीं धर्म नीति की ही प्राथमिकता रहती है। हमें अपना भौतिक ही नहीं भावनात्मक उत्थान भी करना है। इसलिए भौतिक सुख साधनों की वृद्धि के प्रयत्नों तक ही सीमित न रहकर वे प्रयास भी करने ही चाहिए जिनसे हमारे आन्तरिक स्तर को ऊँचा उठाने में सहायता मिले। इस दृष्टि से गीता की उपयोगिता अनुपम है।

भावनात्मक उत्कर्ष के लिए गीता की विचारधारा को एक व्यापक आन्दोलन का रूप दिया जाना, युग निर्माण की दृष्टि से आवश्यक था। अतएव यह योजना बनाई गई है कि गीता को एकाकी पठन-पाठन, चिन्तन-मनन तक ही सीमित न रहने देकर उसकी महान् विचारधारा का जन-जागरण के लिए भी उपयोग किया जाय और उस उपयोग को एक योजनाबद्ध प्रक्रिया के रूप में आगे बढ़ाया जाय।

प्राचीन काल की कथा शैली जन-जागरण के लिए बहुत ही उपयुक्त पद्धति है। श्रद्धा और धार्मिक वातावरण में ही अन्तरात्मा के प्रभावित करने वाले तत्वों को सुना और समझा जा सकता है। साधारण सभाओं, भाषणों में वक्ता का जितना प्रभाव पड़ता है, उससे कहीं अधिक धार्मिक कर्मकाण्ड के रूप में कहे सुने गये प्रवचनों का पड़ता है। मनुष्य के द्वारा कही गई बात की अपेक्षा ईश्वर, शास्त्र एवं ऋषियों के संदेश को सुनते हुए लोग अधिक प्रेरणा ग्रहण करते हैं। प्राचीन काल में साधु ब्राह्मणों के पास जन-जागरण का यही प्रधान माध्यम था।

लोक शिक्षण की सरल प्रक्रिया

एक-एक व्यक्ति से अलग-अलग बांत करने की अपेक्षा अधिक लोगों को इकट्ठा करके उन्हें सामूहिकता के उत्साहवर्धक वातावरण में कुछ कहना सुनना अधिक उपयुक्त रहता है। इसलिए अधिक लोगों को एकत्रित करके प्रवचन करने की पद्धति के रूप में धर्मानुष्ठानों के आयोजनों का प्रचलन किया गया। पारिवारिक धर्म शिक्षण के लिए दस संस्कारों के धर्मानुष्ठान पूर्वक सामूहिक आयोजन चलाये गये, जिससे उस घर के तथा पड़ौस के लोग एकत्रित होकर जीवनोत्कर्ष के विभिन्न पहलुओं पर अनुभवी पुरोहितों द्वारा दी हुई शास्त्रों की धार्मिक शिक्षा को ग्रहण कर सकें। इसी प्रकार पर्व और त्यौहारों को सामूहिक रूप से मनाने की प्रथा चली ताकि समाजगत समस्याओं का स्वरूप समझने और उन्हें हल करने के लिए आवश्यक शिक्षा को उन अवसरों पर सुना समझा जा सके। व्यक्तिगत जीवन का निर्माण षोडश संस्कारों के माध्यम से और समाज का निर्माण पर्व त्यौहारों के माध्यम से किया जाता था। यह पद्धतियाँ जब तक उपयुक्त रीति से चलती रहीं तब तक इनका समुचित लाभ भी भारतीय समाज को मिलता रहा। आज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भले ही वे महान् परम्पराऐं चिन्ह-पूजा मात्र रह गई हैं पर जब कभी भी उनका पूर्व काल की तरह सही स्वरूप प्रयुक्त होने लगेगा तभी लोक कल्याण की, भावनात्मक उत्कर्ष की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता पूरी होने लगेगी।

समय-समय पर विशेष प्रकार की भावनाओं के उत्कर्ष के लिए विभिन्न धर्म शास्त्रों के प्रवचन कथा पुराणों के रूप में जनता के सामने रखे-जाते रहे हैं। अनेक देवताओं या अवतारों के नाम पर बने हुए पुराणों में विभिन्न प्रकार की भावनाओं को उभारने और जनता की मनोदिशा को मोड़ने की साधन सामिग्री मौजूद है। तत्वदर्शी प्रवचनकर्ता उनका आश्रय लेकर जनता की भावनाओं को, सामयिक परिस्थितियों को सुलझाने की आवश्यकता पूरी किया करते थे। बड़े-बड़े पुराणों के कितने ही दिनों तक चलने वाले कथा प्रयोजनों का यही प्रयोजन था।

जन-मानस का परिष्कार

सत्यनारायण व्रत कथा, अनन्त चतुर्दशी, ऋषि पंचमी, एकादशी महात्म्य, माघ महात्म्य आदि कथाऐं एक दिन की ही होती हैं। उनमें दैनिक जीवन के स्थायी धर्माचरण की शिक्षा रहती हैं। पर कई दिनों तक चलने वाले पौराणिक कथा प्रवचन जनता की मनोदिशा को क्रमबद्ध रूप से एक विशेष प्रयोजन के लिए ढालते हैं और उनमें जो विकृतियाँ उत्पन्न हो रही होंती हैं उनके समाधान का वातावरण उत्पन्न करते हैं। इस दृष्टि से इन देर तक चलने वाले कथा प्रवचनों का अपना विशिष्ट महत्व है। विचारोत्तेजक भाषणों को कहने समझने के लिए परिष्कृत मस्तिष्क चाहिए। अन्यथा उन गंभीर बातों का समझना और समझाना दोनों ही कठिन हो जाते हैं। कथा कहानियों द्वारा यह प्रयोजन बड़ी सरलता से सिद्ध हो सकता है। पढ़े, बिना पढ़े, बालक, बूढ़े सभी कहानियां पसन्द करते, और समझते हैं, उनमें मनोरंजन एवं आकर्षण भी रहता है। न कहने में थकान आती है और न सुनने में। इसलिए प्राचीन काल के इतिहास, उपाख्यान, संस्मरण एवं दृष्टान्तों के माध्यम से जो भी विषय प्रतिपादित किया गया था वह भली प्रकार समझ में आ जाता है। गंभीर विषयों को सरल रीति से जन-मानस में स्थान दिलाने की दृष्टि से कथा पुराणेां का विशिष्ट महत्व है। यही कारण है कि वेद चार के चार ही बने रहे पर पुराण एक के बाद एक बनते और बढ़ते चले गये। १८ पुराण और १८ उपपुराणों को मिलाकर इतना बड़ा साहित्य है कि संस्कृत का अन्य सारा साहित्य मिलाकर भी उतना न होगा। यह पुराणों की लोकप्रियता का ही प्रमाण है।

पिछले दिनों भागवत पुराण का प्रचलन अधिक रहा है। क्योंकि उसमें भगवान श्रीकृष्ण के बहुमुखी सुसंस्कृत व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए मनुष्य को वैयक्तिक एवं सामाजिक दृष्टि से अधिक समर्थ बनने की प्रेरणा दी गई है। भगवान् श्रीकृष्ण का उज्ज्वल एवं सर्वांग सुन्दर जीवन इतना उत्तम है कि उसे ठीक प्रकार सुना या समझा जा सके तो उसमें हमारे लिए अनुकरणीय एवं प्रेरणाप्रद बहुत कुछ है। दुर्भाग्य से बीच में अज्ञानान्धकार युग में पनपे बड़े आदमियों ने अपने दुराचारों पर पर्दा डालने के लिये वैसे ही कुत्सित कर्म करने वाले देवता एवं अवतारों के चरित्र भी गढ़ दिये और उन्हें पुराणों में जोड़ दिया। जिस सामाजिक मर्यादाओं को निवाहने,चरित्र को उज्ज्वल रखने एवं कर्तव्य परायण रहने के उद्देश्य से कथा प्रवचनों की परम्परा चली थी उसे ही डुबो दिया गया। देवता और अवतारों के ऊपर ऐसे कुकर्म जोड़ दिये गये जो साधारण स्तर का भला मनुष्य कहलाने वाला भी करते हुये सकुचावेगा। अनैतिक बातों का पुराणों के नाम पर समर्थन कराके सामंतों ने अपने दुराचार का मार्ग प्रशस्त किया और अपने विरोध को घटाया। बहुपत्नी प्रथा का कलंक भारत में केवल अज्ञानान्धकार के युग में ही रहा है। उसके समर्थन में कथा वालों ने गढ़कर अपने यहाँ ढेरों रखैलें, दासियाँ, रानियाँ रखने का ही द्वार खोला। ऐसी ही और भी बहुत सी गड़बड़ियाँ की गईं जिनसे पुराण अपनी उपयोगिता खो बैठे और उनमें जहाँ बहुत कुछ उपयुक्त है वह भी दूध में विष मिल जाने की तरह अनुपयुक्त हो गया। यही कारण है कि कथा पुराण सुनकर सुनने वालों के भीतर जिस आत्मिक प्रखरता का उदय होना चाहिये वह कहीं भी नहीं होता।

प्रखर एवं सारगर्भित प्रवचन

आज आवश्यकता इस बात की है कि प्रखरता एवं पवित्रता से परिपूर्ण कथा प्रवचनों का प्रचलन हो ताकि हम अपनी वर्तमान कालीन बौद्धिक, नैतिक एवं सामाजिक विकृतियों से छुटकारा पाकर ऋषि कहलाने योग्य तेजस्वी व्यक्तित्व धारण कर सकें और अपना तथा अपनी मातृभूमि का एवं संस्कृति का गौरव बढ़ा सकें। इस प्रयोजन के लिये गीता सर्वोत्तम ग्रन्थ है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पर उसमें कठिनाई यह है कि कथा पुराण का प्रयोजन पूरा नहीं होता। विचारणा और विवेचना तो पर्याप्त है पर जन-साधारण को, बाल-वृद्ध को समझ सकने लायक वह आकर्षण नहीं जो कथाओं में होता है। अब यह प्रयत्न किया गया है कि गीता के प्रमुख स्थलों के साथ धार्मिक उपाख्यान जोड़ कर उसे कथा की आवश्यकता पूर्ण करने वाली भी बना दिया जाय। 'गीता कथा' इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिये लिखी गई है। उसका प्रवचन धर्म पुराणों की कथा कहने सुनने का उद्देश्य बहुत हद तक पूरा करेगा, ऐसी आशा है।

भागवत सप्ताह का जो क्रम प्रचलित है, उसी का अनुसरण करते हुये गीता सप्ताह कार्यक्रम चलाये जाने चाहिये। एक सुसज्जित व्यास गद्दी पर बैठकर पंडित लोग कथा कहते हैं। व्यास गद्दी को एक मंडप रूप में बनाया जाता है। उसके चारों ओर जौ उगाकर हरियाली बनाने का रिवाज है। यह हरियाली अन्य फूलदार पौधों या गमलों से भी की जा सकती है। छोटी चौकियों पर दो कलश दोनों ओर रखे जा सकते हैं, जिन पर अगरबत्ती एवं दीपक जलते रहें। कथा सुनने वालों के लिये सुविधाजनक स्थान हो, महिलाओं को एक ओर पुरुषों को दूसरी ओर बैठने का प्रबंध रहे। प्रवचन स्थल पर महापुरुषों के, देवताओं के चित्र तथा आदर्श वाक्य टँगे रहें। उस स्थान का लिपा पुता स्वच्छ सात्विक होना भी आवश्यक है। मैले कुचैले, धुंए धूलि या अन्धेरे सील बदबू तथा घुटन भरे वे स्थान जहाँ सर्दी गर्मी अधिक हो, कथा के लिये उपयुक्त नहीं। अच्छा स्थान भी अच्छे वातावरण की तरह ही आवश्यक है।

अधिक लोगों की अधिक सुविधा

कथा का समय ऐसा रख जाय जिसमें अधिक लोगों को अधिक सुविधा रह सके। महिलाऐं भोजन बनाने के लिये ९ बजे के करीब लग जाती हैं। पुरुष भी अपनी दुकान या नौकरी पर जाने के लिये उससे पहले ही चले जाते हैं। इसलिये प्रातः काल सूर्योदय के आस-पास कार्य आरंभ कर देना चाहिये और उसे ९ बजे तक समाप्त कर देना चाहिये। इसी प्रकार शाम को महिलाएं और पुरुष छै: बजे बाद अपने कामों से निश्चिन्त होते हैं। तब रात को नौ-दस बजे तक बैठ सकना सुगम होता है। स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार यह देखा जाना चाहिये कि अधिक संख्या में लोग किस समय उपस्थित हो सकते हैं। उसी दृष्टि से कथा का समय रखना चाहिये। दो बार में कथा का क्रम रखे जाने से कहने वाले और सुनने वाले सभी को सुविधा रहती है।

प्रतिदिन गीता का पारायण भी होना चाहिये। चूंकि हर किसी के लिये संस्कृत श्लोकों का पढ़ना और ठीक तरह पाठ करना संभव नहीं होता इसलिये इस पुस्तक में श्लोकों का पद्यानुवाद राधेश्याम तर्ज में करा दिया गया है। पारायण इसी आधार पर सरल रह सकता है प्रतिदिन एक घंटा प्रातः और एक घंटा सायं पारायण का कार्यक्रम रखा जाय और शेष डेढ़-डेढ़ दो-दो घंटे प्रवचन हुआ करें।

पारायण गायन के साथ होना चाहिये। यदि हारमोनियम, तबला, ढोलक, मंजीरा करताल आदि के साथ हो सके तो और भी अच्छा है। पारायण के लिये दो पार्टी बनानी चाहिये। एक श्लोक का पद्यानुवाद एक पार्टी गायें तो दूसरे का दूसरी पार्टी। इस प्रकार क्रम जारी रखने से थकान भी नहीं आती और सुन्दर भी लगता है। सब लोग मधुर स्वर से एक साथ गायें तो उसमें कीर्तन का आनन्द आता है और उन सभी गायकों को पारायण करने का पुण्य भी मिलता है। इस तरीके से उस आयोजन में सम्मिलित रहने वालों को सम्पूर्ण गीता का भाव पद्यानुवाद में सुनने का भी अवसर मिल जाता है। प्रवचन तो कुछ थोड़े से श्लोकों की व्याख्या का ही हो सकता है। सात दिनों में ७०० श्लोकों की विस्तृत व्याख्या का प्रवचन संभव नहीं। प्रस्तुत योजना के अनुसार १२ श्लोकों का व्याख्यान रखा गया है। शेष श्लोकों का भाव तो इस पारायण कार्यक्रम में ही मिलता है, इसलिये उसकी भी अपनी उपयोगिता है। मधुर कंठ वाले लोगों को इन गायन पार्टियों का नेतृत्व करना चाहिये। शेष लोगों को ऐसा अभ्यास करा देना चाहिये कि वे मध्यम स्वर में परस्पर आवाज और स्वर मिलाकर बोलें। आगे पीछे और ऊँचे नीचे स्वर में अनिच्छा और कर्कशता पूर्वक गाने से न गाना अच्छा है क्योंकि उससे लयबद्धता का आनन्द ही चला जाता है। और पारायण नीरस, कर्कश एवं बेतुका लगने लगता है। इसलिये पारायण से पूर्व उसमें सम्मिलित होने वालों को मिलकर मधुर स्वर से गाने का पूर्वाभ्यास (रिहर्सल) करा लेना चाहिये। सब पारायण करने वालों के सामने गीता की पुस्तकें लकड़ी की तिपाइयों पर रखी हुई हों, तो देखने में उनकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पंक्ति बद्ध एकरसता बहुत ही उत्तम दृष्टिगोचर होती है। कथा वाचक की पुस्तक भी तिपाई पर ही खुली रखी रहती है और जहाँ संभव होता है उसे पुष्प आदि से सजा भी दिया जाता है।

कथाकार मध्यम एवं बंधे हुये स्वर में, हृदय तक पहुँचने वाली शैली के साथ कथा कहें। हँसी मजाक ओछे दृष्टान्त, अश्लील चर्चाएं कथा में सर्वथा निषिद्ध मानी जानी चाहिये। ऐसी पद्धति ओछे आदमी ही पसंद करते हैं। धार्मिक वातावरण का स्तर अक्षुण्ण बना रहे इसलिये आवेशग्रस्त होकर या उदासीन भाव से चिन्ह-पूजा की तरह कुछ कहते हुये समय काट देने का तरीका ठीक नहीं।इस नीरसता में सब कुछ भार रूप प्रतीत होता है। धर्म चर्चा सरस और हृदयग्राही होनी चाहिये। वक्ता का कर्तव्य है कि अपनी कथन शैली को दिन-दिन परिष्कृत करता चले और सुनने वालों से प्रवचन में रहने वाले दोषों की जानकारी प्राप्त कर उसे सुधारने का प्रयत्न करता रहे। प्रवचन में रहने वाले तथ्यों का जितना महत्व है उतना ही कथा की हृदयस्पर्शी शैली का भी है। उसका निखार होना ही चाहिये।

मनोरम एवं आकर्षक कार्यक्रम

कथा के बाद कीर्तन और भजनों का कार्यक्रम रखा जा सकता है। अन्त में आरती भी होनी चाहिये। गायत्री माता का बड़ा चित्र एक प्रथम पूजा वेदी पर स्थापित कर लेना चाहिये। यही गीता माता का भी प्रतीक माना जा सकता है। ज्ञान की देवी गायत्री और गीता तत्वत: एक ही शक्ति हैं। गायत्री का चित्र न मिलने पर सरस्वती का चित्र रखा जा सकता है और उसे पूजन बन्दन का माध्यम बनाया जा सकता है।

प्रथम दिन उन सब लोगों का वरण होना चाहिये जो इस धर्मानुष्ठान में सम्मिलित रहना चाहें। पवित्रीकरण, आचमन, शिखा बन्धन, प्राणायाम, न्यास, पृथ्वी पूजन के बाद कलश पूजन, देव पूजन, स्वस्ति वाचन का कार्यक्रम रहे। प्रथम दिन सबसे सकंल्प कराये जाँय कि वे आयोजन में अन्त तक सम्मिलित रहेंगे। उनके हाथ में वरण बांधे जाँय और तिलक किये जाँय। प्रथम दिन प्रात:काल थोड़ा गायत्री यज्ञ कराया जाय। इसके लिये कथा के समीप ही यज्ञ वेदी बनाई जाँय। उसमें प्रथम दिन और अन्तिम दिन तो हवन किया ही जाय। बन पड़े तो बीच के पाँच दिनों में भी थोड़ा-थोड़ा हवन प्रात: सायं होते रहना चाहिये। दोनों समय की आरती तो आवश्यक है ही।

अन्तिम दिन इस धर्मानुष्ठान की पूर्णाहुति होनी चाहिये। प्रवचन प्रात:काल की बैठक में ही समाप्त कर लिये जाय। इसके उपरान्त गायत्री यज्ञ हो जिसमें उपस्थिति के आधार पर पाँच या नौ कुण्डों की संख्या भी रखी जा सकती है और इसी आधार पर उसका यज्ञ मंडप भी बनाया जा सकता है। इस हवन में सम्मिलित होने के लिये पहले से ही धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्तियों को आमन्त्रित कर रखना चाहिये। कंधे पर पीला दुपट्टा धारण करके और महिलाएं पीली धोतियाँ पहन कर आवें तो दृश्य और भी मनोरम हो जाता है। ज्ञान का-धर्म का पीत वर्ण है। यज्ञ में पीत वस्त्र धारण करके सम्मिलित होने पर उसका वातावरण और भी अधिक पवित्र बन जाता है। यज्ञ की पूर्णाहुति के उपरान्त गायत्री माता के चित्र और गीता ग्रन्थ की सुसज्जित सवारी के साथ जुलूस भी निकाला जा सकता है। धर्मानुष्ठान आरंभ होने के दिन या उससे पहले एक दिन यदि सम्भव हो तो महिलाओं द्वारा जल कलश भर कर लाने को जल यात्रा निकालनी चाहिये। इस प्रकार के धार्मिक जुलूस यदि नारे, पोस्टर बैण्ड आदि के साथ सुव्यवस्थित रीति से निकाले जाँय तो उनका दर्शकों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है।

यज्ञ के समय लोग अपनी बुराइयों को छोड़ने और अच्छाइयों को बढ़ाने का व्रत लेते हैं। यह बहुत ही उपयोगी प्रक्रिया है। उसके लिये उपस्थित लोगों को अधिकाधिक प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। यज्ञ के बाद कन्या भोजन के लिये जितनी कुछ व्यवस्था हो सके करनी चाहिये। नारी जाति के प्रति पूज्य भाव एवं श्रेष्ठता की भावना जागृत करने के लिये कन्या भोजन महत्वपूर्ण है। सच्चे ब्राह्मणों का इन दिनों अभाव ही हो चला है, कन्याओं की पवित्रता अक्षुण्ण है उन्हें भोजन कराना ब्रह्मभोज की आवश्यकता को भली प्रकार पूरी कर देता है।

इसी अन्तिम भोज के समय जिन्हें षोडश संस्कारों में से कोई कराना हो तो वह सामूहिक रूप से करा लेना चाहिये। जिन के यज्ञोपवीत नहीं हुये हैं वे इस अवसर पर करा सकते हैं। गर्भिणियों के पुंसवन संस्कार, बच्चों के नामकरण, मुण्डन, विद्यारंभ, अन्न प्राशन के लिये यही समय उत्तम है। जिन्हें वानप्रस्थ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

लेना हो उनके लिये इससे अच्छा और कोई समय नहीं हो सकता।

आर्थिक व्यवस्था और उसकी पवित्रता

कथा वाचक या किसी को भी पैसा जनता से सीधा नहीं मिलना चाहिये। इससे लेने वाले में दीनता तथा लोभ की वृत्ति बढ़ती है और देने वाले को अहंकारी बनने की सम्भावना रहती है। इसलिये आरती से लेकर दक्षिणा तक का जो भी पैसा आवे उसे धर्मानुष्ठान की प्रबन्ध समिति अपने हाथ में रखे और कथा वाचक आदि को जो देना हो वह स्वयं दे। लेन-देन की सीधा सम्बंध प्रबन्ध समिति से रहना चाहिये जनता से नहीं। गीता कथा का धर्मानुष्ठान सामूहिक रूप से होता है। इसलिये उसके लिये चंदा ही करना पड़ता है इसका पूरा पक्का, सही और प्रमाणयुक्त हिसाब रखना चाहिये और जिनने भी वह पैसा दिया हो उन्हें उसे इस प्रकार समझा देना चाहिये कि किसी को सन्देह करने या उंगली उठाने की तनिक भी गुंजाइश न रहे। जहाँ इस सम्बंध में ढील बरती जायगी वहाँ प्रबंधकों के प्रति अविश्वास फैलेगा और वे सत्कर्म करते हुये भी लोगों की दृष्टि में अपना सम्मान खो बैठेंगे, अतएव इस सम्बन्ध में पूरी-पूरी सावधानी बरतनी चाहिये।

हमारा विश्वास है कि गीता के माध्यम से जन-जागरण की इस शैली का धार्मिक जगत में समुचित स्वागत होगा।बौद्धिक एवं नैतिक क्रान्ति की आवश्यकता अनुभव करने वाले विचारशील लोग धर्मानुष्ठान युक्त इन साप्ताहिक शिविरों की आवश्यकता अनुभव करेंगे। और अपने-अपने यहाँ इसके लिए यथोचित प्रबंध करेंगे। इस आधार पर इतने बड़े देश में हजारों लोक सेवकों को आजीविका मिल सकती है और वे नव-निर्माण के कार्य में निरन्तर लगे रह सकते हैं। सौ, दो सौ रुपये इकट्ठे करके एक छोटा सा साप्ताहिक गीता धर्मानुष्ठान आसानी से किया जा सकता है तो उसकी व्यवस्था में बड़ी कठिनाई नहीं होनी चाहिये। जब कि धर्म के नाम पर निरर्थक हा-हा,हू-हू में हजारों रुपये बात की बात में इकट्ठे करना और खर्च करना कठिन नहीं होता तो विचारशील लोगों के लिये ऐसे छोटे आयोजनों में कोई विशेष कठिनाई क्यों होगी ? इस योजना के अनुसार यदि कार्य किया जायेगा, तो उससे भारतीय राष्ट्र एवं समाज के मानसिक एवं चारित्रिक विकास में आशाजनक योगदान मिलना सुनिश्चित है। जहाँ सामूहिक आयोजनों के रूप में यह प्रयोग न हो सके वहाँ भी घर-घर में पारिवारिक प्रशिक्षण के रूप में, अथवा साप्ताहिक सत्संगों के रूप में यह कथाऐं पढ़ी जानी चाहिये।

गीता कथाओं का प्रसार अधिकाधिक होना चाहिये। इसके लिये संगठित रूप से ऐसी पृष्ठभूमि तैयार करनी चाहिये कि हर साल, हर जगह इस प्रकार के धर्मानुष्ठान होते रहें। युग-निर्माण योजना को व्यापक बनाने के लिये इस प्रकार के धर्मानुष्ठान बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

गीता-कथा

प्रथम प्रवचन

धृतराष्ट्र-उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय।।

- अध्याय १ श्लोक १

धृतराष्ट्र जी ने कहा, हे संजय धर्म भूमि कुरुक्षेत्र में युद्ध की इच्छा से एकत्रित मेरे और ऐसे ही पाण्डु के पुत्रों ने क्या किया ?

गीता के प्रथम श्लोक में जीवन तथा संसार का स्वरूप दर्शाया गया है। महाभारत युद्ध के बहाने जीवन संग्राम का उसमें दिग्दर्शन कराया गया है। इस संसार को धर्म-क्षेत्र कहा गया है क्योंकि उसका धर्म ही सार है। धर्म के आधार पर ही संसार की सुख-समृद्धि सम्भव होती है। इसे कुरुक्षेत्र भी कहा गया है। कुरुक्षेत्र अर्थात् कर्म-क्षेत्र। कर्तव्यनिष्ठा, पुरुषार्थ, श्रमशीलता एवं उद्योग-परायणता से ही यहाँ किसी को सफलताओं और विभूतियों के रसास्वादन का अवसर मिलता है। इसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र है। धर्मनिष्ठा ही मानव-जीवन की सफलता एवं सुख-शान्ति

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की आंधार-शिला है। इसी प्रकार कर्मशीलता द्वारा ही प्रत्येक व्यक्ति अपने भाग्य का निर्माण करता है। धर्मनिष्ठा और कर्तव्य-परायणता छोड़ देने के बाद मनुष्य जीवन मृततुल्य हो जाता है, उसमें फिर न कुछ आनन्द रहता है और न उत्कर्ष की सम्भावना ही शेष रह जाती है। इसलिये मनुष्य जीवन भी धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र ही कहा गया है।

समुद्र मंथन की तरह यहाँ संघर्ष ही सार है। दिनभर श्रम करने के बाद रात को जिस तरह गहरी और मीठी नींद आती है उसी तरह संघर्ष का प्रतिफल ही अनेक प्रकार की सुख-सुविधाओं, विभूतियों और सफलताओं के रूप में दृष्टिगोचर होता है। परमात्मा नें प्रत्येक सफलता के मार्ग को कठिनाइयों से भरा बनाया है ताकि उनसे संघर्ष करता हुआ मनुष्य अपनी क्षमता, शक्ति, योग्यता एवं प्रतिभा को विकसित कर सके। जीवन का यही स्वरूप है। संघर्ष ही जीवन है और संघर्ष समाप्त होने का नाम ही मृत्यु•है। जीव के जन्म-धारण की प्रक्रिया का आरम्भ संघर्ष से होता है, उसे प्रत्येक विभूति की उपलब्धि भी इसी आधार पर होती है।

यह जीवन का संसार सत और तम के सम्मिश्रण से बना है। इन दोनों के मिलन से रज बनता है। सत्-रज-तम यह तीन गुण प्रसिद्ध हैं पर वस्तुतः सत् और तम दो ही– रात और दिन की तरह मुख्य हैं। जिस प्रकार रात और दिन का मिलन संध्या कहलाता है उसी प्रकार सत् और तम का सम्मिश्रित स्वरूप रज है।

सत को दैवी और तम को आसुरी सम्पत्ति कहते हैं। सत का फल सुख और तम का दुःख है। सत को पुण्य प्रकाश एवं तम को पाप, अज्ञान का अन्धकार कहते हैं। इन दोनों वृत्तियों का संघर्ष इस जीवन या संसार में निरन्तर होता रहता है। जब सत जीतता है, तब प्रकाश एवं सुख बढ़ता है और जब तम की वृद्धि होती है तो नाना प्रकार के शोक सन्ताप उठ खड़े होते हैं। देवता और असुरों का यह सनातन संघर्ष सृष्टि के आदि से चला जाता है। असुर अवसर पाते ही तेजी से पनपते हैं और देव-तत्वों के ऊपर आधिपत्य जमा लेते हैं। इस स्थिति में संसार के दुःख बढ़ते हैं। अतएव स्वाभाविक स्थिति लाने के लिये असुर तत्वों का दमन करना पड़ता है।

महाभारत का ऐतिहासिक महत्व भी है पर गीता में जीवन संघर्ष की समस्या के रूप में ही उसको माध्यम बनाकर एक शाश्वत समस्या को सुलझाया गया है। अन्तःकरण के भीतर जो दैवी और आसुरी शक्तियों का संघर्ष निरन्तर चलता रहता है, उसमें विजय प्राप्त करके आत्मा किस प्रकार अपने लक्ष्य को प्राप्त करे इस समस्या का समाधान प्रस्तुत किया गया है।

मनुष्य जीवन धर्मक्षेत्र है क्योंकि वह धर्म के लिये है। मनुष्य जीवन कुरुक्षेत्र भी है, क्योंकि वह कर्म के लिये है। इससे यह दोनों पक्ष एक दूसरे से विपरीत दिशा में चलने वाले, विपरीत स्वभाव के होने के कारण परस्पर लड़ते भी रहते हैं। इस लड़ाई में यदि आसुरी शक्तियों की विजय होती है तो जीव को नारकीय दुःख दुर्भाग्य की यंत्रणाऐं सहनी पड़ती हैं। और यदि दैवी शक्तियाँ जीतती हैं तो सुख सौभाग्य का सूर्योदय होता है। गीता के प्रथम श्लोक में जीवन की इसी पृष्ठभूमि का दिग्दर्शन कराया गया है।

सञ्जय रूपी विवेक से धृतराष्ट्र रूपी अन्धा अज्ञान पूछता है कि "मेरे पुत्र कौरवों ने–कुकर्मों, कुविचारों ने और पाण्डवों-पुण्य-तत्वों ने युद्ध की इच्छा से एकत्रित होकर क्या किया ? सो बताओ !"

महाभारत के लड़ाई झगड़े का वर्णन गीता में बहुत कम है। प्रथम अध्याय में सेनाओं के एकत्रित होने, शूरवीरों का नाम गिनाने, दुर्योधन द्वारा सेना का निरीक्षण करने जैसी छोटी बातों का थोड़ा-सा वर्णन है। बाकी तो पूरे अठारह अध्यायों में समग्र अध्यात्म का वर्णन है। इससे स्पष्ट है कि गीताकार का मूल प्रयोजन इस माध्यम से मानव-जीवन की आन्तरिक उलझनों को सुलझाना ही है।

मोहग्रस्त अर्जुन लड़ाई-झगड़े के झंझट से बचना चाहता है। वह शान्त, सरल सीधी और बिना झंझट की जिन्दगी जीना चाहता है। भगवान कृष्ण इस आरामतलवी की वृत्ति की कड़े शब्दों में निन्दा करते हैं। संघर्ष से बचने की और चैन से रहने की इच्छा की, कायरता, नपुंसकता, नारकीय, निन्दनीय नीच लोगों जैसी, क्षुद्रता हृदय की दुर्बलता आदि की कटु शब्दों में भर्त्सना की है और कहा है कि--

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हे अर्जुन! तुमको इस विषम स्थल में यह अज्ञान किस हेतु से प्राप्त हुआ ? क्योंकि यह न तो श्रेष्ठ पुरुषों से आचरण किया गया है, न स्वर्ग को देने वाला है, न कीर्ति को करने वाला है।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ।।

इसलिये हे अर्जुन ! नपुंसकता को मत प्राप्त हो, यह तेरे योग्य नहीं है। हे परंतप ! तुच्छ हृदय की दुर्बलता को त्यागकर युद्ध के लिये खड़ा हो।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।।

हे अर्जुन! तू न शोक करने योग्यों के लिये शोक करता है और पण्डितों के से वचनों को कहता है, परन्तु पण्डितजन जिनके प्राण चले गये हैं उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं उनके लिये भी नहीं शोक करते हैं।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रिस्य न विद्यते।।

और अपने धर्म को देखकर भी तू भय करने के योग्य नहीं है, क्योंकि धर्मयुक्त युद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारक कर्तव्य क्षत्रिय के लिये नहीं है।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्।।

और हे पार्थ ! अपने आप प्राप्त हुये और खुले हुये स्वर्ग के द्वार रूप इस प्रकार के युद्ध को भाग्यवान् क्षत्रिय लोग ही पाते हैं।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्राम न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि।।

और यदि तू इस धर्मयुक्त संग्राम को नहीं करेगा तो स्वधर्म को और कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगा।

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ।।

और सब लोग तेरी बहुत काल तक रहने वाली अपकीर्ति को भी कथन करेंगे और वह अपकीर्ति माननीय पुरुषों के लिये मरण से भी अधिक बुरी होती है।

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम्।।

और जिनके तू बहुत माननीय होकर भी अब तुच्छता को प्राप्त होगा, वे महारथी लोग तुझे भय के कारण युद्ध से उपराम हुआ मानेंगे।

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम्।।

और तेरे बैरी लोग तेरे सामर्थ्य की निन्दा करते हुये बहुत से न कहने योग्य वचनों को कहेंगे, फिर उससे अधिक दुःख क्या होगा ?

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ।।

इससे युद्ध करना तेरे लिये सब प्रकार से अच्छा है; क्योंकि या तो मरकर स्वर्ग को प्राप्त होगा अथवा जीतकर पृथ्वी को भोगेगा, इससे हे अर्जुन! युद्ध के लिये निश्चय वाला होकर खड़ा हो।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ।।

यदि तुझे स्वर्ग तथा राज्य की इच्छा न हो तो भी सुख-दुःख, लाभ-हानि और जय-पराजय को समान समझ कर उसके उपरान्त युद्ध के लिये तैयार हो, इस प्रकार युद्ध करने से तू पाप को नहीं प्राप्त होगा।

भगवान् ने अर्जुन को जो कठोर वचन कहे हैं, वे प्रकारान्तर से उन सब लोगों के लिये हैं जो जीवन संग्राम से डरते हैं, झंझटों से बचना चाहते हैं और यह सोचते हैं कि किसी प्रकार चैन से दिन कटते जाँय, गुजर होती चली जाय। ऐसा सम्भव नहीं है। यह जीवन या जगत संघर्षमय है। यदि अवांछनीय तत्वों को हटाने के लिये हम कटिबद्ध न होंगे तो वे हमें दुःख, दरिद्र के, पतन और अन्धकार के गर्त में धकेले बिना न रहेंगे। इसलिये अच्छा यह है कि हम आगे बढ़कर अपने चारों ओर फैले हुये आसुरी तत्वों से संघर्ष करने में जुट जायें। उससे अपनी प्रतिभा का विकास, सफलता की सम्भावना, आत्म सन्तोष, यश आदि सभी कुछ है। पाप और बुराइयों के सामने शिर झुका देने, उनका प्रतिरोध न करने से तो वे दिन दूने और रात चौगुने बढ़ते हैं। फलस्वरूप संघर्ष न करने की भीरुतापूर्ण इच्छा-संघर्ष करने की अपेक्षा कहीं अधिक मँहगी, दुःखदायक एवं आत्म-घातक सिद्ध होती है। संघर्ष के बचने की अपेक्षा जब संघर्ष में पड़ना ही लाभदायक है तो उसी को क्यों न अपनाया जाय? प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है, अर्जुन भी गीता ज्ञान के आधार पर उसी निष्कर्ष पर पहुँचा। इस संसार में बाहर और अपने भीतर जो भी दुष्प्रवृत्तियाँ, दुर्बलताएँ, कमियाँ, कुरूपताएँ, विकृतियाँ एवं अनुपयुक्ताएँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फैली हुई हैं, उनको हटाने के लिये संघर्ष करना और उनके स्थान पर सत्प्रवृत्तियों की, स्वच्छता, सबलता, धार्मिकता एवं सज्जनता की स्थापना करना आवश्यक है। यही अध्यात्म की पृष्ठभूमि है। प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्त्तव्यों का निर्धारण इसी आधार पर करना चाहिये। गीता में भगवान् ने अनेक दृष्टिकोण से जीवन विज्ञान के मार्ग को समझाया है। अठारहों अध्यायों में इस एक ही बात का अनेक तरह से, अनेक सन्दर्भ प्रस्तुत करते हुये व्यक्ति को धर्मनिष्ठ, कर्तव्य परायण एवं अनौचित्य के लिये निरन्तर संघर्ष शील रहने की प्रेरणा दी गई है।

धर्म-रक्षा के लिये अवतार

भगवान् ने समय-समय पर अनेक अवतार लिये हैं। उनमें से प्रधान दस हैं और कुल मिलाकर उनकी संख्या चौबीस है। इन सब अवतारों का उद्देश्य अधर्म का नाश और धर्म की स्थापना है। गीता में भगवान् कृष्ण ने अपने अवतार का यही उद्देश्य बताया है और रामायण आदि अन्य ग्रन्थों में भी विभिन्न अवतारों ने अपने अवतरणों का यही उद्देश्य बताया है। यथा–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।

हे भारत ! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् प्रकट करता हूँ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।

क्योंकि साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिये और दूषित कर्म करने वालों का नाश करने के लिये तथा धर्म की स्थापना करने के लिये, मैं युग-युग में प्रकट होता हूँ।

बालकाण्ड के अन्तर्गत भगवान् शंकर, पार्वती जी को अवतार का कारण समझाते हुये कहते हैं कि:--

जब जब होइ धर्म की हानी।
बाढ़हि असुर अधम अभिमानी ।।
तब तब प्रभु धरि विविध शरीरा।
हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा।।
दोहा– असुर मार थापहि सुरन्ह, राखहि जिनश्रुति सेतु।
जग विस्तारहिं विसद जस, राम जनम कर हेतु।।

इसी काण्ड में माँ कौशल्या से तुलसी दास कहलाते हैं कि:--

दोहा– विप्र धेनु सुरसन्त हित, लीन मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गो पार।।

अयोध्याकाण्ड में बाल्मीकि जी भी इसी का प्रतिपादन करते हुये कहते हैं कि:--

नर तनु धरेहु सन्त सुरकाजा।
कहहु करहु जस प्राकृत राजा।।

प्रत्येक मनुष्य भगवान् की एक-एक कला का अवतार है। अन्य अवतार भी अपनी कलाओं के अनुपात से छोटे या बड़े माने गये हैं। एक ही समय में भगवान् के कई अवतार भी हुये हैं। परशुराम तीन कलाओं के और राम चन्द्र जी बारह कलाओं के अवतार थे। दोनों एक ही समय में हुये हैं। भगवान् का जितना अधिक तेज, बल एवं प्रकाश जिनमें होता है वे उतने ही कलाओं के अवतारी माने जाते हैं। प्रत्येक अवतार का-भगवान की विशेष विभूति सम्पन्न आत्मा का- एक ही जीवन उद्देश्य होता है, वह है धर्म की स्थापना-अधर्म का नाश। साधुता का परित्राण, दुष्कृतों का नाश। इसी प्रयोजन को पूरा करने के लिये भगवान् विभिन्न रूपों में अवतार धारण करते हैं। मनुष्य जीवन का उद्देश्य भी यही है कि वह अपने आन्तरिक तथा बाह्य जगत में, सत्य, शिवं, सुन्दरं की स्थापना के लिये अनवरत श्रम करे। जो व्यक्ति इस दिशा में जितना अधिक प्रयत्नशील होगा उसे भगवान् की उतनी ही अधिक विभूतियों तथा किरणों से प्रकाशित माना जायगा।

भगवान् के अवतारों की लीलाओं तथा उनके उद्देश्य प्रयोजनों पर थोड़ा भी विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने आजीवन निर्धारित उद्देश्य के लिये ही कार्य किया। जिस युग में जिस प्रकार की अनीति, मूर्खता, असाधुता, विकृति एवं कुरूपता का बाहुल्य हुआ है, उस समय भगवान् ने उसके शमन के लिये परिस्थितियों के अनुरूप अपना संघर्ष क्रम चलाया। अवांछनीय परिस्थितियों को हटाया और उनके स्थान पर औचित्य की-धर्म एवं सज्जनता की प्रतिष्ठापना की।

भगवान् की लीलाओं को सुनने-सुनाने का, कहने-बताने का, पढ़ने का, तथा देखने का जो पुण्य माना गया है उसके पीछे एक ही लाभ छिपा हुआ है कि पढ़ने सुनने या देखने वाले लोग अवतार के प्रयोजनों को पूरा करने- उनका अनुसरण करने के लिये उत्साह एवं प्रेरणा प्राप्त करें। धर्मयुद्ध के लिये कटिबद्ध रहना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यही तो मानवीय श्रेष्ठता है। अध्यात्म का समस्त कलेवर विभिन्न प्रकार से मनुष्य को इसी की प्रेरणा देता है। भीतर छिपी हुई दुर्भावनाओं एवं दुष्प्रवृत्तियों से लड़कर उन पर विजय प्राप्त करना, जीवन को उत्कृष्ट आदर्शवादी एवं धर्मपरायण रखना, यही तो व्यक्तिगत जीवन में प्रयुक्त होना- धर्मयुद्ध हैं। इसी प्रकार अनाचार, ज्ञान, अन्याय, आलस्य आदि को परास्त कर संसार में सद्भावनाओं एवं सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाने के लिये तीव्र भावनाओं के साथ प्रयत्न करना बाह्य जीवन का धर्म है। प्रत्येक मनुष्य को अर्जुन की तरह धर्म युद्ध में, कर्तव्य संघर्ष में लगा देना गीता का उद्देश्य है। भगवान अपने विभिन्न अवतारों द्वारा संसार को, मानव मात्र को यही प्रेरणा देते रहे हैं। हम भगवद्भक्तों के लिये यह उचित एवं आवश्यक है कि गीता के मर्म को-भगवान के अवतारों के रहस्य को समझें और तद्नुकूल अपने जीवन को ढालने का प्रयत्न करें।

मत्स्य-अवतार

राजा मनु प्रलय के समय सृष्टि को बीज रूप से और सप्त-ऋषियों को बचाये रखने के लिये तपस्या कर रहे थे। वे स्नान के लिये गये तो जलाशय में एक छोटी मछली निकली, उसने मनु से प्रार्थना की- मुझे किसी बड़े जलाशय में पहुँचा दें, जहाँ मैं सुख पूर्वक रह सकूँ। मनु ने उसे वहाँ पहुँचा दिया। मछली वहाँ बढ़ी, और इतनी बढ़ी की स्थान कम पड़ गया। उसने मनु से प्रार्थना की कि मेरी सहायता कीजिये और अन्यत्र कहीं बड़े जलाशय में पहुँचा दीजिये। मनु की करुणा जगी और परोपकार वृत्ति की प्रेरणा से उसे उठा कर बड़े जलाशय में पहुँचाया। वहाँ भी पूर्व घटना की पुनरावृत्ति हुई और मछली की प्रार्थना पर मनु ने क्रमशः बड़े जलाशयों में पहुँचाते-पहुँचाते अन्त में समुद्र में पहुँचा दिया। मछली ने जब अपने विस्तार से पूरा समुद्र घेर लिया तब मनु ने उसे भगवान् का अवतार समझा, उनकी प्रार्थना की और उससे प्रसन्न होकर मत्स्यावतार ने मनु को अपने दर्शन दिये।

भगवान का प्रथम अवतार मत्स्यावतार है। श्रेय और सामर्थ्य प्राप्त करने के इच्छुक मनु में भगवान् ने लक्ष्य प्राप्ति के उपाय स्वरूप छोटों पर करुणा करने और परोपकार वृत्ति से उनकी सहायता करने का भाव जागृत किया। यह भावना ही भगवत प्रेम का, आस्तिकता का, अध्यात्म का मूल है। जब, जितनी मात्रा में, जिस मनुष्य में पिछड़े हुओं के लिये करुणा उत्पन्न हो और उनकी सहायता करने का प्रयत्न बन पड़े तब, वहाँ उतनी ही मात्रा में भगवान की उपस्थिति मानी जा सकती है। निष्ठुर, स्वार्थी और वैयक्तिक लाभ तक सीमित रहने वाला व्यक्ति ईश्वर विमुख ही माना जायेगा, भले ही वह पूजा पाठ के नाम पर कुछ भी तंत्र-मंत्र क्यों न करता रहता हो।

यह करुणा सीमित नहीं रह सकती। सहृदय एवं दयालु व्यक्ति की सेवा भावना निरन्तर बढ़ती है और वह उसी अनुपात से अपने लोकोपयोगी सत्कर्म बढ़ाता चलता है। मत्स्यावतार भगवान की यही प्रेरणा निरन्तर रहती है। जब मनुष्य "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना से प्रेरित होकर सब आत्माओं में अपनी आत्मा को देखता है और विराट् ब्रह्म को इस संसार सागर में सर्वत्र भरा पूरा देखता है, तब उस स्थिति को ईश्वर-दर्शन की स्थिति कहा जा सकता है। मनु को ऐसा ही ईश्वर-दर्शन मत्स्यावतार की कृपा से हुआ था।

प्रलय के समय मनु ने एक नौका में सृष्टि के बीजों को, तथा सप्त ऋषियों को बिठा लिया था। नाव को डूबती देखकर भगवान मत्स्य प्रकट हुये और उन्होंने उसे अपने शरीर में बाँध कर बचाया। संसार सागर में मनुष्य को अन्धकार में धकेल देने वाली, जीवन लक्ष्य का सत्यानाश कर देने वाली, पाप प्रलोभनों की आँधियां आती हैं, उनके कुचक्र में फँस जाने पर जीवन-नौका डूब ही जाती है और पतन रूपी प्रलय में सर्वनाश का मुँह देखना पड़ता है। ऐसे अवसर पर भगवान उसकी नाव को पार लगाते हैं, जो अपनी पात्रता को सहृदयता और परोपकार की कसौटी पर खरा सिद्ध कर चुका है। जिस प्रकार मत्स्य ने मनु की नाव को प्रलय काल में बचाया उसी प्रकार सद्गुण रूपी ऋषियों से युक्त भक्त की जीवन नौका को भी भगवान् अपने शरीर में, सींग में बाँधकर पार कर देते हैं।

मत्स्य पुराण की कथा है कि एक बार हयग्रीव वेदों को चुरा ले गये और समुद्र में जा छिपे। तब भगवान मत्स्य ही उन्हें खोज कर लाये और वेदों का पुनरुद्धार किया। यदि मनुष्य के हृदय में अध्यात्म का मूल करुणा और सेवा की वृत्ति बनी रहे तो धर्मशास्त्र नष्ट हो जाने पर भी उनका पुनरुद्धार हो सकता है। सहृदय अन्तःकरण में से समस्त धर्म मर्यादाओं का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विकास पुनः हो सकता है। इस प्रकार वेदोद्धार की लीला द्वारा भगवान मत्स्य ने जन-साधारण को यह सुझाया है कि यदि धर्म का मूल सद्भाव हृदय में भरा रहे तो समस्त ज्ञान-विज्ञान का स्फुरण अन्तःकरण में से भी होता रह सकता है, भले ही ग्रन्थों से लाभ उठाने का अवसर न मिलता हो।

धर्म की स्थापना और अधर्म का नाश होने का भावानात्मक माध्यम घृणा नहीं करुणा ही हो सकती है। अधर्म, अज्ञान और अभाव से पीड़ित प्राणियों के दुःखों से द्रवित होकर लोक-मंगल की भावना से अपने कर्तव्य की बात सोचना और करना यही धर्म स्थापना की पृष्ठभूमि है। मत्स्यावतार ने मानव-हृदय से मानव-हृदय को इसी तत्व ज्ञान की प्रेरणा दी और धर्म को जीवन में स्थान मिलने की प्रक्रिया प्रारम्भ की। इसी से प्रथम अवतार मत्स्यावतार हुआ।

परोपकारशून्यस्य धिड्मनुष्यस्य जीवितम्।
धन्यास्ते पशवो येषां चर्माप्युपकरिष्यति।।

जो मनुष्य परोपकार से शून्य है उस मनुष्य के जीवन को धिक्कार है। उससे तो वह पशु ही धन्य है जिनका चर्म भी मरने के बाद दूसरों का उपकार करता है।

परोपकारैकधियः स्वसुखाय गतस्पृहाः ।
जगद्धिताय जायन्ते विरलाः साधवो भुवि।।

केवल परोपकार का चिन्तन करने वाले और अपने सुख के लिये स्पृहा से रहित विरले ही साधु संसार के कल्याण के लिये पृथ्वी पर जन्म लेते हैं।

कर्णस्त्वचं शिविर्मांसं जीवंजीमूतवाहनः।
ददौ दधीचिरस्थीनि नास्त्यदेयं महात्मनाम्।।

कर्ण ने अपनी त्वचा का, शिवि ने अपने माँस का, जीमूतवाहन ने अपने जीवन का, तथा दधीचि ने अपनी अस्थियों का भी दान कर दिया था। वस्तुतः महात्माओं के लिये कुछ भी अदेय नही है, वह सब कुछ दान कर देते हैं।

अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं ।
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्।।

वृक्ष अपने सिर से तो तीव्र उष्णता का अनुभव करता है, पर अपने आश्रितों के ताप को छाया से दूर करता है। अर्थात् सत्पुरुष स्वयं को कष्ट उठा कर दूसरों के दुःखों को दूर करते हैं।

परहित बस जिनके मन माहीं ,
तिन कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।।
कोमल चित दीनन्ह पर दाया,
मन बच क्रम मम भगति अमाया।।
पर हित सरिस धर्म नहिं भाई,
पर पीड़ा सम नहीं अधमाई।।
निर्भय सकल पुरान वेद कर,
कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर।।
नर सरीर धरि जे पर पीरा,
करहिं ते सहहिं महा भव भीरा।।
पर उपकार बचन मन काया,
सन्त सहज सुभाउ खगराया।।
सन्त सहहिं दुख पर हित लागी,
पर दुख हेतु असन्त अभागी।।
भूर्ज-तरू सम सन्त कृपाला,
पर हित निति सह बिपति बिसाला।।

दोहा-
विरछा फले न आपको, नदी न पीवे नीर।
पर स्वारथ के कारने, सन्तन धरा शरीर।।
कविरा सोई पीर है, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफिर बे-पीर।।
फल भारन नमि विटप सब, रहे भूमि निअराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसम्पति पाइ।।
दीन दुखी असहाय का, करो सदा उपकार।
जानौ वेद पुराण का, यही एक है सार।।
दया धर्म हिरदै बसै, बोलै अमृत बैन।
तेई ऊँचे जानिए, जिनके नीचे नैन।।
ग्रन्थ पन्थ सब जगत के, बात बतावत तीन।
राम हृदय, मन में दया, तन सेवा में लीन।।

कच्छप अवतार

देव और दानव, निर्धन, दीन हीन, असक्त और अवनत स्थिति में पड़े हुये दिन काट रहें थे। ब्रह्माजी ने उन्हें कहा कि इस सर्व-सुविधा सम्पन्न संसार में रहकर ऐसा अवनत जीवन जीना उचित नहीं । समर्थ और सम्पन्न होकर जीना चाहिये। देव-दानवों को यह उपदेश पसन्द आया, उनने पितामह से इसका उपाय पूछा तो प्रजापति ने कहा- मिल-जुल कर, सहकारिता-पूर्वक श्रम करना ही सर्वांगीण उन्नति का एक मात्र उपाय है। व्यक्तिगत पुरुषार्थ का प्रतिफल व्यक्ति को मिलता है, पर यदि तुम सब लोग सुखी रहना चाहते हो और सर्वत्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सुख-समृद्धि देखना चाहते हो तो उसका मिल-जुल कर सामूहिक पुरुषार्थ करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं।

प्रजापति के परामर्श को कार्यान्वित करने के लिये देव-दानव दोनों ही तैयार हो गये। तब ब्रह्माजी ने उन्हें समुद्र मथ डालने की सलाह दी। उसके लिये मंदराचल पर्वत की रई तथा शेष जी की रस्सी बनाने का उपाय बताया। दोंनों पक्ष उस कार्य में उत्साहपूर्वक जुट गये।

भगवान को सार्वजनिक उन्नति के लिए किये जाने वाले सामूहिक सत्प्रयत्न अत्यधिक प्रिय हैं। ऐसे प्रयोज़नों को सफल बनाने के लिये वे अपना अयाचित सहारा प्रदान करते हैं। समुद्र मथते समय मंदराचल पर्वत जब नीचे को धसकने लगा तो भगवान ने कच्छप (कछुए) का रूप धारण कर उस पर्वत का बोझ अपनी पीठ पर ले लिया और मन्थन कार्य बड़ी सफलतापूर्वक सम्पन्न हो गया।

समुद्र मन्थन से ऐरावत, कामधेनु, धन्वन्तरि, लक्ष्मी, अमृत आदि कितनी ही उपयोगी वस्तुएँ निकलीं। इस उपलब्धि का कारण पारस्परिक सहयोग और अनवरत श्रम ही था। जहाँ यह सत्प्रवृत्तियाँ चल रही होंगी, वहाँ ईश्वर की सहायता मिलनी ही चाहिये। कच्छप भगवान् ने वही किया भी। अपनी पीठ पर समुद्र मन्थन की सारी प्रक्रिया का भार उठा लिया।

अन्यत्र भी ऐसा ही होता है, भगवान किसी न किसी सहायक के रूप में सत्प्रवृत्तियों में सहायक होते हैं। इस प्रकार वे संसार को सुन्दर, समुन्नत एवं सुविकसित बनाने में व्यक्तियों, परिस्थितियों, साधनों या प्रेरणाओं के रूप में धर्म स्थापना का उद्देश्य पूरा करते हैं।

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूति कर्मसु।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्ययैः।।

उठो, जागो और अच्छे कर्म करने में लग जाओ। मन को सर्वदा दृढ़ रक्खो, इसी से कल्याण होगा।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

मनुष्य को चाहिये कि वह अपने कर्त्तव्य कर्मों को करता हुआ ही पूर्ण आयु-पर्यन्त जीने की, अर्थात् अपने को समुन्नत करने की इच्छा करे, उसका कल्याण इसी में है। कर्तव्य कर्म को छोड़ कर भागने में नहीं। कर्म-बन्धन से बचने का यही उपाय है।

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।।

उद्योग से ही काम बनते हैं। मन में सोचने मात्र से नहीं। सोते हुये सिंह के मुँह में कहीं कोई मृग आ सकते हैं ?

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी-
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्यं कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः।।

लक्ष्मी उद्योगी पुरुषसिंह के ही पास आती है। 'भाग्य में जो है, वही मिलेगा' ऐसा कायर पुरुष कहते हैं। अतः भाग्य को छोड़ कर अपनी शक्ति से पौरुष करो। यत्न करने पर भी यदि कार्य सिद्ध नहीं होता, तो तुम्हारा क्या दोष है ?

दोहा-

श्रम ही तें सब मिलत है, बिनु श्रम मिलै न काहि।
सीधी अँगुरी घी जम्यों,क्यों हू निकरै नाहि।।
श्रम अरु बुद्धि प्रभाव ते, लक्ष्मी करत निवास।
ज्यों लों तेल प्रदीप में, तौ लों ज्योति प्रकास।।
संघ शक्ति कलि में कही, विपति बिडारन हार।
पै क्यों अपनाते नहीं, संघ-बद्ध सुविचार।।
रहिमन कबहुँ बड़ेन को, नाहिं गर्व को लेस।
भार धरैं संसार को , तऊ कहावत शेष।।
बहुत निबल मिलि बल करें, करे जु चाहे सोय।
तिनकन की रसरी करी, गंज को बन्धन होय।।
बहुतन कों न विरोधिये, निबल जानि बलवान।
मिलि भखि जायँ पिपीलका, नागहिं नग के मान।।
चलै जु पन्थ पिपीलका, पहुँचे सागर पार।
आलस में बैठो गरुड़, पड़ौ रहै मन मार।।
कलियुग में इक संगठन, सब सिद्धिन को मूल।
पूरै अपनी कामना, सबै रहै अनुकूल।।
निर्बल मिलकर परस्पर, वस्त्र बनाता सूत।
मिलो परस्पर दौड़ कर , हर्षित भारत पूत।।

वाराह-अवतार

असुर हिरण्याक्ष- जिसकी आँखों में केवल स्वर्ण का ही मूल्य था, और संसार की सब विभूतियों को नगण्य गिनता था, अति लालच से प्रेरित होकर धरती को चुरा ले गया अर्थात् भूमि पर अपना स्वामित्व कर बैठा। पुराणों में कथा है कि वह धरती को चुरा ले

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गया। अलंकारिक रूप से यह बात ठीक है कि जो लोग सबके उपयोग के लिये विनिर्मित हुई भूमि आदि वस्तुओं पर अत्यधिक स्वामित्व स्थापित कर लेते हैं वे धरती के चोर ही हैं।

क्षुद्र मनुष्यों की पहचान यही है कि उनके पास वैभव आते ही अहंकार आ घेरता है। वे अपने समान किसी को नहीं समझते। दूसरों का तिरस्कार करने में उन्हें आनन्द आता है। हिरण्याक्ष का भी यही हाल था। इन्द्र, वरुण आदि सभी देवताओं को उसने चुनौती दी और उन्हें डरा कर भगा दिया।

भगवान ने यज्ञ-वाराह के रूप में अवतार लिया। हिरण्याक्ष से युद्ध किया। उसे परास्त कर पृथ्वी पर से उसका अधिकार समाप्त किया। स्वर्ग को सर्वोपरि मानने वाला, जमीन जायदाद के मोह में फँसा हुआ असुर अपने अहंकार समेत सर्वनाश को प्राप्त हुआ।

भगवान के लिये सभी शरीरधारी, सभी प्राणी पुत्रवत प्रिय हैं। उनके लिये कोई नीच-ऊँच या हेय नहीं, इसलिये उन्होंने शूकर की योनि में प्रकट होकर यह बताया कि मनुष्य ही नहीं, सभी प्राणी परमात्मा को समान रूप से प्रिय हैं।

अधर्मी का, अधर्म का शमन करने के लिये ही भगवान अवतार लेते रहे हैं। धर्म का अभिवर्धन उन्हें इतना प्रिय है कि इस पुण्य कार्य की पूर्ति का आनन्द लेने के लिये वे स्वयं शरीर धारण करते हैं। वाराह अवतार का प्रयोजन भी यही था।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यंस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।

सत्य का मुख सुवर्णरूप ज्योतिर्मय ढकने से ढका हुआ है। हे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के पोषक परमात्मन्! उसको तू सत्यधर्म के दर्शन करने के लिये खोल दे जिससे इस वितैष्णारूपी आवरण से दूर होकर हम ब्रह्म का रूप देख सकें।

धर्म और न्याय की रक्षा के लिये संघर्ष करना धर्म का प्रधान चिन्ह है। पूर्वकाल में मनुष्य ही नहीं मनुष्येतर अन्य प्राणी भी इसी मार्ग पर चलते थे।

सीता को हरण कर जब रावण ले चला तो गिद्धराज जटायु ने अपने प्राणों की परवा न करके रावण से युद्ध किया।

गीधराज सुनि आरत बानी,
रघुकुलतिलक नारि पहिचानी।।
धावा क्रोधवन्त खग कैसे,
छूटइ पबि परबत कहुँ जैसे।।
धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा,
सीतहि राखि गीध पुनि फिरा।।
चोचन्ह मारि बिदारेसि देही,
दण्ड एक भइ मुरुछा तेही।।
तब सक्रोध निसिचर खिसियाना,
काढ़ेसि परम कराल कृपाना।।
काटेसि पंख परा खग धरनी,
सुमिर राम करि अद्भुत करनी।।

रीछ वानर भगवान राम के धर्म-रक्षा कार्य का किस प्रकार समर्थन करते हैं और साधन-हीन होते हुये भी अमित बलशाली लंकेश से भिड़ जाते हैं। इसका चित्रण इस प्रकार है:-

जामबन्त बोले दोऊ भाई,
नल नीलहि सब कथा सुनाई।।
राम प्रताप सुमिर मन माँही
करहु सेतु प्रयास कछु नाही।।
धावहु मर्कट बिकट बरूथा,
आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा।।
सुनि कपि भालु चले कर हूहा,
जय रघुवीर प्रताप समूहा।।

दोहा-

अति उतंग गिरि पादप, लीलहिं लेहि उठाइ।
आनि देहि नल नीलहिं, रचहिं ते सेतु बनाइ।।

बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा,
देखि कृपानिधि के मन भावा।।
चली सेन कछु बरनि न जाई,
गर्जहिं मर्कट भट समुदाई।।
सेन सहित उतरें रघुवीरा,
कहि न जाइ कपि जूथप भीरा।।
कौतुक कूद चढ़े कपि लंका,
पैठे रावन भवन असंका।।

नृसिंह-अवतार

हिरण्यकश्यपु की असुरता प्रसिद्ध है - उसने कुविचारों और कुकर्मों से अपना जीवन भर रखा था। जो उसके सम्पर्क या प्रभाव में आते, अधार्मिक उन्हें भी वह अनुपयुक्त प्रेरणाएँ ही देता था। असुरों की यही पहचान है कि वे स्वयं अनुचित कार्य करते हैं और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

दूसरों को भी वैसा ही करने के लिये प्रोत्साहन देते हैं। हिरण्यकश्यपु राजा था, पर उसमें असुरता के सारे दुर्गुण विद्यमान थे।

प्रह्लाद उसका पुत्र था, उसकी आत्मा सजग थी। सजग आत्मा वाले केवल धर्म और कर्तव्य को प्रधानता देते हैं, उन्हें सत्य और न्याय प्रिय होता है, वे विवेक और औचित्य के आधार पर ही किसी बात को स्वीकार करते हैं। प्रह्लाद को आस्तिकता में आस्था थी। वह सदाचरण पूर्ण जीवन जीना चाहता था और वह करना चाहता था-"जो न्याय एवं विवेकयुक्त हो।" हिरण्यकश्यपु चाहता था कि उसका लड़का उसी के कहने में चले, पिता होने के कारण उसकी अनुचित अनीतियुक्त बातों को भी माने और जिस कुमार्ग पर वह चलाना चाहता है, उसी पर चले।

प्रह्लाद ने औचित्य को पिता से भी बढ़ कर माना और कहा- पितृभक्त के नाते आपकी सेवा करना और सुख देना मेरा कर्त्तव्य है, उसे मैं निष्ठापूर्वक पालूँगा। पर अनीति एवं अविवेकयुक्त बात पिता की भी स्वीकार नहीं की जा सकती । आत्मा की पुकार सबसे बड़ी है, उसे किसी भी कारण ठुकराया नहीं जा सकता। पिता के कहने पर भी सत्य या धर्म को नहीं छोड़ा जा सकता । इसलिये मैं आपकी केवल उचित आज्ञाएँ मानूँगा।

युक्तियुक्त मुपादेयं वचनं बालकादपि।
अन्यत्तृणमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मजन्मना।।
अपि पौरुषमादेयं शास्त्रं चेद्युक्ति बोधकम्।
अन्यत्तृण मिव त्याज्यं भाव्यं न्यायैक सेविना।।

बालक के द्वारा कही हुई भी युक्ति-संगत बात को मान लेना चाहिये। यदि अयुक्त एवं औचित्य-रहित बात ब्रह्मा भी कहे तो कभी नहीं स्वीकार करनी चाहिये। साधारण व्यक्ति का भी युक्ति-युक्त लेख आदरणीय होता है और जो युक्ति-हीन हो तो शास्त्र प्रणेता ऋषि का भी वचन माननीय नहीं होता है।

अकृत्यं नैव कर्तव्यं प्राणत्यागेऽप्युपस्थिते।
न च कृत्यं परित्याज्यमेष धर्मः सनातनः।।

प्राण-त्याग अर्थात् मृत्यु भी चाहे सामने उपस्थित हो फिर भी अकृत्य-'न करने योग्य' कर्म कभी नहीं करने चाहिये और चाहे मृत्यु का सामना करना पड़े किन्तु करने योग्य कार्य कभी नहीं छोड़ने चाहिये, यही सनातन धर्म कहलाता है।

हिरण्यकश्यपु क्रुद्ध हो गया। उसने प्रह्लाद को विवश करने के लिये अनेक त्रास दिये- पहाड़ों पर से गिराया, बहिन होलिका के साथ अग्नि में जलाने की चेष्टा की, पर ईश्वर ने उसकी रक्षा की। अन्त में एक लोहे के खम्भे से उसे बाँध दिया गया और मार डालने की तैयारी की जाने लगी।

इस अवसर पर भगवान नृसिंह ने अवतार धारण किया-'मनुष्य के रूप में सिंह का' और हिरण्यकश्यपु को फाड़-चीड़ कर रख दिया। मनुष्यों में दो तरह के व्यक्ति होते हैं। एक कायर, कृपण, दीन, डरपोक, अकर्मण्य इन्हें श्वान-शृंगाल की श्रेणी में गिना जा सकता है। दूसरे होते हैं- न्याय की रक्षा के लिये, धर्म के समर्थन के लिये, अपने प्राणों की भी परवाह न करने वाले। इन्हें कहते हैं-नरसिंह। नर सिंहों को भगवान का अवतार भी कहना चाहिये।

भगवान नरसिंह धर्म रक्षक शूरवीर योद्धाओं, त्यागी और बलिदानियों के रूप में, हर युग में, हर देश में, हर समाज में पाये जाते हैं। प्रह्लाद की रक्षा के लिए भी भगवान किसी नरसिंह के रूप में प्रकट हुये और उनने धर्म के आग्रह पर डटने के कारण उत्पीड़न सहने वाले प्रह्लाद की सहायता की। हिरण्यकश्यपु का उदर विदार कर रख दिया।

धर्म पक्ष को दुर्बल न होने देने के लिये प्रबल पराक्रम करने वाले नरसिंह भगवानों की सदा जय ही होती है अवतारी नरसिंह ने इसे ही प्रत्यक्ष कर दिखाया।

भगवान राम ने असुरों के अन्याय को देखकर उसे नष्ट करने की प्रतिज्ञा की और इस कार्य में सफलता के लिये आशीर्वाद माँगा।

अस्थि समूह देखि रघुराया,
पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया।।
निसिचर निकर सकल मुनि खाए,
सुनि रघुवीर नयन जल छाए।।

दोहा-
निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह।।
अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही,
जेहि प्रकार मारौं मुनि द्रोही।।

सुग्रीव पर बालि का अन्याय देख कर भगवान् को बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ और उनने इस अनीति का प्रतिकार करने की प्रतिज्ञा की।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुनि सेवक दुख दीनदयाला,
फरकि उठीं द्वै भुजा बिसाला ।।
दोहा-
सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान ।
ब्रह्म रुद्र सरनागत, गएँ न उबरहिं प्रान ।।

सेतु बाँधने जैसे न्याय-समर्थक कार्य में तनिक भी सहयोग न करने की समुद्र की नीचता लक्ष्मणजी से सहन नहीं हुई। उन्होंने उसके साथ वह व्यवहार करने का निश्चय किया, जैसा कि इस प्रकृति के व्यक्तियों के साथ किया जाना चाहिए। रामचन्द्रजी ने इस अवसर पर दैववाद के समर्थन में एक शब्द कह दिया तो इस पर लक्ष्मणजी अत्यन्त दुःखी हुए। इस प्रसंग की चर्चा रामायण में इस प्रकार है:-

सखा कही तुम्ह नीक उपाई,
करिअ दैव जों होइ सहाई ।।
मन्त्र न यह लछिमन मन भावा,
राम वचन सुन अति दुख पावा ।।
नाथ दैव कर कवन भरोसा,
सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा ।।
कादर मन कहुँ एक अधारा,
दैव दैव आलसी पुकारा ।।
सुनत बिहँसि बोले रघुवीरा,
ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा ।।
अस कहि प्रभु अनुजहि समझाई,
सिंधु समीप गए रघुराई ।।
प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई,
बैठे पुनि तट दर्भ डसाई ।।
दोहा-
विनय न मानत जलधि जड़, गए तीन दिन बीत ।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति ।।
लछिमन बान सरासन आनू,
सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू ।।
सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती,
सहज कृपन सन सुन्दर नीती ।।
ममतारत सन ग्यान कहानी,
अति लोभी सन बिरति बखानी ।।
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा,
ऊसर बीज बएँ फल जथा ।।
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा,
यह मति लछिमन के मन भावा ।।
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला,
उठी उदधि उर अंतर ज्वाला ।।
मकर उरग झष गन अकुलाने,
जरत जंतु जल निधि जब जाने ।।
कनक थार भरि मनि गन नाना,
बिप्र रूप आयउ तजि माना ।।
दोहा-
काटेहिं पइ कदरी फरइ, कोटि जतन कोउ सींच ।
विनय न मान खगेस सुनु, डाटेहि पइ नव नीच ।।
सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे,
छमहु नाथ सब अवगुन मेरे ।।
प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही,
मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही ।।
देखि राम बल पौरुष भारी,
हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी ।।

बालि-वध के समय भगवान् राम ने कहा-

अनुज बधू भगिनी सुत नारी,
सुनु सठ कन्या सम ए चारी ।।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई,
ताहि बधें कछु पाप न होई ।।

नर-सिंह सदा अनीति एवं अव्यवस्था से संघर्ष करने में अपने जीवन की सफलता मानते हैं। धर्म मार्ग पर चलने वालों के समर्थन में वे कुछ उठा नहीं रखते।

वामन-अवतार

राजा बलि के पास प्रचुर सम्पत्ति जमा थी। तीनों लोकों का अधिपति भी वह था। यों राजा भला और धर्मात्मा था। फिर भी भगवान को यह उचित न लगा कि धन एवं सत्ता का केन्द्रीकरण हो जाय, उसका स्वामित्व थोड़ों तक सीमित रहे । धन और सत्ता जहाँ कहीं भी अधिक मात्रा में केन्द्रित होंगे वहाँ उसका परिणाम दुखदायक ही होगा।

राजा बलि अधार्मिक नहीं था, इसलिए उससे लड़ने या मारने की आवश्यकता न थी। केवल उसके धन का विकेन्द्रीकरण करना था। जब जहाँ जो हथियार आवश्यक हो तब वहाँ उसी का उपयोग उचित होता है। बलि की दान-भावना एवं सहृदयता को उभार कर भी काम चल सकता था । इसलिए इस सरल माध्यम को अपनाना ही भगवान् ने उचित समझा।

भगवान् वामन अंगुल के छोटे बन कर ब्राह्मण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के रूप में राजा बलि के पास जाते हैं। उसे दान का महत्व समझाते हैं। उपलब्ध सामर्थ्य प्रत्येक व्यक्ति के पास भगवान् की अमानत है। जिसे जो कुछ-धन, समय, ज्ञान, बल, प्रभाव, पद आदि गुजारे से अधिक मिला है उस सबका उपयोग ईश्वरीय प्रयोजन के लिए-धर्म रक्षा एवं जनकल्याण के लिए ही होना चाहिए। भगवान् वामन राजा बलि को यह ज्ञान देते हैं और उसे अधिक उदार, दयालु एवं दानी बनने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

राजा बलि ब्राह्मण वामन की मर्मस्पर्शी शिक्षा से प्रभावित होता है और वह पूछता है-मुझे क्या करना चाहिए ? वामन उसे समझाते हैं कि तुम अपना व्यक्तिगत सारा वैभव सार्वजनिक बना दो, ईश्वरीय प्रयोजन के लिए दान कर दो। प्राप्त वैभव का यही सर्वश्रेष्ठ सदुपयोग और प्राप्त विवेक का यही सर्वोत्तम प्रयोग हो सकता है। बलि सहमत हो गया और उसने भगवान् वामन जी के परामर्श से अपना तीनों लोक का राज, प्रचुर धन ही नहीं अपना शरीर भी ईश्वर के अर्पण कर दिया, लोक-हित के लिए लगा दिया।

भगवान् वामन ने साढ़े तीन पग भूमि माँगी। राजा ने उसे दे दिया। तीन पग में तीन लोक का राज्य और आधे पग में बलि का शरीर ले लिया। इस अलंकारिक कथन का निष्कर्ष यही है कि बलि ने अपना सर्वस्व परमार्थ के लिए, लोक-कल्याण के लिए दान कर दिया। भगवान् का राज्य माने धर्म का राज्य, जनता का राज्य । बलि के एकतन्त्री राज्य के स्थान पर प्रजा का राज्य हुआ और राज्य-कोष में संग्रहीत धन-राशि लोक-कल्याण के अगणित आवश्यक कार्यों में लगने से ईश्वरीय प्रयोजन की-धर्म की स्थापना और अधर्म की हानि में सहायता मिली।

भगवान् वामन का अवतार सज्जनता की, सहृदयता की, परमार्थ प्रयोजन की ओर अधिकाधिक प्रेरणा देने के लिए है। जिनमें थोड़ी उदारता पहले से ही विद्यमान है, उन्हें अधिकाधिक त्याग करने, लोक-सेवा में संलग्न होने के लिए जो प्रेरणा दी जाती है, वह वामन-प्रेरणा ही है। यह प्रयास भी धर्म-युद्ध के समान ही महत्वपूर्ण है। भगवान् द्वारा धर्म-स्थापना और अधर्म-नाश के लिए किये जाने वाले अनेक उपायों में से एक महत्वपूर्ण उपाय धर्मप्रवृत्ति वालों की अधिक साहसपूर्ण परमार्थ कर दिखाने की प्रेरणा को प्रबल करना भी है। ब्राह्मण, साधु और सत्पुरुष ऐसा ही प्रोत्साहन अपने सम्पर्क में आने वाले साधन-सम्पन्न मनुष्यों को देकर भगवान् वामन की तरह महान् धर्म-सेवा करते रहते हैं।

कुछ संकुचित लोग ऐसे भी होते हैं जो न कोई साहसपूर्ण त्याग स्वयं करते हैं और न दूसरों को करने देते हैं। उनकी दुर्गति ऐसी ही होती है जैसी बलि को दान न देने के लिए आग्रह करने वाले 'कुल-गुरु' शुक्राचार्य ने अपनी एक आँख गँवा कर पाई। राज्य का संकल्प करते समय उसे रोकने के लिए, शुक्राचार्य जल-पात्र के छेद में जा घुसे थे। जल न निकलने पर बलि ने छिद्र में लकड़ी डाली। फल स्वरूप उसमें सूक्ष्म रूप से छिप कर बैठे हुए शुक्राचार्य की एक आँख फूट गई। सत्कर्म करने वालों को निरुत्साहित करने के लिए किसी भी विचारशील को शुक्राचार्य बन कर अपनी दुर्गति नहीं करानी चाहिए।

पिवन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः ।
नादन्ति सस्यं खलु वारिवाहाः
परोपकाराय सतां विभूतयः ।।

नदियाँ स्वयमेव जल नहीं पी जातीं। वृक्ष स्वयं ही अपने फलों को नहीं खा जाते। बादल कभी भी स्वयं ही धन-धान्य आदि को नहीं खाते। क्योंकि सज्जनों की विभूतियाँ परोपकार के लिए ही होती हैं।

धनानि जीवितञ्चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत ।
सन्निमित्त वरं त्यागो विनाशो नियते सति ।।

बुद्धिमानों को उचित है कि दूसरों के उपकार के लिए धन और जीवन तक को अर्पण कर देना चाहिए क्योंकि दोनों का नाश तो एक दिन होना निश्चित ही है। अतः सत्कर्म में इनका त्याग करना श्रेष्ठ है।

दोहा-
तरुवर फल नहिं खात हैं,
सरवर पियहि न पानि ।
कहि रहीम पर काज हित,
संपति सँवहिं सुजान ।।
देत न प्रभु कछु बिन दिये,
दिये देत यह बात ।
लै तन्दुल धन विप्र को,
तृप्त कियौ यदुनाथ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सर्वस दान दीन्ह सब काहू।
जेहिं पावा राखा नहिं तांहू ।।

दोहा-

प्रगट चारि पद धर्म के, कलि महुँ एक प्रधान ।
जेन केन बिधि दीन्हें, दान करइ कल्यान ।।
बाँट खाय हरि को भजै, तजै सकल अभिमान ।
नारायण ता पुरुष को, उभय लोक कल्यान ।।

परशुराम-अवतार

ब्राह्मण का कर्तव्य जनता की धर्म भावना को जागृत किये रहना है। इसके लिए उसे निरन्तर धर्म-प्रचार करना होता है। किन्तु कई बार अनाचारी शासन के कारण ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं कि ब्राह्मण के सारे प्रयत्न निरर्थक हो जाते हैं। ऐसी परिस्थितियों में ब्राह्मण का धर्म अनाचारी शासन को हटाना भी हो जाता है।

भगवान् परशुराम को यही करना पड़ा। सहस्त्रबाहु उस समय का प्रचण्ड शासक था। कहते हैं कि उसकी दो भुजाऐं सहस्त्र भुजाओं के समान सामर्थ्यवान् थीं। अपने दर्प के आगे वह किसी की शिक्षा नहीं सुनता था। महर्षि जमदग्नि ने उसे सन्मार्ग पर चलने और नीतियुक्त शासन करने के लिए समझाया तो उल्टा क्रुद्ध हो गया और उनको मृत्यु के घाट उतार दिया। तपस्वी परशुराम बालक थे, तो भी उनमें मानवोचित स्वाभिमान एवं 'मन्यु' मौजूद था। वे जानते थे कि अनाचार का प्रतिरोध करना मनुष्य का अत्यन्त पवित्र धर्म-कर्तव्य है। इसलिए उन्होंने निश्चय किया कि वे भले ही स्वल्प साधन सम्पन्न हों, अनीतियुक्त शासन की जड़ काट कर रहेंगे।

अन्याय का सहन करना, पाप से सहयोग करने एवं उसे बढ़ावा देने के समान है। प्रतिरोध न करने से अन्यायी की हिम्मत बढ़ती है और वह दूने-चौगुने साहस के साथ अपनी सफलता पर गर्व करता हुआ अनीति में प्रवृत्त होता है। इसलिए शास्त्र ने अनीति सहने वाले को अनीति करने वाले की तरह ही पापी माना है । परशुरामजी धर्म के इस मर्म को भली प्रकार जानते थे, इसलिये उन्होंने संसार में फैले हुए, अधर्म को दूर करने की भगवान् की प्रतिज्ञा को पालन करने के लिए कार्य करना आरम्भ कर दिया।

भगवान् परशुराम का प्रचण्ड परशु-तेज-दीप्तिमान हुआ। उन्होंने अन्यायी शासन से युद्ध किया समस्त भू-मण्डल में 'धर्म-राज्य' की स्थापना का लक्ष्य पूरा कर दिखाया। पुराण की कथाओं के अनुसार अब तक इक्कीस बार भगवान् परशुराम ने अनीतियुक्त शासन से प्रजा को मुक्त करके 'धर्म-राज्य' की स्थापना की है। अब जब कि बाईसवीं बार फिर संसार में धर्म-राज्य की आवश्यकता अनुभव की जा रही है तो फिर भगवान् परशुराम की आत्मा का अवतरण होगा और वह असंख्य प्रजा को अपना परशु-तेज-देकर उसे सत्य, प्रेम न्याय का धर्म-राज्य स्थापित करने की सामर्थ्य प्रदान करेगी।

परशुरामजी साधनहीन थे, अकेले थे, तो भी उन्होंने सामर्थ्यवान् शत्रुओं का सामना करने में संकोच नहीं किया।

रामायण में प्रसंग आता है कि जब भरत सेना समेत राम से मिलने जा रहे हैं, तब भ्रम-वश गंगा पर नाव चलाने वाले केवट-गण यह मान बैठते हैं कि भरत अनीति-वश राम को मारने जा रहे हैं, अतएव अनीतिवान् से लोहा लेना ही उचित है, चाहे उसमें स्वयं ही नष्ट क्यों न हो जाना पड़े। इस प्रसंग में केवटों की मनोभूमि तथा गति-विधियाँ देखिए-

कारन कवन भरतु बन जाहीं ।
है कछु कपट भाउ मन माहीं ।।
जौं पै जियँ न होति कुटिलाई ।
तौ कत लीन्ह संग कटकाई ।।

दोहा-

अस बिचारि गुहँ ज्ञाति सन, कहेउ सजग सब होहु ।
हथवाँसहु बोरहु तरनि, कीजिअ घाटा रोहु ।।
होहु सँजोइल रोकहु घाटा ।
ठाटहु सकल मरै के ठाटा ।।
सनमुख लोह भरत सन लेहूँ ।
जिअत न सुरसरि उतरन देहूँ ।।
समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा ।
राम काजु छनभंगु सरीरा ।।
भरत भाइ नृपु मैं जन नीचू ।
बड़ें भाग अस पाइअ मीचू ।।
स्वामि काज करिहउँ रन रारी ।
जस धवलिहउँ भुवन दस चारी ।।
तजउ प्रान रघुनाथ निहोरे ।
दुहुँ हाथ मुद मोदक मोरे ।।
साधु समाज न जाकर लेखा ।
राम भगत महुँ जासु न रेखा ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जायँ जिअत जग सो महि भारू ।
जननी जौबन बिटप कुठारू ।।

दोहा-

बिगत बिषाद निषादपति, सबहि बढ़ाइ उछाह ।
सुमिरि राम माँगेउ तुरत, तरकस धनुष सहाह ।।

बेगहि भाइ सजहु सँजोऊ ।
सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ ।।

भलेहिं नाथ सब कहहिं सहरषा ।
एकहिं एक बढ़ावइ करषा ।।

चले निषाद जोहारि जोहारी ।
सूर सकल रन रुचइ रारी ।।

सुमिरि राम पद पंकज पनहीं ।
भाथा बाँधि चढ़ाइन्हि धनहीं ।।

अँगरी पहिरि कूँड़िसिर धरहीं।
फरसा बांस सेल सम करहीं।।

एक कुसल अति ओड़न खाँड़ी ।
कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँड़ी ।।

निज निज साजु समाजु बनाई ।
गुह राउतहि जोहरे जाई ।।

देखि सुभट सब लायक जाने ।
लै लै नाम सकल सनमाने ।।

दोहा-

भाइहु लाबहु धोख जनि, आजु काज बड़ मोहि ।
सुनि सरोष बोले सुभट, बीर अधीर न होहि ।।

राम प्रताप नाथ बल तोरे ।
करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरे ।।

जिय पाउ न पाछें धरहीं ।
रुण्ड मुण्डमय मेदिनि करहीं ।।

दीख निषादराज भल टोलू ।
कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू ।।

धर्मात्मा लोग धर्म रक्षा के लिए-न्याय का समर्थन करने के लिए कड़े से कड़े कष्ट सहने को उद्यत रहते हैं और अपने कठिन मार्ग से तनिक भी विचलित नहीं होते -

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मी: समाविशतु गच्छेतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथ: प्रविचलन्ति पदं न धीरा: ।।

नीति निपुण लोग चाहे निन्दा करें, चाहे स्तुति करें, यथेच्छ लक्ष्मी चाहे प्राप्त हो, चाहे चली जाय, मृत्यु चाहे आज हो जाय या युगान्तरमें होवे, किन्तु धीर लोग न्याय के पथ से विचलित नहीं होते।

राम-अवतार

भगवान् राम ने असुरता को हटा कर देवत्व की अभिवृद्धि के लिए जन्म लिया। ऋषि विश्वामित्र के यज्ञ में विघ्न फैलाने वाले ताड़का, सुबाहु, मारीच आदि असुरों का दमन किया और यज्ञ परम्परा को यथावत् चलने देने के लिए उसकी रक्षा में कुछ उठा न रखा। माता-पिता को प्रसन्न रखने की धर्म मर्यादा को दीप्तिमान बनाये रखने के लिए उन्होंने वन गमन सहर्ष स्वीकार किया। भाई के साथ अन्याय करने वाले बालि को परास्त किया। ऋषियों को त्रास देने वाले खर-दूषण का दमन किया। कपटी मारीच की माया से ठगे जाते रहने वाले लोगों का दुःख दूर किया और अन्त में स्वल्प साधन रहते हुए भी रावण जैसे अधर्मी सत्ताधीश से भिड़ गये। विजय सत्य की ही होती है, इसलिए जीते भगवान् राम ही। ऋषियों का मार्ग कंटकाकीर्ण किये रहने वाले, प्रजा को सताने वाले, जनता के सामने अधार्मिकता की विजय के उदाहरण प्रस्तुत कर उसे कुमार्ग पर चलने का लालच उत्पन्न करने वाले असुरों का दमन आवश्यक था और वही भगवान् राम ने किया भी। जीवन का महत्वपूर्ण भाग उन्होंने अधर्म नाश के संघर्ष में ही लगाया।

पिता के प्रति, माता के प्रति, गुरुजनोंके प्रति, भाइयों के प्रति, मित्रों के प्रति तथा सर्वसाधारण के प्रति एक सज्जन व्यक्ति को किस प्रकार आचरण करना चाहिए, इसका अनुकरणीय उदाहरण अपने उज्ज्वल चरित्र द्वारा प्रस्तुत करके सर्वसाधारण को यह सिखाया कि उन्हें भी अपने कर्तव्यों का पालन किस तरह करना चाहिए। कथनी से नहीं करनी से ही महापुरुष लोक-शिक्षण किया करते हैं, वही भगवान् राम ने किया भी।

भगवान का-राम का राज्य वही है, जिसमें न्याय एवं धर्म का आचरण होता हो। रामचन्द्रजी ने अपने समय में ऐसा ही वातावरण बनाने का प्रयत्न किया था। उनके प्रयत्न से जो परिस्थितियाँ बनीं वे सब के लिए सुख-शान्तिदायक थीं। हमें भी ऐसे ही धर्म-राज्य का वातावरण उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए-

राम राज बैठे त्रैलोका।
हरषित भए गए सब शोका ।।
बयरु न कर काहू सन कोई ।
राम प्रताप बिषमता खोई ।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दोहा-
बरनाश्रम निज निज धरम, निरत वेद पथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि, नहिं भय शोक न रोग ।।
दैहिक दैविक भौतिक तापा ।
राम राज नहिं काहुहि व्यापा ।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती ।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति ।।
चारिउ चरन धर्म जग माहीं ।
पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ।।
राम भगति रत नर अरु नारी ।
सकल परम गति के अधिकारी ।।
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा ।
सब सुन्दर सब विरुज शरीरा ।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।
सब निर्दम्भ धर्मरत गुनी ।
नर अरु नारि चतुर सब गुनी ।।
सब गुनग्य पण्डित सब ग्यानी ।
सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी ।।

दोहा-
राम राज नभगेस सुनु, सचराचर जग माहिं ।
काल कर्म सुभाव गुन, कृत दुःख काहुहि नाहिं ।।
सब उदार सब पर उपकारी ।
विप्र चरन सेवक नर नारी ।।
एक नारि व्रत रत सब झारी ।
ते मन बच क्रम पति हितकारी ।।

दोहा-
दण्ड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज ।
जीतहु मनहिं सुनिअ अस, रामचन्द्र के राज ।।
फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन ।
रहहिं एक सँग जग पञ्चानन ।।
खग मृग सहज बयरु बिसराई ।
सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई ।।

भगवान् राम का चरित्र और स्वभाव अत्यन्त निर्मल था। उनके समीपवर्ती व्यक्ति कितने प्रसन्न रहते थे और वे जहाँ निवास करते थे, वहाँ का वातावरण कितना सुन्दर हो जाता था इसकी चर्चा रामायण में इस प्रकार है :-

राम रूप गुन शीलु सुभाऊ ।
प्रमुदित होइ देखि मुनि राउ ।।

दोहा-
सानुज सीय समेत प्रभु, राजत परन कुटीर ।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु, सोहत धरें शरीर ।।
धरम धुरीन भानुकुल भानू ।
राजा रामु स्वबस भगवानू ।।
सत्यसन्ध पालक श्रुति सेतू ।
राम जनमु जग मंगल हेतू ।।
गुरु पितु मातु वचन अनुसारी ।
खल दलु दलन देव हितकारी ।।
नीति प्रीति परमारथ स्वारथु ।
कोउ न राम सम जान जथारथु ।।
मंगलरूप भयउ बन तब ते ।
कीन्ह निवास रमापति जब ते ।।
आगें रामु लखनु बने पाछें ।
तापस वेष बिराजत काछें ।।
उभय बीच सिय सोहति कैसें ।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसें ।।
सेवक बचन सत्य सब जाने ।
आश्रम निकट जाइ निअराने ।।
भरत दीख वन सैल समाजू ।
मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू ।।
ईति भीति जनु प्रजा दुखारी ।
त्रिविध ताप पीड़ित ग्रह मारी ।।
जाइ सुराज सुदेस सुखारी ।
होहिं भरत गति तेहि अनुहारी ।।
राम बास बन संपति भ्राजा।
सुखी प्रजा जनु पाई सुराजा ।।
सचिव बिरागु बिबेक नरेसू ।
विपिन सुहावन पावन देसू ।।
भट जम नियम सैल रजधानी ।
सांति सुमति सुचि सुन्दर रानी ।।
सकल अंग सम्पन्न सुराऊ ।
राम चरन आश्रित चित चाऊ ।।

दोहा-
नीति मोह महिपालु दल, सहित विवेक भुआलु ।
करत अकंटक राजु पुर, सुख सम्पदा सुकालु ।।
ऊर्ध्व उठे फिर ना गिरै यही मनुज को कर्म ।
औरन लै ऊपर उठै, जाते बड़ौ न धर्म ।।

कृष्ण-अवतार

श्रीकृष्ण के रूप में अवतार लेकर भगवान् ने उस युग की फैली हुई अनीति एवं मूढ़ता को परास्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

किया। अनीति बरतने वाले-तृणासुर, अघासुर,वत्सासुर, पूतना, कालिया नाग आदि धूर्तों से उन्होंने बचपन में ही टक्कर ली। थोड़े बड़े होने पर अन्यायी शासक कंस से भिड़ गये और कुराज्य मिटा कर सुराज्य की स्थापना की। निरीह प्रजा को अपना सारा दूध, घी धनिकों और सरदारों को देना पड़ता था। गोपियों को उनके आगे न झुकने और अपना आवश्यक भोजन स्वयं ही रखने के लिए उन्होंने सत्याग्रह भी किया। उनका रास्ता रोका और सत्ताधारियों से न डरने का साहस उत्पन्न किया।

बड़े हुए तो अन्याय को समझाने-बुझाने से हटते न देखकर उन्होंने महाभारत की योजना की और स्वल्प साधन सम्पन्न पांच पाण्डवों को सत्ताधारी सौ कौरवों के समक्ष न्याय की मांग को लेकर अड़ जाने के लिए खंड़ा कर दिया। अठारह अक्षौहिणी सेंना और अगणित सुभट मर गये, पर इससे क्या ? न्याय की रक्षा के लिए जो भी कीमत चुकानी पड़े, कम है।

उन दिनों भारत छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटा हुआ पड़ा था। छोटे-छोटे सामन्त अपनी अलग-अलग सत्ता बनाये रखने के लिए देश को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटे हुए थे-एकता की शक्ति से परिचित होते हुए भी वे अपने संकुचित स्वार्थों के लिए प्रथकतावाद को ही प्रश्रय देते थे। इन प्रथकतावादियों के विनाश की योजना बनाकर भगवान् ने महाभारत युद्ध कराया और खण्ड-भारत को एक परिपूर्ण राज्य-महाभारत बना दिया। इसके लिए युद्ध के रूप में भारी कीमत चुकानी पड़ी, पर कीमत चुकाये बिना कीमती चीज मिलती भी कहाँ है ?

धर्म-अभिवर्धन के लिए जीवित रहने वाले ब्राह्मणों में श्रेष्ठ तपस्वी सुदामा को उनने विपुल साधन प्रदान किये, ताकि वह संसार का अधिक भला करने में समर्थ हो सके।

ग्वाल-बालों की सहायता से उन्होंने गोवर्द्धन जैसा महान् पर्वत उंगली पर उठा लिया। गौ ही तो मनुष्य की सच्ची सम्पत्ति है। उसका संबर्धन इतना महत्वपूर्ण समझा गया कि इस कार्य को करने के लिए भगवान् ने स्वयं वह कार्य किया। गोऐं चराईं गोप बने और गौ-संबर्धन-गोवर्धन जैसे महान् और कठिन पर्वत को उंगली पर उठाने जैसा सरल बना कर दिखा दिया।

इन्द्र तक से इन्होंने टक्कर ली और ब्रज-भूमि को जल प्रलय से बचा लिया। गौ-वत्स चुराने वाले ब्रह्मा तक को मुँह की खाने के लिए विवश किया। अन्यायी जरासंध का मद चूर्ण किया।

कैदी माता-पिता की गोद में बन्दी-गृह में उत्पन्न होने वाला, दूसरों के घर पलने वाला, गोप-परिवार में जन्मने वाला बालक भी अपने आत्म-बल और पुरुषार्थ से कितना कुछ कर सकता है ! भगवान् कृष्ण ने अपना उदाहरण प्रस्तुत करके उन लोगों का मनोबल बढ़ाया, जो छोटी या साधनहीन परिस्थितियों में जन्मे या पड़े होने के कारण ऊँचे उठने की आशा ही छोड़ बैठे हैं। अर्जुन के कोचवान बन कर उनने बताया कि संसार में कोई काम छोटा नहीं है और लोक-कल्याण के लिए-धर्म-रक्षा के लिए छोटे दीखने वाले कार्यों को भी प्रसन्नतापूर्वक करना चाहिए।

धर्म-राज्य स्थापित करने के लिए भगवान् कृष्ण ने अपना सारा जीवन लगाया। धर्म ही इस संसार का सार है मनुष्य जाति की प्रगति और इस निखल विश्व की शान्ति इसी पर निर्भर है।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ।।

यदि धर्म का निरादर करोगे तो धर्म ही नष्ट कर देता है, मार देता है और धर्म की रक्षा करने से वह धर्म ही हमारी रक्षा करता है, इसलिए धर्म को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। धर्म को कभी मरा न समझो किन्तु सर्वदा धर्म का पालन करके उसकी रक्षा करनी चाहिए।

धर्मो माता पिता चैव धर्मो बन्धुः सुहृत्तथा ।
धर्म स्वर्गस्य सोपानं धर्मात्स्वर्गमवाप्यते ।।

धर्म ही हम सबका माता-पिता है और धर्म ही बन्धु तथा परम मित्र है और धर्म ही स्वर्ग की सीढ़ी है, धर्म की सीढ़ी पर चलते हुए ही, धर्म का आचरण करते हुए ही हम स्वर्ग (सुख) प्राप्त कर सकते हैं।

अकृत्यं नैव कर्त्तव्यं प्राणत्यागेऽप्युपस्थिते ।
न च कृत्यं परित्याज्यमेष धर्मः सनातनः ।।

मृत्यु-काल के समुपस्थित होने पर भी जो अकृत्य अर्थात् न करने योग्य कार्य हैं, उन्हें कभी नहीं करना चाहिए। मृत्यु का सामना करते हुए भी कर्त्तव्य 'सत्कार्य' सर्वदा करते रहना चाहिए यही सनातन (सदा से चला आने वाला) धर्म है।

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम् ।
धर्मेण लभते सर्व धर्मसारमिदं जगत् ।।

धर्म से अर्थ उत्पन्न होता है, धर्म से सुख होता है, धर्म से मनुष्य सब कुछ प्राप्त करता है, धर्म ही जगत का सार है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थञ्च चिन्तयेत् ।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ।।

बुद्धिमान् मनुष्य अजर-अमर की तरह विद्या का और अर्थ का चिन्तन करें। किन्तु धर्म का सदा यह विचार कर पालन करें कि मृत्यु ने मेरे केश पकड़े हुए हैं, अर्थात् मृत्यु का भय करते हुए सदा धर्म का आचरण करें।

उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं किमद्य सुकृतं कृतम् ।
आयुषः खण्डमादाय रविरस्तं गमिष्यति ।।

मनुष्य को प्रतिदिन प्रातःकाल उठते ही यह सोचना चाहिए कि मुझे आज क्या सुकर्म करना है, क्या सत्कर्म मैंने किया है ? क्योंकि आयु के एक भाग को लेकर आज भी सूर्य अस्त हो जायेगा । प्रतिदिन मनुष्य की आयु का एक भाग क्षीण होता रहता है।

दोहा-
नहिं चाहौ साम्राज्य सुख, नहिं स्वर्ग निर्वान ।
जन्म-जन्म निज धर्म पै, हरषि चढ़ावौ प्रान ।।

सुपात्र मित्र की सत्कार्य में सहायता करने की परम्परा श्रीकृष्णजी ने निभाई। मित्रता के कर्तव्य रामायण में इस प्रकार हैं :-

जे न मित्र दुःख होहि दुःखारी ।
तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी ।।
निज दुःख गिरि सम रज के जाना ।
मित्रक दुःख रज मेरु समाना ।।
जिनके अस मति सहज न आई ।
ते सठ कत हठि करत मिताई ।।
कुपथ निवारि सुपन्थ चलावा ।
गुन प्रकटें अवगुनन्हि दुरावा ।।
देत लेत मन संक न धरई ।
बल अनुमान सदा हित करई ।।
विपति काल कर सत-गुन नेहा ।
श्रुति कह सन्त मित्र गुन एहा ।।
आगे कह मृदु बचन बनाई ।
पाछे अनहित मन कुटिलाई ।।
जाकर चित अहि गति सम भाई ।
अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई ।।

दोहा-
मित्र के अवगुन मित्र कहु, पर पहँ भाखत नाहिं ।
कूप छाँह जिमि आपनी, राखत आपुहि माँहि ।।
जे गरीब सों हित करें, धनि रहीम वे लोग ।
कहा सुदामा वापुरौ, कृष्ण मिताई योग ।।

बुद्ध अवतार

भगवान् अधर्म का नाश करने के लिए अवतरित होते हैं। इसके लिए जब युद्ध की-दुष्टों के दमन की आवश्यकता होती है तब उन्हें वैसा करना पड़ता है। व्यक्तियों के व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त कलुषित हो जांय और उनके सुधरने की आशा जाती रहे तो 'दण्ड' के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं रहता। दण्ड भय से पशु-बुद्धि के मूढ़ लोग आसानी से सुधर भी जाते हैं, पर केवल यह एक ही उपाय सुधार का नहीं है। इसलिए भगवान् सदा दुष्ट-दमन ही नहीं करते, उनका प्रयोजन तो दुष्टता का दमन रहता है। इसलिए आवश्यकतानुसार वे धर्म स्थापना के रचनात्मक कार्यों का कार्यक्रम बना कर भी अवतीर्ण होते हैं। भगवान् बुद्ध का अवतार इसी प्रयोजन के लिए हुआ है।

आज से दो हजार वर्ष पूर्व स्वेच्छाचार एवं उच्छृंखलता की भ्रष्ट भावनाएं चारों ओर फैल गई थीं। लोग शास्त्र और धर्म को खींच-तान कर अपने स्वार्थों के समर्थन में प्रयुक्त कर रहे थे। दिनभर बुरे काम करते थे और छोटे-से यज्ञादि कर्म-काण्ड करके पापों के फल से छुटकारा पाने की मिथ्या आत्म-तुष्टि कर लेते थे। जब पाप का फल ही नहीं भोगना है, तो फिर पाप के द्वारा मिलने वाले आकर्षक लाभों को क्यों छोड़ा जाय ? जनता में यही भावना घर कर गई थी। बाहर से धर्माचरण का ढोंग खूब बढ़ चढ़ गया था, पर उन धर्मध्वजी लोगों ने अपने और अपने अनुयायियों के आचरण एवं विचारों को निम्न स्तर का कलुषित बना लिया था।

मद्यं मासं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च ।
एते पञ्च मकारास्तु मोक्षदा हि युगे-युगे ।।

इस मान्यता के अनुसार लोगों ने अपने वाम-मार्गी जीवन ढाल लिये थे। मद्य, मांस, मछली, पैसा और वासना जैसी हेय वस्तुऐं उनका जीवन लक्ष्य बन गई थीं। ऐसी परिस्थितियों में भगवान् बुद्ध जन्मे। उन्हें इन परिस्थितियों को-मान्यताओं और विचारों को उलटना था। इसलिए सबसे पहला काम उन्हें आत्मिक पवित्रता, आन्तरिक उत्कृष्टता एवं चरित्र की उज्ज्वलता सम्पादन करने का करना पड़ा, इस दिशा में जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जितना सफल हो सकता है, उसे इतनी ही सफलता धर्म प्रचार में-जन मानस को बदलने में मिलती है। भगवान् बुद्ध ने युवावस्था में ही कठोर तपश्चर्या आरम्भ की और समुचित आत्म-बल संग्रह कर लिया।

उन दिनों प्रचलित अनाचार का उनने डट कर विरोध किया। यज्ञों में होने वाली पशु-बलि को उन्होंने धर्म को कलंकित करने वाला जघन्य पाप बतलाया। स्वार्थी धर्मध्वजियों ने जब कहा कि यह तो वेद में लिखा है, तो उन ने वेद को सत्य मानने से इन्कार कर दिया। जब यह कहा गया कि वेद तो भगवान् ने बनाये हैं, इसलिए जो वेद में लिखा है सो ठीक मानना चाहिए तो बुद्ध ने भगवान् को मानने से इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा-सत्य, न्याय, प्रेम, विवेक जैसे आदर्शों से बढ़ कर और कोई ईश्वर, धर्म, वेद, यज्ञ नहीं हो सकता। जो भी मानवीय आदर्शों के-सदाचरण के प्रतिकूल बात कहता हो वह सर्वथा अमान्य है फिर चाहे वह कोई भी क्यों न हो। बुद्ध ने वेद शास्त्र पढ़े न थे, इसलिए वे उनके सही अर्थ बता कर पण्डितों को परास्त तो न कर सके पर उनने इस सारे झंझट से बचने के लिए एक ही तथ्य का प्रतिपादन किया कि 'सदाचरण' मुख्य है। शास्त्र व्यवस्था इसके समर्थन के लिए है, यदि वह इससे प्रतिकूल चलती हो तो शास्त्र को, सम्प्रदाय को-परम्परा को बहिष्कृत करके केवल सत्य, प्रेम और न्याय के आधार पर उचित-अनुचित का निर्णय किया जाना चाहिए।

भगवान् बुद्ध बौद्धिक-क्रान्ति के प्रतिष्ठापनकर्ता हैं। उस समय की भ्रान्त धारणाओं के उन्मूलन में उनने अपना समस्त आत्म-बल लगाया। हिंसा के स्थान पर अहिंसा को, मूढ़ता के स्थान पर विवेक को, भोग के स्थान पर त्याग को उन्होंने प्रधानता दी। विवेक को सर्वोपरि बताया। जाति और लिंग के आधार पर प्रचलित असमानता का उन्होंने खण्डन किया और सदाचरण एवं परोपकार को, आत्म-कल्याण के लक्ष्य को प्राप्त करने का एक प्रधान उपाय बताया।

भगवान् बुद्ध द्वारा प्रतिपादित सत्य से तथा उनके उज्ज्वल चरित्र से प्रभावित होकर अंगुलिमाल जैसे दुर्दान्त दस्यु, अम्बपाली जैसी चरित्रहीन नारियों ने भी बौद्ध धर्म स्वीकार किया और वे भिक्षु बन कर धर्म-संस्थापन के पुनीत कार्य में लग गये। सहस्रों भावनाशील नर-नारियों ने संसार में धर्म-संस्थापन के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करने की प्रतिज्ञाऐं लीं और वे भिक्षु-भिक्षुणी बन कर संसार के कौने-कौने में बौद्धिक-क्रान्ति का सन्देश लेकर बिखर गये। पीछे अशोक आदि कई राजाओं ने भी अपनी शक्ति बुद्ध-धर्म के प्रचार में लगाई।

बुद्धं शरणंगच्छामि (बुद्धि की शरण में जाता हूँ) धर्मं शरणं गच्छामि (धर्म की शरण में जाता हूँ) संघ शरणं गच्छामि (संघ की शरण में जाता हूँ) यह तीन प्रतिज्ञाऐं बुद्ध धर्म की हैं। मनुष्य को विवेक का आश्रय लेना चाहिए, धर्म का आश्रय लेना चाहिए और संगठन का आश्रय लेना चाहिए। इन तीन सन्देशों से जन-भावना को ओत-प्रेत करने, भगवान् बुद्ध आये थे। अधर्म का नाश और धर्म की संस्थापन के लिए ऐसी ही जन-भावना का प्रसार अभीष्ट भी है।

बुद्ध अवतार विवेक का-बौद्धिक-क्रांति का अवतार है। उसका सन्देश यह है कि केवल वही स्वीकार करना चाहिए जो तर्क एवं विवेक संगत हो। इस तथ्य की पुष्टि के लिए उपलब्ध अगणित प्रमाणों में से कुछ नीचे हैं-

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ।।

किसी काम को बिना विचारे न करे, अविवेक आपत्तियों का महान् कारण है। जो बिना विचार पूर्वक कार्य करता है, उसको गुणों में लुब्ध सम्पत्तियाँ स्वयं सेवन करती हैं ।

ज्ञानवानेव सुखवान् ज्ञानवानेव जीवति ।
ज्ञानवानेव बलवास्त त्माज्ज्ञानमयो भव ।।

ज्ञान वाला व्यक्ति ही सुखी होता है, ज्ञान सम्पन्न ही संसार में वस्तुतः जीवित रहता है। ज्ञानी ही बलवान् होता है, इसलिए ज्ञानी अवश्य बनना चाहिए।

संसारोत्तरणे जन्तोरुपायो ज्ञानमेव हि ।
तपो दानं तथा तीर्थमनुपायाः प्रकीर्त्तिताः ।।

इस संसार सागर से पार होने का एक मात्र उपाय ज्ञान ही होता है। तीर्थ, दान और तप आदि उपाय नहीं हैं।

ज्ञानमेव परं ब्रह्म ज्ञानं बन्धाय चेष्यते ।
ज्ञानात्मकामिदं विश्वं न ज्ञानात् विद्यते परम् ।।

ब्रह्म भी ज्ञान स्वरूप है और उसकी प्राप्ति भी ज्ञान द्वारा ही होती है। विपरीत ज्ञान से ही भवबन्धन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में बुद्ध होते हैं, यह भी एक प्रकार प्रतिकूल ज्ञान ही तो है। इस संसार में जो कुछ भी है, वह सब ज्ञानात्मक ही है। अत: यह सिद्धान्त है कि ज्ञान से परे अन्य कुछ भी नहीं है।

ज्ञानान्निर्दुःखतामेति ज्ञानादज्ञान संक्षय: ।
ज्ञानादेव परासिद्धिर्नान्यस्माद्राम ! वस्तुत: ।।

हे राम ! ज्ञान से ही दु:खों की आत्यन्तिक निवृति होती है। ज्ञान बल के द्वारा ही अज्ञानान्धकार का निवारण होता है। ज्ञान से ही परमोत्कृष्ट सिद्धि प्राप्त होती है, अन्य किसी भी साधन या उपाय से नहीं हो सकती है।

दोहा-

विद्या विनय विवेक रति, रीति जासु उर होइ ।
राम परायन जो सदा, आपद ताहि न होइ ।।
सचिव वैद गुरु तीन जौं, प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धर्म तन तीन कर, होइ बेगिहीं नास ।।
सुमति कुमति सब कें उर रहहीं ।
नाथ पुरान निगम अस कहहीं ।।
जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना।
जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना ।।
तव उर कुमति बसी विपरीता।
हित अनहित मानहुं रिपु प्रीता ।।
अनुचित उचित काजु.किछु होऊ ।
समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ ।।
सहसा करि पाछें पछिताहीं।
कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं ।।
अहह कंत कृत राम बिरोधा।
काल बिबस मन उपज न बोधा ।।
काल दण्ड गहि काहु न मारा।
हरइ धर्म बल बुद्धि विचारा ।।
निकट काल जेहि आवत साईं।
तेहि भ्रम होई तुम्हारिहि नाईं ।।
भयउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं।
ग्यान उदयँ जिमि संसय जाहीं ।।
आरत कहहिं बिचारि न काऊ।
सूझ जुआरिहि आपन दाऊ ।।
मारग चलहु पयादेहि पाएँ।
ज्योतिष झूठ हमारे भाएँ ।।

चौबीस अवतार

इन प्रख्यात अवतारों के अतिरिक्त भगवान के और भी अनेक अवतार अपने चरित्र द्वारा लोक में अनुकरणीय परम्पराऐं स्थापित करने, धर्म के लिए कष्ट सहने की प्रेरणा देने तथा धर्म स्थापना के लिए प्राणपण से प्रयत्न करने में संलग्न होने की प्रवृत्ति को पनपाने के लिए होते हैं। यों इसमार्ग पर चलने वाला प्रत्येक व्यक्ति भगवान का अवतार है। किन्तु जिन्होंने इस दिशा में विशेष प्रयत्न किया है वे विशेष अवतार माने जायँगे।

भगवान् धन्वन्तरि ने प्राणियों को निरोग बनाने, उनकी रोग निवृत्ति करने के लिए अपना जीवन उत्सर्ग किया। अमृत का घट हाथ में लेकर वे आये और कष्ट पीड़ितों के दु:ख दूर करने के लिए निरन्तर श्रम करते रहे। यह भगवान के समान ही दयालुता है। जो जितना दयालु है उसे उतना ही ईश्वर के समकक्ष समझना चाहिए।

समुद्र मन्थन के बाद अमृत के बंटवारे को लेकर देवता और असुरों में जो झगड़ा खड़ा हुआ उसे न्यायोचित ढंग से सुलझाने के लिए भगवान ने मोहिनी रूप धारण किया और जिसके लिए जो जितनी मात्रा में उचित था उसे वह वस्तु उतनी मात्रा में देदी। न्याय इसी में नहीं कि बिना पात्रता के व्यक्तियों का गणना कर उपयोगी वस्तुऐं सब को बराबर बाँट दी जाँय, वरन् न्याय का मार्ग यह है कि जो जिस वस्तु का जितना अच्छा उपयोग कर सके उसे वह वस्तु उतनी अधिक मात्रा में मिले। न्यायानुकूल बंटवारे का यह प्रतिपादन मोहिनी अवतार धारण कर भगवान ने किया।

भगवान ने व्यास जी का रूप धारण कर सत्साहित्य की रचना की, धर्मग्रन्थ बनाये, जनता को धर्म मार्ग पर चलने की प्रेरणा की। व्यास जी वक्ता भी थे। उन्होंने अपनी वाणी और लेखनी द्वारा जन जागरण के लिए धर्म उत्कर्ष के लिए जो अनवरत प्रयत्न किया इसके कारण महर्षि द्वैपायन व्यास को भी अवतार माना गया है।

देवर्षि नारद संसार में सद्ज्ञान का विस्तार करने के लिये निरन्तर भ्रमण करते रहे। उन्होंने असंख्य मनुष्यों को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

लगाया, भगवान का धर्म का सन्देश घर-घर पहुँचाया। उनके इस प्रचार-कार्य से संसार में जो सद्भावनाऐं बढ़ीं उसके कारण नारद जी को भी अवतार कहा जाता है।

हंसावतार का नीर क्षीर विवेक प्रसिद्ध है। जल और दूध को अलग-अलग करने का हंस का गुण प्रसिद्ध है। भगवान ने हंस रूप धारण करके जहाँ ऋषियों और देवताओं को सद्ज्ञान का उपदेश दिया है वहाँ उन्हें उचित, अनुचित का ध्यान रखने और केवल उचित को ही ग्रहण करने का निर्देश किया है। ऐसी शिक्षा देने वाले को भगवान के अवतार के रूप में मान्यता देकर तत्वदर्शियों ने उचित ही किया है।

अहिंसा के महान प्रसारक महर्षि ऋषभ देव ने मनुष्यों को हिंसा और द्वेष के मार्ग से विरत कर अहिंसा और प्रेम के मार्ग पर चलाया। इसलिए वे भी चौबीस अवतारों में से एक गिने गए।

सनक-सनन्दन, सनत्कुमार ऋषियों को अवतार माना जाता है। प्रत्येक छोटी बड़ी घटना का बारीकी से अवलोकन कर उसमें से मिलने वाली शिक्षा को महर्षि दत्तात्रेय ने अपने जीवन में धारण किया। उन्होंने साधारण पशु पक्षियों और कीट पतंगों तक को अपना गुरु बनाया। दत्तात्रेय के चौबीस गुरु प्रसिद्ध हैं। दूसरों को समुचित मान देने, नम्र और विनयी होने, निरन्तर ज्ञान का संचय करते रहने की उदात्त भावनाओं का ओत-प्रोत जीवन क्रम बनाकर संसार के कल्याण में संलग्न रहने के कारण दत्तात्रेय ऋषि भगवान का अवतार कहलाये।

नर-नारायण, चक्रपाणि, कार्तिक, हयग्रीव, पृथु आदि की गणना भी चौबीस अवतारों में है क्योंकि इनकी व्यक्तिगत पवित्रता और परोपकारपूर्ण कार्य-पद्धति सर्वसाधारण के लिए अनुकरणीय एवं प्रेरणा प्रदान करने वाली है।

यज्ञ को भी भगवान का अवतार माना गया है। यद्यपि अन्य अवतारों की तरह उन्होंने मनुष्य जैसी लीला नहीं की है। फिर भी परमार्थ का, सत्कर्मों का, त्याग, तप का प्रतीक होने के काम, उपलब्ध वस्तुओं में हमें अपने लिए कुछ भी न रख कर सब कुछ वितरण कर देने के कारण, सदा तेजस्वी, प्रकाशवान, ज्वलनशील रहने के कारण, से सम्पर्क में आये उसे अपने समान. ही बना लेने के कारण, प्राणियों के रोग शोक दूर करने के कारण यज्ञ को भगवान का प्रत्यक्ष स्वरूप ही माना गया है।

पुराण शास्त्रों की मान्यता के अनुसार पृथ्वी पर १० प्रमुख और १४ गौण इस प्रकार कुल २४ अवतार हुए हैं। उनका संक्षेप में उल्लेख ऊपर किया गया है। इनके चरित्रों की गाथाऐं पुराणों में विस्तारपूर्वक वर्णित हैं। जिनका निष्कर्ष इतना ही है कि सत्कर्मों में प्रवृत्त रहने, सद्भावनाऐं बढ़ाने, अनीति से संघर्ष करने और धर्म अभिवृद्धि के लिए प्रयत्न करने के कारण ही उन्हें अवतार माना गया। जो भी इस प्रकार अपनी जीवन दिशा बना सके, वह आंशिक रूप से अवतारी कहलाने का अधिकारी बन सकेगा।

अन्य देवताओं के चरित्र पर दृष्टिपात करने से भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि उनके सामने संसार में से दोष, दुर्गुणों, अनीति एवं अधर्म का शमन कर सत्यं शिवं सुन्दरम् की स्थापना करना, धर्मराज्य स्थापित करना ही लक्ष्य था। देवता और असुरों में निरन्तर संघर्ष एवं युद्ध होते रहने की गाथाऐं पुराणों के पन्ने-पन्ने पर भरी पड़ी हैं। यद्यपि अपनी दुष्टता के कारण आरम्भ में विजयी हुए हैं, पर अन्त में जीत देवताओं की ही होती रही है।

देवताओं की सम्मिलित शक्ति को एकत्रित कर प्रजापति ने दुर्गा का अवतरण किया और उसने शुम्भ, निशुम्भ, महिषासुर आदि का दमन किया। स्वामि कार्तिकेय ने असुरों को परास्त किया। इन्द्र ने वृत्रासुर आदि पर विजय पाई। इसी प्रकार अन्य देवताओं ने भी असुरों से संघर्ष किया है। अधर्म का नाश एवं धर्म की स्थापना ही संघर्षों का प्रयोजन है।

आज की परिस्थितियों में दुष्ट मनुष्यों के साथ भी व्यक्तिगत रूप मरने मारने का युद्ध नहीं हो सकता। यह अब सरकार के हाथ में चला गया है। अब अनीति के विरुद्ध संघर्ष के दूसरे तरीके प्रयुक्त होते हैं। अनीति करने वालों से असहयोग,विरोध और मर्यादित संघर्ष यह आज की स्थिति में संभव है। मिल-जुल कर संगठित रूप से अन्याय का विरोध किया जाय तो अधर्म के शमन में अधिक सहायता मिलती है।

अविद्या, बीमारी, गरीबी, मूढ़ता, अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता, कायरता, भीरुता, स्वार्थपरता, संकीर्णता, उच्छृंखलता, व्यसन, आदि के रूप में आज असुरता

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जन-जन में किसी न किसी रूप में प्रविष्ट हो गई हैं ।साथ संघर्ष प्राचीन काल की अपेक्षा अधिक कठिन है। उन दिनों सारा समाज स्वच्छ था। अनीति करने वाले व्यक्ति थोड़े से होते थे और श्वेत वस्त्र पर काले धब्बे की तरह वे आसानी से पकड़ में आ जाते थे। विरुद्ध राजदण्ड का प्रयोग आसानी से हो जाता था। पर अब तो स्थिति बदल गई हैं। अनैतिकता व्यापक लोगों के मन में घर करती चली जा रही है। असंयम, आलस, अज्ञान ने अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया है। इससे हमारा वैयक्तिक, सामाजिक, पारिवारिक जीवन दुःख दारिद्र से ग्रस्त हो गया है। असुरता ने, छद्म वेश बनाकर मानव जीवन में गहराई तक घुस जाने का उपक्रम बना लिया है। फल परिस्थितियाँ दिन-दिन अधिक विपन्न होती चली जा रही हैं।

आज अधर्म की असुरता किसी व्यक्ति विशेष तक सीमित नहीं रही है, उसने दुर्गुणों का रूप धारण कर मानस में अपनी जड़ें गहराई तक जमा ली हैं। अब उन जड़ों के उखाड़ने के लिए धर्म युद्ध करना होगा। यह युद्ध किसी व्यक्ति विशेष के विरुद्ध न होकर दुष्प्रवृत्तियों के विरुद्ध है। इसलिए इस धर्म युद्ध का क्षेत्र भी पहले से व्यापक होने के कारण उसकी मोर्चा बंदी भी अधिक तत्परतापूर्वक ही करनी पड़ेगी।

अधर्म को परास्त करने और धर्म की स्थापना करने का ईश्वरीय प्रयोजन इसमें से प्रत्येक कार्य को करना है। भगवान गीता के माध्यम से हमें इसी के लिए भर्त्सना पूर्ण चुभते हुए शब्दों में ललकारते हैं। गीता के प्रथम श्लोक में उसी पृष्ठ भूमि की चर्चा है अर्जुन की तरह भगवान के प्रिय सखा और भक्त बनने के लिए हमें गाण्डीव को टंकारते हुए, पाँचजन्य को बजाते हुए धर्म युद्ध की तैयारी में संलग्न होना चाहिए।

भारतीय इतिहास का पन्ना-पन्ना ऐसे बलिदानी वीरों, धर्मात्माओं, महापुरुषों, रत्नों से भरा पड़ा है, जिनने धर्म की स्थापना और अधर्म का विनाश करने के लिए हँसते-हँसते बड़े से बड़ा त्याग करने में, प्राण देने में भी संकोच न किया। ऐसे ही भगवान के अवतार धर्म रक्षा का महान उद्देश्य पूर्ण करते हुए संसार की श्रेष्ठ परम्परा एवं सुख शान्ति का संरक्षण कर रहे हैं।

दूसरा-प्रवचन

पुरुषार्थ और संघर्ष

क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ।।

-अध्याय २ श्लोक ३

हे अर्जुन कायर मत बन, यह तेरे लिए उचित नहीं। हृदय की तुच्छ-सी दुर्बलता को त्याग और युद्ध के लिए उठ खड़ा हो।

जीवन एवं संसार को अधिक स्वच्छ, अधिक प्रखर एवं अधिक समुन्नत बनाने के लिए शौर्य की एवं सुधारक्रम निरन्तर जारी रखने की अनिवार्य रूप से आवश्यकता है। जब इसमें शिथिलता उत्पन्न हो जाती है, तो गन्दगी, कुरूपता, विकृति एवं विद्रुपता उत्पन्न होने लगता है। धीरे-धीरे वे बढ़ते-बढ़ते सत्यानाशी विभीषिका का रूप धारण कर लेती हैं। अस्तु अवांछनीय तत्वों के विरुद्ध संघर्ष निरन्तर जारी रहना चाहिए।

शरीर में रोज पसीना निकलता है, दाँतों पर रोज मैल जमता है, कपड़े रोज मैले होते हैं, कमरे में रोज धूल जमती है, यदि इन्हें नित्य ही साफ न किया जाय तो गन्दगी का कोई ठिकाना न रहे। मल-मूत्र को दूर न हटाया जाय तो अपने निवास स्थान पर दुर्गन्ध का अम्बार लग जाय। नित्य स्वाध्याय या सत्संग द्वारा मन में उत्पन्न होने वाले कुविचारों एवं कुसंस्कारों का शमन न किया जाय तो मनोभूमि कषाय-कल्मषों से कलुषित हुए बिना नहीं रहती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन में नित नई पेचीदगी, उलझनें, अड़चनें, समस्यायें, एवं विकृतियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। उनका सामना करना और अपनी प्रतिभा के द्वारा उनका हल निकालना आवश्यक होता है। जो प्रतिभावान है, विकृतियों से लड़ने में जो प्रसन्न एवं तत्पर है, उसे शूर कहा जाता है। प्रत्येक मनुष्य को धैर्यवान, शूरवीर, पराक्रमी, अड़चनों से लोहा लेने वाला एवं दूरदर्शितापूर्वक उन्हें हल करने के लिए विवेकवान होना चाहिए। मनुष्य का यह आवश्यक गुण है। जो इस गुण से रहित है उसे पुरुष नहीं कहा जा सकता। पुरुष में पौरुष होना चाहिए।

शौर्य धर्म का एक अंग है। जो संघर्ष से डरता है, उससे बचने की कोशिश करता है, वह कायर अधर्मी है। उसे भीरु बुजदिल, का पुरुष या नपुंसक भी कहते हैं। अड़चनों से छुटकारा किसी को भी नहीं मिल सकता। रात-दिन के जोड़े की तरह, सुविधाओं की तरह असुविधाएं भी सामने आती ही हैं। यदि मनुष्य उनसे बचना चाहे तो भी वे उसका पीछा नहीं छोड़तीं और प्रतिरोध न करने वाले उन पुरुषों को विकृतियाँ वैसी ही खा जाती हैं जैसे तीतर दीमक को सुविधापूर्वक खाता रहता है। कायर अपेक्षाकृत अधिक कष्ट भोगते और अधिक घाटे में रहते हैं। वीर को एक बार मरना पड़ता है, पर कायर पग-पग पर त्रस्त रहता है और बेमौत मरने जैसी वेदना सहता रहता है। अनीति को सहने से अन्यायी का साहस बढ़ता है और अपनी सफलता से अधिक दुस्साहसी बनता है और अधिकाधिक दुष्टता करता चला जाता है। इस बढ़ावे का कारण अनीति सहने वाले की कायरता ही होती है। इसलिए शास्त्रकारों ने शूरवीर को अनौचित्य के-अशोभनीय के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए तत्पर व्यक्तियों को धर्मात्मा बतलाया है और उनकी प्रशंसा की है। संसार के इतिहास में उन्हीं लोगों की यशगाथाऐं गाई गई हैं जिन्होंने आदर्शवाद की शुभ की, अभिवृद्धि के लिए और अशुभ की समाप्ति के लिए साहसपूर्वक प्रयत्न किए हैं। इन प्रयत्नों में जो कष्ट सहने पड़े हैं उन्हें प्रसन्नता पूर्वक सहन किया है। ऐसे ही लोग अपना और संसार का भला करते हैं। लोक और परलोक भी उन्हीं का उज्ज्वल बनता है।

इसके विपरीत जो उलझन में पड़ने से डरकर अपनी अकर्मण्यता या भीरुतावश बुराई को सहन करते रहते हैं, अनीति के आगे सिर झुका देते हैं, दुःख दैन्य में पड़े-पड़े रहना दुर्भाग्य का रोना रोते हैं। गन्दगी, गरीबी, बीमारी, अविद्या के शिकार रहते हैं। उत्कर्ष के प्रतिरोध के लिये न स्वयं साहस करते हैं और न उनकी सहायता करते हैं जो इस प्रकार वीरता पूर्ण मार्ग का अवलम्बन कर प्रगति और प्रसन्नता की परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के लिये प्रयत्न शील हैं, तो ऐसे व्यक्ति कायर, कर्महीन कहलाते हैं। वे एक प्रकार से अधर्मी भी हैं। ऐसे लोगों को निकृष्ट कोटि का अधम जीव-नर पशु कहा जाता है। इनकी सर्वत्र निन्दा की जाती है। शास्त्रकार उनकी भर्त्सना करते हैं। भगवान भी उन्हें धिक्कारते हैं।

कायरता में प्रधान बाधा मन की दुर्बलता ही है। कष्ट और उलझन से आदमी भागता है। भागकर वह बचना चाहता है। बच तो नहीं पाता, उलटी कष्ट, व्यथा बढ़ जाती है। संसार में निन्दा होती है, और सौभाग्य सूर्य के उदय होने की सम्भावना समाप्त हो जाती है। अर्जुन अनेक बहाने बनाकर, शान्तिप्रियता और त्याग की दुहाई देकर अपने को झंझट से बचाना चाहता था और संघर्ष में जो चोट लगने की सम्भावना रहती है उसके डर से वह लड़ाई झगड़े में न पड़ने की बात कह रहा था। भगवान ने वस्तु स्थिति को समझ लिया और अर्जुन को हृदय की क्षुद्र दुर्बलता, कायरता, अशोभनीय मार्ग अपनाने से रोका और स्पष्ट शब्दों में कहा कि युद्ध करने के लिये उठ खड़ा हो। अनौचित्य सम्मुख उपस्थित होने पर प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य यही है। अर्जुन के बहाने मनुष्य मात्र को इसी के लिये ईश्वरीय प्रेरणा प्रस्तुत हुई।

संसार में जिनकी यश गाथाएँ गाई जाती हैं, जिन्हें साहसी सज्जन, सराहनीय माना जाता है, उन सभी को अपने-अपने ढंग से अन्याय एवं अनौचित्य से संघर्ष करना पड़ता है। इस संघर्ष की अग्नि में तपने से उन्हें थोड़ा शारीरिक कष्ट भले ही सहना पड़ा हो, लौकिक जीवन में अड़चनों का सामना भले ही करना पड़ा हो पर कर्त्तव्य पालन की परीक्षा में खरे उतरने पर उनकी अन्तरात्मा को जो सन्तोष प्राप्त हुआ होगा, जो आनन्द मिला होगा, उसकी तुलना में लौकिक कष्टों की गणना नगण्य ही मानी जायगी। उनके साहस से प्रकाश ग्रहणकर असंख्यों मनुष्य चिरकाल तक वैसा ही अनुकरण करने का प्रयास करते रहेंगे। धर्म की रक्षा के लिये, अधर्म के विनाश के लिये जिनने साहसपूर्ण कदम उठाये उन्हें अवतारी ही माना जायेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनकी यश गाथा कहना और सुनना एक प्रकार से भगवान की लीला कहने और सुनने की तरह ही पुण्य कार्य है।

भारत की भाग्यवादी विचारधारा, संकुचित स्वार्थपरता, जाति पाँति की संकीर्णता, एवं असंगठित स्थिति ने देश को इतना दुर्बल बना दिया था कि विदेशी आक्रमणकारी उस पर आधिपत्य जमाने और लूट खसोट करते रहने में बहुत दिन तक सफल होते रहे। अपनी आन्तरिक दुर्बलताओं के कारण हिन्दू जाति को, लम्बी अवधि की नृशंसता पूर्ण दासता सहनी पड़ी फिर भी उस अवधि से ऐसे योद्धा होते रहे, जिन्होंने मातृभूमि को स्वाधीन रखने के लिये प्राण हथेली पर रखकर संघर्ष किये। ऐसे बलिदानी वीर ही भारत माता की कीर्ति को उज्ज्वल रख सके। धर्म के लिये आत्मोत्सर्ग करने वाले इन वीरों की सदा यश-गाथा गाई जाती रहेगी और भारतीय संतति उनके चरणों में सदा श्रद्धा से मस्तक झुकाती रहेगी। ऐसे बलिदानी वीरों में से कुछ का उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

धर्म रक्षा के लिये संघर्ष वाले

शिष्य का गुरु पर आक्रमण

एक बार अन्याय के प्रति अपने शिष्यों की प्रतिक्रिया देखने के मन्तव्य से शिवजी ने एक बड़ा ही अन्याय पूर्ण कार्य किया, उसको देखकर शिष्य स्तब्ध रह गये, किन्तु बोला कोई भी नहीं।

उनके शिष्यों में उस समय परशुरामजी भी थे। उन्होंने शिवजी से वैसा न करने के लिये बड़ी विनम्र प्रार्थना की। किंन्तु शिवजी तो उनकी अन्तिम प्रतिक्रिया की परीक्षा लेना चाहते थे, इसलिये अपने शिष्य की न बात ही सुनी और न अपने अन्याय को ही बन्द किया। जब समझाने बुझाने से कोई प्रभाव न हुआ तो परशुरामजी अपना फरसा लेकर उनके विरुद्ध खड़े हो गये और उन पर वार कर दिया। शिवजी के मस्तक पर बहुत चोट आई और सारे शिष्य घबड़ा गये। वे परशुरामजी को गुरु पर वार करने के कारण बुरा-भला कहने लगे।

इस पर शिवजी ने उन सबको समझाते हुये कहा कि यह जो कुछ अन्यायपूर्ण क्रिया मैंने की है, वह सब अन्याय के प्रति तुम्हारी प्रतिक्रिया देखने के लिये। अन्याय को देख कर परशुरामजी के अतिरिक्त तुम सब मौन हो गये। अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करना प्रत्येक धर्मशील व्यक्ति का मानवोचित कर्तव्य है।

ब्रह्मचारी लक्ष्मण

लक्ष्मण राम के साथ चौदह वर्ष वनवास में रहे और एक सेवक की तरह अपने कर्तव्य पर डटे रहे। जब श्रीराम सोते थे तब लक्ष्मण पहरा देते। रामायण की एक धुरी श्रीराम है तो दूसरी लक्ष्मण। अपनी स्त्री, माता-पिता आदि को छोड़ कर लक्ष्मण ने भगवान राम के साथ जंगल का जीवन बिताने का निश्चय किया। महाबलशाली मेघनाद के समक्ष राम स्वयं पीछे हट गये और उन्होंने लक्ष्मण को आगे किया, क्योंकि लक्ष्मण ही उसे मार सकते थे। श्रीराम के बाद लक्ष्मण ही राम-सेना के सर्वोच्च सेनापति थे।

धर्म की रक्षा के लिये अवतरित हुये भगवान राम के कार्यों में निरन्तर सहायक रह कर अत्याचारियों को परास्त करने में अपने भाई के सहायक रह कर लक्ष्मण जी ने भी अवतार का ही उद्देश्य पूरा किया और वे भी भगवान की तरह ही जगत्बन्द्य बने।

महावीर हनुमान

श्रीहनुमान जहाँ श्रीराम के परम-भक्त थे, वहाँ उद्योग, उत्साह, साहस के साकार अवतार थे। रामायण के सम्पूर्ण प्रसंग में हनुमान महान योद्धा ,कर्मठ, साहसी व्यक्ति के रूप में परिलक्षित होते हैं। श्रीराम का दर्शन होने के पश्चात् श्री हनुमान ने राम काज के लिये कभी भी तनिक सा प्रमाद नहीं किया। सीता की खोज, लंका दहन, समुद्र लंघन, रावण-मेघनाद के साथ निर्भयता का व्यवहार, युद्ध में अपूर्व क्षमता का प्रदर्शन, ये सब श्री हनुमान के पुरुषार्थ उद्योग शक्ति सामर्थ्य के उदाहरण हैं। भय, आलस्य, चिन्ता, क्षोभ जैसी कोई भी बात श्री हनुमान के साहसी असामान्य घटनाओं से भरे जीवन में नहीं मिलती।

धर्म पक्ष का समर्थन करने के लिये, अन्यायी से लड़ने के लिये अपने जीवन को उत्सर्ग कर उन्होंने जन साधारण के सामने अपना उज्ज्वल उदाहरण रखा। इसी से वे वानर होते हुये भी देवता माने गये और भारत भर में बड़ी श्रद्धा के साथ उनकी पूजा होती है।

गिद्धराज जटायु

रावण सीता का अपहरण करके बड़ी तीव्र गति से चला जा रहा था। सीता हृदयद्रावक विलाप कर रही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

थी। यह सब घटना मार्ग में जटायु ने देखी, उसका हृदय यह सब देख कर बड़ा व्याकुल हुआ और वह अबला की सहायता करने तथा दुष्ट को दण्ड देने के लिये तत्पर हो गया। एक झपट्टे में ही महाबली रावण को अस्त व्यस्त कर दिया, लेकिन सशस्त्र रावण का सामना वह वृद्ध पक्षी कहाँ तक करता। रावण ने अपने खड्ग से जटायु के पर काट दिये और वृद्ध जटायु ने अपना जीवन अनीति का प्रतिरोध करने में मिटा दिया।

वानरों का पुरुषार्थ

बालि-पुत्र अंगद, जिसे मरते समय बालि भगवान राम को सौंप गये थे, अपने पिता की इच्छानुसार श्रीराम के कार्य में सदैव तत्पर रहे। अंगद राम सेना के वरिष्ठ सेनापतियों में से थे। रावण की सभा में जाकर अपने बल का प्रदर्शन करके सब को आश्चर्य में डाल दिया। स्वयं रावण भी उनकी चुनौती का सामना न कर सका। छोटे से धर्मात्मा का बल अनीतिवान सेनापति से भी अधिक होता है।

नल नील वानर सेना के कुशल इन्जीनियर थे, जिन्होंने बिना विश्राम किये समुद्र पर पुल बाँध कर तैयार कर दिया। समुद्र पर पुल बाँधने से लेकर रावण से युद्ध करने तक राम सेना का प्रत्येक वानर अपने जीवन की परवाह न करके काम करता रहा।

वानर स्वल्प शक्तिमान थे तो भी उन्होंने अधर्म का प्रतिरोध करने में अपना सर्वस्व झोंक दिया और राक्षसों द्वारा मारे जाने की तनिक भी चिन्ता न की। ऐसे शूर-वीर धर्मात्मा का जीवन ही इस संसार में धन्य माना जाता है।

पराक्रमी भीम

अपने अज्ञातवास काल में पाण्डव एक ब्राह्मण के घर ठहरे हुये थे, उस नगर के बाहर एक भयंकर दैत्य रहा करता था। नियमानुसार क्रमशः प्रत्येक घर में से एक आदमी को उसका भोजन बनने के लिये जाना पड़ता था। आज उस ब्राह्मण के घर में से ही किसी को जाना था। सारे घर वाले बड़े दुखी थे और अपने संकट पर रो रहे थे। जब कुन्ती को यह मालूम हुआ तो भीम को यह बात बताई। दुःखी का दुःख दूर करने के लिये भीम ने स्वयं वहाँ दैत्य के पास जाने का निर्णय किया। वहाँ जाकर महा बलशाली भीम ने उस दैत्य का काम तमाम कर दिया और इस तरह समस्त नगरवासियों का कष्ट दूर किया। भीम पाण्डवों में सबसे अधिक शक्तिशाली, पुरुषार्थी, स्वाभिमानी व्यक्ति थे।

अधर्मी राक्षस का अत्याचार उन्हें तनिक भी सहन न हुआ और असहायों को, उत्पीड़ितों की रक्षा के लिये उनने अपने को खतरे में डाल कर भयानक राक्षस से संघर्ष किया।

देवताओं की सहायता

असुरों ने देवताओं को बुरी तरह परास्त किया। इन्द्र के नेतृत्व में वे राक्षसों का सामना करने में असमर्थ रहे। तत्पश्चात् महाराज दशरथ को देवताओं की मद्द के लिये बुलाने का निश्चय किया गया। महाराज दशरथ ने देवताओं की ओर से युद्ध की कमान सम्हाली और असुरों को परास्त किया।

दशरथ की तरह ही अर्जुन भी देवताओं की सहायता के लिये गये थे। वहाँ उन्होंने असुरों को परास्त करके देवताओं को विजय दिलाई।

साहसी गिलहरी

जब भगवान राम लंका पार करने के लिये समुद्र का पुल बंधवा रहे थे, नल-नील उसके कार्य में जुटे हुये थे, तब एक गिलहरी अपने बालों में धूल भर-भर कर समुद्र में डालने का कार्य अनवरत रूप से करने लगी। गिलहरी के उस श्रम को देखकर राम चन्द्रजी ने उससे पूछा तो गिलहरी ने यही उत्तर दिया, मैं छोटी हूँ तो क्या ? धर्म युद्ध में मुझे भी भाग लेना चाहिये और अपनी सामर्थ्य के अनुसार जो बन पड़े सो करना चाहिये।

गिलहरी की इस धर्म भावना को देखकर भगवान राम बहुत प्रसन्न हुये और उसकी पीठ पर प्यार का हाथ फेरा। कहते हैं कि गिलहरी की पीठ पर जो काली धारी हैं वे भगवान राम की श्यामल उँगलियों के स्पर्श से ही बनी हैं।

स्वाधीनता का धर्म युद्ध लड़ने वाले वीर बलिदानी

साहसी स्कन्दगुप्त

मगध के राजा कुमारगुप्त का पुत्र स्कन्दगुप्त जब किशोर ही था तब उसने मालूम किया कि हूण लोग बार बार भारत पर हमला करते हैं और युद्ध नियमों के विपरीत धूर्तता पूर्वक छल-बल से भारी हानि पहुँचाते हैं। स्कन्दगुप्त से अपने देश का यह अपमान न देखा गया, उसने पिता से आग्रह किया कि हूणों के देश में जाकर उन्हें दण्ड देने के लिये उसे आज्ञा दी जाय। पिता बड़े असमंजस में थे क्योंकि एक तो स्कन्दगुप्त

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभी किशोर ही था, शरीर बल और युद्ध कौशल की दृष्टि से उसे अभी बच्चा ही कहा जा सकता था। दूसरे हूणों का देश बहुत दूर था। हिमाच्छादित पहाड़ों की चोटियाँ पार करके वहाँ जाना होता था। ऐसे दुर्गम मार्ग को पार करना सेना के लिये भी कठिन था। फिर हूण युद्ध में छलबल से ही प्रधान रूप से काम लेते थे। ऐसी स्थिति में उसे आक्रमण की आज्ञा कैसी दी जाय। यह समस्या कुमारगुप्त के आगे थी।

पुत्र की देशभक्ति एवं उच्च आदर्श के प्रति अनन्य निष्ठा को देखकर कुमारगुप्त को झुकना पड़ा। चढ़ाई की आज्ञा मिल गई। स्कन्दगुप्त मगध से दो लाख सैनिक लेकर चल पड़ा। पंजाब से आगे बढ़ कर हिमाच्छादित चोटियों को पार करतीं हुई सेना हूण प्रदेश में पहुँची और इस वीरता के साथ लड़ी कि शत्रुओं के छक्के छूट गये। उन्हें परास्त ही होना पड़ा। आज के ईरान और अफगानिस्तान तक उसने अपना राज्य कायम किया। इस विजय को करते हुये जब स्कन्दगुप्त भारत लौटा तो उनके स्वागत में मगध से पाँच कोश तक मार्ग सजाये गये और पूरे देश में विजयोत्सव मनाया गया।

पराक्रम के लिये आयु एवं शरीर बल का नहीं मनोबल और साहस का महत्व है।

छत्रपति शिवाजी

समर्थ गुरु रामदास ने शिवाजी को जीवन दीक्षा दी और शिवाजी ने अपने गुरु से दक्षिणा माँगने को कहा। समर्थ ने कहा-"शिवा ! तुम धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिये, भारत भूमि को परतंत्रता से मुक्त करने के लिये आजीवन युद्ध करते रहो यही मेरी दक्षिणा है।" शिवाजी ने नत मस्तक हो कर गुरु आज्ञा को स्वीकार किया और उसी दिन से मुगल बादशाह के विरुद्ध जोरशोर से युद्ध प्रारम्भ कर दिया। यत्र-तत्र छापामार लड़ाई कीं, अनेकों किलों को जीत लिया और समस्त भारत में मुगल शासन की नींव को हिला दिया। मुगल बादशाह ने शिवाजी को बुला कर प्रलोभन युक्त सन्धि के कई प्रस्ताव रखे किन्तु वे अपनी प्रतिज्ञा से नहीं हटे और उन्हें अस्वीकार कर दिया। इस पर मुगली बादशाह ने उन्हें नजरबन्द कर लिया। लेकिन चतुर शिवाजी फूलों की टोकरी में छिपकर एक दिन निकल गये। शायस्तखाँ जिसे बादशाह ने शिवाजी के विरुद्ध मोर्चा जमाने को भेजा था उसे अपने डेरे में सोते हुये ही जा घेरा और घायल कर दिया। अफलखाँ जो धोखे से शिवाजी को मारने पहुँचा था अपने वार करने से पहले ही शिवाजी के हाथों मारा गया।

एक बार शिवाजी पर प्रसन्न होकर देवी ने दर्शन दिये और कहा-"शिवा ! मैं ही भारती हूँ।" "मातृ भूमि, भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिये तुम्हारे प्रयत्नों से मैं प्रसन्न हूँ।" और फिर एक दिव्य तलवार शिवाजी को प्रदान की। शिवाजी ने उसे अपने मस्तक से लगाते हुये अपनी प्रतिज्ञा को दुहराया। सचमुच वे आजीवन अपनी प्रतिज्ञा के लिये लड़ते रहे।

राणा प्रताप

जयपुर के राजा मान सिंह गुजरात की तरफ से आ रहे थे। मार्ग में उन्होंने मेवाड़ में पड़ाव डाला और चित्तोड़ के महाराजा के मेहमान बने। उस समय चित्तोड़ में महाराणा प्रताप शासन करते थे। राजा मानसिंह के साथ भोजन पर उन्होंने अपने पुत्र अमर सिंह को भेज दिया और स्वयं न गये। इस पर मानसिंह ने पुछवाया तो प्रताप ने कहला भेजा "जिसे अपने धर्म, जाति, संस्कृति का गौरव न रहा हो, जो आततियों से मिल गया हो, उन्हें अपनी लड़की दे दी हों उसके साथ मैं भोजन नहीं कर सकता।"

इसे अपना अपमान समझ कर मानसिंह बिना भोजन किये हुये ही वहाँ से लौट गया और दिल्ली में बादशाह के कान भरे और मुगल सेना ने मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। प्रसिद्ध हल्दी-घाटी का युद्ध प्रताप के नेतृत्व में मेवाड़ के राजपूतों के स्वाभिमान और स्वतंत्रता प्रियता या जातीय-गौरव की ज्वलन्त की कहानी है। मुट्ठी भर राजपूतों ने विशाल मुगल सेना को गाजर-मूली की तरह काटा, किन्तु सीमित शक्तियों से उस अपार सेना का कहाँ तक सामना किया जाता। प्रताप ने युद्ध में मारे जाने के बजाय पुन: शक्तिशाली और संगठित बनकर शत्रु का मुकाबला करने के उद्देश्य से जंगलों को अपना घर बनाया और मुगलों से छापामार युद्ध जारी रखा।

अकबर ने कई बार प्रताप को सम्मानपूर्वक सन्धि के प्रस्ताव भेजे किन्तु उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। जंगलों में भटकते रहे, भूखे रहे, घास-पात की रोटियाँ खाईं, वह भी एक बार बनविलाव बालक के हाथ में से छीन कर ले गया। साथियों ने बादशाह से सन्धि करने की कही, लेकिन स्वतंत्रता के महाव्रती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रताप अपने उद्देश्य से नहीं डिगे और मुगलों के विरुद्ध युद्ध करते रहे।

राणा सांगा

महाराणा सांगा उदयपुर के शासक थे। अपने शौर्य शक्ति के लिये वे प्रसिद्ध थे। अपने देश, धर्म और संस्कृति की वे थोड़ी-सी भी हानि नहीं देख सकते थे। आक्रमणकारी एवं अत्याचारियों के विरुद्ध लड़ने वाले राणा सांगा ने बाबर के साथ युद्ध किया था। अपने शरीर पर अस्सी घाव होते हुये भी वे डट कर लड़ते रहे और जब तक दम में दम रहा धर्म-युद्ध से पीछे न हटे।

महाराजा रणजीत सिंह

उन दिनों इन्दौर के होल्कर राजा का अंग्रेजों से संघर्ष चल रहा था। लेकिन उसकी शक्ति मुकाबले में कम पड़ रही थी। उन्होंने भरतपुर के तत्कालीन महाराजा रणजीतसिह से मंत्रणा की और तब रणजीतसिंह ने लार्ड लेक के सेनापतित्व में संगठित अंग्रेजी सेना को बुरी तरह परास्त किया। अंग्रेजों ने रणजीत सिंह से कई बार सन्धि के प्रस्ताव रखे, लेकिन उन्होंने स्वीकार न करते हुये अपनी स्वतंत्रता कायम रखी और देश के गौरव के विरुद्ध अंग्रेजों को तनिक भी रियायत न दी।

हठी वीर हमीर

दिल्ली के तत्कालीन बादशाह अल्लाउद्दीन खिल्जी का एक सरदार भाग कर रणथम्भौर के राजा हमीर की शरण में आ गया। बादशाह ने हमीर से सरदार को माँगा । लेकिन उन्होंने कहला भेजा कि "अन्याय पीड़ितों की रक्षा करना अपना परम धर्म समझता हूँ" और इसके साथ ही बादशाह के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इस पर अल्लाउद्दीन खिल्जी ने रणथम्भौर पर चढ़ाई कर दी। थोड़े किन्तु अपनी प्रतिज्ञा के प्रति निष्ठावान राजपूतों ने प्रबल रूप से खिल्जी की सेना पर आक्रमण किया। अल्लाउद्दीन के सैनिकों के पैर उखड़ गये और वे अपना बचाव करते हुये वापिस लौट गये। अन्यायी आक्रमणकारी में वह बल कहाँ जो धर्म-रक्षा के लिये प्राण हथेली पर रख कर लड़ने वालों में होता है। हमीर की छोटी-सी सेना ने एक बार तो आततायी को परास्त करके ही दम लिया।

वीर दुर्गादास

औरंगजेब ने दुष्टता का दुश्चक्र रच करके उदयपुर के महाराजा यशवन्तसिंह को काबुल भेज कर वहाँ छल से उन्हें मरवा दिया। उनके जीवित बचे हुये एक मात्र बालक अजीतसिंह पर भी औरंगजेब की कुदृष्टि थी। लेकिन यशवन्तसिंह के स्वामि-भक्त सरदार दुर्गादास ने चतुराई से अजीत सिंह को बादशाह के दुश्चक्र से निकाल कर अपने संरक्षण में ले लिया और स्वयं जोधपुर के शासन सूत्र को सँभाले रहे। अजीतसिंह बड़े होते रहे। औरंगजेब ने कई प्रलोभन युक्त प्रस्ताव उनके समक्ष रखे, लेकिन दुर्गादास अपने कर्तव्य-पथ से विचलित नहीं हुये। उन्होंने औरंगजेब को जोधपुर पर हाथ नहीं रखने दिया । कई बार औरंगजेब ने सेना सहित आक्रमण भी किया, लेकिन दुर्गादास के नेतृत्व में राजपूतों ने उसे परास्त करके वापस भेज दिया।

राणा राज सिंह

चञ्चलकुमारी एक छोटे जागीरदार की पुत्री थी। दुष्ट औरंगजेब की कुदृष्टि उस पर गई और उसने उसे प्राप्त करने के लिये लड़की के पिता के पास सन्देश भेजा। शक्ति में छोटे होते हुये भी स्वाभिमानी जागीरदार इसे कैसे स्वीकार कर सकते थे ? बादशाह अपनी आज्ञा का उत्तर-"अस्वीकार" में पाकर बड़ा क्रुद्ध हुआ और अपनी सेना को भेज कर शक्ति-बल से चञ्चलकुमारी को हरण करने की आज्ञा दे दी।

यह समाचार मेवाड़ के तत्कालीन महाराणा राजसिंह को प्राप्त हुये तो वे अत्याचारी से निर्बल की रक्षा करना अपना क्षात्र-धर्म समझ कर सेना तैयार कर मुगल सेना का मुकाबला करने चल दिये। राजपूतों ने मुगल सेना को अरावली की घाटियों में घेर कर बुरी तरह परास्त किया और इस प्रकार एक अबला की लाज लुटने से बच गई।

कर्मावती देवी

मेवाड़ के राजा समरसिंह की मृत्यु के उपरान्त राज-काज चलाने का भार उनकी धर्मपत्नी कर्मावती के कन्धों पर आया। वे साहसपूर्वक अपने कठिन उत्तरदायित्वि को भली प्रकार निवाहने लगीं।

मुहम्मद गौरी उन दिनों इसी घात में रहता था कि जो राज्य थोड़ा दुर्बल दिखाई पड़े, पहले उसी पर चढ़ाई कर दे। उसे मेवाड़ कमजोर दिखाई दिया। सेनापति कुतुबुद्दीन को उसने चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी। छोटा-सा मेवाड़ यवनों की विशाल सेना से घिर गया।

संख्या बल को देखते हुये मेवाड़ के सेना नायक चिन्ताग्रस्त हो रहे थे। रानी ने उनकी मन:स्थिति को समझा और दूसरे ही क्षण योद्धाओं के वस्त्र पहनकर

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दरबार में आ गई। उसने बिजली की तरह कड़क कर कहा - शरीर में रक्त की अन्तिम बूँद रहने तक में आततायी के विरुद्ध लड़ना है। अत्याचार से जूझने के अतिरिक्त हमारे लिये और कोई मार्ग नहीं। जीत और हार यह तो कर्तव्य पालन में दोनों ही तुच्छ हैं। जिन्हें चलना हो मेरे साथ चलें।

राज महलों की शोभा समझी जाने वाली रानी इतनी शौर्यसम्पन्न हो सकती है, इसकी कल्पना भी सेनापतियों को न थी। उनकी नसों में बिजली कौंधने लगी। देखते-देखते ही राजपूत सेना हजारों गुने उत्साह के साथ शत्रुओं पर टूट पड़ी, कुतुबुद्दीन के पैर उखड़ गये मेवाड़ की स्वतंत्रता अक्षुण्ण बनी रही।

समीक्षकों ने कहा- सेना ने नहीं, साहस ने यह विजय प्राप्त की है।

बारह वर्षीय वीर बादल

दिल्ली के बादशाह अल्लाउद्दीन खिजली ने चित्तौड़ के राणा भीमसिंह की रानी पद्मिनी के अपहरण की योजना बनाई। दर्पण में मुख देखकर लौट जाने की शर्त पूरी होने पर भी जब वह न माना और राणा को कैद कर लिया तो युद्ध की विस्तृत योजना बनाने के लिये राणा को छुड़ाना आवश्यक था। इसके लिये एक चाल चली गई। बादशाह को कहला भेजा कि पद्मिनी का डोला आ रहा है। राणा छोड़ दिये गये। पद्मिनी की तथा-कथित पालकी में एक लड़का बैठा था-बादल। बादल भी जान की बाजी लगा कर ही पालकी में बैठा था। वहाँ पहुँचने पर उसने पालकी में से निकल कर तलवार सँभाली। एक दूसरे लड़के गौरा के नेतृत्व में पालकियों में कहार बने हुये राजपूत भी निकल पड़े और युद्ध करते हुये वीर गति को प्राप्त हुये। बारह वर्षीय बादल ने तो और भी कौशल दिखाया। वह लड़ता-मरता किले में आवश्यक सूचनाएँ पहुँचाने में भी सफल रहा और अन्त में अपने भी प्राण विसर्जित करके धन्य बना।

बाजीराव पेशवा

अपनी आजादी, जातीय गौरव, संस्कृति की रक्षा के लिये लड़ने वालों में बाजीराव पेशवा का भी नाम प्रख्यात है। उन्होंने जीवनभर मुगलों के विरुद्ध युद्ध किया और मुगल सत्ता एक तरह से उनके समक्ष झुक गई थी। उन्होंने महादाजी सिन्धिया को अपना सूबेदार बनाकर दिल्ली में रखा था जिसके निर्देश के अनुसार बादशाह को चलना पड़ता था। उस समय पेशवाओं की शक्ति इतनी प्रबल थी कि सदाशिवराव भाऊ के नेतृत्व में भारतीय सेना ने अहमदशाह दुर्रानी को एक तरह परास्त करके ही वापिस लौट जाने के लिये मजबूर कर दिया। संगठन शक्ति और शासन चातुर्य का यह श्रेय बाजीराव पेशवा को ही है। मातृभूमि की रक्षा के लिये उनने अपनी परिस्थितियों के अनुसार कुछ उठा न रखा।

१८५७ के गदर की दो मुख्य विभूतियाँ

रानी लक्ष्मी बाई

गदर कालीन अंग्रेज सेनापति ह्यूरोज ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि "विद्रोहियों में यदि कोई मर्द था तो, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई।" गदर में अंग्रेजों के साथ सबसे जोरदार लड़ाई यदि कहीं हुई तो वह झाँसी में हुई थी।जब अंग्रेज चारों ओर अपना साम्राज्य फैला रहे थे तो झाँसी की रानी को भी उन्होंने पराधीनता स्वीकार करने के लिये कहा। लेकिन लक्ष्मी बाई ने कहला भेजा "जीवित रहते हुये मैं परतंत्रता स्वीकार नहीं करूँगी।" अंग्रेजी सेना ने झाँसी पर चढ़ाई कर दी। रानी लक्ष्मी बाई ने उसका डटकर कड़ा मुकाबला किया। लड़ाई में एक अंग्रेज सैनिक की तलवार से उनका आधा सिर और एक आँख कट गई, इस पर भी उन्होंने वापस मुड़कर उसे मौत के घाट उतार दिया। अंग्रेज रानी को गिरफ्तार करना चाहते थे "जीते जी हाथ न आऊँगी" इस प्रतिज्ञा को रानी ने पूरा किया और जब बचने का कोई उपाय शेष न रहा तो एक घास की ढेरी में भस्मसात हो गई।

पेशवा नाना साहब

पेशवा नाना साहब सन् १८५७ के गदर के प्रमुख पात्र हैं। वस्तुत: दासता के विरुद्ध इस सशस्त्र संग्राम का संचालन इन्होंने ही किया था। नाना साहब ने देश में घूम-घूम कर समस्त राजाओं, नवाबों को संगठित किया और गदर के लिये प्रेरित किया। विदेशों में अजीमुल्लाखाँ को भेजा जिन्होंने वहाँ भारत के स्वतंत्र होने में अन्य देशों की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। तात्याटोपे पेशवा के सेनापति थे। उनके नेतृत्व में विद्रोहियों ने अंग्रेजों को परास्त किया। कानपुर में अंग्रेजों को घेर कर के मारा। यद्यपि कई कारणों से इसमें पूर्ण विजय प्राप्त नहीं हुई तथापि छापामार युद्ध जारी रखा। नाना साहब भारत के उत्तराँचल के जंगलों में छिपकर युद्ध का संचालन करते रहे। अंग्रजों ने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उनके समक्ष कई प्रलोभन प्रस्ताव रखे किन्तु नाना साहब ने सबको ठुकरा दिया। वे जंगलों में ही मर गये। लेकिन स्वतंत्रता के लिये आजीवन लड़ते रहे। सेनापति तात्याटोपे के पकड़े जाने पर अंग्रेजों ने मृत्युदण्ड दिया पर मातृभूमि की रक्षा के लिये प्राणोत्सर्ग करते समय भी तात्या हंसते ही रहे।

आरा (बिहार) के वीर कुँवरसिंह ने भी स्वल्प साधनों द्वारा ही अंग्रेजों का ऐसी बहादुरी से डटकर मुकाबला किया था कि कुछ समय के लिये उस प्रदेश से अंग्रेजी सत्ता ही उखड़ गई थी। बाद में बहुत शक्तिशाली सेना भेज उनको अपने किले में से हटाया जा सका।

गदर के अवसर पर मेरठ, कलकत्ता, इलाहाबाद, लखनऊ, बरेली, दिल्ली, नागपुर आदि अनेक स्थानों में भी देशभक्त जन नायकों ने अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ने, के लिये बड़े शौर्य और वीरता का परिचय दिया था और बहुत समय तक अपना शासन कायम कर दिया था। इन सब वीरों के नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखें हुये हैं और हमको इस बात की शिक्षा और प्रेरणा देते हैं कि मातृभूमि पर अन्याय को सहन करना किसी स्वाभिमानी व्यक्ति को शोभा नहीं देता। अन्यायी और आक्रमणकारी का मुकाबला जी जान से करना मनुष्य का परम धर्म है।

कांग्रेस आन्दोलन के कुछ नर-नाहर

लोकमान्य तिलक

श्री लोकमान्य तिलक को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का मंत्रदाता कहा जाता है। उन्होंने उस समय जब अंग्रेजों का आधिपत्य, वर्चस्व समस्त भारत पर छाया हुआ था, कोई उनके खिलाफ कुछ कह भी नहीं सकता था, स्वतंत्रता का मंत्र भारत को दिया कि "स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है। हम उसे लेकर रहेंगें"। तिलक ने स्वराज्य आन्दोलन की एक व्यवस्थित रूपरेखा बनाकर देशवासियों को इस ओर प्रेरित किया। स्वतंत्रता तथा जातीय गौरव का पाठ सिखाने, अंग्रेजों के खिलाफ बोलने के लिये उन्होंने निर्भयता के साथ पत्रकारिता और सभाओं के माध्यम से अपने विचार जनता को दिये। अंग्रेजों ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। कई मुकदमे उन पर चलाये और ६ साल की लम्बी सजा देकर माण्डले की जेल में रखा। लेकिन वे अपने ध्येय पर अन्त तक अटल रहे। आजीवन अन्याय के प्रतिकार और न्याय की रक्षा के प्रयत्न में लगे रहे।

महात्मा गाँधी

महात्मा गाँधी ने जब अपने यौवन काल में अपना पैर रखा तो संसार में शक्तिवानों का निर्बलों पर, बड़ों का छोटों पर, साम्राज्यवादियों का परतंत्र लोगों पर होने वाला भीषण अत्याचार देखकर उनकी आत्मा रो पड़ी और इसीके विरुद्ध जीवन भर संघर्ष करने पर सामान्य व्यक्तित्व के मोहनदास करम चन्द गाँधी विश्ववन्द्य"महात्मा गाँधी" के नाम से संसार के समक्ष आये। अफ्रीका में रंगभेद के विरुद्ध सत्याग्रह से लेकर भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन के लिये असहयोग, नमक सत्याग्रह, स्वदेशी आन्दोलन, तथा आत्मशुद्धि के प्रयत्न स्वरूप लम्बे उपवास, अछूतोद्धार का कार्य साम्प्रदायिकता का विरोध जैसे महत्वपूर्ण कार्यों में उन्होंने अपने आप को घुला लिया। अंग्रेजों का अत्याचार, जेल यातनाएँ अपमान, समाज विरोधी तत्वों का विरोध आदि कष्टों में होकर उन्हें गुजरना पड़ा और इसी में उन्हें अपना जीवन भी उत्सर्ग करना पड़ा।

सरदार पटेल

नव भारत के निर्माताओं में सरदार पटेल का नाम 'लौह पुरुष' के रूप में लिया जाता है। स्वराज्य आन्दोलन में प्रसिद्ध बारडोली का सत्याग्रह पटेल के नेतृत्व में किया गया था। अनेकों रियासतों के रूप में बिखरे हुय विसंगठित भारत को एक संगठित राष्ट्र का रूप देने में पटेल का मुख्य हाथ था। इसके अतिरिक्त स्वाधीनता के उपरान्त देश पर आने वाली कई कठिनाईयों का उन्होंने बड़ी दृढ़ता के साथ समाधान कर देश को सुदृढ़ और शक्तिशाली बनाया। सरदार एक ऐसे लौह पुरुष थे जो झुकना न जानते थे और अपनी पैनी सूझ-बूझ आत्मविश्वास, कुशलतासे विरोधियों को कुचल देते थे। एक सच्चे त्यागी तपस्वी की तरह धर्मराज्य स्थापित करने के लिये उन्होंने अपनी शक्तिभर सब कुछ किया। उनका सारा जीवन इसी धर्म युद्ध में लगा।

महामना मालवीय

पण्डित महामना मदन मोहन मालवीय भारतीय संस्कृति, हिन्दूधर्म के महान् सेवक रहे हैं। उन्होंने धार्मिक और सांस्कृतिक माध्यमों से राष्ट्र में बहुत बड़ी जागृति पैदा की। भारतवासियों में एकता के लिये,

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संगठन के लिये वे आजीवन प्रयत्न करते रहे। काशी विश्वविद्यालय भारत के सांस्कृतिक निर्माण में एक महान देन है मालवीय जी की। भारतवासियों के विग्रह, असंगठन और परस्पर लड़ाई झगड़े से उन्हें बड़ा दुःख होता था। धर्म राज्य की स्थापना के लिये वे अहर्निशि प्रयत्न करते रहे, और अपने जीवन को तिल-तिल जलाकर देश में अभिनव प्रकाश उत्पन्न कर सकने में सफल हुये।

लाला लाजपतराय

लाला लाजपतराय पंजाब केशरी के नाम से प्रसिद्ध हुये हैं। वे एक बड़े विद्वान और सफल वकील थे। किन्तु उन्होंने अपनी विद्वता, शिक्षा सामर्थ्य को स्वार्थ का साधन न बना कर राष्ट्र के जागरण एवं स्वतंत्रता आन्दोलन जैसे महान कार्य में लगाया। पंजाब में साइमन कमीशन का उन्होंने खुलकर विरोध किया और उस का नेतृत्व स्वयं सम्हाला। अंग्रेज पुलिस अधिकारी सौण्डर्स की आज्ञा से भीषण लाठी प्रहार हुआ जिसकी मर्मान्तिक चोटों को लाला जी सहन न कर सके और स्वर्गवासी हो गये। उनकी यश कीर्ति संसार में सदा अमर रहेगी।

सरोजिनी नायडू

सरोजिनी नायडू भारत की उन अग्रगण्य महिलाओं में से हैं जिन्होंने अपने घर की चहार दीवारों से निकल राष्ट्र के निर्माण में महान हाथ बटाया। वे अच्छी साहित्यकार, कवि एवं सुशिक्षित महिला थीं। अपने सभी गुणों को उन्होंने देश की सेवा का साधन बना लिया। उन्होंने राष्ट्र भक्ति के गीत लिखे। स्वराज्य आन्दोलन में आगे रहकर काम किया। अनेकों बार जेल गईं। अपनी योग्यता क्षमता के कारण कांग्रेस की अध्यक्ष रहीं। अपने अध्यक्षीय काल में कांग्रेस का बड़ा अच्छा संगठन कर उसे राष्ट्र के उत्थान में अधिक सक्रिय बनाया। तलवार तो उन्होंने नहीं चलाई पर रचनात्मक दृष्टि से अपना जीवन राष्ट्र को समर्पित कर जो कार्य वे करती रहीं वह युद्ध भूमि में प्राण देने वाले योद्धाओं से किसी भी प्रकार कम न था।

सुभाष चन्द्र बोस

श्री सुभाष चन्द्र बोस भारतीय स्वधीनता संग्राम के एक महान सेनानी हैं। जहाँ एक ओर देश के नेता शान्तिपूर्ण प्रयत्नों से देश की आजादी के लिये प्रयत्न कर रहे थे, वहाँ उन्होंने सशस्त्र युद्ध के कार्यक्रम को अपने लिये चुना और देश-विदेशों में घूम कर भारत की आजादी के लिये सहयोग उपलब्ध किया। श्री सुभाष ने अपने प्रयत्नों से आजाद हिन्द फौज का संगठन किया और अंग्रेजों को अपनी शक्ति का प्रदर्शन करके मानसिक दृष्टि से बहुत ही कमजोर कर दिया। वे अन्त तक भारत की स्वाधीनता के लिये अपने ढंग से प्रयत्न करते रहे और इसी में अपने जीवन को लगा दिया। अंग्रेजों की गिरफ्तारी से बच कर अकेले सुभाष विश्व के महत्वपूर्ण लोगों से मिले और अपने प्रयत्नों में सहयोग प्राप्त किया।

जवाहर लाल नेहरू

गाँधी जी तथा तत्कालीन राष्ट्रभक्तों की प्रेरणा से पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने अपना सर्वसम्पन्न सुखी और आनन्दपूर्ण जीवन छोड़कर अपने आपको स्वराज्य आन्दोलन का एक सेनानी बना लिया और उच्च शिक्षा, सामर्थ्य, अपने साधनों को उन्होंने राष्ट्र की सेवा में अर्पित कर दिया। स्वराज्य आन्दोलन में उन्हें कठोर यातनाऐं सहनी पड़ीं। त्याग का जीवन बिताना पड़ा। लाठियों का प्रहार सहना पड़ा। अपनी मृत्यु तक वे अथक परिश्रम करते हुये भारत को समृद्ध, सम्पन्न, खुशहाल बनाने के अपने स्वप्नों को पूर्ण करने में लगे रहे। पं० नेहरू ने अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर भारत को महत्वपूर्ण स्थान दिलाया और विश्व में इसे प्रतिष्ठा प्रदान की। संसार को शान्ति, सहिष्णुता, सहअस्तित्व की महान् उपलब्धियों के लिये पण्डित जी ने निरन्तर प्रयत्न किया।

देश के स्वाधीनता संग्राम में जिन महापुरुषों ने भाग लिया था और अपने अपूर्व त्याग तथा बलिदान द्वारा स्वराज्य की स्थापना को सम्भव बनाया था उनकी नामावली बहुत बड़ी है। मोतीलाल जी नेहरू तथा सी० आर० दास ने जिस प्रकार अपनी लाखों रूपयों की वकालत को छोड़ा था, सेठ जमनालाल जी ने अपने व्यापार और सम्पत्ति का मोह त्याग कर आन्दोलन में भाग लिया, राजेन्द्र प्रसाद, डा० विधानचन्द्र राय, शंकरराव, गोविन्द वल्लभ पन्त, रफी अहमद किदवई, टी० प्रकाशम्, सन्तानम, अर्जुनलाल सेठी (राजस्थान), रविशंकर शुक्ल (मध्य प्रदेश), श्री कृष्ण प्रसाद सिंह (बिहार), श्री सेन गुप्ता (बंगाल), भारतभक्त श्री एण्डरूज, श्री गणेश शंकर विद्यार्थी (कानपुर), आदि बहुसंख्यक देश भक्तों ने सब तरह से खतरों का सामना करते हुये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

स्वतंत्रता आन्दोलन को सफल बनाने में योग दान दिया। इनके अतिरिक्त भी प्रत्येक प्रान्त और बड़े नगर में किसी न किसी प्रभावशाली तथा कर्मठ नेता ने आगे बढ़कर जनता का मार्ग दर्शन किया और शासक-वर्ग के सब तरह के दमन और अन्यायों को सहन करते हुये पैर पीछे नहीं हटाया। इन सबके स्मरणीय चरित्र भारतवासियों के लिये सदैव प्रेरणादायक रहेंगे।

क्रान्तिकारी संघर्ष के कुछ सेनानी

ला० हर दयाल, श्यामजीकृष्ण वर्मा

भारत में जहाँ देश के नेता, कूटनीतियुक्त कार्यक्रमों, अहिंसा, असहयोग आदि के आन्दोलनों के माध्यम से और क्रान्तिकारी अपने ढंग से मातृ-भूमि की स्वतंत्रता के लिये कार्य कर रहे थे, वहाँ लाला हरदयाल विदेशों में रहकर भारत की स्वाधीनता के लिये प्रचार करते रहे। विदेशों में भारतीयों के लिये सहयोग, सहानुभूति, समर्थन के लिये वे सारे संसार में घूमे और भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की जानकारी विश्व को दी। इन्हीं की तरह श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा भी देश से बाहर रहकर भारत की सेवा करते रहे। संसार का लोक-मत भारत की स्वाधीनता के पक्ष में बनाने के लिये उन्होंने बहुत काम किया। उससे स्वाधीनता की घड़ी निकट आने में बड़ी सहायता मिली।

घोष-बन्धु

योगीराज अरविन्द का प्रारम्भिक जीवन एक क्रान्तिकारी के रूप में ही शुरू हुआ था। वे क्रान्तिकारियों के उच्चतम् सदस्यों में थे और क्रान्ति की योजना का सञ्चालन करते थे। इनके भाई बारीन्द्रकुमार घोष ने क्रान्तिकारियों का व्यवस्थित रूप से संगठन किया था और बम बनाने की फैक्टरी का निर्माण कर क्रांन्ति के लिये शस्त्रास्त्र उत्पादन में आत्म-निर्भर हुये।

शचीन्द्र नाथ सान्याल

शचीन्द्र नाथ सान्याल काकोरी षडयंत्र केस के सदस्य श्री बिस्मिल, लाहिड़ा, अशफाकउल्ला खाँ आदि के गुरु थे। क्रान्तिकारियों में प्राण फूँक कर उन्हें मातृभूमि की सेवा में लगाये रखने के लिये तथा मार्ग-दर्शन के लिये भी सान्याल सतत् संलग्न रहे।

खुदीराम बोस

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी खुदीराम बोस बम फेंकते हुये अंग्रेजों द्वारा पकड़ लिये गये, उन पर भी तरह-तरह के केस चला कर अन्त में मौत की सजा सुना दी गई। लेकिन आजादी के लिये मातृभूमि की सेवा में मरने का संकल्प लेकर चलने वाले बोस गीता को छाती से लगाकर फाँसी के फन्दे पर सहर्ष लटक गये।

कन्हाईलाल दत्त

श्री कन्हाई लाल दत्त सरकार के विरुद्ध क्रान्तियुक्त कार्यों में सक्रिय भाग लेने के कारण पकड़े गये और उन्हें भी फाँसी की सजा हुई। लेकिन जिन्हें अपने उद्देश्य प्रिय होते हैं, उन्हें मौत भी नहीं डरा सकती। श्री दत्त का फाँसी के हुक्म सुनने और फाँसी लगने की तारीख के बीच में कई पौण्ड वजन बढ़ गया था।

रामप्रसाद बिस्मिल

स्वाधीनता के लिये क्रान्तिकारियों के संगठन आवश्यक शस्त्रास्त्र आदि के लिये धन की भी अत्यन्त आवश्यकता पड़ती थी, जिसके लिये क्रान्तिकारी सरकारी खजानों को लूटने का दुःसाहसपूर्ण कार्य करते थे। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर काकोरी ट्रेन डकैती का काण्ड प्रसिद्ध है, जिसको रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र, लाहिडी, अशफाकउल्ला खाँ आदि ने कार्यान्वित किया था। चलती हुई ट्रेन को रोक कर उसमें जा रहे सरकारी खजाने को लूट लिया था। पकड़े जाने पर क्रूर अंग्रेजी सरकार ने इन्हें फाँसी पर लटका दिया था।

चन्द्र शेखर आजाद

चंद्रशेखर आजाद भारतीय-स्वाधीनता संग्राम के क्रान्तिकारियों में मूर्धन्य व्यक्ति थे। उन्होंने बड़ी कुशलता से देशव्यापी क्रान्ति के कार्यक्रम की रूपरेखा बनाई थी और देश के कोने-कोने घूम कर सारे देश में क्रान्तिकारियों को संगठित किया था। अंग्रेजी सरकार ने इन्हें जीवित पकड़ने के लिये बहुत प्रयत्न किये, बहुत बड़ा इनाम रखा। एक दिन इन्हें अकेले में अंग्रेजी पुलिस ने घेर लिया। किन्तु आजाद ने साहस नहीं छोड़ा और एक पेड़ की आड़ में से गोलियाँ चलाते रहे। उधर पुलिस वाले चारों ओर से गोलियाँ चला रहे थे। जब आजाद के पास एक कारतूस शेष रह गया, तो उसे अपने प्राण-विसर्जन का सहारा बना कर उन्होंने "जीवित न पकड़े जाने" की प्रतिज्ञा पूर्ण कर दिखाई। धर्म युद्ध के योद्धा चन्द्रशेखर आजाद आज नहीं हैं, पर उनकी कीर्ति अभी भी जीवित है और अनन्त काल तक जीवित रहेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वीर भगतसिंह

आजादी के दीवाने और मातृभूमि के भक्त-भगतसिंह ने जब पुलिस कप्तान सौण्डर्स के नेतृत्व में हुये लाठी चार्ज में लाला लाजपतराय की आहुति होते देखा तो उनका खून खौल उठा और सौण्डर्स को मार कर इसका बदला चुकाया। विदेशी कूटनीतिज्ञ जब ऐसेम्बली में बैठकर भारत को गुलाम बनाये रखने का कुचक्र रच रहे थे, उसी समय भगतसिंह ने ऐसेम्बली-भवन में बम फेंका और विदेशियों को चेतावनी दी कि भारतीय जनता अपनी स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करती रहेगी।

भगतसिंह पकड़े गये उन्हें फाँसी की सजा मिली। पर उससे क्या, धर्म-युद्ध के इस योद्धा की मृत्यु भी अनीति से लोहा लेने वाली आग को भड़काने में अनेक गुनी कारगर सिद्ध हुई।

तेजस्वी महात्माओं में से कुछ

जगद्गुरु शंकराचार्य

भारत में सनातन हिन्दू-धर्म का ह्रास हो गया था। श्री शंकराचार्य से यह सब नहीं देखा गया और उन्होंने कठोर तपस्या व ज्ञानवर्द्धन के पश्चात् धर्म के उत्थान का कार्यक्रम बनाया। महाराजा मान्धाता ने शंकराचार्य का शिष्यत्व ही ग्रहण नहीं किया वरन् एक शासक की हैसियत से सभी तरह की सुविधाएँ, सहयोग देकर धर्म उत्थान के आन्दोलन को सफल बनाया। शंकराचार्य जब भ्रान्तियों का शमन करने के लिये, दिग्विजय के लिये निकले तब मान्धाता ने अपनी सेना उनकी सुरक्षा के लिये दे दी और आवश्यक खर्च की भी व्यवस्था की। धर्म प्रचार में ऐसी सहायता करने वाले मान्धाता भी दिग्विजयी शंकराचार्य की तरह ही धन्य बने।

बत्तीस वर्ष की छोटी आयु में जगद्गुरु शंकराचार्य स्वर्गवासी हो गये। शारीरिक कष्ट रहते हुये भी उन्होंने अथक परिश्रम करके धर्म भावनाओं की प्रतिष्ठापना के लिये अपने समय में बहुत बड़ा कार्य किया। गृह सुख छोड़ संन्यास भी उन्होंने इसी उद्देश्य से लिया था।

मान्धाता की तरह ही राजा अशोक ने अपना राज्य, परिवार तथा सभी साधन, संसार भर में बौद्धधर्म के प्रसार के लिये लगा दिये थे और स्वयं एक सन्त की तरह रहता था। इस प्रकार अपने साधनों का धर्म स्थापना के लिये लगा देना भी धर्म योद्धाओं का ही साहसपूर्ण कार्य है।

समर्थ रामदास

समर्थ रामदास ने जहाँ शिवाजी को शक्तिबल के द्वारा देश की स्वतंत्रता के लिये प्रेरित किया वहाँ समाज में राष्ट्रीय चेतना पैदा करने एवं लोगों में शक्ति-साहस स्वातन्त्र्य की भावना भरने के लिये जनता-जर्नादन के बीच स्वयं जाकर कार्य किया। उन्होंने महाराष्ट्र में लगभग ८०० महावीर-मठ स्थापित किये। उनमें धर्म सैनिकों के निवास एवं निर्वाह की व्यवस्था रहती थी। भजन, कीर्तन, पूजा, पाठ प्रचार आदि के द्वारा ही ये धर्म सैनिक नवयुग का सन्देश सुनाते थे और लोगों में संगठन एवं अनुशासन की भावना पैदा करते थे। छत्रपति शिवाजी का स्वतंत्रता संग्राम इन महावीर मठों द्वारा ही पोषित होता था। सैनिक तथा धन इन्हीं स्रोतों से मिलता था।

गुरु गोविन्द सिंह

सिखों के धर्मगुरु तेगबहादुर को अपनी धार्मिक आस्थाओं के प्रति निष्ठावान् रहने और धर्म की रक्षा के लिये संघर्ष रत रहने के कारण मुगल बादशाह ने मरवा दिया। तेगबहादुर के पुत्र गोविन्द सिंह जी किशोरावस्था में ही थे लेकिन इस घटना का प्रभाव उन के मन पर ऐसा पड़ा कि उन्होंने अपने पिता के तरह ही आजीवन धर्म के लिये संघर्ष करने की प्रतिज्ञा की। गुरु गोविन्द सिंह ने सिखों का संगठन किया। सिखों में धार्मिक आस्था की जानकारी प्राप्त करने के लिये एक बार उन्होंने एक सभा बुलाई और धर्म के बलिदान करने के लिये लोगों को आह्वान किया। एक-एक करके पाँच व्यक्ति उठे और उन्होंने अपना जीवन समर्पित किया। गुरु गोविन्द सिंह जी के शिष्य "पंच प्यारे" के नाम से प्रसिद्ध हुये।

गुरु गोविन्द सिंह ने सिखों को संगठित करके मुगलों के प्रति ऐसा विद्रोह छेड़ा कि पञ्जाब में से उनके पैर उखड़ गये। गुरु गोविन्द सिंह के प्रयत्नों से ही सिख एक लड़ाका जाति बन सकी और राजा रणजीतसिंह के नेतृत्व में उनके शिष्यों का एक बड़ा राज्य कायम हो सका।

धर्म-रक्षा को गुरुगोविन्द सिंह ने ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ पूजा समझा और आजीवन उन्हीं भावनाओं को जन-मानस में भरते रहने के लिये प्रयत्न करते रहे। बालक हकीकतराय ने भी अपने प्राण देना स्वीकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया और धर्म त्यागकर मुसलमान बनने का भारी प्रलोभन ठुकरा दिया।

बन्दा वैरागी

बन्दा वैरागी एक साधु थे और एकान्त में अपना जीवन भगवद्भजन में बिताया करते थे। गुरु गोविन्द सिंह की एक बार वैरागी से मुलाकात हुई। उन्होंने एकान्त सेवन को आपत्ति काल में हानिकारक बताते हुये कहा- "बन्धु ! जब देश, धर्म, संस्कृति की मर्यादाएँ नष्ट हो रही हैं, हम गुलामी का जीवन बिता रहे हैं, आतताइयों के अत्याचार हम पर हो रहे हैं। तब तक यह भजन, पूजन, ध्यान, समाधि आदि किस काम के हैं ?" गुरु गोविन्द सिंह की युक्तियुक्त वाणी सुनकर बन्दा वैरागी उनके अनुयायी हो गए और गुरु की तरह उनने भी आजीवन देश को स्वतंत्र करने, अधर्मियों को नष्ट करने और संस्कृति की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की। इसी उद्देश्य के लिये बन्दा वैरागी आजीवन प्रयत्नशील रहे। मुसलमानों द्वारा वैरागी पकड़े गये, उन्हें एक पिंजरे में बन्द किया गया। मौत या धर्म परिवर्तन की शर्त रखी गई। लेकिन अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने वाले बन्दा अपने ध्येय से तिलमा भी विचलित नहीं हुये। अन्ततः आतताइयों ने उनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। बन्दा अन्त तक मुसकाते रहे।

फतेहसिंह जोरावर

भय, धन, पद के लालच से इसी सन्दर्भ में गुरुगोविन्द सिह के बच्चे फतहसिंह और जोरावर सिंह को भी मौत का भय दिखाकर मुसलमान बनने के लिये जोर डाला। किन्तु आदर्श बाप के बेटे अपने धर्म पथ से विचलित कैसे हो सकते थे। उन्हें जीवित दीवार में चिन दिया गया, लेकिन धर्म को छोड़ना उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

समाज-सुधारकों में से कुछ अग्रणी

स्वामी दयानन्द

स्वामी दयानन्द का उदय उस समय हुआ था जब भारत धर्म के नाम पर असंख्यों अन्ध-विश्वासों, बुराइयों का शिकार हो रहा था। धर्म गुरुओं द्वारा भारत की भोली जनता बुरी तरह ठगी जा रही थी, बहकाई जा रही थी। धर्म, अज्ञान, मूढता, अन्धविश्वास और ढोंग के रूप में परिणित होकर भारतवासियों के पतन का आधार बन रहा था। ऐसे समय इन सब बुराइयों का महर्षि ने दृढ़ता के साथ विरोध किया और सत्य धर्म का उपदेश देकर मूढ़ता एवं अज्ञान में डुबे भारत की आत्मा को जगाया। धार्मिक सामाजिक जीवन में जो चेतना आज दिखाई दे रही है, वह महर्षि के ही प्रयत्नों की देन है। इन सुधारवादी प्रयत्नों में स्वामीजी को बहुत बड़ा विरोध सहन करना पड़ा। इन्हें लोगों ने कई बार जहर दिया और अन्त में इसी से उनकी मृत्यु हो गई। विरोध का दृढ़ता से सामना करते हुये महर्षि आजीवन अपने ध्येय की पूर्ति में लगे रहे।

ठक्कर बापा

ठक्कर बापा गाँधी युग में हरिजनों के उद्धार कार्य के महान् सेनानी माने जाते हैं। जाति-पाँति, छुआ-छूत के रोग ने भारतीय समाज को किस बुरी तरह छिन्न-भिन्न, अस्त-व्यस्त एवं असंगठित बनाया है, इसका उन्हें बहुत दुःख था। आजादी के ऊषा काल में ठक्कर बापा ने देश की इस बुराई को समझा और जी जान से इन विषमताओं को मिटाने के लिये वे लग गये। हरिजन उत्थान एवं छुआछूत मिटाने के लिये उनने बहुत काम किया।

हरि विलास शारदा

जिनके द्वारा संविधान में प्रस्तुत शारदा एक्ट प्रसिद्ध है, वे भारत के महान व्यक्तियों में से हैं। उन्होंने बाल-विवाह की विकृतियों और इससे होने वाले समाज के पतन को देखा तो वे व्याकुल हो उठे और इसी की रोकथाम के लिये शारदा एक्ट प्रस्तुत किया, जिसमें विचारशील जनता से बहुत बड़ा समर्थन मिला। १४ वर्ष से कम आयु की लड़की और १८ वर्ष से कम उम्र के लड़कों को विवाह इस 'शारदा कानून' के अनुसार ही दण्डनीय अपराध बना।

महर्षि कर्वे

महर्षि कर्वे का नाम भारतीय नारी उत्थान के इतिहास में सर्वोपरि है।.उन्होंने भारत की स्त्रियों की दुर्दशा देखी तो उनकी आत्मा रो पड़ी। जिस पर देश की भावी पीढ़ियों के निर्माण का उत्तरदायित्व है जो हमारे समाज की प्रबन्धकर्ता हैं, गृहणी के रूप में उनकी दुर्दशा रहते हुये देश के उत्थान की कल्पना करना बड़ी भूल है। इसके लिये महर्षि ने नारी शिक्षा का आन्दोलन चलाया। कई कालेज, विद्यालय स्त्रियों की शिक्षा के लिये खोले गये। विधवाओं के उद्धार के लिये श्री कर्वे ने स्वयं एक विधवा से अपना विवाह कर उनके कष्ट निवारण का मार्ग प्रशस्त किया। इस सम्बंध में श्री कर्वे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को समाज के परम्परावादी अज्ञ लोगों से घोर अपमान और विरोध का सामना करना पड़ा, जिसे उन्होंने सरलता से सहन किया और अपनी ध्येय पूर्ति में लगे रहे।

स्वामी श्रद्धानन्द

स्वामी श्रद्धानन्द ने देश में शिक्षा प्रसार, स्वाधीनता संग्राम, हिन्दू धर्म के उत्थान के लिये बहुत बड़ा काम किया। गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना करके उन्होंने भारतीय धर्म और संस्कृति के शिक्षण की व्यवस्था की। जो जबरन विधर्मी बना लिये गये थे, उन्हें स्वामी जी ने शुद्ध करके हिन्दू समाज में पुनः स्थान दिलाने का आन्दोलन चलाया। हिन्दू धर्म के द्वार विधर्मियों के प्रवेश के लिये खुल गये। इससे हिन्दू समाज का बड़ा हित हुआ। एक धर्मान्ध मुसलमान के हाथों स्वामी जी को बलिदान होना पड़ा। स्वामी जी आजीवन देश की सेवा में लगे रहे।

पंजाब के दो महात्मा

महात्मा हंसराज और गोस्वामी गणेशदत्त ने पंजाब, दिल्ली तथा इनके आस पास के क्षेत्रों में धर्म के शिक्षण एवं मातृभाषा हिन्दी के प्रसार के लिये बहुत बड़ा काम किया था। इनमें महात्मा हंसराज आर्य समाजी विचारधारा के थे और गोस्वामी सनातन विचारधारा के, किन्तु दोनों ही अपने-अपने ढंग से इस दिशा में कार्य करते रहे।

गोस्वामी जी ने सनातन-धर्म-सभा की स्थापना की, जिसके अन्तर्गत अनेकों धर्म-संस्थान, शिक्षण संस्थान, पाठशालाऐं, जन-सेवी केन्द्र कार्य कर रहे हैं। महात्मा हंसराज ने "दयानन्द कालेज" स्थापित किया। दोनों ने धर्म प्रचार के लिये बड़ी लगन से काम किया। इन्हें इस युग के ऋषि ही कहना चाहिये।

राजा राममोहन राय

सन् १८११ की बात है, राजा राममोहनराय के बड़े भाई जगमोहनराय की मृत्यु हो गई । उस समय विधवा को भार रूप समझ कर, उसके जीवन भर के खर्चों से छुटकारा पाने के लिए धर्मध्वजी लोगों ने सती प्रथा का चारों ओर बोल-बाला कर रखा था। जगमोहनराय की विवाहिता स्त्री को कुटुम्बियों ने पति के साथ सती होने के लिए बढ़ावा दिया, वह बेचारी किसी प्रकार तैयार हो गई।

चिता में आग लगाई गई। अग्नि की कराल लपटों का जब उस अबोध बाला से स्पर्श हुआ तो उसका धैर्य टूट गया। वेदना से व्याकुल होकर वह चिता में से जलती-बलती हुई बाहर दौड़ी, पर इससे तो धर्मध्वजियों की नाक ही कट जाती। कुटुम्बियों ने बाँस मार-मार कर उसका सिर तोड़ दिया और उस अधजली को फिर चिता में झोंक दिया। 'सती' की आर्त वाणी उपस्थित लोगों को सुनाई न पड़े, इसलिये बड़े जोर-जोर से बाजे बजाने की व्यवस्था नियत परम्परा के अनुसार हो रही थी।

राममोहनराय उस समय छोटे ही थे। उन्होंने धर्म के नाम पर शैतान को ताण्डव-नृत्य करते देखा तो आँखों में खून के आँसू उतर आये। वह मनुष्य ही क्या जिसकी भुजाएँ अनीति को देखकर न फड़क उठें। भावज की नृशंस हत्या को देखकर राय की छाती में ज्वालामुखी जल उठा, उन्होंने चिता की परिक्रमा करके श्मशान भूमि में ही प्रतिज्ञा की कि जब तक इस नर-हत्या की नृशंस प्रथा का अन्त न कर लूँगा तब तक चैन से न बैठूँगा।

सब लोग जानते हैं कि राजाजी ने सती प्रथा बन्द कराने के लिए अथक परिश्रम किया। देश भर में आन्दोलन करके लोकमत तैयार किया और सरकार पर प्रभाव डालकर इस हत्याकाण्ड को रोकने का कानून बनवा दिया। भावज के सती होने से १९ वर्ष के अन्दर वह प्रथा उन्होंने बन्द करा दी, इस बीच में एक भी दिन ऐसा न गया जब उन्होंने प्रतिज्ञा पालन के लिए कुछ प्रयत्न न किया हो।

सच्ची लगन रखने वाले वे व्यक्ति जो अपने अन्दर मनुष्यता के गुण धारण किये हुए हैं, निस्सन्देह अपनी प्रतिज्ञा को पूरा कर ही लेते हैं और ईश्वर उनके कामों में भरपूर सहायता देता है।

ईश्वरचन्द विद्यासागर

पं० ईश्वरचन्द विद्यासागर अपने एक शिक्षक श्री शम्भुचन्द वाचस्पति का बहुत आदर करते थे और उनको पिता तुल्य मानते थे। उनकी पत्नी का देहान्त हो जाने पर कुछ लोगों ने उन्हें पुनः विवाह कर लेने की राय दी । वाचस्पतिजी भी विद्यासागर को पुत्र तुल्य मानते थे और हर बात में उनकी राय लेते थे। विवाह के विषय में भी उन्होंने चर्चा की। विद्यासागर ने अपने शिक्षक के स्नेह और बड़प्पन का बिना ख्याल किये हुए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुनर्विवाह करने में असहमति प्रकट करते हुए स्पष्ट कह दिया कि इस आयु में विवाह करने का अर्थ है- किसी निरपराध कन्या को कष्टों की धधकती हुई भट्टी में झोंक देना।

किन्तु वृद्ध वाचस्पतिजी पर दूसरों का जादू चढ़ चुका था। अस्तु उन्होंने विद्यासागर की बात न मानी और एक गरीब ब्राह्मण की कन्या से विवाह कर ही लिया। विद्यासागर को उनकी इस बात से इतना दुःख हुआ कि उन्होंने अपने उन शिक्षक से आजीवन सम्बन्ध विच्छेद कर लिया।

विधवा विवाह को कानूनी मान्यता प्रदान कराने में ईश्वरचन्द विद्यासागर ने जो प्रयत्न किया उसके लिए भारत की नारी उनकी सदा ऋणी रहेगी।

कस्तूरीबाई

भावनगर की खेडियार माता के मन्दिर में चण्डी-पाठ की पूर्णाहुति पर एक बकरे की बलि दी जाने को थी। उसी समय चण्डी के सामने ब्राह्मण बालिका कस्तूरी बाई खड़ी हो गई और बोली यदि मांस ही चढ़ाना है तो बकरे की जगह ब्राह्मणी का चढ़ेगा। लोगों ने बहुत डराया, धमकाया पर बालिका टस से मस न हुई। अन्त में निराश होकर लोगों को बलि का विचार बदलना पड़ा। महाराज को खबर पड़ी तो वे बालिका पर प्रसन्न हुये और उस समय से बलि प्रथा ही बन्द करा दी।

मनस्वी म्रियते कामं कार्यण्यं तु न गच्छति ।
अति निर्वाणमायाति नानलो याति शीतताम् ।।

उच्च मन वाले मनस्वी मनुष्य मर भले ही जाँय परन्तु वे कभी भी कृपणता तथा कायरता नहीं करते जैसे अग्नि बुझ भले ही जाय पर शीतल नहीं होती।

यदा मानं लभते माननार्हस्तदा सर्वं जीवति जीव लोके ।
यदावमानं लभते महान्तं तदा जीवन्मृत इत्युच्यते सः ।।

जब तक इस संसार में सम्माननीय पुरुष का समुचित सम्मान रहता है तभी तक वह जीवित रहता है। जब उसका लोग तिरस्कार करने लगते हैं तो चाहे भले ही वह जीवित भी रहे मृतक के समान ही होता है।

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः ।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति ।।

मनुष्य के शरीर में रहने वाला आलस्य ही मनुष्यों का सब से बड़ा शत्रु है और उद्यम के समान कोई भी मनुष्य का बन्धु नहीं है, जिसको बन्धु बनाकर मनुष्य दुःख नहीं पाता।

अलसस्य कुतो विद्या ह्यविद्यस्य कुतो धनम् ।
अधनस्य कुतो मित्रममित्रस्य कुतः सुखम् ।।

आलसी मनुष्य को विद्या नहीं मिलती और जो विद्या से हीन है उसे धन नहीं मिलता। निर्धन का कोई मित्र नहीं होता और जिसके मित्र नहीं हैं वह सुखी नहीं होता।

चलन्तु गिरयः कामं युगान्त पवना हताः ।
कृच्छ्रेऽपि न चलत्येव धीरणां निश्चितं मनः ।।

प्रलय काल की पवन से पर्वत तो एक बार भले ही विचलित हो जाये, परन्तु धीर पुरुष के मन का निश्चय कष्ट में भी विचलित नहीं होता।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव व मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीरा ।।

नीति में निपुण पुरुष चाहे निन्दा करें या प्रशंसा करें, लक्ष्मी अपनी इच्छा के अनुसार चाहे आये या चली जाय, आज ही मरण हो जाय या युगान्तर में होवे, धीर पुरुष न्याय-पथ से एक पैर भी इधर-उधर नहीं होते।

आलस्यं यदि न भवेज्जगत्यनथः ,
को न स्यादबहुधनः को बहुश्रुतो वा ।
आलस्यादियमवनिः ससागरान्ता,
सम्पूर्णा नरपशुभिश्च निर्धनैश्च ।।

इस संसार में यदि आलस्य रूपी अनर्थ नहीं होता तो कौन बहुत धन वाला और बहुश्रुत अर्थात् विस्तृत ज्ञान वाला न हो जाता ? एक आलस्य ही के कारण सागर पर्यन्त यह समस्त पृथ्वी दरिद्री और पशु के समान रहने वाले मनुष्यों से भरी पड़ी है।

उत्साह सम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम् ।
शूरं कृतज्ञं दृढ़सौहृदं च लक्ष्मीः स्वयं वाञ्छति वासहेतोः ।।

उत्साहपूर्ण, शीघ्र कार्य करने वाला, कर्म करने की उचित विधि को जानने वाला, निर्व्यसनी, शूर, कृतज्ञ और दृढ़ मित्रता करने वाले व्यक्ति के पास निवास करने की लक्ष्मी स्वयं इच्छा किया करती है। अर्थात् उपयुक्त गुण सम्पन्न पुरुष पर लक्ष्मी स्वयं ही कृपा करती है।

निराशायाः समं पापं मानवस्य न विद्यते ।
तां समूलं समुत्सार्य ह्याशावादपरा भव।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निराशा वादिनो मन्दा मोहावर्त्तेऽत्र दुस्तरे।
निमग्ना अवसीदन्ति पङ्के गावो यथावशाः ।।

निराशा के समान मनुष्य के लिये कोई पाप नहीं। अतएव पापिनी निराशा को समूल नष्ट करके आशावादी बनना चाहिए। प्रगतिहीन निराशावादी व्यक्ति अज्ञान के दुर्लघ्य भँवर में पड़े हुये कीचड़ में फँसी गायों की भांति विवश होते हैं। आशा सर्वोत्तम प्रकाश और निराशा घोर अन्धकार है।

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः ।
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति ।।

उत्साहहीन, दीन और शोक से व्याकुल व्यक्ति के सब काम बिगड़ जाते हैं और वह स्वयं कष्ट को प्राप्त होता है।

दोषभीतेरनारम्भस्त्वत्कापुरुषलक्षणम् ।
कैरजीर्णभयाद्भ्रातर्भोजनं परिहीयते ।।

दोष के डर से किसी काम को नहीं करना यह कायर पुरुष का चिन्ह है, हे भाई ! अजीर्ण के डर से कौन भोजन को छोड़ते हैं ?

दोहा-

कार्य करे नहीं दोष-भय, कायर की पहिचान ।
भोजन तजता कौन जन, अनपच कर डर मान ।।
प्रकृति वीर कौ अन्त हूँ, परत मन्द नहिं तेज ।
नहिं चाहत चन्दन चिता, छांड़ भीष्म शर सेज ।।
डरै न काहू दुष्ट सों, लरै लोभ तन खोय ।
करै न शका काल की युवक सराहिय सोय ।।
करै न कबहूँ साहसी, नीच पतित दुर काज ।
भूख सहै पर घास को, नहीं भाखै मृगराज ।।
बिना तेज के पुरुष की, अवसि अवज्ञा होय ।
आग बुझे ज्यों राख कों, आनि छुवै सब कोय ।।
तुलसी हरि दरबार में, कमी वस्तु कुछ नाहिं ।
कर्म हीन कलपत फिरत, चूक चाकरी मांहिं ।।
बिना प्रयत्न न होत हैं, कारज सिद्ध निदान ।
चढ़ै धनुष हू ना चलै, बिना चलाये बान ।।
विद्या धन उद्यम बिना, कहौ जु पावै कौन ।
बिना डुलाये ना मिले, ज्यों पंखा की पौन ।।
यत्न बिना कैसे मिले, कोई वस्तु नवीन ।
बिना यत्न पाता नहीं तिल से तेल प्रवीन ।।
जग रूठै रूठो करै, नहिं छोड़ै निज टेक ।
ऋषि ऐसे नर शेर को रखवारो प्रभु एक ।।
जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहिरे पानी पैठ ।
मैं बौरी खोजन चली, गई किनारे बैठ ।।

भय बिन प्रीत नहीं होती। लोग अपने उचित कर्तव्यों की भी उपेक्षा करने लगते हैं इसलिये आलस एवं उपेक्षा भी अधर्म के ही अंग माने गये हैं और इन्हें न बढ़ने देने एवं जो इस प्रकार आचरण करे उनकी प्रताड़ना करने की भी आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया है।

सुग्रीव राज्य पाकर सीता की खोज करने की अपनी प्रतिज्ञा को भूल बैठा तब लक्ष्मणजी ने उसकी प्रताड़ना करने का निश्चय किया।

सुग्रीवहूँ सुधि मोरि बिसारी ।
पावा राज कोस पुर नारी ।।
लछिमन क्रोधवन्त प्रभु जाना।
धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना ।।
तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुना सींव ।
भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव ।।
इहाँ पवनसुत हृदय विचारा ।
राम काजु सुग्रीव बिसारा ।।
सुनि सुग्रीवँ परम भय माना ।
विषयँ मोर हरि लीन्हेउ ग्याना ।।
अब मारुतसुत दूत समूहा ।
पठवहु जहँ तहँ बानर जूहा ।।
तब हनुमन्त बोलाए दूता।
सब कर करि सनमान बहूता ।।
भय अरु प्रीति नीति देखराई ।
चले सकल चरनन्हि सिर नाई ।।
एहि अवसर लछिमन पुर आए।
क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाए ।।

दोहा-

धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करउँ पुर छार ।
व्याकुल नगर देखि तब आयउ बालिकुमार ।।

समुद्र लाँघते समय जामवन्त ने हनुमान जी को सम्बोधन करते हुए कहा कि-

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना।
का चुप साधि रहेउ बलवाना ।।
पवन तनय बल पवन समाना ।
बुधि विवेक विग्यान निधाना ।।
कवन सो काज कठिन जग माहीं ।
जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राम काज लगि तब अवतारा।
सुनतहिं भयउ पर्वताकारा ।।
कनक बरन तन तेज बिराजा ।
मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा ।।

सिंहनाद करि बारहिं बारा ।
लीलहिं लाघेउँ जलनिधि खारा ।।

।। दूसरा प्रवचन समाप्त ।।

तीसरा-प्रवचन
दुर्गुणों से सर्वनाश

श्रीभगवानुवाच

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुदभ्वः ।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ।।

-अध्याय ३ श्लोक ३७

श्री भगवान बोले ! यह काम है यह क्रोध है जो रजोगुण से उत्पन्न होता है। यह भोगों से कभी तृप्त न होने वाला और महापापी है। इसको तू महा बैरी जान।

आमतौर से बैरी उन मनुष्यों को कहा जाता है, जो अपने से द्वेष भाव रखते हैं, हानि पहुँचाने या नष्ट करने की चेष्टा करते हैं। यह मोटी परिभाषा हुई। बारीकी से देखने पर यह परिभाषा मनुष्यों तक ही सीमित नहीं रहती वरन् और भी बड़ी हो जाती है। सिंह, व्याघ्र, सर्प, बिच्छू आदि भी एक प्रकार से बैरी ही हैं जो अवसर मिलते ही आक्रमणकारी बन जाते हैं। शरीर में उत्पन्न होने वाले रोगों को यदि बैरी कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी क्योंकि बैर रखने वाले मनुष्य जिस प्रकार कष्ट देते हैं, धन, समय और प्राण का संकट उत्पन्न करते हैं इसी प्रकार वे रोग भी करते हैं।

यह दीख पड़ने वाले बैरी हैं। इनके अतिरिक्त ऐसे भी अनेके बैरी होते हैं जो दीखते नहीं, पहचान और पकड़ में भी नहीं आते पर हानि इतनी अधिक पहुँचाते हैं कि जितनी यह दीख पड़ने वाले बैरी भी नहीं कर पाते। गुण, कर्म, स्वभाव के दोष, मनोविकार इसी प्रकार के बैरी हैं। इनके द्वारा मनुष्य का जितना बड़ा अहित होता है उतना और किसी प्रकार नहीं हो सकता। आन्तरिक शत्रु बाह्य शत्रुओं से अधिक हानि पहुँचाते हैं क्योंकि वे निशि दिन समीप ही नहीं, साथ भी रहते हैं। अग्नि जहाँ रहती है पहले वहीं जलाती है, तेजाब जिस पात्र में रखा जायगा पहले उसी को खायगा, धुआँ जहाँ उठेगा पहले वहीं काला करेगा। इसी प्रकार आन्तरिक शत्रु, गुण, कर्म, स्वभाव में रहने वाले दोष पक्के बैरी का काम करते हैं। बाहरी बैरी दीख पड़ते हैं, उनकी गतिविधियाँ समझ में आ जाती हैं इसलिए उनका प्रतिरोध भी सरल पड़ता है। किन्तु जो दीख ही न पड़े, सूझ ही न पड़े, समझ में ही न आवे उनका प्रतिरोध कैसे हो ? बाहरी शत्रु अवसर मिलने पर ही आक्रमण करते हैं पर भीतरी शत्रु तो लकड़ी में लगे धुन की तरह मनुष्य के व्यक्तित्व को भीतर ही भीतर खोखला करते रहते हैं। इसलिए इन से पीछा छुड़ाना आवश्यक है। न छुड़ाया जाय तो भविष्य के अन्धकारमय बने रहने में कुछ सन्देह नहीं रहता।

पाँच पाण्डव सौ कौरवों से लड़ने खड़े हुए थे। उन्हें दैवी और आसुरी शक्तियाँ ही कहना चाहिए। धर्म, शौर्य, श्रम, विवेक और संयम यही पाँच पाण्डव हैं। उन्हें दैवी शक्तियाँ कहना चाहिए। आवेश, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, मद, मत्सर, छल, दम्भ, निष्ठुरता, उच्छृंखलता आलस, तृष्णा, वासना, लोभ मोह, चिन्ता, भय, निराशा, कायरता, कटुता, असहिष्णुता आदि कौरवों की संख्या सौ क्या उससे भी अधिक गिनाई जा सकती है। पाण्डवों को इन्हीं से लड़ना पड़ा था यदि लड़ा न जाता तो कौरवों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का ही सारा आधिपत्य हो जाता । पाण्डवों के पास सुई की नोंक भर भी स्थान शेष न रहता।

दो परस्पर विरोधी तत्वों में से एक ही प्रबल रह सकता है। जब रात्रि होती है तब दिन नहीं रहता और जब दिन होता है तब रात्रि नहीं रहती। जब क्रोध आता है तब प्रसन्नता नहीं रहती और प्रसन्नता रहती है तब क्रोध नहीं आता। हँसना और गाल फुलाना दोनों एक साथ नहीं हो सकते। इसी प्रकार दैवी और आसुरी शक्तियाँ का एक साथ निर्वाह नहीं। पुराणों में वर्णित अगणित कथाओं में इसी देवासुर संग्राम का वर्णन है। जब यह बन्द हो जाता है तब असुरता दिन-दिन बढ़ने लगती है और अपनी प्रबलता के कारण वह देवताओं को परास्त करने में सफल हो जाती है। बेचारे देवताओं को तप करना पड़ता है, ईश्वर का सहारा लेना पडता है तब वे धर्म युद्ध फिर आरम्भ करते हैं और अपने स्वर्ग राज्य को पुन: प्राप्त करते हैं। पौराणिक देवासुर संग्रामों की प्रत्येक गाथा की, यही पृष्ठ भूमि है। पाण्डवों को यही करना पड़ा। इनने कृष्ण का सहारा लिया और अज्ञातवास में रहकर तपश्चर्या की एवं सनातन कर्तव्य-पथ को अपना कर धर्म युद्ध के लिए कटिबद्ध हो गये, फलस्वरूप उन्हें विजय श्री उपलब्ध हुई।

तत्वत: दैवी शक्तियों में आसुरी शक्तियाँ से कहीं अधिक बल है। पर उनकी शिथिलता एवं अस्तव्यस्तता ही उनके पिछड़ जाने का कारण बनती है। आसुरी शक्तियाँ तत्वत: बहुत दुर्बल हैं, उनकी सत्ता बहुत ही क्षीण है। पर अपनी चैतन्यता और तत्परता के कारण वे बहुत जल्दी बढ़ जाती हैं। यही तत्परता जब दैवी-शक्तियों में उत्पन्न हो जाती है तो सहज ही इतनी प्रबल हो जाती हैं कि आसुरी शक्तियों को सरलतापूर्वक परास्त कर सकें। प्रत्येक देवासुर संग्राम में होता भी यही रहा है।

गीताकार ने इन मनुष्य के शत्रु आन्तरिक असुरों का कई जगह कई तरह विभाजन किया है। यहाँ इस श्लोक में उन्हें काम और क्रोध में बांट दिया है। काम अप्रकट है और क्रोध प्रकट। इस प्रकार उन्हें भीतरी और बाहरी भी कह सकते हैं। कोई दोष जब तब भीतर ही भीतर छिपा रहता है बाहर प्रकट नहीं होता, विचार क्षेत्र पर ही उसका अधिकार होता है तब तक उसकी संज्ञा 'काम' रहती हैं और जब वह बाहर प्रकट होकर दूसरों के साथ टकराता है और अनीतियुक्त दुर्घटनाऐं उत्पन्न करता है तब वह क्रोध बन जाता है। इस प्रकार मानसिक दोषों को कम और व्यावहारिक दोषों को अधिक कह सकते है। चोरी, व्यभिचार, हिंसा, नशा, ठगी, जुआ आदि कुकर्मों को क्रोध वर्ग में रखा जा सकता है और इर्ष्या, द्वेष, लोकभय, असंयम, आलस आदि को काम वर्ग में गिना जा सकता है। यही वर्गीकरण गीताकार ने यहाँ काम, क्रोध, लोभ के नाम से किया है। इसे भावनात्मक, प्रलोभनात्मक और कुकर्मात्मक प्रकृति के कारण तीन गुणों में हुआ विभाजन मान सकते हैं।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मन: ।
काम: क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।।

(अध्याय १६/२२)

काम, क्रोध और लोभ ये तीनों नरक के द्वार हैं, आत्मा का नाश करने वाले हैं, इसलिए इनका त्याग कर देना चाहिए।

कहीं यह शृंखला और भी बड़ी कर दी गई है तथा एक से दूसरे का सम्बन्ध बनाकर क्रमश: इस श्रृंखला की अभिवृद्धि को मानवीय सत्यानाश का कारण बताया है। यथा-

ध्यायतो विषयान्पुंस: सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्संजायते काम: कामात्क्रोधोऽभिजायते ।।

(अध्याय २।६२)

"विषयों का ध्यान करने वाले पुरुष का उनमें (विषयों में) संग उत्पन्न हो जाता है, संग से काम उत्पन्न होता है, काम से क्रोध उत्पन्न होता है।"

क्रोधाद्भवति संमोह: संमोहात्स्मृतिविभ्रम: ।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।

(अध्याय २।३१)

"क्रोध से सम्मोह (अविवेक)पैदा होता है, सम्मोह से स्मृति का भ्रंश और स्मृति भ्रंश से बुद्धि का नाश होता है, और बुद्धि के नाश से वह आप नष्ट हो जाता है।"

यह वर्गीकरण केवल सुविधा और समझने की दृष्टि से है। तथ्य यह है कि मनुष्य के भीतर तथा समस्त संसार में दैवी और आसुरी शक्तियों की सत्ताऐं काम कर रही हैं और जब कभी असुरता की प्रबलता होजाती है तो दु:ख दारिद्र, रोग, शोक, क्लेश, कलह, अनिष्ट संकट का ठिकाना नहीं रहता। चारों ओर अगणित आपत्तियों की बाढ़ आ जाती है और सत्यानाशी विभीषकायें सामने आकर खड़ी हो जाती हैं। इसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपरान्त जब दैवी शक्तियाँ प्रबल होती हैं तो सुख, शान्ति, समृद्धि सफलता, सहयोग, सद्भावका उल्लासमय वातावरण चारों ओर निखरा पड़ा दिखाई देता है। स्वर्ग की सुखद परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इस प्रतिफल को देखते हुए ही आसुरी शक्तियों को नरक का द्वार और दैवी शक्तियों को स्वर्ग का सोपान कहा गया है।

विवेकशील व्यक्ति को यह निश्चय करना चाहिये कि उसे स्वर्ग प्रिय है या नरक। नारकीय आग में जलते रहना हो तो आसुरी गुण, कर्म, स्वभाव को अपनाये रहना चाहिये। वे अपने आप बढ़ते हैं और सर्वनाश का संकट स्वयं ही पैदा कर देते हैं। यदि स्वर्गीय परिस्थितियाँ अभीष्ट हों तो अपनी दैवी सम्पदाओं को बढ़ाना चाहिए। उन्हें इतना समर्थ बनाना चाहिये कि आसुरी शक्तियों से भली प्रकार टक्कर ले सकें। यदि वे दुर्बल बनी रहीं तो इस टक्कर में अभीष्ट परिणाम न निकलेगा। जितनी प्रबल आसुरी शक्तियाँ हैं उतनी ही प्रबल दैवी शक्तियों को भी बनाना होगा। सौ कौरवों से साधारण श्रेणी के पाँच सिपाही लड़ा दिया जाते तो वे विजय प्राप्त नहीं कर सकते थे। पाण्डवों के पास समुचित बल था उसी से वे उपयुक्त टक्कर ले सके। धर्म, शौर्य, श्रम, विवेक और संयम इन पाँचों पाण्डवों को हमें तपश्चर्या एवं ईश्वरीय आलम्बन के सहारे प्रबल बनाना चाहिए और साहसपूर्वक आन्तरिक दुर्बलताओं को परास्त करने का धर्मयुद्ध आरम्भ कर देना चाहिए। भगवान ने इसी के लिए अर्जुन को प्रबल प्रेरणा दी है। उस जीवन की सफलता एवं लक्ष्य प्राप्ति की अनिवार्य आवश्यकता के रूप में धर्मयुद्ध को सामने प्रस्तुत किया है।

गीता का महाभारत वस्तुतः अन्तः प्रदेश में चलने वाला दैवी आसुरी शक्तियों का धर्म युद्ध है। यों यह किसी न किसी रूप में सदा ही चलता रहता है। अन्तःरात्मा प्रत्येक कुविचार और कुकर्म के लिए उसे धिक्कारती रहती है और अपनी छोटी-सी आवाज असुरता के प्रतिरोध के लिए उठाती रहती है, पर इतने मात्र से काम नहीं चल सकता। श्रेयार्थी को पूरी तत्परता के साथ मोर्चेबन्दी खड़ी करके क्रमबद्ध, सुव्यवस्थित संग्राम खड़ा करना होता है। साधना इसी धर्मयुद्ध का नाम है। साधना को समर भी कहा गया है। 'साधन समर' शब्द आध्यात्म जगत में बहु श्रुत और बहु प्रचलित बना हुआ है। आत्मा जब दुर्गा की तरह प्रबल बनकर असुरों पर आक्रमण करती है तभी अहंकारी शुंभ, निशुंभ, मधुकैटभ, महिषासुर आदि का दर्प चूर्ण होता है। तपस्वी दधीचि की हड्डियों से बना हुआ वज्र ही वृत्रासुर विजय का कारण बना था। हम तपश्चर्या के लिए जितनी ही अधिक श्रद्धा एवं आस्था प्रबल करेंगे उतना ही मनोबल बढ़ेगा और उस बढ़े हुए मनोबल के आधार पर ही धर्म-युद्ध जीता जा सकेगा।

ईश्वर सहायता करने को तैयार बैठा है। वह सारथी बनने, रथ चलाने, मार्ग दर्शन देने, सहयोग करने के लिए तैयार बैठा है पर यह सब करता उसी के लिए है जिसने धर्मयुद्ध करने के लिए प्राणपण से प्रतिज्ञा कर ली हो। जो पहले से ही हिम्मत हार बैठा हो, ईश्वर ही सब कुछ करके रख जाय यह आशा लगाये बैठा हो, पुरुषार्थ के लिए तत्पर न होता हो, संघर्ष के समय आने वाली अड़चनों से टकराने को तैयार न हो, ऐसे कायर की भगवान भी मदद नहीं करते। भगवान ने अर्जुन की सहायता की, उसे विजयी बनाया पर यह सब किया तभी, जब अर्जुन ने गांडीव उठाया, पाञ्चजन्य बजाया। यदि अर्जुन ऐसा न करता, अकर्मण्यता और कायरता का परित्याग न करता तो यह भी निश्चित ही था कि भगवान उसकी कुछ भी मदद न करते और नारकीय अग्नि में जलते मरते रहने वाले अगणित अन्य प्राणियों की तरह वह भी किसी प्रकार मौत के दिन पूरे करते हुए इस दुनियाँ से विदा हो गया होता। भगवान का प्रिय सखा, शिष्य एवं महाभारत के विजेता के रूप में उसे जो श्रेय मिला वह कदापि न मिला होता।

गीता काम और क्रोध को कुविचारों और कुकर्मों को त्यागने का सन्देश देती है। इन बैरियों को मार भगाने के लिए निर्देश करती हैं। हमें भगवान के वचन और सन्देश को शिरोधार्य करना चाहिये और जीवन शोधन के लिए आन्तरिक दुर्बलताओं को परास्त करने के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिये।

उपरोक्त दोषों से होने वाली हानियों और बुराइयों के कुछ दृष्टान्त, प्रमाण, अनुवचन यहाँ दिये जाते हैं-

कामुकता का दावानल

(कामुकता मनुष्य के पतन का कारण बनती है। दाम्पत्ति जीवन में पति-पत्नी को समान रूप से अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए और नारी मात्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के प्रति पवित्र दृष्टि रखनी चाहिए। इसी में मनुष्य का कल्याण है जो इस मर्यादा को त्याग कर दुराचार की ओर बढ़ते हैं, उससे उनका शरीर, मन, यश और धर्म सभी नष्ट होता है। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।)

कामी चन्द्रमा और इन्द्र को गौतम का शाप

महर्षि गौतम नित्य प्रति ब्रह्म मुहूर्त में मुर्गे की आवाज सुन कर गंगा स्नान के लिए जाया करते थे। उनकी स्त्री अहिल्या अत्यन्त रूपवती थी। इन्द्र और चन्द्रमा की नीयत उस पर खराब हो गई। एक दिन उन्होंने एक षड़यन्त्र रचा। चन्द्रमा ने अर्द्धरात्रि के समय मुर्गे की तरह बाँग लगाई। नित्य की तरह गौतम स्नान के लिए चल दिए। तत्पश्चात् इन्द्र और चन्द्रमा ने गौतम का स्वरूप धर कर क्रमशः अहिल्या का सतीत्व नष्ट किया। अनजान अहिल्या इस षड़यन्त्र को जान न सकी। उधर महर्षि गौतम को रात्रि का समय अधिक लगा और किसी अशुभ घटना की कल्पना से वे वापिस घर आ गये। चन्द्रमा और इन्द्र छिप न सके महर्षि ने सारी बात समझ ली और चन्द्रमा को कलंक का, इन्द्र को सहस्र भग का तथा अहिल्या को पत्थर की शिला हो जाने का श्राप दे दिया। वासना के कारण धर्म-नीति, विवेक का त्याग करने वालों का पतन इसी तरह होता है।

भस्मासुर का सर्वनाश

भस्मासुर ने विकट तपस्या की और शिवजी से अपना यह मनोवाञ्छित वरदान पाया कि वह जिसके ऊपर हाथ रख देते वही जल कर भस्म हो जाय। अभीष्ट वरदान पा कर सभी दुष्टों की तरह भस्मासुर के अहंकार का ठिकाना न रहा। वह पार्वती के सौंदर्य पर मुग्ध हो कर उन्हें हरण करने की सोचने लगा। शिवजी के शिर पर हाथ रख कर उसने उन्हें ही जला डालना चाहा ताकि पार्वती के मिलने में फिर कोई कठिनाई न रहे।

शिवजी को संकट में पड़ा देख भगवान ने उनकी सहायता की। पार्वती का रूप बना कर वे भस्मासुर के पास पहुँचे और कहा - जैसा मैं नृत्य करती हूँ वैसा ही तुम भी करो तो मैं शंकर को छोड़ तुम से विवाह कर लूंगी। भस्मासुर तैयार हो गया। उसने पार्वती वेषधारी भगवान की तरह नाचना शुरू कर दिया। भगवान शिर पर हाथ रख कर नाचे। भस्मासुर को वरदान का स्मरण न रहा। उसने अपने शिर पर जैसे ही हाथ रखा कि वह जल कर नष्ट हो गया।

कृतघ्न और सत्तामद से चूर अविवेकी व्यक्तियों का बल-वैभव भी उनके नाश का कारण बनता है।

वासना का दावानल

सुन्द और उपसुन्द ने तपश्चर्या के प्रभाव से ब्रह्माजी द्वारा यह वरदान प्राप्त कर लिया था कि वे एक दूसरे के मारने से ही मरेंगे अन्य किसी से नहीं। दोनों भाई वर प्राप्त कर अपने आसुरी स्वभाव के कारण देवताओं के विरुद्ध संघर्ष करने लगे, सज्जन सन्तजनों को दुःख देने लगे। सर्वत्र भय और आतंक का साम्राज्य छा गया। दुष्ट लोग शक्ति पा कर उसे दुष्टतापूर्ण कार्यों में ही लगाते हैं, अस्तु विवेकी जनों को चाहिए कि वे उनकी शक्ति सम्पन्न होने से पहले ही कुचल दें। आखिर एक दिन वह भी आया जब असुरता को अपने ही हाथों नष्ट होना पड़ा। भगवान की माया एक सुन्दरी के रूप में सामने आई। उस तिलोत्तमा नामक सुन्दरी को देख कर सुन्द और उपसुन्द दोनों उसके लिए परस्पर लड़ पड़े और एक दूसरे के हाथ से मारे गये। सचमुच कामादि विकार इतने प्रबल होते हैं कि इनसे शक्तिशाली व्यक्तियों का भी क्षण भर में नाश हो जाता है।

दुष्टता पतन का कारण

राजा नहुष ने अपने पुरुषार्थ से इन्द्र पद प्राप्त किया। क्षुद्र व्यक्ति जैसे उच्च पद पाकर निरंकुश हो जाते हैं, उसी प्रकार नहुष भी मदोन्मत्त हो कर मर्यादाओं का उल्लंघन करने के लिए उतारू हो गया। उसने इन्द्र-पत्नी इन्द्राणी को अपने अन्तःपुर में डालने की कुचेष्टा की।

इन्द्राणी ने कोई और मार्ग न देख कर ऋषियों को पालकी में जोत कर और उसमें बैठ कर उसे लिवाने आने का प्रस्ताव भेजा। अहंकारी नहुष ने वही किया और ऋषियों को पालकी में जोता, उस पर बैठा जल्दी-जल्दी चलने के लिए उन्हें धमकाने लगा।

ऋषियों ने दुःखी हो कर पालकी पटक दी और शाप देकर उसे सर्प बना दिया। नहुष की दुष्टता उसके पतन का कारण बनी।

कुचेष्टाएं देखी भी न जांय

कण्व ऋषि के पुत्र सौभरि ब्रह्मचर्यपूर्वक नदी तट पर तपश्चर्या करते थे। तप के द्वारा बहुत आत्मबल संग्रह कर चुके थे और पूर्ण ऋषित्व प्राप्त होने में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

थोड़ा- सा ही समय शेष था। इतने में एक दिन उन्होंने नदी जल में मच्छराज को काम-क्रीड़ा करते देखा। कुचेष्टाएं देखने से सत्पुरुषों के मन में भी वासनाऐं भड़क उठती हैं। सौभरि का चित्त विचलित हो उठा और तप-साधना छोड़ कर गृहस्थ बन गये। प्रसदस्यु की कन्या से विवाह कर उनने कितनी ही सन्तानें उत्पन्न कीं और ऋषिस्तर को गँवा कर एक साधारण व्यक्ति मात्र रह गये। कामुकता के वातावरण से जितना बचा जा सके, उतना ही उत्तम है।

कीचक का अन्त

पाण्डव महाराज विराट् के यहाँ गुप्त भेष में अज्ञातवास का जीवन बिता रहे थे। वहाँ विराट का साला कीचक द्रौपदी के सौंदर्य पर मोहित हो गया और वह कुचेष्टाऐं करने लगा। द्रौपदी ने उसे समझाया, लेकिन वह नहीं माना। द्रौपदी ने भीम को सारी बात बताई। भीम ने अवसर पाकर उसे धर दबाया और मार कर बड़ी दुर्गति से दरवाजे पर पटक दिया। पाप का आश्रय लेने पर मनुष्य का इसी तरह दुःखद अन्त होता है।

कामान्ध व्याध भस्म हुआ

दुष्ट व्यक्ति जब सज्जनों के साथ दुष्टता करने पर उतर आता है तो वह स्वयं ही नष्ट हो जाता है। वन में बिछुड़ी हुई दमयन्ती भटक रही थी। उसके अपूर्व सौंदर्य को देख कर एक व्याध का मन कलुषित हो गया। उसने उसके साथ कुचेष्टा करनी चाही लेकिन दमयन्ती के चरित्र और सतीत्व के तेज से वह भस्म हो गया।

गुरु नानक द्वारा अनर्थ का विरोध

गुरु नानक देव एक गाँव में पधारे। उस गाँव का एक साठ वर्षीय धनिक एक सोलह वर्षीय लड़की से विवाह करने की तैयारी कर रहा था जबकि सात स्त्रियाँ उसके पहले से ही थीं। धन जो अपने जीवन निर्वाह और जरुरतमन्दों के लिए सहायता करने का साधन है, दुराचारी व्यक्ति उसे अपनी तथा दूसरों की हानि करने का साधन बना लेते हैं। नानक को जब इस बात का पता लगा तो वे बड़े दुखी हुए और उन्होंने उस धनिक को बुलाया। धनिक प्रणाम करके पास ही बैठ गया। तब सब लोगों के बीच नानक ने उससे कहा-"क्या इस गाँव के सभी लोग मर गये जो अपनी अर्थी उठाने के लिए एक लड़की को खरीद रहा है।" यह बात सुन कर धनिक का सिर नीचे हो गया। सभी गाँव वाले यह बात सुन कर धनिक के विरोध में खड़े हो गये और एक बालिका का जीवन खराब होने से बच गया।

क्रोध और उसकी विभीषिका

क्रोधी मनुष्य किस प्रकार अपना अधःपतन एवं सर्वनाश करते हैं ? शिवजी का अपने पुत्र गणेश पर क्रोध करके उनका शिर काटना और पीछे पछताना प्रसिद्ध है। ऐसी ही अन्य अनेकों कथाओं में से कुछ नीचे देते हैं।

क्रोधी दुर्वासा पर भगवान का कोप

दुर्वासा जहाँ एक ऋषि थे वहाँ उनका स्वभाव बड़ा क्रोधी था। जिस पर वे कुपित हो जांय उसकी खैर नहीं। एक बार महाराज अम्बरीष पर दुर्वासा व्यर्थ क्रुद्ध हो गये। उनकी कोई भूल भी नहीं थी न कोई अवज्ञा ही की थी। लेकिन जब क्रोध स्वभाव का एक अंग बन जाता है तो वह कारण नहीं देखता। महर्षि के क्रोध से संत्रस्त अम्बरीष भगवान की प्रार्थना करने लगे। भगवान विष्णु ने अनुचित क्रोध का दण्ड देने के लिए अपना सुदर्शन-चक्र दुर्वासा के ऊपर चला दिया। दुर्वासा आगे-आगे दौड़ने लगे, चक्र उनका पीछा करने लगा। अन्त में उन्हें अम्बरीष से क्षमा माँगनी पड़ी तब ही वे सुदर्शन के त्रास से मुक्त हो सके। व्यर्थ ही क्रोध करके सज्जनों को त्रस्त करने वाले व्यक्तियों को परमात्मा का कोप भाजन बनना पड़ता है।

आत्महंता क्रोध

ऋषिपुत्र प्रचेता बहुत ही क्रोधी स्वभाव के थे। तनिक-सी बात पर उत्तेजित हो कर अकरणीय भी कर डालते थे। एक दिन वे एक संकरे पथ से गुजर रहे थे कि उसी समय दूसरी ओर से कल्याण-पाद नामक व्यक्ति भी आ रहा था। आमना-सामना हुआ लेकिन कोई भी अपने पथ को छोड़ने पर तैयार नहीं हुआ। प्रचेता से यह नहीं सहा गया और उन्होंने कल्याणपाद को श्राप दे दिया- "तू राक्षस हो जा" पूर्व तपस्या के प्रभाव से प्रचेता की वाणी सत्य सिद्ध हुई और कल्याणपाद राक्षस बन गया लेकिन उसने प्रचेता को ही खा डाला। क्रोध स्वयं क्रोध करने वाले को ही नष्ट कर डालता है।

अहंकार से आत्म विनाश

एक सिंह बड़ा अहंकारी था, शक्ति के मद में चूर हो कर वह नित्य ही जंगल के जानवरों को सताया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करता था। सारे जानवर बड़े दुखी थे। एक खरगोश ने सिंह को सहज ही मार डालने की तरकीब सोची। वह अपनी खोह में अन्दर बैठ गया और सिंह को गाली देने लगा। सिंह यह सहन न कर सका और उसे दण्ड देने के लिए खोह के मुंह पर बैठ गया। लेकिन खरगोश ने उसका दूसरी ओर भी मुंह बना रखा था वह उससे निकल कर जाता और अपना भोजन करके फिर आ जाता और सिंह को गाली देने लगता। सिंह का क्रोध बढ़ता ही गया। वह दहाड़ता, शिर पटकता और गर्जता-तर्जता रहा। हर गाली उसका क्रोध बढ़ा देती और सन्तुलन बिगाड़ देती। इस प्रकार क्रोधी सिंह अपने आवेश में स्वयं ही तड़प-तड़प कर मर गया।

पत्नी के अपमान का फल

राजा प्रसिचेत ने किसी कारणवश रुष्ट हो कर अपनी पत्नी का परित्याग कर दिया। यह बात सर्वत्र फैल गई। प्रशासन में धीर-धीरे अव्यवस्था होने लगी। लोग राजाज्ञा का खुलेआम उल्लंघन करने लगे। राज्य की व्यवस्थाऐं अस्त-व्यस्त हो गईं। चारों ओर उत्पात होने लगे। राज्य की सीमा पर शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया। महाराज उसे रोकने के लिए सेना सहित जा रहे थे। मार्ग में महर्षि उद्दालक का आश्रम पड़ा तो वे उनसे मिलने कैं लिए रुके।

महर्षि ने उनके शासकोचित सम्मान की तैयारी की, लेकिन एक शिष्य ने जब पत्नी त्याग की बात ऋषि को बता दी तो उन्होंने सम्मान की तैयारी स्थगित कर दी और साधारण व्यक्ति जैसा व्यवहार ही उनसे किया। महाराज प्रसिचेत ने जब इस सम्बन्ध में पूछा तो महर्षि बोले-। "राजन् ! जो अपनी स्त्री का परित्याग कर देता है, उसे धर्म छोड़ कर चला जाता है और धर्म द्वारा त्यागा हुआ मनुष्य सम्मान, सुख, शान्ति से भी रहित हो जाता है। देवताओं की साक्षी में स्वीकार की हुई पत्नी का त्याग कर आपने जो पाप किया है, उसके फलस्वरूप आपका अब सम्मान एवं सौभाग्य भी समाप्त होने वाला है।" राजा ने अपनी भूल समझी, पत्नी को अपनाया, तब उसके शासन की व्यवस्था भी ठीक हो गई।

क्रोध का ही एक स्वरूप अहंकार है। कटु-भाषण एवं दुर्व्यवहार भी कुसंस्कारी व्यक्तियों में ही देखे जाते हैं। इनका परिणाम भी क्रोध के समान ही अहितकर है।

तनिक से व्यंग ने महाभारत रचा दिया

दुर्योधन महाराज युधिष्ठिर के अतिथि भवन में घुसा कि उसकी निर्णय शक्ति जवाब दे गई। दीवार और आकाश में, भूमि और जल में वह सही-सही निर्णय नहीं कर पाया। वह रास्ता समझ कर आगे बढ़ा कि दीवार से टकरा गया और फर्श समझ कर पैर आगे रखा कि एक जलकुण्ड में जा गिरा। ऊपर से द्रौपदी देख रही थी। वह इस घटना पर अपनी व्यंगपूर्ण हँसी न रोक सकी और इसी बीच कह उठी "अन्धों के तो अन्धे ही पैदा होते हैं।" दुर्योधन इन व्यंग वचनों को तथा अपने अपमान को सहन न कर सका और इसका बदला लेने की प्रतिज्ञा कर वहाँ से लौट गया। दुर्योधन ने अपना दांव खेला और द्रौपदी को भरी सभा में नग्न करने का प्रयत्न किया गया। इससे दुःखी होकर भीम ने भी दुर्योधन का बध करने की प्रतिज्ञा की और जिसका अन्त महाभारत के भीषण विनाश में ही हुआ। तनिक सा व्यंग सर्वनाशी युद्ध का कारण बन गया। बुद्धिमान लोगों को चाहिए कि दूसरों के हृदय को चोट पहुँचावे ऐसा व्यंग वचन कभी न कहें।

उपहास का दुष्परिणाम

ऋषिकुमार सहस्रपाद को दूसरों का उपहास करने में, उन्हें तंग करने में बड़ा आनन्द आता था। उनके कंदर्भ नाम के एक मित्र थे। वे बड़े तपस्वी और सीधे स्वभाव के बच्चे थे। किन्तु सर्प से उन्हें बहुत भय लगता था। एक दिन सहस्रपाद ने एक घास का सर्प बना कर अचानक कंदर्भ के ऊपर फेंक दिया और इससे कंदर्भ मूर्छित हो कर गिर पड़े। जब उन्हें होश आया तो उन्हें सहस्रपाद पर बड़ा क्रोध आया और उन्होंने उसे श्राप दे दिया। तपस्या के प्रभाव से उनकी वाणी सत्य सिद्ध हुई और सहस्रपाद को सर्प योनि में जन्म लेना पड़ा। व्यंग विनोद वही ठीक है जो निर्दोष हो, जिससे किसी को बुरा न लगे। अपमान करने वाले उपहासों का परिणाम सदा बुरा ही होता है।

लोभ एवं स्वार्थ

(स्वार्थ के वशीभूत मनुष्य इतना लालची हो जाता है कि उसे घृणित दुष्कर्म करने में भी लज्जा नहीं आती। तृष्णा के वशीभूत हो कर लोग अनीति का आचरण करते हैं और वह अनीति ही अन्ततः उनके पतन एवं सर्वनाश का कारण बनती है।)

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

"कोई कितना ही शक्तिशाली, बलवान् क्यों न हो, स्वार्थपरता एवं दुष्टता का जीवन बिताने पर उसे नष्ट होना ही पड़ता है।"

रावण के बराबर पण्डित, वैज्ञानिक, कुशल प्रशासक, कूटनीतिज्ञ कोई भी नहीं था, लेकिन पर-स्त्री अपहरण, राक्षसी आचार-विचार एवं दुष्टता के कारण कुल सहित नष्ट हो गया।

कंस ने अपने राज्य में हा-हाकार मचवा दिये। अपनी बहन और बहनोई को जेल में बन्द कर दिया, उनके नव-जात शिशुओं को शिला पर पटक-पटक कर मार दिया। अपने राज्य में छोटे-छोटे बालकों को कत्ल, करा दिया। लोगों में भय और आतंक का वातावरण पैदा किया, लेकिन वही कंस भगवान् कृष्ण द्वारा बड़ी दुर्गति से मार दिया गया।

हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु जैसे बलवान् योद्धाओं को आसुरी वृत्तियों के कारण मरना पड़ा। शुम्भ-निशुम्भ, मधुकैटभ, महिषासुर दुर्गा के द्वारा मारे गये। सहस्त्रबाहु परशुरामजी द्वारा, वाणासुर श्रीकृष्ण द्वारा मारे गए। जरासन्ध भीम द्वारा दुर्गति के साथ मारे गए। सूर्पनखा, खरदूषण वन में तपस्या करने वाले ऋषियों को सताते थे। ताड़का यज्ञों में विघ्न पहुँचाती थी। बालि ने अपने छोटे भाई को निर्वासित कर उसकी स्त्री को अपनी रखैल बना छोड़ा था। राम लक्ष्मण ने इन सभी को मार कर दुष्टता का अन्त किया।

दुर्योधन ने अपने भाइयों के राज्य-पाट छीन कर उन्हें नाना कष्ट दिये। किसी भी तरह उन्हें सुखी नहीं रहने दिया गया, लेकिन अन्त में वह अपने शक्तिशाली भाइयों के साथ महाभारत के युद्ध में पाण्डवों द्वारा मारा गया।

तृणावर्त, वकासुर, अघासुर, कालिया नाग आदि दैत्यों को श्रीकृष्ण ने खेल में ही मार दिया, क्योंकि दुष्टता, असुरता कितनी ही शक्ति सम्पन्न हो, उसे अपने ही दुर्गुणों के कारण निर्बल होकर मरना पड़ता है।

महाराजा वेन राज्य मद में चूर होकर दुराचारी बन गये। उन्होंने धर्म, सदाचार की मर्यादाओं का त्याग करके अधर्म और अन्याय का जीवन बिताना चालू कर दिया। ईश्वर के प्रति उनकी कोई आस्था न रही। ब्राह्मण, ऋषि आदि सत्पुरुषों को वह कष्ट देने लगा। अन्ततः अपमान-जनक व्यवहार से तंग आकर एक दिन ब्राह्मण, ऋषि , सज्जन व्यक्तियों ने संगठित रूप से राजा वेन का विरोध किया और इसके फलस्वरूप प्रजा ने विद्रोह करके उसे मार दिया। दुष्ट व्यक्ति अपने ही दुष्कर्मों द्वारा मारा जाता है।

रावण का मृत शरीर युद्ध-भूमि पर पड़ा हुआ था। हनुमानजी ने लक्ष्मण से पूछा- "लक्ष्मणजी ! रावण के शरीर पर ये असंख्यों छिद्र कैसे हो गये ?" लक्ष्मणजी बोले-"हनुमानजी ! ये भगवान् राम के द्वारा चलाये गए बाणों से हो गये हैं।" पास ही रामचन्द्रजी खड़े थे, वे बोले "तात! रावण के दोष, दुर्गुणों, विकारों ने ही उसका शरीर छलनी बना दिया।" वस्तुतः कोई किसी को नहीं मारता, मनुष्य स्वयं ही अपने आप को मारता है। उसकी बुराईयाँ, दुर्गुण ही उसे खा जाते हैं।

स्वार्थ बढ़ते-बढ़ते इतना प्रबल हो जाता है कि सगे सम्बन्धियों तक का घात करने में स्वार्थी को संकोच नहीं होता। औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहाँ को कैद में डाला था और अपने भाइयों का कत्ल कराया था। स्वार्थ की दुष्ट वृत्ति बढ़ती ही न रहे इसलिए परमार्थ की कैंची से उसे काटते रहना चाहिए।

कुधान्य का दुष्प्रभाव

भीष्म पितामह शर-शैय्या पर पड़े युधिष्ठिर को धर्म का उपदेश कर रहे थे। इसी बीच द्रौपदी को हँसी आ गई। भीष्म ने पूछा- "बेटी तू इतनी शीलवती है, फिर भी ऐसे असमय में बड़ों के समक्ष तुझे हँसी क्यों आई ?" द्रौपदी बोली-"पितामह अपराध क्षमा करें।" मेरे मन में यह विचार आया कि जब भरी सभा में मेरे वस्त्र खींचे जा रहे थे, तब आप भी वहाँ उपस्थित थे। उस समय आपका यह धर्म-ज्ञान कहाँ चला गया था ? यही सोच कर मुझे हँसी आ गई।" पितामह बोले-"बेटी ! तुम्हारा सोचना ठीक ही है। उस समय दुर्योधन का अन्यायपूर्ण उपार्जित कुधान्य खाने से मेरी बुद्धि भी अशुद्ध हो गई थी, मेरा मन कुसंस्कारयुक्त हो गया था, इसी वजह से अन्याय के विरुद्ध न बोल सका।" मनुष्य जैसा अन्न खाता है, वैसा ही उसका मन, बुद्धि का निर्माण होता है। अन्यायोपार्जित, कुसंस्कारी कुधान्य का सेवन न किया जाय, भले ही भूखों क्यों न मरना पड़े। क्योंकि मन, बुद्धि के विकृत हो जाने पर समस्त जीवन ही विकृत हो जाता है।

जुआ का दुष्परिणाम

बुराई, दुर्गुण चाहे सामान्य व्यक्ति में हो या महान् व्यक्ति में, ये जहाँ भी होते हैं, वहीं पतन की

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्थिति पैदा हो जाती है। जुआ खेलने के कारण युधिष्ठिर सहित पाण्डवों को तथा दमयन्ती सहित नल को कष्टमय परित्यक्त जीवन बिताना पड़ा था। दोनों ही राजा चरित्रवान्, गुणवान एवं धर्मात्मा थे, लेकिन एक तनिक से दुर्गुण, व्यसन ने उन्हें गिरा दिया।

बिना परश्रिम का धन सर्वनाश कर देता है

तीन चोरों को एक जगह चोरी करने पर काफी धन, मिला। जंगल में जाकर उसे बाँटने का तय हुआ। लेकिन तीनों ही कई दिनों के भूखे-प्यासे थे, इसलिए बटवारा करने से पूर्व भोजन करने की बात तय हुई। एक व्यक्ति पास के नगर से खाद्य पदार्थ लेने गया, दूसरा पास के सरोवर से जल। एक धन की रखवाली के लिए ठहर गया। तीनों के मन में लोभ की दुर्भावना बढ़ी, प्रत्येक सोचने लगा-"क्यों न दो का सफाया करके मैं स्वयं ही इस धन का मालिक बन जाउँ ?" अब क्या था एक ने भोजन में विष मिला लिया, दूसरे ने पानी में और तीसरे ने शस्त्र का सहारा लिया। उसने एक-एक करके भोजन और पानी लाने वाले साथी को आते ही तलवार से मौत के घाट उतार दिया। वह स्वयं भोजन करने लगा और कुछ ही समय में विष के प्रभाव से मर गया। तीनों मर गये, धन पड़ा ही रह गया। बिना परिश्रम के धन से इसी तरह दुष्टता, दुर्भावना और विनाशकारी परिणाम प्राप्त होते हैं।

स्वर्णष्ठीवी पुत्र

महाराज संजय के कोई संतान न थी, इससे वे बड़े दुःखी रहा करते थे। इसके लिए उन्होंने ब्राह्मणों की बड़ी सेवा की। ब्राह्मणों ने नारद भगवान् से राजा की इच्छा पूरी करने की याचना की। नारद ने राजा से पूछा-तुम्हें कैसा पुत्र चाहिए ? राजा को लोभ आ गया। बोले-मेरा बालक ऐसा हो जिसका थूक, मल, मूत्र सभी स्वर्णमय हो। एवमस्तु कहकर नारद चले गये। कुछ दिन में इन्हीं गुणों से सम्पन्न बालक पैदा हुआ। उसका नाम सुवर्णष्ठीवी रखा गया। विचित्र बालक की खबर चारों ओर फैल गई । दस्युओं ने सुना तो एक रात बालक का अपहरण कर ले गये। पर उनमें इस बात का झगड़ा हो गया कि पहले कौन बालक को रखे? आखिर यह तय हुआ कि बालक को मार कर सारा सोना निकाल लिया जाय। बच्चे को डाकुओं ने काट डाला, पर सोना न निकला, राजा को समाचार मिला तो चोरों को पकड़वा कर मौत की सजा दी। लोभ ही पाप की जड़ है, यह सोच कर राजा बड़े दुःखी हुए।

पारस का राजा

एक कहानी यह भी है कि एक राजा ने तप करके किसी देवता से वर मांगा कि "वह जिसे छुए वही सोने कां हो जाय।" वरदान मिल गया तो वह बहुत प्रसन्न हुआ, पर जैसे ही भोजन करने बैठा वैसे ही खाने की चीजें सोने की हो गईं। पीने का पानी छुआ तो वह भी सोने का था। बच्चे गोदी में चढ़ने आये तो वे भी सोने के निर्जीव हो गये। इस प्रकार सब कुछ सोने का हो जाने से उसका जीवन अत्यन्त कष्टमय हो गया और उसी कष्ट से उसकी मृत्यु हो गई।

तृष्णा जीवन को दुःखदायी बना देती है।

मधुवर्त नामक एक वैश्य महाराज समुद्रदत्त के यहाँ नौकरी करता था। एक दिन मधुवर्त जंगल से गुजर रहा था कि उसे एक आवाज सुनाई पड़ी- " सात घड़ा धन लोगे।" कोई दिखाई नहीं दिया लेकिन लालची मधुवर्त ने "हाँ" कह दिया और फिर अदृश्य आवाज ने कहा- "जाओ तुम्हारे घर पहुँचा दिये जायेंगे।" मधुवर्त तेजी से घर की ओर बढ़ा। घर पहुँच कर उसकी स्त्री ने पहले ही हँसते हुये सात घड़ा धन का शुभ समाचार उसको सुनाया। मधुवर्त ने बड़ी खुशी के साथ घड़ों को देखा, छः घड़े तो पूरे भरे थे लेकिन एक कुछ खाली था। उसने सोचा यह भी पूरा भरा होना चाहिये और जो पहले की कमाई बचा कर रखी थी सब उसमें रख दी फिर भी वह खाली रहा। अब बहुत तंगी में गुजारा करते हुये मधुवर्त ने बचत करके उसमें डालना शुरू किया, राजा से तनख्वाह बढ़ाने के लिये कहा। वह भी बढ़ा दी गई लेकिन घड़ा अभी पूरा नहीं भरा। मधूवर्त की चिन्ता बराबर बढ़ती ही चली गई जब कि उस की तनख्वाह भी बढ़ा दी गई थी। राजा ने उसका यह हाल देखा तो एक दिन पूछ ही लिया "कहीं सात घड़े धन तो नहीं ले आये।" मधुवर्त बोला- "हाँ महाराज!" तब महाराज समुद्र दत्त ने कहा उन्हें लौटा आओ अन्यथा तुम्हारी ऐसी ही खराब हालत बनी रहेगी। मधुवर्त ने ऐसा ही किया और उस स्थान पर जाकर कह दिया "अपने घड़े ले आओ" सातों घड़े घर से गायब हो गये। उनके साथ ही मधुवर्त की कमाई भी चली गई। बाद में महाराज ने बताया कि यह धन यक्ष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

का था उसने मुझसे भी कहा था लेकिन मैंने मना कर दिया। वस्तुतः लोभ और तृष्णा यक्ष की तरह ही मायावी होती हैं। ये मनुष्य के सुख शान्ति और जीवन के सहज आनन्द को छीन लेते हैं।

लोभी ही सबसे बड़ा गरीब होता है

एक महात्मा भ्रमण करते हुये जा रहे थे। उन्हें मार्ग में एक रुपया मिला। वे तो विरक्त और सन्तोषी व्यक्ति थे, वे उसका क्या करते ? उन्होंने किसी दरिद्र को यह रुपया देने का विचार किया। कई दिन दरिद्र की तलाश करते-करते बीत गये, लेकिन उन्हें कोई दरिद्र न मिला। एक दिन उन्होंने देखा- एक राजा अपनी सेना सहित दूसरे राज्य पर चढ़ाई करने जा रहा है। साधु ने वह रुपया राजा के ऊपर फेंक दिया। इस पर राजा बड़ा नाराज हुआ। लेकिन साधु ने धैर्य के साथ कहा-"राजन् मैंने एक रुपया पाया, उसे किसी को देने का निश्चय किया। लेकिन मुझे तुम्हारे बराबर कोई व्यक्ति नहीं मिला, क्योंकि जो इतने बड़े राज्य का अधिपति होकर भी दूसरे राज्य पर चढ़ाई करने जा रहा हो और इसके लिये युद्ध में अपार संहार करने को उद्यत हो रहा हो, उससे ज्यादा दरिद्र और कौन होगा? राजा का क्रोध शान्त हुआ और अपनी भूल का पश्चाताप करते हुये उन्होंने वापिस अपने देश को प्रयाण कर दिया। सन्तोषी के लिये अपने पास जो साधन होते हैं, वे ही पर्याप्त लगते हैं। उसे आवश्यकता की भूख नहीं सताती। लेकिन लोभ और तृष्णा से असन्तुष्ट व्यक्ति के लिये अपार सम्पत्ति भी कम होती है। इसलिये लोभ और तृष्णा को जीवन में स्थान नहीं देना चाहिये।

निन्यानवे का फेर

एक गरीब मजदूर अपनी पत्नी समेत एक सेठ के पड़ोस में रहता था। वह जो कमा कर लाता, रात को पति-पत्नी उसका स्वादिष्ट भोजन बना कर खाते। सेठ की पत्नी छत पर से उन्हें देखती रहती। एक दिन सेठानी ने अपने पति से कहा कि पड़ोसी मजदूर इतना अच्छा भोजन करते और सुख की नींद सोते हैं, पर हम लोग घटिया खाते और दिन भर धन की रखवाली में चिन्तित रहते हैं। हम से तो यह मजदूर ही अच्छे हैं।

सेठ ने कहा- मजदूर "९९ के फेर" में नहीं पड़ा है। सेठानी ने पूछा- "९९ का फेर" क्या होता है? सेठ ने रात को एक पोटली में ९९ रूपये बाँध कर चुपके से मजदूर के आँगन में फेंक दिये। प्रातः मजदूर उठा और उसने रुपयों की पोटली पड़ी देखी तो प्रसन्न हुआ और रुपये गिने। वे ९९ निकले। पत्नी से कहा-" खाने में कुछ बचत करके १/- रु० पूरा करलें तो १००/- रु० हो जाँय।" बात तय हो गई । इस दिन की मजदूरी आधी खाई गई, आधी बचाई गई। सेठानी ने छत पर से देखा कि ९९ के फेर में पड़ने के पहले दिन ही भोजन घटिया हो गया। दो चार दिन में एक रुपया पूरा हो गया। पर लोभ बढ़ जाने से उन्होंने उस पूँजी को बढ़ाने का निश्चय किया और बहुत गरीबी से रहने लगे तथा दिन रात अधिक कमाने की चिन्ता में डूबे रहने लगे।

सेठजी ने सेठानी को बताया कि यही ९९ का फेर है। धन अधिक बढ़ाने और उसे रखाने के लोभ चक्र में मनुष्य अपनी सारी सुख-शान्ति खो बैठता है।

जय चंद का देश-द्रोह

जयचंद ने मुहम्मद गौरी के साथ मिल कर पृथ्वीराज का पतन कराया, लेकिन वह स्वयं भी सुरक्षित न रह सका। आक्रमणकारियों ने उसका भी राज छीन लिया और बन्दी बना लिया। काश पृथ्वी राज के साथ मिलकर जयचंद आक्रमणकारियों का सामना करते तो देश को गुलामी के दिन नहीं देखने पड़ते।

मीरजाफर द्वारा विश्वासघात

सन् १७५७ की बात है - अंग्रेज धीरे-धीरे अपने पैर भारतवर्ष में जमा रहे थे। छल, बल, कौशल जैसे भी बने वे अपना विस्तार कर रहे थे। उन दिनों सिराजुद्दौला बंगाल के नवाब थे, इनका सेनापति था- मीरजाफर। मीरजाफर को अंग्रेजों ने अपनी ओर मिलाने के लिये उसे बंगाल का नवाब बनाने का प्रलोभन दिया और वह विश्वासघाती अंग्रेजों से मिल गया। अंग्रेजों ने बंगाल पर चढ़ाई की। लेकिन मीरजाफर ने सेना की व्यवस्था बिगाड़ दी, जिससे नवाब सिपाही अंग्रेजों का सामना न कर सके। और सिराजुद्दौला हार गया। लेकिन कुछ समय बाद मीरजाफर भी कैद कर के मार दिया गया।

लोभी अमीचन्द

सेठ अमीचन्द भारत के बड़े धनपतियों में से थे। अंग्रेज उन दिनों भारत में अपनी नींव जमा रहे थे। उन्हें लड़ाई के लिये सैनिक और साज सामान जुटाने के लिये धन की आवश्यकता पड़ी तो सेठ अमीचन्द से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर्ज के रूप में धन माँगा। देश के हित का ध्यान न रखने वाले सेठजी ने ब्याज के लोभ से बहुत बड़ी सम्पत्ति अंग्रेजों को कर्ज में दे दी। और उसके बल पर उन्होंने सैनिक तय्यारियाँ करके बड़े बड़े युद्ध लड़े और अपना शासन जमा लिया। जब अमीचन्द ने रुपया माँगा तो अंग्रेजों ने मना कर दिया जिसके गम से सेठ जी मर गये।

कुसंग और दुष्ट

(कुसंग से बचना चाहिये और दुष्टों से दूर रहना चाहिये। उनका सहयोग एवं समर्थन करने से पाप का भागी बनना पड़ता है।)

• कुसंग और सत्संग

अजामिल अपनी दुष्टता एवं दुराचार के लिये विख्यात हुआ। पर आरम्भ में वह एक सदाचारी ब्राह्मण था। किसी कार्यवश विदेश गया तो वहाँ कुलटा स्त्रियों और दुरात्मा लोगों की संगति में पड़ गया। कुसंग बड़े बड़ों का पतन कर देता है। बुरों का सुधारना कठिन है पर अच्छों का बिगड़ जाना सरल है। कुसंग से अजामिल इतना पतित हुआ कि कसाई तक का काम करने लगा।

कथा है कि वह पीछे सत्संग से सुधरा और भगवद् भक्त बना। कुसंग-सत्संग का मनुष्य पर भारी प्रभाव पड़ता है। इस लिये कुसंग से बचने और सत्संग ढूँढने का प्रयत्न करना चाहिये।

कुसंग से प्राण हानि

'कुसंग से, भले मनुष्यों को भी विपत्ति का सामना करना पड़ता है।' एक हंस और कौवा दोनों साथ-साथ रहते थे। हंस अपने स्वभाव अनुसार सदैव कौवे के प्रति सद्भावना और शुभ कामनायें रखता किन्तु कौवा मन ही मन हंस के प्रति द्वेषभाव रखता। वह किसी न किसी तरह हंस का अहित करने की ताक में रहता। एक दिन हारा-थका एक शिकारी उस पेड़ के नीचे आकर सो गया, जहाँ वे दोनों रहते थे। कुछ देर में उस शिकारी के मुँह पर धूप आ गई इस पर हंस को बड़ी दया आई और अपने पंख पसार कर उसने धूप को रोक लिया कौवे का दाव लग गया। नीचे की टहनी पर बैठ कर उसने सोये हुये शिकारी के मुँह पर बीट कर दी और स्वयं उड़ गया। शिकारी की नींद खुली तो ऊपर हंस को पंख पसारे हुये देखा। उसे क्रोध आया और तीर चला कर उसका काम तमाम कर दिया। कुसंगति से हंस को प्राणों से भी हाथ धोना पड़ा। विचारशील लोगों को चाहिए कि वे कुसंग का सर्वथा परित्याग करें। इसके अतिरिक्त दुष्टजनों के साथ भलाई से भी दुष्टों का पोषण सज्जनों को कष्ट देने के बराबर ही बुरा माना गया है।

संगति का प्रभाव

चित्रांगद सपरिवार विदेश जाने के लिये तैयार हुये। उनके पास दो तोते थे। उन्हें कहाँ छोड़ जाँय यह समस्या पैदा हुई। आखिर उनके ग्राम के एक पण्डित और एक कसाई एक-एक तोता अपने पास रखने के लिये राजी हो गये। तोते उन्हें दे दिये गये। काफी समय पश्चात चित्रांगद अपनी यात्रा से वापिस आये और दोनों तोतों को वापिस अपने घर मँगा लिया। जो तोता ब्राह्मण के घर था उसने बोलना शुरू किया"दया धर्म और साधन"। इसी बीच दूसरा तोता बोल उठा "धर पटकना, काटना"।

संगति का प्रभाव पशु पक्षियों तक पर पड़ता है, फिर मनुष्य का तो कहना ही क्या।

दुष्ट के साथ भलाई का दुष्परिणाम

दुष्ट के साथ भलाई करना भी अपने लिये आपत्ति मोल लेना है। एक हंस उड़ता हुआ अपने निवास स्थान की ओर जा रहा था। साँझ का समय था। उसने देखा कि एक चूहा ठण्ड के मारे ठिठुरता अर्द्धचेतन हुआ पड़ा है। उसे देखकर हंस को दया आ गई। सज्जनों का स्वभाव ही ऐसा होता है। वह नीचे उतरा अपने पंख फैला कर चूहे को ढक लिया। इससे सर्दी रुक गई और धीरे-धीरे चूहे के बदन में गर्मी आ गई और अपने आपकों ठीक महसूस करने लगा। अब क्या था वह अपने काम में लग गया और हंस के मुलायम-मुलायम परों को काट दिया। सबेरा हुआ सूर्य की किरणें वसुधा पर फैलने लगीं। हंस ने उड़ने की तैयारी की किन्तु वह उड़ न सका। चूहे की कृतघ्नता पर उसे बड़ा दुःख हुआ और जब तक दूसरे पंख न उगे उसे वहीं घूम फिरकर अपने दिन काटने पड़े। 'दुष्टों के साथ दया और भलाई का, सज्जनता का व्यवहार करना भी उनकी दुष्टता को बढ़ावा देना है'।

दोष और दुर्गुण जिन्हें त्यागना ही चाहिये

दोष और दुर्गुणों से ग्रस्त मनुष्य वस्तुतः मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं, उसे नर पशु ही कहना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

चाहिये। सद्गुण ही मानव-जीवन की सच्ची सम्पत्ति है। उनके बिना उसका कोई मूल्य नहीं रह जाता है। दुर्गुणी व्यक्ति दूसरों को तो दुःखी करता ही है, स्वयं भी दुःख पाता है। इसलिये ढूँढ ढूँढकर दोष दुर्गुणों का परित्याग करना ही उचित है।

शक्तियों का दुरुपयोग करने से स्वयं का विनाश

श्रुतायुध ने कठोर तप किया, उससे प्रसन्न होकर भगवान शंकर ने एक अमोघ गदा प्रदान की लेकिन उसके साथ यह प्रतिबन्ध लगा दिया कि उसका दुरुपयोग न हो अन्यथा वह स्वयं ही नष्ट हो जायेगा। महा भारत का युद्ध हो रहा था। श्रुतायुध और अर्जुन में लड़ाई चल रही थी, इसी बीच भगवान कृष्ण को किसी कारण वश हँसी आ गई। अपना अपमान समझकर क्रोधावेश में श्रुतायुध ने वह अमोघ गदा श्री कृष्ण पर चलादी। लेकिन अनुचित प्रयोग से गदा का प्रहार श्री कृष्ण पर न होकर श्रुतायुध पर ही हुआ और वह क्षत-विक्षत होकर भूमि पर गिर पंड़ा। मनुष्य प्रकृति प्रदत्त अपनी शक्तियों का जब दुरुपयोग करता है तो वह स्वयं ही नष्ट हो जाता है।

आत्म-प्रशंसा से ययाति का पतन

मनुष्य को अपने शुभ कर्मों का दर्प कभी नहीं करना चाहिये। इससे उल्टे उसके पुण्य क्षीण होते हैं और वह पतन को प्राप्त होता है। महाराज ययाति ने अपने पुत्र पुरु को राज्य भार सौंप दिया और स्वयं वन में तपस्या के लिये चले गये। वहाँ विधिवत् उन्होंने आत्म परिष्कार करके उच्च स्थिति प्राप्त की। वे देवत्व की श्रेणी में आ गये। एक दिन वे अपनी सफलताओं से प्रसन्न होकर विचरण कर रहे थे, इतने में ही महर्षि नारद उधर आ निकले। उन्होंने पूछा-"राजन् आज इतने प्रसन्न कैसे नजर आ रहे हो?" और ययाति ने अपनी तप साधना की कथा कहना शुरू कर दिया। अपनी प्रशंसा करते हुये वह कह गये, "महर्षि! मेरे समान इस पृथ्वी पर शायद ही कोई तपस्वी हो।" बस, इसी से महाराज ययाति का तप नष्ट हो गया और उनमें देवत्व का सूक्ष्म तत्व समाप्त हो गया। वे फिर अपने को पहले जैसा ही अनुभव करने लगे।

कृतघ्न-हिरन

एक शिकारी हिरन का पीछा करता आ रहा था। जान बचाने के लिये हिरन अंगूर की लताओं में छिप गया। शिकारी को गया जानकर उसने अंगूर की सारी बेल चरली, इस पर शिकारी ने उसे देख लिया और मार दिया। मरते समय हिरन कह रहा था कि जो आश्रय देने वाले के साथ कृतघ्नता करता है, उसकी मेरी जैसी ही दशा होती है।

जैसी करनी वैसी भरनी

एक व्यक्ति अपने बूढ़े अशक्त पिता को मिट्टी के बर्तन में तिरस्कारपूर्वक भोजन दिया करता था। उस व्यक्ति का एक छोटा-सा बच्चा भी था। उसने अपने खेलने के स्थान पर टूटेफूटे मिट्टी के बर्तन जमा करने शुरू कर दिये। पिता ने इसका कारण पूछा तो बच्चे ने कहा-आप और माता जी जब बूढ़े होंगे तब मुझे भी तो इसी तरह टूटे बर्तनों में आप लोगों को भोजन देना पड़ेगा, सो अभी से बर्तन इकट्ठे कर रहा हूँ।

उस व्यक्ति की आँखें खुलीं और सम्मानपूर्वक माता-पिता को भोजन देना आरम्भ कर दिया ताकि बुढ़ापे में उसे भी वैसा ही असम्मान न सहना पड़े। जो पुरुष या स्त्रियाँ अपने आश्रित जनों के साथ उपेक्षा अथवा अपमान का व्यवहार किया करते हैं, या बड़ी आयु के वृद्ध व्यक्तियों को निकम्मा समझकर उनके प्रति दुर्व्यवहार करते हैं, उनको भी अन्त में दुःखदायी परिणाम सहन करना पड़ता है।

आलस्य का अभिशाप

एक बार शैतान को संन्यास लेने की सूझी। उसने अपना सारा सामान लोगों को उपहार में बाँटना शुरू किया। नशेबाजी, चुगली, ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि सब का दान कर दिया शैतान ने। अब उसके पास सिर्फ आलस्य बच गया लेकिन उसे किसी को भी देने के लिये वह तैयार न हुआ। एक वृद्ध ने पूछा, "भाई जब संन्यास ही ले रहे हो तो इसे अपने पास क्यों रखते हो?" शैतान बोला-"कदाचित् कभी संन्यास में मेरा जी न लगा तो इसके सहारे फिर मैं अपनी जिन्दगी बिता दूँगा और अपनी पूर्व सम्पत्तियों को संग्रहीत कर लूँगा।"

सचमुच आलस जीवन की सभी बुराइयों की मूल जड़ है। इससे सब बुराइयाँ अपने आप पैदा हो जाती हैं। मनुष्य को चाहिये कि वह शरीर में आलस्य को ठौर न दे और उसका सदैव प्रतिकार करता रहे।

मनः सर्वमिदं राम ! तस्मिन्नन्तश्चिकित्सिते।
चिकित्सितो वै सल्लो जगज्जालमयो भवेत्।।

हे राम ! यह मन ही सब कुछ है। इस मन की भीतरी चिकित्सा भली भाँति कर लेने पर फिर इस

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संसार के अन्य समस्त रोगों की पूर्ण चिकित्सा हो जाती है।

न चिरं पापकर्माणः क्रूरा लोक जुगुप्सिताः।
ऐश्वर्यं प्राप्य तिष्ठन्ति शीर्णमूला इव द्रुमाः।।

पाप करने वाले क्रूर मनुष्य लोक द्वारा जुगुप्सित हो कर, नष्ट हुई जड़ों वाले वृक्षों के समान, ऐश्वर्य को पाकर भी देर तक स्थिर नहीं रहते। अर्थात् वे बहुत शीघ्र नाश को प्राप्त हो जाते हैं।

न हिंषन्तः क्षयं यान्ति यावज्जीवमपि घ्नतः।
क्रोधमेव तु यो हन्ति तेन सर्वे हिंषो हताः।।

जीवन पर्यन्त मारते रहने पर भी शत्रु सर्वथा नष्ट नहीं हो सकते। इसलिये जिसने क्रोध को मार लिया उसने सारे शत्रुओं को मार लिया-ऐसा समझो।

क्रोधः प्राणहरः शत्रुः क्रोधो मित्रमुखो रिपुः।
क्रोधो ह्यसिर्महातीक्ष्णः सर्वं क्रोधोऽपकर्षति।।

क्रोध प्राणों को ले लेने वाला शत्रु है, क्रोध मित्र के रूप में आने वाला शत्रु है। क्रोध अत्यन्त तीक्ष्ण तलवार के समान है, क्रोध सबकी अवनति करने वाला है।

जायते यत्र स क्रोधस्तन्दहेदेष सर्वतः।
विषयञ्च क्वचित्क्रोधः सफलो निर्दहेदयम्।।

यह क्रोध जिस देह में उत्पन्न होता है उसे सर्वथा जला कर ही छोड़ता है, यह क्रोध अपने विषय अर्थात् आश्रय को जला देता है। इस अग्नि से बच कर रहना चाहिये।

क्रोधो नाशयते धैर्यं क्रोधो नाशयते श्रुतम्।
क्रोधो नाशयते सर्वं नास्ति क्रोधसमो रिपुः।।

क्रोध धैर्य को नष्ट कर देता है, क्रोध से सारा अनुभव तथा ज्ञान नष्ट हो जाता है, क्रोध से सब कुछ नष्ट हो जाता है, क्रोध के बराबर कोई शत्रु नहीं है।

व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते।
व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः।।

व्यसनों में और मृत्यु में व्यसनों को ही कष्टकारक माना गया है। क्योंकि व्यसनों से मनुष्य हीन से हीन दिशा को प्राप्त होता रहता है और निर्व्यसनी मनुष्य मर कर स्वर्ग को प्राप्त करता है।

मूर्खस्य पञ्च चिह्नानि गर्वो दुर्वचनं तथा।
हठी चैव विषादी च परोक्तं नैव मन्यते।।

मूर्ख जन के पाँच मुख्य लक्षण हैं, प्रथम गर्व करना, दूसरे दुर्वचन बोलना, तीसरे हठ करना, चौथे कलह करने वाला होना, पाँचवें दूसरे के कहे हुये वचनों को न मानना।

सर्वे यत्र विनेतारः सर्वे यत्राभिमानिनः।
सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति कुलं तदवसीदति।।

जिस कुल में सब अपने आपको नेता मानने वाले हैं और सारे अभिमानी हैं तथा सब अपना महत्व चाहने वाले होते हैं वह कुल नष्ट हो जाता है।

लोभाविष्टो नरो वित्तमीक्षते न स चापदम्।
दुग्धं पश्यति मार्जारो यथा न लगुडादिकम्।।

लोभ में फँसा हुआ मनुष्य धन को ही देखता है किन्तु उसके कारण होने वाली आपत्तियों को नहीं देखता जैसे बिल्ली दूध को ही देखती है डण्डे को नहीं।

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्।।

रागी मनुष्य वन में रह कर भी दोष करते रहते हैं किन्तु जो घर में रह कर भी पाँचों इन्द्रियों पर निग्रह रखता है वह तपस्वी है। जो मनुष्य सदा श्रेष्ठ प्रशंसनीय कर्म ही करता है, उस निवृत्तरागी पुरुष के लिये तो घर भी तपोवन ही है।

जन्मैव व्यर्थतां नीतं भवभोगप्रलोभिना।
काचमूल्येन विक्रीतो हन्त चिन्तामणिर्मया।।

संसार के लोभों में फंस कर यह सारा जन्म व्यर्थ गंवा दिया। दुःख है कि मैंने चिन्तामणि को शीशे के मूल्य में बेच दिया।

लोभेन बुद्धिश्चलति लोभो जनयते तृषाम्।
तृषार्तो दुःखमाप्नोति परत्रेह च मानवः।।

लोभ से बुद्धि चल जाती है, लोभ ही तृष्णा को बढ़ाता है, और तृष्णा से दुःखी मनुष्य इस लोक और परलोक में कष्ट पाता है।

अन्तस्तृष्णोपतप्तानां दावदाहमयं जगत्।
भवत्यखिलजन्तूनां यदन्तस्तद्बहिः स्थितम्।।

जिनका अन्तस् तृष्णा से परितप्त है, उनके लिये यह जगत दावानल के समान है-क्योंकि अन्तर के अनुरूप ही बाह्य प्रतीत होता है।

मन्यते पापकं कृत्वा न कश्चिद्वेत्ति मामिति।
विदन्ति चैनं देवाश्च यश्चैवान्तः पुरुषः ।।

पापी मनुष्य पाप करके यह समझता है कि मुझे कोई नहीं जानता। किन्तु उसके उस पाप को सब देवता जानते होते हैं तथा जो सब के अन्दर वर्तमान ईश्वर है वह सब जानता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते।।

निश्चय ही कामनायें काम के उपभोग से कभी शान्त नहीं होतीं प्रत्युत जैसे अग्नि में आहुति डालने से अग्नि बढ़ती हैं उसी प्रकार काम के उपभोग से कामनायें बढ़ती हैं।

अरुन्तुदं पुरुषं रूक्षवाचं वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यात्।
विद्यादलक्ष्मीकतम जनानांमुखे निवद्धां निर्ऋतिं वैवहन्तम् ।।

जो मर्म भेदी कठोर, रूखे वचन वाणों रूपी काँटों से मनुष्यों को छेदते हैं, उसे मनुष्यों में अति दरिद्री जानो। वह मानो अपनी दरिद्रता को अपने ही मुख में दबाये फिरता है।

उत्तमे तु क्षणं कोपो मध्यमे घटिकाद्वयम्।
अधमे स्यादहोरात्र चाण्डाले मरणान्तिकः।।

उत्तम प्रकृति के पुरुष में यदि क्रोध आता भी है तो क्षण भर के लिये। मध्यम पुरुष में दो घड़ी के लिये। तथा अधम प्रकृति के पुरुष में दिन-रात क्रोध रहता है, और चाण्डाल पुरुष में मृत्यु पर्यन्त क्रोध रहता है।

नास्ति काम समो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः।
नास्ति क्रोध समो वह्निर्नास्ति ज्ञानात्परं सुखम्।।

काम के समान कोई व्याधि नहीं है, मोह के समान कोई शत्रु नहीं है, क्रोध के समान कोई आग नहीं है और ज्ञान के समान कोई सुख नहीं है।

पतंङ्गमातङ्गंकुरंगभृंङ्गमीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पंचभिरेव पंच।।

पंतग, हाथी, हिरण, भौंरा और मछली यह पाँचों अपनी एक-एक इन्द्रिय के एक-एक विषय के सेवन से ही मारे जाते हैं। फिर इस प्रमादी मनुष्य की मृत्यु क्यों न होगी, जो इन पाँचों विषयों का अपनी पाँचों इन्द्रियों से सेवन करता है।

डरै पाप दुष्कर्म ते, और न डरिये काहि।
काल-गाल ते का डरै, जा मुख सबै समाहिं।।
कलह न जानव छोटि करि, कठिन परम परिनाम।
लगत अनल लघु नीच घर, जरत धनिक धन धाम।।
खाय न खरचै सूम धन, चोर सबै लै जात।
पीछै ज्यौं मधु मच्छिका, हाथ मलै पछतात।।
पर द्रोही परदार रत, पर धन पर अपवाद।
ते नर पामर पापमय, देह धरे मनुजाद।।
कमला थिर न रहीम कहि, लखत अधम जे कोय।
प्रभु की सो अपनी कहैं, क्यों न फजीहत होय।।
अमित लोभ ते हानि बड़, पै न करै परतीत।
हेम हिरन पीछे गये, राम गँवाई सीत।।
करे बुराई सुख चहे, कैसे पावें कोई।
रोपै पेड़ बबूल को, आम कहाँ ते होई।।
कुटिल बचन सब से बुरा, जार करै तन छार।
साधु बचन जलरूप है, बरसै अमृत धार।।
भीतर सों मैलो हियौ, बाहर रूप अनेक।
नारायण तासों भलौ, कौआ तन मन एक।।
एक कनक औ कामिनी, विष कल किये उपाय।
देखत ही ते विष चढ़े, चाखत ही मर जाय।।
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।।
काम बिगाड़े भक्ति को, ज्ञान बिगाड़े क्रोध।
लोभ विराग बिगाड़ दे, मोह बिगाड़े बोध।।
काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि मन में खान।
तब लगि पण्डित मूरखौ, तुलसी एक समान।।
काम क्रोध अरु लोभ मद, मिथ्या छल अभिमान।
इनसे मन को रोकिबो, साँचो व्रत पहिचान।।
रहिमन वित्त अधर्म को, जरत न लागै बार।
चोरी करि होरी रची,भई तनिक में छार।।
रोस मिटै कैसे सहज , रिस उपजावन बात।
ईंधन डारे आगि में, कैसे आगि बुझात।।

बाल काण्ड के अन्तर्गत श्री रामचन्द्र जी ने पुष्प वाटिका में गौरी पूजन के लिये आई हुई सीता को देखने के प्रसंग में निम्न बातें कही हैं-

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ।
मनु कुपंथ पै धरइ न काऊ।।
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी।
जेहिं सपनेहिं पर नारि न हेरी।।
जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी।
नहिं लावहिं परतिय मन डीठी।।

सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत विभीषण रावण को सम्बोधित करते हुये कह रहे हैं-

जौ कृपालु पूँछिहु मोहि बाता।
मति अनुरूप कहउँ हित ताता।।
जौ आपन चाहै कल्याना।
सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सो परनारि लिलार गोसाईं।
तजउ चउथि चन्द कि नाईं।।
चौदह भुवन एक पति होई।
भूत द्रोह तिष्ठइ नहिं सोई।।

बालकाण्ड के अन्तर्गत भी इसी प्रकार लक्ष्मण जी ने भगवान परशुराम से कहा है कि हे नाथ ! क्रोध समस्त पापों की जड़ है। यथा :-

दोहा-

लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि, क्रोध पाप कर मूल।
जेहिं बस जन अनुचित करहिं, चरहिं विस्व प्रतिकूल।।

उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत काकभुसण्ड जी गरुड़ को दुष्टों के स्वभाव का वर्णन करते हुये कहते हैं।

खल बिनु स्वारथ पर अपकारी।
अहि मूषक इव सुनु उरगारी।।
पर संपदा बिनासि नसाहीं।
जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं।।
दुष्ट उदय जग आरति हेतू।
जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू।।
सन्त उदय सन्तत सुखकारी।
बिस्व सुखद जिमि इन्दु तमारी।।
परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा।
पर निंदा सम अघ न गरीसा।।
हर गुर निंदक दादुर होई।
जन्म सहस्र पाव तन सोई।।
द्विज निंदक बहु नरक भोग करि।
जग जनमई बायस सरीर धरि।।
सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी।
रौरव नरक परहिं ते प्रानी।।
होहिं उलूक सन्त निंदा रत।
मोह निसा प्रिय ग्यान भानु गत।।
सब कै निंदा जे जड़ करहीं।
ते चमगादुर होइ अवतरहीं।।
सुनहु तात अब मानस रोगा।
जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा।।
मोंह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।
तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला।।
काम बात कफ लोभ अपारा।
क्रोध पित्त नित छाती जारा।।
प्रीति करहिं जौ तीनिउ भाई।
उपजइ सन्यपात दुखदाई।।
विषय मनोरथ दुर्गम नाना।
ते सब सूल नाम को जाना।।
ममता दादु कंडु इरषाई।
हरष बिषाद गरह बहुताई।।
पर सुख देखि जरनि सोइ छई।
कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई।।
अहंकार अति दुखद डमरुआ।
दंभ कपट मद मान नेहरुआ।।
तृस्ना उदरवृद्धि अति भारी।
त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी।।
जुग बिधि ज्वर मत्सर अविवेका।
कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका।।

दोहा-

एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहँ सो किमि लहै समाधि।।

अरण्यकाण्ड के अन्तर्गत जब नारद जी श्री राम चन्द्रजी से पम्पासरोवर के पास मिलने आये तब श्री राम चन्द्रजी ने उन्हें निम्न उपदेश दिया-

दोहा-

काम कोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि।।
सुनि मुनि कह पुरान श्रुति संता।
मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता।।
जप तप नेम जलाश्रय झारी।
होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी।।
काम क्रोध मद मत्सर भेका।
इन्हहि हरषप्रद बरषा एका।।
दुर्बासना कुमुद समुदाई।
तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई।।
धर्म सकल सरसीरुह बृन्दा।
होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मन्दा।।
पुनि ममता जवास बहुताई।
पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई।।
पाप उलूक निकर सुखकारी।
नारि निबिड़ रजनी अँधियारी।।
बुधि बल सील सत्य सब मीना।
बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना।।

दोहा-

अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियँ जानि।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लंका काण्ड के अन्तर्गत अंगद जब रावण की सभा में गये थे उस समय रावण द्वारा कटु वचन बोलने पर अंगद उससे कहते हैं-

कौल काम बस कृपिन बिमूढ़ा।
अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा।।
सदा रोगबस संतत क्रोधी।
बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी।।
तनु पोषक निंदक अघ खानी।
जीवत मृत सम चौदह प्रानी।।
अस बिचारि खल बधउँ न तोही।
अब जनि रिस उपजावसि मोही।।

अयोध्याकाण्ड में निषाद को समझाते हुये लक्ष्मण कहते हैं-

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा।
देखिअ सपन अनेक प्रकारा।।
एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी।
परमारथी प्रपंच बियोगी।।
जानिअ तबहिं जीव जग जागा।
जब सब बिषय बिलास बिरागा।।
होई बिबेकु मोह भ्रम भागा।
तब रघुनाथ चरन अनुरागा।।

उत्तर काण्ड के अन्तर्गत श्री रामचन्द्रजी अपने भ्राता भरत से कहते हैं-

करहिं मोह बस नर अघ नाना।
स्वारथ रत परलोक नसाना।।
कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता।
सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता।।

अरण्यकाण्ड के अन्तर्गत सीता के विरह में व्याकुल राम चन्द्र जी लक्ष्मण से बातें करते जाते हैं और उसी प्रसंग में कहते हैं।

लछिमन देखत काम अनीका।
रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका।।
एहि कें एक परम बल नारी।
तेहि ते उबर सुभट सोइ भारी।।

दोहा-

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिषि महुँ छोभ।।
लोभ कें इच्छा दंभ बल काम कें केवल नारि।
क्रोध कें पुरुष बचन बल मुनिवर कहहिं बिचारि।।

लंका काण्ड के अन्तर्गत काकभुसण्ड जी गरुड़ से कहते हैं-

ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिश्राम।
भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम।।

बालकाण्ड के अन्तर्गत पार्वती जी सप्तऋषियों से कहती हैं-

तात अनल कर सहज सुभाऊ।
हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ।।
गएँ समीप सो अवसि नसाई।
असि मन्मथ महेस की नाई।।

अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत कैकयी के कोप-भवन में चले जाने के समय का वर्णन निम्न है-

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ।
भय बस अगहुड़ परइ न पाऊ।।
सुरपति बसइ बाहँबल जाकें।
नरपति सकल रहहिं रुख ताकें।।
सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई।
देखहु काम प्रताप बड़ाई ।।
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे।
ते रतिनाथ सुमन सर मारे ।।

उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत काकभुसण्ड जी गरुड़ से कहते हैं-

बिनु संतोष न काम नसाहीं।
काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं।।

अरण्यकाण्ड के अन्तर्गत जब रावण सीता जी का अपहरण करने के लिये चला उस समय का वर्णन है-

जाके डर सुर असुर डेराहीं।
निसि न नींद दिन अन्न न खाहीं।।
सो दससीस स्वान की नाईं।
इत उत चितई चला भड़िहाईं।।
इमि कुपन्थ पग देत खगेसा।
रह न तेज तन बुधि बल लेसा।।

।। तीसरा प्रवचन समाप्त।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चौथा-प्रवचन

सद्गुणों के सत्परिणाम

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियेश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।।
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धि पर्यवतिष्ठते।।
(अध्याय २ श्लोक ६४-६५)

परन्तु राग द्वेष रहित वशवर्ती मन वाला अर्थात् स्वाधीन मन वाला पुरुष अपने वश में की हुई इन्द्रियों से विषयों को भोगता हुआ भी प्रसन्नता को प्राप्त करता है। प्रसन्नता में इसके समस्त दुःख नष्ट हो जाते हैं क्योंकि प्रसन्न चित्त वाले मनुष्य की बुद्धि शीघ्र ही स्थिर हो जाती है।

प्रसन्नता मनुष्य की सब से प्रिय वस्तु है। प्रसन्न वह रहता है। जो सुखी होता है। सुख का प्रमाण,चिन्ह 'प्रसन्नता' है। इस संसार में कौन ऐसा है जो प्रसन्न न रहना चाहता हो, पर देखा यह जाता है कि आये दिन कोई न कोई कारण ऐसे सामने आ उपस्थित होते हैं कि प्रसन्नता स्थिर रह नहीं पाती। बार-बार अप्रसन्नता, क्षोम, क्रोध, चिन्ता, भय, निराशा आदि के कारण सामने आ उपस्थित होते हैं। चित्त खिन्न रहे, मन उद्विग्न एवं अप्रसन्न रहे तो कितनी ही सम्पदा विद्या विभूति पास हो, सब एक प्रकार से व्यर्थ ही हैं।

मानव जीवन की परम प्रिय वस्तु प्रसन्नता के न प्राप्त होने के कारण और उपलब्धि का उपाय बहुत ही संक्षिप्त एवं सार-गर्भित रीति से समझा दिया है। उपरोक्त श्लोकों में बताया गया है कि राग द्वेष छोड़ देने और इन्द्रियों को विषयों से रोक लेने पर अप्रसन्नता के कारण नष्ट हो जाते हैं। जिसका मन वश में हैं उसे प्रसन्नता मिलनी ही चाहिये। प्रसन्न रहने का महात्म्य बताते हुये गीताकार ने कहा है कि प्रसन्न रहने से मनुष्य के सारे दुःख दूर हो जाते हैं और उसकी विवेक बुद्धि स्थिर हो जाती हैं।

लोगों का अनुमान है कि वस्तुओं के अभाव या प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण अप्रसन्नता एवं खिन्नता रहती है। पर यह बात इसलिये सही नहीं कि असंख्य मनुष्य ऐसे हैं जिनके पास गुजारे के लिये समुचित साधन मौजूद हैं, कोई खास प्रतिकूलता या सकंट भी सामने नही, फिर भी वे खिन्न दिखाई पड़ते है। यदि अभाव या संकट ही कारण होते तो साधन सम्पन्न और सकुशल लोग उद्विग्न क्यों दीखते ? इसके विपरीत ऐसे भी अनेक लोग हैं जो अभावों और प्रतिकूलताओं से भरा जीवन-यापन करते हुए भी बड़े प्रसन्न एवं सुखी हों। वनवासी ऋषियों को भौतिक सुख सुविधा की वस्तुओं का प्रायः अभाव ही रहता है। भोजन, वस्त्र, मकान जैसी साधारण जीवनोपयोगी वस्तुऐं भी उन्हें गरीब एवं कितना साधनहीन लोगों की तरह घटिया स्तर की ही मिलती थीं, फिर भी वे कितना उत्कृष्ट एवं आनन्दमय जीवन यापन करते थे। संसार के महान पुरुषों ने अनेक प्रकार के कष्ट सहे हैं, अभावग्रस्त जीवन व्यतीत किया है और सदुद्देश्य के लिये निरन्तर श्रम किया है। फिर भी उनकी अन्तरात्मा सद्प्रसन्नता का ही अनुभव करती रही। इससे स्पष्ट है कि यह मान्यता सही नहीं कि समृद्धि या सत्ता के द्वारा आनन्द प्राप्त होता है।

सच्चा आनन्द उन्हें मिलता है। जिनने अपने मन को जीत लिया है, वश में कर लिया है। मन को जीतने का अर्थ है उसे कुमार्ग पर चलने से मोड़ कर सन्मार्ग में प्रवृत कर देना। मन के सन्मार्ग पर चलने की पहचान है, गुण, कर्म, स्वभाव में सात्विकता की वृद्धि होना, सद्विचारों, सद्भावनाओं, सत्प्रवृत्तियों एवं सत्कर्मों का बढ़ना। यह लक्षण जब दिखाई देने लगे तब समझना चाहिए कि आत्मा वश में हुआ, मन जीता गया।

मन खाली नहीं रह सकता, उसमें दुष्प्रवृत्ति या सत्प्रवृत्ति, दैवी या आसुरी शक्ति अपना अधिकार अवश्य जमा लेगी, जैसे गिलास में जब पानी भरा होगा तो उसमें हवा नहीं रहेगी। जब हवा भरी होगी तब पानी नहीं रहेगा। इसी प्रकार मन का जितना भाग आसुरी शक्तियों ने घेर रखा होगा उतनी में से दैवी शक्तियों का पलायन हो चुका होगा और जितना भाग दैवी शक्तियों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिकार में होगा उसमें से आसुरी शक्तियाँ हट चुकी होंगी। असंयमी मन कुमार्गगामी रहता है। वह अनुपयुक्त बातें सोचता और अनुचित कर्म करने की व्यवस्था बनाता रहता है। पर जब वह संयत बन जाता है तब सद्विचारों में निमग्न रहता है, सदुद्देश्य अपनाता है, सद्गुणों को बढ़ाता है और सत्कर्मों की योजना तैयार कर देता है। वश में हुआ मन जब इस प्रकार कार्य करने लगेगा तब असन्तोष, खेद और विक्षोभ के निराशा चिन्ता और असफलताजन्य खिन्नता के भाव मन में उठेंगे ही नहीं। अप्रसन्नता का दर्शन होगा ही नहीं।

अज्ञान जब तक प्रबल रहता है। तब तक मनुष्य मनोवांछित परिस्थितियाँ प्राप्त करने के लिये लालायित रहता है और जब उनमें तनिक भी कमी रह जाती है तब वह दुःखी एवं विक्षुब्ध होने लगता है। मनोवांछाओं की कोई सीमा नहीं वे अपनी परिस्थितियों की सीमा तक ही सीमित रहें ऐसा कोई बन्धन उन पर नहीं, सफलता मनुष्य की इच्छा मात्र से ही नहीं मिल जाती उसके लिये प्रयत्न, पुरुषार्थ, परिस्थितियाँ, अवसर, प्रारब्ध सभी कुछ अनुकूल होना चाहिए। यदि यह अनुकूलता न हुई, कामना का स्तर परिस्थितियों से ऊँचा रहा तो असफलता मिलेगी ही। अनियंत्रित मन वालों की कामनाएं इतनी बढ़ी-चढ़ी होती हैं कि उनकी पूर्ति में कमी रहना स्वाभाविक ही है। ऐसी दशा में उसे दुःख एवं विक्षोभ भी सदा ही रहेगा।

किन्तु यह परिस्थिति उस व्यक्ति के सामने नहीं आती जिसका मन वश में है, जिसने राग द्वेषों को-कामनाओं को- जीत लिया है। असंयमी मन वाला व्यक्ति जैसे अगणित कामनाऐं करता है वैसे ज्ञानवान विवेकशील, आत्म विजेता नहीं करता। उसकी कामना कर्तव्य पालन तक सीमित हो जाती है। उसकी इच्छा केवल मात्र इतनी रहती है कि धर्म कर्तव्यों के पालन में उसकी समस्त शक्तियाँ सुनियोजित रहें। उसके व्यक्तिगत सद्विचार उसे परिपूर्ण आत्मा सन्तोष प्रदान करते रहते हैं। अपने सदुद्देश्यों पर उसे गर्व रहता है। सद्गुणों सत्कर्मों और श्रेष्ठ स्वभाव के कारण दूसरों का सहयोग एवं सद्भाव भी उसे मिलता है। फलस्वरूप अपने चारों ओर स्वर्गीय सुख शान्ति बिखरी हुई दिखाई देने लगती है। भीतर की श्रेष्ठता ही बाहर की शान्ति में परिणित होती है यह सुनिश्चित तथ्य है।

प्रसन्नता प्राप्त करने का, सुखी एवं सन्तुष्ट रहने का एक मात्र उपाय है- आन्तरिक उत्कृष्टता का बढ़ना। आन्तरिक उत्कृष्टता की अभिवृद्धि का चिन्ह है- गुण कर्म और स्वभाव का श्रेष्ठ होना। ऐसा व्यक्ति भौतिक सफलताओं और असफलताओं को तनिक भी महत्व नहीं देता। न तो लाभ प्राप्त होने पर हर्ष से उन्मत्त होता है और न हानि होने पर रोता झींकता है। वह जानता है कि दिन और रात की तरह, धूप और छाँह की तरह इस संसार में लाभ-हानि का, सुख-दुख का भी जोड़ा है। समयानुसार यह आते जाते रहते हैं। समुद्र तट पर खड़े होकर ज्वार-भाटा का आनन्द देखने वाले दर्शक की तरह इसका आनन्द लेना चाहिए। खिलाड़ी की भावना से यह जीवन का खेल करना चाहिये। जिस प्रकार नाटक के पात्र कभी राजा कभी रंक बन जाने से खिन्न नहीं होते और उस परिवर्तन को कला का प्रदर्शन मात्र मानते हैं, उसी प्रकार हमें भौतिक परिस्थितियों के उतार-चढ़ाव को भी शान्त चित्त से देखना चाहिए। न सफलता मिलने पर हर्षोन्मत्त होना चाहिए और न असफलता में खिन्न उद्विग्न।जिसने अपनी मान्यता इस प्रकार की बना ली उसी को राग द्वेष से विमुक्त कहा जायगा। लाभ से राग और हानि से द्वेष जिसे नहीं, जो कर्तव्य पालन को ही सर्वोपरि समझता है, जिसे अपनी सत्प्रवृत्तियों पर सन्तोष है, वह किसी भी दशा में दुःखी नहीं हो सकता, उसकी प्रसन्नता उससे दूर नहीं जा सकती, उसके चेहरे पर हर घड़ी मुस्कान बनी ही रहेगी।

जिसका अन्तरात्मा सन्मार्ग-गामी बनेगी। उसे न अप्रसन्नता का अनुभव होगा और न दुःख का। कामना शील कामी लोग ही दुखी होते हैं। लालची को ही क्रोध आता है। अज्ञान ग्रस्त ही मोह करते हैं और संसार में जितने भी दुखी व्यक्ति हैं वे काम, क्रोध, लोभ, इन्हीं से दुखी हैं। इन्हें त्यागने वाला व्यक्ति पुरुषार्थी सुव्यवस्थित और विवेकशील बनेगा और वह अपनी हर समस्याओं का आप हल कर लेगा। गरीबी, अमीरी, उद्विग्नता एवं विपन्नता उसके पास भी न फटकेगी। दुर्गुण ही सारी विपत्तियों के कारण हैं। सद्गुणी सद्भावी तो पृथ्वी पर निवास करने वाला साक्षात् देवता है, वह जहाँ भी रहेगा, स्वर्ग का सृजन करेगा। उसके सम्पर्क में आने वाले दूसरे लोग शोक सन्तापों से तरेंगे। उसके स्वयं खिन्न रहने का तो कोई कारण ही नहीं। जो खिन्न रहता हैं जिस पर उदासी और निराशा छाई रहती है। उसे असंयत चित्त ही कहना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कई व्यक्ति ऐसी कल्पना करते हैं कि जिसका मन वश में हो जायगा वह एक ही विचार में डूबा रहेगा और कोई कल्पनाऐं उसके मस्तिष्क में न आवेंगी। जब ध्यान पर बैठ जायगा तो ध्यान ही होता रहेगा और जब पुस्तक पढ़ेगा तो मन पुस्तक पर ही लगा रहेगा। इस स्थिति को लोगों ने भ्रमवश मन का वश में होना मान लिया है। वस्तुतः यह मानसिक शक्तियों के अभ्यास की एक कला मात्र है इसे एकाग्रता कहते हैं। सरकस में अनौखे काम करने वाले अभिनेता और बाजीगर इस एकाग्रता की कला के ही अभ्यस्त होते हैं। वैज्ञानिक, कवि, चित्रकार आदि कलाकारों की गतिविधियाँ भी एकाग्रता पर निर्भर रहती हैं। बन्दूक का निशाना इसी आधार पर लगता है। यह मानसिक शक्तियों को व्यवस्थित करने की एक कला है, जो सरकस करने वालों से लेकर बुद्धि जीवी लोगों तक में उनकी अभिरुचि एवं प्रयत्नशीलता के आधार पर विकसित होती है। ध्यान लगाने की कला भी इसी प्रकार के अभ्यास से सीखी जा सकती है।

गीताकार ने मन को वश में करने की बात को जिस अर्थ में लिया है, वह यह है कि मन की कुमार्गगामिता को रोक कर उसे सत्मार्ग में प्रवृत्त किया जाय। तृष्णा और वासना से विरत कर उसे कर्तव्य पालन में जीवन-शोधन से संलग्न किया जाय। मनोभूमि को पवित्र बनाया जाय। आदर्शों में श्रद्धा उत्पन्न की जाय, कर्तव्य निष्ठा में तत्परता हो और सद्गुणों को निरन्तर बढ़ाते चला जाय। उत्कृष्ट व्यक्तित्व ही इस बात का प्रमाण हो सकता है कि इस व्यक्ति का मन वश में हुआ है। जो निकृष्ट स्तर पर सोचता है, निकृष्ट कर्म करता है और अपने चारों ओर निकृष्ट वातावरण बनाये बैठा है, उसने एकाग्रता का अभ्यास कर लिया हो देर तक किसी स्वरूप या विचार पर ध्यान लगाये रह सकता तो उससे कुछ भी प्रयोजन सिद्ध होने वाला नहीं है।

मनुष्य,श्रेष्ठ,सद्गुणी,सद्भावी, सदाचारी हो सत्प्रवृत्तियों में संलग्न हो, यही आत्मिक विजय है। जिसने आत्मा को जीत लिया उसने सारा संसार जीता यही मानना चाहिये। ऐसा आत्म विजयी सुखी एवं सन्तुष्ट रहेगा ही और उसके चेहरे पर मुस्कान भरी प्रसन्नता नाचती ही रहेगी। आत्मावान् व्यक्ति की यह पहचान हैं कि वह अपनी आन्तरिक श्रेष्ठता के कारण सदा उल्लास एवं आनन्द में निमग्न बना रहता है, उसका सदुद्देश्य ही उसे सन्तुष्ट रखने के लिये समुचित आधार बना रहता है।

सद्भावी सत्पथगामी श्रेष्ठ व्यक्तियों ने अपनी आन्तरिक उत्कृष्टता के कारण कितना अपना आत्म-कल्याण किया और कितना दूसरों का उपकार किया ? इसके कुछ उपाख्यान नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं- परिवार का संगठन और सुख शान्ति भरे सत्परिणाम सद्गुणों द्वारा ही उत्पन्न हो सकते हैं, इसका आभास इन दृष्टान्तों में मिलेगा।

पारस्परिक प्रेम-भाव

(राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न का भ्रातृ प्रेम प्रसिद्ध है। पाण्डवों ने मिल जुलकर किस प्रकार आदर्श जीवन व्यतीत किया यह प्रसिद्ध है और तो और दुर्योधन और रावण जैसे अनीतिवानों तक के भाइयों ने भी अपने भाइयों का साथ दिया। भाई-भाई का प्रेम जहाँ कहीं होगा वहाँ सब प्रकार सुख सम्पति रहेगी और जिस घर में क्लेश, कलह, द्वेष, दुर्भाव, रहेगें वह नष्ट होकर रहेगा।)

युधिष्ठिर की उदारता

पाण्डव वन में भ्रमण कर रहे थे कि उन्हें प्यास लगी। नकुल कुछ दूर पर बने तालाब से पानी लेने गये। तालाब पर यक्ष का आधिपत्य था। वह केवल उसी को जल लेने देता था जो उसे प्रश्नों का उत्तर दे सकता था। यक्ष ने नकुल से कुछ प्रश्न पूछे वे उसका उत्तर न दे सके तो शाप से मूर्छित होकर गिर पड़े।

नकुल को न आया देखकर एक-एक करके सब पाण्डव वहाँ गये और वे भी उसी प्रकार मूर्छित हो गये। अन्त में युधिष्ठिर गये और उनने यक्ष के उत्तर दिये। इस पर यक्ष ने एक भाई को जीवित करा लेने को कहा। युधिष्ठिर ने नकुल को जीवित करने की प्रार्थना की। क्योंकि भीम अर्जुन तो उनकी सगी माँ के पुत्र थे। माद्री पुत्रों में से एक का रहना आवश्यक था। ताकि माद्री को भी कुन्ती की तरह ही पुत्रवती रहने का सुख मिले।

यक्ष युधिष्ठिर की उच्च भावना देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उसने चारों भाइयों को जीवित कर दिया।

इसी प्रकार एक कथा महाभारत में भी आती है कि वनवास काल में यक्षों से दुर्योधन का दल परास्त हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गया तो उनकी सहायता के लिये पाण्डव पहुँचे और उन्हें बचाया। उस अवसर पर युधिष्ठिर ने कहा कि हम घर में पाँच और १०० भले ही हों पर बाहर वालो के लिये १०५ हैं। अर्थात बाहरवालों का मुकाबला मिलजुल कर ही करेंगे।

ऐसी ही उदारता की भावनाओं पर पारिवारिक संगठन सुदृढ़ रह पाते हैं।

भाई का प्रेम

नवद्वीप के विद्वान् रामशिरोमणि तथा रघुमणि साथ-साथ रहते थे। उनके पास विपुल सम्पत्ति भी थी, पर कभी आपस में झगड़ा नहीं हुआ। बड़े भाई के तीन पुत्र थे और छोटे के एक पुत्र। एक दिन शिरोमणि बोले"भाई रघु ! तुम्हारी हमारी निभ गई आगे जाने बच्चों में कैसे निभेगी इसलिये हमें अपनी सम्पत्ति का बटवारा कर लेना चाहिये।" रघुमणि बोले आपका हमारा बटवारा कैसा? दूसरे लोग इस बारे में क्या कहेंगे। पर रामशिरोमणि बोले, भय्या ! यह तुम्हारा हमारा बटवारा नहीं अपितु लड़कों का है इसे कर देना चाहिये। रामशिरोमणि ने यह कह कर सारी सम्पत्ति दो भागों में बाँटना शुरू किया। लेकिन बीच में ही टोकते हुए रघु ने कहा "बटवारा लड़कों के लिये हुआ है इसलिये उसे चार भागों में करना चाहिये।" रघुमणि के इस आदर्श से गाँव वाले बड़े प्रभावित हुए। और उनकी गाथा अभी तक प्रान्त में घर-घर कही जाती है।

लक्ष्मी कहाँ रहती है?

एक सेठ बहुत धनी था। उसके कई लड़के भी थे। परिवार बढ़ा पर साथ ही सबमें मनोमालिन्य द्वेष एवं कलह रहने लगा।

एक रात को लक्ष्मी ने सपना दिया कि मैं अब तुम्हारे घर से जा रही हूँ पर चाहो तो चलते समय एक वरदान माँग लो।

सेठ ने कहा- भगवती आप प्रसन्न हैं तो मेरे घर का कलह दूर करदें, फिर आप भले ही चली जायें।

लक्ष्मी ने कहा- मेरे जाने का कारण ही गृह कलह है। जिन घरों में परस्पर द्वेष रहता है। मै वहाँ नहीं रहती। अब जब कि तुमने कलह दूर करने का वरदान माँग लिया और सब लोग शान्तिपूर्वक रहोगे तब तो मुझे भी यहीं ठहरना पड़ेगा। सुमति वाले घरों को छोड़कर मैं कभी बाहर नहीं जाती।

मिलजुलकर रहना

एक किसान के चार लड़के थे। एकदिन बूढ़े बाप ने उन चारों को बुलाया और एक एक कच्चे सूत का धागा देकर उसे तोड़ने के लिये कहा-लड़कों ने उसे आसानी से तोड़ दिया। इसके बाद बाप ने उस सूत को बटकर रस्सी बनादी और उसे तोड़ने के लिये कहा। लड़कों ने बारी बारी से जोर लगाया परन्तु उसके वह न तोड़ सके।

तब बाप ने समझाया यदि मिलजुल कर इस बटी हुई रस्सी की तरह रहोगे तो तुम लोग मजबूत बने रहोगे पर यदि लड़ झगड़ कर अलग अलग पड़ गये तो अकेले कच्चे धागे की तरह कमजोर होकर किसी भी आक्रमण के शिकार हो जाओगे।

बेटों की समझ में बाप की बात आ गई और वे मिलजुल कर रहने लगे।

स्वामी और सेवक

आदर्शस्वामिभक्त

चित्तौड़ की गद्दी पर छः वर्ष का बालक उदयसिंह बैठा था। उसकी माता भी मर चुकी थी। पन्ना नामक एक धाय उसका पालन करती थी। राज्य का सञ्चालन दासी पुत्र वनवीर कर रहा था।

वनवीर के मन में लोभ आया कि उदयसिंह तथा उसके भाई विक्रम को मार कर मैं ही सदा के लिये राजा बन बैठूँ। उसने विक्रम को मार दिया। उदयसिंह को मारने नंगी तलवार लिये जा रहा था तो पन्ना धाय को मालूम हो गया। उसने इस आड़े वक्त में अपनी वफादारी की परीक्षा में उत्तीर्ण होने का निश्चय किया। उसने अपने बच्चे को उदयसिंह के स्थान पर और उदय सिंह को अपने बच्चे के स्थान पर सुला दिया। वनवीर आया और उसने एक ही हाथ में बालक का सिर काट दिया। पन्ना अपनी आँखों के आगे अपने बालक का वध होते देखती रही। भेद न खुलनेदेने के लिये उसने छाती कड़ी करके आँखों में आँसू न आने दिये। वनवीर चला गया। तब वह उदयसिंह को लेकर देवरा ठिकाने में चली गई और वही रहकर उदयसिंह को पाला। बड़ा होने पर वहीं चित्तौड़ की गद्दी पर बैठा। उदयसिंह पन्ना धाय को सदा अपनी माता के समान मानता रहा।

स्वामी के साथ आपत्ति के समय सेवक कितना बड़ा आत्मत्याग कर सकता है। इसकी आदर्श उपस्थित करने वाली पन्ना धाय भारतीय इतिहास में सदा अमर रहेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर्त्तव्य पालन का अपूर्व उदाहरण

भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज युद्ध क्षेत्र में घायल होकर पड़े थे। उनको इतने अधिक घाव लगे थे कि वे न तो उठ सकते थे और न खिसक सकते थे। उस समय वे मूर्छितावस्था में पड़े थे। उसी दशा में कुछ गिद्ध उनको मुर्दा समझकर खाने के लिये आगे बढ़े। महाराज के एक प्रधान संयमराय भी पास ही घायल अवस्था में पड़े थे। वे भी घावों के कारण उठ नहीं सकते थे पर वे होश हवास में थे। जब उन्होंने गिद्धों को पृथ्वीराज की तरफ आते देखा तो उनका स्वामिनिष्ठा का भाव उमड़ पड़ा और कोई उपाय न देखकर उन्होंने अपने बगल में पड़ी तलवार उठाली और अपना माँस काटकर गिद्धों की तरफ फेंकने लगे। गिद्ध पृथ्वीराज को छोड़कर उन्हीं टुकड़ों को खाने में लग गये। इतने में पृथ्वीराज के बचे खुचे सैनिक उनको ढूँढते हुये वहाँ आ पहुँचे। उस समय तक संयमराय मरणासन्न हो गये थे और कुछ ही क्षणों में उनके प्राण पखेरू उड़ गये। पर कर्तव्य पालन के लिये उन्होनें जो अपूर्व आत्मबलिदान किया उससे उनका नाम आज तक अमर है।

माता पिता की सेवा

श्रवणकुमार की पितृभक्ति-श्रवण कुमार के माता पिता ने इच्छा की कि वे सब तीर्थों की यात्रा करें। पर वे अन्धे होने के कारण कर नहीं सकते थे। उनकी इच्छापूर्ण करने के लिये श्रवणकुमार ने काँवर बनाई और उसके दोनों पलड़ों में माता पिता को बिठा कर सारे तीर्थ कराये। श्रवण कुमार माता पिता की इस प्रकार सेवा करके संसार में अमर हो गये।

पिता के लिये पुत्र का त्याग

एक बार महाराज शान्तनु यमुना तट पर भ्रमण कर रहे थे। एक स्थान पर उन्होंने एक अलौकिक सुन्दरी निषाद कन्या को देखा और उस पर आसक्त हो गये। काम विकार तनिक सी ढिलाई बरतने पर पूरी तरह मनुष्य के मन बुद्धि पर छा जाता है। विवाह प्रस्ताव रखा गया लेकिन मल्लाह ने उसे इस पर स्वीकार किया कि इस कन्या से उत्पन्न होने वाला बालक ही राजगद्दी का उत्तराधिकारी होगा। एक कठिन समस्या पैदा हो गयी। क्योंकि परम्परा और नियम के अनुसार भीष्म ही राज गद्दी के उत्तराधिकारी थे। लेकिन जब उक्त बात का पता भीष्म को चला तो राजगद्दी के त्याग की ही नहीं अपितु आजन्म अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा की ताकि उनकी सन्तान भी गद्दी पर अपना अधिकार न कर सके। महाराज शान्तनु का विवाह सम्पन्न हुआ। भीष्म ने आदर्श पितृभक्ति का उदाहरण प्रस्तुत किया।

पुरु का पिता को यौवनदान

शुक्राचार्य के शाप से महाराज ययाति यौवनावस्था में ही बूढ़े हो गये। बहुत अनुनय विनय करने पर एक सुविधा मिल गई कि यदि कोई अपना यौवन प्रदान कर दे तो वे पुनः तरुण बन सकते हैं। अपने यौवन का दान कर बुढ़ापा लेने के लिये कौन तैयार हो ? महाराज ययाति के चार पुत्रों ने तो अस्वीकार कर दिया। सब से छोटे पुत्र ने सोचा कि पिता के हित के लिये अपने जीवन का उत्सर्ग करके पितृऋण से मुक्त होने के बराबर और क्या पुण्य हो सकता है ? पुरु ने अपना यौवन ययाति को दे दिया। और स्वयं ने वृद्धता स्वीकार कर ली।

माता पिता की सेवा में सिद्धि

महर्षि पिप्पल आध्यात्मिक साधना में लीन थे। उधर से एक सारस का युगल गुजरा। पक्षि-युगल आपस में बातें करता जा रहा था "महर्षि पिप्पल से भी सुकर्मा अधिक श्रेष्ठ है।" पिप्पल पक्षियों की भाषा जानते थे। वे सुकर्मा के बारे में जानने के लिये चल दिये। काफी ढूँढ खोज के पश्चात् वे सुकर्मा के द्वार पर पहुँचे और उससे उसके जीवन की साधना का रहस्य पूछा। सुकर्मा ने कुछ समय पिप्पल को बैठने के लिये कहा और वह स्वयं नित्य नियम के अनुसार माता-पिता की सेवा में लग गया। महर्षि पिप्पल समझ गये "मैनें माता पिता की जिम्मेदारियाँ छोड़कर केवल साधना ही की है। लेकिन सुकर्मा अपनी जिम्मेदारियों को ही साधना समझ कर पूर्ण करने में लगा हुआ है।" और महर्षि पिप्पल सुकर्मा को प्रणाम करके चले आये। मनुष्य अपने दैनिक जीवन की जिम्मेदारियों को भली प्रकार साधना समझ कर उन्हें पूर्ण करने में लगा रहे तो बहुत बड़ी आध्यात्मिक सफलताएँ स्वतः मिल जाती हैं।

पिता के ऋण का भुगतान

भारत के प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता स्वर्गीय चित्तरंजनदास के पिता दस लाख रुपये का कर्ज छोड़कर मरे थे। नवयुवक दास ने निश्चय किया कि वे सब का कर्ज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

चुकायेंगे। कर्ज रिश्तेदारों का था इसलिये सभी लड़कों की परेशानी देख कर कर्ज वापिस लेना नहीं चाहते थे। पर दास बाबू भी किसी का ऋण रखना अपने कुल की बेइज्जती समझते थे। वे जो कमाते गये उसे अदालत में जमा करते गये। बाद में उन्होंने विज्ञापन निकलवाया कि जिसका कर्ज हो वह ले जाये। लेकिन जब तक कोई नहीं आया तो उन्होंने कर्जदारों को ढूँढ-ढूँढ कर उनका हिसाब चुकता किया।

किसी व्यक्ति की बेइज्जती यह है कि वह अनिवार्य आपत्ति के अवसर को छोड़कर अपना खर्च बढ़ाकर उसके लिये कर्ज ले और उससे भी बड़ी बेइज्जती यह है कि होते हुये भी ऋण चुकाने में आना कानी करे। चित्तरंजन दास ने अपने लिये निर्धनता निमन्त्रित करके भी ऋणमुक्त होना अपना कर्तव्य समझा। यही आदर्श हर व्यक्ति का होना चाहिये।

भारतीय नारी और पतिव्रतधर्म

पत्नी व्रत धर्म

पतिव्रत धर्म भारतीय नारी के महान गौरव का प्रतीक रहा है। उन्होंने इस आदर्श को निवाहने में पुरुषों को पीछे छोड़ दिया है। अन्धें धृतराष्ट्र की पत्नी गान्धारी अपने पति की तरह ही अन्धा रहना चाहती थी। इसलिये उन्होंने आजीवन आंखों से पट्टी बाँधे रह कर पति की तरह अन्धा रहना पसंद किया। भारत के हर घर में होने वाली सती सावित्री नारियों में से कुछ का वर्णन नीचे किया जाता है।

सावित्री और सत्यवान के चरित्र की दृढ़ता

सावित्री ने सत्यवान को ही अपना वर चुना। अश्वपति को जब इस निर्णय की सूचना मिली तो उन्होंने इस विवाह के सम्बन्ध में विद्वानों से परामर्श किया। महर्षि नारद ने बताया"राजन् ! सत्यवान तो अल्पायु है यह अब सिर्फ एक वर्ष और जीवित रहेगा।" राजा ने सावित्री को अन्य वर ढूँढने के लिये कहा लेकिन वह बोली पिताजी चरित्रहीन और अविवेकी पुरुषों की अपेक्षा सज्जन और सच्चरित्र व्यक्ति के साथ थोड़े समय जीना भी अधिक श्रेयस्कर होता है।" और सावित्री ने अपना निर्णय नहीं बदला "जिसे मैंने एक बार पति चुन लिया अब दूसरे के सम्बन्ध में मैं सोच भी नहीं सकती।" पुत्री की दृढ़ता के आगे महाराज अश्वपति झुक गये और विवाह हो गया। पितृगृह से जाने के बाद सावित्री पूर्ण मनोयोग के साथ पति की सेवा में लगी रही और अन्त में अपने पतिव्रत धर्मनिष्ठा सत्य के बल पर विधाता के नियम को मिटाकर सत्यवान को मौत से बचा लिया।

सुकन्या का त्याग और सेवामय जीवन

खेलवश समाधि में लीन महर्षि च्यवन की आँखें फोड़ देने पर सुकन्या को बढ़ा पश्चाताप हुआ। उसने उसी जीवन का परित्याग किया और अपने अपराध के प्रायश्चित के लिए तथा अन्धे ऋषि की सेवा के लिए सुकन्या नें स्वयं को ही ऋषि की सेवा में प्रस्तुत कर दिया। अब यह एक राजकुमारी नहीं थी वरन् एक वनवासी ऋषि की सेविका और धर्म पत्नी थी। लेकिन सुकन्या ने अपने कर्तव्य को इस निष्ठा और लगन से निभाया कि च्यवन ऋषि वृद्ध से जवान हो गये। सुकन्या की सेवा भावना पतिव्रत धर्म और त्याग के कारण अश्विनीकुमार बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने बूढ़े ऋषि को जवान बना दिया । अब सुकन्या और च्वयन सुखी गृहस्थ जीवन बिताने लगे। यह उसके सेवा भावना कर्तव्य परायणता सदाचार और धर्मिक जीवन की देन थी।

पति सेवा की शक्ति

सत्यभामा ने एक दिन द्रौपदी से पूछ ही लिया "पाँचाली ! तुम अपने पाँचों पतियों को किस किस तरह वश में रखती हो, जब कि मैं अपने एक पति कृष्णचन्द्र को भी सन्तुष्ट नहीं कर पाती।" द्रौपदी बोली "बहन मैं दैव अहंभाव, आलस्य, छिद्रान्वेषण, असन्तोष, कटु वचन आदि दुर्गुणों से दूर रह कर उनकी प्रीतिपूर्वक सेवा करती हूँ इसलिए वे सब मेरी बातों को मानते हैं।" सत्यभामा द्रौपदी के वचन सुनकर स्वयं ही अपने स्वभाव के सुधार में लग गई फलस्वरूप उसके पति कृष्णचन्द्र बहुत संतुष्ट रहने लगे।

पत्नी द्वारा पति का जीवन परिवर्तन

आर्य समाज के प्रसिद्ध नेता स्व०स्वामी श्रद्धानन्द अपनी युवावस्था में कुमार्गगामी भी रहे थे। तब वे एक कोतवाल के कुसगंग्रसित पुत्र थे। उन्हें मद्य,मांस जुआ का चस्का लग गया था। होनहार जीवन भी कुसंग में पड़कर बुराईयों में प्रवृत्त हो जाते हैं। एक दिन मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द का पूर्व नाम) शराब के नशे में वेश्या के यहाँ भी गये। बहुत रात बीतने पर घर आये तो उल्टी होने लगी। उनकी पत्नी आदर्श नारी थी। उसने उन्हें कुल्ला कराया उल्टी से सने हुए

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कपड़े बदल कर पलंग पर लिटा कर सिर दबाने लगी। नींद आई और सो गये। जब नींद खुली तो पानी मांगा। देवी उठी और उसने मिश्री मिलाकर दूध पति को पिलाया। अब कुछ होश आया तो वह पूछने लगे "अभी तुम जग ही रही हो भोजन किया या नहीं ?" पत्नी बोली मैं आपको भोजन कराये बिना खाना स्वयं कैसे खा लेती। अपनी पत्नी की इतनी उदारता और श्रद्धा को देखकर पति का हृदय भर आया। वे अपने कृत्यों पर क्षमा मांगने लगे तो पत्नी ने कहा "आप मेरे स्वामी हैं ऐसा कहकर मुझ पर पाप नच ढावें। मैने तो आपको ही परमेश्वर मानकर आपकी सेवा करना अपना कर्तव्य समझा है।" उसी रात से उनका जीवन बदल गया। स्वामी श्रद्धानन्द ने अपनी जीवनी में इस को अपने जीवन की दिशा बदलने वाली घटना बताया है।

सेवा का वशीकरण मन्त्र

एक बार सन्त दादू के पास एक स्त्री आई और अपने कलुषित दाम्पत्य जीवन के बारे में बताकर पति को वश में करने के लिए एक कवच मांगने लगी। दादूजी ने उसे समझाया कि प्रीतिपूर्वक सेवा करने से पति अपने आप ही बस में हो जायेंगे। पर स्त्री को सन्तोष न हुआ। अज्ञानवश वह कोई ऐसा जादू मन्तर से युक्त यन्त्र चाहती थी जो तत्काल पति को उसके वश में करा दे। लेकिन सन्त तो इस तरह के चमत्कारों से दूर रहते हैं। तो भी उस स्त्री को सन्तोष देने के लिए उन्होंने एक कवच-सा बनाकर दे दिया साथ ही प्रेम पूर्वक पति की सेवा करने के लिए कहा।

कुछ दिनों बाद वह स्त्री फिर आई और सन्त के चरणों में शीश झुकाकर कवच की प्रशंसा करने लगी। अब उसका दाम्पत्य जीवन बड़ा सुखी था। सन्त दादू के कहने पर उस स्त्री ने कवच खोलकर उपस्थित लोगों को दिखाया तो उसमें लिखा था।

दोष देख मत क्रोध कर, मन की शंका खोय ।
प्रेम भरी सेवा करे , पति वश तेरा होय ।।

सन्त दादू द्वारा दिया गया कवच नहीं था वरन उनकी शिक्षा रुष्ट पति-पत्नियों को भी एक करके उनका दाम्पत्य जीवन सुखी बना सकती है। प्रत्येक स्त्री यदि इसे जीवन का अंग बना ले तो पति-पत्नी के बीच की कटुता तथा असन्तोष शीघ्र ही नष्ट हो जाय।

पत्नीव्रत आवश्यक

पतिव्रत की तरह पत्नीव्रत भी आवश्यक है। स्त्री के लिए जो महत्व पतिव्रत रखने का है वह पुरुष के लिए पत्नीव्रत का है। दोनों का ही धर्म समान है। भगवान राम पत्नीव्रती थे। सीता के रहते-यज्ञ कार्य के लिए भी उन्होंने दूसरा विवाह करने का प्रस्ताव स्वीकार न किया और सोने की सीता की स्वर्ण प्रतिमा पास में बिठा कर काम चला लिया। दशरथजी ने एक पत्नी के रहते अन्य विवाह करके अपनी जो दुर्गति कराई सो प्रसिद्ध ही है।

जिस प्रकार पति को प्रसन्न रखना पत्नी का कर्तव्य है। उसी प्रकार पत्नी को सुखी बनाने के लिए प्रयत्न करना पति का भी कर्तव्य है। दोनों के अधिकार एवं कर्तव्य समान हैं।

तुकारामजी की सहनशीलता

सन्त तुकाराम की पत्नी बड़े कर्कश स्वभाव की थी। एक दिन तुकाराम कहीं से गन्ने का गट्ठा लाये। रास्ते में बच्चों ने गन्ने मांगे तो वे एक-एक करके उन्हें बाँटते चले आये। घर आते-आते केवल एक गन्ना शेष रह गया। पत्नी को दिया तो वह आग-बबूला हो गई। उसने उस गन्ने को तुकारामजी की पीठ पर दे मारा, जिससे वह टूट कर दो टुकड़े हो गया।

तुकारामजी मुस्कराये और एक हिस्सा पत्नी को देते हुए कहा। एक ही बचा था उसमें से दो टुकड़े करने थे, तुमने ठीक ही बाँट कर दिया। लो एक तुम खाओ और एक मैं खाता हूँ।पत्नी यदि गरम स्वभाव की हो तो पति का कर्तव्य है कि अपनी मधुरता एवं सहनशीलता से उसे निवाह ले।

सहिष्णु सुकरात

दार्शनिक सुकरात की पत्नी भी बड़ी कर्कश स्वभाव की थी। जब विद्वान लोग सुकरात से मिलने आते तो वह उन्हें निठल्ला मान कर कोसा करती थी और कई बार तो अभद्र व्यवहार भी किया करती थी।

एक बार विचारगोष्ठी में अनेक दार्शनिक आये हुए थे। देख कर पत्नी बहुत क्रुद्ध होने लगी। उसने आगन्तुकों को गालियाँ भी दी और छत पर चढ़ कर कीचड़ का पानी उन पर बखेर दिया। सुकरात ने इतना भर कहा है कि "सुना गया है कि जो बादल गरजते हैं वे बरसते नहीं पर आज तो गरजने और बरसने की दोनों क्रियाऐं साथ-साथ हो रही हैं।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूस से प्रसिद्ध मनीषी टालस्टाय की पत्नी भी स्वार्थी और असहिष्णु थी। पर उनने जीवन भर उन्हें निवाहा और कभी बदले का दुर्व्यवहार नहीं किया।

सज्जन व्यक्ति अपनी पत्नी के साथ मधुर व्यवहार करके उनका मन जीतते हैं और अपने गृहस्थ की शान्ति को नष्ट नहीं होने देते। दोनों में से एक भी उदार हो तो दूसरे को निवाह लेता है। झगड़ा तो दोनों के ही असहिष्णु होने पर बढ़ता है। ताली एक हाथ से नहीं दोनों हाथों के टकराने पर ही बजती है।

अर्जुन और उर्वशी

असुरों के युद्ध में देवताओं की सहायता करने के लिए अर्जुन स्वर्गलोक गये और वहाँ उन्होंने देवताओं की विजयी बनाया।

अर्जुन के पराक्रम से प्रसन्न होकर सुरपुर की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी उर्वशी उन पर मुग्ध हुई और नाटकीय ढंग से स्वयं को दीन-दुखी बता कर अर्जुन से सहायता का वचन लिया। कष्ट पूछने पर उसने बताया कि मैं आपके द्वारा आपके जैसा ही पुत्र चाहती हूँ।

अर्जुन उर्वशी का प्रयोजन समझ गये। उसने गम्भीर होकर कहा-"पुत्र के लिए प्रतीक्षा की क्या आवश्यकता है। मैं स्वयं आपके पुत्र रूपमें आज से ही मौजूद हूँ। मुझे ही आप पुत्र रूप में मानें।" अर्जुन का सदाचरण और दृढ़ता देख कर उर्वशी अवाक् रह गई।

पर-तिय मात समान

छत्रपति शिवाजी और मुगलों में लड़ाई हो रही थी। इसी बीच शिवाजी के सिपाही एक मुगलवंशीय राजकन्या को पकड कर ले आये और उसे पत्नी के रूप में रख लेने के लिए पेश किया।

शिवाजी ने उस युवती के रूप सौंदर्य को देखकर केवल इतना ही कहा कि यदि मेरी माता ऐसी ही सुन्दर होती तौ मैं भी सुन्दर जन्मा होता। यह कहकर उस युवती को सम्मान सहित उसके अभिभावकों के पास सुरक्षित पहुँचा दिया।

सच्चे मनुष्य कभी पर-स्त्री पर कुदृष्टि नहीं डालते। वे नारी मात्र को बहिन, बेटी और माता की दृष्टि से देखते हैं।

भाभज माता तुल्य

सुग्रीव ने सीता के फैंके हुए आभूषण लाकर राम को दिए, जिन्हें रावण द्वारा अपहृत किये जाने पर सीता ने नीचे गिरा दिया था। रामचन्द्रजी ने वे आभूषण अपने छोटे भाई को दिखाते हुए कहा "लक्ष्मण क्या ये आभूषण सीता के हैं।" लक्ष्मणजी ने चरणों में पहने जाने वाले आभूषणों को पहचानते हुए कहा "भगवन् ! मैने सीता माता के चरणों को ही भली प्रकार देखा है। अन्य आभूषणों को मैं पहचानने में असमर्थ हूँ।" वनवास काल में अत्यधिक समीप में रह कर भी लक्ष्मण ने कभी सीता को चरणों से ऊपर नहीं देखा यही उनके चरित्र की निर्मलता और आत्म-संयम की दृढ़ता का परिणाम है। संयम की इसी क्षमता के बल पर उन्होंने मेघनाथ जैसे योद्धा को परास्त किया ।

कच द्वारा चरित्र की रक्षा

कच उन दिनों शुक्राचार्यजी के पास संजीवनी विद्या सीख रहे थे। देवयानी शुक्राचार्यजी की पुत्री भी उसी के साथ-साथ पढ़ती थी। सहपाठी होने से कच और देवयानी में परस्पर स्नेह हो गया। कच उसे एक बहिन की भावना से ही स्नेह करते थे। देवयानी भी कच को प्रेम करती थी पर उसके मन में विकार उत्पन्न होने लगे थे। कच की शिक्षा पूर्ण हुई और उसने घर जाने का विचार किया। देवयानी ने कच को विवाह प्रस्ताव रखा। कच गुरु कन्या को अपनी सगी बहिन से बढ़ कर मानते थे इसलिए विवाह प्रस्ताव स्वीकार करने से उनने इन्कार कर दिया। इस पर देवयानी ने शाप देकर कच को अपने पिता द्वारा दी गई विद्या के अधिकारों से वंचित कर दिया। कच के हृदय में इसका तनिक भी दुःख नहीं हुआ लेकिन अपने चरित्र की रक्षा से प्रसन्नता थी। विचारशील मनुष्य अपनी बड़ी से बड़ी हानि उठाकर भी चरित्र को नष्ट नहीं करते। क्योंकि सच्चरित्र के समान कोई भी मूल्यवान पदार्थ इस दुनियाँ में नहीं है। अन्त में शुक्राचार्य ने कच के चरित्र पर प्रसन्न हो कर उसकी पढ़ी हुई विद्या पुनः सफल बना दी।

मर्यादा और नियमों का पालन

पाण्डवों ने नियम बना लिया था कि द्रौपदी एक निश्चित समय तक एक भाई के पास रहेगी। उस समय यदि कोई भाई भूल से भी उनके एकान्तिक जीवन में पहुँच जायगा तो उसे प्रायश्चित स्वरूप एक वर्ष का अज्ञातवास कर एकाकी जीवन बिताना पड़ेगा। एक दिन एक सिंह एक गाय का पीछा कर रहा था उसकी रक्षा के लिए अस्त्रों की आवश्यकता पड़ी लेकिन वे वहाँ रखे थे जहाँ युधिष्ठिर द्रोपदी के साथ शयन कर रहे थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक तरफ धर्म पालन दूसरी और नियम। अर्जुन ने गौ रक्षा के लिए अस्त्र लाना तय किया और उस दुर्दान्त सिंह को मार कर गाय की रक्षा की। तब नियमानुसार एक वर्ष के अज्ञात वास में जाने का निश्चय किया। धर्मराज तथा अन्य पाण्डवों ने उन्हें बहुत समझाया लेकिन वे न माने और नियम मर्यादाओं का पालन करने के लिए अज्ञात वास को चले गये। मर्यादाओं और नियमों के पालन से ही कोई व्यवस्था ठीक तरह चल सकती है।

गुरुजनों का सम्मान

युधिष्ठर की नैतिकता

महाभारत का युद्ध शुरू होने को था। कौरव पाण्डवों की सेनायें परस्पर आमने-सामने खड़ी थी। एकाएक युधिष्ठर अपना धनुष-वाण रखकर पैदल ही कौरव दल की ओर चल दिए। अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव इससे चिन्तित हुए और उनके पीछे चल दिए लेकिन वे न रुके। आखिर सबने देखा कि युधिष्ठर ने गुरु द्रोण,पितामह भीष्म के सन्मुख जाकर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। जब उनसे आशीर्वाद मिल गया तो युधिष्ठर वापिस अपने रथ पर लौट आये। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया "तात ! कोई भी काम प्रारम्भ करने से पूर्व गुरुजनों का आशीर्वाद ले लेने से ही उसमें सफलता मिलती है। धर्मराज युधिष्ठर ने इसी परिपाटी का अनुसरण किया है।"

गुरुभक्त एकलव्य

एकलव्य जाति का भील था। उसने गुरु द्रोणाचार्य से विद्या सीखनी चाही पर जातिगत भेद-भाव के कारण द्रोणाचार्य ने उसे शिष्य नहीं बनाया। इस पर युवक को द्रोणाचार्य की मिटटी की प्रतिमा बनाकर उसी को गुरु मानकर स्वयं ही अभ्यास करना आरम्भ कर दिया। कुछ दिन में वह बाण विद्या में इतना पारंगत हो गया कि उसने उधर से निकलने वाले पाण्डवों के कुत्ते का मुंह बाणों से बींध कर उसका भोंकना बन्द कर दिया।

इस अद्भुत कला को देखकर पाण्डवों ने अपना प्रतिद्वन्दी न रखने की इच्छा से द्रोणाचार्य को वहाँ भेजा और गुरु दक्षिणा के नाम पर उसका अंगूठा कटवा लिया। फिर भी गुरुभक्त एकलव्य प्रसन्न था कि उसने अपना आवश्यक धर्म कर्तव्य पालन किया।

शिष्य का कर्तव्य पालन

ऋषि धौम्य के शिष्य आरुणि को जब इसबात का पता चला कि अधिक बरसात के कारण गुरुदेव के खेत की मेंड़ टूट गई है और उससे पानी निकल रहा है तो चुपचाप फावड़ा लेकर उधर को चल पड़ा। फावड़े से मेंड़ पर मिटटी रखने का बहुतेरा प्रयास किया किन्तु पानी की तेजी के कारण मिट्टी रुकती न थी। कोई उपाय न देख कर आरुणि उसी मेंड़ पर लेट गया ठण्डी हवा और पानी में पड़े होने के कारण रात भर में उसका शरीर ठिठुर गया पर वह अपनी जगह से हिलातक नहीं। प्रातःकाल शिष्यों की गणना हुई तो आरुणि दिखाई नहीं दिया। महर्षि खेत की ओर दौड़े। देखा तो आरुणि अचेत होकर मेंड़ पर पड़ा था। पानी की एक बूंद भी बाहर न निकल सकी थी। शिष्य की गहन निष्ठा देखकर गुरु ने उसे छाती से लगा लिया अपने कर्तव्य पर मर मिटना ही जीवन की साधना का अन्तिम चरण होता है।

स्वामी दयानन्द ने अपने गुरु विरजानन्द की इच्छा पूर्ण करने के लिए संन्यास लिया और संसार में वेद धर्म का प्रचार करने के लिए अपना जीवन लगा दिया।

राजा दलीप ने गुरु वशिष्ठ की गाय नन्दिनी को सिंह से बचाने के लिए अपने शरीर तक को सिंह के खाने के लिए रख दिया।

जिनसे ज्ञान प्राप्त किया है उनके प्रति ऐसी ही श्रद्धा एवं कृतज्ञता का भाव रखना उचित है।

सदाचरण का तप तेज

राजा बलि असुर कुल में उत्पन्न हुए थे पर वे बड़े सदाचारी थे और अपनी धर्म परायणता के कारण उनने बहुत वैभव और यश कमाया था। उनका पद इन्द्र के समान हो गया। पर धीरे-धीर जब धन से उत्पन्न होने वाले आसन, अहंकार, आलस्य, दुराचार जैसे दुर्गुण बढ़ने लगे तो उनके भीतर रहने वाली शक्ति खोखली होने लगी।

एक दिन इन्द्र से बलि से भेंट हुई तो सबने देखा कि बलि के शरीर में एक प्रचण्ड तेज निकल कर इन्द्र के शरीर में चला गया है और बलि श्री विहीन हो गये।

उस तेज से पूछा गया कि आप कौन हैं ? और क्यों बलि के शरीर से निकल कर इन्द्र की देह में गये?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो तेज ने उत्तर दिया कि मैं सदाचरण हूँ। मैं जहाँ भी रहता हूँ वहीं सब विभूतियाँ रहती हैं। बलि ने जब तक मुझे धारण किया जब तक उसका वैभव बढ़ता रहा था और जब कि इसने मेरी उपेक्षा कर दी तो मैं सौभाग्य को साथ लेकर, सदाचार में तत्पर इन्द्र के यहाँ जाता हूँ।

बलि का सौभाग्य सूर्य अस्त हो गया और इन्द्र का चमकने लगा उसमें सदाचरण रूपी तेज की समाधि ही प्रधान चरण थी।

अधर्म का प्रायश्चित

बौद्ध-धर्म की नास्तिकतावादी विचारधारा का खण्डन करने के लिए कुमारिल भट्ट ने प्रतिज्ञा की और उसे पूरा करने के लिए उन्होंने पहले उसका अध्ययन करना आवश्यक समझा। इसके लिए उन्होंने तक्षशिला में बौद्ध-धर्म का अध्ययन किया। उन दिनों की प्रथा के अनुसार छात्रों को आजीवन बौद्ध-धर्म के प्रति आस्थावान रहने के प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी तभी उन्हें विद्यालय में प्रवेश मिल पाता था। कुमारिल ने भी झूँठी प्रतिज्ञा ली और शिक्षा समाप्त होते ही बौद्ध-धर्म का खण्डन और वैदिक-धर्म का प्रचार प्रारम्भ कर दिया। अपने प्रयत्न में उन्हें सफलता भी काफी मिली। शास्त्रार्थ की धूम मचा कर उन्होंने शून्यवाद की निस्सारता सिद्ध करके लडखड़ाती हुई वैदिक मान्यताओं को फिर से मजबूत बनाया।

अपने उद्देश्य में कुमारिल को पर्याप्त सफलता मिली लेकिन उनका अन्तःकरण उतना ही दुखी बना रहा। गुरु के समक्ष की गई प्रतिज्ञा और उन्हें दिए गये विश्वास के प्रति बात करने के पाप से उनकी आत्मा हर घड़ी दुःखी रहने लगी। अन्त में उन्होंने इस पाप का प्रायश्चित करने के लिए अग्नि में जीवित जल जाने का निश्चय किया। इस प्रायश्चित के करुण दृश्य को देखने के लिए देश भर में से अगणित विद्वान वहाँ आये। उनमें आचार्य शंकर भी थे। उन्होंने कुमारिल को मना करते हुए कहा "आपने तो जनहित के लिए ऐसा किया था। इसके लिए प्रायश्चित क्यों करते हैं ?" कुमारिल बोले अच्छा कार्य भी श्रेष्ठ तरीकों के द्वारा ही करना चाहिए। कुमार्ग पर चलकर श्रेष्ठ कर्म करने की परम्परा गलत है। मैंने आपत्ति-धर्म के रूप में ऐसा किया था मैं नहीं चाहता कि यह परम्परा आगे भी चलती रहे इसीलिए यह निश्चय किया है। अन्त में उन्होंने अग्नि में जलकर अपने पाप का प्रायश्चित किया।

संयम की शक्ति

महाभारत का अन्तिम श्लोक पूर्ण हुआ। गणेश की अनवरत चलती हुई लेखनी को विश्राम मिला। इसी बीच व्यासजी ने कहा "गणेश जी आप तो अनवरत लिखते ही रहे। आप तो बीच में कुछ बोले तक भी नहीं।" गणेश जी ने कहा, "भगवन संयम ही शक्ति का स्रोत है, यदि मैंने वाणी का संयम कर शक्ति का संचय न किया होता तो महाभारत इतनी जल्दी पूर्ण नहीं होता।"

मनुष्य की शक्तियाँ सीमित हैं, उन्हें विभिन्न व्यर्थ क्रियाओं के द्वारा नष्ट न करके संयम के द्वारा जितना संग्रह किया जा सके करना चाहिए। संयम की हुई शक्तियों से ही मनुष्य बड़े-बड़े काम कर सकता है। असंयमी और शक्तियों का दुरुपयोग करने वाला मनुष्य जीवन में कोई महान् कार्य नहीं कर सकता।

परमहंस की निरभिमानिता

स्वामी रामकृष्ण बगीचे में बैठे हुए ईश्वर चिन्तन में लीन थे। इतने में ही डाक्टर महेन्द्रनाथ सरकार उधर आये और उन्होंने स्वामी जी को बाग का माली समझ कर फूल तोड़ लाने को कहा। स्वामी जी मानापमान से परे निर्मल स्थिति में थे उन्होंने तत्काल फूल तोड़कर डाक्टर साहब को दे दिए । दूसरे दिन ये ही डाक्टर साहब स्वामी जी को देखने आये तब उन्हें अपनी भूल मालूम हुई और उनकी निराभिमानता नम्रता पर द्रवित हो गये। महान, सन्त, साधु व्यक्तियों की पहचान उनके अभिमान शून्यविनययुक्त स्वभाव से ही की जाती है।

गाँधीजी जनता के पैसे का मूल्य समझते थे

महात्मा गाँधी उन दिनों अपने भाषण के बाद जनता से हरिजन फण्ड के लिए चन्दा इकट्ठा किया करते थे। लोग क्रमशः आते और बापू के हाथ में पैसा देते जाते। इसी बीच गाँधी जी के हाथ से एक पैसा गिर गया वे उसे खोजने लगे लेकिन भीड़ में वह नहीं मिल रहा था। लोगों ने उन्हें परेशान देखकर कहा "बापू! एक पैसे के लिए इतनी चिन्ता न करें उसकी क्षति-पूर्ति तो हम कर देते हैं।" लेकिन बापू उस पैसे को ढूँढ़ते ही रहे और बोले, "आप और पैसा दें यह बात अलग है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेकिन मुझे जो मिलता है उसे सुरक्षित रखना मेरा कर्तव्य है। वह पैसा मेरा नहीं समाज का है। इस अमानत के एक-एक पैसे की सुरक्षा और उसको सम्हाल रखना मेरा कर्तव्य है।"

मान बड़ाई से दूर

स्वामी रामतीर्थ की ओजस्विनी वाणी और विद्वता से प्रभावित होकर अमेरिका की १८ यूनिवर्सिटियों ने मिलकर उन्हें सम्मानित 'डाक्टर' की उपाधि देने का प्रस्ताव रखा किन्तु स्वामी जी ने उसे सघन्यवाद अस्वीकार करते हुए कहा (१) स्वामी और (२) एम० ए० ये दो कलंक पहले ही नाम के आगे पीछे लग रहे हैं अब तीसरे कलंक को कहाँ रखूंगा ? मान बड़ाई के फेर से बचे रहकर ही सेवाभावी सत्पुरुष और वास्तविक कार्य कर सकते हैं।

दम, दान और दया

देवता मनुष्य और असुरों ने एक बार मिल कर अपने-अपने प्रतिनिधि पितामह ब्रह्मा के पास भेजे। और उनसे उपदेश देने की प्रार्थना की। ब्रह्माजी ने अपना मौन तोड़ा और "द" ऐसा कहकर फिर मौन हो गये। देवताओं ने अपने गुरु वृहस्पति से "द" का अर्थ पूछा तो उन्होंने बताया "विषयों में लीन मन का दमन कर उसे निर्विकार बनाने का उपदेश दिया।" शुक्राचार्य ने असुरों को बताया कि अपनी शक्ति को दूसरों के सताने में न लगाकर दयालु बनें। स्वार्थी मनुष्यों को धरती के विद्वानों ने बताया कि वे जन-कल्याण के लिए दान देना सीखें। शक्ति दूसरों को सताने एवं अपना उल्लू सीधा करने के लिए नहीं होती वरन् यह असहाय निर्बलों के ऊपर दया करके उन्हें ऊँचा उठाने के लिए होती है। अमूल्य मानव-जीवन भोग विलास विषय-वासनाओं में लीन होने के लिए नहीं होता अपितु संयम सदाचार के द्वारा आत्म-विश्वास के लिए प्राप्त होता है। धन अपने स्वार्थ एवं समय की पूर्ति के लिए नहीं वरन् दान करे दूसरों के हित साधन करने के लिऐ होता है।

विद्रुप द्वारा स्वर्ग का त्याग

पुण्यात्मा विद्रुप को अपने सत्कर्मो फलस्वरूप स्वर्ग मिला। ऐसा स्वर्ग जहाँ आनन्द सुख प्राप्ति के सर्व साधन सुलभ थे। किसी को कुछ नहीं करना पड़ता। लेकिन विद्रुप कुछ ही दिनों में वहाँ ऊबने लगे । इन्द्र ने उनसे इस उदासी का कारण पूछा तो वे बोले "देवराज मुझे इस सुख सुविधा युक्त अकर्मण्य जीवन से सन्तोष नहीं मिलता मुझे तो पुन: उसी लोक को भेज दें जहाँ कर्म करने की स्वतन्त्रता है। कर्म में ही मुझे सुख सन्तोष मिलेगा।" एक देवता ने पूछा "भाई वह कर्म-लोक कौन सा है।" विद्रुप बोले "देव! धरती ही कर्मलोक है। मैं इस स्वर्गीय जीवन को देवतओं के सान्निध्य को छोड़कर धरती पर मनुष्यों के साथ रहकर कर्म-युक्त जीवन बिताना चाहता हूँ।" और फिर विद्रुप अपनी इच्छा से धरती पर आकर कर्म युक्त उल्लासमय जीवन बिताने लगे।

धरती पर मनुष्य बनकर कर्म-शील जीवन बिताना स्वर्ग से भी अधिक सुखदायी होता है। जो इस तथ्य को हृदयंगम कर लेते हैं उनके लिए यह धरती स्वर्ग से महान बन जाती है।

मैं झूठा नहीं हूँ

एक बार गाँधी जी स्कूल देर से पहुँचे। बादल छाये रहने और वर्षा होने के कारण उन्हें समय का ठीक पता न चला। स्कूल में अध्यापक ने उनसे देर में आने का कारण पूछा-तो उन्होंने सच बात बतादी। पर इससे अध्यापक को संतोष न हुआ। इसे उसने बहाना समझा और एक आना जुर्माना कर दिया।

गाँधी जी रोने लगे। साथियों ने कहा-एक आना के लिए क्यों रोते हो ? आपके पिता तो अमीर हैं, एक आना कौन बड़ी बात है ? गाँधीजी ने कहा -मैं एक आना के लिए नहीं वरन् इसलिए रोता हूँ कि मुझे झूठा समझा गया।

गोखले की सचाई

गोपाल कृष्णगोखले जब स्कूल में पढ़ते थे तब एक दिन एक लड़के की मदद से गणित का प्रश्न-पत्र हल किया। उत्तर ठीक बन पड़े तो उन्हें अध्यापक ने इनाम दिया। बालक इनाम लेने में प्रसन्न होने की अपेक्षा रोने लगा। अध्यापक ने इसका कारण पूछा तो उनने सच बात कह दी कि प्रश्नपत्र मैंने दूसरों से पूछ कर हल किया है, ऐसी दशा में मुझे सजा मिलनी चाहिए न कि इनाम।

अध्यापक उनकी सच्चाई से बहुत प्रभावित हुए उनने बच्चे को बहुत प्यार किया और वह इनाम देते हुए कहा यह प्रश्नपत्र हल करने का नहीं तुम्हारी सच्चाई का इनाम है।

श्रद्धा और अनुशासन

सिख सम्प्रदाय के चौथे गुरु श्री रामदास जी के अनेक शिष्य थे। सभी की अपनी-अपनी विशेषताएँ थीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनमें से एक शिष्य ऐसे थे जिनकी विशेषता श्रद्धा और आज्ञापालन ही थी। इनका नाम था अर्जुन देव। अर्जुनदेव ने दीक्षा लेकर आश्रय में प्रवेश किया तो उन्हें बर्तन मांजने का काम सोंपा गया। वे सवेरे से शाम तक बर्तन माँजने में लगे रहते। अन्य शिष्य जब कि धर्म चर्चा और गुरु पूजामें लगते तब भी अर्जुनदेव अपने नियत कर्म के अतिरिक्त दूसरी बात न सोचते बर्तन माँजना ही उनके लिए सबसे बड़ी साधना बन हुआ था। गुरु ने यही तो आदेश उन्हें दिया था।

गुरुजी के अवसान का समय आया। सब शिष्य यह आशा लगाये हुए थे कि बढ़ी-चढ़ी योग्यता के कारण उन्हें ही उत्तराधिकर मिलेगा, वे गुरु की गद्दी पर बैठेंगे। गुरुदेव अपना घोषणापत्र लिख चुके थे। उनकी मृत्यु के बाद ही उसे खोला जाना था।

समय आया। गुरुदेव दिवंगत हुए। घोषणापत्र खुला। उसमें अर्जुनदेव को उत्तराधिकारी माना गया था। सुनने वालों ने आश्चर्य किया कि इस सबसे कम योग्य को यह पद कैसे मिला ? समाधान करने वालों ने समझाया कि श्रद्धा और अनुशासन यही शिष्य की सबसे बड़ी योग्यता है। गुरुदेव की परख ठीक थी और निर्णय भी ठीक ही है।

अर्जुनदेव सिख धर्म के पाँचवे गुरु हुए उनने अपनी योग्यता के बल पर सिख धर्म की भारी सेवा की और प्रगति की।

श्रम से सौभाग्य

एक माली के कई लड़के थे वह आलसी और कामचोर थे। माली जब मरने लगा तो उसे लगा कि आलस में पड़े-पड़े यह लोग दरिद्र हो जायेंगे। इसलिये इन्हें कोई ऐसी बात बतानी चाहिये जिससे इन्हें दरिद्रता का सामना न करना पड़े।

मरते समय बाप ने बेटों से कहा यदि कभी तुम्हें पैसों की तंगी आये तो बाग में प्रत्येक पेड़ के नीचे मैंने दो-दो रुपये गाड़ रखे हैं जो खोदकर निकाल लेना। कुछ दिन बाद लड़कों को पैसों की तंगी आई। उनने पेड़ों के नीचे खोद-खाद की। पैसा तो न मिला पर निकाई गुड़ाई हो जाने से पेड़ों पर फल अधिक लगे और पिछली फसल की अपेक्षा हर पेड़ ने दो-दो रुपये के फल अधिक दिये।

बेटों ने बाप के उद्देश्य को समझा और वे अधिक परिश्रम करके अच्छी तरह कमाने खाने लगे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कृतज्ञता

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपने कवि हृदय और उदारता के कारण सारी सम्पति बाँट कर कंगाल हो गए थे। जो एक दिन देश के बड़े धनवानों में से थे उनके पास एक दिन पत्रों के उत्तर भेजने के लिए भी पैसे नहीं रहे। वे अपने मित्रों को पत्र लिख-लिख कर मेज पर रखते गये। एक दिन उनके मित्र ने जब यह देखा तो पाँच रूपया देकर पत्रों को भिजवाने का प्रबन्ध किया। कुछ दिनों में भारतेन्दुजी की निर्धनता दूर हुई। अब जब भी वे मित्र आते उनकी जेब में भारतेन्दुजी एक पाँच का नोट रख देते। एक दिन उन मित्र ने कहा "बाबूजी ! आपकी यही स्थिति रही तो मुझे आपके पास आना बन्द करना पड़ेगा।" बाबूजी की आँखें में आँसू आगये, वे रुँधे गले से बोले "मित्र आपने मेरे ऊपर उस समय जो कृपा की थी उसका ऋण तो मैं जीवन भर भी रूपये देकर नही चुका सकता।"

आकर्षण से बचकर अध्ययन

नेपोलियन जब उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए अध्ययन में संलग्न था तब पड़ौस की एक स्त्री उस पर बेतरह मुग्ध थी । वह उसे अपनी ओर आकर्षित करने के लिए तरह-तरह की छोड़खानी करती पर नैपोलियन टस से मस न हुआ वह अपने अध्ययन में दत्तचित्त होकर लगा रहा ।

बहुत दिन बाद जब नेपोलियन अपने देश का प्रधान सेनापति बन गया तब वह छुट्टियों में अपने पूर्व परिचितों से मिलने गया । वह उस स्त्री के यहाँ भी पहुँचा । उसने कहा "आपको याद होगा यहाँ कालेज में एक नेपोलियन नामक लड़का पढ़ा करता था।" उस स्त्री ने बात काटते हुए कहा- "हाँ, हाँ एक रूखा नीरस और किताबों का कीड़ा लड़का उसकी मुझे याद है" ऐसे बेकार आदमी की मुझसे चर्चा भी मत कीजिए महोदय !"

नेपोलियन ने हँस कर कहा-देवि ! मैं ही वह नीरस किताबों का कीड़ा नेपोलियन हूँ आज का प्रधान सेनापति । यदि उन दिनों मैं रसिक रहा होता तो आज सेनापति बन सकना मेरे लिए संभव न होता ।

सुरम्य कुसुमं दृष्ट्वा यथा सर्व प्रसीदति ।
प्रसन्नाननं परान् दृष्ट्वा तथा त्वं सुखमाप्नुयाः ।।

जैसे सुन्दर फूल को देखकर लोग प्रसन्न होते हैं। वैसे ही दूसरों का प्रसन्न मुख देख तुम को प्रसन्न होना चाहिये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दान्तस्य किमरण्येन तथादान्तस्य भारत ।
यत्रैव निवसेदूदान्त स्तदरण्यं सचाश्रमः ।।

जो संयमी है उसे वन की क्या आवश्यकता है और जो संयम रहित है उसे वनवास करने से भी क्या लाभ है। संयमशील व्यक्ति जहाँ भी रहे उसके लिये वहीं वन है और वहीं आश्रम है।

हस्तस्य भूषणं दानं सत्यं कण्ठस्य भूषणम् ।
कर्णस्य भूषणं शास्त्रं भूषणैः किम्प्रयोजनम् ।।

दान हाथ का भूषण है, सत्य भाषण करना गले का भूषण है, शास्त्र वचन श्रवण करना कान का भूषण है फिर अन्य जड़ भूषणों की क्या आवश्यकता है ?

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति
प्रजा च कौल्यं च दमः श्रुतं च ।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ।।

बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रिय संयम, अध्ययन, करना, मिता भाषण, शक्ति के अनुसार दान देना और किये हुए उपकार को मानना- ये आठ गुण पुरुष की शोभा को बढ़ाते हैं।

सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद्विद्यते परम् ।
सत्येन विधृतं सर्वं सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम् ।।

सत्य वचन ही उत्तम होता है । सत्य से श्रेष्ठ अन्य कुछ भी नहीं हैं। सत्य बल से ही समस्त सिद्धियाँ होती हैं और सत्य से ही प्रतिष्ठा होती है।

कर्त्तव्यमेव कर्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि।
अकर्तव्यं न कर्त्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि।।

जो अपना कर्त्तव्य कर्म है उसका पालन मृत्यू पर्यन्त भी करना चाहिए और जो अकर्तव्य कर्म है उसकी मृत्यू आ जाने पर भी नहीं करना चाहिए।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ।।

जहाँ स्त्रियों का आदर सत्कार होता है वहाँ देवता रमण करते हैं जहाँ इनका अनादर होता है वहाँ की सम्पूर्ण क्रियायें निष्फल हो जाती हैं ।

शोचन्ति जामयो यत्र विनस्यत्याशु तत्कुलम् ।
नशोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा।।

जिस कुल में स्त्रियाँ दुःख पाती हैं उसका शीघ्र ही नाश हो जाता है, और जिस कुल में सुखी रहती हैं वहाँ सदा धनादिकी वृद्धि होती है।

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तु वर्षशतैरपि ।।

माता पिता जो क्लेश मनुष्यकी उत्पत्ति में सहन करते हैं उसका बदला सन्तान सदा चुकाती रहे तो भी चुकना कठिन है ।

स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।।

जिस पुत्र के उत्पन्न होने से वंश की बड़ाई हो, वह जानो उत्पन्न हुआ, नहीं तो इस असार संसार में मर कर कौन उत्पन्न नहीं होता है अर्थात् बहुत से होते हैं और बहुत से मरते हैं ।

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ।।
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ।।
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ।।

अथर्व ३।३०। १-३

हे गृहस्थो ! तुम्हारे पारिवारिक जीवन में परस्पर ऐक्य, सौहार्द और सद्भावना होनी चाहिए । द्वेष की गन्ध भी न हो । तुम एक-दूसरे से उसी तरह प्रेम करो, जैसे गौ अपने तुरन्त जन्मे बछड़े से प्यार करती है ।

पुत्र अपने-माता-पिता का आज्ञाकारी और उनके साथ एक मन होकर रहे । पत्नी अपने पति के प्रति मधुर और स्नेह-युक्त वाणी का ही व्यवहार करे ! भाई -भाई के साथ बहन-बहन के साथ द्वेष न करे ! तुम्हें चाहिए कि एक मन होकर समान आदर्शो का अनुसरण करते हुए परस्पर स्नेह और प्रेम को बढ़ाने वाली वाणी का ही व्यवहार करो !

उद्यमः साहसं धैर्य बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः ।
षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र देवः सहायकृत् ।।

उद्यम, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम-जिसमें ये छः गुण रहते हैं परमेश्वर उसकी सहायता करते हैं ।

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचारद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ।।

सदाचार से ही आयु प्राप्त होती है। आचार से ही इच्छित सन्तान की प्राप्ति होती है और आचार से ही अक्षय धन की प्राप्ति होती है । आचार ही सब अलक्षणों को दूर करने वाला है ।

सदा प्रसन्नं मुख मिष्ठवाणी सुशीलता च स्वजनेषु सख्यम् ।
सतां प्रसंगः कुल हीन हानं चिह्नानि देहे त्रिदिवास्थितानाम्।।

सदा प्रसन्न मुख रहना, प्रिय बोलना, सुशीलता, आत्मीयजनों में प्रेमभाव, सज्जनों की संगति और नीचों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

की उपेक्षा ये मनुष्यों में देवताओं के से लक्षण होते हैं ।

शक्तिमानप्यशक्तोऽसौ धनवानपि निर्धनः ।
श्रुतवानपि मूर्खश्च यो धर्मविमुखो नरः ।।

जो मनुष्य धर्म से विमुख रहता है धर्म का पालन नहीं करता वह शक्तिमान होता हुआ भी निर्बल है तथा धनवान् होता हुआ भी निर्धन है और वेद शास्त्रों को पढ़ लेने पर भी मूर्ख ही रहता है ।

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ।।

जो सदा पर स्त्रियों को माता के समान, पराये धन को मिटटी के ढेले के समान तथा समस्त प्राणियों को अपने ही समान देखता है वही वास्तव में पण्डित है ।

तुंगत्वमितरा नाद्रौ नेदं सिन्धावगाधता ।
अलंघनीयता हेतुरुभयं तन्मनस्विनि ।।

पर्वतों में ऊँचाई होती है गहराई नहीं, समुद्र में गहराई होती है ऊँचाई नही, परन्तु मनस्वी पुरुषों में उक्त दोनों ही बातें होती हैं ।

शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः ।
शरीरस्य गुणानाञ्च दूरमत्यन्तमन्तरम् ।।

शरीर और गुण इन दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है । यह शरीर तो थोड़े ही दिनों तक रहता है और चाहे जब एक क्षण में नष्ट हो जाता है किन्तु इसके अन्दर रहने वाले सदगुण कल्पान्त तक ठरहते हैं ।

संत कष्ट सहि आपुही, सुखि राखै जु समीप ।
आप जरै तऊ और कौ, करै उजेरौ दीप ।।
एक भले सबको भले, देखो सबद विवेक ।
जैसे सत हरिचन्द्र को , उधरे जीव अनेक ।।
कारज धीरे होत हैं काहे होत अधीर ।
समय पाय तरुवर फरै, केतिक सींचौ नीर ।।
करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान ।
रसरी आवत जात तें, सिल पर होते निसान ।।
भले बुरे निबहें सबै, महत पुरुष के संग ।
चन्द्र सर्प जल अगिन ए, बसत शंभु के अंग ।।
तुलसी संत सुरम्य तरु, फूल फलहिं पर हेत ।
ये इततें पाहन हनत, वे उतते फल देत ।।
भवन बीच रहु बिमल बनि, क्यों जाबहु बन घोर ।
तजौ दुखद, निज कुटिल मति, सुख है चारों आर ।।
जड़ चेतन गुन दोष मय, विश्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुन गन गहहि, परिहरि वारि विकार ।।
ऊँचे सोई जन उठै करै न जे अभिमान ।
सदा विनियता जे गहैं बाढ़ै दूब समान ।।
त्रिया लक्ष्मी गेह की त्रिया सक्ति का स्रोत ।
जे घर तिरिया आदरहिं तिनहिं अमित सुख होत ।।
तुलसी साथी विपति के, विद्या विनय विवेक ।
साहस सुकरित सत्य ब्रत, राम भरोसे एक ।।
जब देखो तब भलेन तें, सजन भलाई होइ ।
जारें-जारें अगर ज्यों, तजत नहीं खुसवोइ ।।
धन थोरो इज्जत बड़ी, कह रहीम क्या बात ।
जैसे कुल की कुलबधू, चिथड़न महा समात ।।
लोभ सरिस अवगुण नहीं, तप नहिं सत्य समान ।
तीर्थ नहीं मन शुद्धि सम, विद्या सम धनवान ।।

इन्हीं गुणों से मिलते-जुलते गुण अरण्यकाण्ड के अन्तर्गत भगवान राम ने नारद जी को बताये हैं । वे कहते हैं जिनमें निम्नलिखित गुण हैं वही मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। हे नारद ! सुनिये :-

षट विकार जित अनघ अकामा ।
अचल अकिंचन सुचि सुख धामा ।।
अमित बोध अनीह मित भोगी ।
सत्यसार कवि कोबिद जोगी ।।
सावधान मानद मद हीना ।
धीर धर्मगति परम प्रवीना ।।

दोहा-

गुनागार संसार दुख रहित, विगत सन्देह ।
तजि मम चरन सरोज प्रिय, तिन्ह कहुँ देहन गेह ।।
निज गुन श्रवण सुनत सकुचाहीं ।
परगुन सुनत अधिक हरषाहीं ।।
सम सीतल नहिं त्यागहि नीती ।
सरल सुभाव सबहि सन प्रीती ।।
जप तप ब्रत संयम अरु नेमा ।
गुरु गोविन्द विप्र पद प्रेमा ।।
श्रद्धा छमा मयत्री दाया ।
मुदिता मम पद प्रीति अमाया ।।
विरति विवेक विनय विज्ञाना ।
बोध जथारथ वेद पुराना ।।
दंभ मान मद करहिं न काऊ ।
भूलि न देहि कुमारग पाऊ ।।
गावहिं सुनहि सदामम लीला ।
हेतु रहित परहित रत सीला ।।

उत्तरकाण्ड में भरत जी के पूछने पर भगवान राम का ज्ञानवान में पाये जाने वाले सद्गुणों का वर्णन करना :-

विषय अलंपट सील गुनाकर ।
पर दुख दुख सुख सुख देखे पर ।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम अभूतिरपु विमद विरागी ।
लोभामरष हरष भय त्यागी ।।
कोमल चित दीनन पर दाया ।
मन बच क्रम मम भगति अमाया ।।
सबहिं मानप्रद आप अमानी ।
भरत प्राण सम मम ते प्राणी ।।
बिगत काम मम नाम परायन ।
संति विरति विनती मुदितायन ।।
सीतलता सरलता मयत्री ।
द्विजपद प्रीति धर्म जनयत्री ।।
सम-दम नियम नीति नहिं डोलहिं ।
परुष वचन कबहूँ नहिं बोलहि ।।

दोहा-

निन्दास्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज ।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय, गुन मन्दिर सुख पुंज ।।

इसी काण्ड में आगे चलकर काकभुसुण्ड जी गरुड को उनके द्वारा पूछे गये सप्त प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहते हैं कि :-

पर उपकार बचन मन काया ।
संत सहत सुभाव खग राया ।।
संत सहहिं दुख परहित लागी ।
पर दुख हेतु असन्त अभागी ।।
भूर्ज तरु सम सन्त कृपाला ।
परहित नित सह विपद बिसाला ।।
संत उदय संतत सुखकारी ।
विस्व सुखद जिमि इन्दु तमारी ।।
परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा ।
परनिन्दा सम अघ न गरीसा ।।

इसके पूर्व बालकाण्ड में गोस्वामी तुलसीदास जी सन्तों का चरित्र वर्णन करते हुए कहते हैं कि-

साधु चरित सुभ चरित कपासू ।
निरस विसद गुनमय फल जासू ।।
जो सह दुख पर छिद्र दुरावा ।
वंदनीय जेहि जग जस पावा ।।

अरण्यकाण्ड के अन्तर्गत जब श्री राम सीता लक्ष्मण सहित अत्रि के आश्रम में गये यह उस समय का वर्णन है :-

अनुसुइया के पद गहि सीता ।
मिली बहोरि सुसील बिनीता ।।
रिषि पतिनी मन सुख अधिकाई ।
आसिष देई निकट बैठाई ।।
दिव्य बसन भूषन पहिराए ।
जे नित नूतन अमल सुहाए ।।
कह रिषिवधू सरस मृदु बानी ।
नारिधर्म कछु ब्याज बखानी ।।
मातु पिता भ्राता हितकारी ।
मितप्रद सब सुनु राजकुमारी ।।
अमित दान भर्ता वैदेही ।
अधम सों नारि जो सेव न तेही ।।
धीरज धर्म मित्र अरु नारी ।
आपद काल परिखिअहिं चारी ।।
वृद्ध रोगबस जड़ धनहीना ।
अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना ।।
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना ।
नारि पाव जमपुर दुख नाना ।।
एकइ धर्म एक व्रत नेमा ।
काय वचन मन पति पद प्रेमा ।।
बिनु श्रम नारि परमगति लहई ।
पतिव्रत धर्म छाड़ि छल गहई ।।
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई ।
विधवा होइ पाइ तरुनाई ।।

यह किष्किन्धा काण्ड में राम सुग्रीव मिलन के समय का प्रसंग है ।

जे न मित्र दुःख होहिं दुखारी ।
तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ।।
निज दुख गिरि सम रज करि जाना ।
मित्रक दुख रज मेरु समाना ।।
जिन्ह कें असि मति सहज न आई ।
ते सठ कत हठि करत मिताई ।।
कुपथ निवारि सुपन्थ चलावा ।
गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा ।।
देत लेत मन संक न धरई ।
बल अनुमान सदा हित करई ।।
विपति काल कर सतगुन नेहा ।
श्रुति कह संत मित्रगुन एहा ।।
आगे कह मृदु बचन बनाई ।
पाछें अनहित मन कुटिलाई ।।
जा कर चित अहि गति सम भाई ।
अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई ।।
सेवक सठ नृप कृपन कुनारी ।
कपटी मित्र सूल सम चारी ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

यह अयोध्याकाण्ड में राम के वन गमन के समय का प्रसंग है :-

दोहा-

सीतहि सासु असीस सिख दीन्हि अनेक प्रकार ।
चली नाइ पद पदुम सिरु अति हित बारहिं बार ।।

उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत यह सीता का जीवन चर्या का प्रसंग है-

पति अनुकूल सदा रह सीता ।
सोभा खान सुसील बिनीता ।।
जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी ।
विपुल सदा सेवा बिधि गुनी ।।
निज कर गृह परिचरजा करई ।
रामचन्द्र आयुस अनुसरई ।।
कौसल्यादि सासु गृह माही ।
सेवई सबन्हि मान मद नाहीं ।।

अयोध्या काण्ड निम्न प्रसंग राम के वनगमन के समय की है।

एहिंते अधिक धर्म नहिं दूजा।
सादर सासु ससुर पद पूजा।।
जब जब मात करिहिं सुध मोरी।
होइहि प्रेम बिकल मति मोरी।।

अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत भगवान श्री राम से जब नगरवासियों सहित भरत मिलने गये थे उसी समय का यह प्रसगं है-

होहिं कुठायँ सुबन्धु सहाए ।
ओड़िअहिं हाथ असनिहु के घाए ।।

दोहा-

सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ ।
तुलसी प्रीति की रीति सुनि, सुकबि सराहहिं सोई ।।
मुखिआ मुखु सो चाहिये खान पान कहुँ एक ।
पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित बिबेक ।।

अयोध्याकाण्ड मे राम वन गमन के समय लक्ष्मण जी से उनकी माता कहती हैं ।

तुम्हरेहि भाग रामु बन जाहीं।
दूसर हेतु तात कछ नाहीं।।
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू।
राम सीय पद सहज सनेहू।।
राग रोषु इरिषा मदु मोहू।
जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू।।
सकल प्रकार बिकार बिहाई।
मन क्रम बचन करेहु सेवकाई।।
तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू।
संग पितु मात राम सिय जासू।।
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू।
सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू।।

अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत कैकेयी के कोप भवन और दशरथ से वर मांगने के समय का यह प्रसंग है-

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी।
जो पितु मातु बचन अनुरागी।।
तनय मातु पितु तोषनिहारा।
दुर्लभ जननि सकल संसारा।।

दोहा-

मुनिगन मिलनु बिसेषि बन, सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि,संमत जननी तोर ।।
भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू।
बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू।।
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा।
प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा।।
सेबहिं अरँडु कलपतरु त्यागी।
परिहरि अमृत लेहिं बिषु माँगी।।

अयोध्या काण्ड के अन्तर्गत जब लक्ष्मण ने वन में जाने के लिये माता सुमित्रा से आज्ञा माँगी तब माता उनसे कह रही हैं-

तात तुम्हारि मातु वैदेही ।
पिता रामु सब भांति सनेही ।।
अवध तहाँ जहँ राम निवासू ।
तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू ।।
जौं पै सीय रामु बन जाहीं ।
अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं ।।
गुरु पितु मातु बन्धु सुर साई ।
सेइअहिं सकल प्रान की नाईं ।।
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के ।
स्वारथ रहित सखा सबही के ।।
पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें ।
सब मानिअहिं राम के नातें ।।
अस जियँ जानि संग बन जाहू ।
लेहु तात जग जीवन लाहू ।।

राज तिलक के दिन प्रातःकाल सुमन्त रामचन्द्रजी को जगाने गये उसका यह प्रसंग है-

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राम सुमंत्रहिं आवत देखा ।
आदरु कीन्ह पिता सम लेखा ।।

यह प्रसंग उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत श्रीरामचन्द्रजी के जीवन क्रम, परस्पर सम्बन्धों का परिचय कराता है-

वेद पुरानि वसिष्ठ बखानहिं ।
सुनहिं राम जद्यपि सब जानहि ।।
अनुजन्ह संजुत भोजन करही ।
देखि देखि जननीं सुख भरहीं ।।

अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत कौशल्या वन-गमन के समय रामचन्द्रजी से कह रही है-

जौं केवल पितु आयसु ताता ।
तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ।।
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना ।
तौ कानन सत अवध समाना ।।

अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत राम वन-गमन के समय का यह प्रसंग है-

धन्य जनमु जगतीतल तासू ।
पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू ।।
चारि पदारथ करतल ताकें ।
प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें ।।
आयुसु पालि जनम फलु पाई ।
ऐहउँ बेगिहि होउ रजाई ।।

यह प्रसंग अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत श्रीराम के विवाह के समय का है-

बधू सप्रेम गोद बैठारी ।
बार बार हियँ हरषि दुलारी ।।
जनक राज गुन सीलु बढ़ाई ।
प्रीति रीति संपदा सुहाई ।।
बहुबिधि भूप भाट जिमि बरनी ।
रानी सब प्रमुदित सुनि करनी ।।
नृप सब भांति सबहि सनमानी ।
कहि मृदु बचन बोलाई रानी ।।
बधू लरिकनी पर घर आई ।
राखेहु नयन पलक की नाईं ।।

अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत राम के वनगमन के समय कौशल्या सीता के सम्बन्ध में कह रही हैं-

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई।
रूप रासि गुन सील सुहाई।।
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई।
राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई।।
कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली।
सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली।।
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ।
दीप बाति नहिं टारन कहऊँ।।
जौं सिय भवन रहै कह अंबा।
मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा।।

यह राम वनवास के समय जानकी जी का प्रसंग है-

तब जानकी सासु पद लागी।
सुनिअ मातु मैं परम अभागी।।
सेवा समय दैव वनु दीन्हा।
मोर मनोरथ सफल न कीन्हा।।

बालकाण्ड के अन्तर्गत राम विवाह के अवसर पर सीता को उपदेश देते हुये स्त्रियां कह रही हैं-

होएहु संतत पियहिं पिआरी।
चिरु अहिबात असीम हमारी।।
सासु ससुर गुर सेवा करेहू।
पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू।।

यह प्रसंग अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत जनक और सीताजी के मिलन के समय का है-

जनक राम गुर आयसु पाई।
चले थलहि सिय देखी आई।।
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी।
पाहुनि पावन प्रेम प्रानकी।।
तापस बेष जनक सिय देखी।
भयउ पेमु परितोषु बिसेषी।।
पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ।
सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ।।
जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी।
गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी।।

अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत राम वनवास के समय सीताजी रामचंद्रजी से कह रही हैं-

मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं।
पिय बियोग सम दुख जग नाहीं।।

दोहा-

प्राननाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान।।
भोग रोग सम भूषन भारू।
जम जातना सरिस संसारू।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं।
मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं।।
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी।
तेसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी।।
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे।
सरद बिमल बिधु बदनु निहारे।।
अस कहि सीय बिकल भइ भारी।
बचन बियोगु न सकी सँभारी।।

उत्तराकाण्ड के अन्तर्गत सन्तों के स्वभाव का वर्णन करते शिवजी गिरिजा से कह रहे हैं-

सन्त बिटप सरिता गिरि धरनी।
पर हित हेतु सबन्ह कै करनी।।
सन्त हृदय नवनीत समाना।
कहा कबिन्ह परि कहै न जाना।।
निज परिताप द्रवइ नवनीता।
पर दुख द्रबहिं सन्त सुपुनीता।।

दोहा-

गिरिजा सन्त समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान।।

अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत राम चंद्रजी केवट से कह रहे हैं-

सिबि दधीच हरिचन्द नरेसा।
सहे धरम हित कोटि कलेसा।।
रंतिदेव बलि भूप सुजाना।
धरमु धरेउ सहि संकट नाना।।
धरमु न दूसर सत्य समाना।
आगम निगम पुरान बखाना।।
मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा।
तजें तिहूँ पुर अपजसु छावा।।
संभावित कहुँ अपजस लाहू।
मरन कोटि सम दारुन दाहू।।

बालकाण्ड के अन्तर्गत रामचंद्रजी के विवाह का समाचार मिलने के अवसर का प्रसंग है-

सुनि बोले गुर अति सुखु पाई।
पुन्य पुरुष कहुँ महि सुख छाई।।
जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं।
जद्यपि ताहि कामना नाहीं।।
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ।
धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ।।

यह बालकाण्ड के अन्तर्गत श्री शिवजी द्वारा कामदेव को भस्म करने का प्रसंग है-

सौरभ पल्लव मदनु बिलोका।
भयउ कोपु कँपेउ त्रैलोका।।
तब सिवँ तीसर नयन उघारा।
चितवत कामु भयउ जरि छारा।।

उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत श्री रामचंद्रजी भरत को सज्जनों का लक्षण बताते हुये कहते हैं-

सबहि मानप्रद आपु अमानी।
भरत प्रान सम मम ते प्रानी।।
बिगत काम मम नाम परायन।
सांति बिरति बिनती मुदितायन।।
सीतलता सरला मयत्री।
द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री।।
ए सब लच्छन बसहिं जासु उर।
जानेहु तात संत संतत फुर।।
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं।
परुष बचन कबहुँ नहि बोलहिं।।

दोहा-

निंदा अस्तुति उभय सम ममता ममपद कज्ज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मन्दिर सुख पुज्ज।।

बालकाण्ड में गोस्वामी तुलसी दास जी सन्त साधुजनों की विनती कर रहे हैं-

साधु चरित शुभ चरित कपासू।
निरस बिसद गुनमय फल जासू।।
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा।
बंदनीय जेहिं जग जस पावा।।

।। चौथा प्रवचन समाप्त।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाँचवाँ-प्रवचन

यज्ञमय जीवन जिएँ

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।।

अध्याय ३ श्लोक १०

प्रजापति ने पहले यज्ञ सहित प्रजा को रचकर कहा कि "इस (यज्ञ) से तुम फलो फूलों, और यह(यज्ञ) तुम्हारी अभीष्ट कामनाओं को पूरा करने वाला हो।"

सृष्टि के प्रारम्भ में प्रजापति परमात्मा ने मनुष्यों को यज्ञ के साथ ही उत्पन्न किया था। मनुष्य और यज्ञ जुड़वाँ भाई हैं। दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। जहाँ मनुष्यता होगी वहाँ यज्ञीय भावना अवश्य रहेगी। जो यज्ञीय भावना से रहित है वह मनुष्य आकृति का प्राणी भले ही हो उसे सच्चा मनुष्य नहीं कहा जा सकता। मनुष्य जीवन यज्ञमय जीवन होना चाहिये। इसी में उसकी मनुष्यता की सार्थकता है।

यज्ञ और मनुष्य को साथ-साथ उत्पन्न करने के उपरान्त प्रजापति ने मुनष्य को निर्देश किया कि तुम इसे अपनाओ, इसे अपने भीतर और बाहर ओत-प्रोत करो, इसी से तुम्हारा कल्याण होगा। इसी से फलोगे फूलोगे और यही तुम्हारी आकांक्षाओं को पूर्ण करेगा।

आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये, फलने फूलने के लिये सुख शान्तिमय परिस्थितियाँ प्राप्त करने के लिये जिस यज्ञ को ब्रह्मा जी ने एक सुनिश्चित तप बताया है उसका प्रतीक अग्निहोत्र है। हवन द्वारा सुगन्धित, पौष्टिक, आरोग्य वर्धक, उत्तम पदार्थों की आहुति से देकर हम उन्हें वायु भूत बनाकर सम्पूर्ण प्राणियों के लिये बाँट देते हैं। इस प्रकार हम अपनी निज की कमाई को दूसरों के लिये परोपकार के लिये उत्सर्ग करके अपनी उदारता का परिचय देते हैं।

अग्निहोत्र के पीछे जिस आदर्शवादिता का समावेश हैं वस्तुतः उसे ही यज्ञ कहते हैं। वायु शोधनआदि लाभ तो गौण हैं। भावनाओं का उत्कर्ष ही धर्म एवं अध्यात्म का मूल प्रयोजन है। समस्त प्रकार के कर्मकाण्ड केवल इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये किये जाते हैं। अग्नि होत्र यज्ञ का बाह्य आवरण एवं कलेवर है। मूल भावना तो उसके पीछे परमार्थ की है। अपनी प्रिय वस्तुएँ स्वयं न खाकर अपने प्रियजनों के लिये ही नहीं वरन् उन सब प्राणियों के कल्याणार्थ होमते हैं। जिनसे किसी प्रकार का प्रतिफल पाने की आशा नहीं है।

यज्ञ मानव जीवन की सार्थकता का प्रमुख आधार है। भगवान ने अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य को अधिक विभूतियाँ एवं सुविधाएँ दी हैं। इसके पीछे उसका प्रयोजन यही है कि उनके द्वारा वह अपने छोटे भाई बहिनों को लाभ पहुँचावे उनकी सहायता करे। पिता अपनी सम्पत्ति और कारोबार की कुंजी बड़े बेटे को देता है इसका प्रयोजन यह नहीं कि बड़ा बेटा उस सौंपी गई साधन सामिग्री का स्वयं ही मनमाना लाभ उठाने लगे वरन् यह है कि उस सम्पदा से पिता के सारे परिवार को सुखी बनाने के लिये अधिकाधिक प्रयत्न करे। कोई बैंक, अपने खजानची के हाथ में नकदी रखने की जिम्मेदारी सौंपती है तो उसका अर्थ यह नहीं कि उस खजानें के धन को वह व्यक्ति अपनी निज की इच्छाओं में ही मनमाना खर्च कर डाले। वरन् यह है कि बैंक के स्वार्थ एवं प्रयोजन की पूर्ति के लिये उस धन का ठीक तरह उपयोग करने की जिम्मेदारी ईमानदारी के साथ निबाहे।

भगवान ने मनुष्य के शरीर में बोलने सोचने करने आदि की ऐसी विशेषताऐं उत्पन्न की हैं जो अन्य जीवों के शरीर में नहीं हैं। भगवान की दी हुई इन विशेषताओं के बल बूते पर ही वह इतने सुख साधन जुटा सकने में समर्थ हुआ है, यदि वे विशेषताऐं प्राप्त न हुई होतीं तो मनुष्य को भी अन्य जीवों की तरह घटिया स्तर का अभाव ग्रस्त जीवन यापन करने के लिये विवश होना पड़ता। हमें ईश्वर प्रदत्त उस महान प्रतिदान के उद्देश्य को समझना चाहिये। जो उसनेसृष्टि की ८४ लाख योनियों में से किसी को भी न देकर केवल मनुष्य को ही प्रदान किया है। यह विशेष उत्तराधिकार एवं उत्तरदायित्व ठीक वैसा ही है जैसे कोई सरकार अपने बड़े अफसरों या मंत्रियों को विशेष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिकार प्रदान करती है। उन अफसरों को ध्यान रहता है कि जो कुछ हमें मिला वह हमारे निज के लिये नहीं वरन् जनता की सुरक्षा एवं प्रगति के प्रयोजन से प्रयुक्त करने के लिये है। यदि यह प्रयोजन पूरा न करके कोई अफसर उस प्राप्त अधिकार का लाभ स्वयं ही लेने लगे तो उसे अपराधी माना जायगा। और भर्त्सनापूर्वक कठोर दण्ड दिया जायेगा।

मनुष्य को सामान्य जीवों की अपेक्षा जो कुछ भी अधिक प्राप्त हुआ। वह केवल इसलिये है कि उसके द्वारा ईश्वरीय प्रयोजनों की पूर्ति करते रहा जाय। मनुष्य एक प्रकार से ईश्वर का प्रतिनिधि है उसके अवतरण का उद्देश्य वही है जो ईश्वर के स्वयं के अवतरण का प्रयोजन होता है। ईश्वर को करुणानिधान, दीनबन्धु, क्षमासिन्धु, दाता, दानी, पवित्र निर्विकार, नियामक, निष्पक्ष, न्यायकारी आदि गुणों का भाण्डागार माना जाता है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण वह इतनी बड़ी सृष्टि का निर्माता, नियामक एवं निर्णायक बना हुआ है। भगवान के बड़प्पन में उसकी यह विशेषताएँ ही आधारभूत हैं। संसार की सुख शान्ति सुन्दरता समृद्धि एवं प्रगति भी इन्हीं गुणों पर आधारित है। मनुष्य को उपलब्ध हुई विभूतियाँ इन्हीं ईश्वरीय प्रयोजनों की पूर्ति में होनी चाहिये। जो व्यक्ति ईश्वर की भाँति ही उसकी सृष्टि को सुखी एवं सुन्दर बनाने में अपने अस्तित्व को सोंपते रहतें हैं वे ही मनुष्य जीवन की महत्ता एवं विशेषता को समझतें हैं और उन्हीं का जीवन सार्थक बनता है।

गीता में भगवान ने अर्जुन को-अर्जुन के माध्यम से मनुष्य मात्र को एवं समस्त समाज को उद्‌बोधन कराते हुये आदेश दिया है कि उनका जीवन लक्ष्य एवं उद्देश्य परमार्थ होना चाहिये। शरीर यात्रा के लिये निर्वाह की भी आवश्यक व्यवस्था बनाये रहें। पर वह साधन मात्र होना चाहिये। साध्य नही। निर्वाह सामिग्री जब लक्ष्य बन जाती हैं तब मनुष्य पथ भ्रष्ट होकर नर पशु बन जाता है और उसकी गतिविधियाँ हेय एवं निकृष्ट स्तर पर जा पहुँचती है। विवेकशील व्यक्ति वह है जो जीवन के मर्म को समझ कर अपनी गतिविधियों में परमार्थ का प्रधान रूप से समन्वय कर लेता है।

गीता में इसी बात को कई जगह कई ढंग से कहा गया है। यथा-

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।

अध्याय १८ श्लोक ५

यज्ञ, दान, तप, रूप, कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं वह करने योग्य ही हैं। यज्ञ, दान और तप निस्सन्देह बुद्धिमानों को पवित्र करने वाले हैं।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर।।

यज्ञ के लिये किये गये कर्म के अतिरिक्त इस संसार में और सब कर्म (स्वार्थ-कर्म) बन्धनकारक हैं। इसलिये हे अर्जुन ! स्वार्थपरता छोड़कर परमार्थ कर्म कर।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।।

प्रजापति ने सृष्टि के आदि में यज्ञ भावना सहित मनुष्यों को उत्पन्न किया और उन्हें निर्देश किया कि तुम यज्ञ कर्म करो, इसी से तुम्हारी आवश्यकताऐं पूर्ण होंगी।

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्थ।।

इस यज्ञ में तुम लोग देवताओं का पोषण करो। फल स्वरूप वे देव तुम्हारी उन्नति में सहायता करेंगे। इस प्रकार तुम दोनों एक दूसरे की सहायता करते हुये परम श्रेय को प्राप्त करो।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायेभ्यो यो भुक्ते स्तेन एव सः।।

यज्ञ द्वारा अभिवर्द्धित परिपोषित देवत्व तुम्हें आवश्यक सुख साधन स्वतः ही प्रदान करेंगे। पर यदि तुम यज्ञ से विमुख हो गये और स्वार्थी ही बने रहे तो निश्चय ही चोर कहलाओगे।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।।

यज्ञ में बचा हुआ वैभव भोगने वाला सत्पुरुष पापों से छूट जाता है। पर जो अपने शरीर पोषण की चिन्ता में डूबा हुआ उसी के लिये सब कुछ करता धरता है वह पापी मानो पाप ही खाता है।

अन्नाभ्दवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।
यज्ञाद्‌भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्‌भवः।।

अन्न से प्राणी उत्पन्न होते हैं। अन्न वर्षा से उत्पन्न होता है। और वह प्राणप्रद वर्षा यज्ञ से होती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। यज्ञ सत्कर्मो से उत्पन्नहोता है। अर्थात् सत्कर्मो का ही दूसरा नाम यज्ञ है।

कर्म ब्रह्मोभ्दवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।।

परमात्मा से सद्ज्ञान उत्पन्न होता है। सद्ज्ञान से सत्कर्म उत्पन्न होते हैं। इसलिये यज्ञ रूप सत्कर्मो में परमेश्वर को ही प्रतिष्ठित मानना चाहिये।

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।।

यज्ञ में जीवन-विकास और जीवन-विकास का यज्ञ कार्यों में उपयोग इस प्रवर्तित सृष्टि-चक्र के अनुसार जो नहीं बरतता और इन्द्रिय सुखों में लगा हुआ है। वह व्यक्ति पाप पूर्ण जीवन व्यर्थ ही जीता है।

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः।।

उस परमात्मा का इस संसार के रचने और अनेक कार्य करने में कोई लाभ स्वार्थ या प्रयोजन नहीं पर वह प्राणियों का कल्याण इसलिये करता है कि वे भी वैसा ही करते रहें।

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम।।

यज्ञ से बचे हुये अमृत को खाने वाले सनातन ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। यज्ञ रहित पुरुष का तो यह लोक भी नहीं है, तब हे अर्जुन! दूसरा तो कहाँ होगा।

उपरोक्त श्लोकों में गीताकार ने इसी तथ्य को प्रतिपादन किया है कि मानव जीवन का उद्देश्य यज्ञमय भावनाओं के साथ अपनी गति विधियों का निर्माण करना है। इसी मार्ग का अवलम्बन करके प्रगति, समृद्धि एवं शान्ति के पथ पर अग्रसर हो सकना सम्भव है। मानव जाति का अब तक का इतिहास यही बताता है। कि उसकी प्रगति एक दूसरे के लिये सहयोग प्रेम एवं त्याग की भावना के प्रदीप्त रहने के कारण ही हो सकती है। यदि कोई किसी के लिये कुछ त्याग न करता, सब अपनी ही आपाधापी में लगे रहते तो हर एक को अपना कुआ खोदकर आप पानी पीना पड़ता और इस प्रकार सभी घाटे में रहते।

पारिवारिक प्रगति को ही लीजिये। माता पिता के त्याग के फलस्वरूप ही बच्चों की शारीरिक मानसिक एवं सामाजिक प्रगति होती है। यदि अभिभावक बालकों के लिये कष्ट न सहें उनकी सुख सुविधा के साधन न जुटावे तो बेचारों को पौष्टिक भोजन, मँहगी शिक्षा, बीमारी में चिकित्सा, विवाह शादी की व्यवस्था उचित आजीविका आदि सुविधाएँ कैसे मिलें ? छोटा बालक तो सर्वथा असहाय होता है, बिना अभिभावकों की सहायता के जीवित तक नहीं रह सकता। उसका विकास सर्वथा मातापिता की उदारता पर अवलम्बित होता है। मनुष्य का निर्माण ही इस ढंग से हुआ है कि उसके जीवन का विकास दूसरों की उदारता एवं सहायता पर ही निर्भर है। यह एक शृंखला है जिसे चालू ही रखा जाना चाहिये। महिलाओं के गृहस्थ संचालन में शिशुओं के पोषण में पति एवं परिवार की आवश्यकता होती है। पशुओं की भाँति मानव, नारी अकेले अपने बलबूते, बिना किसी की सहायता के अपने बच्चों को ठीक तरह नहीं पाल सकती। इसी प्रकार वृद्धावस्था में रुग्णावस्था में दूसरों को सहयाता के बिना मनुष्य को कितनी कठिनाई उठानी पड़ती है। इसे भुक्तभोगी ही जानते हैं।

मनुष्य की छोटी छोटी आवश्यक एवं उपयोगी वस्तुएँ तब बनती एवं मिलती हैं जब उसमें लाखों करोड़ों व्यक्तियों का श्रम एवं मस्तिष्क लगा होता है। एक छोटी सी दियासलाई को ही लीजिये उसके बनाने में कितने मनुष्यों का योगदान रहा है। उसकी तनिक कल्पना तो कीजिये। जिस डिब्बी में दियासलाई रखी है उस डिब्बी को बनाने, लकड़ी ,स्याही, गन्धक, पोटास, फास्फारिस, सरेस आदि वस्तुऐं लगी होती हैं। इनमें से प्रत्येक वस्तु के उत्पादन में बड़ी बड़ी फैक्टरियाँ लगी हुई हैं। उन फैक्टरियों में जो मशीनें लगी हैं। उन्हें बनाने के लिये और फैक्टरियाँ लगी होंगी। उनके लिये लोहा खोदने में, कितने लोगों का श्रम लगा होगा, फिर उन खोदने वालों के लिये औजार बनाने में कितनों को काम करना पड़ा होगा। फिर उन वस्तुओं के उत्पादन होने से लेकर हमारे हाथ में आने तक कितने वाहनों पर चढ़ना उतरना पड़ा होगा। उन वाहनों के निर्माण एवं संचालन में कितने लोग लगे होगें। पेड़ उगाने से लेकर उसे काटने और फैक्टरी तक पहुँचाने में और वहाँ दियासलाई बनकर हम तक आने में अगणित व्यक्तियों के श्रम एवं ज्ञान की आवश्यकता पड़ी होगी। तब कहीं वह दियासलाई हमारे उपयोग में आने की स्थिति में पहुँची होगी। इसी प्रकार भोजन वस्त्र पुस्तक, निवास, सवारी, चिट्ठी पत्री, आजीविका, मनोरंजन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आदि दैनिक जीवनके साधारण कामों में अनेकों व्यक्तियों के सहयोग की अपेक्षा होती है और फिर वे व्यक्ति भी अनेकों अन्य व्यक्तियों की सहायता से इस योग्य बन पाते हैं कि हमारे लिये सहायक सिद्ध हो सकें। इस तथ्य पर गहराई से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव जाति की रचना ही इस प्रकार हुई है कि उसका अस्तित्व परस्पर उदार सहयोग पर ही निर्भर रह सकता है।

यह सहयोग परस्पर बन्द हो जायें तो हर व्यक्ति को आदिम युग के बन्दरों की तरह रहने के लिये विवश होना पड़े । आगरा जिले में भेड़ियों की माँद में एक मनुष्य का बच्चा शिकारियों ने पकड़ा था। भेड़िये उसे उठा ले गये थे। पर उनने उसे मारने की बजाय पाल लिया। यह बालक बिल्कुल भेड़ियों की तरह बोलता, खाता, चलता और रहता था। मनुष्यों में पाई जाने वाली एक भी आदत उसमें न थी। यह बालक अभी भी लखनऊ के अस्पताल में है। बहुत दिन के प्रयत्न के बाद कुछ थोड़ी सी आदतें मनुष्यों जैसी उसे सिखाई जा सकी हैं। इससे प्रकट होता है कि मानव बुद्धिमान, प्रगतिशील, गुणवान तो हो सकता है। पर यह सब सम्भव तभी है जब उसे दूसरों का उदार सहयोग मिले। जब तक यह सहयोग श्रृंखला ठीक चलती रहती है तब तक व्यक्ति एवं सामाज का विकास क्रम एवं स्नेह सद्भाव ठीक तरह बना रहता है। और प्रगति का रथ ठीक प्रकार आगे बढ़ता रहता है पर जब इसमें व्यवधान उपस्थित होता है तो सारी श्रृंखला अस्त व्यस्त हो जाती है। न व्यक्ति की प्रगति होती है और न समाज में शान्ति स्थिर रहती है।

समस्त सृष्टि का चक्र ही परमार्थ के ऊपर चल रहा है। बीज जब अपने आपको मिट्टी में मिला देता है तभी विशाल वृक्ष का प्रादुर्भाव होता है। माता अपने शरीर का रस रक्त माँस मज्जा आदि पदार्थ सन्तान के निर्माण में लगाती है, कष्ट सहती है, तभी बालक का जन्म होता है। वृक्ष मधुर फलों से युक्त होकर भी उनका स्वयं सेवन नहीं करते वरन् दूसरों के लिये त्याग कर देते हैं। नदी अपनी लम्बी यात्रा में अनेकों की प्यास बुझाती, धरती की छाती को शीतल करती, वृक्ष पेड़ पौधे जीवों को नव जीवन देने के लिये बहती है। फूल और मोती माला की शोभा बढ़ाने के लिये अपने आपको बिधवाते हैं।

संग्रही और स्वार्थी जीवनसदा क्षुब्ध ही देखा जाता है। तृष्णाएँ कभी किसी की शान्त नहीं होतीं। एक की पूर्ति होते ही दूसरी उठ खड़ी होती हैं। इनकी पूर्ति में और भी दूने मनोयोग के साथ लगना पड़ता है। यह लगन इतनी प्रबल हो जाती है कि सारा समय उसी की पूर्ति में लगाना पड़ता है। जीवनोद्देश्य की पूर्ति के लिये कुछ करने के लिये न तो समय बचता है और न अभिरुचि। फिर जो वस्तुएँ संग्रह कर ली गई हैं वे एक प्रकार का नशा मद एवं अहंकार पैदा करता है। जिनसे मनुष्य के स्वभाव में अनेक प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। अहंकारी व्यक्ति अपने दर्प को बनाये रखने के लिये अनेक प्रकार के ठाठ बाट बनाते हैं। ताकि दूसरे लोग उन्हें श्रीमन्त समझे। अहंकारी लोग दूसरों को अकारण सताते हैं ताकि दूसरे लोग उन्हें बड़ा बलवान या आतंकवादी समझें। अपनी मिथ्या प्रशंसा करते रहने की उन्हें आदत पड़ जाती है। नाना प्रकार के व्यसन घेरे लेते हैं और विषय विलासों को आसानी से प्राप्त कर लेने की सुविधा के कारण वे पतित जीवन बिताने लगते हैं।

लालची और स्वार्थी व्यक्ति कुछ वस्तुएं अवश्य जुटा लेते हैं देखने में वे अमीर जैसे जरूर लगते हैं पर भीतर ही भीतर वे खोखले बन जाते हैं। इन्हें इतने संघर्षो का सामना करना पड़ता है कि आन्तरिक दृष्टि से वे एक प्रकार टूट ही जाते हैं। सम्पत्ति का संग्रह देख कर अनेक लोग उस पर दाव घात लगाते हैं। उसे उचित या अनुचित रीति से अपहरण करने की चेष्टा करते हैं। उसे रोकने के लिये जो संघर्ष करना पड़ता है उसमें ईर्षा द्वेष विरोध का सामना करना पड़ता है। कई बार तो इसी प्रश्न को लेकर ऐसे कठिन संघर्ष आरम्भ हो जाते हैं जिनमें मनुष्य को अपना सब कुछ होम देना पड़ता है। लालची व्यक्ति भले ही अपने संग्रह की सफलता के कारण कुछ थोड़ी सी शारीरिक सुविधाएं प्राप्त करले भले ही मिथ्या अहंकार की पूर्ति करले पर वस्तुतः वह बहुत घाटे में रहता है। जीवनोद्देश्य की पूर्ति के लिये समय और अभिरुचि शेष न रहने के कारण उसे मानव जीवन को निरर्थक ही गँवा कर खाली हाथ चला जाना पड़ता है। यह सुर दुलर्भ मनुष्य शरीर ऐसे ही खेल खिलवाड़ में व्यतीत हो जाये। इससे बढ़ कर दुर्भाग्य की और कोई बात हो नहीं सकती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गीता में यज्ञमय जीवन बिताने की प्रेरणा देकर मनुष्य मात्र को यह संदेश दिया है कि लालची और स्वार्थी न बने वासनाओं की आग में न जलें और तृष्णाओं की मृग मरीचिका में भटकते भटकते आत्महत्या पर उतारू न हों। इस जंजाल में लाभ का बहकावा तो है वस्तुतः हानि ही हानि हाथ लगती है। बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता इस बात में है कि जीवन क्रम में पवित्रता और परमार्थ का समावेश करते हुये सद्गुणों की सत्कर्मो की सद्भावनओं की, सत्प्रवृत्तियों की दैवी सम्पदा संग्रह की जाये और उससे अपना यह लोक एवं परलोक सुख शान्ति मय बनाया जाये।

यज्ञ का अर्थ है त्याग। अग्निहोत्र को यज्ञ इसलिये कहते हैं कि उसमें त्याग करना पड़ता है। अपनी श्रम उपार्जित बहुमूल्य वस्तुओं को लोक कल्याण के लिये होम करना पड़ता है। यज्ञमय जीवन उसे कहते हैं जिसमें मनुष्य अपनी सुख-सुविधाओं को गौण मानते हुये अपने परिवार या समाज के लिये अधिकाधिक सुख सुविधाएं उत्पन्न करने का प्रयत्न करता है। अपने लिये संयम एवं त्याग की दूसरों के लिये उदारता एवं सेवा की भावना अपनाकर जो जीवन क्रम अपनाया जाता है, उसे यज्ञ कहते हैं। वे सब सत्कर्म यज्ञ कहे जा सकते हैं जिनमें लोक हित की भावना से प्रेरित होकर किसी व्यक्ति ने अपने उचित अधिकारों को भी दूसरों की सुख शान्ति बढ़ाने के लिये समर्पित कर दिया हो। इस तरह की गतिविधियाँ अपनाने में जब लोग परस्पर प्रतिस्पर्धा करते हैं। एक दूसरे से अधिक आदर्शवादी सदाचारी और परमार्थी बनने की होड़ लगाते हैं तो उसका परिणाम व्यक्ति और समाज की समृद्धि के रूप में सामने आता हैं। सतयुग ऐसी ही परिस्थितियों को कहते हैं। मानवीय शक्तियों का रचनात्मक दिशा में उपयोग इसी प्रकार संभव होता है और प्रगति की आधार शिला ऐसे ही वातावरण में रखी जाती है।

इसके विपरीत जब एक दूसरे से अधिक स्वार्थी बनते हैं। परस्पर ईर्षा द्वेष की आग में जलते हुये एक दूसरे को नीचा दिखाने एवं प्रतिशोध लेने में लगे रहते हैं। तो मानवीय शक्तियों का दुरुपयोग होता रहता है। इसका प्रतिफल विघटन एवं विनाशात्मक ही होता है व्यक्ति भी घाटे में रहता है और समाज भी। ऐसे आपाधापी और जलन कुढ़न की द्वेष दुर्भाव की परिस्थितियों में दुःख दारिद्र ही पनपते हैं और कलियुग जैसी नारकीय परिस्थितियाँ सामने आ खड़ी होती हैं। इसमें हानि अधःपतन एवं सर्वनाश की सम्भावनाऐं ही बढ़ती चलती हैं। स्वार्थ मय प्रवृत्तियों के बढ़ने से टकराव अवश्यंभावी है स्वार्थों की पूर्ति तभी सम्भव है जब दूसरों का शोषण किया जाय। जिसका शोषण किया जायेगा वह अप्रसन्न होगा ही और यह अप्रसन्नता किसी न किसी प्रकार टकराव उत्पन्न करेगी ही। इस टकराव का प्रतिफल अवांछनीय कष्टकर परिस्थितियों में ही उत्पन्न होता है। इससे कष्ट और अभाव, शोक और सन्ताप, दुःख और दरिद्र ही बढ़ता है। यह मनुष्य की विवेकशीलता पर निर्भर है कि वह स्वार्थी जीवन का तनिक सा लोभ और लाभ देख कर अपना एवं दूसरों का भविष्य अन्धकारमय बनावे अथवा त्यागमय प्रवृत्तियों का आश्रय लेकर अपने आत्म सन्तोष एवं दूसरों के कल्याण का पथ प्रशस्त करे। मार्ग दोनों ही सामने हैं अपनी अपनी श्रेष्ठता एवं निकृष्टता के आधार पर दोनों में से किसी को भी चुन सकते हैं।

गीता का स्पष्ट परामर्श यह है कि प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति यज्ञीय जीवन जीने की गतिविधि अपनावे क्योंकि उससे उसे आत्म सन्तोष तो मिलेगा ही, जीवन लक्ष्य की पूर्ति का अवसर तो रहेगा ही। साथ ही अपने भौतिक विकास की सम्भावनाएं भी स्वार्थी जीवन की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ी चढ़ी रहेंगी। उदार सच्चरित्र एवं आदर्शवादी व्यक्ति को आर्थिक दृष्टि से तत्काल कोई घाटा भले ही रह जाये। पर अन्ततः वह स्वार्थियों और दुर्जनों की अपेक्षा कहीं अधिक लाभ में रहता है। सज्जन के प्रति सभी का सद्भाव रहता है। सद्भाव से प्रेरित होकर वे उसका सहयोग करते हैं। दूसरों की श्रद्धा एवं सद्भावना पाकर प्रगति की सम्भावनाऐं अनेक गुनी बढ़ जाती हैं। बेईमान और स्वार्थी लोग आरम्भ में थोड़े दिन लाभ कमाते हैं, पर जब उनका, भंडाफोड़ हो जाता है तो लोग घृणा करने लगते हैं और असहयोग का रूख अपनाते हैं। ऐसी दशा में उनका लाभ घाटे के रूप में बदल जाता है। उसके विपरीत जिनके प्रति जन साधारण के मन में श्रद्धा होती है, उन्हें सहयोग देते हैं और उस सहयोग के बल पर कोई भी व्यक्ति किसी भी दशा में आगे बढ़ता चला जाता है।

यज्ञीय जीवन जीने से आन्तरिक सद्गुण दिन दिन बढ़ते हैं। इन गुणों के आधार पर ही लोग ऊँचे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उठे और आगे बढ़े हैं। संसार का प्रत्येक महापुरुष जिन सत्कर्मो के कारण विख्यात हुआ है। उनकी सफलता जन सहयोग पर भी निर्भर रही है और यह स्पष्ट है कि चिरस्थायी जन सहयोग केवल सद्गुणी सज्जनों को ही मिलता है। सज्जनों को प्राप्त होने वाला सम्मान अपना मूल्य माँगता है और वह है- यज्ञमय जीवन। जो इस मूल्य को चुका सके उनने आत्म सन्तोष पाया और आत्म कल्याण का लाभ उठाया किन्तु जो इसमें हिचकिचाते रहे, अपने दोष दुर्गुणों और स्वार्थ संकीर्णताओं को छोड़ न सके उन्हें लोक का सुख मिला और न परलोक का आनन्द। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुये भगवान ने अर्जुन को और अर्जुन के बहाने जन साधारण को कहा कि उनका स्पष्ट निर्देश यही है कि हर व्यक्ति यज्ञीय जीवन जिये और सच्ची सुख शान्ति का, प्रगति एवं समृद्धि का रसास्वादन करे।

धर्म-रक्षा के लिये प्राण-दान

दधीचि का अस्थि दान

शक्तिशाली वृत्रासुर किसी भी तरह नहीं मारा जा सका उसके त्रास से सभी देवता भयभीत थे। आखिर ब्रह्माजी ने बताया कि किसी तपस्वी की अस्थियों के वज्र से ही वृत्रासुर मारा जा सकता है। उस समय महर्षि दधीचि तपस्वियों में प्रसिद्ध थे। इन्द्र अन्य देवताओं के साथ दधीचि के आश्रम पर गये और साष्टांग प्रणाम करते हुये विनम्रता के साथ अपना मन्तव्य उन्हें कह सुनाया। इन्द्र ने यद्यपि महर्षि की तपस्या से द्वेष करके पहले उन्हें सताया था लेकिन महामना दधीचि को उसका ख्याल तक भी न था। उन्होंने कहा कि "परमार्थ के लिये, देवत्व की रक्षा के लिये मेरा यह नश्वर शरीर काम आता है तो इसे सहर्ष ले जाओ।" और महर्षि ने योगबल से अपना शरीर छोड़ दिया। उससे वज्र बनाया गया और महापराक्रमी दुर्दान्त राक्षस वृत्तासुर को मारा गया। सन्त महात्मा ऋषि मुनियों का जीवन दूसरों के हितार्थ ही होता है।

पर-हित के लिये आत्मत्याग

राजकुमार जीमूत वाहन समुद्र तट पर सैर कर रहे थे। रास्ते में एक बहुत बड़ा हड्डियों का ढेर मिला। पूछने पर मित्रावासु ने बताया, राजकुमार ! यहाँ गरुड़ प्रतिदिन एक नाग का भक्षण करता है। निर्दोष नागों को सताने का समाचार सुनकर राजकुमार बड़े दुखी हुये और उन्हें बचाने का प्रण कर लिया। उस दिन नाग शंखचूड़ की बारी थी। राजकुमार नाग के आने के पहले शंखचूड़ का रूप बना कर वध स्थल पर जा उपस्थित हुये। गरुड़ ने चोंच से राजकुमार का शरीर घायल कर दिया। इसी बीच शंखचूड़ वहाँ जा पहुँचा। यह दृश्य देख कर दूर से ही चिल्लाया ऐ गरुड़ ! तुमने यह क्या किया निर्दोष राजकुमार की हत्या कर दी। गरुड़ इस अनुपम त्याग से दुखित हो गये। अपने आपको धिक्कारने लगे और उस दिन से नागों को सताना बन्द कर दिया। दूसरों के दुःख निवारणार्थ अपने आपको उत्सर्ग करने वाले मर कर भी अमर हो जाते हैं। वस्तुतः ऐसे ही लोग मानवता के प्रकाश स्तम्भ है। संत्रस्त मनुष्य को सुख शान्ति की छाँह देने वाले होते हैं।

पुरोहित का कर्त्तव्य पालन

विजय दशमी के दिन महाराणा प्रताप और शक्तिसिंह दोनों शिकार के लिये जंगल गये। एक सुअर दिखाई दिया। दोनों ने साथ-साथ लक्ष्य पर निशाना चलाया। दोनों तीर शूकर को लगे। अब इस पर झगड़ा हो गया कि इसे किसने मारा है। विवाद इतना बढ़ा कि दोनों भाइयों ने तलवारें निकाल लीं। राज पुरोहित ने देखा कि राजवंश का अन्त होना चाहता है उनकी सदाशयता इसे स्वीकार न कर सकी। दोनों भाइयों के बीच में आकर वे खड़े हो गये। तलवारें चल चुकी थीं। दोनों का ही प्रहार पुरोहित पर हुआ और वे टुकड़े टुकड़े होकर भूमि पर गिर पड़े। इस दृश्य को देखकर दोनों भाई सकपका गये और राज वंश मिटने से बच गया।

ब्राह्मण का आदर्श मानवता को विसंगठित होने से बचाने में समाज में फैले अविवेकपूर्ण कृत्यों को रोकने के लिये अपने आपको मिटा देना ही है। जो समाज में त्याग परमार्थ धर्म आदि के आदर्शो की ज्योति प्रज्जवलित रखता है। अपने जीवन का स्नेह जलाकर अपने को मिटा देता है वही सच्चा ब्राह्मण है सच्चा पुरोहित है।

हाड़ी रानी का अपूर्व त्याग

सरदार चूड़ावत का विवाह हुये अभी थोड़े ही दिन हुये थे। पत्नी जैसी रूपवती थी वैसी ही गुणवती भी। उन दिनों औरंगजेब के अत्याचारों का प्रतिरोध करने के लिये राजपूतों को युद्ध के लिये आये दिन तैयार रहना पड़ता था। ऐसी ही एक चुनौती फिर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सामने आई। चूड़ावत को युद्ध मोर्चा सम्हालने के लिये जाना पड़ा। एक ओर कर्तव्य की पुकार थी तो दूसरी ओर नवविवाहिता पत्नी का आकर्षण। सरदार का मन दोनों ओर डोलने लगा युद्ध में जाये या नहीं। पत्नी को छोड़े या नहीं और इस तरह दुविधा में पड़े सरदार चूड़ावत कोई निर्णय न कर पाये। उन्हें चिन्तातुर देख कर रानी ने पूछा तो सरदार ने अपनी अन्तर व्यथा कह सुनाई। हाड़ी रानी गम्भीर हो गई। उसने सोचा "यदि मेरे आकर्षण से पति अपने कर्त्तव्य पथ से विचलित होते हैं तो मेरा न रहना ही देश और धर्म के लिये हितकर सिद्ध होगा। मुझे अपना बलिदान करके पति की द्विविधा मिटा देनी चाहिये। जिससे वे एकाग्रचित अपने कर्तव्य का पालन कर सकें।"

रानी ने बड़े वेग से एक हाथ में तलवार और दूसरे में अपने बाल पकड़ कर वार किया और उसका मुण्ड सरदार की गोद में उछलने लगा। यह सब बिजली की तरह ऐसे हुआ कि सरदार सम्हल भी न पाये। कर्तव्य पथ से विचलित न होने देने के लिये जो स्त्रियाँ आत्मबल से भरी होती हैं उनके पतियों द्वारा कायरता अपनाना सम्भव नहीं होता। चूड़ावत की द्विविधा अब मिट चुकी थी। वे घोड़े पर सवार होकर युद्ध क्षेत्र की ओर बढ़े।

श्रद्धा और त्याग

सिखों के नौवे गुरु तेगबहादुरसिंह को औरंगजेब ने दिल्ली बुला कर मरवा डाला था और उनकी लाश को नगर के एक चौराहे पर डलवा कर घोषणा कर दी कि जो कोई इसका अन्तिम संस्कार करने का प्रयत्न करेगा उसे भी प्राणदण्ड की सजा दी जायेगी। जब यह खबर गुरु तेगबहादुर के पुत्र गुरु गोविन्द सिंह जी के पास पहुँची तो वे उनकी लाश को प्राप्त करने दिल्ली की तरफ चले। उस समय उनकी अवस्था केवल सौलह वर्ष की थी। जब वे दिल्ली के निकट पहुँचे तो उनको एक गरीब गाड़ी वाला सिख मिला। उसने गुरुजी से कहा कि आपका दिल्ली जाना बड़े भय की बात है। औरंगजेब कभी आपको नहीं छोड़ेगा। इसलिये आप इसी जगह गुप्त रूप से ठहरें, हम आपके पिता के शव को यहीं ला देगें। यह कह कर वह अपने बेटे को साथ लेकर दिल्ली पहुँचा। उस समय तक गुरु तेगबहादुर का शव काफी गल सड़ गया था और उसमें से बड़ी बदबू आने लगी थी। इससे वहाँ पहरा देने वाले सिपाही भी दूर हट कर बैठने लगे। वे गाड़ी वाले बाप बेटे जब वहाँ पहुँचे तो बाप ने बेटे से कहा- गुरु जी शव को हटाने से पहले हम दोनों में से एक को प्राण त्याग करना पड़ेगा। क्योंकि यदि पहरा देने वाले सिपाहियों की निगाह पड़ने पर उन्हें शव दिखलाई न देगा तो वे अवश्य ढूँढने लगेंगे। तुम अभी जवान हो। ताकतवर हो और इस शव को उठा कर ले जा सकते हो। इसलिये मेरा मरना उचित है। जब तक बेटा कोई उत्तर देता बुडढ़े ने अपनी कृपाण छाती में मार दी और वहीं गिर गया। बेटा ने गुरु जी के शव को हटा कर उनके स्थान पर अपने पिता के शव को लिटा कर ढक दिया। इसके बाद उसने गुरु जी के शव को कन्धे पर डाल लिया और उसे निर्विघ्न गुरु गोविन्दसिह के पास पहुँचा दिया।

देशद्रोही पति का अन्त

देवगिरी के राजा रामदेव पर अलाउद्दीन ने चढ़ाई की लेकिन बादशाह की करारी हार हुई। अलाउद्दीन वापिस लौट रहा था कि उसे एक देशद्रोही मिल गया। रामदेव का सरदार कृष्णराव बादशाह से जा मिला और सारा भेद बता दिया। अलाउद्दीन ने भी उसे राजा बना देने का वचन दिया। बादशाह ने पुनः देवगिरि पर चढ़ाई की। रामदेव के सैनिक युद्ध की तैयारी में लग रहे थे। किन्तु कृष्णराव जासूसी में लगा हुआ था।

वीरमति कृष्णराव की पत्नी थी। उसके यह वृत्तान्त जब मालूम हुआ तो वह बड़ी व्यथित हुई और उसने अपने देशद्रोही पति की छाती में छुरा भोंक दिया। मरते हुये कृष्णराव ने कहा- "मैं देशद्रोही था किन्तु तुम्हारा तो पति भी था।" वीरमती ने बड़े सन्तोष के साथ कहा एक देशद्रोही की पत्नी कहलाने के बजाये आजीवन विधवा रहना अधिक सौभाग्यशाली होगा। फिर भी वीरमती ने अपना भी अन्त कर लिया और वह पति की लाश के साथ जल कर सती हो गई।

परमार्थ में मानव जीवन की सार्थकता

देवता बड़े या असुर ?

एक बार देवता और असुरों में इस बात को लेकर झगड़ा हो गया कि दोनों में से कौन बड़ा है? निर्णय के दोनों पक्ष ब्रह्माजी के पास पहुँचे। ब्रह्माजी ने इसके लिये एक परीक्षा की कसौटी सामने रख दी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उन्होंने दोनों को दो पंक्तियों में बिठाया और भोजन के लिये स्वादिष्ट पदार्थ परोसवा दिये। जब खाने का समय आया तो प्रजापति ने कुछ ऐसा चमत्कार किया कि उन सभी के हाथ कोहनियों पर से मुड़ना बन्द हो गये। भोजन करने में दोनों को कठिनाई थी। असुरों को अपना ही स्वार्थ सूझता था इसलिये वे मुट्ठी में भोजन भरकर ऊपर ले जाते और वहाँ से मुँह में छोड़ते। इस तरह बहुत कम ही मुँह में पहुँचा, शेष नाक आँख आदि में गिरा और इधर उधर फैला, अन्त में उन्हें भूखा उठना पड़ा। पर देवतओं ने उदारता और परस्पर सहयोग की नीति अपना कर एक दूसरे को मुख में ग्रास देने की विधि अपनाई। एक ने अपने हाथ से दूसरे को भोजन कराया। फलस्वरूप सभी का पेट भर गया। ब्रह्माज़ी ने कहा- स्वार्थ की संकीर्णता में बँधा हुआ मनुष्य ओछा एवं छोटा कहलाता है और घाटे में भी रहता है। इसके विपरित जो उदार एवं सेवाभावी होते हैं। वे लाभ में भी रहते हैं और श्रेष्ठ भी कहलाते हैं।

युधिष्ठिर द्वारा यातनाग्रस्त लोगों का छुटकारा

सत्यनिष्ठ युधिष्ठिर ने अश्वत्थामा के सम्बन्ध में महाभारत के समय तनिक सी झूंठ बोली थी कि जिसके कारण उन्हें कुछ समय के लिय नरक में जाना पड़ा। जब उन्होंने चारों ओर यातना पाते हुये जीवों को देखा तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने अपने साथ चल रहे दूत से पूछा तो बताया गया "ये जीव अपने पापों का फल भुगत रहे हैं।" युधिष्ठर ने उन के उद्धार का उपाय पूछा तो बताया गया कि यदि वे अपने सम्पूर्ण पुण्यों का दान कर दें तो सब नर्क से छूट जाये। धर्म पुत्र इस पर राजी हो गये और यातना भोगने वाले सभी जीव छोड़ दिये गये। अकेले युधिष्ठर ही वहाँ बच रहे। उनकी इस उदारता और परदुःख कातरता पर इन्द्र ने स्वयं उनका अभिवादन किया और स्वर्ग को ले गये।

दूसरों के हित कल्याण के लिये मोक्ष स्वर्ग को भी ठुकरा देने वाले महामानव ही इस धरती पर धर्म के अवतार होते हैं। दूसरों को क्लेशों दुःखों में कष्ट पाते हुये देखकर भी जो अपने लिये मोक्ष स्वर्ग आदि की कामना से ग्रस्त होकर उनकी प्राप्ति के लिये लगे रहते हैं वे मानवीय आदर्शों से बहुत पिछड़े होते हैं।

लोक सेवक की तो भगवान भी भक्ति करते हैं

एक दिन महर्षि नारद मृत्युलोक में भ्रमण करने आये। वे एक नगर के पास से गुजर रहे थे कि परोपकारी सुश्रुत ने उन्हें पहचान लिया और उन्हें प्रणाम करते हुये पूछा "देवर्षि यह पोथी पत्रा लेकर आज कैसे पधारे?" नारद बोले "राजन् ! यह वह बही है जिसमें भगवान की भक्ति करने वालों के नाम अंकित हैं।" सुश्रुत ने नारद जी से बही लेकर देखी तो उसमें कहीं भी उसका नाम नहीं था। इससे वे दुःखी न हुये और अपने जन सेवा के कार्यो में लग गये। कुछ दिन बाद फिर नारद जी अपनी वीणा पर हरिगुण गान गाते हुये उधर से निकले। उनके हाथ में फिर एक छोटी पुस्तक थी। सुश्रुत ने पूछा इसमें क्या लिखा है। नारदजी ने कहा- इसमें उन लोगों के नाम लिखें हैं। जिनकी भक्ति भगवान को स्वयं करनी पड़ती है।" नारदजी के हाथ से बही लेकर सुश्रुत ने देखी तो उनका नाम सबसे ऊपर लिखा हुआ था। नारदजी के चले जाने पर सुश्रुत फिर से नित्य की तरह जन सेवा के कार्यो में लग गया। जो परहित में समाज की सेवा में जनता जनार्दन के लिये रात दिन अपने सुख दुःख लाभ हानि मान अपमान की चिन्ता किये बिना लगे रहते हैं वे सचमुच भगवान के प्रिय पात्रों में से होते हैं। पर जो व्यक्ति भगवान की सेवा पूजा पाठ में दिन रात लगे रह कर भी जनता जनार्दन की सेवा नहीं करते प्रायः किसी के दुख दर्द में काम नहीं आते वे भगवान से दूर ही होते हैं।

निस्पृह त्याग की शक्ति

एक बार मद्रि देश में भंयकर अकाल पड़ा हजारों लोग और पशु पक्षी भोजन और पानी के अभाव में तड़प तड़प कर मरने लगे। तीन देवदूत उस देश में भ्रमण करने को निकले। सायं तीनों एक पेड़ के नीचे खड़े होकर परस्पर बातचीत करने लगे और एक दूसरे से पूँछने लगे कि ऐसे विकट समय में जो लोग उदारता दिखा रहे हों, उनकी चर्चा की जाये। एक देवदूत बोला- "भाई मैंने एक सेठ को सदावर्त बाँटते देखा है।" दूसरा बोला- "एक धनिक ने अपने जीवन निर्वाह की सामिग्री रखकर शेष अभावग्रस्तों को बाँट दी।" तीसरे ने अपना समाचार सुनाया "भाई मैंने इनसे भी अधिक त्यागी देखा। उसे बड़ी कठिनाई से थोड़ा अन्न मिला। उसने उससे भोजन तैयार किया। जब वह खाने को बैठा तो

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसने देखा कि उसका पड़ौसी भूख से मूर्छित हो मरने की तैयारी में था। उसने न खाने का निश्चय किया और सारा भोजन पानी उस पड़ौसी को खिलाकर उसे मौत से बचा लिया।" यह चर्चा पास ही खड़ा दुर्भिक्ष राक्षस सुन रहा था। उसने मन ही मन विचार किया जहाँ ऐसे त्यागी परोपकारी निवास करें वहाँ मैं नहीं ठहर सकता और उसी दिन से अकाल दूर हो गया। पानी बरसा फसलें लहलहाई पेड़ पौधे हरे भरे हो उठे।

युधिष्ठिर के यज्ञ की अपूर्णता

महाराज युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ समाप्त होने पर एक अद्भूत नेवला जिसका आधा शरीर सोने का था यज्ञ भूमि में लोट लगाने लगा। कुछ ही समय बाद वह रुदन करके कहने लगा कि "यज्ञ पूर्ण नहीं हुआ।" पाण्डवों सहित सभी उपस्थित लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। पूछने पर नेवला ने बताया कि कुछ समय पूर्व अमुक देश में भयंकर अकाल पड़ा। मनुष्य भूख के मारे तड़प तड़प कर मरने लगे। एक ब्राह्मण परिवार कई दिनों से भूखा था। एक दिन कहीं से कुछ अन्न उन्हें मिला। ब्राह्मणी ने उसकी चार रोटियां बनाईं। उस ब्राह्मण का यह नियम था कि भोजन से पूर्व कोई भूखा होता तो उसे भोजन कराकर स्वयं खाता। उस दिन भी उसने आवाज दी कि जो हमसे अधिक भूखा हो उसका अधिकार इस भोजन पर है। आये और वह अपना भाग ग्रहण करे तो एक चाण्डाल जो भूख से तड़प रहा था, आ गया। ब्राह्मण ने अपने हिस्से की एक रोटी उसे सौंप दी। उससे भी तृप्त न होने पर क्रमशः पत्नी और बालक बालिका ने भी अपने अपने हिस्से दे दिये। जब वह चाण्डाल भोजन कर चुका और उसने पानी पीकर हाथ धोये तो उससे धरती पर कुछ पानी पड़ गया। मैं उधर होकर निकला तो उस गीली जमीन पर लेट गया। मेरा आधा शरीर ही सम्पर्क में आया जिससे उतना ही स्वर्णमय बन गया। मैंने सोचा कि शेष आधा शरीर युधिष्ठर के यज्ञ में स्वर्णमय बन जायगा। लेकिन यहाँ ऐसा नहीं हुआ इसलिये यह यज्ञ मेरे ख्याल से पूर्ण नहीं हुआ।"

पाण्डवों सहित सभी लोगों ने यह कथा सुनी तो बड़ा आश्चर्य किया और उनका अभिमान नष्ट हुआ। पास ही खड़े श्री कृष्ण ने समझाया कि राज्य कोष से पर्याप्त धन खर्च कर राजसूय यज्ञ की पूर्णता नहीं होती। अपने हित का भी ध्यान न रखकर परार्थ में सर्वस्व लुटा देने की निस्पृह भावना ही यज्ञीय कृत्यों की सफलता की परिचायक है।" उस ब्राह्मण और युधिष्ठर के यज्ञ में यही अन्तर था।

दानवीर कर्ण की दानशीलता

एक प्रकार के अलौकिक कुण्डल और कवच कर्ण के साथ जन्म से ही आये थे। ये इतने प्रभावशली थे कि इनके रहते हुये कोई भी कर्ण को मारने में समर्थ नहीं था। एक दिन कर्ण सो रहे थे। उन्होंने स्वप्न में एक ब्राह्मण को देखा जो कह रहा था कि कर्ण मैं तुम्हारा पिता सूर्य हूँ। आज तुमसे कोई कुण्डल और कवच माँगने आये तो उसे मत देना अन्यथा तुम्हारी अपराजेयता नष्ट हो जायगी। तुम मार दिये जाओगे। कर्ण की नींद खुली तो स्वप्न पर विचार किया। विचारों की उलझन के बाद उन्होंने तय किया कि नाशवान जीवन के लिये मैं अपने संकल्प को, दानधर्म को नहीं छोड़ूँगा और माँगने पर वे कुण्डल और कवच कर्ण ने याचक साधु वेशधारी कृष्ण को दे दिये। कर्ण ने अपनी दानवीरता पर कलंक नहीं आने दिया। जो आज भी अजर-अमर है।

महान ध्येय के लिये उत्कृष्ट आदर्श के लिये विचारशील मनुष्य अपने भौतिक लाभ की परवाह नहीं करते। आवश्यकता पड़ने पर धर्म के लिये आदर्श के लिये अपना जीवन भी बलिदान करना पड़े तो वे पीछे नहीं हटते।

हरिश्चन्द्र का सत्य प्रेम

परीक्षा की कसौटी पर खरा उतरने पर ही मनुष्य का धर्म सत्य सदाचार परिपक्व माना जाता है। विश्वामित्र ने हरिश्चंद्र की परीक्षा की कसौटी पर कसने का निश्चय किया। हरिश्चन्द्र ने कठिनाइयों का जीवन स्वीकार किया। राज्य छोड़ा सुख वैभव छोड़े और एक दिन अपनी पत्नी और प्यारे पुत्र का भी साथ छूट गया। यह उनके जीवन की कठोरतम परीक्षा थी जब हरिश्चन्द्र एक चाण्डाल के नौकर के रूप में श्मशान घाट पर पहरा लगा रहे थे, इसी बीच तारा उनकी स्त्री साँप के काटने से मृत पुत्र को लेकर आई थी जलाने के लिये। लेकिन कर्तव्य पथ के अडिग राही हरिश्चन्द्र ने अपने भावों को रोककर उसे बिना टैक्स चुकाये शव को जलाने की आज्ञा नहीं दी। अन्ततोगत्वा रानी ने जो एक वैश्य के यहाँ दासी का काम करती थी। अपनी साड़ी में से अर्द्ध वस्त्र फाड़कर टैक्स चुकाया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

और तब बालक का दाह संस्कार हुआ। इतनी कठिन और हृदय द्रावक परिस्थितियों के होते हुये भी हरिश्चन्द्र ने अपने कर्तव्य पालन और सत्यनिष्ठा में कुछ कमी नहीं आने दी और इसका परिणाम यह है कि वे आज भी अमर हैं अपनी कीर्तिगाथा के रूप में।

अक्षय यज्ञ

एक ब्राह्मण ने चार यज्ञ किये पर अन्तिम समय उसकी अवस्था बड़ी दयनीय हो गई। वह धर्मराज के पास अपना एक यज्ञ फल बेचने चल दिया। रास्ते में एक जगह वह भोजन करने बैठा, उसी जगह कई दिन से भूखा एक सन्त पड़ा था, ब्राह्मण ने आधा भोजन उसे दे दिया। पर इससे उसकी सन्तुष्टि नहीं हुई। इस पर ब्राह्मण ने उसे सारा भोजन खिला दिया और धर्मराज के पास चल दिया। धर्मराज ने पूछा तुम्हारे चार यज्ञ और एक अक्षय यज्ञ जमा हैं, इनमें से कौन सा यज्ञफल बेचते हो ? ब्राह्मण पाँचवे यज्ञ की बात सुनकर बड़ा आश्चर्यचकित हुआ। जब धर्मराज ने उसे बताया कि स्वयं कष्ट सहकर दूसरों की सहायता करना यज्ञ ही नहीं वरन् अक्षय यज्ञ है तब ब्राह्मण ने शेष जीवन में परोपकार में लगाने का निश्चय कर किया। वस्तुतः पिछड़े हुये भटके हुये और दुःखियों की सहायता करना गिरे हुओं को उठाना सबसे बड़ा यज्ञ कार्य है। परमार्थ और परोपकार की भावना के लिये किये शुभ कार्य ही यज्ञ कहलाते हैं।

विश्वहित के लिये आत्मत्याग

उपकारी की सहायता

अपने पूर्वजों की सद्गति एवं प्रतिष्ठा के लिये प्रयत्न करना युवक भागीरथ ने अपना कर्तव्य समझा। सूखी हुई मरु भूमि को हरी भरी करने के लिये अनेक प्राणियों को सुख सुविधा इकट्ठी करने के लिये भी गंगा को पृथ्वी पर लाने की आवश्यकता थी। इस महान प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये अपनी व्यक्तिगत सुख सुविधाओं को ठुकरा कर भागीरथ जी कठोर तप करने लगे।

गंगा प्रसन्न हुई और धरती पर आने के लिये तैयार हो गई। स्वर्ग से पृथ्वी पर गिरते समय किसी आधार की आवश्यकता थी। शंकर जी भागीरथ के सदुद्देश्य से प्रभावति हुये और उन्हांने अपनी जटाओं में गंगा को धारण करने की सहायता करके भागीरथ का अभीष्ट मनोरथ पूरा कर दिया।

प्रहलाद का दान

इन्द्र का पुण्य क्षीण हो चला तो वे चिन्तित होकर गुरु बृहस्पति के पास पहुँचे और ऐसा उपाय पूछा जिससे पुण्य क्षीण न हो। देवगुरु ने उन्हें राजर्षि प्रहलाद के पास भेजा। यही प्रश्न इन्द्र ने राजर्षि से भी किया। प्रहलाद ने कहा शील ही सारे वैभव का मूल है चरित्र से वैभव नष्ट नहीं होता। इन्द्र सन्तुष्ट हो गये। अतिथि सत्कारवश प्रहलाद पूछ बैठे मेरे योग्य कोई सेवा बताइये। लालची इन्द्र उनका शील ही माँग बैठे। उदारतावश राजर्षि ने अपना शील दान में दिया तो उसी समय तीनऔर शक्तियाँ राजर्षि के शरीर से बाहर निकलीं और बोली हमारा नाम सत्य धर्म और वैभव है हम वहीं रहते हैं जहाँ शील रहता है। प्रहलाद ने दुःख नहीं माना और फिर से शील संग्रह में लग गये।

भावनापूर्ण दान का महत्व

महाराज कुशक ने जयतीर्थ का पुनरुद्धार कार्य शुरू करवाया। नगर के धनिकों ने उसमें काफी दान देकर स्वेच्छा सहयोग दिया। नगर की एक मजदूरिन ने जिसके पास उस समय केवल आठ पैसे थे सबके सब दान में दे दिये। दाताओं के नाम का स्मृति स्तम्भ तीर्थ के मुख्य द्वार पर लगाया तो सभी ने उस मजदूरिन का नाम सबसे ऊपर की पंक्ति में पढ़कर आश्चर्य प्रकट किया। कई क्षुद्रमना लोगों के आपत्ति प्रकट करने पर महाराज कुशक ने बताया कि "अन्य सभी दाताओं ने तो अपनी सम्पत्ति का एक अंश ही दान किया था लेकिन उस मजदूरिन तो अपनी समस्त कमाई ही दान में दे दी थी। इसलिये उसका नाम सबसे ऊपर है।"

दान और त्याग आदि की महत्ता उसके प्रति भावना पर निर्भर करती है। भौतिक मूल्य पर नहीं। जहाँ उक्त मजदूरिन की सी भावना होती है वहाँ ही यज्ञीय कृत्य पूरे हुये समझने चाहिये।

कणाद की उदारता और आतिथ्य प्रेम

महर्षि कणाद खेतों में उपेक्षित छोड़ दिये जाने वाले अनाज को बीनकर उससे अपने जीवन निर्वाह करते थे और अपना समस्त जीवन ज्ञान साधना में लगाये रखते थे। एक दिन महर्षि दुर्वासा कणाद की परीक्षा लेने के विचार से ठीक भोजन के समय उनके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यहाँ चले गये। और सारा भोजन खा गये। यही क्रम कई दिन चलता रहा। लेकिन महर्षि कणाद की अतिथि सेवा की भावना में तनिक भी अन्तर नहीं आया। उनकी इस उदारता से दुर्वासा बड़े प्रसन्न हुये और अपने तप की बहुत बड़ी शक्ति उन्हें दी जिसके कारण कणाद स्वर्ग के अधिकारी बने। महाराज इन्द्र उन्हें लेने गये लेकिन जहाँ तप त्याग और परमार्थ न किया जा सके ऐसे जीवन को महर्षि ने अस्वीकार कर दिया और धरती पर सेवा, साधना, तपश्चर्या का जीवन बिताना ही श्रेयस्कर समझा।

परोपकारी विद्यासागर जी

पं० ईश्वर चन्द्र विद्यासागर जितने एक महान् विद्वान थे। उतने ही वे परोपकारी और जनसेवी भी थे विद्वता और बड़प्पन का आदर्श ही जनसेवा होता है। जब वे इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल्स के पद पर ५००/- रु० वेतन पाते थे तब भी आर्थिक समस्याओं से घिरे ही रहते थे। इसका कारण फिजूलखर्ची नहीं अपितु अभावग्रस्त दीन दुःखियों की सहायता में उदारता से खर्च करना था। एक बार एक ब्राह्मण के कर्जदाता ने उसका मकान कुर्क करने के लिये तय्यारी की। विद्यासागर जी को उसकी दुखी गिरी हुई हालत का पता चला तो २४००/-रु० स्वयं के पास से सरकारी खजाने में जमा करा आये और ब्राह्मण की विपदा दूर हुई। विद्यासागर जी ने अपना नाम तक भी प्रकट न होने दिया। बँगला के प्रसिद्ध विद्वान माइकेल मधुसूदन दत्त को विदेशों में बड़ी धनराशि भेजकर मदद की। कई जगह स्कूल औषधालय खुलवाये और खर्चे के लिये अपनी आय का बहुत बड़ा हिस्सा वे स्वयं खर्च करते थे। एक ओर आज के तथाकथित धनीमानी वैधानिक और अवैधानिक तरीकों से धन अर्जित कर अपने सुखोपभोग की समिग्रियाँ इकट्ठी करने में ही जीवन लगा देते हैं। वहाँ श्री विद्यासागर का व्यक्तित्व देश के लिये गौरव की बात है यदि विद्वान उच्च पदस्थ लोग उनके जीवन का अनुकरण करें तो देश कुछ वर्षों में उन्नति के उच्च सोपान पर स्थित हो जाये।

श्री अरविन्द घोष का त्याग

स्वराज्य आन्दोलन के समय देश के नेताओं ने राजकीय शिक्षा संस्थाओं का वहिष्कार किया लेकिन राष्ट्रीय विद्यालय को चलाने के लिये योग्य संचालक की नियुक्ति की। नियुक्ति का प्रश्न था क्योंकि उनके पास इतना धन नहीं था।राष्ट्रीय विद्यालय के संचालक का ७५ /-रु० मासिक वेतन पर विज्ञापन किया। किन्तु सभी को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि बड़ौदा कालेज के अध्यक्ष श्री अरविन्द घोष ने जिन्हें उस समय साढ़े सात सौ रुपया वेतन तथा अनेक सुविधाऐं मिलती थीं अपनी नौकरी छोड़कर राष्ट्रीय विद्यालय के लिये आवेदन किया है। श्री अरविन्द ने विद्यालय का संचालन अपने हाथ में लिया और फिर देश के बड़े-बड़े नेताओं का उदय इसी कालेज से हुआ।

जहाँ लोग राष्ट्र समाज के हितो की परवाह न करके अपने स्वार्थ अपने ही लाभ को महत्व देते हैं। वे राष्ट्र और समाज के साथ साथ अपना भी अहित करते हैं। राष्ट्र के समाज के हित में ही व्यक्ति का विकास निहित है। अस्तु प्रत्येक व्यक्ति को अपने निजी स्वार्थो की अपेक्षा राष्ट्रीय सामाजिक हितों पर अधिक ध्यान देना चाहिये।

आत्मा की भूख कैसे शान्त होती है ?

स्वामी विवेकानन्द उन दिनों अमेरिका प्रवास में थे। वे अपना भोजन अधिकतर स्वयं ही पकाते थे। एक दिन उन्होंने अपना भोजन बनाकर तैयार किया। इतने में ही कुछ भूखें बालक उधर आ निकले। स्वामीजी ने सारा भोजन उन बालकों में बाँट दिया और इससे इन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। पास ही एक अमेरिकन महिला खड़ी थी। उसने पूछा स्वामी जी आपने बिना कुछ खाये ही सारा भोजन इन बालकों में क्यों बाँट दिया ? वे बोले- " माता जी पेट की भूख से बड़ी होती है आत्मा की भूख और आत्मा के तृप्त होने पर जीवन की समस्त क्षुधायें एक बार ही शान्त हो जाती हैं। मैंने अपनी वास्तविक भूख शान्त करने के लिये ही भोजन बच्चों में बाँट दिया।"

अंग्रेज डाक्टर का जातीय प्रेम

उस समय भारत में बादशाह शाहजहाँ का शासन था। बादशाह की लड़की बीमार पड़ी, संयोग से उन दिनों व्यापारियों के साथ ब्रिटेन से एक डाक्टर भी आया हुआ था। उसे बादशाह की लड़की के लिये बुलाया गया। डाक्टर ने उसका भली प्रकार इलाज कर दिया और वह चंगी हो गई। इस पर प्रसन्न होकर बादशाह ने उस डाक्टर से इच्छानुसार धन माँगने के लिये कहा तो उसने कहा " जहाँपनाह मेरे देश से होने वाले व्यापार पर आप चुंगी हटा दें।" शर्त पूरी की गई तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अंग्रेजों ने अपने यहाँ से वस्तुऐं लाकर काफी मुनाफे पर भारत में बेचना शुरु किया। उक्त डाक्टर की ही देन थी कि अंग्रेज भारत में आये व्यापार किया और यहाँ बस गये और एक दिन यहाँ के शासक बन बैठे। अपने देश समाज के लिये उक्त डाक्टर का त्याग सभी देशवासियों के लिये एक महान आदर्श की प्रेरणा देता है।

वचन का पालन

दरभंगा में एक शंकर मिश्र नामक विद्वान हो गये हैं। वे छोटे थे तब उनकी माँ को दूध नहीं उतरता था तो धाय रखनी पड़ी। दाई ने माता के समान प्रेम से बालक को अपना दूध पिलाया । शंकर मिश्र की माता दाई से कहा करती थी कि बच्चा जो पहली कमाई लायेगा सो तेरी होगी।

बालक बड़ा होने पर किशोर अवस्था में ही संस्कृत का उद्भट विद्वान हो गया। राजा ने उसकी प्रशंसा सुनकर दरबार में बुलाया और उसकी काव्य रचना पर प्रसन्न होकर अत्यन्त मूल्यवान हार उपहार में दिया।

शंकर मिश्र हार लेकर अपनी माता के पास पहुंचे। माता ने उसे तुरन्त ही दाई को दे दिया। दाई ने उसका मूल्य जँचवाया तो वह लाखों रुपये का था। इतनी कीमती चीज लेकर वह क्या करती ? लौटाने आई। पर शंकर मिश्र और उसकी माता अपने वचन से लौटने को तैयार न हुए। पहली कमाई के लिए जब दाई को वचन दिया जा चुका था तो फिर उसे पलटने में उनका गौरव जाता था।

बहुत दिन देने लौटाने का झंझट पड़ा रहा। अन्त में दाई ने उस धन से एक बड़ा तालाब बनवा दिया जो दरभंगा में दाई का तालाब नाम से अब भी मौजूद है।

वचन का पालन करने वाले शंकर मिश्र और परिश्रम के बिना धन को न छूने वाली दाई दोनों ही प्रशंसनीय हैं।

असमर्थ की सामर्थ्य

सर्व सम्पन्न श्रावस्ती नगरी में भयंकर अकाल पड़ा। पशु-पक्षी, नर-नारी खाद्य के अभाव में कीड़ों की तरह मरने लगे। सारी नगरी मरघट सी दिखाई दे रही थी। महात्मा बुद्ध ने यह देखा तो बडे दुःखी हुए। उन्होंने श्रावस्ती के धनीमानी व्यक्तियों को बुलाया और ऐसे भीषण समय में देश की सहायता के लिए कहा किन्तु किसी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सब उठ उठकर चले गये। धनवानों को तो अपने भण्डार भरे रखने थे स्वयं के लिए मानवता के लिए खर्च करना उन्हें अपव्यय लगता था। लोग कहीं जबरन उनसे खाद्य सामग्री न छीन लें इस भय से दरवाजे बन्द करके बैठ गये, महात्मा बुद्ध काफी निराश हुए। इतने में ही एक कुलीन घर की लड़की आई और बोली "महात्मन् ! आज से मैं श्रावस्ती नगरी के अकाल पीड़ितों की सेवा की प्रतिज्ञा करती हूँ, सबका भोजन जुटाने के लिए मैं प्रयत्न करूंगी।" लोग एक छोटी-सी बालिका के मुंह से ऐसी बात सुनकर दंग रह गए। कई मजाक भी करने लगे। "बेटा सुप्रिया इतने बड़े राज्य का नगर का भरण-पोषण कैसे करोगी ? तुम्हारे घर वाले तो कुछ देंगे भी नहीं" महात्मा बुद्ध ने पूछा।

"महाराज ! मुझे घरवालों के देने न देने की चिन्ता नहीं है । मैं घर-घर भिक्षा मांगूगी नगर-नगर जाकर लोगों से पीड़ितों की सहायता के लिए मानवता के लिए मैं भीख माँगूँगी , घर-घर घूमूँगी । महाराज ! आप आशीर्वाद दें।" सुप्रिया ने कहा । महात्मा बुद्ध को एक आशा की चिनगारी नजर आई । बालिका के संकल्प से प्रसन्न होकर उसे आशीर्वाद दिया ।

बालिका घर-घर घूमकर क्षुधातों के लिए अन्न माँगने लगी। जिनके पास था वे मना न कर सके। देखते-देखते इतना अन्न जमा होने लगा कि भूख से प्राण त्यागने वालों की आसानी से जीवन रक्षा होने लगी।

तथागत ने शिष्यों को बुलाकर कहा-"संसार में सत्य बहुत हैं, धर्म बहुत हैं, पर उसका उद्बोधन करने वाले नहीं हैं। सुप्रिया ने घर-घर जाकर धर्म का उद्बोधन किया और लोगों की धर्म-बुद्धि को जगाया तो आज सहज ही एक बड़ी कठिनाई हल हो गई। तुम भी इसी मार्ग को अपनाना ऐसा ही आचरण करना।"

लोक कल्याण के लिये धनदान

सर्वस्व दानी वाजिश्रवा

महामनीषी वाजिश्रवा ने सर्वमेघ यज्ञ किया और जो कुछ उनके पास था वह सब जन कल्याण के लिये दान कर दिया। उनके एक मात्र पुत्र नचिकेता ने इच्छा प्रकट की कि मुझे भी सत्कर्मों के लिए दान कर दिया जाय। वाजिश्रवा की यह परमार्थ प्रियता बहुत पसन्द आई। उन्होंने यमाचार्य को अपना पुत्र दान कर दिया ताकि वह सुयोग्य बन कर धर्म की अधिक सेवा

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर सकें। आचार्य यम ने नचिकेता को ब्र२ह्मविद्या सिखाई, और उसे लोकहित के मंगलमय कार्यो में लगा दिया।

अशोक का त्याग

कलिंग विजय के उपरान्त धन मान से परिपूर्ण राजा अशोक ने सोचा कि वैभव का लाभ उसके संग्रह स्वामित्व में नही वरन् उसके सदुपयोग में है। अन्त में उसने अपनी सारी राज-शक्ति को धर्म प्रचार के लिए लगा देने का निश्चय किया। उसने उस समय के उपयुक्त सुधार-आन्दोलन बौद्ध-धर्म की सामयिक उपयोगिता को समझा और उसको अग्रगामी बनाने के लिये अपना सर्वस्व दान कर देने का निश्चय कर लिया। उन्होंने अनेकों बौद्ध-मठ बनाने और सहस्रों धर्म प्रचारकों का व्यय अपने जिम्मे लेकर उन्हें भारत के कौने-२ और एशिया के समस्त देशों में भेजा। अशोक का विशाल राज्य कोष इसी प्रयोजन में लगा फल-स्वरूप आज बौद्ध-धर्म संसार में अनेक देशों में विद्यमान है। जनसंख्या की दृष्टि से प्रथम ईसाई, द्वितीय मुसलमान और तृतीय नम्बर पर बौद्ध है। हिन्दुओं की जनसंख्या चौथे नम्बर पर है। इतने बड़े धर्म प्रचार के मूल में अशोक की उदारता ही प्रधान कारण बनी। उसने अपने पुत्री तक को धर्म प्रचार के लिए लंका आदि देशों भेजा था।

सेठ जमनालाल बजाज

वर्धा के सेठ जमनालाल बजाज ने स्वतंत्रता आन्दोलन की उपयोगिता समझ कर उसके संचालक महात्मा गाँधी के चरणों में अपने आपको समर्पित किया और कहा कि मुझे भी आप अपना पाँचवा बेटा समझें। बापू ने उन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन के लिये अर्थ व्यवस्था संभालने का आदेश दिया जिसे उन्होनें आजीवन बड़ी खूबी से निबाहा। अपनी निज की आय एवं सम्पत्ति का बहुत बड़ा भाग वे महात्मा गाँधी का आश्रम खर्च चलाने तथा अन्य रयष्ट्रीय कार्यो के लिए खर्च करते थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने देश भर के धनिक वर्ग से सम्पर्क स्थापित करके राष्ट्रीय कांग्रेस के हर साल के लाखों रुपयों के खर्च की पूर्ति का जिम्मा अपने ऊपर लिया। सेठ जमनालाल की उदारता और परमार्थ प्रियता सदा स्थायी रहेगा।

राजा महेन्द्र प्रताप

राजा महेन्द्र प्रताप अलीगढ़ जिले में मुरसान राज्य के राजा थे। उनने सोचा धन वैभव होने का उपयोग यह नहीं कि कोई व्यक्ति अपने ठाट-वाट और ऐश आराम में ही उसे खर्च करे । मनुष्य की महानता इसमें है कि वह ईश्वर द्वारा दी हुई विशेष सुविधाओं को विशेष रूप से जन-कल्याण के कार्यो में लगा दे राजा महेन्द्र प्रताप ने घोषणा की कि उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ है उसके नाम करण के लिए महामना मालवीय जी बुलाये गये। पुत्र का प्रयोजन बताते हुए राजा साहब ने कहा कि जो श्रेष्ठ परम्पराओं से चलाकर कुल को कीर्तिवान बनाये वही पुत्र है। मै एक ऐसा विद्यालय स्थापित करना चाहता हूँ जहाँ से देश के लिए मर मिटने वाले कार्यकर्ता निकलें। उन्होंने अपने निज खर्च के लिए थोड़ी सी सम्पति रखकर शेष अपना सारा राजपाट विद्यालय को दे दिया। उसका नाम "प्रेम महाविद्यालय" रखा गया।

वृन्दावन में स्थापित प्रेम महाविद्यालय ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण योग दिया। चुने हुए देशभक्त उसमें अध्यापन करते थे। राजस्थान के राज्यपाल श्री सम्पूर्णानन्द, उत्तर प्रदेश के भू० पू० शिक्षा मन्त्री आचार्य जुगल किशोर, पार्लियामेन्ट सदस्य प्रो० कृष्णचन्द्र जैसे देशभक्त प्रेम महाविद्यालय में अध्यापक का काम करते थे। स्वतन्त्रता संगाम में अधिकांश अध्यापक और छात्र जेल गये। सरकार ने विद्यालय को जप्त किया जो स्वराज्य के बाद वापिस किया गया।

राजा महेन्द्र प्रताप की उदारता एवं त्याग भावना प्रत्येक धनी-मानी के लिए एक चुनौती के रूप में विद्यमान रहेगी।

भामाशाह

राणा प्रताप जब जंगलों में रहकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई चला रहे थे तब एक समय ऐसा भी आया कि राणा के पास पैसा न रहा और वे सेना रख सकने की स्थिति में न रहे। निराशा उन्हें घेरने लगी और लड़ाई बन्द कर देने की बात सोचने लगे। उन दिनों के सुप्रसिद्ध धनी सेठ भामाशाह को इन परिस्थितियों का पता चला। वे राणा के पास जंगल में पहुँचे और उन्होंने अपनी करोड़ों की सम्पत्ति उनके चरणों पर अर्पित करते हुए कहा कि इसे धर्म-युद्ध के प्रयोजन में खर्च करके मेरी कमाई को धन्य बनाइए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उस धन से राणा ने पुन: सेना एकत्रित की और आक्रमणकारियों के भगाने का धर्म-युद्ध पुन: आरम्भ कर दिया।

वर्मा के भारतीय

सुभाषचन्द्र बोस जब आजाद हिन्द फौज का संगठन करके भारत की स्वतंत्रता के लिए अग्रेंजो से मोर्चा खड़ा कर रहे थे तब विदेशों में रहने वाले भारतीय देश भक्तों ने उनकी उत्साह वर्धक सहायता की। वर्मा के भारतीयों ने उनके शरीर के बराबर सोना तोल कर दिया तथा पैसे की कमी से उस महानकार्य को रुकने का अवसर न आने दिया।

दाता की नम्रता

रहीमजी आखें नीची किये भिक्षुओं को दान बाँट रहे थे यह देख कर गंग कवि बोले -

ऐसी कहाँ नवाबजू, देनी सीखे देन ।
ज्यों-ज्यों कर ऊपर चढ़े, त्यों-त्यों नीचे नैन ।।

रहीम ने उत्तर दिया-

देने वाला और है, जो देता दिन रैन ।
लोग भरम मुझ पर करें, या सों नीचे नैन ।।

दान देकर अंहकार न करने वाले रहीम का नम्र उत्तर सनुकर सारी सभा उनकी प्रशंसा करने लगी। दान पुण्य करने में परमार्थमय यज्ञादि शुभ कृत्यों में निस्पृहता, निरहंकारिता रखने पर ही उनकी सफलता समझी जानी चाहिए। अहंकारयुक्त भावनाओं मान बढ़ाई प्रतिष्ठा के लिए किये जाने वाले कार्य मूलत: निष्फल ही समझे जाते हैं।

पुत्र-वधू द्वारा श्वसुर को बोध

एक धनिक व्यक्ति बड़ा कन्जूस था। घर पर कोई भिक्षुक माँगने आता तो उसे कुछ भी नहीं देता था। घर की स्त्रियों को भी उसने ऐसी हिदायत कर रखी थी। एक दिन एक अपंग व्यक्ति घर पर कुछ भोजन माँगने आया। नव-विवाहिता पुत्रवधु जो किसी उदार घर से आई थी उसने कहा-भैया, इस घर में देने को कुछ नहीं है। भिक्षुक ने पूछा-फिर आप लोग खाते क्या हैं ? वधू ने कहा-जो पिछला बासी-बुसा पड़ा है उसी से गुजर करते हैं। भिक्षुक ने पूछा -जब बासी-बुसा समाप्त हो जायेगा तब आप क्या खावेंगे ? वधू ने कहा-तब हम भी तुम्हारी तरह भीख माँगेंगे। भिक्षुक निराश होकर चला गया।

यह वार्तालाप वह सेठ छत पर खड़ा सुन रहा था। उसे नाराजी हुई और पुत्र वधू से पूछा-घर में कुछ भी न होने और बासी-बुसा खाने और भविष्य में भीख माँगने की बात कह कर दूसरों में बदनामी क्यों की ?

पुत्र वधू ने नम्रतापूर्वक कहा-हम लोग जो पूर्व जन्मों में धर्म कमाकर लाये हैं उसी का प्रतिफल अब सुख-सम्पत्ति के रूप में भोग रहे हैं। अब हम लोगों ने त्याग परमार्थ की परम्परा बन्द कर दी है इसलिये पिछली कमाई चुकते ही हमें भी उस भिक्षुक की तरह ही दरिद्रता के दुख देखने पड़ेंगे।

धनिक की आँखे खुल गई और वह अपने धन का एक बड़ा अंश परमार्थ कार्यों में लगाने लगा।

त्याग और त्यागियों की परम्परा

पिछले दिनों जिन्होंने भारतीय जनता को नव-जागरण का मन्त्र सुनाया उन युग पुरुषों में अधिकांश वे थे जिन्होंने अपने नेतृत्व की योग्यता अपने त्याग बलिदान की कसौटी पर खरे सिद्ध होकर प्रमाणित की। सस्ती नेतागीरी के लिए कितने बकवादी और धूर्त लोग सामने आते रहते हैं पर जनता का हृदय जीतने और उसे कुछ करने के लिये तैयार वे ही कर पाते हैं जिनने अपने व्यक्तिगत जीवन में कुछ त्याग बलिदान प्रस्तुत किया होता है। सस्ती नेतागीरी कुछ ही दिन में मुरझा जाती है। जबकि त्यागी और बलिदानी लोक सेवक अपने जीवन काल में ही नहीं मरने के बाद भी नई पीढ़ी को महान कार्य करने एवं सत्पथ पर चलने की प्रेरणा देते रहते हैं।

लोकमान्य तिलक ने अपना सारा जीवन राष्ट्रीय जागरण के लिए लगाया। कठोर कारावास सह कर वर्मा की मांडला जेल में बन्द रहे। महात्मा गांधी ने वैरिष्टरी पर लात मार कर गरीब साधु की तरह गुजर करने का व्रत लिया और अन्याय से संघर्ष करते हुए अफ्रीका में तथा भारत में अपार कष्ट सहे। गोपालकृष्ण गोखले आजीवन राष्ट्रोत्थान के कार्यों में लगे रहे, अपने उज्ज्वल चरित्र एवं उच्च विचारों से महात्मा गाँधी जैसे व्यक्तियों को वे आगे बढ़ाकर लाये। सर्वेण्ट आफ इण्डिया सोसायटी संस्था स्थापित कर सैकड़ों राष्ट्रीय कार्यकर्ता स्वतन्त्रता एवं सामाजिक पुनरुत्थान के लिए दिये।

पंजाब केशरी लाला लाजपतराय जी ने देश को स्वतंत्र कराने में अपनी बलि दे दी। गोखले की तरह उन्होंने भी जन-जागरण के लिए कार्यकर्ता जुटाने और उनके लिए खर्च की व्यवस्था करने के लिए पीपुल्स

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आफ इण्डिया सोसाइटी की स्थापना की। राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री, मोहनलाल गौतम जैसे देशभक्त उसी सोसायटी की देन हैं। लालाजी ने देश निकाले का दण्ड भुगता और अन्त में साइमन कमीशन के विरोध में जुलूस निकालने पर पुलिस की लाठियाँ खाकर शहीद हो गए।

बंगाल के राष्ट्रीय नेता चित्तरंजनदास उच्च कोटि के वकील थे। उस जमाने में भी उनकी फीस एक हजार रुपया रोज थी। क्रान्तिकारी आन्दोलन उन दिनों बंगाल में जोरों से चल रहा था। श्री दास ने उनके मुकदमे बिना फीस लड़े। अपनी आमदनी को ठुकराकर वे स्वराज्य आन्दोलन की सफलता के लिए अपना तन-मन-धन पूरी श्रद्धा के साथ समर्पित करते रहे। भूतपूर्व राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबू का त्याग और कर्तव्य प्रसिद्ध है । उन्होंने अपनी ऊँची वकालत को लात मार दी और लोक कल्याण के लिए एक सच्चे सन्त की तरह आजीवन कार्य करते रहे। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन की प्रतिभा और योग्यता किसी भी उच्चकोटि के बैरिस्टर से कम न थी, पर उन्होंने लोक-सेवा के लिए अपने आपको समर्पित किया और लाभ, लोभ की बात मन में से पूर्णतया हटाकर उन्होंने राष्ट्र के कल्याण के लिए अपना सर्वस्व होम दिया। गरीबों की तरह रहे पर स्वाभिमानपूर्ण जिए। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संस्थापकों में वे प्रमुख थे। उनकी रचनात्मक प्रवृत्तियों से समाज को जो लाभ पहुँचा उसे कभी भुलाया न जा सकेगा।

यह तो पिछले दिनों स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिए त्याग बलिदान करने वाले थोड़े से व्यक्तियों के नाम हैं। बड़े लोगों में से सुभाषचन्द्र बोस, सेनगुप्त, सरोजिनी नायडू, महामना मालवीय आदि सैकड़ों नेता और हजारों लाखों राष्ट्रीय कार्यकर्ता एवं सामान्य नागरिक हैं जिन्होंने राष्ट्र के माथे पर लगे हुए परतन्त्रता के कलंक को धोने के लिए एक से एक बढ़कर त्याग बलिदान किये। इसी का प्रतिफल था कि अंग्रेजों जैसे शक्तिशाली एवं चतुर राजनीतिज्ञों के चंगुल में से भारत ने मुक्ति पाई। जब कभी जिस किसी ने सत्य प्रयोजन के लिए त्याग, बलिदान करने का साहस किया है तब उस व्यक्ति को अपना जीवन सार्थक बना लेने का अवसर मिला है और संसार के अन्य लोगों ने उनके जलते जीवन से प्रकाश प्राप्त किया है।

यही यज्ञीय भावना है। मानव जीवन को यज्ञमय होना चाहिए। जो अपने लिए ही कमाता है, आप ही खाता है जिसकी योग्यता, प्रतिभा, विद्या एवं सम्पदा से सत्कर्मों की अभिवृद्धि नहीं होती, पिछड़ों को आगे बढ़ने की प्रेरणा नहीं मिलती, संसार में धर्म और सदाचार के बढ़ाने में योग नहीं मिलता, उस व्यक्ति का जीवन निरर्थक है। अपना पेट तो पशु-पक्षी और कीड़े-मकोड़े भी पालते रहते हैं। यदि इसी सीमा तक मनुष्य अपनी संकीर्णता बनाये रहा तो यही समझना चाहिए कि उसने मानव शरीर की अद्भुत रचना पर किये गये ईश्वरीय प्रयत्न को निष्फल कर दिया।

परोपकरणं येषां जागर्त्ति हृदये सताम् ।
नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदः स्युः पदे-पदे ।।

जिन मनुष्यों के हृदय में सदा परोपकार करने की इच्छा बनी रहा करती है उनकी विपत्तियाँ अपने आप नष्ट हो जाया करती हैं और उन्हें पग-पग पर सम्पत्ति प्राप्त होती रहती है।

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात्परा
मष्टद्धि युक्तामपुनर्भवं ना।
आर्तिं प्रपद्येऽखिल देहभाजा,
मन्तः स्थितो येन भवन्त्य दुःखाः ।।

परम भक्त रन्तिदेव ने कहा-मैं भगवान् से अष्टसिद्ध युक्त उच्च गति या मोक्ष कुछ भी नहीं चाहता। मैं तो प्रभु से यही चाहता हूँ कि सभी व्यथित प्राणियों के दुःख मेरे ऊपर आ जावें और वे सब दुःख रहित हो जायें।

संक्षेपात्कथ्यते धर्मो जनाः किं विस्तरेण वः ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ।।

यह अति संक्षेप में मनुष्य के लिये धर्म का उपदेश किया है कि परोपकार ही पुण्य के लिये होता है तथा दूसरे को दुःख देना पीड़ा देना यह पाप होता है यही संक्षेप है विस्तार से क्या लाभ।

एवं सर्वमिदं कृत्वा यन्मया ह्यार्जितं शुभम् ।
तेन स्यां सर्वसत्वानां सर्वदुःखप्रशान्तिकृत् ।।

यह सब कुछ करते हुए मैंने जो कुछ भी पुण्य कर्म किया हो उसके शुभ फल में मैं यही चाहता हूँ कि समस्त प्राणियों के दुःख मिटें।

यशो रक्षन्ति न प्राणान् पापाद् विभ्यति न द्विषः ।
अन्विष्यन्त्यर्थिनो नार्थान् निसर्गोऽयं महात्मनाम् ।।

महान् आत्मा वाले पुरुषों का यह स्वभाव ही होता है कि वे सदा यश की रक्षा किया करते हैं प्राणों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की नहीं पाप कर्म से डरते हैं शत्रु से नहीं, याचकों को ढूँढ़ते हैं धन की खोज नहीं करते हैं।

अनाथं कृपणं दीनं रोगार्त्त वृद्धमेव च ।
नानुकम्पन्ति ये मूढ़ास्ते वै निरयगामिनः ।।

जो मनुष्य अनाथ पर, कृपण पर, दीन पर, रोगी पर, दुःखी पर तथा वृद्धजन पर मूढ़ता को त्याग करके दया नहीं करता वह नरकगामी होता है।

सत्येन तपसाक्षान्त्या दानेनाध्ययनेन च ।
ये धर्ममनुवर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ।।

जो सत्य का पालन करते हैं, तपस्वी हैं और क्षमा, दान तथा अध्ययनादि के द्वारा धर्माचरण में ही लगे हैं वे सज्जन स्वर्ग में जाते हैं।

स जीवति य एवैको बहुभिश्चोपजीव्यते ।
जीवन्तो मृतकास्त्वन्ये पुरुषाः स्वोदरम्भराः ।।

जीवित पुरुष वही माना जाता है जो अपने साथ और भी बहुत से मनुष्यों को पालता है जिसको अन्य पुरुष भी जिलाना चाहे। किन्तु जो मनुष्य केवल अपने ही पेट भरने के लिए जीते हैं वह जीवित होते हुए भी मरे हुए हैं।

वदनं प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः ।
करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः ।।

जिनका मुख प्रसाद (प्रसन्नता) का स्थान है, जिनके हृदय में दया है जिनकी वाणी मानो अमृत की वर्षा करती है, जो परोपकार में रत हैं, ऐसे पुरुष किसके वन्दनीय नहीं हैं?

मर जाऊँ माँगू नहीं, अपने तनु के काज ।
परमारथ के कारने, मोहि न आवे लाज ।।
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय ।
आप ठग्यां सुख ऊपजै, और ठग्यौं दुख होय ।।
तरुवर सरबर सन्तजन, चौथे बरसे मेह ।
परमारथ के कारणे, चारों धारें देह ।।
तन पवित्र सेवा किये, धन पवित्र दिये दान ।
मन पवित्र हरि भजन से, इस विधि हो कल्यान ।।
तुलसी या संसार में, तीन वस्तु हैं सार ।
सत्संगति हरि भजन इक, निसदिन पर उपकार ।।
अग्नि धर्म है दहन ज्यों, भीगा जल का धर्म ।
परहित जीवन मरण त्यों, नर का निर्मल कर्म ।।
चंदन तरु को यदपि विधि, फल और फूल न दीन ।
तजत अहो निज तन करन, औरन ताप विहीन ।।

रामायण में कहा गया है कि-

परहित लागि तजै जो देही ।
संतत संत प्रसंसहि तेही ।।

उत्तरकाण्ड में भरतजी के पूछने पर श्रीराम उन्हें उपदेश देते हुए कहते हैं :-

परहित सरिस धर्म नहिं भाई ।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ।।
नर सरीर धर जे पर पीरा ।
करहिं ते सहहिं महाभव भीरा ।।

इसी प्रकार बालकाण्ड में भी कपास और साधु के चरित्र की जो उपमा दी गई है उससे सिद्ध होता है कि संसार में यश की प्राप्ति उसी को होती है, जिसने परार्थ अपना सर्वस्व निछावर कर दिया हो। यथाः-

साधु चरित्र सुभ चरित कपासू ।
निरस विसद गुनमय फल जासू ।।
सो सहि दुख परछिद्र दुरावा ।
वंदनीय जेहि जग जस पावा ।।

सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत निम्नाकिंत दोहे द्वारा विभीषण जी इन तीनों दुर्गुणों को त्याग कर अपने भाई को भगवान राम के भजन की प्रेरणा देते हैं। यथाः-

दोहा-

काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ ! नरक के पंथ ।
सब परिहर रघुवीरहिं, भजहु भजहिं जे संत ।।

जब तक छल का परित्याग नहीं कर देगा -तब तक उसे आपकी भक्ति नहीं मिल सकती। यथाः-

दोहा-

करम वचन मन छाँड़ि छल, जब लगि जन न तुम्हार ।
तब लगि सुख सपनेहु नहीं किएँ कोटि उपचार ।।

अयोध्याकांड के अन्तर्गत माँ सुमित्रा लक्ष्मण को उपदेश देती हुई कहती हैं कि-

राग द्वेष इरषा मद मोहू ।
जनि सपनेहु इनके बस होऊ ।।
सकल प्रकार विकार विहाई ।
मन क्रम वचन करेहु सेवकाई ।

अयोध्या से रीछ वानरों को विदा करते समय भगवान राम उनकी उदारता तथा सत्कार्यों में सहायता करने के लिए उनकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि -

तब रघुपति सब सखा बोलाए।
आइ सबन्हि सादर सिरु नाए।।
परम प्रीति समीप बैठारे।
भगत सुखद मृदु बचन उचारे।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई।
मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई।।
ताते मोहि तुम्ह अति प्रिय लागे।
मम हित लागि भवन सुख त्यागे।।
अनुज राज सम्पति वैदेही।
देह गेह परिवार सनेही।।
सब मम प्रिय नहिं तुम्हहिं समाना।
मृषा न कहउँ मोर यह बाना।।
सब कें प्रिय सेवक यह रीती।
मोरे अधिक दास पर प्रीती।।

दोहा-

अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहि दृढ़ नेम ।
सदा सर्बगत सर्बहित, जानि करेहु अति प्रेम ।।

भगवान को केवल निर्मल हृदय व्यक्ति ही प्रिय है-

जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई।
मोरें सनमुख आव कि सोई।।
निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

सदाचारी पवित्र जीवन व्यक्ति को भगवान के समान ही बताते हुये कहा गया है कि-

नारि नयन सर जाहि न लागा।
घोर क्रोध तम निसि सो जागा।।
लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया।
सो नर तुम्ह समान रघुराया।।

रीछ बानरों के सत्प्रयत्नों के लिये अपनी सद्भावना प्रकट करते हुये भगवान कहते हैं कि-

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे।
भए समर सागर कहँ बेरे।।
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे।
भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे।।

उच्च चरित्र वाले व्यक्तियों का भजन स्वयं भगवान करते हैं-

भरत सरिस को राम सनेही।
जगु जप राम रामु जप जेही।।

कबीर के दो दोहे भी ऐसे ही हैं जिनमें बताया गया है कि ईश्वरीय उद्देश्यों के लिये काम करने वालों की उपासना स्वयं भगवान करते हैं-

दोहा-

कबीर मन निर्मल भया, जैसे गंगा नीर ।
पीछे लागे हरि फिरत, कहत कबीर-कबीर ।।
कबीर माला न जपें, जिव्हा कहौं न राम ।
सुमिरन मेरा हरि करें, मैं पाऊँ विश्राम ।।

हनुमान जी के सत्प्रयत्नों के प्रति भगवान ने अपनी कृतज्ञता किन शब्दों में प्रकट की है देखिये-

नाथ पवनसुत कीन्ह जो करनी।
सहसहुँ मुख न जाहि सो बरनी।।
पवनतनय के चरित सुहाए।
जामवंत रघुपतिहि सुनाए।।
सुनु कपि तोहि समान उपकारी।
नहिं कोउ सुरनर मुनि तनुधारी।।
प्रति उपकार करौं का तोरा।
सनमुख होइ न सकत मन मोरा।।
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।
देखेउँ कर बिचार मन माहीं।।
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता।
लोचन नीर पुलक अति गाता।।
कपि उठाइ प्रभु हृदयँ लगावा।
कर गहि परम निकट बैठावा।।
अब बिलंबु केहि कारन कीजे।
तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजे।।

दोहा-

कपि पति बेगि बोलाए, आए जूथप जूथ ।
नाना बरन अतुल बल, बानर भालु बरूथ ।।

।। पाँचवाँ प्रवचन समाप्त।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छठा-प्रवचन

ज्ञान और विवेक की आवश्यकता

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।।

-अध्याय ४ श्लोक ३८

निस्संदेह इस संसार में ज्ञान के सदृश्य पवित्र अन्य कुछ भी नहीं हैं। प्रयत्न में संलग्न व्यक्ति समयानुसार उसे सहज ही अपने में पा लेता है।

इस संसार में श्रेष्ठ वस्तुएं अनेक हैं। एक से एक उत्तम पदार्थ यहाँ विद्यमान हैं। पर सबसे श्रेष्ठ सब से महत्वपूर्ण सबसे पवित्र यदि कोई वस्तु है तो वह 'ज्ञान' है। ज्ञान की विशेषता ही नर पशु को नर नारायण की स्थिति तक पहुँचाने में समर्थ होती है। यह मंगलमय ज्ञान किसी की कृपा से मिलता हो सो बात भी नहीं। थोड़ी सी अभिरुचि और प्रयत्नशीलता होने से ही ज्ञान वृद्धि का मार्ग प्रशस्त हो जाता है और गई गुजरी परिस्थितियों में पड़ा हुआ व्यक्ति ज्ञान सम्पदा से सम्पन्न होने की दिशा में तेजी से आगे बढ़ने लगता है।

ज्ञान, बल और धन यह तीन ही विभूतियाँ इस संसार में मानी गई हैं। इन्हें प्राप्त करने के लिये क्रमबद्ध प्रयत्न करने की दृष्टि सें ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का विशिष्ट कार्यक्रम बनाया गया है। इन तीनों में ज्ञान का पहला स्थान है। इसी से ब्राह्मण को अधिक श्रेष्ठ माना गया है। शारीरिक एवं आर्थिक उन्नति होने पर भी यदि ज्ञान बल दुर्बल हो तो आशाजनक परिणाम न होंगे, इसके विपरित ज्ञानवान व्यक्ति शारीरिक एवं आर्थिक कठिनाइयों का हल निकाल लेगा और रुकी हुई प्रगति को गति शील बनाने का मार्ग ढूँढ लेगा।

ज्ञान को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है(१)शिक्षा (२) विद्या । शिक्षा से तात्पर्य है पढ़ना, लिखना, स्कूली ज्ञान, लौकिक प्रगति के आधार पर एवं स्वरूप की जानकारी। ज्ञान का अर्थ है भावनात्मक स्तर को इस प्रकार उपयुक्त बनाना। जिससे व्यक्ति तथा समाज की आन्तरिक सुख शान्ति अक्षुण्ण रह सके। दोनों ही प्रकार का ज्ञान आवश्यक है। दोनों के लिये ही साथ साथ प्रयत्न चलते रहना चाहिये।

अक्षर ज्ञान की आवश्यकता सबसे प्रथम है। शिक्षा न हो , कुछ पढ़ना लिखना न आता हो तो स्वाध्याय सत्साहित्य का रसास्वादन कर सकना और विश्व के श्रेष्ठतम आधुनिक एवं पुरातन मनीषियों के साथ बैठ कर सम्पर्क बना सकने का लाभ ही न मिलेगा। बिना पढ़ा व्यक्ति संगति के प्रभाव से किन्ही एक दो विषयों में अपने विशेष प्रयत्न के बल पर कुछ सीख समझ सकता है। पर मानसिक विकास की समग्रता इतने से ही संभव नहीं हो सकती। आज के विकसित युग में मनुष्य को अनेक दिशाओं में अनेक प्रकार की जानकारियाँ अभीष्ट हैं। अब निजी जानकारी से ही काम नहीं चल सकता। जो जितना कम जानकार है वह उतना ही पिछड़ा पड़ा रहता है। अपनी निज की तथा सम्बन्धित समाज की समस्याओं को ठीक तरह समझ सकने के लिये मनुष्य को बहुत पढ़ना सुनना और समझना पड़ता है। यह कार्य शिक्षा के माध्यम से ही संभव है। इसलिये शिक्षा को व्यक्ति के मानसिक विकास का अनिवार्य अंग माना गया है। यह प्राथमिक आवश्यकता है जिसकी पूर्ति न होने तक मनुष्य को अज्ञानी ही बना रहना पड़ता है। बेचारा अज्ञानी वस्तुतः एक दयनीय जीव है। मनुष्य योनि में जन्म लेकर भी वह बौद्धिक स्तर पर पशु ही कहा जा सकता है।

प्रयत्न यह होना चाहिये कि नव निर्माण की इस पुण्य वेला में शिक्षा प्रसार के लिये व्यापक आन्दोलन एवं अभियान आरम्भ किया जाय। छोटे बच्चों को पढ़ाने के लिये सरकार भी थोड़ा काम कर रही है। उससे पढ़ने वाले बालकों की संख्या बढ़ी है। पर अपने समाज की जनसंख्या को देखते हुये उन प्रयासों को नगण्य ही कहना चाहिये। माध्यमिक शिक्षा तक तो शिक्षा अनिवार्य और निःशुल्क होनी ही चाहिये। देश में एक भी बालक या बालिका ऐसी नहीं होनी चाहिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिसकी शिक्षा माध्यमिक स्तर से कम हो। इतनी सुविधा जुटाने में सरकार को संभत: अभी बहुत दिन लगेंगे। फिर बालकों के शिक्षित होकर समाजिक उत्तरदायित्व संभालने तक की लम्बी अवधि के लिये प्रतीक्षा में ठहरा नहीं जा सकता। संसार जितनी तेजी से आगे बढ़ रहा है उसे देखते हुये आज अपनी जनता को अज्ञानग्रस्त, अपेक्षित पड़ा रहने दें और सरकार जब अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करेगी तब उसके द्वारा पढ़कर निकलने वाले लड़के बड़े होकर समाज के नव निर्माण का लक्ष्य पूरा करेंगे- यह प्रतीक्षा बहुत लम्बी है। तब तक दुनियाँ बहुत आगे बढ़ चुकी होगी और हम काफी पीछे पिछड़ चुके होगें।

बालकों की शिक्षा के लिये जो प्रयत्न चले रहे हैं वे तो चलते ही रहने चाहिये। चलने ही नहीं चाहिये। वरन् उनमें चौगुनी सौगुनी अभिवृद्धि होनी चाहिये। क्योंकि वास्तविक निर्धनता ज्ञान की कमी ही मानी जाती है। रोटी की कमी सामयिक निर्धनता है, बुद्धिमानी रोटी की समस्या हल कर लेता है पर यदि रोटी का ही बहुल्य रहे ज्ञान की कमी बनी रहे तो उस स्थिति में शान्तिपूर्वक उन रोटियों को खा सकना भी संभव न होगा। अस्तु अन्य कठिनाइयाँ उठा कर भी हमें अपनी शिक्षा वृद्धि के लिये प्रयत्न करना चाहिये। शिक्षा कैसी होवे यह प्रश्न अलग है। निस्संदेह नौकरियों के उद्देश्य लेकर चलने वाली पढ़ाई को निरर्थक माना जाना चाहिये। उससे दास मनोवृत्ति के आराम पसन्द बाबू बनने वाले लड़कों की संख्या बढ़ती और बेकारी फैलती है। पढ़े लिखों की बेकारी कितनी खतरनाक होती है उसे समय रहते समझ लिया जाना चाहिये और शिक्षा के नाम पर चल रहे मखौल में सुधार होना चाहिये। स्वावलम्बी, समर्थ, सद्गुणी, सुसंस्कृत और विचारशील नागरिक उत्पन्न करना शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिये। नौकरी दूसरी बात होनी चाहिये और पढ़ाई दूसरी। हर पढ़ने वाला नौकरी ही प्राप्त करे जब तक यह उद्देश्य शिक्षा के साथ जुड़ा रहेगा तब तक उससे लाभ के स्थान पर हानि ही होती रहेगी। राष्ट्र के कर्णधारों को शिक्षा पद्धति में इस प्रकार का सुधार करना ही होगा। विचार शीलता आज नहीं तो कल उन्हें उसके लिये विवश ही कर देगी।

जो , हो हमें शिक्षा का प्रसार तो करना ही है। देश की भौतिक समृद्धि की दृष्टि से भी और आध्यात्मिक उन्नति की दृष्टि से भी। बच्चों की पढ़ाई ठीक होती रहे इसके लिये हर अभिभावक को समझाना होगा कि वे अपने बच्चे और बालिकाओं को पढ़ाने की आवश्यकता समझें। रोटी खिलाते हैं, कपड़े पहनातें हैं, प्यार करते हैं, व्याहशादी करते हैं तो उन्हीं में एक और अनिवार्य आवश्यकता उन्हें पढ़ाने की भी जोड़ दें। जो अभिभावक अपने बालकों को शिक्षा की सुविधा नहीं जुटाते वे उन्हें जन्म देने के बाद कंधें पर आये एक नितान्त आवश्यक कर्तव्य की उपेक्षा करनेका पाप करते हैं। भूखे पेट रहकर भी उन्हें अपने बालकों को शिक्षा के साधन जुटाने चाहिये। यह भावना उन प्रत्येक वयस्क नर नारियों में भरी जानी चाहिये जो बच्चे उत्पन्न कर रहे हैं या करने वाले हैं। गाँव-गाँव गली-गली मुहल्ले-मुहल्ले स्कूलों की स्थापना की जानी चाहिये और उसके साथ गैर सरकारी स्तर पर भी साधन जुटाये जाने चाहिये।

किन्तु काम इतने से भी नहीं चलेगा। जो लोग स्कूल में जाने की परिस्थितियों में नहीं रहे उन नर नारियों की शिक्षा के लिये सर्वत्र पाठशालाएं प्रौढ़ पाठशालाऐं चलनी चाहिये। इस प्रकार के कार्य को देव मन्दिर बनाने जैसा धर्म कार्य माना जाना चाहिये और जो लोग शिक्षा देने या दिलाने को समर्य अथवा धन दें। उन्हें देवपूजा या धर्म कृत्य के लिये दान-पुण्य करने वालों से अधिक श्रेष्ठ समझा जाना चाहिये। मनुष्य के आत्मा में रहने वाले भगवान की यदि हम शिक्षा रूपी पूजा सामग्री से अर्चना करते हैं तो निस्संदेह अक्षत नैवेद्य, धूप, दीप प्राप्त करने की अपेक्षा वे कहीं अधिक प्रसन्न होगें। हर शिक्षित व्यक्ति अपने घर की महिलाओं को, बच्चों को, बूढ़ों को, नौकरानियों व पड़ोसियों को पढ़ाने का प्रयत्न करें। इसके लिये समय या धन दे तो ही वह ज्ञान ऋण से उऋण होने का अपना नैतिक कर्तव्य पूरा करेगा। छोटे बच्चों की पढ़ाई तक ही सीमित नहीं रहा जा सकता है। आवश्यकता यह भी है कि प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को शिक्षित बनाने के लिये व्यापक रूप से संघ बद्ध होकर प्रयत्न किया जाये। अभी हमारे देश में केवल २३ फीसदी शिक्षा हो पाई है। ७७ फीसदी निरक्षरों का यह देश जब तक साक्षर न बनेगा तब तक प्रगति का महत्व स्वरूप और आधार भी न समझ सकेगा। ऐसी दशा में किसी ठोस कार्य की भी सम्भावना न रहेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गीता में प्रेरणा यह है कि प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान की पवित्रता एवं उपयोगिता को समझे और समझ कर उन्हें हृदयगंम करने के लिये कटिबद्ध हो। गीता ज्ञान का ग्रन्थ है। उसमें संसार की सर्वश्रेष्ठ वस्तु ज्ञान को ही बताया है और हर भावनाशील व्यक्ति को संदेश दिया है कि वह अपने व्यक्तिगत ज्ञान की अभिवृद्धि के लिये तथा दूसरों को ज्ञान वान बनाने के लिये शक्तिभर प्रयत्न करें। अपने साधन जितने भी हो उसे मानव जाति को अधिक ज्ञानवान बनाने में लगावें। परमार्थ का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप यह है कि बौद्धिक दृष्टि से पिछड़े और उजड़े लोग उपयोगी विचारणा एवं प्रेरणा प्राप्त कर सकने की स्थिति में पहुँच कर अपने को मनुष्य श्रेणी में गिनेजाने योग्य बना सकें। सस्ती पूजा पत्री का महत्व उसके सस्तेपन के आधार पर स्वल्प ही होता है। ज्ञान आराधना द्वारा भगवान को प्रसन्न करने की जो तपश्चर्या करनी पड़ती है उसका प्रभाव भी उसी अनुपात से अधिक उत्तम एवं प्रभावशाली होता है।

पुस्तकालयों की स्थापना घर घर सद्ज्ञान पहुँचाने का प्रबन्ध करना साक्षरों को 'प्रशिक्षित' बनाने को पुण्य प्रयास माना जाता है। साक्षर बनने से ज्ञान प्राप्ति का मार्ग खुलता है पर उसका वास्तविक प्रयोजन तभी सिद्ध होता है जब साक्षर व्यक्ति जीवनोत्कर्ष की समस्याओं को समझने तथा उन्हें सुलझाने का प्रयास करे यह कार्य विचारोत्तेजक सत्साहित्य के पढ़ने में पूर्ण होता है। दुर्भाग्य से इस प्रकार की अभिरुचि आज के तथाकथित शिक्षतों को भी नहीं है। स्कूल छोड़ने के बाद आमतौर से पढ़ना बन्द हो जाता है। काम धन्धों में प्रयुक्त होने वाली पढ़ाई मात्र हाथ रह जाती है। जो इसके अतिरिक्त पढ़ते हैं उसमें मनोरजंन, विलासिता, कौतूहल की पुस्तकें या पत्रिकाएं ही प्रधान होती हैं। जीवन निर्वाह एवं समाज निर्माण जैसे महत्वपूर्ण विषय की आवश्यकता एवं उपयोगिता ही अभी लोगों ने नहीं समझी है। ऐसी दशा में वे सत्साहित्य पढ़ेंगे ही कैसे ? इस अभिरुचि को जगाया जाना चाहिये। ताकि शिक्षा की सार्थकता सिद्ध हो सके जगह-जगह ऐसे पुस्तकालय खुलने चाहिये जिनमें विशुद्धरूप से निर्माणात्मक साहित्य हो और उसे शिक्षितों तक पहुँचाने और उनकी अभिरुचि को परमार्जित करने के प्रयत्न चलते रहें।

ऐसे सत्प्रयत्नों को गीता में बुद्धियोग कहा गया है। ज्ञान साधना में निरन्तर संलग्न रहने वाले व्यक्ति बुद्धियोगी हैं। इस मार्ग में प्रीतिपूर्वक लगे हुये व्यक्ति वास्तव में अपनी इस तपश्चर्या द्वारा भगवान का भजन ही करते हैं और ईश्वर प्रदत्त बुद्धियोग द्वारा मनुष्य भगवान को ही प्राप्त कर लेते हैं। ईश्वर की सर्वप्रिय आराधना उनके संसार को अधिक ज्ञानवान बनाने की ही हो सकती है।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ।।

– अध्याय १० श्लोक १०

निरन्तर प्रीतिपूर्वक, प्रयत्नपूर्वक मुझ ईश्वर को भजने वाले लोगों को मैं "बुद्धियोग" की प्रेरणा देता हूँ और वे इसी के सहारे मुझे प्राप्त कर लेते हैं।

परमेश्वर जिन पर भी प्रसन्न होते हैं उन्हें वे अधिक विचारशील सद्भावना सम्पन्न और ज्ञान परायण बनाते हैं तथा बुद्धियोग में संलग्न होने की प्रेरणा देते हैं। संसार में सद्ज्ञान का प्रसार उनका मुख्य काम बन जाता है। प्राचीन काल से लेकर अब तक के समस्त सच्चे ईश्वर भक्त ऋषि आजीवन इसी कार्य में लगे रहे हैं। गुरुकुल चलाने में, सद्ग्रन्थों का प्रणयन करने में, यज्ञ आयोजनों में कथा प्रवचन कहने में, संस्कार और पर्वो की व्यवस्था में संलग्न रह कर वे संसार को ज्ञानवान बनाने के लिये ही प्रयत्न करते रहते हैं। प्रत्येक ईश्वर भक्त को सदा से यही करना पड़ा है। वह चुप बैठ ही नहीं सकता। संसार में अज्ञान ग्रस्त प्राणियों का देखकर उसकी अन्तरात्मा में करुणा की अजस्त्र धारा बहे बिना रह ही नहीं सकती। ईश्वर प्रदत्त बुद्धियोग की प्रेरणा को वह तिरस्कृत कर ही नहीं सकता। अतएव उसे अपनी परिस्थितियों के अनुसार मानव जाति को अधिक ज्ञानवान बनाने के लिये अपनी सामर्थ्य भर प्रयत्न एवं पुरुषार्थ करना ही पड़ता है।

साक्षरता की उपयोगिता इस बात में है कि इसके द्वारा जीवनोत्कर्ष के लिये उपयोगी एवं आवश्यक ज्ञान प्राप्त किया जाये। वह पढ़ा सुना और समझा जाये। जिससे जीवननिर्माण एवं समाज निर्माण में सहायता मिलती रहे। यह शिक्षा को विद्या में परिणित करने की भूमिका है। पढ़ना लिखना यदि रोटी कमाने या सऊर सलीका सीखने तक ही सीमित रह जाये तो उसे पढ़ाई मात्र कहा जायेगा। पर जब वह पढ़ाई आदर्शवादिता एवं उत्कृष्टता को उपलब्ध करने में सहायक बनती है तब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे विद्या कहा जाने लगता है। विद्या ही आत्म कल्याण का एक प्रधान साधन है। गायत्री महामंत्र के द्वारा हम उस विद्या की ऋतम्भरा प्रज्ञा की ही आराधना करते हैं।

विद्यावान् व्यक्ति को विवेकशील बनना पड़ता है। उसकी वृत्ति हंस की तरह नीर क्षीर विवेक की बन जाती है। इस संसार में अगणित प्रकार की विचारधाराएं विद्यमान हैं, लोग अगणित प्रकार की गतिविधियाँ अपनाये हुये हैं। लोग क्या कहते, क्या सोचते और क्या करते हैं इससे वह तनिक भी प्रभावित नहीं होता वरन् अपनी मौलिक आस्था का अवलम्बन करके वही सोचता है जो सोचना चाहिये, वही करता है जो करना चाहिये। उसमें विद्या की प्राप्ति के कारण इतना साहस एवं आत्मबल तो उत्पन्न हो ही जाता है कि सारी दुनियां एक ओर भले ही बने रहे पर वह अकेला सत्य के मार्ग पर अविचल चट्टान की तरह सुदृढ़ खड़ा रहे।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जागर्ति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।

– अध्याय २ श्लोक ६९

"जो सब भूतों के लिये रात है उसमें संयमी जागता है और जिसमें सब भूत (प्राणी) जागते हैं। मुनियों के लिये रात है।"

आमतौर से इस दुनियां में रूढ़िवादी अन्धविश्वास और अविवेकी ही भरे पड़े हैं। जो कुछ चलता आ रहा है। उसे ही चलते रहने देना चाहते हैं। उनमें न अविवेक को छोड़ने का साहस होता है और न विवेक को अपनाने की हिम्मत होती है। मन ही मन भले बुरे को जानते तो हैं पर आत्मबल और सद्ज्ञान की कमी के कारण भेड़िया धसान के अंग बने हुये जिन्दगी के दिन पूरे करते रहते हैं। वे न कोई बुराई छोड़ पाते हैं और न अच्छाई ग्रहण कर सकते हैं। अधिकांश लोग तो इसी प्रकार के हैं। इन्हीं के साथ चलना उन्हीं के स्वर में स्वर मिलाना विवेकवान से, विद्यावान से बन नहीं पड़ता। इसलिये उसे विवश होकर दूसरा रास्ता अपनाना पड़ता है– जो सर्वसाधारण से भिन्न होता है। जैसी आदर्शविहीन जिन्दगी साधारण लोग बताते हैं जैसे घटिया स्तर से लोग सोचते हैं वह उससे बन नहीं पड़ती। उसे अपना अलग रास्ता बनाना पड़ता है। वैसी दशा में उसकी गतिविधियाँ दूसरों से भिन्न ही रहती हैं। लोग उसे मूर्ख समझते हैं वह लोगों को मूर्ख समझता है।

इतने पर भी सराहना इस बात की है कि इस भिन्नता के बीच में वह दुर्भाव एवं संघर्ष पैदा नहीं होने देता। स्वयं अपने मार्ग पर दृढ़ रहता है। दूसरों को उसी रास्ते चलने की प्रेरणा देता है। पर जो उसकी बात नहीं मानते उनसे शत्रुता मोल नहीं लेता। ज्ञान की प्रौढ़ अवस्था यही है। सच्चे ज्ञानी का स्तर और आचरण यही होता है कि वह दूसरों से प्रभावित होता नहीं वरन् दूसरों को अपनी सत्यनिष्ठा एवं विवेकशीलता से प्रभावित करता है।

मानव समाज को ज्ञान के उसी स्तर पर पहुँचाना गीताकार का उद्देश्य है। भगवान अर्जुन को इसी स्तर पर उठा ले गये थे। भारतीय समाज को सच्चा ज्ञानी बनाना है। ज्ञानी ही भगवान के सबसे अधिक प्रिय हैं। भगवान के परम प्रिय बनने के लिये हमें ज्ञान योग अपनाना ही पड़ेगा। उस स्थिति में आज जिस मूढ़ता ने, कुण्ठा ने, अज्ञान ने अविवेक आलस्य अवसाद ने हमें ग्रसित कर रखा है। उससे छुटकारा पाना ही पड़ेगा । नव निर्माण की बौद्धिक क्रान्ति का प्रयोजन यही है कि हर व्यक्ति विवेकावान बने, विवेक को सर्वोपरि माने, जो विवेक सम्मत हो उसे ही स्वीकार करे। इतना यदि हम कर पावें तो गीता का उद्देश्य पूर्ण हो , समाज की अभिनव रचना सम्भव हो और ज्ञानयोग का उद्देश्य भी पूर्ण हो।

ज्ञान प्रसार की ऋषि परम्परा

ऋषियों की परम्परा ज्ञान साधना की रही है। आज हमारे सामने ज्ञान का जो अथाह भण्डार सुरक्षित है वह उन्हीं की देन है। व्यास, वशिष्ठ, भारद्वाज गौतम, कपिल , जैमिनी, पंतजलि आदि ऋषियों ने न केवल ज्ञान की साधना और खोज की वरन् सीमित सादा जीवन बिता कर ज्ञान के प्रसार के लिये भी कार्य किया।

महर्षि चरक, सुश्रुत ने आयुर्वेद के क्षेत्र में बहुत सी खोज और अनुसंधान करके मानव समाज को रोग मुक्त एवं स्वस्थ बनाने की दिशा में बहुत बड़ा काम किया।

देवर्षि नारद स्वयं न केवल एक भक्त और ज्ञानी व्यक्ति ही थे वरन् उनका ज्ञान प्रचार और लोगों को सत्प्रेरणायें देने का काम और भी महत्वपूर्ण था। वे सदैव कीर्तन भजन गाते हुये लोगों में सद्विचार और सद्ज्ञान का प्रचार करते रहे। उन्होंने कई गिरें हुओं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

को उठाया पापियों को शुभ मार्ग में लगाया। अधिकारी पात्रों को ज्ञान की दीक्षा देकर आत्मविकास की ओर अग्रसर किया।

महर्षि कणाद के बारे में प्रसिद्ध है कि वे खेतों में उपेक्षित छोड़ दिये जाने वाले अन्न के दानों को बीनकर उनसे अपने परिवार का जीवन निर्वाह करते थे और अपना अधिकांश समय ज्ञान साधना में लगाते थे। वे चाहते तो धन अर्जन करके सुखपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकते थे। किन्तु वे अधिकाधिक समय अपनी ज्ञानोपासना में लगाना चाहतेथे। स्वयं ज्ञानवान बनना और दूसरों को ज्ञानवान बनाना उन्हें संसार में सर्वश्रेष्ठ सत्कार्य प्रतीत हुआ। इसलिये जीवन की आवश्यकताओं को कम महत्व देकर महर्षि कणाद ने संसार को ज्ञान का एक बहुत बड़ा कोष प्रदान किया।

इसी तरह महर्षि पिप्पल पीपल वृक्ष के छोटे छोटे फलों से जीवन निर्वाह करते थे। इन्होंने अमूल्य मानव जीवन को केवल जीवन निर्वाह के लिये ही लगाना श्रेयस्कर न समझा। उनके सामने ज्ञान साधना का महत्वपूर्ण कार्यक्रम था जिसके लिये उक्त मार्ग अपनाया।

शुकदेव जन्म से ही ज्ञान की खोज में निकल गये थे। वे सांसारिक प्रलोभनों में नहीं आये और जीवनोद्देश्य की पूर्ति में नितान्त आवश्यक आत्म ज्ञान की खोज में जुटे रहे। आजीवन त्यागी अपरिग्रही रह कर शुकदेवजी ने ज्ञान की साधना की। इन्हीं ने महाराजा परीक्षित को भागवत की कथा सुनाई थी। राजा जनक से जो ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया था उसे सारी मानव जाति में वितरित किया।

महा मनीषी चाणक्य चन्द्रगुप्त मौर्य के मंत्री थे। उसी के प्रयत्नों से मौर्य साम्राज्य का विस्तार हुआ। लेकिन यह सब कुछ करते हुये भी चाणक्य नेअपने विद्या प्रेम को नहीं छोड़ा। वरन् राजकीय वातावरण से दूर एक कुटिया में रह कर चाणक्य ज्ञान की साधना करते थे। चन्द्रगुप्त ने उनके लिये अच्छे भवन और सुख सुविधायुक्त साधन जुटाये लेकिन उन्हें स्वीकार न करते हुये चाणक्य अपनी कुटिया में सरस्वती की आराधना किया करते थे। इससे अध्ययन और अध्यापन दोनों ही कार्य चाणक्य के जीवन के अभिन्न अंग थे। कौटिल्य का अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र के रूप चाणक्य की बहुत बड़ी देन उसकी ज्ञान साधना का ही परिणाम है।

प्रत्येक ऋषि के आश्रम में एक गुरुकुल रहता था। वे तपश्चर्या के साथ साथ ज्ञानोपासना को भी अपना परम पवित्र एवं अनिवार्य धर्म कर्तव्य मानते थे। उन दिनों देश भर की सारी शिक्षा व्यवस्था ऋषियों ब्राह्मणों और सन्तों के जिम्मे ही थी वे छोटे बड़े अगणित विद्यालय चलाते थे। नालंदा और तक्ष शिला जैसे विश्व विद्यालय उन्हीं के प्रयत्नों से इतने विकसित हुये थे कि सारे संसार के छात्र उनमें विविध विषयों की शिक्षा प्राप्त करने के लिये आया करते थे और यहाँ की संस्कृति को समस्त विश्व में फैलाया करते थे।

जगद्गुरु शंकराचार्य जी ने न केवल तपस्या ही की वरन् ज्ञान की बहुत बड़ी साधना की थी। उनके आत्म तेज और विद्वता दोनों के समक्ष विजातियों को अपनी हार माननी पड़ती थी। उनके शास्त्रार्थ विजय से पता चलता है कि वे कितने विद्वान थे। प्राचीन ग्रन्थों का उन्होंने बड़ा सरल और विद्वतां पूर्ण भाष्य किया और स्वयं नई रचनायें भी कीं। बहुत छोटी उम्र में ही उन्होंने समस्त शास्त्रों का अध्ययन पूर्ण कर लिया था।

गोस्वामी तुलसीदास विरचित रामचरित मानस विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ है। जो नीति, धर्म, जीवन शास्त्र की महत्वपूर्ण शिक्षाओं से भरा हुआ है। सन्त कबीर, नानक, सूर, मीरा आदि के पदों में जीवन शिक्षा का बहुत बड़ा सार भरा हुआ है। सन्त तुलसी दास ने तो घर से निकलने के बाद बहुत समय तक अध्ययन चिन्तन मनन में लगाया था। सूरदास ने भक्ति भावना से सूखे और नीरस हृदयों को सरस बनाने के लिये सूर सागर की रचना की। उनके पदों का भक्ति साहित्य में बड़ा स्थान है।

सन्त एकनाथ, सन्त ज्ञानेश्वर, चैतन्य महाप्रभु, समर्थ गुरु रामदास आदि न केवल सन्त और साधु ही थे वरन् परम ज्ञानी विचारक और विद्वान भी थे। सन्त एकनाथ ने भागवत की अभूत पूर्व टीका की है। ज्ञानेश्वर की ज्ञानेश्वरी गीता और तुकाराम के अभंग प्रसिद्ध हैं। चैतन्य महाप्रभु न्याय, धर्म के प्रकाण्ड विद्वान थे। समर्थ गुरु रामदास का दास बोध आज भी महाराष्ट्र में आदर की दृष्टि से देखा जाता है। इन सन्तों ने भक्ति के प्रसार के साथ साथ ज्ञान का भी बहुत प्रसार किया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कठिनाइयों में विद्याभ्यास

विद्या प्राप्ति के लिये कई बार सुविधाऐं नहीं होतीं, साधनों की कमी रहती है, तथा शारीरिक, मानसिक, परिस्थितियाँ बाधा उपस्थित करती हैं। किन्तु यदि ज्ञान प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा उत्पन्न हो जाय तो मनुष्य प्रत्येक स्थिति में अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये अवसर प्राप्त कर सकता है। सन्त विनोवा भावे सत्तर से ऊपर आयु के हो जाने पर भी भू-दान आन्दोलन में दिन रात जुटे रहते थे। साथ ही संसार की सबसे कठिन चीनी भाषा का अध्ययन भी करते थे। वे अपने व्यस्त कार्यक्रम के बीच भी संसार की दस प्रमुख भाषाएं अच्छी तरह पढ़ चुके थे और आगे और भी बहुत कुछ पढ़ने के लिये प्रयत्नशील थे।

विद्योत्तमा और कालिदास

पुराने समय में विद्योत्तमा नाम की एक बहुत बड़ी विद्वान स्त्री थी। उसने यह घोषणा कर दी कि जो उसे शास्त्रार्थ में हरा देगा उसी के साथ वह विवाह करेगी। बड़े बड़े पण्डित आये लेकिन विद्योत्तमा के समक्ष वे ठहर नहीं सके। पण्डितों ने इसे अपना अपमान समझा और इसका बदला लेने के लिये एक मूर्ख से विद्योत्तमा की शादी कराने का षड़यन्त्र रचा। वे सबसे अधिक मूर्ख की खोज में लगे। काफी भागदौड़ के पश्चात् जंगल में एक काला कलूटा व्यक्ति मिला जो जिस डाल पर बैठा हुआ था उसी को काट रहा था। पण्डितों ने कुछ पूछ ताछ की लेकिन वह कुछ न बोला और उसे सबसे बड़ा मूर्ख समझ कर पण्डितों ने अपना षड़यन्त्र का आधार बनाया। पण्डितों ने मूर्खराज को सारी बात समझा दी और वे उसे विद्योत्तमा के पास ले जाकर बोले- "ये हमारे गुरु जी हैं मौन रहते हैं आपके प्रश्नों का उत्तर संकेतों में देंगे।" विद्योत्तमा ने स्वीकार करके संकेतों में प्रश्न पूछना शुरु किया। उसने एक अँगुली उठाई इस पर मूर्खराज ने दो। प्रश्न था परमात्मा एक है लेकिन मूर्ख राज ने सोचा यह मेरी एक आँख फोड़ना चाहती है। तो मैं दोनों फोड़ दूँगा, इसलिये दो अंगुलिया उठाई। लेकिन पण्डितों ने इन संकेतों की व्याख्या करते हुये प्रश्न बताया कि आत्मा और परमात्मा दो हैं। इसी तरह विद्योत्तमा ने पञ्चेन्द्रियों के बारे में पाँच अंगुलियाँ दिखाकर प्रश्न किया। उसने समझा यह मेरे गाल पर थप्पड़ मारना चाहती तो घूँसा दिखा दिया। पण्डितों ने व्याख्या करते हुये कहा कि गुरुजी पाँचों इन्द्रियों को मन के द्वारा वश में किये हुये हैं। इसी तरह कई संकेतों का प्रतिपादन पण्डित बड़े अच्छे ढंग से करते रहे। विद्योत्तमा ने उस महामूर्ख को अपना पति स्वीकार कर लिया। प्रथम मिलन के दिन जब विद्योत्तमा को उसकी मूर्खता का पता लगा तो बड़ी दुःखी हुई और उसे धक्का देकर मकान से निकाल दिया। गिरने से ऐसी चोट लगी कि उसकी स्मृति जाग पड़ी। मूर्खराज घर से चला गया और अपनी ज्ञान वृद्धि में लग गया। अन्त में वही महामूर्ख अपने अध्यवसाय से कालान्तर में महाकवि कालिदास के रूप में प्रकट हुआ और अपनी विद्वता की साधना पूरी करके वह फिर विद्योत्तमा से मिला।

महावैयाकरण वोपदेव

वोपदेव का मन पढ़ने में नहीं लगता था, उसकी स्मरण शक्ति अच्छी न थी। पाठशाला में अध्यापकों और सहपाठियों का उन्हें उपहास सहना पड़ता था। घर पर इसी कारण प्रतारणा होती थी। बच्चा निराश हो चला। उसने सोचा पढ़ने से क्या लाभ ? कोई दूसरा काम करेगें।

पाठशाला छोड़कर वोपदेव निकल पड़ा। इधर-उधर भटकते-भटकते बहुत दिन हो गये। एक दिन वह ग्राम के निकट कुए के किनारे बैठा अपनी दुरावस्था पर विचार करने लगा। अपनी समस्या का ढूँढने लगा।

सोचते समय उसकी निगाह सामने वाले पत्थर पर गई। पानी खींचते समय रस्सी की जो घिसट पड़ती थी उससे पत्थर पर गहरी लकीरें बन गई थीं। वोपदेव सोचने लगा इतना कठोर पत्थर यदि कोमल रस्सी की बार बार रगड़ पड़ने पर घिस सकता है तो मेरी मोटी बुद्धि निरन्तर प्रयत्न और अभ्यास करने से विद्याध्ययन के योग्य क्यों नहीं बन सकती ?

बालक ने अपना साहस बटोरा और पुनः पाठशाला में जा पहुँचा। अबकी बार उसने पूरे मन और दूने परिश्रम से पढ़ना आरम्भ कर दिया। प्रयत्न ने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली मन्दबुद्धि छात्र मेधावी स्नातक बनकर निकला।

महावैयाकरण वोपदेव को कौन नहीं जानता। आरम्भ में वह महामन्दबुद्धि था। इस मूढ़मति छात्र ने साहस से पुरुषार्थ से काम लिया तो प्रतिकूलताऐं अनुकूल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बन गई। वोपदेव की गाथा हर छात्र के लिये विचारणीय है और अनुकरणीय भी।

मन्दबुद्धि लड़का

एक लड़का बहुत ही मन्दबुद्धि था। उसे पढ़ना लिखना कुछ न आता था। बहुत दिन पाठशाला में रहते हुये भी उसे कुछ न आया। तो लड़कों ने उसकी मूर्खता के अनुरूप उसे बरध राज अर्थात बैलों का राजा कहना शुरू कर दिया। घर बाहर सब जगह उसका अपमान ही होता ।

एक दिन वह लड़का बहुत दुखी होकर पाठशाला से चल दिया और इधर-उधर मारा मारा फिरने लगा।वह एक कुए के पास पहुँचा और देखा कि किनारे पर रखे जगत के पत्थर पर रस्सी खिचने की रगड़ से निशान बन गये हैं। लड़के को सूझा कि जब इतना कठोर पत्थर रस्सी की लगातार रगड़ से घिस सकता है तो क्या मेरी मोटी बुद्धि लगातार परिश्रम करने से न घिसेगी। वह फिर पाठशाला लौट आया। और पूरी तत्परता और उत्साह के साथ पढ़ना आरम्भ कर दिया, उसे सफलता मिली। व्याकरण शास्त्र का वह उद्भट विद्वान हुआ। लघु सिद्धान्त कौमुदी नामक ग्रन्थ की उसने रचना की। उसके नाम में थोड़ा सुधार किया गया। बरध राज की जगह फिर उसे 'वरदराज' कहा जाने लगा।

संस्कृत की पढ़ाई

एक बार का जिक्र है कि स्वामी रामतीर्थ को वेदान्त की विवेचना करते देखकर एक संस्कृत के विद्वान ने ताना मारते हुये कहा कि जब आप संस्कृत नहीं जानते हैं तो तब आपको धर्मशास्त्रों की विवचेना करने का क्या अधिकार है ? बात उन्हें चुभ गई और उसी दिन से उन्होंने संस्कृत पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों में उन्होंने संस्कृत में इतनी विद्वता प्राप्त कर ली कि वेदों का भाष्य करने की तैयारी करने लगे।

नाई गुरु

बम्बई हाईकोर्ट के जज गोविन्द रानाडे को बंगला भाषा सीखनी थी। पर समय का अभाव था। अध्यापक ढूँढने की कठिनाई थी। अन्त: उन्होंने प्रतिदिन एक बंगलाभाषी नाई से हजामत बनवाने की व्यवस्था कर ली। जितनी देर हजामत बनती जज साहब उससे बंगला सीखते रहते। एक दिन उनकी धर्मपत्नी ने कहा लोग आपको ऐसा करते देखेंगे तो आपका सम्मान घटेगा। रानाडे हँसते हुये बोले दत्तात्रेय ने तो पशु पक्षियों तक को गुरु बनाया था। मैनें नाई गुरु बना लिया तो इसमें असम्मान की कौन सी बात रही।

कोई मन्दबुद्धि व्यक्ति भी यदि मनोयोग एवं तत्परता पूर्व अध्ययन आरम्भ करे तो वह भी उस समय में विद्वान बन सकता है। लोग आलस्य और अनुत्साह के कारण ही ज्ञान धन से वंचित रह जाते हैं और बौद्धिक दृष्टि से पिछड़े हुये और मानसिक दृष्टि से दरिद्र बने रहते हैं। ऐसे लोगों के लिये कालिदास वोपदेव वरदराज के उदाहरण बहुत प्रेरणाप्रद हैं।

ज्ञान प्रसार के पुण्य प्रयास

लोकहित के लिये मोह का त्याग

संन्यास के पूर्व माता की आज्ञा प्राप्त करने के लिये जगद्गुरु ने बड़ी अनुनय विनय की पर माँ ने एक न सुनी। बड़े उद्देश्यों की पूर्ति के लिये ममता का त्याग आवश्यक है अत: अब उन्हें एक दूसरा उपाय सूझा। एक दिन नदी स्नान कर रहे थे। किनारे माता बैठी पुत्र का स्नान करना देख रही थी। शंकराचार्य जल में कूद कर चिल्लाने लगे कोई मुझे बचाओ, मगर ने पकड़ लिया है। माँ इससे घबड़ा उठी, कोई भी पास जाने को तैयार न था। जगद्गुरु नें माता को पुकारा माँ मुझे बचाना चाहती है तो मुझे शंकर को सौंप दे वही मेरी रक्षा कर सकते हैं। मरने से तो बेटे का संन्यासी होना ही अच्छा है यह सोच कर माता ने बेटे को शंकर को भेंट कर दिया। शंकराचार्य धीरेधीरे बाहर निकल आये। अब उनके आगे कोई बाधा न थी। संसार के कल्याण को शंकराचार्य ने माता के मोह के अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण समझा और भारत के कौने कौने में घूमकर उन्होंने सद्ज्ञान का अलख जगाया।

ज्ञान प्रसार के त्याग

गुरु शठकोपाचार्य ने शिष्य रामानुज को ब्रह्मविद्या की शिक्षा दी। पर साथ ही यह भी कहा कि इसे किसी को बताना मत। नहीं तो नरक में जाना पड़ेगा।

अगले दिन से रामानुज विद्या का सार्वजनिक प्रचार करने लगे। उनने कहा यदि इस ज्ञान को प्राप्त कर सब लोग अपना कल्याण पथ प्रशस्त करते हैं तो बताने का पाप करके नरक में जाने का मुझे तनिक भी भय नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शठकोपाचार्य ने जब रामानुज की उदार कठिनाइयों का विवरण सुना तो क्षुब्ध नहीं वरन् प्रसन्न ही हुये।

अध्यापक गोखले

उस समय जब गोपाल कृष्ण गोखले ने बी० ए० की परीक्षा उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण की, देश में शिक्षा का बड़ा अभाव था। फिर इतनी ऊँची शिक्षा प्राप्त किसी भी युवक के लिये बड़े से बड़ा सरकारी ओहदा मिल सकना कोई कठिन बात न थी।

जीवन में आर्थिक उन्नति का अवसर होने पर भी गोपाल कृष्ण गोखले उसके प्रलोभन में नहीं फँसे। उन्होंने अपनी शिक्षा का उद्देश्य जन हित ही माना। अंत: जहाँ ऊँचे सरकारी पद पर पहुँच कर हजारों रुपये वेतन और बहुत सा सम्मान प्राप्त कर सकते थे। वहाँ उन्होंने देश की अशिक्षा दूर करने के मन्तव्य से "दक्षिणी शिक्षा समिति" की आजीवन सदस्यता स्वीकार की। यह समिति अपने कार्य कर्ताओं को केवल ३५/- रु० मासिक भत्ता ही दिया करती थी। गोखले उन ३५/-रु० में अपना और परिवार का निर्वाह करते हुये समिति के फर्गुसन कालिज में राजनीति अर्थशास्त्र और इतिहास पढ़ाया करते थे। बाद में लोकमान्य तिलक के त्याग पत्र दे देने पर उन्हें गणित भी पढ़ानी पड़ती थी।

विद्या का उपयोग

अभावों के बीच रहते हुये भी स्वामी रामतीर्थ ने एम० ए०की परीक्षा सर्वप्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उनकी प्रतिभा देखकर कालिज के प्रिंसिपल ने आई० सी० एस० में जाने के लिये परामर्श और सिफारिश कर देने का वचन दिया। स्वामी राम ने उस समय की उच्चतम सरकारी नौकरी का प्रलोभन ठुकराते हुये कहा "इस कठिनाई से प्राप्त की हुई विद्या को मैं कोड़ी मोल में बेचना नहीं चाहता, इसका उपयोग तो मानव जाति की सेवा में ही करूँगा।"

ज्ञान वृद्धि के पुण्य प्रयास

पण्डित मदनमोहन जी मालवीय जी ने जहाँ स्वराज्य आन्दोलन के लिये बहुत महत्वपूर्ण काम किया वहाँ उन्होंने भारतीय जनता के बौद्धिक शिक्षा स्तर को ऊँचा उठाने के लिये भी बहुत बड़ा काम किया था। वे स्वयं एक प्रभावशाली वक्ता और विचारक थे। हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना करके देश में एक महत्वपूर्ण शिक्षा संस्थान खड़ा किया। जिसमें आज भी देश और विदेश के छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त अन्य लोगों को भी उन्होंने विद्या के प्रसार कार्य में लगाया।

महात्मा हंसराज पंजाब के प्रसिद्ध जनसेवी नेता थे। उन्होंने समाज में धार्मिक एवं बौद्धिक शिक्षण का बहुत बड़ा काम किया। उन्होंने सर्व प्रथम डी० ए० वी० कालेज की स्थापना की जिसके अनुसार पंजाब भर में अनेकों स्कूल कालेज पाठशालायें स्थापित की गईं। ज्वालापुर का गुरुकुल तथा वानप्रस्थाश्रम उन्हीं के सत्परिश्रम का फल है।

महात्मा हंसराज अपने विद्यार्थी जीवन में अपना अधिकांश समय अनपढ़ों की चिट्ठियाँ लिखने में लगाया करते। एक दिन उनकी माता ने कहा तुम्हें अपनी पढ़ाई का भी कुछ ध्यान है या योंही दूसरों की बेगार में समय बर्बाद करते रहोगे। हंसराज ने उत्तर दिया माताजी जिस पढ़ाई से दूसरों का हित न होता हो ऐसी शिक्षा से क्या लाभ ?

राजा महेन्द्रप्रताप बड़े देशभक्त माने जाते हैं। उन्होंने स्वाधीनता के लिये बड़े बड़े काम किये लेकिन इससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य था प्रेम महाविद्यालय की स्थापना करके जनशिक्षा के लिये एक बहुत बड़ा अभाव पूरा करना। इस संस्था के माध्यम से बहुत बड़े बड़े जनसेवी कार्यकर्ताओं का प्रादुर्भाव हुआ।

आचार्य नरेन्द्र देव स्वयं एक बड़े विद्वान कुशल जननेता लोकसेवी पुरुष थे। लेकिन इससे भी बढ़कर उन्होंने जनशिक्षा के लिये बहुत काम किया। काशी विद्यापीठ की स्थापना अन्य अनेकों विद्वानों एवं साधन सम्पन्न लोगों के सहयोग से करके उन्होंने जनशिक्षा के लिये एक महत्वपूर्ण कार्य किया। आज भी उक्त शिक्षा संस्थान भारत के महत्वपूर्ण संस्थानों में से हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल काँगड़ी जैसे विश्वविद्यालय की स्थापना की। इस शिक्षा संस्था द्वारा भारतीय धर्म एवं संस्कृति की सेवा करने वाले सहस्त्रों छात्र निकले और उन्होंने राष्ट्रीय स्तर को ऊँचा उठाने में सराहनीय योग दान दिया।

श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर की गणना विश्व कवियों में की जाती है। वे स्वयं एक ऋषि और दृष्टा थे। साहित्य साधना के द्वारा उन्होंने मानव जाति की बहुत बड़ी सेवा की थी। ज्ञानोपासना तक ही अपना कार्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सीमित न रखकर श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर ने विश्वभारती संस्था की स्थापना करके कलाकार, विद्वान, होनहार, प्रतिभाओं को आगे बढ़ाने के लिये एक बहुत बड़ा काम किया। उक्त संस्था आज भी भारत में एक महत्वपूर्ण शिक्षा संस्थान है। रवीन्द्र को गीताञ्जलि पर विश्वप्रसिद्ध नोबुल प्राईज मिला था। जिसकी रकम को उन्होंने अपने उपयोग में न लेकर संस्था में लगा दिया। रवीन्द्र साहित्य के ही साधक नहीं थे वरन् सरस्वती पुत्र थे। एक कलाकार और कवि भी थे। उन्होनें कला साहित्य ज्ञान साधना को जनसेवा का माध्यम बनाया।

हरि कथा का मूल्य

"ज्ञान दान का प्रतिफल धन के रूप में ग्रहण नहीं करना चाहिये। निस्वार्थ शिक्षण का ही प्रभाव जन मानस पर पड़ता है।"

यह शास्त्र वचन गरीब पद्यमनाभ ने सुनकर विचार किया और विचार करके कार्यान्वित करने की ठानी।

पद्यमनाभ कथा कहते थे। कथा में जो धन चढ़ाया जाता था उसी से अपनी गुजर करते। पर जब उनके अन्त:करण ने यह मान लिया कि ज्ञान दान का प्रतिफल स्वीकार नहीं करना चाहिये तो उन्हें एक सच्चे विचारक की तरह उस लक्ष्य को कोई रूप में लाना ही था।

उन्होंने आजीवन हरिकथा कहकर जन मानस में भक्ति भावना जागृत करने का अपना क्रम यथावत जारी रखा। पर गुजारे के लिये लकड़ी काट कर बेचने का धंधा अपना लिया। लकड़हारे की कथा जनता को भी अधिक हृदयग्राही बनी और कथावाचक का भी कल्याण हुआ।

जिन दिनों पंजाब भर में उर्दू और फारसी का जोर था, हिन्दी की ओर किसी का ध्यान भी न था। उन दिनों गो० गणेशदत्त जी ने हिन्दी प्रचार का व्रत लिया कि वे नियमित रूप से लोगों को पढ़ावेंगे। यह काम बड़ा कठिन था, कोई पढ़ने को ही तैयार न होता था। निदान उन्होंने एक कनस्तर हाथ में लेकर लायलपुर के सारे शहर में स्वयं यह मुनादी की कि"जो भाई हिन्दी पढ़ना चाहे नि:शुल्क हिन्दी पढ़ाई जायेगी।" मुश्किल से कुछ छात्र मिले तों उनको पढ़ाने के लिये जगह का प्रबन्ध न हुआ। इस पर उन्होंने एक खुले स्थान पर बैठकर मिट्टी के तेल की कुप्पी के प्रकाश में अपनी हिन्दी पाठशाला आरम्भ कर दी। उनकी यह पाठशाला कुछ समय बाद हाई स्कूल बन गई। इतना ही नहीं गोस्वामी जी ने भारत विभाजन होने से पूर्व पजांब में ६० डिग्री कालेज, १५० इन्टर कालेज, १०० कन्या पाठशालाऐं १०० मिडिल स्कूल और ४ ब्रह्मचर्याश्रम स्थापति किये। जो सन् ४७ तक बड़ी शान से चल रहे थे।

लाला देवराज ने कन्या महाविद्यालय की स्थापना की और बालिकाओं के शिक्षण का महत्वपूर्ण कार्य किया। महर्षि कर्वे द्वारा स्थापित महिला संस्थाओं ने नारी शिक्षा को आगे बढ़ाने में बहुत काम किया। हाथरस का कन्या गुरुकुल माता लक्ष्मी देवी के अपने पुरुषार्थ का फल है।

राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के माध्यम से हिन्दी प्रचार एवं विद्या वृद्धि के लिये बहुत बड़ा काम किया । इस प्रकार के महापुरुषों की बहुत संख्या है जिनने मनुष्य के वास्तविक कल्याण के माध्यम 'ज्ञान' को अधिकाधिक व्यापक बनाने के लिये शक्तिभर प्रयत्न किया। ऐसे सभी लोग अभिन्दनीय हैं।

अनेक लेखक, कवि, पत्रकार, वक्ता, गायक, जनसाधारण का मानसिक स्तर विकसित करने के लिये जो कार्य करते रहे हैं उसका मूल्य कम नहीं। जन जागरण का महान प्रयोजन ज्ञान साधना से ही सम्भव होता है और उसी के आधार पर कोई व्यक्ति या राष्ट्र सुविकसित होता है।

ज्ञान साधना और उसके साधक

भगवान बुद्ध

राजपुत्र सिद्धार्थ ने अर्द्ध रात्रि में अपने घर का त्याग किया और रीवन तथा जगत का तत्वज्ञान जानने के लिये वन का आश्रय लिया। वहाँ उन्होंने कई वर्षो तक घोर तप और ज्ञान साधना की । तत्पश्चात् उन्हें एक दिन समाधिवस्था में ज्ञान प्राप्त हुआ और वे आजीवन लोगों को उस ज्ञान का प्रसाद बाँटने में ही लगे रहे। बौद्ध धर्म का विस्तार भगवान बुद्ध के प्रचार कार्य का ही परिणाम है। हजारों भिक्षु-भिक्षुणियों के द्वारा उन्होंने मानव समाज में धर्म, ज्ञान प्रसार तथा संगठन आदि का कार्य किया। गिरे हुओं को उठाया। अंगुलिमाल से लेकर अम्बापाली तक अनेकों पतितों को उन्होंने ज्ञान का अमृत पिला कर ऊँचा उठाया। वाममार्गी अनाचार का अन्धकार हटाकर उन्होंने भारत ही नहीं विदेशों तक में सद्ज्ञान का प्रकाश पहुँचाया।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दत्तात्रेय के चौबीस गुरु

परम तेजस्वी अवधूत दत्तात्रेय का दर्शन पाकर राजा यदु ने अपने को धन्य माना और विनयावनत होकर पूछा-" धृष्टता क्षमा करें तो एक जिज्ञासा उपस्थित करूँ ?" अवधूत ने कहा-"राजन् ! जो कहना हो नि:संकोच होकर कहो।"

यदु ने पूछा, "आपके शरीर,वाणी और भावनाओं से प्रचण्ड तेज टपक रहा हैं। इस सिद्धावस्था को पहुँचाने वाला ज्ञान आपको जिन सद्गुरु द्वारा मिला हो. उनका परिचय मुझे देने का अनुग्रह कीजिये।"

अवधूत ने कहा- "राजन्! सद्गुरु किसी व्यक्ति विशेष को नहीं मनुष्य के गुणग्राही दृष्टिकोण को कहते हैं। विचारशील लोग सामान्य वस्तुओं और घटनाओं से भी शिक्षा ग्रहण करते और अपने जीवन में धारण करते हैं। अतएव उनका विवेक बढ़ता जाता है। यह विवेक ही सिद्धियों का मूल कारण है। अविवेकी लोग तो ब्रह्मा के समान गुरु को पाकर भी कुछ भी लाभ उठा नहीं पाते। दूसरा कोई किसी का हित साधन नहीं करता उद्धार तो अपनी आत्मा के प्रयत्न से ही हो सकता है।

"सो हे नर नायक ! मेरे अनेक गुरु हैं। जिनसे भी मैंने ज्ञान और विवेक ग्रहण किया है उन सभी को गुरु मानता हूँ। पर उनमें २४ गुरु प्रधान हैं।"

राजा यदु ने जिज्ञासापूर्वक कहा-"उन २४ सद्गुरुओं का वर्णन करें तो मैं भी अपने भाग्य को बहुत सराहूँगा।"

दत्तात्रेय अवधूत बोले-"हे राजन्! पृथ्वी, वायु, गगन, जल, यम, अग्नि, चन्द्र, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंगा, मधुमक्खी, भौरा, हिरन, हाथी, पिंगला, वेश्या, कौआ, बालक, स्त्री, लुहार, सर्प, मकड़ी और भृंग यही मेरे चौबीस गुरु हैं।"

उत्सुकतापूर्वक अधिक जानने की इच्छा करने वाले राजा यदु का समाधान करने की दृष्टि से विज्ञानी अवधूत ने और भी कहा- हे पृथ्वी पति ! धूप, शीत, वर्षा को धैर्यपूर्वक सहन करने वाली लोगों द्वारा मलमूत्र त्यागने और पदाघात करने जैसी अभद्रता करने पर भी क्रोध न करने वाली अपनी कक्षा और मर्यादा पर निरन्तर नियत गति से घूमने वाली पृथ्वी को मैंने गुरु माना है और उसके इन सद्गुणों को सीखा है।

अचल होकर न बैठना,निरन्तर गतिशील रहना, संतप्तों को सान्त्वना देना,गन्ध को वहन तो करना पर स्वयं निर्लिप्त रहना यह विशेषता मैने पवन में पाई और उन्हें सीखकर उसे गुरु माना।

अनन्त और विशाल होते हुये भी अनेक ब्रह्माण्डों को अपनी गोदी में भरे रहने वाले ऐश्वर्यवान् रहते हुये भी रंच भर अभिमान न करने वाले आकाश का यह गुण मुझे बहुत प्रिय लगा। वही बात स्वयं भी आचरण में लाने का प्रयत्न आरम्भ करते हुये मैंने उसे अपना गुरु वरण किया।

सब को शुद्ध बनाना, सदा सरल और तरल रहना, आतप को शीतलता में परिणित करना, वृक्ष, वनस्पतियों तक को जीवनदान करना समुद्र का पुत्र होते हुये भी घर-घर आत्मदान के लिये जा पहुँचाना- इतनी अनुकरणीय महानताएं जल में देखीं तो उसे अपना गुरु मानना ही उचित समझा।

अभिवृद्धि पर नियंत्रण करके सन्तुलन स्थिर रखना; अनुपयोगी को हटा देना,मोह के बन्धनों से छुड़ाना और थके हुओं को अपनी गोद में विराम देने के आश्यक कार्य में संलग्न यम को देखा तो उन्हें भी गुरु बना लिया।

निरन्तर प्रकाशवान् रहने वाली ऊष्मा को आजीवन बनाये रखने वाली दबाव पड़ने पर भी अपनी लपटें ऊर्ध्वमुख ही रखने वाली बहुत प्राप्त करके भी संग्रह से दूर रहने वाली स्पर्श करने वाले को अपना ही रूप बना लेने वाली,समीप रहने वालों को भी प्रभावित करते रहने वाली अग्नि मुझे आदर्श लगी अतएव उसे गुरु वरण कर लिया।

अपने पास प्रकाश न होने पर सूर्य से याचना कर पृथ्वी को चाँदनी का दान देते रहने वाला परमार्थी चन्द्रमा मुझे सराहनीय लोक सेवक लगा। विपति में सारी कलाएँ क्षीण हो जाने पर भी निराश होकर न बैठना और फिर आगे बढ़ने के साहस को बार-बार करते रहना धैर्यवान् चन्द्रमा का श्रेष्ठ गुण कितना उपयोगी है यह देखकर मैंने उसे गुरु बनाया।

नियत समय पर अपना नियत कार्य अविचल भाव से निरन्तर करते रहना,स्वयं प्रकाशित होना और दूसरों को प्रकाशित करना सूर्य का यह सद्गुण इसी योग्य था कि उन्हें गुरु माना जाय।

पेड़ के नीचे विछे हुए जाल में पड़े दाने देखकर लालची कबूतर आलस्य वश अन्यत्र न गया और उतावली में बिना कुछ सोचे विचारे ललचा गया और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाल में फंसकर अपने प्राण गँवा बैठा। यह देखकर मुझे ज्ञान उपजा कि लोभ से अविवेक से पतन होता है। जिससे यह मूल्यवान शिक्षा मिली वह कबूतर भी मेरा गुरू ही तो है।

शीत ऋतु में अंग जकड़ जाने और वर्षा के कारण मार्ग अवरुद्ध रहने के कारण भूखा अजगर मिट्टी खाकर काम चला रहा था और धैर्य-पूर्वक दुर्दिन को सहन कर रहा था। उसकी इस सहनशीलता ने मुझे अपना अनुयायी और शिष्य बना लिया ।

नदियों द्वारा निरन्तर असीम जल की प्राप्ति होते रहने पर भी अपनी मर्यादा से आगे न बढ़ने वाला रत्नराशि के भाण्डागारों का अधिपति होने पर भी न इतराने वाला स्वयं खारी होने पर भी बादलों को मधुर जल दान करते रहने वाला समुद्र मेरे लिए इतना शिक्षण कर रहा था तो उसे गुरु कैसे न मानता ?

लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्राणों की परवाह न करके अग्रसर होने वाला पतंगा जब दीपक की लौ पर जलने लगा तो आदर्श के प्रति उसकी अविचल निष्ठा ने मुझे बहुत प्रभावित किया। जलते पतंगों को जब मैंने गुरु माना तो उसकी आत्मा ने कहा-नश्वर जीवन को महत्व न देते हुए सच्चे आस्थावान को आदर्श के लिये त्याग करने को उद्यत रहना चाहिए।

पुष्पों का मधुरस सञ्चय करके दूसरों के लिए समर्पण करने की जीवन साधना में लगी हुई मक्खी संसार को सिखा रही थी कि मनुष्य स्वार्थी नहीं परमार्थी बने। मैंने उसका सन्देश सुना और शिष्य भाव से ग्रहण कर लिया । इन उपदेशदात्री देवियों को गुरु ही तो मुझे मानना चाहिए था।

राग में आसक्त भौंरा अपना जीवन-मरण न सोचकर कमल पुष्प पर ही बैठा रहा रात को हाथी ने वह फूल खाया तो भौंरा भी मृत्यु को प्राप्त हुआ। राग में आसक्त प्राणी किस प्रकार अपने प्राण गँवाता है। यह शिक्षा अपने गुरु भौंरा से मैंने सीखी और गाँठ बाँधली।

कामातुर हाथी मायावी हथनियों द्वारा प्रपंच में फंसाकर बन्धन में बाँध दिया गया और फिर आजीवन त्रास भोगता रहा यह देखकर मैंने वासना के दुष्परिणामों को समझा और उस विवेकी प्राणी को भी अपना गुरु माना।

कानों के विषय में आसक्त मृग को बधिकों के द्वारा पकड़े जाते और जिह्वा की लोलुप मछली को मछुए के जाल में तड़पते देखा तो सोचा कि इन्द्रियलिप्सा के क्षणिक आकर्षण में जीव का कितना बड़ा अहित होता है इससे बचे रहना ही बुद्धिमानी है। इस प्रकार ये प्राणी भी मेरे गुरु ही ठहरे ।

पिंगला वेश्या जब तक युवा रही तब तक उसके अनेक ग्राहक रहे। वृद्ध होते ही वे सब साथ छोड़ गये। रोग और दारिद्र ने उसे घेर लिया। लोक में निन्दा और परलोक में दुर्गति देखकर मैंने सोचा कि समय चूक जाने पर पछताना ही शेष रह जाता है सो समय रहते वे सत्कर्म करने चाहिए जिससे पीछे पश्चाताप न करना पड़े। यह दुखियारी पिंगला, जिसने अपना और दूसरों का जीवन पतित बनाया, सद्गृहस्थ का आनन्द और पतिव्रत धर्म द्वारा परलोक साधन का व्यवहार गँवा कर बहुत पछता रही थी। उस पश्चाताप से दूसरों को सावधानी का सन्देश देने वाली पिंगला भी मेरे गुरु पद पर प्रतिष्ठित हुई।

काक पक्षी किसी पर विश्वास न करके और धूर्तता की नीति अपना कर घाटे में ही रहा। उसे सब का तिरस्कार मिला और अभक्ष खाकर सन्तोष करना पड़ा। यह देख कर मैंने जाना कि धूर्तता और स्वार्थपरता की नीति अनन्त: हानिकारक ही होती है। यह सिखाने वाला कौआ भी मेरा गुरु ही है।

राग द्वेष, चिन्ता, काम, लोभ, क्रोध आदि दुर्गुण से रहित जीव कितना कोमल, सौम्य और सुन्दर लगता है कितना सुखी और शान्त रहता है उसका प्रत्यक्ष दर्शन मुझे अबोध बालक में हुआ और वैसा ही बनने के लिए बच्चे को अपना आदर्श माना तथा उसे भी गुरु कहा।

एक स्त्री चूड़ियाँ पहने धान कूट रही थी। चूड़ियाँ आपस में खड़कती थीं। स्त्री चाहती थी कि उसके घर आए मेहमानों को इसका पता न चले। इसलिए उसने हाथों की और चूड़ियाँ उतार दीं। एक-एक ही रहने दी तो उनका खड़कना भी बन्द हो गया। इस दृश्य को देख कर मैंने सोचा अनेक कामनाओं के रहते मन में संघर्ष उठते रहते हैं। पर यदि एक ही लक्ष्य नियत कर लिया जाय तो सभी उद्वेग शान्त हो जायें । जिस स्त्री से यह प्रेरणा मिली उसे भी मैं गुरु ही मानता हूँ।

लुहार अपनी भट्टी में लोहे के टूटे-फूटे टुकड़े गरम करके हथौड़े की चोट से कई तरह के औजार,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपकरण बना रहा था। उसे देख कर समझ में आया कि निरुपयोगी और कठोर प्रतीत होने वाले मनुष्य भी यदि अपने को तपाने और चोट सहने की तैयारी कर लें तो उपयोगी उपकरण बन सकते हैं। लुहार की क्रिया को देखा और उससे जो निष्कर्ष निकला वह गुरू-दीक्षा जैसी प्रेरणा ही थी।

सर्प दूसरों को त्रास देता है और प्रत्युत्तर में सब ओर से त्रास पाता है। यह शिक्षा देने वाला वह दुर्बुद्धिग्रस्त प्राणी यही बताना है कि उद्दण्ड, क्रोधी, आक्रमक और आततायी होना किसी के लिये भी श्रेयस्कर नहीं हो सकता । यह शिक्षा शिरोधार्य करके सर्प को भी मैंने अपना पथ-प्रदशर्क ही गिन लिया।

मकड़ी अपने पेट में से रस निकाल कर उससे जाला बुन रही थीं और जब चाहती थी उसे मुँह में समेट कर फिर पेट में निगल लेती थी। मुझे सूझा कि अपनी दुनियाँ हर मनुष्य अपनी भावना के अनुरूप ही गढ़ता है और यदि चाहे तो पुराने को समेट कर पेट में रख लेना और नया वातावरण बना लेना भी उसके लिए सम्भव और सरल हो सकता है। मकड़ी अपनी क्रिया द्वारा मनुष्यों का महत्वपूर्ण पथ-प्रदर्शन करती है, यह देखा तो गुरु भाव से मैंने उसे भी प्रणाम किया।

भृंग कीड़ा एक झींगुर को पकड़ कर लाया और अपनी भुनभुनाहट से प्रभावित कर उसे अपने समान बना लिया। यह दृश्य देख कर मैंने सोचा एकाग्रता और तन्मयता की अर्चना द्वारा मनुष्य अपना शारीरिक और मानसिक काया-कल्प कर डालने में भी सफल हो सकता है। इस प्रकार भृंग भी मेरा गुरु ही ठहरा।

चौबीस गुरुओं का वृतान्त सुना कर अवधूत दत्तात्रय ने राजा यदु से कहा-गुरु बनाने का उद्देश्य जीवन का प्रगति पथ पर अग्रसर करने वाला प्रकाश प्राप्त करना ही तो है वह कार्य अपनी गुणग्राहक विवेक बुद्धि के बिना सम्भव नहीं हो सकता। इसलिए सर्व प्रथम गुरु है विवेक और उसके पश्चात् अन्य सब ज्ञान प्राप्ति का आधार बनते हैं।

चौबीस गुरुओं का वर्णन महा तेजस्वी अवधूत के मुख से सुन कर राजा को बड़ा ही सन्तोष हुआ और उसने अपने को कृतकृत्य माना।

कच का संजीवन विद्या प्राप्त करना

देवता युद्ध में जिन असुरों को मारते उन्हें ही शुक्राचार्य अपनी संजीवनी विद्या से जिन्दा कर लेते। इससे देवताओं की संख्या दिनों-दिन कम होने लगी। बहुत सोच विचार के बाद शुक्राचार्य से संजीवन विद्या सीखने की बात तय हुई, लेकिन असुरों के बीच रह कर सीखने की हिम्मत कौन करे। अन्ततः कच ने यह साहस किया और वह शुक्राचार्यजी के पास जा कर विद्या ग्रहण करने लगा। वहाँ उसे असुर सहपाठियों के घोर विरोध का सामना करना पड़ा कई बार उसे बड़े कष्ट देकर मार डाला गया लेकिन शुक्राचार्य ने संजीवनी विद्या से उसे जीवित कर लिया। सब तरह के कष्ट सह कर भी कच ने हिम्मत नहीं हारी और उसने अपनी शिक्षा पूर्ण की।

कैयट की ज्ञान साधना

व्याकरण महाभाष्य पर टीका लिखने वाले कैयट एक असाधारण व्यक्ति थे। ईश्वर आराधना, स्वाध्याय, चिन्तन में अधिकांश समय लगने के कारण घरेलू खर्च में बड़ी कठिनाई आती थी। उनकी पत्नी मूँज की रस्सियाँ बनाया करती थी इससे जो आमदनी होती थी उसी से उनका गुजारा चलता था। यह खबर राजा के पास पहुँची तो वे स्वयं जा कर बोले "भगवन ! हमारी सेवा स्वीकार कीजिये प्रजा कष्ट उठाती है तो उसका अपराध राजा को लगता है।" कैयट ने कहा "राजन् ! आत्म निर्भरता ही मनुष्य की श्रेष्ठ सम्पति है। मैं तो कहूँगा तुम और महारानीजी भी अपनी ही कमाई खा कर प्रजा के प्रतिनिधि के रूपमें काम किया करो।" इस उत्तर से राजा बड़ा प्रभावित हुआ और अपने श्रम की कमाई से जीवनयापन करने लगा।

ज्ञानी का सम्मान

राजा जनक जन-पथ से गुजर रहे थे। उनके सैनिक मार्ग में चल रहे लोगों को एक ओर हटाते जा रहे थे। कुछ दूर मार्ग पर उन्हें टेढ़े-मेढ़ें शरीर का एक व्यक्ति मिला। उससे भी मार्ग में से हटने को कहा गया। लेकिन वह बोला "यह जन मार्ग है यहाँ सभी को चलने का अधिकार है। यदि राजा इतने लम्बे-चौड़े मार्ग से नहीं गुजर सकता तो किसी अन्य रास्ते हो कर चला जाय।" सैनिकों ने इस दृढ़ता भरे शब्दों को सुन कर राजा से शिकायत की। महाराज जनक ने सोचा कि जिसमें स्वाभिमान और मानवीय गरिमा का इतना तेज है वह अवश्य कोई महान् व्यक्ति होगा और राजा नम्रतापूर्व उनके पास गया। अपनी सूक्ष्म बुद्धि से राजा ने उक्त व्यक्ति की गरिमा को समझ लिया और उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सादर अपना राज गुरु बनाया, जिन्हें लोग अष्टावक्र के नाम से जानते हैं ।

विद्या-प्रेमी राजा भोज

राजा भोज का विद्या प्रेम प्रसिद्ध है वे स्वयं ही विद्वान न थे वरन् विद्वानों की मद्द करने, उनको सम्मान और प्रतिष्ठा देने के लिए सदैव प्रयत्न करते रहे। उनके दरबार में नवरत्नों की सभा थी जो अपने-अपने विषय में चोटी के विद्वान थे। विद्वानों को प्रोत्साहित करने के लिए भोज ने पुरुस्कार रखा था और हर वर्ष इस तरह का कार्यक्रम चलता था। नई रचना पर सर्वोच्च विद्वान को एक बड़ा पुरुस्कार दिया जाता था। राजा भोज ने अपने राज्य में जगह-जगह पाठशालायें भी स्थापित की थीं।

तपोधन को इन्द्र का उपदेश

एक ब्राह्मण बालक तपोधन यौवनावस्था में ही घर-बार छोड़ कर जंगल में तप करने के लिए चले गये। उन्होंने वहाँ बहुत से कष्ट सहे लेकिन अपनी तप-साधना से विलग नहीं हुए। एक दिन वे नदी किनारे साधना में लीन थे। इन्द्र एक ब्राह्मण का भेष धारण करके वहाँ आये और नदी में रेत के ढेले फैंकने लगे। तपोधन ने पूछा-"वृद्ध ब्राह्मण ! आप यह क्या कर रहे हैं ?" इन्द्र ने जबाब दिया "नदी में पुल बाँध रहा हूँ।" तपोधन हँसे और बोले केवल मिट्टी डालने से ही कैसे पुल बँधेगा ? इसके लिए पत्थर, चूना, लकड़ियाँ भी तो चाहिए। तब इन्द्र ने प्रकट हो कर कहा "तपोधन! ज्ञान के बिना केवल तप से आत्म विकास करने की बात सोचना नदी में रेत के ढेलों से पुल बाँधना है।" और वे अदृश्य हो गये। तपोधन को अपनी भूल मालूम हुई और वे ज्ञान प्राप्ति में लग गये। जीवन क्षेत्र में ज्ञान के बिना मनुष्य के प्रयास प्राय: निष्फल हो जाते हैं।

सद्ग्रन्थों की रक्षा

दो हजार वर्ष पूर्व चीन का एक विद्वान 'हुए-न साँग' भारतीय दर्शन शास्त्र पढ़ने नालंदा विश्वविद्यालय में आया। कितने ही वर्ष पढ़ने के बाद चीन लौटने को तैयार हुआ। उसने यहाँ के कितने ही धर्म ग्रंथ भी साथ लिये। उसे सिन्धु नदी के मुहाने तक पहुँचाने के लिए कुछ छात्र साथ गये। रास्ते में तूफान आया और नावे में पानी भरने लगा। अब क्या किया जाय ? धर्म ग्रंथों को और चीनी यात्री को सकुशल पार करने का एक ही उपाय था कि कुछ छात्र पानी में कूदें। नाव हलकी हो तब वह पार लगे। भारतीय विद्यार्थी खुशी-खुशी नदी में कूद पड़े। उनने अपनी जान दे दी और अतिथि आगन्तुक की तथा ग्रंथों की रक्षा करके अपनी महानता का परिचय दिया।

ज्ञानियों के साथ नरक भी स्वर्ग बन जाता है

नारद जी ने एक दिन अम्बरीष से पूछा कि तुम पाँच मूर्ख आदमियों के साथ स्वर्ग जाना पसन्द करते हो या पाँच बुद्धिमान आदमियों के साथ नरक जाना? अम्बरीष ने उत्तर दिया भगवन् ! बुद्धिमान आदमियों के साथ नरक में रहना भी स्वर्ग में रहने के समान होगा। मूर्ख लोग तो स्वर्ग को भी नरक बना कर रख देंगे।

विदुषी महिलाऐं

मण्डन मिश्र शंकराचार्य जैसे उद्भट विद्वान से शास्त्रार्थ में हार गये । इस पर मिश्र जी की स्त्री भारती ने शंकराचार्य से शास्त्रार्थ करने का प्रस्ताव किया। दोनों में लम्बे समय तक शास्त्रार्थ चलता रहा। भारती की विद्वता का लोहा शंकराचार्य को भी मानना पड़ा। प्राचीन काल में भारत की प्रत्येक नारी उच्चकोटि की विदुषी होती थीं। कोई घर ऐसा न था जिसमें महिलाएं पुरुषों के समान ही ज्ञानवान एवं विद्वान ने रही हों।

संस्कृत के विद्वानों में लीलावती नामक एक स्त्री का भी बहुत बड़ा स्थान है। गणितशास्त्र की वह प्रकाण्ड विद्वान थी । लीलावती गणित नामक उनकी पुस्तक प्रसिद्ध है।

वेदों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है। कि वेदों के मन्त्रदृष्टा जिस प्रकार अनेक ऋषि हैं, वैसे ही अनेक ऋषिकाऐं भी हैं। ईश्वरीय ज्ञान वेद महान आत्मा वाले व्यक्तियों पर प्रकट हुआ है और उनने वेद मन्त्रों को प्रकट किया। इस प्रकार जिन पर वेद प्रकट हुए उन मन्त्रदृष्टओं को ऋषि कहते हैं। ऋषि केवल पुरुष ही नहीं हुए हैं, वरन, अनेक नारियाँ भी हुई हैं। ईश्वर ने नारियों के अन्तकरण में उसी प्रकार वेद ज्ञान प्रकाशित किया जैसे कि पुरुषों के अन्त: करण में है।

ऋग्वेद १०-८५ के सम्पूर्ण मन्त्रों की ऋषिका सूर्या "सावित्री" है। ऋषि का अर्थ निरुक्ति मे इस प्रकार किया है 'ऋषिर्दर्शनात् स्तोमान् ददर्शेति।' ऋषियों मन्त्र दृष्टार:। अर्थात् मन्त्रों का दृष्टा और उनके रहस्यों को समझ कर प्रचार करने वाला ऋषि होता है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऋग्वेद की ऋषिकाओं की सूची ब्रह्म देवता के २४ अध्याय में इस प्रकार है :

घोषा गाधा विश्ववारा, अपालोपनिषन्मित् ।
ब्रह्मा जाया जहुर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादिति ।।
इन्द्राणी चेन्द्र माता च सरमा रोमशोर्वशी ।
लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शाश्वती ।।
श्रीर्लक्ष्मी: सार्पराज्ञी वाकश्रद्धा मेधाचदक्षिणा ।
रात्रि सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिता ।।

अर्थात्, घोषा, गोधा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषत् जुहू अदिति, इन्द्राणी, सरमा, रोमशा, उर्वशी लोपा . मुद्रा, यमी शाश्वती , सूर्या सावित्री आदि ब्रह्मवादिनी हैं।

ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह यज्ञ करती और कराती थीं। वे यज्ञ विद्या और ब्रह्मविद्या में पारंगत थीं। कई नारियाँ तो इस सम्बन्ध में अपने पिता तथा पति का मार्ग. दर्शन करतीं थी।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में सोम द्वारा 'सीता सावित्री' ऋषिका को तीन वेद देने का वर्णन विस्तार पूर्वक आता है।

तं त्रयो वेदा अन्य सृज्तन्य अथह सीतां सावित्री
सोम राजान चक्र मे तस्या उहत्रीन वेदान प्रददौ।

तैत्तिरीय ० २।३।१०

इस मन्त्र में बताया गया है कि इस प्रकार सोम ने सीता सावित्री को तीन वेद दिये।

शतपथ ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य ऋषि की धर्मपत्नी मैत्रेयी को ब्रह्मवादिनी कहा है –

तयार्ह मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी। ब्रह्मवादिनी का अर्थ वृहदारण्यक उपनिषद का भाष्य करते हुए श्री शंकराचार्य जी ने 'ब्रह्मवादन शीला' किया है। ब्रह्म का अर्थ है- वेद। ब्रह्म वादन शीला अर्थात् वेद का प्रवचन करने वाली।

जिस प्रकार पुरुष ब्रह्मचारी रहकर तप स्वाध्याय, योग, द्वारा ब्रह्म को प्राप्त करते थे। वैसे ही कितनी ही स्त्रियॉं ब्रह्मचारिणी रहकर आत्म निर्माण एवं परमार्थ का सम्पादन करती थीं।

पूर्वकाल में अनेक सुप्रसिद्ध ब्रह्मचारिणी हुई हैं जिनकी प्रतिभा और विद्वत्ता की चारों ओर कीर्ति फैली हुई थी। महाभारत में ऐसी अनेक ब्रह्मचारिणियों का वर्णन आता है।

भरद्वाजस्यं दुहिता रूपेण प्रतिमा भुवि ।
श्रुतावती नाम विभो कुमारी ब्रह्मचारणी ।।

महाभारत शल्य पर्व ४८।२

भरद्वाज की श्रुतावती नामक कन्या थी, जो ब्रह्मचारिणी थी। कुमारी के साथ साथ ब्रह्मचारिणी शब्द लगाने का तात्पर्य यह है कि वह अविवाहित और वेदाध्ययन करने वाली थी।

अत्रैव ब्राह्मणी सिद्धा, कौमार ब्रह्मचारिणी ।
योग युक्तादिवं माता, तप: सिद्धा तपस्विनी।।

महाभारत शल्य पर्व ५४।६

योग सिद्धि को प्राप्त कुमार अवस्था से ही वेदाध्ययन करने वाली तपस्विनी सिद्धा नाम की ब्राह्मणी मुक्ति को प्राप्त हुई।

वभूव श्रीमती राजन् शाण्डिल्य महात्मन ।
सुता धृता व्रता साध्वी नियता ब्रह्मचारिणी ।।
साधु तप्त्वा तपो घोरे दुश्चरं स्त्री जनेन ह ।
गता स्वर्ग महाभागा देव ब्राह्मणो पूजिता ।।

महाभारत शल्य पर्व ५४।९

महात्मा शाण्डिल्य की पुत्री 'श्रीमती' थी, जिसने व्रतों को धारण किया । वह वेदाध्यन में निरन्तर प्रवृत थी। अत्यन्त कठिन तप करके वह देवि ब्राह्मणों से पूजित हुई और स्वर्ग सिधारी।

अत्र सिद्धा शिवा नाम ब्राह्मणी वेद पारगा ।
अधीत्य सकलान् वेदान लभेऽसन्देह मक्षयम् ।।

महाभारत उघोग पर्व १०९।१८

शिवा नामक ब्राह्मणी वेदों में पारंगत थी, उसने सब वेदों को पढ़कर मोक्ष पद प्राप्त किया।

महाभारत शान्ति पर्व अध्याय ३२० में सुलभा नामक ब्रह्मवादिनी संन्यासिनी का वर्णन है, जिनने राजा जनक के साथ शास्त्रार्थ किया था। इसी अध्याय के श्लोक ८२ में सुलभा ने अपना परिचय देते हुए कहा है-

प्रधानो नाम राजर्षि व्यक्तं ते श्रोत मागत: ।
कुले तस्य समुत्पन्ना सुलभां नाम विद्धिमाम् ।।
साहं तस्मिन् कुले जाता भर्तर्यसति माद्वधे ।
विनोता मोक्ष धर्मेषु चराम्येका मुनिव्रतम् ।।

महाभारत शान्ति पर्व ३२०/८२

मैं सुप्रसिद्ध क्षत्रिय कुल में उत्पन्न सुलभा हूँ। अपने अनुरूप पति न मिलने से मैंने गुरुओं से शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त करके सन्यास ग्रहण किया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाण्डव पत्नी द्रोपदी की विद्वता का वर्णन करते हुए श्री आचार्य आनन्दतीर्थ (माध्वाचार्य) जी ने महाभारत निर्णय में लिखा है :-

वेदाश्चप्युत्तम स्त्रीभि : कृष्णाद्याभिरिहा खिलाः ।

अर्थात् उत्तम स्त्रियों को कृष्णा (द्रोपती) की तरह वेद पढने चाहिए।

तेभ्योदक्षर कन्ये द्वे , वपुना धारिणीं स्वधा ।
उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ , ज्ञानविज्ञान पारगे ।।

भागवत ४ । १ । ६४

"स्वधा को दो पुत्रियां हुई , जिनके नाम वपुना और धारिणी थे। वे दोनों ही ज्ञान और विज्ञान में पूर्ण पारंगत तथा ब्रह्मवादिनी थीं।"

विष्णु पुराण १ ।१० और १८ ।१९ में, मार्कण्डेय पुराण अ० ५२ में इसी प्रकार ब्रह्मवादिनी (वेद और ब्रह्म का उपदेश करने वाली) महिलाओं का वर्णन है।

सततं मूर्ति मन्तश्च वेदाश्चत्वार एव च ।
सन्ति यस्यश्य जिह्वाग्रे साच वेदवतीस्मृता ।।

ब्रह्म वैवर्तपुराण प्रकृति खण्ड १४ ।६५

"उसे चारों वेद कण्ठाग्र थे, इसलिए उसे वेदवती कहा जाता था।"

इस प्रकार की नैष्ठिक ब्रह्मचारिणी ब्रह्मवादिनी नारियाँ अगणित थीं। इनके अतिरिक्त गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाली कन्याएँ दीर्घकाल तक ब्रह्मचारिणी रहकर वेदशास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त विवाह करती थीं, तभी उनकी सन्तान संसार में उज्ज्वल नक्षत्रों की तरह यशस्वी पुरुषार्थी और कीर्तिमान होती थीं।

जब विद्याध्ययन करने के लिए कन्याओं को पुरुषों की ही भाँति सुविधा थी, तभी इस देश की नारियाँ गार्गी और मैत्रेयी की तरह विदुषी होती थीं। याज्ञवल्क्य जैसे ऋषि को एक नारी ने शास्त्रार्थ में विचलित कर दिया था और उनने हैरान होकर उसे धमकी देते हुए कहा था- 'अधिक प्रश्न मत करो अन्यथा तुम्हारा अकल्याण होगा।'

इसी प्रकार शंकराचार्य जी को भारतीदेवी के साथ शास्त्रार्थ करना पडा था। उस भारत देवी नामक महिला ने शंकराचार्य जी से ऐसा अद्भुत शास्त्रार्थ किया था कि बड़े-बड़े विद्वान भी अचम्भित रह गये थे। उसके प्रश्नों का उत्तर देने के लिए शंकराचार्य जी को निरुत्तर होकर एक मास की मोहलत माँगनी पड़ी थी। शंकर दिग्विजय में भारती देवी के सम्बन्ध में लिखा है:-

सर्वाणि शास्त्राणि षडगं वेदान् ।
काव्यादि कान् वेति परंच सर्वम् ।।
तन्नास्ति नोवेत्ति यदत्र वाला ।
तस्मादभूच्चित्र पदं जनानाम ।।

शंकरदिग्विजय ३ ।१६

"भारतीदेवी सर्वशास्त्र तथा अंगों सहित सब वेदों और काव्यों को जानती थी। उससे बढकर श्रेष्ठ और विद्वान स्त्री और न थी।"

सरोजिनी नायडू भारत की उन स्त्री रत्नों में से थीं जो न केवल देश भक्त ही थीं अपितु विद्वान कवि और प्रतिभाशाली वक्ता भी थीं। उन्होंने अंग्रेजी के माध्यम से प्रेरणाप्रद राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत साहित्य का सृजन किया।

मदालसा बालकाल्य में ही अपने बच्चों को पालने में झुलाती हुई, उन्हें दूध पिलाते हुये, सुलाते हुऐ सदैव प्रेरणाप्रद ज्ञानमन्त्र दिया करती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि उसके सभी पुत्र परम भागवत ज्ञानी हुए और जीवनमुक्त सिद्ध हुए।

ज्ञान साधन का लक्ष्य और प्रयोजन

गुरु द्रोणाचार्य ने उस दिन शिष्यों को 'सत्यंवद' पाठ पढ़ाया। दूसरे दिन परीक्षा हुई तो सभी ने पाठ सुना दिया। पर युधिष्ठिर ने कहा "गुरुदेव मुझे यह पाठ अभी तक याद नहीं हुआ।" आचार्य बड़े अप्रसन्न हुये तो शिष्य ने उत्तर दिया- देव, जो पाठ व्यवहार में न आये उसे याद हुआ कैसे मान लूँ। शिष्य के उत्तर से गुरुदेव का हृदय खिल उठा।

आत्म बल ही सर्वोत्तम बल

विश्वामित्र उस समय राजा थे। वे एक दूसरे देश के ऊपर चढ़ाई करने जा रहे थे। मार्ग में उन्हें प्यास लगी तो जल के लिए अनुचरों को भेजा। पास ही महर्षि वशिष्ठ का आश्रम था। उन्हें जब मालूम हुआ कि प्रजापति विश्वामित्र उधर आ रहे हैं तो उन्होंने सेना सहित उनका सत्कार करने का सन्देश भिजवा दिया। एक वनवासी ऋषि इतने लोगों का सत्कार किस तरह करेगा इस पर सभी को आश्चर्य था। लेकिन महर्षि वशिष्ठ ने नन्दिनी विद्या के बल पर सभी का राजोचित सम्मान किया । विश्वामित्र के मन में इस विद्या को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई और उन्होंने महर्षि वशिष्ठ के समक्ष अपना अभिप्राय प्रकट किया । महर्षि ने कहा "राजन् यह विद्या उपयुक्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पात्र को ही सिखाई जाती है।" विश्वामित्र यह उत्तर सुनकर क्रुद्ध हुए और उन्होंने वशिष्ठ पर बल प्रयोग किया किन्तु उन्हें पराजित न कर सके। अपनी हार मानते हुए विश्वामित्र ने कहा क्षत्रिय बल को धिक्कार है, ब्रह्मबल आत्मबल एवं ज्ञानबल ही सर्वश्रेष्ठ बल है और राजपाट छोड़कर वे तपस्या द्वारा आत्मज्ञान की साधना करने लगे।

शोक का समाधान

गौतमी का इकलौता पुत्र मर गया। शोक से विह्वल होकर वह लाश को लिये हुए भगवान बुद्ध के पास पहुँची। उसे आशा थी कि तथागत बालक को पुन: जीवित कर देंगे।

बुद्ध ने गौतमी को सान्त्वना देते हुए कहा- किसी ऐसे घर से थोड़ा जल माँग लाओ जिसके घर में कभी कोई मृत्यु न हुई हो। उस जल को अभिमंत्रित करके तुम्हारे पुत्र का अभिसिंचन करूँगा और वह पुन: जीवित हो उठेगा।

गौतमी ,जल प्राप्त करने के लिए द्वार-द्वार पर घूमने लगी पर कोई घर ऐसा न मिला जहाँ किसी की मृत्यु न हुई हो। निराश वह वापिस लौट आई।
तथागत ने कहा- भद्रे तुमने देखा, इस संसार में कोई घर ऐसा नहीं जिसमें मृत्यु न हुई हो। इसी प्रकार कोई व्यक्ति ऐसा नहीं जिसे मरना न पड़े। आज या कल सभी अपने अपने समय पर मरते हैं फिर उस विच्छित्र प्रकृति फन्दे में फँसे हुए हम लोगों को क्यों किसी के लिए शोक करना चाहिए ?

गौतमी का बोध जग पड़ा। वह मृत पुत्र का संस्कार करके घर लौट गई। शोक को उसने विवेक द्वारा शान्त कर दिया।

सात को रोऊँ या एक को

एक किसान के एक ही बेटा था। एक दिन अचानक उसके बेटे की मृत्यु हो गई। सारा घर शोक में डूब गया। पर किसान न रोया न दुखी हुआ। पत्नी बोली आपका हृदय कितना पत्थर का है कि आप रोये तक नहीं ! किसान बोला आज रात मैंने एक सपना देखा। जिसमें मैं राजा बन गया था, मेरे सात राजकुमार थे। पर स्वप्न टूट गया तो कहीं कुछ भी न था। अब बताओ उन सातों के लिये रोऊँ या इस एक के लिए। यह संसार ऐसा ही है अत:मृत्यु के लिए ज्ञानीजन शोक नहीं करते।

अन्त: शुद्धि सर्वप्रथम

सेठ की प्रार्थना भगवान बुद्ध ने स्वीकार करली। नियत समय पर वे सेठ के घर पर पहुँच गये। सेठ ने स्वर्ण पात्रों में सजी भिक्षा आगे बढाई पर भगवान ने अपनी कच्ची मिट्टी का मैला कुचैला गोबर में सना भिक्षा पात्र आगे बढाकर कहा इसमें डाल दें। सेठ ने कहा भगवान यह तो मैला कुचैला है इसे धो डालने की आज्ञा दीजिए। स्वीकृति मिल गई। भिक्षा ग्रहण कर तथागत लौटने लगे तो सेठ ने नत मस्तक होकर पूछा भगवन्, आत्म कल्याण की दीक्षा दीजिये। भगवन् तथागत बोले- मिट्टी की मैली हँडिया में जिस तरह भिक्षा उचित न थी उसी तरह पहले आत्मकल्याण का प्रधान साधन अन्त: शुद्धि करनी चाहिऐ।

ज्ञानी की पहिचान

दीक्षा देने को तो कई पंडित तैयार थे किन्तु उस व्यक्ति को यह पता नहीं चला पाता था कि वह व्यक्ति ज्ञानी है या नहीं। उसकी पत्नी ने समस्या हल कर दी। जिसे वह व्यक्ति चुनता उसे घर आने का निमंत्रण दे आता। स्त्री ने एक पिंजडे में कौवा बन्द कर रखा था जो भी आता उसे कहती महाराज ! यह कबूतर कितना अच्छा है । कौवे को कबूतर कहने पर सभी नाराज होते और स्त्री को मूर्ख कहते हुये चले जाते। एक दिन एक महात्मा आये। वे स्त्री की बात पर नाराज नहीं हुए वरन स्नेह से बोले, बेटी कौवे के यह गुण होते हैं अब तुम्ही सोचो यह कौवा है या कबूतर। स्त्री ने पति को बताया इन्हे ही अपना गुरु बना लो। ज्ञानी वही कहला सकता है जो क्रोधी न हो।

सत्संग का प्रतिफल

वशिष्ठजी पहली बार आश्रम में आये थे। विश्वामित्र ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया। विदाई के समय विपुल धन सम्पति के साथ एक हजार वर्ष की तपस्या का फल भी समर्पित किया। कुछ दिन बाद विश्वामित्र वशिष्ठ के आश्रम में पधारे। वशिष्ठ ने भी उनका यथेष्ट सम्मान किया। चलते समय ऋषि ने धन सम्पति के साथ विश्वामित्र को एक दिन के सत्संग का फल दिया। इस प्रकार विश्वामित्र को बड़ा क्षोभ हुआ। वशिष्ठ उनकी शंका समझ गये। समाधान के लिए शेषजी के पास पहुँचे। शेष भगवान ने परीक्षा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

के तौर पर पृथ्वी का भार उठाने का कहा। विश्वामित्र ने एक हजार वर्ष की तपस्या का बल लगाया पर पृथ्वी हिली तक नहीं पर वशिष्ठ ने एक दिन के सत्संग के बल से सरलता से पृथ्वी का बोझ उठा लिया। विश्वामित्र की शंका मिट गई और उन्होंने सत्संग की महत्ता स्वीकार करली।

विद्या से विनय

श्वेतकेतु ने चारों वेदों का अध्ययन कर लिया तो उसे अपनी विद्या का अहंकार हो गया। अध्ययन समाप्त कर घर लौटा तो अहंकार वश अपने पिता को प्रणाम तक नहीं किया। महर्षि आरुणि ने पूछा ऋषिवर ऐसी कौन सी पुस्तक पढ़ ली जिससे इतना अहंकार होगया। विद्या का स्वरूप तो विनय है। वही नहीं सीख सका तो विद्या कैसी ? श्वेतकेतु ने अपनी भूल स्वीकार की और अपना अहंकार त्याग दिया।

विद्वान की निरहंकार

गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त के अविष्कर्ता सर आइजिक न्यूटन कहा करते थे कि लोग मुझे ज्ञानवान समझते हैं, पर जब मैं अपने उपलब्ध ज्ञान की और विश्व में फैली हुई महान ज्ञान गरिमा की तुलना करता हूँ तो लगता है कि समद्र के किनारे पर बैठ कर घोंघे और सीपी बीनने वाले बालक की तरह ही मेरा तुच्छ प्रयास है।

माँ नीति की ही शिक्षा दो

गाँधीजी को बचपन में उनके बडे भाई ने मारा। वे राते हुए मॉ के पास शिकायत करने गये। माँ ने प्यार से कहा- 'मैं क्या करूँ, तू भी उसे मार' इस पर गॉधीजी ने कहा- माँ बड़े भाई को नहीं मारूँगा। तू मारने वाले को रोकती नहीं, उलटा मुझे ही बड़े भाई को मारना सिखाती है। माँ लज्जित हो गई।'

सारी दुनिया ही स्कूल है

स्वामी रामतीर्थ जब छोटे थे, पडौस के गॉव के स्कूल में पढने जाया करते थे। वे रास्ते में भी पुस्तकें पढते जाते थे। एक दिन एक किसान ने कहा बेटा यहाँ खेतों में कोई स्कूल थोड़े ही है जो यहॉ भी पढते हो,रामतीर्थ ने उत्तर दिया- काकाजी मेरे लिए तो सारी दुनियाँ ही स्कूल है।

आचरण द्वारा शिक्षा

एक बार कस्तूरवा बीमार थी। उनकी बीमारी के निवारण के लिए गाँधीजी ने उन्हें नमक छोडने को कहा। कस्तूरवा इस बात पर झल्ला उठी, बोली कभी नमक छोडा जा सकता है, आप तो विचित्र विचित्र बातें कह देते हो।

इस पर महात्मा गाँधी ने नमक छोडने का व्रत ही ले लिया। कस्तूरवा को अपनी हार माननी पड़ी।

जो कहो सो करो भी

एक बालक मिठाई बहुत खाता था, उसकी यह आदत उसके स्वास्थ्य को बिगाड़ रही थी। बालक मानता था नहीं। निदान उसकी माता उसे रामकृष्ण परमहंस की शिक्षा का अधिक प्रभाव पड़ने की आशा से उनके पास ले गई और प्रार्थना की कि आप इसे उपदेश देकर मिठाई खाना छुडा दें। परमहंस ने उसे एक सप्ताह बाद आने को कहा। महिला चली गई। एक सप्ताह बाद आई तब उन्होंने बालक को उपदेश दिया और उसने मिठाई छोड़ भी दी।

महिला ने एक सप्ताह विलम्ब लगाने का कारण पूछा तो परमहंस ने कहा तब तो मैं भी मिठाई खाता था। जब बालक को उपदेश देना आवश्यक प्रतीत हुआ तो पहले मैंने स्वयं मिठाई छोडी तब बालक को कहा। जो करता है उसी की शिक्षा का प्रभाव भी पड़ता है।

गर्भ में शिक्षा

अर्जुन कहीं अन्यत्र युद्ध के लिए गये हुए थे। पीछे से कौरवों ने मन्त्रणा करके चक्रव्यूह की रचना की और पाण्डवों को युद्ध के लिए ललकारा। अर्जुन के सिवा पाण्डवों में अन्य कोई भी चक्रव्यूह का भेदन नहीं जानता था। सब को बड़ी चिन्ता हुई। श्रीकृष्ण और अर्जुन के निकट भविष्य में लौटने की कोई आशा ही न थी। सब को चिन्तित देख कर अभिमन्यू ने कहा आप सब चिन्ता न करें, कौरवों के चक्रव्यूह को मैं तोड़ूगॉ। "पूछने पर उसने बताया कि जब मैं माँ के गर्भ में था। तब एक बार पिताजी (अर्जुन) ने उन्हें चक्रव्यूह भेदन का विवरण सुनाया। मैं गर्भ में ही उसे समझता रहा और उसी ज्ञान के सहारे चक्रव्यूह का भेदन कर सकता हूँ।"

बच्चे का शिक्षा काल

एक महिला शिकागो के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री कॉसिस वेलैण्ड पार्कर से यह पूछने गई कि वह अपने बच्चों की शिक्षा कब से आरम्भ करे। पार्कर ने पूछा- आपका बच्चा कब जन्म लेगा। महिला ने कहा- वह

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो पाँच वर्ष का हो गया है। इस पर पार्कर ने कहा- मैडम अब पूछने से क्या फायदा ? शिक्षा का सर्वोत्तम समय तो पाँच वर्ष तक ही होता है जो आपने यों ही गवाँ दिया।

छोटों से भी सीखना

बालक रोटी का बीच का हिस्सा निकाल कर खाने लगा जिससे रोटी लुज्ज पुज्य हो गई। यह देखकर उसे डाँट कर माता बोली- 'तू भी चाणक्य जैसा ही मूर्ख है।' चाणक्य चन्द्रगुप्त के साथ गुप्तचर वेष में जा रहा था। गुरु की निन्दा सुनते ही चन्द्रगुप्त बिगडने लगा। पर चाणक्य ने समझाया- नहीं सेनापति जो निंदक की बात ध्यान से सुनते हैं उनका भला ही होता है। दोनों उस स्त्री के पास गये। चाणक्य ने पूछा- माताजी चाणक्य किस लिये मूर्ख है। स्त्री बोली- "भाई ! वह बीच के देशों को जीतने के प्रयास करता है जिससे दुश्मनों से घिर जाता है और जीते हुऐ राज्य फिर स्वतन्त्र हो जाते हैं। यदि सीमावर्ती राज्य पहले जीते तो उसकी किलेबन्दी मजबूत हो सकती है। मगध का निर्माण इसी सिद्धान्त पर हुआ। अपनी गल्ती को ठीक करके जब उक्त बुढ़िया के बताये अनुसार चले तो मौर्य साम्राज्य का ऐतिहासिक स्वरूप बना।

मूर्तिकार की साधना

पिता पुत्र दोनों का काम था मूर्ति बनाकर बेचना। पिता की मूर्ति डेढ रुपये में बिकती थी। बेटे की मूर्ति आठ दस आने में। पिता प्रतिदिन उसकी भूलों को समझाता रहता। बच्चा ध्यान से सुनता और सुधार करता। धीरे धीरे बच्चे की मूर्तियाँ पाँच रूपये में बिकने लगीं। पिता फिर भी उसकी त्रुटियाँ समझाता। एक दिन बच्चे ने झुँझलाकर कहा- अब मेरी मूर्तियाँ आपसे अच्छी बनती हैं फिर भी आप दोष निकालते रहते हैं। पिता बोला- बेटा मुझे भी युवावस्था में ऐसा ही अभिमान हो गया था। इसी कारण से आजतक डेढ़ रुपये की ही मूर्तियाँ बिकती रहीं। मैं चाहता हूँ तुम्हें अपनी कला पर अहंकार न हो तभी तुम श्रेष्ठ कलाकार बन सकोगे।

अहंकार और उपेक्षा का दुष्परिणाम

उन दिनों कबूतर झाड़ियों में अण्डे देते थे। लोमडी रोज कबूतर के अण्डे खा जाती थी। कबूतरों ने घोंसला बनाना शुरु किया, पर बना नहीं। दूसरी चिड़ियों से सहायता मांगी। पक्षियों ने उसे सिखाना शुरु किया पर वह बीच में ही बोला ऐसा तो मैं ही बना लूँगा। चिड़ियाँ चली गईं पर घोंसला न बना। कबूतर फिर चिड़ियों के पास गया। किसी तरह चिड़िया आईं, तो कबूतर ने बीच में ही फिर वही बात दुहराई। चिड़ियाँ दुबारा लौट गईं। किन्तु कबूतर घोंसला बना नहीं पाया। चिड़ियों से मित्रता की पर अब उन्होंने साफ इनकार कर दिया। नासमझ कबूतर अहंकारवश घोंसला बनाना न सीख पाया और आजतक उसका घोंसला भोंडा ही रहता है।

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मस्ततः सुखम् ।।

विद्या विनय को देने वाली है। विनय से मनुष्य योग्यता को प्राप्त करता है। योग्य होने से मनुष्य धन को प्राप्त करता है, धन से धर्म करता है और फिर सुख प्राप्त करता है।

विद्यया शस्यते लोके पूज्यते चोत्तमैः सदा ।
विद्याहीनो नरः प्राज्ञसभायां नैव शोभते ।।

विद्या रहित मनुष्य विद्वानों की सभा में कभी शोभा नहीं देता, इसलिए सदैव विद्या प्राप्त करने का प्रयत्न करके श्रेष्ठता की ओर अग्रसर होना चाहिए।

अर्धं सज्जन सम्पर्कादविद्याया विनश्यति ।
चतुर्भागस्तु शास्त्रार्थैश्चतुर्भागं स्वयत्नतः ।।

आधी अविद्या सज्जनों के संसर्ग से मिट जाती है, उसका चौथाई भाग शास्त्रों के अध्ययन से और शेष चोथाई भाग स्वयं प्रयत्न करने से नष्ट हो जाता है।

ज्ञान युक्ति प्लावेनैव संसाराब्धिं सुदुस्तरम् ।
महाधियः समुत्तीर्णा निमेषेण रघूद्वहः ।।

इस संसार रूपी समुद्र को बुद्धिमान् लोग ज्ञान रूपी नौका पर सवार होकर बड़ी आसानी से ही पार कर जाते हैं।

यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता नतु चन्दनस्य ।
एवं हि शास्त्राणि बहून्यधीत्य चार्थेषु मूढा, खरवद् वहन्ति।।

जैसे गधे पर चन्दन लदा हो तो वह उसे बोझ ही समझता है चन्दन नहीं समझता है। इसी प्रकार बहुत से शास्त्र पढ़ लिए जाने पर वास्तविक अर्थ नहीं समझा तो वह गधे के ही समान है।

ततो वच्मि महाबाहो यथा ज्ञानेतरा गतिः ।
नास्ति संसार तरणे पाशबन्धस्य चेतसः ।।

बन्धन में पड़े हुए मन को मुक्त करने और संसार सागर से तरने के लिए ज्ञान के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूरुत्तरा या विपदो दुःख कल्लोल संकुला :।
तीर्यते प्रज्ञया ताभ्यो नानाऽपद्भयो महामते ।।

विभिन्न प्रकार की कठिन विपत्तियों के समुद्र को ज्ञान, द्वारा ही तरा जा सकता है।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तंधनम् ।
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः ।।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम् ।
विद्या राजसु पूजिता न तु धनं विद्या विहीनः पशुः।।

विद्या मनुष्य का एक अनुपम विशेष सौन्दर्य है, यह छिपा हुआ सुरक्षित धन है, विद्या भोग, यश और सुख को प्रदान करने वाली है। विद्या गुरुओं की गुरू है अर्थात अज्ञान का नाश कर ज्ञान प्रदान करने वाली है। परदेश में यह अपने भाई के समान सहायता देने वाली है। विद्या सबसे बडी देवता है अर्थात् देववत् उपासना योग्य है। राजाओं के दरबार में विद्या का ही सम्मान होता है धन का नहीं, ऐसी विद्या के बिना मनुष्य, मनुष्य नहीं निरा पशु ही होता है।

अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थञ्च चिन्तयेत् ।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ।।

बुद्धिमान् पुरुष को उचित है कि सर्वदा अपने आप को अजर (वार्द्धक्य रहित) और अमर (मृत्युरहित) समझ कर विद्या और धन का उपार्जन करता रहे। मृत्यु ले जाने के लिए चोटी के केश पकड़कर प्रस्तुत खड़ी है - ऐसा समझकर सदा धर्म कार्य करें।

एकेनैवामृतेनैव बोधेन स्वेन पूज्यते ।
एतदेव परं ध्यानं पूजासैव परा स्मृता ।।

उस आत्मा की ज्ञान द्वारा ही एक प्रकार से पूजा की जाती है और ज्ञान ही उस आत्मारुपी देवता का सर्वोतम अर्चन होता है।

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्म योऽनूचानः स नो महान् ।।

न वर्षों से, न सफेद बालों से, न वित्त से, न भाई बन्धुओं से किसी का महत्व होता है। ऋषियों ने इसी धर्म (मर्यादा) को चलाया है कि हममें जो वस्तुतः विद्वान है वही बड़ा है।

सरसुति के भण्डार की , बड़ी अपूरव बात ।
ज्यौं खरचै त्यौ त्यौ बढै , बिन खरचे घटिजात ।।
विद्या पढहि विनय करहि, तजहि वृथा अभिमान ।
चलहिं सतकुला चरन पर, ते नर अति सुज्ञान ।।
जन्मत ही पावे नहीं, भली बुरी कोउ बात ।
बूझत बूझत पाइये , ज्यों ज्यों समुझत जात ।।
आडम्बर तजि कीजियै, गुन संग्रह चित चाय ।
छीर रहित न बिकै गऊ, आनौ घंट बँधाय ।।
ज्ञान बडा संसार में अर्थ-धर्म को मूल ।
या पाये या जगत की सुख सुविधा अनुकूल ।।
लालन करता मात सम, पालन पिता समान ।
लाल बनाती देह को, विद्या सब सुख खान ।।
विद्या बिन न बिराजहीं, जदपि सरूप कुलीन ।
ज्यों सोभा पावै नहीं, टेसू बास विहीन ।।
प्रथम ज्ञान समुझै हिये, विधि निषेध व्यवहार ।
उचितानुचितहिं हेरि कै, करतब करिय सँभार ।।
विद्या धन आधार है, विद्या बल आधार ।
यह मत जो धारण करे, वह सब गुण आगार ।।
वेद पुराणहु शास्त्र जत, तत बुधि बल अनुमान ।
अनुभव बुद्धि विवेक युत, सो तुलसी परमान ।।
नहिं रूप कुछ रूप है, विद्या रूप निधान ।
अधिक पूजियत रूप तें , बिना रूप विद्वान ।।
भये न जो पढ़ि सत्य व्रत, सबल शूर स्वाधीन ।
तौ विद्या लगि वादि धन, समय शक्ति व्यय कीन।।
जगत ब्रह्मज्ञानी बहुत , विद्या के भण्डार ।
निज अज्ञान जे जानहीं, ते विरले संसार ।।
शत शत प्रणवों तासु को, पीऊँ चरण पखार ।
ऊँचा जग में है वही, जाके उच्च विचार ।।
अनसमझे नहिं मानिए, अवसि समुझिए आप ।
तुलसी आपु न समुझ बिन, पग पग पर परिताप।।
तिन्हहि ग्यान उपदेसा रावन ।
आपुन मन्द कथा सुभ पावन।।
पर उपदेस कुसल बहुतेरे।
जे आचरहिं ते नर न घनेरे ।।

।। छठा प्रवचन समाप्त।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सातवाँ-प्रवचन

समता और सम्यक दर्शन

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता: समदर्शिन:।।

अध्याय ५ श्लोक १८

विद्या, विनय युक्त ब्राह्मण, गौ: हाथी कुत्ते और ऐसे ही चाण्डाल में पण्डित लोग समदर्शी होते हैं।

सब प्राणियों में भगवान हैं, एक ही आत्मा सब में समाया हुआ है, अपने समान ही सब को सुख दुख होता है। अपमान और दुर्व्यवहार सब को बुरा लगता है। इन तथ्यों को हृदयंगम कर लेने पर मनुष्य अध्यात्म के वास्तविक तत्व को समझ गया ऐसा मानना चाहिए।

जब प्राणिमात्र में भगवान की एक ही सत्ता काम कर रही है और सब ईश्वर के बनाए हुए हैं तो उन्हें हम बहन, भाई क्यो न मानें ? बात सीधी सी है और सबकी समझ में उसे आ ही जाना चाहिए कि आकार और स्तर की दृष्टि से सब के प्रति समता का भाव रखा जाय। भगवान ने उपरोक्त श्लोक में इसी तथ्य का प्रतिपादन किया है। उन्होंने विद्वान ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता और चाण्डाल को साम्यभाव से देखने का निर्देश किया है और समत्व की भावना रखने वाले व्यक्ति को समदर्शी कहकर सम्मानित किया है।

जब प्राणि समान स्तर के हैं, सब में एक ही आत्मा है तो उन्हें ऊँच नीच मानने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। विशेषतया मानव प्राणी तो प्रत्येक दृष्टि से समान स्तर के हैं, उनमें जन्मजात रूप से किसी को ऊँचा नीचा नहीं माना जा सकता। न्याय की दृष्टि से किसी में कोई अन्तर नहीं हो सकता। भाषा देश रंग, धर्म, जाति आदि की दृष्टि से मनुष्यों में थोड़ी भिन्नताएं हो सकती हैं पर यह एक उद्यान खिले हुए विभिन्न आकृति प्रकृति के पुष्पों के समान हैं । यह विभिन्नता रंग रूप की दृष्टि से अन्तर भले ही करती हो पर उनका सम्मान एवं स्तर भिन्न नहीं हो सकता। गुलदस्ते में कई रगं के फूल मिले होते हैं पर उनके सम्मान में कोई अन्तर नही होता है। मानव जाति भी एक गुलदस्ते की तरह है जिसमें ठण्डे देशों में उत्पन्न होने वाले गोरे, गरम देशों में उत्पन्न होने वाले काले, अपनी अपनी जलवायु के अनुसार अलग अलग प्रकार का आहार बिहार अपनाने वाले, अपनी परम्परागत भाषा बोलने वाले अपने ढंग के मजहब अपनाने वाले बाहर से ही अलग दीख सकते हैं पर वस्तुत: उनके मानवीय स्तर में कोई अन्तर नहीं है। अतएव प्राणिमात्र के प्रति विशेषतया मनुष्य मात्र के प्रति समता का भाव अपनाये रहना ही भगवान की शिक्षाओं के अनुकूल हो सकता है। गीता के उपरोक्त श्लोक में यह तथ्य पूर्णतया स्पष्ट है।

आज हम देखते हैं कि मनुष्य मनुष्य के बीच में ऊँच नीच की दीवारें जन्मजात कारणों को लेकर खडी कर दी गई हैं जो अध्यात्म आदर्शो के सर्वथा प्रतिकूल है। निकृष्ट पाप कर्म करने वालों को नीच माना जाय और उनसे बचा जाय तो यह बात समझ में आती है। देवता और असुरों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। दुष्टता को तिरस्कृत एवं सज्जनता को सम्मानित किया जाना उचित है। इस विभाजन के अनुसार नीच ऊँच की गणना हो सकती है। पर जाति या वशं के आधार पर किसी को अपने से छोटा नीचा मानना भगवान के आदेश तथा धर्म अध्यात्म के सिद्धान्तों के विपरीत है। गोरी चमड़ी वाले पाश्चात्य लोग हम काली चमडी वाले भारतीयों को अछूत या नीच मानते हैं, अपने होटलों में, विद्यालयों में जाने नहीं देते एक तरह से सामाजिक बहिष्कार की स्थिति में रखते हैं तो यह उनकी मान्यता अन्याय एवं अहंकार युक्त ही मानी जायेगी। कुछ दिन पहले गोरों की यह अहमन्यता सारे संसार में फैली हुई थी। वे काली चमड़ी वालों को पशु तुल्य समझते थें और उनके साथ तिरस्कार पूर्ण व्यवहार करते थे। समय के परिवर्तन के साथ उनकी वह दुष्प्रवृति घट रही है । विवेक और न्याय ने उन्हें उस अनीति के लिए धिक्कारा है फलस्वरूप वे लज्जित हुए हैं और प्रकट रूप में उसे छोड़ने का साहस किया है। यद्यपि उनमें से पिछड़े हुए लोग अभी भी उसी मनोवृति को अपनाये हुए हैं।

दक्षिण अफ्रीका में काले गोरे के बीच नीच ऊँच का यह भेद अभी भी उग्र रूप से विद्यामान है और वहाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

की गोरी सरकार ने कानून बना कर भी अपनी उस अनीति का समर्थन कर लिया है। संसार का लोकमत उनकी उस हठ धर्मी के लिए उन्हें धिक्कार रहा है। विश्व मानव की आत्मा और विवेकशीलता ने मनुष्य मात्र के बीच मौलिक समता को स्वीकार कर लिया है पर जिन रूढिवादियों ने अविवेक और अन्याय को ही धर्म परम्परा मान लिया हो उन्हें कोई क्या कहे ? संसार ऐसे लोगों से घृणा ही कर सकता है और समय आने पर लोक मत उन्हें उनकी इस दुष्प्रवृति के लिये दण्ड भी देगा अमरीका में कुछ दिन पहले वहाँ के काले लोगों के साथ ही ऐसा ही भेद भाव बरता जाता था पर अब वहाँ की जनता अपने इस पाप का प्रायश्चित्य कर रही है। काले गोरों में नीच ऊँच की दीवारें अब कानून द्वारा पूरी तरह गिरा दी गई हैं। इस प्रायश्चित्य में अग्रिणी होने के कारण प्रेसीडेन्ट कनेडी को अपना बलिदान भी करना पडा। अन्याय के लिए दुराग्रह करने वाले हठी लोग अभी भी वहाँ हैं और काले लोगों को मानवीय अधिकारों से वंचित रखना चाहते हैं। कुछ दिन वे अन्धेर में चला सकते हैं। पर अन्ततः उस अन्याय पूर्ण दुराग्रह को बेमौत मरने के लिए ही विवश होना पड़ेगा।

गोरों द्वारा कालों के साथ केवल वंश परम्परा के अधिकार पर नीच ऊँच का जो भेद भाव बरता गया है। सारे विश्व में उसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई है। राष्ट्रसंघ के मंच से विश्व के प्रायः सभी राष्ट्रों ने एक मत से इस अनीति पूर्ण मूढता को धिक्कारा है। यह निर्विवाद है विश्व का लोकमत ऐसी दुष्ट मान्यताओं को जीवित नहीं रहने दे सकता, आज नहीं तो कल अन्त होना ही है, पर अच्छा यह है कि समय रहते चेत जाया जाय और विवश होकर अनीति छोडने से पहले विवेक पूर्वक अपना सुधार करते हुए सज्जनों की श्रेणी में अपनी गणना कराली जाये। गोरे लोग अब इसी तरह विचार कर रहे हैं और उनका इस तरह सोचना उचित ही है।

भारतीयों के सिर पर भी एक कलंक इसी प्रकार का है। जन्मजाति के आधार पर एक दूसरे को नीच या ऊँच समझने की मूर्खता कुछ दिन से हमारे समाज में भी प्रवेश कर गई है और उसने इस थोडे ही समय में हमारे जातीय जीवन का ढाँचा चरमरा कर रख दिया है। संसार के सामने हिन्दू समाज के महान दर्शनशास्त्र को धर्म एवं अध्यात्म को जितना नीचा इस मूढता ने दिखाया है उतना और किसी ने नहीं। विश्वबन्धुत्व के आदर्शो का प्रतिपादन करने वाले, सब में एक ही आत्मा होने की मान्यता रखने वाले यदि अपने व्यवहार में उससे सर्वथा विपरीत आचरण करें तो उनकी सिद्धान्तवादिता को एक विडम्बना मात्र ही माना जायेगा। हमारे समाज में कुछ लोग इसलिए ऊँचे बनते है कि उनका जन्म किसी ऐसे कुल में हुआ है जो ऊँचा समझा जाता है। इसी प्रकार कुछ लोग नीच इसलिए माने जाते हैं कि उनने उस वंश में जन्म लिया जिसके बारे में नीचा होने की मान्यता है। इन ऊँच नीच के बीच किसी प्रकार का कोई पारस्परिक सम्पर्क नहीं रहता। एक दूसरे के सुख दुख: में हर्षोत्सवों में शामिल नहीं होते यहाँ तक शरीरों के छूने से भी परहेज किया जाता है। छूत के रोगियों या दुष्ट दुराचारी असुरों के साथ जो व्यवहार किया जाना चाहिए वही सामान्य परिस्थिति के व्यक्ति एक दूसरे से करते हैं। एक किसान अपने को ऊँच माने और दूसरे किसान को नीच समझे तो यह एक अचरज की ही बात है पर यह एक सच्चाई है कि हमारा समाज ऐसी अचरज भरी मूढताओं को छाती से चिपकाये हुए है। इतना ही नहीं, उनका समर्थन भी करता है। धर्म भी मानता है और अपनी पथ भ्रष्टता पर लज्जित भी नहीं होता।

ब्राह्मण, ब्राह्मण के बीच में भी ऊँच नीच की भावना विद्यमान है। एक जाति के दूसरी जाति वालों को ऊँच नीच मानते हैं सो बात नहीं एक ही उपजाति के लोग बीघे विश्वे का अन्तर करके अपनी श्रेष्ठता-निकृष्टता प्रतिपादन करते हैं। अछूत अछूतो के बीच एक दूसरे के प्रति ऐसी ही ऊँच नीच की भावना पायी जाती है। यह रोग घुन की तरह हमारे समाज को खोखला कर रहा है और उसे अनेक भागों में विभक्त कर दिन-दिन दुर्बल बनाता चला जाता है।

स्त्री और पुरुषों के बीच भारी असमानता हमारे समाज में पाई जाती है। स्त्री को नागरिक अधिकार कानून से भले ही मिल गये हों पर व्यवहार में वे अभी भी खरीदे हुए पशुओं की तरह एक प्रकार से पुरुषों की सम्पति बनी हुई है। घर से बाहर अकेली नहीं निकल सकती मानो वे कालकोठरी में रहने वाले कैदी की सजा भुगत रही हो जिसे बाहर निकलने के साथ एक संतरी साथ चलना आवश्यक है उन्हें मुँह ढक कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर्दे में इस तरह रहना पड़ता है मानो गोहत्या कर डालने के कारण उन्हे कलंकी की तरह मुँह ढ़क कर रहने वाले कलंकी का सा दण्ड दिया गया हो। शिक्षा प्राप्त करने की, आजीविका कमाने की, स्वास्थ्य के लिए आवश्यक वायु सेवन की, संसार का स्वरूप समझने की, जीवनोपयोगी अनुभव सम्पादित करने की सुविधाऐं भारतीय स्त्रियों को उपलब्ध नहीं हैं। उन्हें एक अविश्वस्त अपराधी की तरह ऐसे कठोर नियन्त्रण में रखा जाता है जिसमें एक प्रकार से उनकी आत्मा ही कुचल जाती है। मानवीय विकास की सुविधाओं से ये प्राय: वंचित ही रह जाती हैं। भारत की आधी जनसंख्या पक्षाघात से पीड़ित पड़ी है। नारी चूल्हा फूँकने और बच्चे उत्पन्न करने की मशीन मात्र रह गई है। उसकी प्रतिभा, कुशलता एवं पराक्रमशीलता से समाज को जो लाभ पहुँच सकता था उससे उसे वंचित रहना पड़ रहा है। यों कहने को भारत में ४६ करोड़ लोग रहते हैं पर वस्तुत: उनकी संख्या २३ करोड़ ही कहनी चाहिए क्योंकि समाज के निर्माण एवं विकास में नारी का होना इन परिस्थितियों में नगण्य ही रह पाता है। पिजडें में बन्द पक्षी की तरह वे घरों की शोभा भले ही हों पर उनमें वह व्यक्तित्व कहाँ जो राष्ट्रीय शक्ति एवं समृद्धि की बढाने के काम आ सके। इस दृष्टि से भारत की जन संख्या २३ करोड कही जाय तो अत्युक्त नहीं। ४६ करोड़ की तो गिनती भर है।

जन्म से जाति मानने का उदेश्य प्राचीन काल में पेशे और व्यवसायों का विभाजन था, ताकि वंश परम्परा में चले आ रहे व्यवसाय को अपना कर पीढी दर पीढी उन कार्यो में अधिक कुशलता उत्पन्न की जाती रहे। ऊँच नीच मान बैठने की कल्पना वर्णाश्रम धर्म का प्रचलन करने वालों के मस्तिष्क में स्वप्न में भी नहीं थी। ऊँच कहलाने वाले लोगों के मन में अकारण, अनुचित, उपहासास्पद अहंकार उत्पन्न करना और नीच कहलाने वालों में बिना किसी कारण छोटा, ओछा, अभागा, दीन, पतित मान बैठने की हीनता उत्पन्न करना विशुद्ध रूप से एक नैतिक अनाचार एवं सामाजिक अत्याचार है। हिन्दू धर्म के संस्थापक इतने उदार दूरदर्शी एवं न्यायप्रिय थे कि वे वर्तमान में प्रचलित जाति पाँति के कारण चल पड़े, ऊँच नीच के भेद भाव को कदापि स्वीकार नहीं कर सकते थे। उनकी आत्माऐं स्वर्ग में बैठी रो रही होंगी कि हमने किन उच्च उदेश्यों को लेकर वर्णाश्रम धर्म की स्थापना की थी और आज लोगों ने उसकी कैसी दुर्गति बनाई और क्या से क्या करके रख दिया।

गीता कर्म से जाति मानती है। जो जैसा कर्म करता है वह उस जाति का माना जाता है। गुण कर्म , स्वभाव के कारण मनुष्य , मनुष्यों में भेद हो सकता है। देवता, मनुष्य और असुर इन तीन वर्णों में कोई विभाजन किया जाय तो समझ में आ सकता है। व्यवसायों के हिसाब से भी श्रेणी विभाजन किया जा सकता है पर किसी कुल में जन्म लेने मात्र से कोई व्यक्ति ऊँचा या नीचा कहलाने लगे इस मान्यता के पीछे न कोई तर्क है न न्याय। वर्ण प्राचीन काल में भी थे। पर उनमें पूर्ण आत्मीयता, एकता, समानता एवं सौजन्य का भाव था। चारों वर्ण एक ही शरीर के चार अंगो की तरह काम भले ही अलग करते थे पर वे सब थे पूर्णतया एक। वर्ण विभाजन का आधार बताते हुए गीता कहती कि-

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणै: ।।

-अध्याय १८ श्लोक ४१

हे अर्जुन ! ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों के कर्म (अपनेअपने) स्वभाव से उत्पन्न हुए गुणों से पृथक - बंटे हुए हैं।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागश: ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम् ।।

अध्याय ४ श्लोक १३

गुण कर्म के विभागानुसार चारों वर्ण मेरे द्वारा ही रचे गये हैं। उनका कर्ता होते हुए भी तू मुझ अविनाशी को अकर्ता ही जान।

शमो दमस्तप: शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।।

अध्याय १८ श्लो ४२

शम, दम, तप, पवित्रता , क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य (ये सब) ब्राह्मण के स्वभावजन्य कर्म हैं।

शोर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।।

अध्याय १८ श्लोक ४३

शूरता, तेज, धैर्य, दक्षता युद्ध में पीठ न दिखाना, दान और स्वामीभाव अर्थात शासन करने का भाव (ये सब)क्षत्रियों के स्वभावजन्म कर्म हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मक कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ।।

खेती, गौरक्षा व्यापार, वैश्य के स्वभावजन्म कर्म हैं। सेवा रूप कर्म शूद्र का स्वभावजन्य है।

उपरोक्त श्लोकों में भगवान ने व्यवसाय और स्वभाव के अनुसार वर्ण विभाजन की बात कही है। इसमें किसी जाति में जन्मने के कारण ऊँच या नीच होने का कोई संकेत नहीं है। वकील का पुत्र वकील ही होना चाहिए यह कोई आवश्यक नहीं। कलक्टर का बेटा कलक्टर ही हो यह कोई आवश्यक नहीं। ब्राह्मण कुल में जो कोई जन्मे वह ब्राह्मण के गुण कर्म स्वभाव अवश्य ही धारण किये होगा यह आवश्यक नहीं। इसी प्रकार छोटे कहे जाने वाले वर्णो में कोई महापुरुष उत्पन्न न हो ऐसी भी क्या बात है। इन दिनों जाति पाँति के आधार पर जो ऊँच नीच की मान्यता चल रही है वह असगंत ही नहीं, हिन्दू धर्म की मूल मान्यताओं के प्रतिकूल भी है। इस प्रकार का दृष्टिकोण अपनाकर हमने अपनी संस्कृति को तो उपहासास्पद बनाया ही है। संसार भर में हमारा स्तर दक्षिण अफ्रीका के उन गोरों के समान नीचा बना दिया है जो चमड़ी के रंग के कारण भारतीयों और अफ्रीका निवासियों को नीच समझ कर उनके साथ अछूतों जैसा व्यवहार करते है। अपनी इस संकीर्णता को जब तक बनाये रहेंगे तब तक हम अविवेकी, अनुदार और अन्यायी लोगों की श्रेणी में गिने जाने वाले घृणित लोग ही बने रहेंगे। गीता हमें इस स्तर का बने रहने का कदापि समर्थन नहीं कर सकती।

इसी प्रकार नारी जाति के प्रति हीनता का दृष्टिकोण रखना, उन्हें मानवीय नागरिक अधिकारों से वंचित रखना, शिक्षित, स्वावलम्बी, स्वस्थ एवं अनुभवी बन कर राष्ट्र की समृद्धि में समुचित योग दान कर सकने से रोके रहना एक घृणित श्रेणी का सामाजिक अत्याचार है। इन सामन्तवादी संकीर्णताओं के समर्थन में धर्मशास्त्र की दुहाई देना भारतीय धर्म की श्रेष्ठता को नष्ट करने जैसा कुत्सित प्रयास है। प्राचीन भारत के इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कभी किसी युग में ऐसा अत्याचार नारी जाति के साथ नहीं हुआ जैसा आज तथाकथित धर्म परम्पराओं के नाम पर प्रचलित है। धर्म ऐसे अनाचार का कदापि समर्थन नहीं कर सकता, भारतीय संस्कृति यदि ऐसी ओछी, संकीर्ण एवं अन्यायी रही होती तो संसार में इतने दिनों उसका अस्तित्व न टिक सका होता । विवेशील लोगों ने उसे लात मार कर दुनियाँ के पर्दे पर से कब का मिटा दिया होता। अन्यायी व्यक्तियों का नाश हुआ तो अन्यायी परम्पराएँ ही कैसे जीवित बनी रहतीं ? पिछले दिनों जब से हमने ऐसी अहंवादी अन्याय मूलक परम्पराऐं अपनाईं तभी से हमारा पतन हुआ। पिछले एक हजार वर्षों तक हमें विदेशी आक्रमणकारियों के जो लोमहर्षक अत्याचार सहने पड़े उन्हें यदि हमारी अन्याय मूलक मान्यताओं का दण्ड कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। हमने अपनों को सताया दूसरे हमें सताने आ गये। सेर को सवा सेर मिल गया। दूसरों को न्याय का उपदेश देने से पहले हमें अपने हाथ अनीति की कीचड़ से सने हुए न रखने का प्रयत्न करना होगा। वरन् हर अत्याचारी हमें यह कह सकेगा कि हम छोटी जातियों या नारियों के प्रति जो अन्याय बरतते हैं उसे सुधारे बिना न्याय की पुकार करने की हिम्मत किस मुँह से करते हैं।

जातिगत ऊँच नीच और नारी जाति के प्रति असमानता का भाव आज हमारे समाज के दो भारी दूषण हैं। इनने हमारे मस्तिष्कों में गहराई तक जड़ें जमा ली हैं। आवश्यकता इस बात की है उसे तत्परतापूर्वक सुधारा जाय। गीता का समता दृष्टि वाला आदर्श हमें अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में सम्मिलित रखना ही चाहिए। इसके बिना हमारी सामूहिक प्रगति अवरुद्ध ही बनी पड़ी रहेगी।

भगवान के यहाँ जाति भेद नहीं

प्रसिद्ध है कि भगवान जाति-पाँति को नहीं कर्म को देखते हैं। कहावत प्रसिद्ध है-

हरिहि भजे सो हरि का होई ।
जाति-पांति पूछे नहिं कोई ।।

भगवान राम और कृष्ण के चरित्रों में अनेकों उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिनसे स्पष्ट है कि वे जाति-पांति का भेद-भाव नहीं करते थे वरन् गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार ही मनुष्यों की श्रेष्ठता स्वीकार करते थे।

एक वृद्धा स्त्री ने वनवासी ऋषियों के आश्रम से कुछ ही दूर रह कर उनकी सेवा करने का व्रत लिया। लेकिन जाति से नीच होने के कारण उसकी सेवा ऋषि लोग कैसे स्वीकार करेंगे इसके मारे वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परेशान थी। आखिर उसने एक युक्ति अपनाई वह प्रतिदिन अन्धेरे में ही उस पथ पर जिससे ऋषि लोग स्नानार्थ जाया करते थे तथा आश्रम के प्रांगण में झाड़ू लगा दिया करती तथा जंगल से लकड़ी काट कर ऋषियों के लिए इकटठी करती रहती। ऋषिगण जब रोज ऐसा ही देखते तो बड़ा आश्चर्य करते, एक दिन इस बात का पता लगाने के लिए कुछ ब्रह्मचारी नियुक्त कर दिए गये। मालूम हुआ वही निम्न-जाति की वृद्धा यह सब करती है। अधेड़ आयु के ऋषियों को क्रोध आया किन्तु महर्षि मातंग ने उन्हें उसी सेवा भावना की महत्ता समझाई और अपनी कुटिया के बराबर एक कुटी बनाकर स्थान दिया। यही वृद्धा रामायण काल में शबरी के नाम से प्रसिद्ध है जिसके झूठे बेर भगवान रामचन्द्रजी ने खाये और उसका आतिथ्य ग्रहण किया।

हनुमान जाति से वानर थे लेकिन अपने गुणों के कारण वे श्रीराम के जीवन के एक अंग बन गए। भगवान् राम हनुमान जी को अपने भ्राता भरत की तरह मानते थे। वनवास से लौटने के बाद अंगद, सुग्रीव, जामवन्त, आदि सभी लोग अपने-अपने स्थान को वापिस लौट गये लेकिन श्रीरामचन्द्रजी ने हनुमानजी को अपने ही पास रखा। आज भी हिन्दू जनता हनुमानजी को एक देवता की तरह पूजा करती है।

निषादराज जाति से हीन थे लेकिन उसकी उत्कट प्रेम-भक्तिपूर्ण भावनाओं को देखकर भगवान् रामचन्द्र जी ने उसका आतिथ्य स्वीकार किया और भ्राता भरत की तरह अपने गले लगाया।

वृद्ध जटायु ने सीताजी की मुक्ति के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। राम ने जब सीता को ढूढँते-खोजते मार्ग में जटायु को देखा तो उसे उठाकर अपने सीने से लगा लिया। जटायु का प्राणान्त हो जाने पर उन्होंने अपने कुटम्बी स्वजन की भाँति उसका दाह-कर्म संस्कार पूर्ण किया।

जामवंत रीछ नामक छोटी समझी जाने वाली जाति के व्यक्ति थे। लेकिन श्री कृष्ण ने जाति वर्ण का ध्यान न रख कर उसकी पुत्री जामवन्ती से विवाह किया।

असफल यज्ञ

पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ किया। यज्ञ की सफलता की एक कसौटी रखी गई थी कि यदि अर्जुन का पाचजन्य शंख, बिना बजाये अपने आप बजने लगे तो समझना चाहिए कि यज्ञ सफलतापूर्वक सम्पन्न हो गया।

यज्ञ कार्य पूरा हो जाने पर भी जब शंख न बजा तो उस आयोजन की विफलता पर सब लोग चिन्ता करने लगे और तलाश करने लगे कि इसका कारण क्या है ? बहुत खोजबीन करने पर पता लगा कि एक शूद्र को सम्मानपूर्वक यज्ञ में नहीं बुलाया गया था इसलिए वह उसमें सम्मिलित नहीं हुआ। कृष्णचन्द्र ने कहा मनुष्य मात्र समान हैं, जाति भेद के कारण किसी को नीचा नहीं समझा जाना चाहिए और किसी का मान कम नहीं करना चाहिए। भगवान की बात सुनकर द्रोपदी समेत पाण्डव उस शूद्र के यहाँ गये और सम्मान समेत उसे लिवाकर लाये। उसके आने पर शखं बजने लगा और यज्ञ की सफलता घोषित हुई।

सत्यकाम जावाल

सत्यकाम को बचपन में विद्या प्राप्ति की बड़ी लगन थी। बालक की लगन देखकर माता से न रहा गया और उसने बालक को महर्षि गौतम के आश्रम में भेज दिया। वहाँ एक गौरवर्ण सुन्दर बालक को देखकर सभी बड़े प्रभावित हुए। सत्यकाम ने सष्टांग प्रणाम करके महर्षि को अपना मन्तव्य कह सुनाया। महर्षि ने उससे नाम पता और गोत्र पूछा, लेकिन बालक गोत्र न जानता था वह पुनः अपनी माता के पास आया और गोत्र को पूछने लगा। माँ को बड़ा दुःख हुआ लेकिन बालक भविष्य के लिए उसने कुछ भी न छुपाया। सत्यकाम महर्षि के आश्रम में पहुँचे और गौतम को बताया -"पूज्यवर मैं जाबाला का पुत्र सत्यकाम जाबाल हूँ। मेरी माँ को कठिनाइयों के कारण कई पुरुषों की सेवा में रहना पड़ा। इससे कोई निश्चित गोत्र वह नहीं बता सकी।" सभी आश्रम वासियों के मुँह पर एक घृणा भरी मुस्कान थी । लेकिन गौतम ने उठकर सत्काम को अपने गले लगाया और उसे विद्या पढ़ाना चालू किया।

सूत-पुत्र कर्ण

प्रकट रूप से कर्ण एक सूत पुत्र था, लेकिन अपने शक्ति शौर्य और तेजस्विता के गुणों के कारण वह सभी का आकर्षण बन गया था। दुर्योधन ने जाति-पाँति का सोच विचार न करके कर्ण को अपने सहोदर भाई की तरह अपना लिया और उसे अपने समान राजकीय सम्मान और गौरव प्रदान किया। महाभारत का महारथी कर्ण कौरव-पक्ष, खासकर दुर्योधन की समस्त आशाओं का केन्द्र था। महाभारत के पात्रों में भी कर्ण का वैभव किसी सूत पुत्र के रूप में नहीं वरन दुर्योधन के भ्राता के रूप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

में वर्णित है। इससे पता चलता है कि उस समय गुण और कर्म के आधार पर मनुष्य का मूल्यांकन किया जाता था।

निषाद कन्या से विवाह

महाराजा शान्तुन विहार के लिए नदी तट पर गये हुए थे उन्होंने वहाँ एक रूपवती, गुणवती, निषाद कन्या को देखा। शान्तनु केवल उसके रूप पर ही नहीं वरन् उसके गुण और कर्म पर बड़े प्रसन्न हुए और उस कन्या के जीवन को सभी भाँति सुखी सम्पन्न बनाने के लिए अपनी पत्नी बनाने का निश्चय किया। एक निषाद कन्या का राजरानी बनाना गुण कर्म की महत्ता को प्रतिपादित करता है।

क्षत्रिय से ब्राह्मण

विश्वामित्र क्षत्रिय थे। लेकिन वशिष्ठ के ज्ञान बल के समक्ष पराजित होकर उन्होंने क्षत्रिय बल को धिक्कारा और ब्राह्मणत्व की साधना प्रारम्भ कर दी ज्ञान तप, आत्म-विकास के लिए उन्होंने एक लम्बे समय तक प्रयत्न चालू रखा और अन्ततः ब्रह्मर्षि का उच्च सम्मानास्पद स्थान प्राप्त किया। विश्वामित्र के बारे में वर्णन है कि उन्होंने नई सृष्टि बसाई, इससे तात्पर्य यह है कि जीवन और संसार के सम्बन्ध में उन्होंने बहुत सी नई बातों की खोज की,नये तथ्यों का पता लगाया और ब्राह्मणत्व के आदर्श को सक्रिय रूप से जीवन में चरितार्थ किया।

महर्षि वशिष्ठ के बारे में प्रसिद्ध है कि वे वेश्या के पुत्र थे। इतनी हीन स्थितियों में पैदा होकर भी वशिष्ठ ने अपने गुण और कर्मों के बल पर महर्षि का स्थान प्राप्त किया और भारत के महत्वपूर्ण राजवंशो के वे गुरु बने। महर्षि वशिष्ठ सप्तर्षियों में से भी एक हैं।

आत्मज्ञान और भेदभाव

एक बार जगद्गुरु शंकराचार्य काशी में गंगा स्नान करके सीढ़ियों पर चढ़ रहे थे कि अचानक एक चाण्डाल से वे छू गये। तब उन्होंने आवेश में आकर कहा-"अरे ! क्या तूने मुझे छू लिया, जानता नहीं मैं गंगा स्नान करके आ रहा हूँ।" चाण्डाल ने कहा- "महाराज ! न मैंने आपको छुआ न आपने मुझे। सभी में वह अन्तर्यामी निर्लिप्त आत्मा निवास करती है। गंगा जल में पड़ा हुआ सूर्य का प्रतिविम्ब क्या शराब में पड़े प्रतिविम्ब से अलग होता है ?"

शंकराचार्य जी को आत्मज्ञान हुआ और उन्होंने तभी से सब में आत्म-तत्व के दर्शन किए, बाह्य भेदविभेद भूल कर परमात्म-तत्व को जाना।

आत्म-ज्ञान होने पर भेद-विभेद नहीं रहते। सूक्ष्म दृष्टि हो जाने पर स्थूल जगत के भेद-भाव नहीं रह जाते। वे एक ही समुद्र की लहरों से निर्मित बबूले नजर आते हैं।

शुद्धि का साधन

कुछ ब्राह्मण गंगा स्नान करने को आये थे। पानी बहुत गहरा था जिससे धार में उतर कर स्नान करने में उन्हें डर लगा रहा था। उनके पास कोई पात्र भी नहीं था जिससे पानी लेकर वे नहाते। सभी बड़े असमंजस में थे।

उसी तट पर सन्त कबीरदास जी भी स्नान कर रहे थे। उन्होंने अपना लोटा माँज कर एक व्यक्ति को देते हुए कहा-"इसे इन लोगों को दे दो बेचारे स्नान कर लेंगे। इनके पास कोई पात्र भी नहीं है।"

यह सुनकर सभी ब्राह्मण एकदम चिल्ला उठे- "नहीं भाई ! इस जुलाहे का लोटा लेकर हमें अपवित्र नहीं होना है, इसे हमारे पास न लाओ।"

"क्यों भाइयों जब यह लोटा भी कई बार मिटटी लगा कर साफ करने पर इस गंगा जल से पवित्र नहीं हुआ तो दुर्भावनाओं से भरे इस मानव शरीर की पवित्रता कैसे होगी, स्नान से ?" सभी ब्राह्मण एक दूसरे का मुँह देखने लगे उत्तर उन्हें कुछ भी न सूझ पड़ा।

जाति और पानी

एक बार भगवान बुद्ध कहीं जा रहे थे। रास्ते में प्यास लगी। कुए पर चाण्डाल कन्या पानी भर रही थी। उनने पानी माँगा तो कन्या ने कहा- "मैं तो चाण्डाल हूँ।" बुद्ध ने कहा "देवी ! मै कुल जाति नहीं पूछता पानी माँगता हूँ। कुल, जाति और पानी का क्या सम्बन्ध ?" कन्या ने पानी दे दिया।

क्या गंगा कभी अशुद्ध होती है ?

माता शारदामणि (श्री रामकृष्ण परमहंस की धर्मपत्नी) के सत्संग में एक महिला आती थी, जिसका चरित्र अच्छा न था। इस पर अन्य भक्तों ने आपत्ति की कि इसे सत्संग में नहीं आने देना चाहिए। माताजी ने कहा- पुत्रों ! क्या गंगा किसी से यह कहती है कि तुम बहुत मैले-कुचैले हो, मेरे जल में प्रवेश न करो ? अपने

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को किसी से अधिक पवित्र मानना मुझे तो दम्भ ही लगता है। किसी के संग से कोई गिरता उठता नहीं। अपनी आत्मिक भावनाओं से ही मनुष्य का कल्याण और अधः पतन होता है।

शूद्र और ब्राह्मण

महात्मा रामानुजाचार्य अपने शारीरिक दुर्बलता के कारण नदी स्नान करने जाते हुए लोगों का सहारा लेकर जाया करते थे। जाते समय वे ब्राह्मण के कन्धे का सहारा लेते और आते समय शूद्र के कन्धे पर हाथ रख कर आते।

लोगों ने आश्चर्यपूर्वक पूछा-भगवन् ! शूद्र के स्पर्श से तो आप अपवित्र हो जाते हैं, फिर स्नान का महत्व क्या रहा ?

आचार्यजी मुसकराये उनने कहा-स्नान से मेरी देह मात्र शुद्ध होती है। मन का मैल तो अहंकार है। जब तक मनुष्य में अहंकार शेष है तब तक उसे मन का मलीन ही कहा जाता है। मैं शूद्र का स्पर्श करके अपने मन की मलीनता स्वच्छ करता हूँ। मैं किसी से बड़ा नहीं,सब मुझसे ही बड़े हैं, शूद्र भी मुझ से श्रेष्ठ हैं इसी भावना को स्थिर करने के लिए शूद्र का सहारा किया करता हूँ।

उत्तर युक्ति-युक्त था, पूछने वालों का ठीक समाधान हो गया।

ऊँच-नीच की पहिचान

शंका समाधान के लिए अनेकों व्यक्ति महर्षि दयानन्द के पास आया करते थे। एक दिन कई व्यक्तियों के साथ छोटूगिरि नाम का अपने को कुलीन मानने वाला एक व्यक्ति भी उनके पास जा पहुँचा। वह बड़ा दम्भी था जाते ही बोला-मैं तो जहाँ आप बैठे है वहाँ बैठूँगा। महर्षि ने स्थान खाली कर दिया। स्वयं नीचे बैठकर बात-चीत करने लगे। थोड़ी देर में एक कौवा सामने वाले पेड़ की डाली पर बैठ कर काँव-काँव करने लगा। दयानन्द बोले महाशय इस कौवे की तरह ही ऊँचे बैठने से कोई ऊँचा नहीं हो जाता और न ऊँच जाति में पैदा होने से किसी का कोई बड़प्पन है। इस संसार में बड़ाई तो केवल कर्म की है।

कुल नहीं कर्म

स्वामी विवेकानन्द जाति के कायस्थ थे। इस जातीय कारण से उन्हें बहुत बार अपमान और घोर विरोध का भी सामना करना पड़ा लेकिन भारत को धर्म का सन्देश देने जन सेवा के कार्यक्रमों को चलाने के लिए वे आजीवन प्रयत्न करते रहे। जाति-पाँति छुआ-छूत की भावना को मिटा कर भारतीय समाज को संगठित करने उसे जगाने के लिए वे सदैव प्रयास करते रहे। इन महान सेवाओं के कारण विवेकानन्द जी भारत की महान विभूतियों की श्रेणी में गिने जाते हैं। कायस्थ की दृष्टि से उन्हें कोई नहीं मानता वरन् भारतीय जनता के प्रेरणा-स्रोत, महापुरुष के रूप में माने जाते हैं।

महात्मा गांधी वैश्य जाति में उत्पन्न हुए पर वे अपने महानता के कारण ब्राह्मणों के ब्राह्मण, विश्व बंद्य बापू बने।

जगद्बन्धु की समदृष्टि

जगद्बन्धु ने बंगाल की डोम, कंजर जातियों को ऊँचा उठाने में बड़ा काम किया। उनकी काया-पलट कर दी। डोमों को शूद्र माना जाता था। ये लागे मृदंग आदि बनाने का काम करते थे। श्री जगद्बन्धुदास ने इन लोगों में घूम फिर करे इन्हें शिक्षित बनाने का प्रयास किया। साथ ही कथा कीर्तन के माध्यम से मानसिक स्तर ऊँचा किया। आज डोम जाति के लोग प्रसिद्ध कीर्तनकारों में गिने जाते हैं और ये लोग समाज में सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं।

सिख धर्म का आदर्श

गुरु नानक ने सिक्ख धर्म का प्रतिपादन करके मानवीय एकता का पथ प्रशस्त किया। सिख धर्म ग्रहण करने के लिए उन्होंने कोई भी जाति-पांति का बन्धन नहीं रखा। एक मेहतर भी सिख बन सकता है। इस तरह सिख धर्म के द्वारा गुरु नानक ने छुआ-छूत जाति पांति के भेद-भाव को दूर करने का प्रभावशाली कार्य किया।

गुरु गोविन्दसिंह ने जो "पाँच प्यारे" अपने प्रधान शिष्य बनाये थे और जिनके परिश्रम से सिखधर्म उतना बढ़ा वे पाँचों ही छोटी जातियों के थे। जिस जमाने में बड़े-बड़े ब्राह्मण मुसलमानों के त्रास से घबराकर कुछ करने का साहस नहीं कर पा रहे थे, उन दिनों प्यारों ने इतना पुरुषार्थ एवं त्याग किया जिससे हिन्दू धर्म की रक्षा हो सकी।

भेदभाव से विनाश

उन दिनों रात को युद्ध नहीं होते थे। अहमदशाह दुर्रानी और मराठों की सेनायें भोजन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

व्यवस्था में लगी थीं। अहमदशाह ने देखा कि मराठों की सेना में जगह-जगह धुआँ उठ रहा है। भेद जानने के लिए गुप्तचर भेजे। उन्होंने वापिस आ कर बताया महाराज हिन्दू लोग एक दूसरे का छुआ हुआ खाना नहीं खाते सो सभी सैनिक अलग-अलग भोजन पका रहे हैं। अहमदशाह ने कहा जो जाति आपस में संगठित नहीं रह सकती उसका जीतना बहुत आसान है। उसी समय हमले की व्यवस्था बनायी गई। मराठे एकत्रित न हो सके और उन्हें मुँह की खानी पड़ी।

समता के लिए प्रयास

भारत में अछूतोद्धार के कार्य को महात्मा गाँधी ने व्यवहारिक रूप दिया। भारत में आज जो मानवीय समानता की भावना दृष्टिगोचर हो रही है वह बापू की ही देन है। हरिजन-अछूतोद्धार के लिये गांधी जी ने कई तरह के आन्दोलन चलाये। अखबार निकाल कर जाति-पाँति की बुराइयों से जनता को अवगत कराया। महात्मा जी अपने दौरे के समय जहाँ भी जाते थे वे हरिजन बस्ती में ही ठहरा करते थे। अछूतोद्धार के लिए गान्धी जी की तरह ही बिनोवाभावे ने उनके कार्यक्रमों को आगे बढ़ाया।

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द जी गुण, कर्म, स्वभाव से वर्ण धर्म का प्रतिपादन किया और प्रचलित ऊँच-नीच की मान्यताओं का घोर विरोध किया।

विधर्मियों को धर्म दीक्षा

आर्य समाज के प्रसिद्ध संन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द का शुद्धि आन्दोलन का कार्य प्रसिद्ध है। उन्होंने निम्न जाति के हिन्दुओं को जिन्हें ईसाई मुसलमान बना लिया गया था पुनः शुद्ध करके हिन्दुओं में महत्वपूर्ण स्थान दिलाया। इसी तरह अछूतोद्धार के लिये कार्य किया। निम्न जातियां जो उच्च वर्णों द्वारा घृणा की दृष्टि से देखी जाती हैं उनको समाज में सम्मानस्पद स्थान दिलाने के लिये वे आजीवन प्रयत्न करते रहे।

मनुष्य की पहिचान

स्वामी विवकानन्द जब अमेरिका की एक सड़क पर गुजर रहे थे तो उनकी विचित्र वेशभूषा को देखकर लोग उन्हें मूर्ख समझने और मजाक बनाने लगे। अपने पीछे आती हुए भीड़ के सम्मुख स्वामी जी रुके और उनने पीछे मुड़कर कहा-सज्जनो ! मेरी वेषभूषा को देखकर आश्चर्य मत करो। आपके देश में सभ्यता की कसौटी पोशाक है। पर मैं जिस देश से आया हूँ वहाँ कपड़ों से नहीं मनुष्य की पहिचान उसके चरित्र से होती है।

वेश्या से तपस्विनी

अम्बपाली नामक एक वेश्या भगवान् बुद्ध को भोजन का निमन्त्रण देने गई। उनने स्वीकार कर लिया। थोड़ी देर बार वैशाली राजवंश के लिच्छवि राजकुमार आये और उनने राजमहल में चलकर भोजन करने के लिये प्रार्थना की तो बुद्ध ने कहा मैं अम्बपाली के यहाँ भोजन की स्वीकृति दे चुका हूँ। उनने मीठे चावल और रोटी की भिक्षा प्रेम पूर्वक ग्रहण की। कुछ समय बाद वह वेश्या भी बुद्ध के उपदेशों से प्रभावित होकर बौद्ध भिक्षुणी बन गई।

पाप से घृणा करते हुए भी पापी से प्यार करके उसे सुधारा जा सकता है।

दृष्टिकोण का परिवर्तन

भगवान् बुद्ध एक बार निविड़ वन को पार करते हुए कहीं जा रहे थे। रास्ते मे उनकी भेंट अंगुलिमाल डाकू से हो गई। वह सदैव अनेक निर्दोषों का वध करके उनकी उंगलियों की माला अपने गले में धारण किया करता था। आज सामने आये हुए साधु को देखकर उसी बाँछे खिल उठीं।

"आज आप ही मेरे शिकार होंगे" अंगुलिमाल ने बुद्ध से कहा और अपनी पैनी, तलवार म्यान से बाहर निकाली ।

तथागत मुस्कारायें, उनने कहा-"वत्स तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा। मैं कहीं भागने वाला नहीं हूँ। दो क्षण का विलम्ब सहन कर सको तो मेरी एक बात सुन लो।

डाकू ठिठक गया उसने कहा- "कहिये क्या कहना है ?"

तथागत ने कहा- "सामने वाले वृक्ष से एक पत्ता तोड़कर जमीन पर रख दो।"

डाकू ने वैसा ही किया। उन्होंने फिर कहा- "अब इसे पुन पेड़ में जोड़ दो।" डाकू ने कहा यह कैसे सम्भव है। तोड़ना सरल है पर उसे जोड़ा नहीं जा सकता।

बुद्ध ने गम्भीर मुद्रा में कहा वत्स, इस संसार में मार-काट, तोड़-फोड़, उपद्रव और विनाश यह सभी सरल हैं। इन्हें कोई तुच्छ व्यक्ति भी कर सकता है, फिर तुम इसमें अपनी क्या महानता सोचते हो और किस बात का अभिमान करते हो ? बड़प्पन की बात

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्माण है विनाश नहीं। तुम विनाश के तुच्छ आचारण को छोड़कर निर्माण का महान कार्यक्रम क्यों नहीं अपनाते?

अंगुलिमाल के अन्त:करण में शब्द तीर की तरह घुसते गये। तलवार उसके हाथ से छूट पड़ी। कातर होकर उसने तथागत से पूछा "इतनी देर तक पाप कर्म करने पर भी क्या मै पुन: धर्मात्मा हो सकता हूँ ?" वे बोले- "वत्स मनुष्य अपने विचार और कार्यो को बदल कर कभी भी पाप से पुण्य की ओर मुड़ सकता है। धर्म का मार्ग किसी के लिये भी अवरुद्ध नहीं है। तुम अपना दृष्टिकोण बदलोगे तो सारा जीवन ही बदल जायगा। विचार बदले तो मनुष्य बदला। अंगुलिमाल ने दस्यु कर्म छोड़कर प्रव्रजा ले ली। वह भगवान बुद्ध के प्रख्यात शिष्यों में से एक हुआ है।

छोटा शुभारम्भ भी उत्तम

एक बहेलिया भगवान महावरी से धर्मोपदेश लेने गया और आत्म-कल्याण का उपाय पूछा। भगवान ने "अहिंसा परमोधर्म" का उपदेश करते हुये कहा कि जीव हिंसा छोड़ दो बहेलिया इस पर तैयार नहीं हुआ। तब महावीर ने उसे निर्दोष लोमड़ी, खरगोश, कबूतर आदि छोटे जीवों को न मारने का व्रत लेने को कहा। उसने उत्तर दिया आमतौर से मैं इन्हीं जीवों को पकड़ पाता हूँ और इन्हीं से अपनी आजीविका चलाता हूँ। इन्हें मारना छोड़ सकना मेरे लिये कठिन है।

तब भगवान महावीर ने कहा-"अच्छा, किसी प्रकार शुभारम्भ तो करो। जिसे तुम उचित समझो, कम से कम उस एक जीव पर तो आज से दयाकरने और हिंसा छोड़ने का व्रत ले लो।" बहेलिया ने कौए की हिंसा न करने का व्रत लिया। व्रत छोटा एवं उपहासास्पद था। पर एक कदम आगे बढ़ा सो बढ़ता ही गया और वह थोड़े समय बाद जैन धर्म का श्रेष्ठ सन्त तथा धर्म प्रचारक प्रसिद्ध हुआ।

छोटा काम करने वाले अर्जुनदेव

अर्जुनदेव जब पहली बार गुरू के अखाड़े में गये तभी से उन्हें बर्तन साफ करने का काम सौंपा गया। दूसरे शिष्य तो प्रात:काल भजन सत्संग में शमिल होते पर अर्जुनदेव उस समय बर्तन साफ किया करते थे। वे शिष्य मण्डली में सबसे छोटे समझे जाते थे। गुरु ने अन्तिम समय उत्तराधिकारी वसीयतनाना लिखा। मृत्यु के बाद सबने पढ़ा तो देखा कि अर्जुनदेव को ही गद्दी मिली है। अपनी उत्कट सेवा भावना के द्वारा अर्जुनदेव सिखों के पांचवे गुरू बने।

यह घटनाऐं बताती हैं कि मनुष्य अपने आपको बदल सकता है। नीच से ऊँच और ऊँच से नीच बन सकता है। रावण विद्वान था ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ था पुलस्त्य ऋषि का वंशज था फिर भी दुष्कर्मो के कारण असुर, चाण्डाल बन गया। नीच ऊँच बनने का माध्यम गुण कर्म हैं वंश नहीं।

परिस्थिति से परिवर्तन

बंगाल के संसार प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर जगदीशचन्द्र बोस इस बात पर विश्वास करते थे कि बुरे से बुरे व्यक्ति को सद्व्यवहार द्वारा सुधारा जा सकता है।

सर बोस के पिता भगवानचन्द्र जी डिप्टी कलक्टर थे और चोर डाकुओं को पकड़वाने का कार्य भी उन्हें करना पड़ता था। एक बार एक खतरनाक डाकू को उन्होंने पकड़वाया, अदालत ने उसे जेलखाने की कड़ी सजा दी।

जब यह डाकू जेल से छूटकर आया तो वह जगदीशचन्द्र के पास गया और कहने लगा-"सुविधापूर्वक खर्च न चलने के कारण मुझे अपराध करने पड़ते है। यदि आप मेरा कोई काम लगवा दें तो मैं उत्तम जीवन, व्यतीत कर सकूँगा।"

जगदीश अपनी दयालुता के लिए प्रसिद्ध थे। उनने उस डाकू को बिना अधिक पूछताछ किये अपने पास एक अच्छी नौकरी पर रख लिया। उस दिन से कभी उस डाकू ने कोई अपराध न किया और मालिक के कुटुम्ब पर आई हुई आपत्तियों के समय उसने अपने प्राणों को खतरे में डाल कर भी उनकी रक्षा की।

स्वभावत: कोई व्यक्ति बुरा नहीं है। बुरी परिस्थितियाँ मनुष्य को बुरा बनाती हैं यदि उसकी परिस्थितियाँ बदल दी जायं तो बुरे से बुरे व्यक्ति को भी अच्छे मार्ग पर चलने वाला बनाया जा सकता है।

पत्थर कौन मारे ?

व्यभिचार के अपराध में एक स्त्री को पकड़ कर लाया गया। पंचों ने निश्चय किया कि पत्थर मार-मार उसका वध कर डाला जाय।

दर्शकों की भीड़ पत्थरों के बड़े-बड़े टुकड़े हाथ में लिए खड़ी थी। अपराधिनी का मस्तक लज्जा से झुका था वह भय से थर-थर काँप रही थी।

ईसा उधर से निकले। लोगों ने उन्हें रोका और इस अपराध एवं दण्ड व्यवस्था पर अपना अभिमत प्रकट करने का अनुरोध किया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

लोगों को सम्बोधन करते हुए ईसा ने कहा- अपराधी को दण्ड देना उचित है पर पत्थर उन्हें मारने चाहिए जिन्होंने कभी अपराध न किया हो। जो कभी व्यभिचार कर चुके हों उनके लिए तो ऐसा करना सरासर अनुचित है।

इस विवेक व्यवस्था को दर्शकों ने ध्यानपूर्वक सुना। हाथों में रखे पत्थर नीचे गिरने लगे भीड़ खिसकनी आरम्भ हो गई। बध-स्थली पर अपराधिनी और ईसा दो ही खड़े थे। ईसा ने कहा भटकने वाली लड़की जा प्रभु से क्षमा माँग और नेक जीवन व्यतीत कर।

यह कथाएँ बताती हैं कि बुराई अपनी देखनी चाहिये, छोटा अपने को समझना चाहिए। किसी को इसलिए छोटा या नीच समझना कि वह अमुक वंश में जन्मा है सर्वथा अन्याय है। जब बुरे व्यक्ति भी अपने वातावरण में अच्छे बन सकते हैं तब किसी से आजीवन इसलिए घृणा की जाय कि वह छोटे कुल में उत्पन्न हुआ सर्वथा अनुपयुक्त है।

सन्तों की विवेक दृष्टि

सन्त तुकाराम कुनवी जाति में पैदा हुए थे जो उन दिनों एक तरह से नीची कौम मानी जाती थी। लेकिन अपने सद्गुणों, सद्व्यवहार भगवद् भक्ति ज्ञान आदि के कारण तुकाराम भक्तों, सन्तों की श्रेणी में माने गये। आज भी दक्षिण भारत में सन्ततुकाराम के अभंग उसी तरह गाये जाते हैं जैसे मीरा, सूर, तुलसी आदि की रचनायें।

सन्त नामदेव दर्जी थे। रसखान मुसलमान था किन्तु उसकी गणना हिन्दू भक्तों में की जाती है।

सन्त रैदास जाति से चमार थे लेकिन अपने सद्गुणों और भगवद्भक्ति के द्वारा वे उत्कृष्ट व्यक्तियों की श्रेणी में आ गये। भारत में सन्त रैदास का न केवल निम्न जाति में ही वरन् उच्च वर्ग में भी सम्मानयुक्त और पूज्यनीय स्थान है।

सन्त कबीर जाति से जुलाहा थे। लेकिन अपने ज्ञान, विद्वता, ईश्वर निष्ठा, सज्जनता के कारण सारे भारत वासी इन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखते आये हैं। सन्त कबीर ने न केवल मानव-मात्र को समान माना वरन् उन्होंने जाति-पाति, ऊँच-नीच, वर्ग भेद की खुले शब्दों में निन्दा की। कबीर के इन सिद्धान्तों से लोग इतने प्रभावित थे कि निम्न जाति के लोगों के अतिरिक्त हिन्दू मुसलमान दोनों वर्गो ने भी उन्हें अपना माना।

रामानुजाचार्य को उनके गुरु ने कई प्रकार की विद्याएँ सिखाईं। ज्ञानदीक्षा सम्पन्न करते हुए उनके आचार्य ने कहा-"रामानुज नीच जाति के लोगों को यह ज्ञान मत देना।" इस पर रामानुज बोले- "गुरुदेव जिसका गिरे हुओं को उठाने में उपयोग न हो वह शिक्षा मुझे नहीं चाहिये।" शिष्य की विशाल भावाना देखते हुए आचार्य ने स्वेच्छा से उसके उपयोग करने की स्वीकृति दे दी। आगे चलकर रामानुज ने जाति-पांति पर जोर न देकर सर्वसाधारण को ज्ञान का मार्ग दिखाया। उन्होंने छोटी कौमों को भक्ति के मार्ग पर प्रवृत्त करके जीवन विकास की ओर प्रेरित किया।

यवनाचार्य के बारे कहा जाता है कि वे जाति से यवन थे और हिन्दू-धर्म ग्रहण करके केवल सामान्य व्यक्ति ही नहीं वरन् आचार्यत्व की स्थिति प्राप्त की थी।

महर्षि बाल्मीकि शूद्र जाति के थे और पेशे से डाकू थे। राहगीरों को लूटना उनको मारकर धन अपहरण करना ऐसे हिंसक और क्रूर कर्मो में वे लगे रहते थे। लेकिन नारदादि ऋषियों के सत्संग से उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ और वे आत्म साधना में संलग्न हो गये। उन्होंने अपने जीवन को विकसित करने के लिए घोर तप किया और वे डाकू से महर्षि बाल्मीक बन गये। शुभ कर्मों और सद्गुणों से एक नीच व्यक्ति भी महान बन जाता है।

फूट और उसके दुष्परिणाम

जाति-पाँति के अन्तर्गत छोटे-बड़े की ऊँच-नीच की भावना फूट फैलाती है। एक दूसरे को अलग करती है। एक देश में अनेकों देश, एक समाज में अनेकों समाज, एक वर्ग जाति में अनेकों जाति उत्पन्न करती है। इस फूट का दुष्परिणाम पिछले दिनों सारे समाज को भोगना पड़ा है और हमें एक हजार वर्ष की गुलामी का दण्ड भुगतना पड़ता है। अब समय आ गया है कि अलगाव की दुष्प्रवृत्तियों के खतरे को समझा जाय और उनसे पिण्ड छुड़ाने का प्रयत्न किया जाय। इस संदर्भ में निम्न कथाओं का मनन करना चाहिए।

विभीषण रावण से क्रुद्ध होकर राम से जा मिला। उसने लंका का सारा भेद बता दिया। फलस्वरूप असुर वंश का नाश हो गया। जयचन्द मुहम्मद गजनवी से जा मिला और भारत के सब राजाओं की कमजोरी उसे

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बता दी। उस भेद से लाभ उठाकर ही मुसलमान थोड़े प्रयत्न से इतनी आश्चर्य-जनक विजय प्राप्त कर सके। राजपूतों में से बहुत से मुसलमानों से जा मिले थे यही कारण था कि इतने लम्बे समय तक भारत को गुलाम बनाये रह सके। अग्रेंजों को यहाँ के प्रतिभाशाली लोगों का सहयोग न मिला होता तो वे इतनी थोड़ी संख्या में थे कि इतने दिन तक हमारा शोषण कर सकने में कभी सफल न होते। शक्तिसिंह और राणा प्रताप में फूट पड़ जाने से ही चित्तौड़ का पतन हुआ था। ऐसी कलंकित गाथाएँ इतिहास में अनेकों मिलती हैं जिनके कारण उस फूट के मार्ग पर चलने वाले व्यक्तियों का ही नहीं व्यापक पैमाने पर समाज का अहित ही हुआ है।

बन्दर बिल्ली की कहानी प्रसिद्ध है जिसमें एक रोटी को आपस में बाँट न कर सकने के कारण बन्दर के हाथों उन्हें पूरी रोटी गँवानी पड़ी है। भारत में फैली हुई जाति-पांति, लिंग भेद, ऊँच-नीच, भाषावाद, प्रान्तवाद आदि के नाम पर फैली हुई अलगाव की प्रवृत्तियाँ सब प्रकार अवांछनीय है। उनका जितनी जल्दी अन्त हो, एकता की भावनाएं जितनी जल्दी उदय हों उतना ही उत्तम है।

इस संदर्भ में निम्न कथाओं का मनन करना चाहिए।

साम्प्रदायिकता से हानि

एक बार एक ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहीं जा रहे थे। मार्ग में एक डाकू ने उन्हें देख लिया। उसने उनके सामान को लूटना चाहा किन्तु वह एक था और यात्री चार थे। उसे एक तरकीब सूझी। डाकू ने ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य की तो खूब प्रशंसा की और शूद्र को गाली देकर खूब पिटाई की और जो कुछ था छीन लिया। इसके पश्चात वैश्य और फिर क्षत्रिय, ब्राह्मण सभी का क्रमशः यही हाल किया। चारों से सब कुछ लूटकर डाकू चलता बना। चारों अपना मुंह लेकर चले गए। मार्ग में उनके गाँव का एक नाई मिला, उसे साराहाल सुनाया तो वह बोला आप लोग संगठित होकर रहते तो यह हालत नहीं होती। असंगठित समाज को इसी तरह हानि और अपमान सहना पड़ता है।

ब्राह्मणों का पतन कैसे हुआ ?

दो विद्धान पण्डित एक गृहस्थ के घर अतिथि हुए। एक विद्धान स्नान-गृह में गये थे। गृहस्थ ने दूसरे से उनके बारे में पूछ तो वह कहने लगे-"वह तो बिल्कुल बैल है।" पहला बाहर आ गया और दूसरा स्नान करने गया तो गृहस्थ ने उससे भी वही बात पूछी। दूसरा विद्धान बोला "वह तो पूरा गधा है।" दोनों भोजन के लिए बैठे तो गृहस्थ ने एक के आगे भूसा और दूसरे के आगे घास पटक कर बोला लीजिए महाराज बैल और गधे का भोजन हाजिर है। यह सुनकर दोनों बड़े लज्जित हुए। तब अच्छा भोजन परोसते हुए गृहस्थ ने समझाया महाराज विद्धान व्यक्ति एक दूसरे से ईर्ष्या-द्वेष नहीं किया करते।

फूट का परिणाम

एक बार कई पक्षी एक बहेलिये के जाल में फँस गये। पक्षियों ने सलाह की और एक साथ जाल लेकर उड़ गये। व्याध भी उनके पीछे दौड़ा। किसी साधू ने पूछा भाई अब इनके पीछे दौड़ने से क्या लाभ ? व्याध बोला-"महाराज जब तक ये पक्षी एक विचार और एक संगठन में हैं तभी एक जाल का बोझ उठा सकेंगे।" ऐसा ही हुआ। थोड़ी ही देर में-"कहाँ उतरे ?" के प्रश्न पर उनमें विवाद हो गया। किसी-किसी ने ढील दे दी और परिणाम यह हुआ कि वे जाल समेत नीचे गिरे और मारे गये। एकता में बड़ी शक्ति है।

एकता की आवश्यकता

पाण्डव जब वन में थे तो कौरवों का मुकाबला किसी जंगली जाति से हो गया। कौरव पकड़कर बन्दी बना लिये गए। यह सुनकर भीम बड़े प्रसन्न हुए। पर युधिष्ठिर को यह बात अप्रिय लगी उन्होंने कहा-हम आपस में भले ही पाँच और सौ हों किन्तु बाहरी लोगों के लिए एक-सौ पाँच हैं। यह कहकर उन्होंने जंगली लोगों से लड़कर कौरवों को छुड़ा दिया।

मार्ग की एक बड़ी बाधा

एक कुत्ता तेजी से चलता हुआ गंगा स्नान के लिए जा रहा था। रास्ते में किसी ने पूछा कुत्ते ! इतनी तेजी से चलते हुए तो तुम बहुत जल्दी गंगा पहुँच जाओगे। कुत्ते ने लम्बी साँस खींचते हुए कहा-गाँव-गाँव में बिरादरी के लोग मिलेंगे और वे मेरा रास्ता रोकने में कुछ उठा न रखेंगे अतएव मेरा तेज चलना भी उतना सार्थक न हो सकेगा जितना आप सोचते हैं।

कुल्हाड़ी का बेंट

एक मोटा मजबूत पेड़ कट कर जमीन पर गिर पड़ा। उसे इस तरह जमीन पर पड़ा देखकर एक रास्तागीर ने पूछा-भाई पेड़ तुम तो बहुत मजबूत थे। कल तक बड़ी शान से खड़े थे आज क्या हुआ जो इस तरह नीचे गिर जाना पड़ा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पेड़ ने दर्द भरे स्वर में कहा-मेरे वंश का एक लकड़ी का टुकड़ा कुल्हाड़ी का बेंट बन गया और उसके कारण मेरी जड़ कट गई। यदि वह लकड़ी का वेंट विरोधी से न मिल गया होता तो कुल्हाड़ी लोहे की होते हुए भी मेरा कुछ बिगाड़ न कर सकती।

ब्राह्मण: समहक् शान्तो दीनानां समुपेक्षक: ।
स्रवते तस्य ब्रह्मत्वं भिन्नभाण्डात्पयो यथा ।।

जो ब्राह्मण अपने आपको समदर्शी एवं शान्त कहकर अपने आराम के लिए दीन-दुर्बलों को अनुचित रीति से सताया जाना उपेक्षापूर्वक देखता रहता है उसका मिथ्या ब्रह्मज्ञान फूटे हुए बरतन से पानी की भाँति चू जाता है। अर्थात् शनै:-शनै: नष्ट हो जाता है।

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्व ब्राह्ममिदं जगत् ।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम् ।।

मनुष्य सब समान हैं। वर्णों के कारण उनमें कोई अन्तर या विशेषता नहीं होती क्योंकि समस्त प्राणी एक ही ब्रह्मा के द्वारा रचे गये हैं। संसार में सामाजिक व्यवहार में यह विभिन्नता पृथकता तथा वर्ण-भेद सब कर्म के आधार पर निर्मित हुआ है।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्य: कृत: ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्य: पदम्यां शूद्रो अजायत: ।।

इस मनुष्य समाज रूपी शरीर का ब्राह्मण मुख है, क्षत्रिय भुजा हैं, वैश्य मध्यभाग है और पैर शूद्र हैं।

न जात्या ब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव न ।
न च शूद्रो न वै म्लेच्छो भेदिता गुणकर्मभि: ।।

जाति से या जन्म से न कोई ब्राह्मण होता है न वैश्य होता है और न क्षत्रिय होता है। जाति से ही न कोई शूद्र होता है और न म्लेच्छ होता है अर्थात् सब एक समान होते हैं किन्तु गुण कर्म के भेद के कारण ही सब का अलग-अलग वर्ण हो जाता है। जो जैसे कर्म करेगा वैसा ही वर्ण उसे प्राप्त होगा।

शूद्रोऽपि शीलसंपन्नो ब्राह्मणादधिको भवेत् ।
ब्राह्मणो विगताचार: शूद्राद्धीनतरो भवेत् ।।

जो शूद्र होकर भी शील सम्पन्न है वह ब्राह्मण से अधिक मान्य होता है। जो ब्राह्मण होकर भी आचारहीन है वह शूद्र से भी नीच कहलाता है।

काम: क्रोधो भयं लोभ: शोकश्चिन्ता क्षुधा श्रम:।
सर्वेषां न: प्रभवति कस्माद्वर्णो विभज्यते ।।

काम, क्रोध, भय, लोभ, शोक, चिन्ता, क्षुधा, श्रम, यह हम सभी में होते हैं फिर वर्णों का विभाजन कैसे होता है क्यों भिन्नता होती है ?

स्वेदमूत्रपुरीषाणि श्लेष्मा पित्तं सशोणितम् ।
तनु: क्षरति सर्वेषां कस्माद्वर्णो विभज्यते ।।

स्वेद,(पसीना) मूत्र, मल श्लेष्मा (कफ) पित्त और शोणित यह सभी चीजें सब मनुष्यों के शरीर में ही समान रूप से हैं और सब का शरीर ही नष्ट होता रहता है फिर अलग-अलग विभाजन किस लिये होता है?

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत् ।
ब्रह्मणा पूर्व सृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम् ।।

सब मनुष्यों में या सब वर्णों में कोई विशेषता नहीं है क्योंकि यह सारा जगत ही ब्रह्म है और ब्रह्मा ने ही पहले रचा है । किन्तु कर्मों की भिन्नता से वर्ण भी पृथक्-पृथक् हो जाते हैं ।

गणिकागर्भसंभूतो वसिष्ठश्च महामुनि: ।
तपसा ब्राह्मणो जात: संस्करास्तत्र कारणम् ।।

गणिका (वेश्या) के गर्भ से उत्पन्न हुआ महामुनि वशिष्ठ तपस्या करके ब्राह्मण हो गया। वहाँ संस्कार को ही कर्म मानते हैं।

जातो व्याससस्तु कैवर्त्या: श्चपाक्यास्तु पराशर: ।
बहवोऽन्येपि विप्रत्वं प्राप्ता ये पूर्वमद्विजा: ।।

व्यास मुनि कैवर्त्य से उत्पन्न हुआ था तथा पाराशर श्वापकी से उत्पन्न हुआ था परन्तु शुभ कर्मो के कारण ब्राह्मण हो गये। इसी प्रकार अन्य भी बहुत से अब्राह्मण मनुष्य ब्राह्मण हो गये।

विश्वामित्रो वसिष्ठश्च मतंगो नारदादय: ।
तपोविशेषै: संप्राप्ता उत्तमत्वं न जातित: ।।

विश्वामित्र, वसिष्ठ, मतंग और नारदादि मुनि तप विशेष करने के कारण ही उत्तमता को प्राप्त हो गये किन्तु जाति से नहीं।

ततो ब्राह्मणतां यातो विश्वामित्रो महातपा:।
क्षत्रिय: सोऽप्यथ तथा ब्रह्मवंशस्य कारक: ।।

महातपस्वी विश्वामित्र तप के ही कारण ब्राह्मणता को प्राप्त हो गया। पहले वह क्षत्रिय था किन्तु बाद में ब्राह्मण वंश का प्रवर्तक बन गया। तपस्या ही इसका कारण है।

काक: पक्षिषु चांडाल: स्मृत: पशुषु गर्दभ: ।
नराणां कोऽपि चांडाल: स्मृत: सर्वेषु निन्दक ।।

पक्षियों में कौवा चाण्डाल होता है और पशुओं में गधा चाण्डाल होता है। मनुष्यों में कोई एक चाण्डाल नहीं होता जो भी निन्दक होते हैं वे सब चांडाल कहलाते हैं।

ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते ।
कृच्छाय तपसे चेह प्रेत्यानन्तसुखाय च ।।

ब्राह्मण का यह शरीर क्षुद्र कामनाओं के लिए नहीं हैं। वह तो इस लोक में घोर तप के लिये और परलोक में शाश्वत कल्याण के लिये ही है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वृत्तेन भवति चार्यो न धनेन न विद्यया ।
वृत्तस्थो योऽपि चांडालस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।।
–पद्म पु० सृष्टि खण्ड अ० ५०

धन और विद्या से कोई ब्राह्मण नहीं होता पर सदाचार सम्पन्न यदि चाण्डाल है तो देवता भी उसको ब्राह्मण समझते हैं।

पठन्तः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्र चिन्तकाः ।
सर्व व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् सपंडितः ।।
-म०भा०वन० ३१४/११०

पढ़ने वाले पढ़ाने वाले और भी शास्त्रचिन्तक ये तो व्यसनी समझो जो शास्त्रानुसार चलने वाला है वही पण्डित है।

चतुर्वेदोऽपि दुर्वृतः स शूद्रादतिरिच्यते ।
योग्निहोत्रपरो दान्तः स ब्राह्मण इति स्मृतः ।।

चारों वेदों का जानकार यदि दुराचारी है तो वह शूद्र से भी गया बीता है। जो अग्निहोत्री (काम क्रोध लोभादि को हवन करने वाला) और इन्द्रिय निग्रही है वह ब्राह्मण है।

बहवो यत्र नेतारः सर्वे पंडितमानिनः ।
सर्वे महत्त्व मिच्छन्ति तदवृन्दमवसीदति ।।

जहाँ बहुत से नेता होते हैं और सभी अपने आपको पण्डित समझने वाले तथा अहंकारी होते हैं और सभी अपनी प्रशंसा चाहते हैं वह समाज शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

बड़े बड़ाई ना करे, बड़े न बोले बोल ।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख हमारा मोल ।।
वैष्णव हुआ तो क्या हुआ, माला मेली चारि ।
बाहर कंचन सा रहा, भीतर भरी भंगारि ।।
एक धरहि घर मलिनता, अपर स्वच्छ करि जात ।
द्वै महँ कौन अछूत है, नीके निर्णहु तात ।।
क्षत्री सो जो क्षत्र को धर्म करैं निर्वाह ।
पर रक्षा हित ना करै जीवन की परवाह ।।
पंकज उपजै पंक में, सौरभ अति सुखकार ।
होत महत्व न जन्म को गुण कारण सुविचार ।।
है जहँ आठ कनौजिया, नौ चूल्हे की रीति ।
तहाँ परस्पर प्रीति की, कहा पढ़ावत नीति ।।
ऊँचे कुल क्या जन्मिया, जो करनी ऊँच न होय ।
सुबरन कलस सुराभरी, साधू निंदै सोय ।।
जाति न पूछे साधु की, पूछि लीजिये ज्ञान ।
मोल करो तरबार का पड़ा रहन दो म्यान ।।

श्रीरामचन्द्रजी भक्ति भाव के मुकाबले में जाति-पांति को महत्व नहीं देते थे -

कह रघुपति सुनु भामिन बाता ।
मानउँ एक भगति कर नाता ।।
जाति पांति कुल धर्म बड़ाई ।
धन बल परिजन गुन चतुराई ।।
भगति हीन नर सोहइ कैसा ।
बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ।।

।। सातवाँ प्रवचन समाप्त ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आठवाँ- प्रवचन

अपना उद्धार आप करें

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।। ५।।

-अध्याय ६ श्लोक ५

मनुष्य आत्मा से आत्मा का उद्धार करे। आत्मा को नीचे न गिरावे। क्यों कि आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य यनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ।। ६।।

-अध्याय ६ श्लोक ६

निस्सन्देह उस आत्मा का आत्मा बन्धु है जिसने आत्मा से आत्मा को जीता हुआ है। किन्तु अनात्मा (न जीते हुए आत्मा) का आत्मा निस्सन्देह शत्रु वत् शत्रुता करता है।

भगवान ने मनुष्य को उन सब विशेषताओं से परिपूर्ण बना कर इस पृथ्वी पर भेजा है जिनके आधार पर वह अपना उद्धार-उत्थान, बड़ी सरलता से कर सकता है। उसके शरीर की रचना अद्भुत है उसके मनकी रचना अलौकिक है, उसका अन्तरात्मा ऐसी शक्ति और सामर्थ्य से परिपूर्ण है, जिसके आधार पर अपने जीवन में स्वर्ग का और अपने समाज में शान्ति का अवतरण कर सकता है। पर यदि हम अपनी सामर्थ्य और शक्ति को भूले ही रहें उसका उपयोग ही न करें, तो गया गुजरा, दुख अभावों में ग्रस्त दीन-हीन जीवन बिताना ही पड़ेगा।

दूसरों को हम अनेक शिक्षाएँ देना चाहते हैं। उनके मार्ग-दर्शक बनाना चाहते हैं, अन्य व्यक्तियों को अपना आज्ञानुवर्ती बनाना चाहते हैं, पर कितने आश्चर्य की बात है कि हम अपने मन और इन्द्रियों को अनुशासन में नही कर पाते। दूसरों को आज्ञानुवर्ती बनाकर जितना प्रयोजन हम सिद्ध कर सकते हैं उससे अनेकों गुना सत्परिणाम हम अपने आपको वश में करके उठा सकते हैं। निम्न स्तर का जीवन जीने को आज हमें इसीलिए विवश होना पड़ता है कि हमारा आन्तरिक स्तर अनेक दोष दुर्गुणों से ग्रसित बना हुआ है। भीतर की दुर्बलताएँ ही बाह्य जीवन को दीन दुखी बनाये रखने के लिए विवश करती हैं। जो भीतर से छोटा है, ओछा है, उसे बाह्य जीवन में भी दुख दारिद्रों से शोक सन्तापों से, कुण्ठाओं और चिन्ताओं से भरा जीवन बिताने के लिए विवश होना पड़ेगा।

गीताकार ने अर्जुन को, और उसके माध्यम से मनुष्य मात्र का यह प्रेरणाएँ दी हैं कि वह अपना उद्धार आप करे। अपने उत्कर्ष के लिए स्वयं कटिबद्ध हो। अपने उत्थान और पतन की जिम्मेदारियाँ स्वयं वहन करे। मनुष्य को यह विश्वास करना ही चाहिये कि यदि उसे ऊँचा उठना है तो उसमें उसका निज का पुरुषार्थ ही प्रधान कारण होगा। यदि वह गई गुजरी स्थिति में पड़ा रहता है तो भी इसमें उसकी ही जिम्मेदारी है। दूसरों का सहयोग असहयोग, सामयिक परिस्थितियों का अनुकूल प्रतिकूल होना भी उत्थान-पतन में थोड़ा सहायक हो सकता है पर उनका प्रभाव स्वल्प ही होता है। शक्तियों का स्रोत तो अपने भीतर ही है। जब वह खुल पड़ता है तो बाहरी असहयोग या बाधाओं को उफनती नदी द्वारा कूड़ा करकट, बहा ले जाने की तरह मार्ग में से हटाकर दूर फेंक देता है। इसी प्रकार यदि आत्मबल बढ़ा हुआ होतो साहस धैर्य और लगन की कमी न रहे सद्गुणों समुचित मात्रा में विद्यमान हों वैसी परिस्थितियाँ सहज ही बनती चली जाती है जिसमें आगे बढ सकना ऊपर उठ सकना सरल बन जाय। ईश्वर मनुष्य की सहायता भी करता है उपर करता तभी है जब यह देख लेता है कि यह वस्तुतः इसका पात्र है सहयोग करने वाले और आगे बढ़ने में मदद करने वाले सज्जनों की भी इस दुनियाँ में कमी नहीं हैं पर वह मिलती तभी है जब मनुष्य अपनी पात्रता को कसौटी पर कस कर खरा सिद्ध कर देता है। सहायता का उपयोग भी तभी है जब मनुष्य उसका पात्र हो अन्यथा कीचड़ में दूध डालने की तरह वह सहायता भी निष्फल चली जाती है। कुपात्र की सहायता से उसका कुछ लाभ तो होता नहीं उलटे सांप को दूध पिलाने की तरह उसकी आलस्य, अहंकार जैसी दुष्प्रवृत्तियाँ और बढ़ जाती हैं। इसी से जिसका व्यक्तित्व सहायता का पात्र न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो उसे आमतौर से न लोगों की सहायता मिलती है न ईश्वर की।

प्रगति के पथ पर बढ़ चलने की परिस्थितियाँ उपलब्ध हों उसके लिए दूसरों से याचना की आवश्यकता नहीं। देवताओं से भी कुछ माँगना व्यर्थ है क्योंकि वे भी सद्पात्र को ही सहायता करने के अपने नियम में बंधे हुए हैं। मर्यादाओं का उल्लघन करना जिस तरह मनुष्य के लिये उचित नहीं है उसी तरह देवता भी अपनी यही मर्यादाएं बनाये हुए हैं कि जिसने अपने व्यक्तित्व के परिष्कृत करने की कठोर काम करने की तपश्चर्या की हो केवल उसी पर अनुग्रह किया जाय और उसे ही किसी तरह का वरदान दिया जाय। मांगने से पहले उस पात्र को तपस्या करनी पड़ती है जिससे डालने पर उस वस्तु को रखा जा सके। यदि पात्र नहीं है तो किसी के देने पर भी वह वस्तु ग्रहण न की जा सकेगी। गरम दूध कोई दे रहा हो तो लेने के लिये कोई पात्र तो चाहिए ही। ईश्वरी या दैवी अनुकम्पाएँ भी गरम दूध की तरह हैं उन्हें लेने को पहले आवश्यक पात्रता का सम्पादन करना ही चाहिए। यह प्राथमिक योग्यता जहाँ उपलब्ध हुई कि ईश्वरीय प्रेरणा एवं व्यवस्था के अनुसार दूसरों की सहायता भी मिलनी अनिवार्य है और वह अपना उद्धार करने को इच्छुक अभीष्ट परिस्थितियाँ सहज ही प्राप्त करते हुए तेजी से आगे बढ़ता जाता है। संसार का इतिहास इसी तथ्य की पग-पग पर साक्षी दे रहा है।

अपनी अवनति का हीन स्थिति में पड़े रहने का दोष किसी दूसरे पर मढ़ना उचित नहीं। ग्रहदशा का विपरीत होना भाग्य की हीनता दूसरों के असहयोग को अपनी प्रगति में बाधक मानना अपने आपको धोखा देना मिथ्या आत्म संतोष करके झूंठ मूठ मन बहलाने के लिये भले ही कुछ काम का हो, वस्तुत: इन बातों में कोई तथ्य नहीं है। संसार में अगणित व्यक्ति ऐसे भी है जो गई गुजरी परिस्थतियों में उत्पन्न हुए, अभावों ने जिनका मार्ग अवरुद्ध कर रखा था, पर अपने प्रबल पुरुषार्थ मानवीय एवं उज्ज्वल व्यक्तित्व के आधार पर तेजी के साथ आगे बढ़ते चले गये और उन्नति के उस उच्च शिखर पर जा पहुँचे जिसे देखकर उनके अकर्मण्य साथियों को आश्चर्य चकित रह जाना पड़ा।

भेड़ों के झुण्ड में पले हुए सिंह के भेड़ों की तरह बने रहने की कथा प्रसिद्ध है। एक व्यक्ति का सोने का कंठा गले में बंधा था और उसका विस्मरण हो जाने के कारण वहउसे खोया अनुभव करता था उसी तरह हम भी आत्म विस्मृत हुए बैठे हैं। अपनी शक्तियों और संभावनाओं के सम्बन्ध में अनजान रहने के कारण हम गया गुजरा जीवन निर्वाह करते हैं और यह मान बैठते हैं कि हमारे भाग्य में इतना ही लिखा है, हमारी योग्यता इन्ही परिस्थतियों में रहने की है। इस मिथ्या अवसाद एवं संभ्रम को दूर करने की प्रेरणा गीताकार ने दी है और कहा है ! हे अर्जुन मनुष्य ! अपना उद्धार आपकर अपने आपको गिरने न दे। अपना आपा ही अपना मित्र और वही अपना शत्रु है। जिसने अपने को जीत लिया सुधार लिया उसका आपा ही उसका मित्र बनकर अगणित विभूतियों के उपहार प्रदान करता है और जिसने अपने आपे को गिरा लिया वह स्वयं ही अपना शत्रु है। उस शत्रु से इतनी अधिक हानि होने की संभावना रहती है जितनी संसार के सारे शत्रु मिलकर भी मनुष्य का अहित नहीं कर सकते।

अपना उद्धार करना संसार का उद्धार करने का प्रथम चरण है। समाज या संसार कोई अलग वस्तु नहीं व्यक्तियों का समूह ही समाज या संसार कहलाता है। यदि हम संसार का उद्धार या कल्याण करना चाहते हैं तो वह कार्य अपने आप से आरम्भ करना चाहिए। क्योंकि अपना आपा ही सब से निकट है। अपने को सुधारना सब से अधिक सरल एवं सम्भव हो सकता है। दूसरे लोग कहना मानें या न मानें बताये हुए रास्ते पर चलें या न चलें यह संदिग्ध है पर अपने ऊपर तो अपना नियन्त्रण है ही। अपने को तो अपनी मर्जी के अनुसार बना या चला सकते हैं। इसीलिए विश्व कल्याण का कार्य सब से प्रथम आत्म-कल्याण का कार्य हाथ लेते हुए ही आरम्भ करना चाहिए।

संसार का एक अंश हम भी हैं । अपना जितना ही सुधार हम कर लेते हैं उतने ही अंशों में संसार सुधर जाता है। अपनी सेवा भी संसार की ही सेवा है एक बुरा व्यक्ति अनेकों तक अपनी बुराई का प्रभाव फैलाता है और लोगों के पाप तापों एवं शोक सन्तापों में अभिवृद्धि करता है। इसी प्रकार एक अच्छा व्यक्ति अपनी अच्छाई से स्वयं ही लाभान्वित नहीं होता वरन् दूसरे अनेकों लोगों की सुख-शान्ति बढ़ाने में सहायक होता है। सामाजिक होने के कारण मनुष्य स्वभावत: अपना प्रभाव दूसरों पर छोड़ता है। फिर जो जितना ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनस्वी होगा वह अपनी अच्छाई या बुराई का भला-बुरा प्रभाव भी उसी अनुपात से संसार में फैलावेगा। इस प्रकार मनुष्य अपना सुधार करने में लग जाय तो वह संसार का बहुत भारी सुधार कर सकता है। अपनी सच्ची सेवाविश्व-सेवा का ही एक अंग मानी जा सकती है संकुचित भौतिक स्वार्थो की इसीलिए ऋषियों ने निन्दा की है कि उनमें ग्रस्त होकर मनुष्य अपने धर्म कर्तव्यों की उपेक्षा करने लगता है।

माना कि दूसरों की गलतियाँ और बुराइयाँ भी हमें परेशान करती हैं और अनेक प्रकार की बाधाऐ खड़ी करके प्रगति का द्वार रोकती हैं। संसारमें बुरे लोग हैं और उनमें बुराइयाँ भी कम नहीं हैं इस बात से कोई इन्कार नहीं करता पर साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य है कि कोई वस्तु सजातीय एवं अनुकूल परिस्थितियों में ही बढ़ती एवं पनपती है। बुराई को अपना रूप प्रकट करने का अवसर तभी मिलेगा जब वैसी बुराई अपने अन्दर भी हो। अपना स्वभाव उत्कृष्ट हो तो बुरे लोगों को भी झक-मार कर निरस्त होना पड़ता है।

क्रोधी मनुष्य को आक्रमण करने का अवसर उसी पर मिलता है जो स्वयं भी क्रोधी हो। क्रोध से क्रोध बढता है और उसकी क्रिया प्रतिक्रिया द्वन्द्वयुद्ध का रूप धारण कर लेती है। यदि एक व्यक्ति नम्र, सहनशील, हंस-मुख, क्षमाशील और दूरदर्शी हो तो क्रोधी स्वभाव का मनुष्य भी उसे उतेजित नहीं कर पाता। वह अपनी नम्रता और सज्जनता से उसे शान्त कर देता है और क्रोध का जो मूल कारण था उसके समाधान का भी उपाय सोच लेता है। इसके विपरीत यदि दोनों ही क्रोधी हुए तो कोई बड़ा कारण न होते हुए भी केवल शब्दों की उच्छृंखलता लेकर परस्पर लड़ मरते हैं और मित्रता शत्रुता में बदल जाती है।

दुराचारी की दाल वहीं गलती है जहाँ सदाचार का पक्ष दुर्बल हो। ठग हमेशा लोभी पर हाथ साफ करते हैं। दरिद्रता, आलसी के घर आती है ,बीमारियाँ, असंयमी पर हावी होती हैं, भय डरपोक को सताता है, अदूरदर्शी एवं जल्दबाज को चिन्ताऐ घेरती हैं। यदि अपना व्यक्तित्व सच्चा खरा और मजबूत हो तो इन बाहरी विकृतियों को उलटे पांवों लौटना पड़ेगा। पत्थर पर तलवार का प्रहार क्या सफल होगा ? ताली दोनों हाथों से बजती है। मक्खी गन्दगी पर बैठती है। घाव होगा तो उसमें कीड़े भी पड़ेंगे। यदि अपना पक्ष पहले से ही स्वच्छ रखा जाय तो सारे संसार के दोष मिल कर भी व्यक्ति का कुछ नहीं बिगाड़ सकते। चन्दन के पेड़ में लिपटे रहने वाले अनेकों सर्प उसे विषैला नहीं बना सकते। दुष्टों की दुष्टता सज्जनों को खरोंच भले ही पहुचावे पर उन्हें परास्त नहीं कर सकती। इतिहास का पन्ना-पन्ना इस बात का साक्षी है कि सज्जनता और दुर्जनता के युद्ध में सज्जनता को नहीं दुर्जनता को ही परास्त होना पड़ा है।

आहार और विहार के असंयम की कठोर समीक्षा करते हुए यदि अपना रहन-सहन सुव्यवस्थित करने पर ध्यान दिया जाय, जिह्या और कामेन्द्रिय पर काबू रखा जाय, अनियमितता को हटा कर दिनचर्या को सुव्यवस्थित बनाया जाय, आलस्य को छोड़ कर समय के एक-एक क्षण को मनोयोग पूर्वक निर्धारित कार्यक्रम में संलग्न रखा जाय तो शरीर का बिगड़ा हुआ ढंग देखते-देखते कुछ ही दिनों में ठीक हो सकता है और बीमारी की कमजोरी के कारण जो आये दिन चिकित्सक के दरवाजे पर नाक रगड़नी पड़ती है उससे सहज ही छुटकारा मिल सकता है। दवाई का खर्च, अस्वस्थता के कारण पीड़ा एवं परेशानी, काम का हर्ज, सम्बन्धियों का तिरस्कार, कुरूपता, बुढ़ापा एवं अकाल'-मृत्यु की छाया इन सब विपत्तियों का तीन चौथाई निवारण मनुष्य स्वयं कर सकता है। यदि वह असंमय से छुटकारा पा सके तो अस्वस्थता भी उसका पीछा जरूर छोड़ देगी।

मानसिक दृष्टि से अगणित व्यक्ति चिन्ता, भय, शोक, क्षोभ, आवेग, उत्तेजना, ईर्ष्या, द्वेष, निराशा, आशंका आदि में ग्रस्त हो कर उद्विग्न जीवन बिताते हुए नारकीय यन्त्रणायें सहते रहते हैं। इनके कारणों की तलाश करने पर वस्तुस्थिति बहुत ही सामान्य होती है। आत्म हत्या तक कर बैठने वालों के संक्षोभ का कारण तलाश करने पर बात बहुत ही सामान्य सी निकलती है कई बार तो इतनी छोटी होती है कि उसे उपेक्षा से गुजारा जा सकता था, या कोई दूसरा उपाय उस क्षोभ से बच निकलने का आसानी से ढूँढा जा सकता था। पर उतावली एवं आवेश में वे किंकर्तव्यविमूढ़ होकर अपनी विवेकशीलता खो बैठे और न करने लायक कर गुजरे। ऐसे उत्पाती अधीर और आवेशग्रस्त मनुष्य साधारण घटनाओं को लेकर विक्षुब्ध बने फिरते हैं और अपने लिए तथा अपनेसम्बन्धित लोगों के लिये अशांति की ज्वाला प्रज्वलित करते रहते हैं। यदि इस स्थिति की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भयानकता को मनुष्य समझे और अपने को धैर्यवान् गम्भीर, विचारशील एवं हँस-खेल कर कठिनाइयों को काट देने की आदत बना ले तो निश्चय ही उसका मन सदा सन्तुलित और प्रसन्न बना रहे। कुढ़ने की अपेक्षा समस्या का हल वह अधिक आसानी से सोच सके और गई गुजरी पस्थितियों में भी आशा एवं उत्साह की कोई किरण उपलब्ध कर ले।

मन को सन्तुलित करने के लिए किया हुआ प्रयत्न जीवन के सारे स्वरूप को ही बदल देता है। नरक को स्वर्ग में परिवर्तित करने की कुन्जी मनुष्य के हाथ में है। सोचने का तरीका यदि बदल डाले, खिलाड़ी की भावना रख कर जिन्दगी का खेल खेले, नाटक के पात्रों की तरह अभिनय का आनन्द लेते हुए दिन गुजारे बुराई में से भलाई और निराशा में से आशा की किरणें ढूंढ़ने का अभ्यास करे तो कोई कारण नहीं कि रोता रहने वाला मनुष्य हंसते खिलते गुलाब के रूप में परिणित होकर न केवल अपनी ही मानसिक समस्या हल कर ले वरन् पड़ौसियों और सम्बन्धियों के लिये भी प्रसन्नता,आशा एवं प्रेरणा का केन्द्र बन जाय ।

कुमार्ग पर ले जाने वाली अनेकों बुराइयाँ जगह-जगह मौजूद हैं और वे अपना क्षेत्र बढ़ाने के लिए भी सक्रिय रहती हैं। अनकों व्यक्ति उनके चंगुल में फँसते हैं और अपने आपको उस रंग में इतना रंग लेते है कि फिर इसजाल से निकल सकना कठिन हो जाता है। जुएबाजी के, शराबखोरी के, सिनेमावाजी के, व्यभिचार के, आवारागर्दी के, शैतानी के, अड्डे हर जगह पाये जाते हैं और अपना समय, स्वास्थ्य, धन लोक परलोक सभी कुछ गँवा कर लोग छूँछे हो जाते हैं। इससे उन बुराइयों की शक्ति और सफलता का अन्दाज सहज ही लगाया जा सकता है।

पर यह प्रभाव खास तरह की उथली मनोभूमि के लोगों पर ही पड़ता है वे ही इनके चंगुल में फँसते और बर्बाद होते हैं। उनका प्रभाव सभी पर पड़े ऐसी बात नहीं है। जहाँ एक व्यक्ति इन बातों में आसानी से ग्रस्त हो जाता है, वहाँ उसी क्षेत्र का उसी का पड़ौसी, उसी परिस्थितियों का व्यक्ति उन बातों से सर्वथा दूर रहता है। दूर ही नहीं रहता वरन उन बुराइयों से घृणा भी करता है उनका विरोध भी। इस प्रकार यह स्पष्ट देखा जाता है कि जहाँ वह व्यक्ति उन बुराइयों की चपेट में अपनी आन्तरिक दुर्बलता के कारण सहज ही आ गया वहाँ दूसरा व्यक्ति उनसे अप्रभावित ही नहीं रहा वरन् उनके उन्मूलन में भी बहुत दूर तक सफल हुआ। इससे वह अन्दाज भी लगता है कि बुराइयों में उनके अडडों में अपना प्रभाव विस्तार करने की जो शक्ति हैं वह वहीं तक सीमित हैं जहाँ व्यक्तियों की मानसिक दुर्बलताएँ उनके अनुकूल हों । यदि मनोभूमि परिष्कृत हो तो उन बुराइयों का पनपना ही नहीं ठहरना भी असम्भव हो जाता है।

दुनियाँ में जो काँटे-कंक्कड़ फैले हुए हैं उन्हें बीनकर अपने सभी यात्रा के मार्गो को हम निरापद बनाने का प्रयत्न करें तो इसमें सफलता मिल सकना कठिन है क्योंकि कांटे, कक्कड़ों की संख्या अधिक है। विभिन्न रास्ते जिन पर हमें समय-समय पर चलना पड़ता है उनकी लम्बाई भी हजारों मील बैठती है। कांटे बीनने को हम खड़े भी हों तो जीवन की अवधि भी इतनी लम्बी नहीं है कि जब तक सब कांटे बीने जा सकते हों तब तक जीवित रहें फिर यदि जीवित भी रहें तो इसका भी कोई निश्चय नहीं कि जब तक यह बोने जाने का प्रक्रिया पूर्ण होगी तब तक फिर और नये कांटे उस मार्ग पर न बिखर जायेंगे। इन परिस्थितियों में यही उचित प्रतीत होता है कि कांटे बीनने की प्रकृया को सीमित करके हम अपने पैरों में जूते पहनने का उपाय पसन्द करें। यह अपेक्षाकृत सरल और सीधा उपाय है। थोड़ा पैसा और थोड़ा प्रयत्न करके ही अच्छे जूते पहन सकते है और फिर चाहे किसी मार्ग पर कितने ही कांटे-कंक्कड़ क्यों न बिखरे पड़े हो, निर्भय होकर चले जा सकते हैं। जूते के तले उन काँटे कंक्कड़ का मुँह कुचलते चलेंगे और हमारे पैरों को तनिक भी आघात न पहुँचने देंगे।

संसार के हर दुर्जन को सज्जन बनाने को, हर बुराई के भलाई में बदल जाने की आशा करना वैसी ही आशा है जैसी सब रास्तों पर से काँटे-कंक्कड़ हट जाने की। अपनी प्रसन्नता और सन्तुष्टि का, यदि हमने इसी आशा को आधार बनाया हो,तो निराशा ही हाथ लगेगी। हाँ, यदि हम अपने स्वभाव एवं दृष्टिकोण को बदल लें तो यह कार्य जूता पहनने के समान सरल होगा और इस माध्यम से हम अपनी प्रत्येक परेशानी को बहुत अंशो में हल कर सकेंगे।

अपने स्वभाव और दृष्टिकोण में परिवर्तन कर सकना कुछ समयसाध्य और निष्ठासाध्य अवश्य है, पर असम्भव तो किसी भी प्रकार नहीं है। मनुष्य चाहे तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विवेक के आधार पर अपने मनको समझा सकता है, विचारों को बदल सकता है और दृष्टिकोण में परिवर्तन कर सकता है। इतिहास के पृष्ठ ऐसे उदाहरणों से भरे पड़े हैं जिनसे प्रकट है कि आरम्भ से बहुत हलके और ओछे दृष्टिकोण के आदमी अपने भीतर परिवर्तन करके संसार के श्रेष्ठ महापुरुष बने हैं, इसी प्रकार ऐसे लोगों की संख्या भी कम नहीं है जिनके विचार जब तक ऊँचे रहे तब तक प्रतिष्ठा के उच्च आसन अवस्थित रहे पर जब उनका अन्तःकरण कलुषित हो गया, विचार घटिया होगये तोउनका जीवन-क्रम भी पतनोन्मुख हो गया और वे अधोगति को प्राप्त हुए। सामाजिक नैतिक, धर्मिक और राजनैतिक विचारों में अनेक बार परिवर्तन करने पड़ते हैं, इसी प्रकार यदि मनुष्य चाहे तो विभिन्न समस्याओं पर विचार करने के अपने तरीके को सोचने के ढंग को बदल सकता है। अपनी विचार शैली की त्रुटियों को समझ सकना और उनके सुधार में संलग्न होना बुद्धिमत्ता और उच्च साहस का काम है, लेकिन असम्भव नहीं माना जा सकता।

जीवन के उत्थान एवं पतन का केन्द्र मन है। यह मन जिधर चलता है जिधर इच्छा और आकांक्षा करता है उधर ही उसकी अपनी एक दुनियाँ बनकर खड़ी हो जाती है। उसमें ऐसा अद्भुत आकर्षण एवं चुम्बकत्व है कि जिससे खिंचती हुई संसार की वैसी ही वस्तुएँ, घटनायें साधन सामिग्री, मानवीय एवं दैवी सहायता एकत्रित हो जाती है जैसी कि उसने इच्छा एवं कामना की थी। कल्पवृक्ष की उपमा मनको ही दी गई। पृथ्वी का कल्पवृक्ष यही है। उसमें ईश्वर ने यह शक्ति विशाल परिणाम में भर दी है कि जैसा मनोरथ करें वैसे ही साधन जुट जांय और उसी पथ पर प्रगति होने लगे। मन को ही कामधेनु कहा गया है। यही कामना भी करता है और वही उनकी पूर्ति के साधन जुटा लेता है।

मन को कल्पवृक्ष कहा गया है और इस पर चार फल धर्म अर्थ काम मोक्ष- लगते हैं, ऐसा बताया गया है। दूसरों की सेवा करने से केवल धर्म ही प्राप्त हो सकता है, पर अपनी, अपने मन की सेवा करने से जब वह सुधर जाता है, सन्मार्ग पर चलने लगता है तो धर्म लाभ के अनेकों अवसर तो प्राप्त होते ही हैं साथ ही जीवन की प्रत्येक दिशा में उन्नति एवं सफलता का द्वार खुल जाता है और सब ओर से आनन्द तथा प्रसन्नता जनक परिस्थितियाँ उपजती दिखाई देने लगती हैं। ऐसी स्थिति में बुद्धिमत्ता इसी में दिखाई पड़ती है कि पहले सेवा करने के लिए कटिबद्ध हुआ जाय।

अपनी आलोचना कर सकना, आत्म-निरीक्षण करके अपनी बुराइयाँ ढूँढ़ सकना, और उन्हें सुधारने के लिए तत्पर हो सकना सचमुच ही एक बड़ी बहादुरी और दूरदर्शिता का काम है। जिसमें इतना साहस आ गया उसे सच्चे अर्थो में आध्यात्मिक व्यक्ति कहा जा सकता है। आत्म-कल्याण की पहली सीढ़ी आत्म-निरीक्षण और दूसरी आत्म-सुधार है। जो अपनी समीक्षा करने और अपना सुधार कर सकने की आवश्यकता को समझता है और उसके लिए ईमानदारी से तत्पर रहता है वह गिरी हुई स्थिति में नहीं पड़ा रह सकता। उसके जीवन का विकास होने ही वाला है उसे प्रगति के पथ पर चलते हुए एक दिन महापुरुषों की श्रेणी में अपनी गणना कराने का अवसर मिलने ही वाला है।

हमें अपने गुण, कर्म एवं स्वभाव का परिष्कार करना चाहिए। अपनी विचार पद्धति एवं गति विधि को सुधारना चाहिए। जिन कारणों से निम्न स्तरीय जीवन बिताने को विवश होना पड़ रहा है उन्हें ढूँढना चाहिए और साहस एवं मनोबलपूर्वक उन सभी कारणों के कूड़े-कचरे को मन मन्दिर में से झाड़ बुहार कर बाहर फैंक देना चाहिये। हम अपने उद्धार के लिए-उत्थान के लिए-कटिबद्ध होंगे तो सारा संसार हमारी सहायता करेगा।

श्रम और निष्ठा से सफलता

तप कर ! तप कर !!

ब्रह्माजी कमल के फूल पर बैठे हुए चिन्तन में लीन थे। वे सोच रहे थे सृष्टि का निर्माण कैसे करूँ। इसी असमंजस में पड़ें हुए ब्रह्मा को एक आकाशवाणी सुनाई दी जो कह रही थी- "तपकर ! तपकर! आकाशवाणी को ईश्वरीय आदेश मानकर तप में संलगन हो गए। उन्होंने लम्बे समय तक घोर तप किया ओर उसी के बल पर उन्हें सृष्टि के निर्माण की क्षमता प्राप्त हुई। पुरुषार्थ और साहस करके ही ब्रह्माजी ने कुछ पाया था। यही मार्ग बह्मा द्वारा रचे गये प्रत्येक प्राणी के लिए है। उद्योगी मनुष्य उन्नति करते एवं सुख पाते हैं और अकर्मण्य व्यक्ति भाग्य को दोष देकर रोते झींकते जिन्दगी पूरी करते हैं। प्रगतिशीलों के लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आज भी ईश्वर की आकाशवाणी का एक ही सन्देश है- तपकर ! तपकर !

श्रम के बाद सफलता

महर्षि धन्वन्तरि की पीठ पर एक घाव हो गया। उसकी दवा बनाने के लिए जडी बूटियों की तलाश करने लगे। दूरदूर तक घूमकर सैकडों जडी बूटियों के गुण दोष ढूँढ डाले। एक दिन भ्रमण कर रहे थे तो एक जडी बोली महाराज ! मैं आपके रोग की औषधि हूँ। धन्वन्तरि बोले इतने दिन तक क्यों नहीं बोली, मैं कितना मारा मारा घूमता रहा। जडी बोली महाराज ! अनायास ही मिल जाती तो इतना बडा शोध कार्य आप कैसे करते ? श्रम और सघर्ष के बिना आज लोक कल्याण की शक्ति कैसे पाते ?

अटूट निष्ठा

हिमाँचल कन्या पार्वती ने शकंर को अपना पति चुनने का निश्चय कर लिया। इसके लिए पार्वती कठोर तप में लीन हो गई। शंकरजी लम्बी समाधि में लीन हो गये फिर भी पार्वती अपने दृढ निश्चय से नही हठी और शंकरजी को अपना पति बनाने की लगन में तप करती रही। सप्तर्षियों ने पार्वती की परीक्षा ली इस पर उन्होंने कहा- "मैं शंकरजी को ही अपना पति बनाऊँगी इसके कारण चाहे मुझे आजीवन कुमारी ही क्यों न रहना पड़े।" अन्त में अपनी कठोर तपस्या से पार्वती ने शंकर जी को प्रभावित कर लिया ओर उन्हें अपना पति बनाया।

कलि का साम्राज्य कैसे बढ़ा ?

सतयुग धरती की ओर बढ़ रहा था। यह देखकर कलियुग ने अपने सहायकों की सभा बुलायी। किसी ने कहा- मैं पृथ्वी पर जाकर धन का लालच फैला दूँगा, किसी ने कहा- हम लोगों को कामनाओं में फॅसा देंगे। किसी ने कामिनी का दर्प दिखाया, पर कलि को सन्तोष न हुआ। एक बुड्ढा सहायक एक कोने में बैठा था। वह बोला मै जाकर लोगों में निराशा और आलस पैदा कर दूगाँ। उनके साहस को नष्ट कर दूँगा , बस फिर वे किसी काम के न रहेंगे और न वे किसी बुराई को दूर करने के लिये संघर्ष कर सकेंगें और किसी अच्छाई को उपार्जित करने का साहस उन में न रहेगा। इस वृद्ध सहायक की बात कलि महाराज को बहुत पसन्द आई और उसे अपना प्रधान मन्त्री बना दिया आज के निराश और आलसी लोग कलि महाराज की प्रजा इसी प्रकार बने हुए हैं। इन परिस्थितियों में बेचारा सतयुग ठहरता ही कहाँ ?

अपना बचाव आप करें

जातक कथा है कि- कुम्मार गाँव के समीप श्रमण महावीर तप साधना में संलग्न ध्यानरत बैठा था। उधर पशु चराने वाले ग्वाले यह सोचकर अन्यत्र चले गये कि यह श्रमण हमारे पशुओं की देखभाल करता रहेगा। चरवाहे बहुत देर बाद लौटे और अपने पशु उधर ने देखें तो श्रमण को मारने सताने को तैयार हो गये। उस पर वहाँ के एक सज्जन व्यक्ति इन्द्रसेन ने उसे बचाया।

यह सम्वाद लेकर इन्द्रसेन भगवान् महावीर के पास आये तो उन्होंने गम्भीर होकर कहा- भन्ते, तुमने अपना कर्तव्य पालन कर उचित ही किया। पर श्रमण महावीर अनुचित दोषारोपड़ को सहन करता चुप क्यों बैठा रहा?

भगवान ने अपने शिष्यों को सम्बोधित करते हुए कहा- दूसरों की सहायता की आशा पर आत्म रक्षा के लिए हमें बैठे न रहना चाहिए। वरन् अपना बचाव आप करना चाहिए।

जैसा मनुष्य वैसा उसका संसार

भलाई और बुराई मनुष्य के अपने अन्दर ही स्थिर होती है और इन्हीं की परछाई बाह्य जीवन में पडती है। गुरु द्रोणाचार्य ने एक बार युधिष्ठिर को एक बुरा व्यक्ति और दुर्योधन को एक अच्छा व्यक्ति ढूँढकर लाने के लिए कहा। शाम को दोनों हारे थके घर पर आये लेकिन अकेले। पूछने पर युधिष्ठिर बोले- "गुरुदेव ! मुझे कहीं भी कोई बुरा व्यक्ति नजर नहीं आया सब भले ही भले थे।" दुर्योधन ने कहा-"मुझे एक भी भला व्यक्ति नजर नहीं आया सब बुरे ही बुरे मिले।" मनुष्य का जैसा अपना अन्तर होता है बाह्य जीवन में भी वैसा ही दिखायी देता है यदि हम बुरे होंगे तो अपने सम्पर्क का वातावरण भी बुरा ही बनता रहेगा।

तप की महान शक्ति

देवताओं और ऋषियों ने जो आत्मबल एवं उच्च पद प्राप्त किया था, उसके पीछे उनकी पुरुषार्थ परायणता ही प्रधान रूप से कार्य करती थी। तप विशुद्ध रूप से एक पुरुषार्थ है। उसी से दिव्य शक्तियों के धनी देवता प्रसन्न होते हैं। तप से ही वरदान मिलता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

है। ब्रह्मा विष्णु और शिव ने अपनी महत्ता तप बल से ही प्राप्त की है। इन्द्र पद तपस्वी को ही मिलता है। अष्ट सिद्धि नव निद्धि प्राप्त करना पुरुषार्थी, तपस्वियों के लिए ही संभव होता है संसार के समस्त महान पुरुषों को अपना उत्कर्ष आप करना पडा है। अपना मार्ग आप बनाना पडा है। दूसरों की सहायता से ईश्वर की सहायता भी मिलती है पर मिलती केवल उन्हें है जो अपनी तत्परता एवं निष्ठा के द्वारा अपनी पात्रता सिद्व कर देते हैं।

बलि ने तप बल द्वारा ऐसी शक्ति प्राप्त कर ली थी कि जिसके बल पर वह तीनों लोकों को जीत कर उन पर शासन करने लगा था। बलि की शक्ति सामर्थ्य का सामना करने में इन्द्र भी असमर्थ था अन्ततः भगवान ने वामन का रूप धारण करके उसे छला था। शक्ति के द्वारा बलि को जीता न जा सका।

शकुन्तला का पुत्र भरत जिसके नाम पर इस का नाम भारत पड़ा बचपन से ही बड़ा निर्भीक और पुरुषार्थी था। वह शेर के बच्चों के साथ खेला करता था। अपने वच्चों को तंग करते देखकर जब शेर और शेरनी चिंघाडते तो भरत की एक धमकी से चुप हो जाते थे और एक अहिंसक जानवर की तरह चुपचाप दूर खडे रहते। इसी भरत ने आगे जाकर शक्तिशाली भारत साम्राज्य की नींव डाली।

बहुत से असुरों ने तपश्चर्या के बल पर अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कीं। हिरण्यकश्युप ने ऐसा वरदान प्राप्त किया कि वह किसी मनुष्य, हथियार से न दिन में न रात में न बाहर न भीतर ही मारा जा सके और इसी शक्ति के बल पर उसने तीनों लोकों में खलवली मचा दी।

रावण ने तप पुरुषार्थ के बल पर ऐसी शक्ति प्राप्त की जिसके बल पर उसने देवताओं को कैद करके अपने यहाँ रख छोडा था। अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा आदि के ऊपर उसने बहुत बडा नियन्त्रण,क्षमता प्राप्तकर रखी थी। देश विदेशों में उसकी गति थी। वह एक शक्तिशाली शासक था जिसका सामना इन्द्र आदि कोई देवता भी नहीं कर सकता था।

लक्ष्य के प्रति तन्मयता

द्रोणाचार्य ने प्रश्न किया, दुर्योधन ! सामने क्या दिखाई दे रहा है। आकाश वृक्ष, पत्तियॉ और चिड़िया जिस पर निशाना लगाना है। द्रोणाचार्य ने कहा तुम्हारा निशाना सही न लगेगा, बैठ जाओ। एक एक करके सारे शिष्य असफल होते चले गये। अब अर्जुन का नम्बर आया। आचार्य ने वही प्रश्न दुहराया। गुरुदेव ! मुझे पक्षी की आँख के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखायी देता। अर्जुन ने उत्तर दिया। वाण चलाओ- प्राचार्य ने आदेश दिया । तीर सही ठिकाने पर जा लगा। द्रोणाचार्य ने शिष्यों को बताया जिसे लक्ष्य के अतिरिक्त कुछ दिखायी न दे उसी की साधना सफल होती है।

अध्यवसाय से विद्या प्राप्ति

एकलव्य को जब शिष्य रूप में द्रोणाचार्य ने स्वीकार नहीं किया तो उसने मिट्टी की एक मूर्ति बनाई और उसे ही गुरु का प्रतीक मानकर धनुर्विद्याा का अभ्यास करने लगा। एक बार अर्जुन शिकार खेलते हुये उधर से निकले। एकलव्य को देखकर उनके कुत्ते भूंकने लगे इससे उसने कुछ बाँण ऐसे चलाये जिन से कुत्तों का भोंकना तो बन्द हो गया पर उन्हें चोठ नहीं आई। अर्जुन यह देखकर बड़े चकित हुए, पूछा-तुम्हारे गुरु कौन हैं। 'द्रोणाचार्य' भील पुत्र ने जवाब दिया। जवाब पाकर अर्जुन बडे दुःखी हुये तभी वहाँ द्रोणाचार्य आ गये। उन्होंने पूछा-वत्स मैने तो तुम्हें धनुर्विद्या सिखाई भी नहीं तुम इतना ज्ञान कैसे पा गये ? एकलव्य गुरु के चरणों में गिर पडा बोला- देव ! आप पर श्रद्धा रख कर निरन्तर अध्यवसाय में संलग्न रह कर ही मैंने यह विद्या पाई है।

प्रतिभा-सम्पन्न कर्ण

कर्ण एक सूत पुत्र था। जो एक नाविक को असहाय अवस्था में पडे हुए नवजात शिशु के रूप में मिला था। सूत ने उसे अपने पुत्र की तरह पालन किया। बडा होने पर यही कर्ण अपनी शक्ति सामर्थ्य के बल पर महाभारत का एक महारथी बना। कर्ण ने अपनी स्थिति से उठकर अपने पुरुषार्थ, साहस शक्ति के बल पर महत्वपूर्ण स्थान पाया। दुर्योधन कर्ण को उसकी प्रतिभा एवं गुणों के कारण सहोदर भ्राता की तरह समझता था और उसने उसके लिए अपने समान ही जीवनयापन की व्यवस्था कर रखी थी। कर्ण की शक्ति का लोहा अर्जुन भी मानता था।

विदुर और कृष्ण

महाभारत काल में महात्मा विदुर बहुत ही सज्जन और साधु स्वभाव के व्यक्ति थे। यद्यपि ये दासी पुत्र थे फिर भी अपने चरित्र की विशेषताओं के कारण महाभारत के महत्वपूर्ण पात्रों में इनकी गणना की जाती है। भगवान श्री कृष्ण जब कौरव पाण्डवों में सन्धि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कराने के प्रयत्न में हस्थिनापुर गये तो वे दुर्योधन के राजकीय सम्मान को त्यागकर विदुर जी के घर ठहरे, जहाँ भक्तिभाव सम्पन्न विदुरानी ने उनका भाव विभोर होकर सत्कार किया और विदुरजी ने अपने आपको धन्य माना। विदुरजी का अतिथि सत्कार ग्रहण करना श्रीकृष्ण के मानवीय प्रेम का परिचायक है, जहॉ जाति वर्ण ऊँच,नीच, भेद भाव की दीवारें टूट जाती हैं।

जो अपने बलबूते आगे बढ़े

दुस्साहसी दयानन्द

घर छोड़ देने के बाद स्वामी दयानन्द एक प्रकार से असहाय ही थे। उनकी शिक्षा तथा भरण पोषण की कोई निश्चित व्यवस्था न थी। फिर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और विद्याध्ययन के लिए मार्ग निकालते रहे। अन्त में वे उद्भट विद्वान बनकर ही रहे। इसी प्रकार उनके समाज सुधार कार्य में कोई सहयोग न करता था। चारों ओर से विरोध ही विरोध होता था फिर भी वे अपने सत्प्रयत्नों में साहसपूर्वक लगे रहे और उन्हीं कठिनाइयों के बीच इतना काम कर गये कि भारतीय धर्मानुयायी उनके चिर काल तक ऋणी रहेंगे।

प्रधान मन्त्री श्री शास्त्री

प्रधान मन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री एक छोटी गरीब स्थिति में पैदा हुए थे। वे जब स्कूल में पढ़ने जाते तो बीच में गंगा पड़ती थी। नाव के लिये पैसे न होने के कारण उन्हें तैर कर भी गंगा पार करनी पड़ती थी। एक बार पैसे के अभाव में श्रीमती शास्त्री बीमार लड़की की चिकित्सा न करा सकीं और वह चिकित्सा के अभाव में मर गई बहुत समय तक श्री शास्त्री ने २.५० रु० मासिक में अपना गुजारा किया था और निष्ठापूर्वक विद्या पढते रहे थे। ऐसी परिस्थितियों से आगे बढकर श्री शास्त्री का भारत के प्रधान मंत्री बनना उनके पुरुषार्थ अध्यवसाय, श्रमशीलता का परिचायक है।

साहसी सुभाष

श्री सुभाषचन्द्र बोस का नाम उन अकेले साहसी पुरुषार्थी व्यक्तियों में लिया जाता है जिन्होंने अपने प्रयत्नों से असम्भव को सम्भव कर दिखाया। सुभाष ने अग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष करने का मार्ग अपनाया था जिसके लिए अधिकांश भारतीय नेताओं ने उनका समर्थन नहीं किया था। लेकिन इससे वे निरुत्साहित नहीं हुए और उन्होंने देश विदेशों में घूमघूम कर शक्तिशाली आजाद हिन्द फौज की स्थापना की, विदेशों में वहाँ के शासकों को भारतीय स्वाधीनता संग्राम में योग देने के लिए तैयार किया। शक्ति के बल पर लोहा लेने वाले सुभाष के कारण अंग्रेजी सल्तनत की नींद हराम हो गई थी। यह सब उन्होंने अकेले केवल अपने ही प्रयत्नों के बल पर किया था।

अभावग्रस्त विद्यासागर

श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर अत्यन्त हीन परिस्थितियों में पैदा हुए थे। उन्हें पढने के लिए घर में प्रकाश की भी व्यवस्था नहीं थी इसलिए वे सड़कों पर लगी बत्तियों के प्रकाश में बैठकर पढ़ा करते थे। इस तरह की कठिनाइयों में पढ़कर विद्यासागर जी महान् विद्वान बने और अपने जीवन भर दुःखी गरीबों की सेवा करते रहे, समाज के हितार्थ काम करते रहे।

औचित्य को प्रधानता

राजा राममोहनराय धार्मिक सुधारों तथा सती प्रथा को मिटाने के कार्यक्रमों में लगे हुए थे। वे सभी प्रकार की बुराईयों के प्रति खुलकर विरोध करते थे। ये सब कार्यक्रम उनके रुढिवादी पिंताजी को अच्छे नही लगे। उन्होंने राममोहनराय को इनसे हटने के लिये कहा लेकिन उन्होंने पिता की धर्म विरोधी, अविवेक युक्त बातें मानने से इन्कार कर दिया। अन्त में घर छोडने के लिये कहा गया। इस पर राममोहनराय अपनी छोटी सी उम्र में ही घर छोडकर चले गये और दूर.दूर भ्रमण किया, लेकिन जहॉ भी रहे अपने कार्यक्रम और उदेश्यों में लगे रहे। उन्होंने सदैव दृढता के साथ अन्ध विश्वास, अविवेक, अज्ञान आदि का विरोध किया।

साहस के धनी रामतीर्थ

स्वा० रामतीर्थ को अपने विद्यार्थी जीवन में केवल दो पैसे रोज की रोटी में गुजारा करना पड़ता था। एक पैसे की रोटी सवेरे और एक पैसे की रात को। एक पैसे रोटी पर जब दुकानदार ने दाल देने से इन्कार कर दिया तब उन्होंने केवल एक बार ही रोटी खाने का नियम बना लिया।

एक बार उनका जूता नाली में बह गया। तब वे कहीं से एक पुरानी जनानी जूती तलाश लाये और इस प्रकार जूते का बेमेल जोड़ पहन कर कालिज जाते रहे। बहुत दिनों बाद जब उनके पास पैसा हुआ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तब उन्होंने नौ आने का एक नया जूता पहना।

इतनी कठिनाइयाँ रहते हुए भी स्वामी रामकृष्ण तीर्थ विद्याध्ययन में लगे रहे, हिम्मत न छोड़ी और परिश्रम से जी न चुराया। अन्त में वे उच्च श्रेणी में एम० ए० पास करके छोटी आयु में ही प्रोफेसर बन गये।

खेपराज श्री कृष्णदास फर्म भारत के बहुत बड़े पुस्तक प्रकाशकों में से है। इस फर्म के संस्थापक एक मामूली फेरी लगाकर पुस्तकें बेचने वाले थे। लेकिन अपनी उस स्थिति से आगे बढ़ कर उन्होंने एक बड़ी प्रकाशन संस्था का विकास किया जो आज भी महत्वपूर्ण स्थिति में है।

बिरला बन्धुओं के बाबा अपने घर से अकेले बिना कुछ लिए बाहर निकले थे। उन्होंने कलकत्ता में एक छोटा सा काम किया और उसी से बढकर एक छोटे से उद्योगपति की स्थिति में पहुँचे। तत्पश्चात अच्छे धनिकों में अपना नाम बनाया। आज उन्हीं की नींव पर खडा बिरला बन्धुओं का उद्योग देश की आर्थिक स्थिति को प्रभावित कर रहा है।

जमशेद जी नसरवान जी टाटा का भारत के बड़े उद्योगपतियों में नाम लिया जाता है। टाटा जी प्रारम्भ में एक सामान्य श्रेणी के व्यक्ति थे, एक छोटी सी नौकरी करते थे, लेकिन अपने अध्यवसाय उद्योग के बल पर उन्होंने अपने जीवन में भारत के प्रमुख, उद्योगपतियों में स्थान बना लिया। यह कोई वरदान नहीं वरन् उनके अपने पुरुषार्थ और श्रम का परिणाम था।

हवलदार पद्मा

ग्वालियर की फौज में एक पद्मा नामक औरत भी हवलदार हो गई है। उसका भाई जोरावर साहूकारों के कर्ज में जेल चला गया था। घर की हालत बहुत दयनीय थी। गरीबी से तंग आकर पद्मा ने पुरुष का वेष बनाया और फौज में भर्ती हो गई । बहुत दिन वह साधारण सिपाही के रूप में रही, फिर अपनी विशेषताओं के कारण हवलदार बन गई और धीरे-धीरे अपने भाई का कर्ज चुकाने लगी।

किसी प्रकार नहाते धोते उसे किसी ने देख लिया और बात खुल गई। मामला राजा तक पहुँचा। उसने हवलदार को बुलाकर पूछ ताछ की तो पद्मा ने सारी बात कह सुनाई। सिन्धिया उसकी वीरता से बड़े प्रभावित हुए। उसके भाई का सारा कर्ज खजाने से चुका दिया गया और पद्मा का विवाह फौज के एक ऊँचे अफसर के साथ हो गया। नारी में सभी गुण प्रचुर मात्रा में भरे पड़े होते हैं। वे वीरता में भी किसी से पीछे नहीं रही।

अपनी आन और महानता

जातीय गौरव और स्वाभिमान न छोड़ने वाले

उन दिनों अंगरेजी संस्कृति का इतना प्रसार नहीं हुआ था। इसलिए अंग्रेज अपनी सभ्यता का अधिक प्रसार करने में लगे थे, सरकारी कर्मचारी को अंग्रेजी पोशाक पहनना आवश्यक था। पर सर आशुतोष मुकर्जी को यह स्वीकार न हुआ। उनका आफिसर उनसे सदैव इस बात पर नाराज रहता था कि वे धोती कुरता ही पहनते थे। एक दिन एक मित्र ने कहा कि यदि पदोन्नति के लिये आप अँग्रेजी पोशाक पहन ही लें तो इसमें हर्ज ही क्या है ? मुकर्जी बोले जब अँग्रेज अपनी पोशाक को इतना महत्व देते हैं। तो हम इतने ही हैं कि पैसे के लिए अपना जातीय अभिमान त्याग दें। अँग्रेज अफसर को जब उनके इस जातीय स्वाभिमान का पता लगा तो वह उनके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ और अपने दफ्तर के सर्वोच्च कार्य कर्ता का उन्हें पद प्रदान कर दिया।

शास्त्र व्यवस्था जरूरी नहीं

लोकमान्य तिलक को विदेश जाने की आवश्यकता पड़ी। समुद्र यात्रा उन दिनों धर्म के विरुद्ध थी। लोक मान्य ने विचार किया सम्भव है पण्डित लोग इसकी कुछ व्यवस्था कर दें। यह सोचकर वे काशी के प्रमुख महोमहापाध्याय से मिले। पंडित जी ने कहा- काम तो कठिन है। पर यदि पॉच हजार रुपये दें तो व्यवस्था हो सकती है। लोकमान्य को अधर्म से धर्म का क्रय करना उचित न लगा। उन्होंने बिना किसी व्यवस्था के ही यात्रा की और अपने साथियों से कहा- दूसरों की समझ या व्यवस्था की परवाह न करके हमें अपनी स्वतंत्र विवेक बुद्धि का सम्मान करना चाहिए और पंडितों को शास्त्र व्यवस्था की परवाह न करके ज्ञान वृद्धि के लिए अवश्य विदेश जाना चाहिए।

स्वयं आगे बढ़ें

स्वामी रामतीर्थ उस समय प्रोफेसर थे। एक दिन ब्लैक बोर्ड पर लाइन खींच कर बोले कोई बालक इसे मिटाये बिना छोटा कर सकता है ? एक कुशाग्र बुद्धि बालक उठा और लाइन के पास उससे बडी लाइन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खींचकर बोला गुरुदेव ? यह छोटी हो गई। रामतीर्थ ने छात्रों को समझाया इसी तरह स्वयं ऊँचा उठने के लिए दूसरों को नीचा न दिखाकर अपने गुण, कर्म और स्वभाव को श्रेष्ठ बनाना चाहिए।

पौरुष का आत्म गौरव

महाराज पौरुष सिकन्दर से युद्ध में हार गये और बन्दी बना कर सिकन्दर के समक्ष लाये गये। सिकन्दर ने कहा- "आपके साथ कैसा व्यवहार किया जाय ?" पौरुष ने जबाब दिया "ठीक वैसा ही जैसा एक वीर दूसरे वीर के साथ करता है।" महाराज पौरुष की इस आत्म सम्मान एवं विशाल भावना वाले शब्दों को सुनकर सिकन्दर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने उन्हें छोड़ दिया, उनका राज्य भी लौटा दिया।

आततायी को सलाम नहीं

शिवाजी के पिता शाहजी बीजापुर नवाब के दरबार में कर्मचारी थे। वे आठ वर्ष के शिवाजी को दरबार में ले गये और कहा- बेटा ! बादशाह को सलाम करो। शिवाजी ने दो टूक मना कर दिया कि मैं आततायी के आगे सिर नहीं झुका सकता। नवाब की त्योरी बदल गयी पर शिवाजी विचलित न हुए, वे उलटे पैर लौट आये, पर झुके नहीं।

नारी के सम्मान की रक्षा

ढिकारी का किला फतह हुआ। वहाँ की रानी मलबाई को बन्दिनी बना कर शिवाजी के सामने लाया गया। रानी इस व्यवहार को अपमान समझकर शिवाजी से बोली आप मुझे मृत्यु दण्ड दे दें, बन्दिनी बनना मुझे असह्य है। शिवाजी सिंहासन से उतर कर बोले- आप जैसी वीर रमणियों का मैं अपमान नहीं कर सकता। आज से तुम मेरी माता जीजा बाई के समान मेरे पास रहोगी। मलबाई की आँखों में स्नेह के आँसू भर आये। उन्होंने कहा- शिवाजी तुम सचमुच छत्रपति हो तुम से अवश्य ही धर्म और देश की रक्षा होगी। दूसरों के सम्मान और स्वाभिमान की रक्षा करने वालों का सम्मान ईश्वर बनाये रखता है।

विश्वासघात बनाम मौत

रघुपति सिंह महाराणा प्रताप के कुशल तथा साहसी योद्धाओं में से था। अकबर की सेना उससे बहुत घबराती थी। उसे पकड़ने के लिए बडा इनाम भी घोषित था। एक दिन अचानक उसका लड़का बहुत बीमार हो गया। मरणासन्न बेटे का मुँह देखने के लिए रघुपति सिंह अधीर हो उठा। पर सारे गाँव में कडा पहरा लगा था। आखिर वे एक पहरेदार के पास जाकर बोले, आप मुझे बेटे के पास हो आने दीजिये। लौटकर आपके पास आ जाऊँगा तब कैद कर लेना। उनकी सत्यता पर सिपाही को विश्वास आ गया और उन्हे अन्दर जाने दिया। बेटे का मुहँ देखकर रघुपति सिहं सीधे उसी सिपाही के पास गये। उन्हें दरवार में ले जाया गया। अकबर ने सारी घटना सुनी तो पूछा आप झूठ बोलकर भाग सकते थे, पर ऐसा क्यों नहीं किया। रघुपतिसिंह ने कहा- वचन के धनी, सच्चे व्यक्ति कभी किसी के साथ विश्वासघात नहीं करते हैं।

वचन तोड़ने पर क्षोभ

काला कॉकर नरेश राजा रामपाल सिंह ने "हिन्दुस्तान" नामक पत्र आरम्भ किया। इसके लिए उन्होंने मालवीयजी को २५०) रु० माहवार पर रखने के लिये निमंत्रण भेजा। उस समय यह राशि आज के २०००)रु० बराबर होती थी। पर एक बड़ी कठिनाई यह थी कि राजा साहब शराब पीते थे। मालवीय जी ने अपनी कठिनाई राजा से व्यक्त की। यह निश्चित हुआ कि नशे की हालत में राजा साहब उनसे नहीं मिला करेंगे। मालवीय जी ने सम्पादन कार्य प्रारम्भ कर दिया पर राजा साहब अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं कर सके। आदर्श और स्वाभिमान को मानने वाले मालवीयजी ने तत्काल स्तीफा दे दिया और राजा साहब के लाख कहने पर वापस न लौटे।

बिना मेहनत का न लेना

रविशंकर महाराज प्रतिदिन सवामन गुड़ बाँटा करते थे। एक दिन एक बालिका को गुड़ देने लगे तो उसने लेने से इन्कार कर दिया। महाराज ने इसका कारण पूछा। बालिका बोली- मुझे शिक्षा मिली है कि मेहनत करके ही कुछ लेना चाहिए। ऐसी शिक्षा किसने दी है तुझे ? महाराज ने पूछा। मेरी माता ने बालिका ने उत्तर दिया। पता चलाया गया तो वह विधवा ब्राह्मणी अपना और अपनी बच्ची का लकड़ियाँ बीनकर गुजारा करती थी। यह समाचार पाते ही महाराज कहने लगे जिस देश की मातायें ऐसी हों उसका कल्याण होने में अब देर नहीं।

निन्दा की चिन्ता

एक बार एक व्यक्ति ने स्वामी दयानन्द से पूछा कि- बहुत से व्यक्ति आपकी निन्दा करते हैं, इन्हें कैसे रोका जाय ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

स्वामी जी ने कहा- निन्दा से तो ईश्वर भी नहीं बच सका, फिर हमारी तो बात ही क्या है ? यदि मनुष्य अपनी आत्मा के सामने सच्चा है तो उसे सारी दुनियॉ की परवा न करनी चाहिए।

गिलहरी का योगदान

लंका पर चढाई के लिए समुद्र बाँधा जाने लगा। नल और नील की सहायता में सारे बन्दर भालू लग गये। पहाड़ के पहाड़ लाकर बन्दरों ने समुद्र पाटना प्रारम्भ कर दिया। एक गिलहरी धूल में जाती और थोडी सी धूल शरीर में ले जाकर समुद्र में डाल आती। राम ने पूछा- गिलहरी तेरे इस काम से समुद्र कैसे पट सकेगा ? गिलहरी बोली- भगवान् शुभ काम में अपनी जितनी सामर्थ्य है उसी से सहयोग भी पर्याप्त होता है। भगवान बडे प्रसन्न हुए। स्नेह से उसकी पीठ पर हाथ फेरा। कहते हैं गिलहरी की पीठ पर आज भी भगवान की उँगलियों के निशान बने हैं।

अगस्त्य की करुणा

एक टिटहरी अपनी चोंच में मिट्टी भरती और समुद्र में डाल आती। उसका यह अनवरत क्रम देखकर महर्षि अगस्त्य को आश्चर्य हुआ। उन्होंने उससे इसका कारण पूछा- तो वह बोली-"महाराज समुद्र मेरे अण्डा बहा ले गया है इसलिए उसको सुखाने के लिये समुद्र में रेत डाल रही हूँ।" महर्षि अगस्त को उस छोटे से पक्षी के प्रयत्न और साहस पर बड़ी प्रसन्नता हुई और उसकी सहायता करने के लिए कटिबद्ध हो गये। उनने सारे समुद्र को तीन अंजली भरकर पी लिया और टिटहरी को अपने अण्डे मिल गये।

साहसी की सहायता दूसरे लोग भी करते हैं।

हम परिस्थितियों के दास नहीं

लोक सेवी रविशंकर महाराज उन दिनों सौराष्ट्र के जमीदारों की ताडी व शराब छुड़ाने में लगे हुए थे। कईयों ने छोड़ा भी। एक दिन एक जमींदार साहब बोले महाराज मेरी इच्छा तो बहुत है पर शराब छूटती ही नहीं। रविशंकर ने उन्हें दूसरे दिन आने को कहा। दूसरे दिन नियत समय पर जमींदार साहब पहुँचे तो देखा रविशंकर जी खम्भा पकड़े खड़े हैं। जमींदार ने कहा- महाराज अब वे खास बातें बताइये। रविशंकर जी बोले भाई- कैसे बताऊँ, खम्भे ने पकड़ रखा है, छोड़ता नहीं। जमींदार हँस पड़ा। बोला महाराज यह बेजान वस्तु भी आपको पकड़ सकती है। खम्भा छोड़ते ही रविशंकर बोले भाई यही तो मैं भी कहता हूँ। कि शराब भी तो बेजान है, बुद्धिमान मनुष्य को वह कैसे पकड़ती है। जमींदार साहब ने उसी दिन से शराब पीना छोड़ दिया और वे यह मानने लगे कि परिस्थितियॉ किसी को नहीं पकड़ती, मनुष्य स्वयं ही परिस्थितियों को पकड़ लेता है।

भिक्षा नहीं पुरुषार्थ

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से एक दिन एक भिखारी ने एक पैसा माँगा। विद्यासागर ने पूछा अगर तुम्हें एक पैसा दें तो क्या करोगे ? कुछ खा लेंगे - बच्चा बोला। यदि दो पैसा दें तो कुछ माँ के लिए भी लेता जाऊँगा?, यदि एक रुपया दूँ तो- कोई रोजगार करके भिक्षा वृति छोड दूगाँ। बच्चे की भावना पर विद्यासागर ने उसे एक रूपया दिया। कुछ दिन बाद वही बालक मिला। अब उसके पास एक छोटी सी दुकान थी। विद्यासागर ने सहायता देकर उसकी दुकान और बडी करवा दी।

फरिहाद का नहर निकालना

सुन्दर शीरी से विवाह उसके साथ होने की घोषणा हुई जो उस जल अभाव से दूखी नगर के समीप नहर खोदकर ले आये। साधन हीन फरियाद ने साहस किया और अथक संकल्प बल के साथ पहाड़ काटकर नहर खोदने के काम में अकेला लग गया। इस अभूतपूर्व साहस से लोग बहुत प्रभावित हुए और उसकी सहायता में दर्शक लोग भी सक्रिय योग देने लगे। आखिर कुछ दिन में असम्भव दीखने वाला काम सम्भव हो गया और उस नगर में जल की नहर लाने में सफल हुए फरियाद का विवाह शीरी के साथ हो गया।

शूरवीर शासक

पञ्जाब के महाराजा रणजीतसिंह एक साधारण जमींदार के लड़के थे किन्तु अपनी शक्ति और सामर्थ्य के बल पर वे पञ्जाब के राजा बने। प्रसिद्ध कोहनूर हीरा इन्हीं के पास बहुत समय तक रहा जो उन्होंने पठान शासकों से प्राप्त किया था। रणजीतसिंह की बहादुरी, इतिहास प्रसिद्ध है।

चन्द्रगुप्त मौर्य दासी पुत्र था। लेकिन विशाल मौर्य साम्राज्य का विस्तार उसी ने किया था। अपने पुरुषार्थ अध्यवसाय के बल पर चन्द्रगुप्त मौर्य ने एक बहुत बड़े साम्राज्य की नींव डाली।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महाराज छत्रसाल एक छोटे जमींदार के पुत्र थे लेकिन उन्होंने अपनी स्थिति से आगे बढकर प्रसिद्ध बुन्देला राज्य की स्थापना की। छत्रसाल ने शिवाजी की तरह अपनी शक्तियों को बढाकर उनसे मिलकर मुगलों के विरुद्ध मोर्चा जमाया।

भरतपुर राज्य की स्थापना करने वाले महा० सूरजमल एक साधारण सरदार के लड़के थे लेकिन उन्होंने अपन पुरुषार्थ के बल पर एक शक्तिशाली शासन की नींव डाली। सूरमल ने इतनी शक्ति संगठित करली थी कि देहली पर चढाई की और वहाँ के बादशाह को हराया।

मल्हारराव होल्कर जिन्होंने इन्दौर शासन की नींव डाली प्रारम्भ में एक पशु पालक एवं कृषक मात्र थे। लेकिन अपने पुरुषार्थ, सूझबूझ योग्यता के बल पर एक शक्तिशाली शासन की नींव डाली और एक प्रभावशाली राजा बन गये।

बापा रावल जिन्होंने चित्तोड़ के इतिहास प्रसिद्ध शासन की नींव डाली प्रारम्भ में भेडें चराया करते थे। लेकिन अपने सामर्थ्य और प्रयत्न से चित्तोड का शासन स्थापित किया। जिसके अन्तर्गत महाराणा प्रताप, राणा, साँगा साहसी राजसिंह जैसे शक्तिशाली शासक निकले।

दूसरों की सहायता काफी नहीं

एक जंगल में एक तान्त्रिक रहता था। एक दिन एक चूहा उधर दौड़ा आया। तान्त्रिक को समझते देर न लगी कि वह डर रहा है। उसने चूहे को बिल्ली बना दिया। पर अब बिल्ली कुत्तों के भय से बाहर न निकलती । तान्त्रिक ने इसे भी समझा और उसे कुत्ता बना दिया। पर तेन्दुये का डर अभी भी उसे बना रहा। झोंपड़ी से दूर न जाकर वहीं दुबका पड़ा रहा। तान्त्रिक ने एक और अवसर दिया और उसे चीता बना दिया। दैवयोग से एक बहेलियों की टुकडी उस दिन वन में चीते पकड़ रही थी डरकर बेचारा उसी झोंपड़ी में छुपा रहा। तान्त्रिक के मन में अब एक विचार आया अपना कमण्डल उठाया जल लेकर उस चीते पर फेंका। इस बार वह फिर अपने चूहे के रूप में आ गया और बिल में घुस गया। तांन्त्रिक सोच रहा था मनुष्य की उन्नति दूसरे पर अवलम्बित नहीं है इसके लिये उसे स्वयं अपने ही पैरों पर खडा होना जरूरी है।

विवेक का आश्रय

एक साधू एक दिन सोने की तैयारी कर रहे थे। तो कई ज्ञानी इकट्ठे हो गये। साधू को पूर्व की ओर पैर किये लेटे देखकर एक ज्ञानी बोला, पूर्व में जगन्नाथ विराजते हैं उधर पैर करना पाप है। साधू पश्चिम की ओर पैर करके लेट रहे तो दूसरा बोला, महाराज पश्चिम में द्वारिकापुरी है वहाँ भगवान् कृष्ण का निवास है यह तो आप योगेश्वर का अपमान कर रहे हैं। साधु उत्तर की ओर पैर करके लेटने लगा तो तीसरे ने उधर बद्रीनाथ होने के कारण उनकी अवज्ञा होना बताया, अत: वह दक्षिण की तरफ पैर करके सोने लगा चौथा बोला- महाराज आप भगवान रामेश्वर की ओर पैर करके उनका अपमान करते हैं। साधु क्षण भर सोचकर बोला आप लोगों की बातें सुन लीं अब मुझे जिधर ठीक प्रतीत होगा उधर सोउँगा। विद्वानों के मत में विरोध दिखाई दे तो अपने विवेक से काम लेना ही अच्छा है। यह कहकर महात्मा अपनी इच्छानुसार पैर करके चुपचाप सो गया।

घोड़ा और बाप बेटा

एक घोड़ा लेकर बाप बेटे कहीं जा रहे थे। बाप सवार था बेटा पैदल चल रहा था। जिस गाँव में होकर निकले वहाँ के लोगों ने कहा बाप कैसा निष्ठुर है खुद बैठा है और लड़के को पैदल चला रहा है। बाप नीचे उतर पड़ा और बेटे को घोड़े पर बिठा दिया। अगले गाँव में लोगों ने बेटे को बुरा भला कहा कि बाप पैदल चले और बेटा चढ़े यह कैसी अशिष्टता है अब दोनों पैदल चलने लगे। तब अगले गॉव के लोगों ने कहा कैसे मूर्ख हैं ये लोग जो घोड़ा रहने पर भी पैदल चलते हैं। इस पर बाप बेटे दोनों चढ़ लिये। इनको देख कर आगे गाँव में उन्हें निर्दयी और भारी वजन से घोड़े को मार डालने वाला बता कर निन्दा की गई।

तरह-तरह की बातें सुनकर बाप बेटों ने सोचा यह दुनियां बडी विचित्र है। इसमें सबको प्रसन्न रख सकना संभव नहीं। इस लिए जो उचित हो उसका अपनी विवेक बुद्धि के आधार पर निर्णय करना चाहिए और लोग क्या कहते हैं उस पर ध्यान नहीं देना चाहिए।

स्वावलम्बन-परावलम्बन

एक खेत में एक लोमड़ी व उसके दो बच्चे रहते थे। एक दिन किसान और उसका बेटा दोनों मेंड़ पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

घूम रहे थे। पिता बोला- बेटा खेत पक गया है कल नौकरों को बुला लाना खेत काट लेंगे। लोमड़ी के बच्चे डर गये। माँ से सारा हाल कह सुनाया। लोमडी बोली अभी चिन्ता करने की बात नहीं है। दूसरे दिन नौकर न पहुँचे बाप बोला बेटा कल अपने पड़ोसी को ही ले आना कल जरूर खेत काटना चाहिये। लोमड़ी के बच्चे फिर भागने की हठ करने लगे पर लोमड़ी ने इस बार भी मना कर दिया। तीसरे दिन किसान बोला भाई दूसरों के सहारे कब तक बैठें कल हँसिया ले आना हम दोनों ही काटेंगे। इस बार लोमड़ी बच्चों को लेकर खेत से चली गयी। खेत उस दिन सचमुच कट गया।

हिल मिल कर परिश्रम करना

एक व्यक्ति आया बोला महाराज आमदनी कम है बच्चे भूखों मरते हैं। सन्त ने पूछा बाल बच्चे क्या काम करते हैं ? आगन्तुक अकड़ कर बोला क्या वे किसी के नौकर हैं जो काम करें। सन्त ने कहा भाई घर का बोझ उठाने के लिये अपनी अपनी स्थिति के अनुसार सभी को कुछ न कुछ करना चाहिये। अकेले काम कैसे चलेगा ? आदमी सन्तुष्ट हो कर चला गया। कुछ दिन में फिर आया इस बार काफी भेंट आदि भी लाया था। सन्त के चरणों में रखकर बोला महाराज अब एक बच्चा जानवर चराता है। दूसरा खेती करता है स्त्री भी हाथ बटाती है। किसी तरह की कमी नहीं है। सन्त बोले जिस घर के सब लोग हिलमिलकर परिश्रम करते हैं उन्हें कभी भी तंगी नहीं आती।

हनुमानजी की सहायता

एक आदमी की गाड़ी कीचड़ में फँस गई। बैलों ने बहुत जोर मारा पर गाडी बाहर न हुई। वह आदमी गाड़ी से उतर कर हनुमानजी की मनोतियाँ मनाने लगा। उधर से एक पंडितजी आ रहे थे। बोले भाई पहले पहिये में थोडा हाथ लगाओ तभी हनुमानजी भी कुछ सहायता करेंगे। पुरुषार्थी लोगों की ही देवता भी सहायता करते हैं।

संख्या बल नहीं उत्कृष्टता

एक समय वन के पशुओं में विवाद पैदा हो गया कि सब से अधिक किस के बच्चे पैदा होते हैं। सूअरी ने कहा मेरे, छछून्दरी बोली मेरे, गीदड़ी बोली मेरे, यह सौभाग्य मुझे मिला है। इसी बीच में शेरनी आ गई। डपट कर बोली- तुम्हारे सेकड़ों बच्चों से मेरा एक बच्चा अच्छा है जिसकी दहाड पर तहलका मच जाता है। संख्या बल बढाने की अपेक्षा उत्कृष्टता बनाना ही अच्छा है।

त्याग का प्राप्त फल

एक बूदँ अँगारे की ओर बढ़ी। अँगारे ने धमकाया, बाबरी मेरे पास आयेगी तो तेरा नाम निशान भी न बचेगा। बूँद नहीं मानी अंगारों की गोद में जा गिरी। अंगार बोले क्यों री अब तो तेरा अस्तित्व मिट गया। आकाश में एक आवाज सुनाई दी नहीं अंगार- अभी तक मैं अधोगामिनी थी पर जब से शरीर तुझे समर्पित किया ऊर्ध्वगामिनी हो गई हूँ।

विपत्ति का वरदान

एक बार भगवान कृष्ण कुन्ती पर बड़े प्रसन्न हुये । उस दिन उन्होंने कुन्ती से पूछ ही लिया- भद्रे अपनी कोई कामना व्यक्त करो मैं उसे पूरा करूँगा। कुन्ती बोली भगवान यदि आप मुझ पर सन्तुष्ट हैं तो मुझे विपत्तियाँ दीजिये । कृष्ण ने पूछा कुन्ती आखिर इससे तुझें क्या मिलेगा उत्तर दिया -

विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र जगद्गुरो ।
भवतो दर्शनं यत्तु स्याद पुनर्भव दर्शनम् ।।

अर्थात् हे भगवान् आपका दर्शन तो विपत्तियों में ही होता है। इसी से तो मोक्ष मिलता है।

अकारण का भय दुखदायी

रानी सरोवर में स्नान कर रही थी। उनका हार किनारे रखा था जिसकी एक दासी रखवाली कर रही थी। स्नान करते काफी समय बीत गया। इधर दासी को नींद आ गई। इस बीच पेड़ पर बैठा हुआ बन्दर उस हार को उठा ले गया। दासी की आँख खुली तो हार गायब था। खुद चोरी के इल्जाम से बचने के लिए चोर चोर चिल्लाने लगी। सिपाही एक ओर दौड़ पड़े। उधर एक किसान जा रहा था। सिपाहियों को अपनी ओर आते हुये देखकर वह डर गया और वहाँ से भागा। सिपाहियों को पक्का विश्वास हो गया कि यही चोर है उसे पकड़ कर मरम्मत की और जेल में बन्द कर दिया। दूसरे दिन हार एक पेड़ पर टंगा हुआ मिला तब बेचारा कहीं जेल से छूटा। अकारण भय करना भी अनर्थकारी ही होता है। सत्य के समर्थन में मनुष्य को दृढ़ता और धैर्य से काम लेना चाहिए। भय का सत्य भी असत्य की तरह दुःखदायी होता है।

नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम ।
पापो नृषद् वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा ।।
चरैवेति ।.....

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुष्पिण्यौ चरतो जङ्घे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः ।
शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताः ।।
चरैवेति ।.....

आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः ।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः ।।
चरैवेति ।.....

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन् ।।
चरैवेति ।.....

चरन्वै मधु विन्दति चरन्स्वादुमुदुम्बरम् ।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन् ।।
चरैवेति ।.....

इन्द्र ने पुरुष रूप में आकर रोहित से कहा- हे रोहित! सुनते हैं कि, जो श्रम से श्रांत नही है, उसको श्री प्राप्त नहीं होती। भला मनुष्य भी, जो बैठा रहता है, निकम्मा समझा जाता है। इन्द्र उसी की सहायता करता है जो श्रमशील है। इसलिए बराबर श्रम करते रहो।

श्रम शील पुरुष की जाँघें स्फूर्ति के पुष्पों से पुष्पित होती हैं और उसके पुष्ट शरीर में स्वास्थ्य का फल लगता है उसके सारे पाप श्रम से मानो मारे हुए निश्चेष्ट पड़े रहते है इसलिए बराबर श्रम करते रहो।

बैठे हुए का सौभाग्य बैठा रहता है खड़े हुए का सौभागय खड़ा रहता है। पड़े रहने वालों का सौभाग्य सोता रहता है और चलने वालों का सौभाग्य चलने लगता है। इसलिए बराबर श्रम करते रहो।

जो सो रहा है वह कलि है, निद्रा से उठ बैठने वाला द्वापर है, उठ कर खड़ा हो जाने वाला त्रेता है, पर श्रम करने वाला कृतयुग बन जाता है। इसलिए बराबर श्रम करते रहो।

श्रम-शील मनुष्य ही मधु अर्थात् जीवन के माधुर्य को पाता है। वही स्वादिष्ट फल का आस्वाद लेता है। सूर्य के श्रम को देखो, जो सदा चलता रहता है और कभी आलस्य नही करता है इसलिए बराबर श्रम करते रहो।

गिरीन्करोति मृत्पिण्डान्सेतुलंस्यांश्च सागरान् ।
नभस्तरति बाहुभ्यां संकल्पो हि महात्मनाम् ।।

महान आत्माओं का संकल्प मिट्टी के ढेलों को पहाड़ बना देता है और अगाध समुद्र को सेतु द्वारा लाँघने योग्य कर सकता है यथा विस्तीर्ण आकाश को भुजाओं से तर सकता है । तात्पर्य यह है कि संसार में कोई भी कार्य ऐसा नही है जो सत्य संकल्प की शक्ति के आधार पर पूर्ण न हो सके।

वहिः समुद्रवति निर्मथनेन काष्ठादम्भो
ददाति वसुधा च निखन्यमाना ।
गच्छन् प्रयास्यति शनैरपि सुदूरयात्रा,
मारब्धकार्य इह किन्न नरः करोति ।।

काष्ठ के निरन्तर मन्थन करने अर्थात् रगड़ते रहने से उसमें अग्नि उत्पन्न हो जाती है। भूमि को गहराई तक खोदने से जल निकल आता है। बराबर चलते रहने से बहुत दूर की यात्रा पूर्ण हो जाती है। तात्पर्य यह है कि कार्य को आरम्भ कर उसमें बराबर संलग्न रहने वाला मनुष्य क्या नहीं कर सकता ? अर्थात् सभी कुछ कर लिया करता है।

उद्यमं साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः ।
षडेते यत्र वर्त्तन्ते तत्र देवः सहायकृत् ।।

उद्योग, साहस, धीरज, बुद्धि शक्ति और पराक्रम ये छै गुण जिस पुरुष में रहते हैं उसकी देवगण भी सहायता किया करते है।

पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते ।
तस्मात्पुरूषकारेण यत्नं कुर्यादतन्द्रितः ।।

पूर्व जन्म में किये हुए काम ही को प्रारब्ध कहते है इसलिये मनुष्य को आलस्य छोड कर पुरुषार्थ करना चाहिये।

यथा मृत्पिण्डतः कर्ता कुरुते यद्यदिच्छति ।
एवमात्मकृतं कर्म मानवः प्रतिपद्यते ।।

जैसे कुम्हार मिटटी के लौंदे से जो चाहता है सो बनाता है उसी भाँति मनुष्य भी अपना किया हुआ कर्म पाता है।

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ।।

उद्यम से ही कार्य सिद्ध होते हैं न कि मनोरथों से, जैसे सोते हुए सिंह के मुख में मृग अपने आप नहीं घुसते हैं।

मातृपितृकृताभ्यासो गुणितामेति बालकः ।
न गर्भच्युतिमात्रेण पुत्रो भवति पण्डितः ।।

माता पिता से अभ्यास कराया गया बालक गुणवान होता है गर्भ से निकले ही पुत्र पण्डित नहीं हो जाता है।

ये शूरा ये च विक्रान्ता ये प्राज्ञा ये च पण्डिताः ।
तैस्तै किमिव लोकेऽस्मिन्वद दैवं प्रतीक्ष्यते ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जो शूर, ज्ञानी, जो पण्डित है, वे सब सर्वदा उन्नतिशील हैं। जरा बताओ तो इन में कौन भाग्य के भरोसे बैठा रहता है ? अर्थात कोई नहीं। तात्पर्य यह है कि पुरुषार्थ से ही उन्नति होती है।

ना यथा यतते नित्यं यद्भावयति यन्मयः ।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग्भवति नान्यथा।।

मनुष्य नित्य जैसा यत्न करता है, तन्मय होकर जैसी भावना करता है और जैसा होना चाहता है, तैसा ही हो जाता है इसमें अन्यथा नहीं है।

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवेन
देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या यत्ने-
कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः।।

और दूसरे - उद्योगी तथा पुरुषों में सिह के समान पराक्रमी अर्थात् श्रेष्ठ मनुष्य को लक्ष्मी मिलती है और भाग्य में होगा सो मिलेगा यह पुरुषार्थहीन मनुष्य कहते हैं, इसलिये भाग्य की छोड़ यथाशक्ति यत्न करना चाहिए और यत्न करने पर जो कार्य सिद्ध न हो तो उसमें क्या दोष है।

पुरुषार्थ फल प्राप्तिर्देश काल वशादिह ।
प्राप्ता चिरेण शीघ्रं वा याऽसो दैवमिति स्मृता।।

अपने किये हुए पुरुषार्थ का ही देश काल की परिस्थिति के अनुसार जो देर सवेरे में फल प्राप्त होता है उसी को भाग्य इस नाम से कहा जाता है।

विक्लवो वीर्यहीनो यः स दैवमनुवर्तते ।
वीराः संभावितात्मानो न दैवं पर्युपासते ।।

डर पोक और शक्तिहीन मनुष्य भाग्य के पीछे चलता है। परन्तु प्रतिष्ठित वीरजन दैव या भाग्य की उपासना नहीं करते।

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु ।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ।।

'मेरा कार्य अवश्य ही सिद्ध होगा', ऐसा दृढ निश्चय करके मनुष्य को आलस्य छोड़ कर उठना चाहिए और जागना चाहिए और प्रसन्नता तथा आशावाद के साथ उन्नति के कार्यो जुट जाना चाहिए।

शरीर निरपेक्षस्य दक्षस्य व्यवसायिनः ।
बुद्धि प्रारब्धकार्यस्य नास्ति किंचन दुष्करम् ।।

जो शरीर की परवाह नहीं करता, जो निपुण और व्यवसायी है, जो बुद्धि पूर्वक कार्य प्रारम्भ करता है, उसके लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है।

अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत् ।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ।।

अपने आपको अजर (वृद्धता रहित) और अमर (कभी न मरने वाला) समझते हुए बुद्धिमान मनुष्य को विद्या और धन का उपार्जन करना चाहिए। मृत्यु ने ले जाने के लिये मेरी चोटी पकड़ली है ऐसा समझते हुए धर्म का आचरण करना चाहिए।

यथा यथा प्रयत्नः स्याद्भवेत्तस्य फलं तथा ।
इति पौरुषमेवास्ति दैवमस्तु तदेव च ।।

जैसा और जितना कार्य सिद्धि के लिये प्रयत्न किया जाता है उसका वैसा ही फल प्राप्त होता है। वस्तुतः यह पुरुषार्थ ही है, उसी को भाग्य भी कहते हैं।

महतामथ क्षुद्राणामन्तराय उपस्थिते ।
कृशानौ कनकस्येव परीक्षा जायते ध्रुवम् ।।
वातेरिताः प्रकम्पन्ते वृक्षा एव, न पर्वताः ।
आपत्तिसमये वृत्तं क्षुद्राणां महतां तथा ।।
तस्मादापत्तिकाले ये महान्तोऽन्तरवेक्षिणः ।
तिष्ठन्ति निश्चला धैर्यमूर्त्तयो न विकुर्वते ।।

अग्नि में जैसे स्वर्ण की परीक्षा होती है, इसी प्रकार विघ्न या बाधा के उपस्थित होने पर निश्चय रूप में महान् और क्षुद्र लोगों की परीक्षा होती है।

तेज वायु या आँधी चलने पर वृक्ष काँपने लगते है, पर्वत नहीं। आपत्ति के समय क्षुद्र लोग ही घबड़ाते है, महान् पुरुष अविचल ही रहते हैं।

इसलिए आपत्ति के समय जो अन्तरवेक्षी महापुरुष होते हैं, वे धैर्य मूर्ति रूप से निश्चल ही रहते है और किसी प्रकार के विकार को प्राप्त नहीं होते।

जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः ।
स हेतुः सर्वविद्यानां धर्मस्य च धनस्य च ।।

जैसे जल की एक एक बूँद गिरने से धीरे धीरे घड़ा भर जाता है वही कारण सब प्रकार की विद्याओं का, धन का और धर्म का भी है।

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम् ।
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदञ्च लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतो :।।

जो उत्साह से सम्पन्न होता है, दीर्घसूत्री नहीं है, कर्तव्य कर्म की विधि जानने वाला है, विषयासक्त नहीं है, शूर है, कृतज्ञ है और दृढ सुहृद है ऐसे सज्जन के पास विजय श्री स्वयं ही निवास के लिए आया करती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात्परं बलम् ।
सोत्साहस्य लोकेषु न किञ्चिदपि दुर्लभम् ।।

हे आर्य ! उत्साह ही बलवान् है, उत्साह से बढ़ कर और कोई श्रेष्ठ बल नही है जो मनुष्य संसार में उत्साही हैउसके लिए कुछ भी दुर्लभ नही है।

विहाय पौरुषं यो हि दैवमेवावलम्बते ।
प्रासादसिंहवत्तस्य मूर्ध्नि तिष्ठन्ति वायसाः।।

जो मनुष्य पौरुष को छोड़ कर केकवल भाग्य का ही आश्रय करता है ऐसे अनुद्यमी पुरुष के सिर पर भी पत्थर के सिंह की तरह कौवे बैठते हैं।

विषमां हि दशां प्राप्य दैवं गर्हयते नरः ।
आत्मनः कर्मदोषांश्च नैव जानात्यपण्डितः ।।

मूर्ख मनुष्य बुरी दशा को पाकर, भाग्य की निन्दा करता है और अपने कर्म के दोषों को नहीं जानता।

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा ।
अहं करोमीति वृथाऽभिमानः स्वकर्म सूत्रग्रथितो हि लोकः ।।

सुख और दुःख देने वाला कोई भी नहीं है। दूसरा हमें दुःख देता है यह कुबुद्धि है। जो यह सोचता है कि मैं सुख दुख करता हूँ वह उसका मिथ्या अभिमान है क्योंकि यह सारा लोक अपने कर्म रूपी सूत्रों में गुँथा हुआ है।

औटाये बहु औषधी, होत अधिक गुणवंत।
विपति कसौटी जे तपै, सोइ जन सांचे संत।।
कष्ट परेहु साधु जन, नैक न होत मलान।
ज्यों ज्यों स्वर्ण तपाइये, त्यों त्यों निरमल बान ।।
जो जैसी करनी करै , सो तेहि लहै न और ।
बनिज करै सो बानियाँ, चोरी करै सो चोर।।
करै बुराई सुख चहै, कैसे पावे कोइ ।
बोवे पेड बबूल को, आम कहाँ ते होइ ।।
रावन रावन को हनेउ, दोष राम को नाहिं ।
निज हित अनहित देखु किन, तुलसी आपुहि माँहि।।
एक एक अक्षर पढे, जाने ग्रन्थ बिचार।
पेड़ पेड़ हू चलत जो , पहुँचत कोस हजार।।
आप बुरे जग है बुरौ, भलो भले जग जानि।
तजत बेर की छांह सब, गहत आम की आनि।।
मत चिंता पर की करौ, अपनौ करौ सुधार।
बिनु प्रयास सुधरै जगत, सब बातन कौ सार।।
चलत महाजन जा सुपथ, सो अनुसरत जहान।
धन्य युवक जो आपही, करै स्वपथ निर्मान।।
जो यथार्थ बल बुद्धि ते, हो न सिद्ध परिणाम।
नहिं ऐसौ कोई जगत में, कठिन कठिनतर काम।।
तुलसी जो करता करम, सो भोगत नहि आन ।
जो बोबै सो काटिए, देनी लहइ निदान।।
पर भाषा पर भाव पर, भूषन पर परिधान।
पराधीन जन की अहै, यही पूर्ण पहिचान।।
उद्यम बुधि बल सों मिलै, तब पावत सुख साज।
अन्ध कन्ध चढ़ि पंगु ज्यों, सबै सुधारत काज।।
विपति बड़े ही सहि सकें, इतर विपति से दूर।
तारे न्यारे रहत हैं, ग्रसें राहु शशि सूर।।
कोउ न सुख दुख देत है, देत करम झकझोर।
उरझै सुरझै आप ही, ध्वजा पवन के जोर।।

यह अयोध्या काण्ड के अन्तर्गत बन में श्री रामचन्द्र जी के भ्रमण के समय का प्रंसग है।

राम सैल सोभा निरखि, भरत हृदय अति पेमु ।
तापस तप फलु पाइ जिमि, सुखी सिराने नेमू ।।

भौतिक उन्नति के लिए तप की आवश्यकता है। बिना इसके किसी को भी सफलता नहीं मिलती। बालकाण्ड में नारदजी पार्वती को तप करने की सलाह देते हुए कहते है कि-

तप बल रचइ प्रपंच विधाता ।
तप बल विष्णु सकल जग त्राता।।
तप बल शंभु करहिं संहारा ।
तप बल शेष धरइ महि भारा ।।
तप अधार सब सृष्टि भवानी ।
करहु जाय तपु अस जिय जानी ।।

तप-बल प्रभाव के कारण ही तो रावण ने ऐसी सम्पदा बल वैभव और ऐश्वर्य पा लिया जो त्रिलोकी में अन्यत्र दुर्लभ था।

कीन्ह बिबिध तप तीनहु भाई ।
परत उग्र नहिं बरनि सो जाई।।
गयेउ निकट तप देखि बिधाता।
माँगहु वर प्रसन्न मैं ताता ।।

बालकाण्ड के अन्तर्गत पार्वती परीक्षा लेने आए हुए सप्तर्षियों से कहती है।

तुम्हरें जान कामु अब जारा।
अब लगि संभु रहे सविकारा ।।
हमरे जान सदा सिव जोगी ।
अज अनवद्य अकाम अभोगी ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

नारदजी के उपदेश के प्रति आस्था प्रकट करती हुई पार्वती कहती है-

जन्म कोटि लगि रगर हमारी।
बरउँ सँभु न त रहउँ कुआरी ।।

यह प्रसगं अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत उस समय का है जब भरत श्री राम से मिलने के लिए जा रहे थे-

करम प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फल चाखा।।

अयोध्याकण्ड के अन्तर्गत भगवान राम जब पिता से वनवास जाने की आज्ञा माँगने गये हैं यह प्रसंग उसी समय का है।

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी ।
ईसु देइ फल हृदय विचारी।।
करइ जो करम पाव फल सोई।
निगम नीति असि कह सबु कोई।।

अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत जब श्री राम व्याह करके अयोध्यापुरी आये हैं और उनके युवराज होने का निश्चय हुआ उसी समय का एक निम्न प्रसंग है।

जीव करम बस सुख दुख भागी ।
जाउअ अवध देव हित लागी।।
आगिल काजु विचारि बहोरी ।
करिहहिं चाह कुसल कवि मोरी ।।

अयोध्याकाण्ड में वनवास के प्रसंग में निषादराज लक्ष्मण से निवेदन करते हैं कि-

पिता जनक जग विदित प्रभाऊ।
ससुर सुरेस सखा रघुराऊ।।
रामचन्द्र पति सो वैदेही ।
सोवत यहि विधि राम सनेही ।।
सिय रघुवीर कि कानन जोगू।
कर्म प्रधान सत्य कह लोगू ।।

तब लक्ष्मणजी निषाद को इसका उत्तर देते हुए बड़ी ही मधुर वाणी में बोले ।

काहुन कोउ सुख दुख कर दाता ।
निज कृत कर्म भोग सब भ्राता।।

अयोध्याकाण्ड के अर्न्तगत ही जब सुमन्त राम से मिल कर आयोध्या वापिस आ जाते हैं और राजा दशरथ से मिलते हैं तो वे धीरज धर कर मधुर और मृदुल वाणी से राजा दशरथ को प्रबोध देते हुए कह रहे हैं।

जनम मरन सब दुखसुख भोगा।
हानि लाभ प्रिय मिलन वियोगा।।
काल करम बस होहि गुसांई ।
बरबस रात दिवस की नाई।।

अयोध्याकाण्ड में ही इसी की पुष्टि में माँ कौशिल्या भरत को अपनी गोदी में बिठला कर कहती हैं कि हे वत्स सुनो-

जनि मानहु हिय हानि गलानी ।
काल करम गति अघटित जानी ।।

माँ कौशिल्या समय, परिस्थिति और वातावरण को समझ कर बड़े धैर्य से सुमित्रा को समझाती हुई कहती है कि-

कौशिल्या कह दोष न काहु ।
करम बिबस दुख सुख छति लाहु।।
कठिन करम गति जान विधाता ।
जो सुभ असुभ सकल फल दाता ।।

इसलिए मनुष्य को सदा सत कर्म करने की ओर ही प्रेरित होना चाहिए।

।। आठवाँ प्रवचन समाप्त।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नवम-प्रवचन

सब में एक ही आत्मा देखना

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।।

-अध्याय ६ श्लोक ३२

हे अर्जुन ! जो व्यक्ति आत्मा की उपमा से(अपने तुल्य)सर्वत्र सुख अथवा दुःख को सम देखता है, वह परम योगी माना जाता है।

सर्वभूतस्थ मात्मानं सर्व भूतानिचात्मनि ।
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र सम दर्शनः।।

-अध्याय ६ श्लोक २९

योग युक्तात्मा पुरुष समदृष्टि हुआ सब भूतों में स्थित आत्मा को और आत्मा में सब भूतों को देखता है।

अपने समान सब को समझने की मान्यता में अध्यात्मवाद का सारा तत्व ज्ञान सन्निहित है। दूसरों की कठिनाइयों को अपनी कठिनाई और दूसरों के की सुविधा को अपनी सुविधा मानकर चलें। दूसरों दुख को अपना दुख और दूसरों के सुख को अपना सुख मानें तो फिर अधर्म किसी से बन ही न पड़ेंगे। शुभ कर्मो की शृंखला निरन्तर बढ़ती ही रहेगी, ऐसी दशा में आत्म सन्तोष एवं आन्तरिक उल्लास की अभिवृद्धि निरन्तर होती ही रहेगी और इसको सत् परिणाम आत्मबल बढने के रूप में प्राप्त होता ही रहेगा। आत्म कल्याण का मार्ग यही है।

अध्यात्मवाद का सारा ढाँचा इसी उदेश्य को लेकर खड़ा किया गया है कि व्यक्ति अपने आप में पवित्र, विवेकी, उदार और संयमी बनें। दूसरों से ऐसा मधुर व्यवहार करे जिसकी प्रतिक्रिया लौटकर उसके लिए सुविधा और प्रसन्नता उपस्थित करे। ऐसी विचारणा और गतिविधि जो व्यक्ति अपना सका, समझना चाहिए उसने अध्यात्मवाद के तत्व ज्ञान को समझ लिया और आत्म कल्याण के लक्ष्य तक पहुँचने का सुनिश्चित मार्ग पकड़ लिया।

सद्भावनाऐं ही दैवी सम्पति है। सांसारिक सम्पतियों से केवल सांसारिक सुख मिलते हैं किन्तु दैवी सम्पति के मिलने पर मनुष्य दुहरा लाभ प्राप्त करता है उससे लौकिक जीवन आनन्दमय बनता है किसी वस्तु का अभाव एवं कष्ट नहीं रहता। क्योंकि उसके पुरुषार्थ का जागरण होने से मनोयोग के सुसंतुलित होने से हर कार्य ठीक तरह बन पड़ता है और सफलताओं की संभावना अधिकाधिक बढ़ती जाती है। परिश्रमी और लगनशील व्यक्ति जिस कार्य में भी लगते हैं उसी से सफलता पर सफलता प्राप्त करते हुए आगे बढते चले जाते है फिर यदि परिस्थितिवश कभी कोई कमी रह जाती हैं या असफलता मिलती है तो उसे वह मनस्वी व्यक्ति हँसी-हँसी में सहन कर लेता है और उससे निराशा, चिन्ता एवं खिन्नता जैसा प्रभाव मन पर नही पड़ने देता। अध्यात्म सिद्धान्तों का अनुकरण करने पर यह आत्म परिष्कार का लाभ जिसे मिला उसका लौकिक जीवन में समृद्धि और प्रगति का मार्ग ही प्रशस्त हुआ है। उसने आनन्दमय जीवन का सुख लाभ कर अपने को धन्य माना है।

अध्यात्म का दूसरा लाभ है अन्य व्यक्तियों के साथ मधुर संबन्धों का होना। मनुष्य सामाजिक प्राणी है उसे दूसरों के साथ मिल जुलकर रहना पड़ता है। अपनी सुविधाऐं दूसरों के सहारे प्राप्त करता है सम्मान प्रसन्नता एवं सहयोग का सुख भी उसी को मिलता है जो दूसरों की सद्भावना प्राप्त कर सके जिसे दूसरों का स्नेह सद्भाव एवं सम्मान प्राप्त नहीं है वह पगपग पर कठिनाइयों को अनुभव करेगा और अपने आपको अकेला तिरस्कृत एवं उपेक्षित अनुभव करता हुआ सदा उद्विग्न बना रहेगा। ऐसी दशा में जीवन की असफलता एवं नीरसता ही अनुभव होती रहेगी इस खेदजनक स्थिति से बचने का एक मात्र उपाय है आध्यात्मिक मान्यताओं का अवलम्बन। जिसका पहला उपाय आन्तरिक पवित्रता और दूसरा उपाय अन्य व्यक्तियों के साथ मधुर व्यवहार करना ही हो सकत है।

गीता के पूर्व प्रवचनों में आत्म परिष्कार के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा चुका है। प्रस्तुत श्लोक में उस रहस्य को प्रकट कर दिया गया है कि दूसरों का सद्भाव एवं सहयोग किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है। दूसरे लोग न भले है न बुरे। उनमें अच्छाइयाँ भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बहुत हैं और बुराइयों की भी कमी नहीं। हर मनुष्य के अन्दर दैवी और आसुरी तत्व पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। इन उभय पक्षीय वृत्तियों में से हम जिसके साथ अपना सम्पर्क बनाते है, जिसे प्रोत्साहित करते हैं वही उभर कर आगे आ जाती है। जब हम किसी से कटुवचन बोलते या दुर्व्यवहार करते हैं तो उसकी आसुरी शक्तियों के साथ सम्पर्क बनता है। हमारी असुरता को देखकर उसकी असुरता उभरती है फलस्वरूप वह भी क्रुद्ध होकर बदले में कटुवचन बोलने या दुर्व्यवहार करने के लिए कटिबद्ध हो जाता है। असुरता की प्रतिक्रिया असुरता के रूप में होनी ही चाहिए। इसमें आश्चर्य या दुख की कोई बात नही। जब हम दूसरों के साथ प्रेम, मधुरता, उदारता एवं सज्जनता का व्यवहार करते है तो बदले में कटुस्वभाव का व्यक्ति भी नरम हो जाता है और अपेक्षाकृत अधिक मधुर व्यवहार करता है। बुरे व्यक्ति भी सब के बुरे नही होते किसी-किसी के लिये वे भी मधुर हो जाते हैं। जिसके साथ वे अच्छा व्यवहार करते हैं उसमें स्वार्थ भी एक कारण हो सकता है पर ऐसा भी निश्चित रूप से होता है कि जो सज्जन है उसके साथ दुर्जनों को भी अपेक्षाकृत अधिक सज्जनता बरतने के लिये विवश होना पड़ता है।

यह निर्विवाद है कि दूसरों के सहयोग की उपेक्षा करके कोई व्यक्ति प्रगतिशील सुखी एवं समृद्ध होना तो दूर ठीक तरह जिन्दगी के दिन भी नही गुजार सकता है। इसलिये प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति को इस बात की आवश्यकता अनुभव होती है कि वह अपने परिवार का, मित्रों का, साथी सहयोगियों का तथा सर्वसाधारण का अधिकाधिक सहयोग प्राप्त करे। और यह तभी सम्भव है जब हम दूसरों के साथ अधिक सहायता एवं सद्भावना पूर्ण व्यवहार करने का अभ्यास करें। गीता में इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए अर्जुन को और अर्जुन के माध्यम से सर्व साधारण को प्रोत्साहित किया गया है।

दूसरों का हृदय जीतने और उसका सहयोग प्राप्त करने का लाभ कैसे मिले? इसका उत्तर ढूँढ़ने के साथ-साथ हमें यह जानना ही चाहिए कि यह संसार कुए की आवाज की तरह है जिसमें हमारे ही उच्चारण की प्रति ध्वनि गूँजती है। यह संसार दर्पण की तरह है जिसमें विभिन्न व्यक्तियों के माध्यम से अपना ही स्वरूप दिखाई पड़ता है इस संसार के बाजार में कोई सुख सुविधा अपने सद्गणों में मूल्य पर ही खरीदी जाती है जब हम अपने आपको सुधारने के लिए अग्रसर होते हैं तो निश्चित रूप से यह दुनियां हमारे लिए अपेक्षाकृत अधिक सुधरी हुई सुन्दर और मधुर बन जाती है।

गीता के प्रस्तुत श्लोकों में कहा गया है कि हम अपने समान ही और को समझें। उनके सामाजिक स्तर और मानवीय अधिकारों को अपने से तनिक भी न्यून न समझें। जाति-पांति के आधार पर किसी को हेय हीन या छोटा समझना अध्यात्मवाद के सर्वथा विपरीत है दुष्टता और सज्जनता के आधार पर किसी को नीच ऊँच माना जाय किसी कुकर्मी का तिरस्कार और श्रेष्ठ सत्पुरुष को सम्मान किया जाय यह बात दूसरी है उसमें औचित्य है पर केवल इसलिए किसी को नीच मानना कि वह अमुक जाति में पैदा हुआ है, सर्वथा अनुचित है इसी प्रकार स्त्रियों को पुरूषों से कम दर्जे के अधिकार देने की बात सोचना अनुचित है। नर और नारी दोनों ही ईश्वर की दाहिनी-बाँई भुजा हैं। दाँये बाँए नेत्र हैं। इनके अधिकार और स्तर में हीनता महत्ता का अन्तर नहीं किया जा सकता। इसलिए सबको अपने समान समझना समता के आदर्श पर पूरी-पूरी आस्था रखना आध्यात्म पथ पर चलने वाले के लिए एक नितान्त आवश्यक धर्म कर्तव्य माना गया है।

दूसरों की परिस्थिति में हम अपने को रखें और अपनी परिस्थिति में दूसरे को रखें और फिर विचार करें कि इस स्थिति में क्या सोचना और क्या करना उचित है। यदि हम बीमार हैं तो दूसरों से किस प्रकार से सहयोग एवं व्यवहार की आशा एवं आवश्यकता हमें होगी इसकी कल्पना करनी चाहिए और तब घर में पड़े बीमार के साथ अपने कर्तव्य एवं व्यवहार का निर्धारण करना चाहिए। कोई व्यक्ति हमारे साथ ठगी धोखेबाजी बेईमानी एवं अनीति का व्यवहार करे तो हमें कितना कष्ट एवं क्षोभ होगा इसकी कल्पना करते हुए हमें और के साथ इस प्रकार के अनीतियुक्त व्यवहार करने से बचना चाहिए। हर मनुष्य चाहता है दूसरे उसके साथ सहानुभूति, सहृदयता एवं उदारता का व्यवहार करें, तब अपने को औरों की स्थिति में और औरों का अपनी स्थिति में रखकर हमें अपना कर्तव्य वैसा ही निर्धारित करना चाहिए जैसा कि औरो से अपने प्रति व्यवहार की आशा कर रहे थे।

दूसरों के सुख को देखकर अपने सुख जैसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कल्पना करना और प्रसन्न होना प्रत्येक अध्यात्मवादी का-गीता के अनुयायी का-स्वभाव होना चाहिए। उसी प्रकार दूसरों के दुख में अपना दुख अनुभव करना और दुखी होना आध्यात्मिकता का चिन्ह माना जाना चाहिये। जो दूसरों को दुखी देखकर अपने दुःखी होने के समान दुःखी नही होता जिसे दूसरों के सुख में अपने सुख जैसा आनन्द एवं सन्तोष नही मिलता, वह व्यक्ति आध्यात्मवादी कहलाने लायक नहीं। पाषाण जैसा हृदय केवल स्वार्थी लोगों का होता है। अपने थोड़े से सुख के लिये दूसरों कोअपार कष्ट देते हुए उन्हें संकोच नही होता ऐसे निष्ठुर व्यक्ति एक प्रकार के असुर ही है जिन्हें दूसरों को सुखी लाभान्वित या सफलता प्राप्त करते देखकर प्रसन्नता के स्थान पर ईर्षा एवं कुढन होती है, उन्हें नर पिशाच ही मानना चाहिए। अपने और पराये के बीच जितनी अलगाव की दीवार बड़ी और चौड़ी होगी उतना ही व्यक्ति ओछा और पापी बनता चला जायगा। यह पर्दा जितना ही हल्का होगा उतनी ही आत्मिक प्रगति हुई समझी जा सकती है। जब अपने और पराये का भेदभाव मिट जाता है, औरों के कष्टों को अपना कष्ट समझ कर जब कोई सहृदय व्यक्ति करुणा से विचलित हो उठता है और उन व्यथाओं के शमन के लिए तत्पतापूर्वक लग जाता है तो समझना चाहिए कि इसकी आत्मा में ऋषि तत्व उदय हुआ और परमात्मा की उपलब्धि समीप आ गई।

प्राणी मात्र के भीतर एक ही आत्मा समाई है। सब अपने ही है अपनों के साथ आत्मीयता का व्यवहार करना ही पड़ता है और वह आत्मीयता त्याग, प्रेम,सेवा एवं क्षमा से भरा हुआ ही होता है। इसी प्रकार की आन्तरिक स्थिति बनाई जानी चाहिए और उसे दिन-दिन विकसित एवं परिपुष्ट किया जाना चाहिए। एक ही आत्मा को सबमें समाया हुआ देखने वाला अपने को सबमें और सब को अपने में अनुभव करने वाला व्यक्ति वस्तुतः हर घड़ी ईश्वर को ही देखता है यह मान्यता जिसके अन्तकरण में जागृत होगी वह सीमाबद्ध स्वार्थी संकीर्णता न रह कर विश्वहित के लिए अपने आपको उत्सर्ग करने में ही प्रसन्नता अनुभव करेगा और निरन्तर उसी मार्ग पर चलते हुए अपने जीवन की सार्थकता समझेगा। जिसने यह मार्ग अपना लिया वस्तुतः सच्चा योगी वही है बाकी तो लाल-पीले कपड़े पहनकर कौतुक करते फिरने वाले बिदूषक मात्र हैं। गीता का योगी वनवासी भी हो सकता है और गृहवासी भी। उसे दोनों ही स्थितियों में पीड़ित मानवता की सेवा के लिये आत्मोत्सर्ग करना ही पड़ता है।

आत्मवत् सर्वभूतेषु की भावना

ईश्वर के बाद मनुष्य का उत्तरदायित्व

कुरुक्षेत्र के मैदान में दूर-दूर तक लाशों पर लाशें बिछी पड़ी थी। शिष्यों समेत शमीक ऋषि उधर से निकले तो लाशें के बीच गज घन्टा के पास दो पक्षियों को चहचहाते देखा। शिष्यों ने आश्चर्य से "पूछा देव ! इतने घमासान युद्ध में यह पक्षी कैसे जीवित बने रहे ?" ऋषि ने कहा- "युद्ध हो रहा था, एक चिड़िया को तीर लगा और वह जमीन पर गिर पड़ी और वही दो अण्डे दिये। संयोग से एक हाथी का घन्टा टूट कर इन्हीं के ऊपर गिर गया और इन अडों की रक्षा होती रही। अब ये बच्चे मिट्टी कुरेद कर बाहर निकल आये हैं चलो इन्हें आश्रम ले चलो यहाँ इनका पालन पोषण कौन करेगा ?" एक शिष्य ने पूछा गुरुदेव जिस परमात्मा ने इनकी रक्षा की है वह इनका पालन भी कर लेगा। गुरुदेव बोले , जहाँ से परमात्मा का काम समाप्त हो जाता है, वहाँ से मनुष्य का कर्तव्य शुरू होता है। परमात्मा ने इनकी रक्षा की और हमें इनका पालन-पोषण करना चाहिए शिष्यों ने पक्षी शावकों को उठा लिया।

साथी को न छोड़ना

हिमालय पहाड़ की विषमताओं के कारण एक-एक करके अर्जुन, नकुल, सहदेव, भीम, द्रोपदी, कुन्ती आदि मर गये, अकेले युधिष्ठिर ही आगे बढ़ते रहे। उनके साथ मार्ग में से एक कुत्ता भी लग गया और वे अपने उस साथी के साथ आगे बढ़ रहे थे। एक स्थान पर उन्होंने देखा कि इन्द्र विमान लेकर खड़े हैं और स्वर्ग में चलने की प्रार्थना कर रहे हैं। युधिष्ठर ने कुत्ते को भी साथ में ले चलने को कहा लेकिन नियमानुसार कुत्ता वहाँ नहीं जा सकता था। इस पर युधिष्ठिर ने अपने मित्र के बिना वहाँ जाने से इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा जिसने मेरा यहाँ तक साथ दिया उसे मैं कैसे छोड़ सकता हूँ। इतने में ही धर्म जो कुत्ते के रूप में थे प्रकट हो कर युधिष्ठिर के जीव प्रेम की सराहना करने लगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मिल बाँट कर खाओ

सुधन्वा के पुत्र ऋभु-विभू और बाज त्वष्टा के विशेष कृपा पात्र थे। त्वष्टा ने उन्हें अनेकों विधायें सिखाई थीं। एक दिन ऋभुओं ने सोम का अभिषव करके चमस में रखा ही था कि उन्हीं के आकार का एक और व्यक्ति उपस्थित हुआ। सोम कोई साधारण वस्तु न थी किन्तु अतिथि की अवहेलना भी तो अक्षम्य थी। ऋभु ने प्रसन्नता पूर्वक सोम के चार भाग कर अतिथि का सत्कार किया। उनके इस आदर्श व्यवहार पर मानव देहधारी अतिथि भगवान् अग्नि प्रकट हुये और उन्हें देवत्व दान किया।

गांधारी और युधिष्ठिर की महानता

महाभारत शुरू होने को ही था। दुर्योधन जानता था कि यदि उसकी माँ उसे आशीर्वाद दे दे तो वह युद्ध में अवश्य विजयी होगा। यह सोचकर वह गाँधारी के पास गया। माता ने पुत्र से बड़ा स्नेह किया पर आशीर्वाद नहीं दिया। कुछ देर बाद दुर्योधन इसी लालसा से पुन: माता के पास गया। गान्धारी ने कहा बेटा ! जीत उसी की होती है जो सत्य और न्याय का समर्थक होता है।

दुर्योधन अपनी माता की पतिव्रत जन्म सिद्धि को जानता था, इसलिए उसने विजय का उपाय पूछने के लिये बहुत आग्रह किया इस पर गान्धारी ने उसे युधिष्ठिर के पास जाकर उपाय पूछने को कहा· दूर्योधनने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा- वे तो हमारे शत्रु हैं। भला हमारी विजय का उपाय कैसे बतावेंगे ? गान्धारी ने कहा- श्रेष्ठ पुरुष अपने-पराये का और मित्र-शत्रु का भेद नहीं करते। वे बिना भेद भाव सब को सत्परामर्श देते हैं। तुम उनके पास जाओ। उचित परामर्श मिलेगा। दुर्योधन गया। पूछा । उत्तर में युधिष्ठिर ने बताया कि आपकी माता खुले नेत्रों से आपका शरीर देख ले तो उस पर किसी शस्त्र का आघात न पहुँचेगा। दुर्योधन ने वैसा ही किया भी । कटि वस्त्र पहने रहने के कारण उनका वह अंग दुर्बल रह गया और भावीवश उसीसे मारा भी गया। पर गान्धारी का आर्शीवाद न देना और युधिष्ठिर का अपने शत्रु को भी सत्यपरामर्श देना सदा अमर रहेगा।

प्रतिशोध का शमन

पिप्पलाद को एक बार बड़ा क्रोध आया। उनने शिवजी की तपस्या की और वर देने के लिए उन्हें प्रसन्न कर लिया। पिप्पलाद ने माँगा कि देवताओं ने मेरा तिरस्कार किया है इसलिए मैं उनसे प्रतिशोध लूँगा, आप तीसरा नेत्र खोलकर उन्हें भस्म कर दीजिए।
शिवजी ने उन्हें समझाया कि क्रोध के वशीभूत होकर छोटे कारण के लिये बड़ा दण्ड देना उचित नही। पिप्पलाद फिर भी न माने। तब शंकर जी ने कहा। आपकी मनोकामना तो पूर्ण करेंगे पर उससे पहले आप जलते समय होने वाले कष्ट का थोड़ा अनुभव करलें, तब अन्तिम निश्चय करें। यह कह कर शकंरजी ने अपने तीसरे नेत्र की एक किरण निकाली जो ऋषि के शरीर में प्रविष्ट हुई तो वे दाह की प्रचडता से व्याकुल होकर चीत्कार करने लगे।
अपने शरीर में होने वाले कष्ट से दूसरों के कष्ट का अनुमान कर पिप्पलाद का मन बदल गया और उन्होंने देवताओं के नष्ट करने का विचार छोड़ दिया।

रावण का कर्तव्य पालन

रामचन्द्रजी ने समुद्र तट पर शंकर जी की स्थापना करने का निश्चय किया। इसके लिए योग्य विद्वान की आवश्कता हुई । सबसे समीप रावण ही था। उसे आदर सहित बुलाया गया रावण आया और उसने ब्राह्मण की तरह देवप्रतिष्ठा का अपना कर्तव्य पूर्ण किया। रामचन्द्रजी ने ससम्मान रावण को प्रणाम करके दक्षिणा दी। रावणने राम को मंगल तिलक किया और आशीर्वाद देते हुए कहा- "राम तुम्हें अपने उदेश्य में सफलता मिले। तुम्हारे शत्रुओं का नाश हो" रावण की इस विशाल भावना से राम का हृदय द्रवित हो गया।

दुष्कर्मों का प्रतिफल अटल

महर्षि माण्डव्य के आश्रय में छिपे डाकू पकड़े गये, चोरी का माल भी उनके पास मिला, डाकुओं के साथ माडव्य भी पकड़े गये। न्यायालय में उपस्थिति किये गये तो डाकुओं के साथ-साथ माण्डव्य को भी शूली का दण्ड मिला।

अन्य ऋषि मिलकर राजा के पास पहुँचे और माण्डव्य की निर्दोषता बताई। राजा ने तुरन्त शूली रुकवा दी और उन्हें तख्ते पर से नीचे उतार लिया गया। तब तक जितना कष्ट उन्हें हो चुका था उसके लिए राजा ने क्षमा मांगी।

माण्डव्य ने कहाकि पूर्व जन्म में मैंने अनेक पशु पक्षियों को सताया था।, उसके फलस्वरूप मुझे भारी यातनाओं केसाथ मरना था पर मेरी इस जन्म की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तपस्या ने उन कष्टों को घटा दिया फिर भी कोई प्रारब्ध पूर्णतया शमन नही हो सकता उसका कुछ तो दण्ड मिलना चाहिए। मेरे अशुद्ध कर्मो का ही यह प्रतिफल था। आप निर्दोष है।

घटोत्कच का प्रत्युपकार

भीम ने वनवास के समय हिडिम्बा नामक एक वनवासी स्त्री से विवाह कर कर लिया था। वही उसका घटोत्कच नामक पुत्र हुआ। माता पुत्र वनवास में ही रहते थे। जब पाण्डवों का अपना ही रहने का कोई ठिकाना न था। तो हिडिम्बा ही उनके साथ कहाँ रहती ?

इतने में महाभारत आरम्भ हो गया। कर्ण से घमासान लड़ाई होने लगी। कर्ण के पास एक ऐसा अचूक अस्त्र था जिससे पाण्डवों का संहार निश्चित था। उसके प्रयोग का अवसर जब आया तब हिडिम्बा ने अपने पुत्र को कहा बेटा अपने अभिभावकों के प्रति प्रत्युपकार ऋण चुकाने का यही अवसर है। प्राणों का मोह न करके कर्तव्य पालन करना चाहिए। उस शस्त्र के प्रयोग के समय घटोत्कच सामने आ गया वह मारा गया और पाण्डव बच गये।

रक्षक और घातक

राजकुमार सिद्धार्थ और मंत्री- पुत्र देवदत्त दोनों साथ साथ बाग में घूमने जा रहे थे। सहसा सिद्धार्थ ने देखा दो सुन्दर राजहंस आकाश में उड़ते जा रहे है। उन्हें देखकर वह प्रसन्न हो उठा, "देवदत्त देखो यह कितने सुन्दर पक्षी जा रहे है।" देवदत्त ने ऊपर देखा और अपना धनुष वाण उठाया, एक पक्षी को मार कर गिरा दिया।

सिद्धार्थ की प्रसन्नता, शोक और व्याकुलता में परिणित हो उठी सिद्धार्थ दौड़े और रक्त से सने राजहंस को गोद में उठा लिया और सीने से लगाकर रोने लगे।

"इस पक्षी पर मेरा अधिकार है सिद्धार्थ । देखते नहीं हो, इसे मैंने अपने बाण से मारा है।" देवदत्त ने कहा।

सिद्धार्थ बिना कुछ कहे पक्षी लेकर चले गये अपने भवन में और वहाँ उसकी सेवा सुश्रूषा करने लगे।

देवदत्त ने उस समय राजकुमार समझ कर कुछ झगड़ा नही किया किन्तु पक्षी के बारे में लालसा मिटी नहीं। उसने फिर सिद्धार्थ से पक्षी माँगा किन्तु जबाव इन्कारों में ही मिला। सिद्धार्थ बड़े प्यार से उसकी सेवा करने लगे।

देवदत्त ने न्याय प्राप्ति के लिए महाराज के पास जाकर शिकायत की। महाराज ने दोनों को राज दरबार में उपस्थित होने की आज्ञा दी। एक ओर देवदत्त खड़े थे दूसरी ओर सिद्धार्थ अपनी गोद में पक्षी को लिए हुए। देवदत्त ने अपना तर्क प्रस्तुत किया-"महाराज मैने पक्षी को बाण मारा, इसलिए इस पर मेरा अधिकार है।"

"किन्तु मैने इसे बचाया है। मारने वाला नही बचाने वाला बड़ा होता है। उसका ही अधिकार होना चाहिए।"सिद्धार्थ ने बिना पूछे कहा। महाराज ने पक्षी को दोनो के बीच में छुडवा दिया और वह स्वयं बुद्ध के पास चला गया।

उपगुप्त और वासवदत्ता

भारत की सर्वश्रेष्ठ नर्तकी वासवदत्ता किसी भी तरह उपगुप्त को आकृष्ट न कर सकी। आत्मा पर प्रीति रखने वाले योगी के लिए शरीर का भला क्या महत्व हो सकता था ।वासवदत्ता के सारे प्रयास निष्फल गये। अब वह वृद्धा हो गई, रूप और यौवन के लोलुप भौरे अब उसके पास नही आते। आज वह नि:सहाय पड़ी है सारे बदन में घोर पीड़ा है प्यास से व्याकुल कोई पानी देने को भी नही है। सहसा द्वार खुले। उपगुप्त आये है आज। वासवदत्ता को उन्होंने अपने हाथ से पानी पिलाया, उसकी सेवा की और अपने घर आजीवन सेवा करने केलिए ले आये। उन्होंने कहा वासना के लिए नही मानवीय कर्तव्यों के लिये किसी को प्यार करना यही प्यार का सच्चा स्वरूप है।

भामा शाह की उदारता

मेवाड़ की रक्षा के लिए महाराणा प्रताप अन्तिम प्रयत्न करते हुए निराश हो गये थे। अकबर की विशाल सेना और अपरिमित साधनों का मुकाबला करते-करते छोटे से मेवाड़ प्रदेश के साधन समाप्त हो चुके थे। प्रत्येक लड़ाई में राजपूतों ने चिरस्मरणीय शौर्य और वीरता का परिचय दिया, महाराणा प्रताप ने दो चार हजार सैनिकों को लेकर बड़ी बादशाही सेनाओं का मुँह मोड़ दिया, पर मुगल सल्तनत के साधन बहुत अधिक थे। एक सेना नष्ट हो जाती तो दूसरी भेजदी जाती।.एक स्थान का रसद पानी खत्म हो जाता तो दूसरे स्थान से अन्नादि सामग्रियॉ भेज दी जातीं पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

महाराणा प्रताप अकेले अपने ही बल पर जूझ रहे थे।

अन्त में ऐसा समय आया कि उनके पास न तो रुपया पैसा बचा न सिपाही रहे। बादशाही सेना को निरन्तर आगे बढ़ते देखकर और पहाड़ों के भीतर रहकर अपने तथा अपने साथियों के लिए सूखी रोटी मिल सकना भी असम्भव समझकर उन्होंने मेवाड़ को त्याग कर सिन्ध की तरफ जाने का विचार किया।

जिस समय महाराणा प्रताप देश त्याग का निश्चय करके और अपने बचे खुचे साथियों को लेकर अरावली पर्वत को पार करके सिन्ध में जाने का कदम बढ़ाने लगे कि किसी ने उनको पीछे से पुकारा "ओ मेवाड़ पति राजपूती वीरता की शान दिखाने वाले हिन्दू धर्म के रक्षक जरा ठहर जाओ।" राणा ने चौंककर पीछे मुड़कर देखा तो उनके राज्य के पुराने जमाने के मन्त्री भामाशाह उनकी तरफ दौड़े चले आये थे।

वे समीप पहुँचते ही आँखों में आँसू भरे हुए भर्राए स्वर से बोले-"स्वामी ! आज कहाँ जा रहे हैं और क्यों इतने व्यथित तथा उदास जान पड़ते है ?" महाराणा प्रताप का निराशापूर्ण उत्तर सुनकर भामाशाह कहने लगे- नहीं, एक बार आप फिर अपने घोड़े की बाग मेवाड़ की तरफ मोड़िये और नये सिरे से तैयारी करके मातृ भूमि का उद्धार करने का प्रयत्न कीजिये। इसमें जो खर्च होगा वह मुझ से लीजिए। आपके पूर्वजों की दी हुई पर्याप्त सम्पति मेरे पास है। वह सब मैं आपके चरणों में भेट करता हूँ। वह मातृ भूमि के उद्वार में लग सके इससे बढ़कर उसका सदुपयोग क्या हो सकता है? इसलिये आज मेरी प्रार्थना स्वीकार करके उस सम्पति द्वारा लड़ाई की तैयारी करें। यदि सफल हो जायें तो ठीक है अन्यथा फिर जहॉ स्वामी वही सेवक भी चलेगा।" भामाशाह के अपूर्व त्याग और देश भक्ति को देखकर महाराणाप्रताप का हृदय आया और अनुरोध को मानकर वापस लौट आये। कहा जाता है कि भामाशाह के भण्डार में इतना धन था कि जिससे पच्चीस हजार सेना का बारह वर्ष तक खर्च चल सकता था। भामाशाह ने अपना सुख ठुकरा दिया और सारे देश के उज्ज्वल भविष्य के लिए अपना सब कुछ दान कर दिया।

पीड़ितों की सेवा भगवान की पूजा

स्वामी विवेकानन्द ने कलकत्ते में प्लेग पीड़ितों की सेवा के लिए बहुत बड़ा काम किया। अपने सभी साथियों को उन्होंने इस ओर लगा दिया और कहा-"सबसे बड़ा कार्य सेवा है।"धन की आवश्यकता पड़ी तो वे रामकृष्ण मिशन मठ के लिये ली गई जमीन को भी बेचने के लिए तैयार हो गये थे। उन्होंने कहा- "जब हम अभी पीडितों की सेवा नहीं कर सकते तो इन मठ मन्दिरों का क्या करेंगे ?"

भगवान की परोपकार से प्रसन्नता

एक बार एकनाथ जी अन्य सन्तों के साथ प्रयाग से गंगाजी का जल कॉवर में लेकर रामेश्वर जा रहे थें। रास्ते मे एक रेतीला मैदान आया वहाँ एक गधा प्यास के मारे छटपटा रहा था। एकनाथ जी ने तुरन्त काँवर से लेकर गंगाजल गधे के मुख में डाला। एकनाथ के साथी सन्त प्रयाग के गंगाजल का इस प्रकार प्रयोग होते देख क्रुद्ध हुए। एकनाथ ने उन्हें समझाया- अरे सज्जन वृन्द ! आप लोगों ने तो बार बार सुना है कि भगवान घट घट वासी है। तब भी ऐसे भोले बनते हो। जों वस्तु या ज्ञान समय पर काम न आवे वह व्यर्थ है। कॉवर का जो जल गधे ने पिया वह सीधे श्री रामेश्वरजी पर चढ़ गया।

मानवता की सेवा

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर एक दिन अपने मित्र के साथ एक गॉव जा रहे थे। रास्ते में हैजा से आक्रान्त एक दीनहीन व्यक्ति मूर्छित अवस्था में पड़ा मिला। विद्यासागर उसकी सफाई करके पास के अस्पताल में पहुँचाने का उपक्रम करने लगे

साथी मित्र ने कहा- हम लोग आवश्यक काम से जा रहे है। इस छोटे काम को कोई और कर लेगा हम लोग अपना कार्य क्यों छोड़ें?

विद्यासागर ने कहा- मानवता की सेवा से बढ़कर और कोई काम बड़ा नहीं हो सकता। उस निस्सहाय पीड़ित की उपेक्षा करके अपनी निष्ठुरता ही तो हम लोग प्रमाणित करेंगे। निष्ठुर व्यक्ति का कोई कार्य भला नहीं कहा जा सकता।

इसी तरह एक दिन स्टेशन पर एक नवयुवक कुली कुली चिल्ला रहा था। छोटे स्टेशन में कुली कहाँ? ईश्वरचन्द्र विद्यासागर सादे वेश में खड़े थें। उन्होंने नवयुवक का बक्सा ले लियाऔर चल पड़े। अपने घर के सामने आकर विद्यासागर रुक कर बोले भाई यही विद्यासागर का घर है।युवक पैसे देने लगा तो उन्होंने सरलता से कहा मैं ही ईश्वरचन्द्र विद्यासागर हूँ। युवक

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनके पैरों में गिर कर माफी माँगने लगा और भविष्य में अपना काम स्वयं करने की प्रतिक्षा ली।

दूसरे के दुःख को अपना दुःख समझो

मालवीयजी के विद्यार्थी काल की घटना है कि उन्होंने एक कुत्ते को देखा कि जिसके कान के पास एक ऐसा घाव था उसमें पीव पड़ गई थी। मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। इससे उसे बहुत पीड़ा हो रही थी। और वह पागलों की तरह इधर उधर भाग रहा था। बीसियों व्यक्ति उसको देखकर जा ही रहे थे। किसी पर कोई प्रभाव नही पड़ा। बल्कि उसे देखकर अपना मुहँ ही फेर लेते है।

मालवीयजी ने सोचा "इस समय यदि मेरी यही दशा होती तो मैं क्या करता ? इसका इलाज करवाना चाहिए। इस वेचारे का कौन है, भगवान के सिवाय," वह तुरन्त एक वैद्य जी के पास गये और कुत्ते के घाव सम्बन्धी सभी बातें उन्हें बताई । वैद्य जी ने दवा तो देदी ,पर वह बोले 'मदनमोहन! कुत्ते के लक्षण ऐसे है कि उसके पागल होने की सम्भावना है। पागल कुत्ते छूने पर काट लेते हैं। तुम इस चक्कर में न पड़ो तो अच्छा है।'

मालवीयजी कब मानने वाले थे। उन्हें तो अपनी धुन सवार थी। दवा लेकर कुत्ते को ढूँढने लगे। उस की पीड़ा तो हो ही रही थी। बेचारा दुम दवा कर एक गली में बैठ गया था। मालवीयजी उसे दवा लगाने लगे। दवा लगाने से उसे कुछ विशेष पीड़ा हुई जिससे वह गुर्राया दाँत निकाले झपटने का भी ढंग बनाया, किन्तु मालवीयजी तो अपने काम में मस्त थे, उन्होंने कुत्ते की गुर्राहट को सुना तक नहीं।

जब दवा अच्छी तरह लग गयी तो कुत्ते की पीड़ा कुछ कम हुई वह सो गया और मालवीयजी ने शान्ति की सांस ली।

इसलिये तो श्री चिन्तामणि जी उनके बारे में कहा करते थे कि "मालवीयजी में तो सिर से पैर तक हृदय ही है।"

अपने सुख के लिए दूसरों को दुःख नहीं

सेवाग्राम में गान्धी जी के पास एक कुष्ट रोगी परचुरे शास्त्री रहते थे। उनके कुष्ट रोग के लिये किसी ने दवा बताई कि-"एक काला सांप लेकर हांडी में बन्द किया जाय, फिर उस हांडी को कई घण्टे उपलों की आग में जलाया जाय। जब साँप की भस्म हो जाय तो उसे शहद में मिलाकर खाने से कुष्ट अच्छा हो जायगा।"गाँन्धी जी ने पूछा क्या आप ऐसी दवा खाने को तैयार है? शास्त्री जी ने उत्तर दिया-"बापू यदि सांप की जगह मुझे ही हाँडी में बन्द करके जला दिया जाय तो क्या हानि होगी ? साँप ने क्या अपराध किया है कि उसे इस प्रकार जलाया जाय?

परचुरे शास्त्री की वाणी में उस दिन मानवता की आत्मा बोली थी। वे लोग जो पशु पक्षियों का माँस खाकर अपना माँस बढ़ाना चाहते हैं इस मानवता की पुकार को यदि अपने बहरे कानों से सुन पाते तो कितना अच्छा होता।

कोढ़ी का उद्धार

बगांल के राजमहल जिले में रूप और सनातन नामक दो भगवद्भक्त हुए है। सनातन को कोढ़ था। चैतन्य महाप्रभू से सनातन की भेंट हुई, उन्हें मालूम हुआ कि यह भगवद्भक्त है तो उन्होंने यह जानते हुए भी कि यह कोढ़ी है, उठाकर छाती से लगा लिया। कोढ का मवाद उनके शरीर पर लग गया तो भी उनने उससे किसी प्रकार की घृणा न की। उन्होंने सनातन को पढ़ाया भी । उस शिक्षा के आधार पर सनातन ने भक्ति रस के कई ग्रन्थ भी लिखे। कोढ़ी होते हुए भी वे महान् भगवद्भक्त बन सके।

पतित और तुच्छ दीखने वालों में भी कितनी ही ऐसी आत्माऐं होती हैं जिन्हें उत्कर्ष का अवसर मिले तो वे महान बन सकती हैं।

बढ़िया सौदा

पिता ने पुत्र को कुछ रुपये दिये सौदा करके कुछ कमाने के लिये भेज दिया। रास्ते में एक गरीबिनी का घर पड़ता था। बच्चे कई दिन के भूखे थे। नानक जी ने सारे पैसे उन्हें दे दिए। खाली हाथ घर लौट आये तो पिता जी बहुत झल्लाये। नानक जी ने सरलतापूर्वक उत्तर दिया पिताजी गरीबों की सेवा से बढ़कर और दूसरा बढ़िया सौदा कौन हो सकता है?

आत्मीयतामय रामतीर्थ

रामतीर्थ अमेरिका गये। वे वहाँ पर जहाज से उतरे, न कोई सामान था उनके पास। स्वयं भी एक संन्यासी के भेष में थे। एक अमेरिकन को उनकी यह स्थिति देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने कोतूहलवश पूछा"आपका सामान कहाँ है ?" स्वामीजी ने जवाब दिया-"बस मेरे पास यही सामान है जो तुम्हारे समक्ष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

है।" "तो तुम्हारा यहाँ कोई मित्र है ? स्वामीजी ने बड़े विश्वास के साथ उस व्यक्ति के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा "हाँ मेरा एक मित्र है आप" वह व्यक्ति स्वामी जी रामतीर्थ से इतना प्रभावित हुआ कि उन्हें अपने घर लेगया और उनके अमेरिका में भ्रमण की सारी व्यवस्था की।

तीन की भी गुजर है

सन्त के पास एक छोटी सी झोपड़ी थी जिसमें वह सो सकता था। एक दिन जोरों की वर्षा हुई किसी ने दरवाजा खटखटाते हुए आवाज दी "क्या अन्दर जगह है ?" सन्त ने कहा इसमें एक व्यक्ति सो सकता है लेकिन दो बैठे रह सकते हैं। आप अन्दर आ जाइये।" उसे अन्दर ले लिया गया और वे दोनों बैठ गये। इतने में ही फिर किसी ने कुण्डी खटखटाई। "जगह है क्या?" सन्त ने जबाव दिया यहाँ दो आदमी बैठ सकते है किन्तु तीन खड़े रह सकते हैं। " और दरवाजा खोल दिया गया। तीनों ने उस बरसात की रात को खड़े होकर काटा। आध्यात्मिक, समाजवाद की यह व्यवहारिक परिभाषा यदि मनुष्य अपना ले तो संसार कष्टों से मुक्त हो जाय।

पिता का ऋण चुकाया

श्री चितरञ्जनदास भारत की महान विभूतियों में से एक थे। इनके पिता बड़ी दानशील प्रवृति के थे जिससे मरते समय दासबाबू पर बहुत सा कर्जा छोड़ गये, जिसके बोझ से एक नवयुवक के जीवन में उठने की सम्भावना ही न थी। लेकिन दासबाबू ने बड़ी लगन से षुरुषार्थ से धन कमाया और कर्जदारों का पैसा चुकाया। वे नही चाहते थे कि अपने लाभ के लिए दूसरों को सताया जाय।

उऋण होने की प्रेरणा

चन्द्रावती नगरी में एक रत्नभद्र नामक वैश्य रहा करता था। वह बहुत ही चालाक एवं लोभी वृत्ति का था। बहुत से धानिकों का कर्ज उस पर चढा हुआ था। यद्यपि उसके पास पर्याप्त धन एवं नियमित आय थी। लेकिन किसी का पैसा देने को तैयार नहीं था। एक दिनवह तेले-खरीदने गया और वहाँ एक तेली के यहॉ ठहरा। रात्रि को सब सो गये लेकिन रत्नभद्र को नीद न आई। उसी समय तेली के दो बैलों में परस्पर बातचीत होने लगी । एक बोला "भाई मै तो आज इस तेली के ऋण से मुक्त हो गया।" दूसरा बोला भाई अभी मेरे ऊपर तो बहुत सा ऋण बकाया है। अभी कई वर्ष तक कष्टमय जीवन बिताना पड़ेगा। रत्नभद्र पशुओं की भाषा को समझता था। दूसरे दिन तेली का एक बैल मर गया। इस घटना ने रत्नभद्र का हृदय झकझोर दिया। उसे भारी असन्तोष हुआ और जिनका कर्ज उसके ऊपर था, उनकी तस्वीरें उसके मस्तिष्क में घूमने लगीं। उसने सोचा मै लोगों को धोखा दे सकता हूँ किन्तु ईश्वर के न्याय को नहीं। कभी न कभी इस तरह कष्टपूर्ण यह जीवन बिताकर ऋण चुकाना पड़ता है तो यह धन किस काम का? वह बिना कुछ खरीदे ही अपने नगर आया और सभी ऋणदाताओं को बुलाकर उनका कर्ज चुका दिया। दूसरों का धन अपहरण करके अपना वैभव बढ़ाने की नीति पर उसे घृणा हो गयी।

किसान का त्याग

एक बार विदर्भ देश में बड़ा जोर का अकाल पड़ा। एक गाँव में किसी के पास कुछ भी न बचा। उसी गाँव के एक किसान के पास एक कोठी धान था। वह उससे कई महीने तक अपने परिवार का भरण पोषण कर सकता था। लेकिन उसे ख्याल आया कि अगले वर्ष मौसम के समय खेतों में बोने के लिये बीज न मिलेगा तो फिर से सबको अकाल का सामना करना पड़ेगा। किसान ने उस धान के स्टाक को नष्ट नही किया और सपरिवार सहर्ष मृत्यु की गोद में सो गया। लोगों ने देखा कि काफी अन्न होते हुए भी किसान परिवार क्यों मर गया ? लेकिन उसकी वसीयत को पढ़कर सभी किसान की महानता पर हर्ष के आँसू बहाने लगे। उसमें लिखा था। "मेरा समस्त अन्न खेतों में फसल बोने के समय गाँवों में बीज के लिए बाँट दिया जाय।" और चारों ओर नई लहलहाती फसल, लग रहा था मानो किसान मरा नही अपितु असंख्यों जीवधारी के रूप में हरे भरे खेतों में लहलाहाता फिर से धरती पर उतर आया होगा।

दूसरों का अहित क्यों करें?

एक सेना एक गाँव के पास से गुजर रही थी। घोड़ों के चारे की आवश्यकुता थी। सेनापति ने एक किसान को बुलाकर पूछा सबसे अच्छा चारा किस खेत में है? किसान सेनापति को एक दूर के मामूली से खेत में ले जाकर बोला इसका चारा सबसे अच्छा है। सेनापति ने कहा इससे अच्छा चारा तो गाँव के

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आसपास ही था। इतनी दूर क्यों लाये किसान बोला किसी दूसरे की फसल को अच्छा बताकर कटवाने से अच्छा है मैं अपनी ही फसल कटादूँ । मुझे दूसरों का नुकसान कराने का क्या अधिकार है ?

जब भगवान बीमार पड़े

एक भक्त रोज गंगा स्नान करके भगवान पर जल चढ़ाता था। एक दिन रास्ते में एक प्यासा मनुष्य रात भर के बुखार का मारा पड़ा था। पानी लाते देखकर उसने भक्त से पानी पिलाने की याचना की। भक्त डपट कर बोला- "मूर्ख यह जल भगवान को चढ़ाना है, तुम्हारे जैसे अनेकों बीमार पड़े होंगे उन्हें कौन पानी पिलाता घूमें।"रात को भक्त ने सपने में देखा भगवान बीमार हो गये है। भक्त ने बीमारी का कारण पूछा। भगवान् बोले "तूने पीड़ित मनुष्य की सहायता नहीं की, प्यासे मनुष्य की आवश्यकता पूरी न कर मेरे स्नान में जो जल काम आया वह मेरे लिये पाप रूप सिद्ध हुआ और उससे मै बीमार पड़ गया। "दूसरे दिन से वह मनुष्य सच्चे हृदयसे दीन दुखियों की सेवा करने लगा। इसी को उसने ईश्वर भक्ति का सच्चा स्वरूप समझना आरम्भ कर दिया ।

दूसरों की भलाई

बरसात की अधेरी रात थी। जमीन धँस जाने से एक गहरा गड्ढा पड़ गया था। एक अन्धा हाथ में लालटेन लिए हुए आने वालों को उससे सचेत करता जाता था। एक राहगीर ने व्यंग किया सूरदास ! तुम्हें खुद तो दिखाई नही देता दूसरों को राह बताते हो। सूरदासजी बोले " हाँ भाई आँखों की ज्योति बुझ गई है। पर हृदय से प्रकाश नहीं मिटा उसी से जो कुछ बनता है दूसरों की भलाई में लगा रहता हूँ।

उदारता का लाभ लेना ही नहीं देना भी सीखें

एक राजा अपने नौकरों के साथ कुटुम्बियों जैसा व्यवहार करता था। जरुरत पड़ने पर धन भी उधार दे देता था। एक कर्मचारी पर बहुत दिन का एक हजार रूपया बकाया थे। सिपाही उसे एक दिन पकड़ लाये और राजा के सामने उपस्थित किया। राजा को उसकी दशा देखकर दया आ गई और उसका कर्ज माफ कर दिया। उस कर्मचारी को कुछ रुपया एक अन्य व्यक्ति से लेना था। वह उसी समय उसके पास गया और रुपयों के लिये जबरदस्ती करने लगा। उस व्यक्ति ने राजा से रक्षा की प्रार्थना की। राजा ने उस कर्मचारी को देखा तो बड़े नाराज हुए और बोले- अपनी तरह दूसरों का भी ध्यान रखना चाहिए। पर तुमने वैसा नही किया इसलिए राज्य का एक हजार रुपया तुरन्त जमा करो।

मन्त्री ने ठण्डी साँस छोडते हुए कहा हम मनुष्य कितने कृतघ्न है कि परमात्मा के इतने उपकारों के कभी स्मरण भी नही करते।

तीर्थो का पुण्य फल

एक तीर्थ में कोई सन्त विश्राम कर रहे थे। पास ही दो तीर्थ देवताओं में परस्पर वार्ता हो रही थी। एक ने पूछा भगवन क्या तीर्थ में आने वाले सभी लोगो को पुण्य मिलता है। नही देव लोगों की श्रद्धा के अनुसार ही है। उन्हें पुण्य मिलता है। कई तो ऐसे होते है। जो यहाँ से पाप और कमाले जाते हैं। पहले देवताने पूछा क्या घर बैठे भी किसी ने तीर्थ करने का पुण्य पाया है ? दूसरे देव ने बताया-एक तो केरल प्रान्त का रामू चमार ही है। उसे तीर्थ यात्रा की बड़ी इच्छा थी। किसी तरह पैसे इकट्ठे किये। एक दिन उसे पता चला कि गरीब पड़ोसी का बेटा दस दिन से बीमार है। और उसके पास दवा के पैसे तक नहीं हैं। चमार ने सारे पैसे उस गरीब को दे दिये उसी दिन उसे सब तीर्थो का पुण्य फल मिल गया।

भगवान के लिये सर्वश्रेष्ठ उपहार

एक दुःखी व्यक्ति अपनी दुःख कथा भगवान से एकान्त में कहना चाहता था, इसलिये रात के सुनसान में मन्दिर पहुँचा। दरवाजे पर देवदूत खड़े थे। उन्होंने कहा-"भाई भगवान् के लिये कोई उपहार लाये बिना आप इसमें नहीं जा सकते।" हरिदास ने रातों रात तीन चोरियाँ कीं। पहली बार वह राजमुकुट लाया। पर राजाधिराज परमात्मा के लिये मुकुट की क्या आवश्यकता है? तलवार भी उस सर्वशक्तिमान के लिये व्यर्थ थी। जो स्वयं ज्ञान स्वरूप हो उसके लिये वेदों की क्या आवश्यकता? तीनों बार देवदूत ने उसे वापस लौटाया। अब वह क्या लेकर जाय। यही खड़ा सोच रहा था कि एक दुःखी को अन्धकार में भटक कर ठोकर लगने से गिरते देखा। उसे जाकर उठाया, उसकी आँखों में आँसू आ गये। इस बार वह ख़ाली हाथ भगवान के पास दुःखियों की सहायता के लिये चल पड़ा। द्वार पहुँचा तो देखा कि देवदूत वहाँ नहीं हैं और मन्दिर का द्वार खुला है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परोपकार एवं सामूहिकता

एक बार मनुष्य के हाथ पैरों,इन्द्रियों ने निश्चय किया कि हम व्यर्थ में ही क्यों परिश्रम करें। सारी कमाई तो पेट खा जाता है। सर्वसम्मति से हड़ताल कर दी गई। पेट में अन्न पहुँचना बन्द हो गया तो सारे अवयव शिथिल और शक्तिहीन होने लगे। वे इससे व्याकुल होने लगे। इसी बीच मस्तिष्क ने समझाया "भाई पेट को खिलाने वाला पदार्थ रक्त, रस, माँस मज्जा के रूप में परिणित होकर तुम्हें ही प्राप्त होता है। इसलिये परहित की भावना से शुभ कार्य करने में कंजूसी न करो।" समाज को पुष्ट पुरोहित एवं सामूहिक की दृष्टि से किए जाने वाले शुभ कृत्यों का परिणाम मूलत: कर्ता को ही परिवर्तित होकर मिल जाता है इस लिए अपना कर्तव्य धर्म समझ कर जन सेवा के शुभ कार्यो में मनुष्य को लगे रहना चाहिए ।

महात्मा जी की भूल

एक महात्मा ने भरी जावानी में संन्यास ले लिया और वे जीवन भर भजन करते रहे। मरने पर चित्रगुप्त ने उनके कर्मों को लेखा जोखा देखा तो यही कहा आपका पुण्य तो उतने ही दिन का है जितने दिन तक परिवार में रहे और अपने परिश्रम से अपना तथा विरानों का भला करते रहें। जब संन्यास लिया और दूसरों की रोटी पर गुजर की तो जो थोड़ा सा पुण्य था वह उन रोटी देने वालों के पास चला गया । सन्त दुखी हुए और सोचने लगे यदि श्रम पूर्वक गुजारा करके संसार का उपकार करता रहता तो उस व्यर्थ के संन्यास से वही अच्छा रहता।

जनसेवी का आदर्श

भिक्षु पूर्ण ने तथागत से जन समाज में धर्मोपदेश करने की आज्ञा माँगी। भगवान बुद्ध ने शिष्य से कहा- वत्स वहाँ के लोग बड़े कठोर हैं तुम्हें गालियाँ देंगे। शिष्य ने कहा-भगवन फिर भी अच्छा है कि वे मारेंगे तो नहीं और यदि मारने ही लगें तो ? तो क्या हुआ भगवन् वे मेरे प्राण तो न ले लेंगे। कदाचित् ऐसा ही हो गया तो ? बुद्ध ने पूछा। भगवन् यह शरीर परोपकार में नष्ट हो जाय तो यह जीवन सार्थक हो होगा। पूर्ण का उत्तर सुनकर भगवान् बुद्ध बहुत प्रसन्न हुए, बोले-जाओ वत्स! धर्म ही तुम्हारी रक्षा करेगा।

उपकारी राजा

बिना किसी प्रतिफल सब के प्रत्युपकार की इच्छा से लोक कल्याण के लिए अपना जीवन सेवा धर्म में लगा देने वाले सन्त एवं महापुरुष ही नहीं अनेक राजा भी हुए हैं। राजा जनक स्वयं हल जोतते थे, अपनी खेती जोतते समय ही उन्हें सीता मिली थी। अपना सारा राज काज चलाने में लगाते थे,पर अपना निज का गुजारा खेती वाड़ी करके ही चलाते थे।

वाजिश्रवा का सर्वमेध यज्ञ प्रसिद्ध है। उसने सारा राज्य संसार में ज्ञान प्रसार के लिए ऋषियों को दान कर दिया था। महाराज हर्ष प्रतिवर्ष अपनी सारी कमाई भी परमार्थ के लिए दान कर देते थे। प्रजा के धन को प्रजा के कार्य में ही लगाते थें। एक बार उन्हें अपने वस्त्र सभी दान करने पड़े तब उन्होंने अंग ढकने के लिए बहिन से मॉग कर कपड़े पहने। राजा विक्रम के वारे में यह प्रसिद्ध है कि वे चटाई पर सोते थे, गरीवों की तरह रहते थे और क्षिप्रा से अपने लिये जल भर कर स्वयं लाते थे। महाराज अशोक ने अपना सारा राजपाट बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए बुद्ध संघ को समर्पित कर दिया था। उन्होंने पीड़ित पशु पक्षियों की पीड़ा से विचलित होकर ऐसे अस्पताल भी खुलवाये थे जिनमें सभी जीव जन्तुओं की चिकित्सा की जाती थी। नासिरुद्दीन बादशाह टोपी सीकर गुजारा करता और उसका राज्य कोष से अपनी रानी के लिए एक नौकर भी न लेना प्रसिद्ध है।

असाधारण उदारता

साधरणतया नीति यह है कि दुष्टों को उनकी दुष्टता के लिए दन्ड मिले, ताकि वे भविष्य में वैसा दुष्कर्म करने का साहस न करे। साथ ही समाज में दूसरों को भी यह भय रहे कि अमुक व्यक्ति को दुष्कर्म करने पर यह दन्ड मिला था। इसलिए वैसे दंड से बचने के लिए वैसे अपराध न करें। साधारणतया यही रीतिनीति सनातन काल से लोकहित के पक्ष में चलती आ रही है।

पर कभी कभी कुछ ऐसे असाधारण महापुरुष भी होते हैं जो अपकारी के प्रति उदारता करने का उदाहरण प्रस्तुत करते है। महर्षि वशिष्ठ के सौ पुत्र विश्वामित्र ने मार डाले। फिर वशिष्ठ ने अवसर आने पर जो तपश्चर्या, कष्ट, सहिष्णुता, आदि गुण विश्वामित्र में थे उनकी प्रसशा की। एक रात्रि विश्वामित्र, वशिष्ठ के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मारने की घात में उनकी कुटिया के पीछे छिपे थे। अरुन्धती ने अपने पति से अपने पुत्रों के मारने की चर्चा छेड़ी तो वशिष्ठ ने कहा यह दोष तो उनका है पर जो गुण उनमें है वे भी कम नही । कुटिया के पीछे छिपे हुए विश्वामित्र वशिष्ठ की उदारता देखकर नत मस्तक हुए और अपनी भूल पर पश्चात्ताप करने लगे।

अश्वत्थामा ने द्रोपदी के सोते हुए पाँचों पुत्र मार दिये थे। अश्वत्थामा पकड़ा गया और उसे दंड देने के लिये द्रोपदी के सामने उपस्थित किया गया। द्रोपदी ने सोचा मैं जैसे अपने पुत्रों के शोक में विलाप कर रही हूँ, वैसे ही गुरुपत्नी गौतमी को भी अश्वत्थामा के मरने पर विलाप करना पड़ेगा। यह सोचकर उसने अश्वत्थामा को छुड़वा दिया।

स्वामी दयानन्द को उनके विरोधी पाखंडियों ने विष देकर मार डाला था। भोजन में विष देने वाले जगन्नाथ को मरने से पूर्व स्वामी जी ने बुलाया और उसे कुछ रुपये किराये के लिए देकर भाग जाने की व्यवस्था कर दी ताकि उसकी जान बच सके।

इन उदाहरणों में महानता और उदारता की झाँकी तो है पर न्याय व्यवस्था की नही।

ये वर्जयन्ति परुषं परद्रोहञ्च मानवाः ।
सर्वभूतसमा दान्तस्ते नराः स्वर्गगामिन : ।।

जो सज्जन पुरुष कठोरता तथा परद्रोह को सर्वथा त्याग देते है और शान्त रहते है तथा प्राणियों के लिए समान होते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं।

श्रद्धावन्तो दयावन्तश्चोक्षाश्चोक्षजनप्रियाः ।
धर्माधर्मविदो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिन :।।

जो श्रद्धावान हैं तथा दयावान हैं और धार्मिक तथा धार्मिक जनों के प्रिय होते हैं तथा जो धर्म तथा अधर्म का ज्ञान रखने वाले हैं वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं।

दुःखं ददाति योऽन्यस्य ध्रुवं दुखं स विन्दति ।
तस्मान्न कस्यचित् दुखं दातव्यं दुखः भीरुणा ।।

जो मनुष्य दूसरे को दुख देता है निश्चय ही वह स्वयं दुख पाता है, इसलिए दुख से डरने वाले मनुष्य को चाहिए कि वह दूसरों को दुख न दे।

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां,
गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तप :।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवत्तते,
निवृत्त रागस्य गृहं तपोवनम् ।।

रागी पुरुष को बन में भी दोषों की जागृति हो जाती है। घर में रहकर पाँचों इन्द्रियों का संयम किया जाय तो वह परम विरक्त पुरुष है और उसके लिये घर ही तपोवन होता है।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम् ।।

जिसका प्रणाम करने का स्वभाव होता है और सर्वदा वृद्धों की सेवा क्रिया करता है उसकी आयु, विद्या, यश और बल-ये चारों बढ़ते है।

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वां चैवावधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।।

उपदेश कहता है कि तुम धर्म का उपदेश सुनो उसे सुनकर चित्त में धारण करो। जो आत्मा के विरुद्ध है जिन कामों को हम अपने लिए बुरा समझते हैं। वह कार्य दूसरों के साथ भी नहीं करने चाहिए। जो अपने विरुद्ध कर्म है वे दूसरों के लिये भी भले नही है यह समझना चाहिए।

प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा।
आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।।

जिस प्रकार अपने प्राण प्यारे है, वैसे ही और प्राणियों को भी अपने अपने प्राण प्यारे हैं इसलिये साधुजन अपने प्राणों के समान दूसरों पर दया करते है।

परेषां सुख सौकर्य सर्वदा चिन्तयेन्नरः ।
स्वार्थ एवं सदा लग्नः समाजार्हे भवेन्नच ।।

मनुष्य को सर्वदा दूसरों के सुख एवं सुविधा की ओर पूर्ण विचार करना चाहिए। जो व्यक्ति सदा अपने ही मतलब के कार्य में लगा रहता है और दूसरों का बिल्कुल ध्यान ही नही रखता ऐसा मनुष्य समाज में रहने योग्य नही होता।

ऋतं मितं प्रियं सत्यमुच्चरेद्वचनं सदा ।
प्रियत्वेनापि नानृतं ब्रूयाज्जातुचिन्नरः ।।

मनुष्य को सर्वदा मधुर परिमित, प्रिय और सत्य वचन बोलना चाहिए। प्रिय होते हुए भी मिथ्या वचन कभी नही बोलना चाहिए।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ।।

आप सब के विचार समान हों परस्पर संगति भी समान हो। आप सब का अन्तकरण भी समान हो चित भी एक दूसरे के समान हो। मैं आप लोगों को समान विचार वाला बनाता हूँ और एक समान अन्न से तुम सब का पालन पोषण करता हूँ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ।।

जो समस्त प्राणियों को अपने में और अपने को समस्त प्राणियों में देखता है, वह उपर्युक्त एकात्म-दर्शन के कारण किसी को घृणा या उपेक्षा का पात्र नहीं समझता। अर्थात् वह सबके हित में ही अपने हित को समझता है।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।

और दूसरे यह अपना है वा यह पराया है, यह अल्प बुद्धियों की गिनती है। उदार चरित वालों को तो सब पृथ्वी ही कुटुम्ब है।

प्रिय वाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ।।

मधुर और श्रुति प्रिय वचन बोलने से समस्त प्राणी सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होते हैं। अतएव सर्वदा मनुष्य को मधुर एवं प्रिय वचन ही बोलना चाहिए। मधुर वचन बोलने में क्यों दरिद्रता प्रदर्शित की जावे।

कागा काको धन हरे , कोयल काको देत।
मीठे शब्द सुनाय के , जग अपना कर लेत।।
दोष पराया देखकर , चले हसंत हसंत।
अपना याद न आवही, जाका आदि न अन्त।।
तुलसी मीठे वचन ते , सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरन यह मन्त्र है, तज दे वचन कठोर।।
टूटे सुजन मनाइये , जो टूटे सौ बार।
रहिमन फिर फिर पोहिये, टूटै मुक्ता हार।।
जो पै जैसी होइ तेहि ,तेसो ही मिल जाय।
मिले गठकटा चोर कों, साइहि साह मिलाय।।
धन बल, जन बल, बाहु बल, कहिं काहू के घाट।
एकहि एका बल बिना, सब बल बारा बाट।।
प्रिय भाषण पुनि नम्रता, आदर प्रीति विचार।
लज्जा क्षमा अयाचना, ये भूषण उरधार।।
प्रिय भाषी शीतल हृदय , संयम सरल उदार।
जो जन ऐसा जगत में , तासों सबको प्यार।।
चीटी से हस्ती तलक, जितने लघु गुरु देह।
सब को सुख दैबौ सदा ,परम भक्ति है येह।।
आपु आपु कह सब भलो, अपनौ कह कोइ कोइ।
तुलसी सब कह जो भलो, सुजन सराहिय सोइ।।
कोबा कासी त्यागि अब, देखहु दीनन गेह।
दरिद नरायन ही जहाँ, दर्शन देत सदेह।।
कबीर नवै सो आपको, पर को नवै न कोय।
डालि तराजू तोलिये, नवै सो भारी होय।।
जड़ चेतन गुन दोषमय, बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार।।
दीनन देखि घिनात जे, नहिं दीननु सौं काम।
कहा जानिवे लेत हैं, दीनबन्धु कौ नाम।।
नारायण या जगत में, यह दो वस्तू सार।
सबसों मीठौ बोलिबों, करिबौ पर उपकार।।
पशु पक्षी हू जानही, अपनी अपनी पीर।
तब सुजान जानों तुम्हें, जब जानो पर पीर।।
तुलसी एहि संसार में, भाँति भाँति के लोग।
सब सो हिल मिल चालिए, नदी नाव संयोग।।

उत्तर काण्ड के अन्तर्गत श्री रामचन्द्र जी अपने नगरवासियों से कह रहे है-

बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई।
एहि आचरन बस्य मैं भाई ।।
बैर न बिग्रह आस न त्रासा ।
सुखमय ताहि सदा सब आसा।।
अनारम्भ अनिकेत अमानी ।
अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी ।।
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा ।
तृन सम विषय स्वर्ग अपबर्गा ।।
सब मम प्रिय सब मम उपजाए ।
सब ते अधिक मनुज मोहि भाए।।
पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाही ।
मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाही।।

बालकाण्ड के अन्तर्गत सज्जन की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहा है-

जग बहु नर सर सरि सम भाई ।
जे निज बाढ़ि बढ़हि जल पाई ।।
सज्जन सुकृत सिंधु सम कोई ।
देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई।।

यह प्रसंग सुन्दर काण्ड के अन्तर्गत उस समय का है जब रावण ने विभीषण पर पद प्रहार करते हुए उसको दुर्वचन कहे-

उमा संत कइ इहइ बड़ाई ।
मन्द करत जो कर भलाई ।।
तुम्ह पितु सरिस भलेहि मोहि मारा।
राम भजें हित नाथ तुम्हारा।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अरण्यकाण्ड के अन्तर्गत जब नारदजी श्री रामचन्द्र जी से वन में मिलने आये तब श्री रामचन्द्र जी उन्हें सन्तों के गुणों का वर्णन करते हुए कहते है।

सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहउँ।
जिन्ह ते मैं उन्ह कें बस रहऊँ।।
षट बिकार जित अनघ अकामा ।
अचल अकिंचन सुचि सुखधामा।।
अमितबोध अनीह मित भोगी ।
सत्यसार कबि कोबिद जोगी ।।
सावधान मानद मदहीना ।
धीर धर्म गति परम प्रबीना ।।

दोहा-

गुनागार संसार दुख रहित बिगत सन्देह ।
तजि मम चरन सरन प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ।।

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं ।
पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं।।
सम सीतल नहिं त्यागहि नीती ।
सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती ।।

उत्तर काण्ड के अन्तर्गत अयोध्या लौटने पर श्री रामचन्द्र जी महर्षि वशिष्ठ को प्रणाम करते हुए कहते हैं-

गुर बसिष्ठ कुलपूज्य हमारे ।
इन्ह की कृपाँ दनुज रन मारे ।।

उत्तर काण्ड के अन्तर्गत भरत जी श्री रामचन्द्र जी से सन्तों के गुण पूछ रहे हैं। उसके अनुसार श्री रामजी अपने भ्राता को सन्तों के गुण समझा रहे हैं।

संतन्ह कै महिमा रघुराई ।
बहु बिधि बेद पुरानन्ह गाई ।।
संत असंत भेद बिलगाई ।
प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई।।
संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता ।
अगनित श्रुति पुरान बिख्याता ।।
संत असन्तन कै असि करनी ।
जिमि कुठार चन्दन आचरनी ।।
काटइ परसु मलय सुनु भाई ।
निज गुन देइ सुगन्ध बसाई।।

दोहा-

ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखण्ड ।
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दण्ड ।।

विषय अलम्पट सील गुनाकर।
पर दुखु दुख सुख सुख देखे पर।।
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी ।
लोभामरष हरष भय त्यागी।।

यह प्रसंग अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत उस समय का है जब श्री राम बन जाने के लिये अपनी सहमति प्रकट कर रहे और सभी भांति अपने आपको बड़भागी समझ रहे है।

देस काल अवसर अनुसारी ।
बोले बचन बिनीत बिचारी ।।
तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई ।
अनुचित छमब जानि लरिकाई ।।

अयोध्याकाण्ड के अर्न्तगत जब भरत परिवार, पुरजानों सहित राम से मिलने वन में गये हैं उस समय का यह प्रसंग है।

प्रभू अपने नीचहु आदरहीं ।
अगिनि धूम गिरि सिर तिनु धरहीं ।।

आयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत भरत जी और उनके साथ आये पुरवासीजनों को श्री रामचन्द्र जी द्वारा विदा करने का यह प्रसंग है।

जथा जोगु करि बिनय प्रनामा ।
बिदा किए सब सानुज रामा।।
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे ।
सब सनमानि कृपानिधि फेरे ।।

आयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत जब भरत जी रामचन्द्र जी से वन में मिलने गये हैं। उस समय भरत उनसे कह रहे हैं।

मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही ।
हारेहुँ खेल जितावहिं मोही ।।

बालकाण्ड के अन्तर्गत श्री रामचन्द्र जी क्रोधी परशुराम जी से विनय बचन बोलते हुए कहते हैं-

छमहु चूक अनजानता केरी ।
चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी ।।

अरण्यकाण्ड के अन्तर्गत श्री रामचन्द्र जी नारद जी को सन्तो का स्वाभाव बताते हुए उनके गुणों को बखान कर रहे है।

जप तप ब्रत दम संजम नेमा ।
गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा।।
श्रद्धा छमा मयत्री दाया।
मुदिता मम पद प्रीति अमाया ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बिरति बिबेक बिनय बिग्याना ।
बोध जथारथ बेद पुराना।।
दम्भ मान मद करहिं न काऊ।
भूलि न देहिं कुमारग पाऊ।।

मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते ।
कहि न सकहिं सरद श्रुति तेते।।
दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पंतग।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सत संग ।।

नवम प्रवचन समाप्त

दसवाँ-प्रवचन

विराट् ब्रह्म-प्राणी मात्र में एक आत्मा

नतु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षु : पश्य मे योगमैश्वरम।।

-अध्याय ११ श्लोक ८

परन्तु तू अपने इन (स्थूल) नेत्रों से मुझे देखेने में समर्थ नहीं है। इसलिए मैं तुझे दिव्य नेत्र प्रदान करता हूँ। उनसे तू मेरे ईश्वरीय योग को देख।

भगवान के दर्शन की, उसकी प्राप्ति की आकाँक्षा सभी को रहती है। यही जीवन का लक्ष्य भी है। जो प्रभु को प्राप्त कर लेता है उनके साक्षात्कार का लाभ उठा लेता है उसे और कुछ प्राप्त करना शेष नही रह जाता है। अग्नि के समीप पहुँचने वाली वस्तु भी अग्नि रूप हो जाती है उसी प्रकार ईश्वर के समीप पहुँचने वाला व्यक्ति भी ईश्वर रूप ही हो जाता है। जो गुण ईश्वर में है वे ही ईश्वर का सानिध्य प्राप्त करने वाले में भी उत्पन्न हो जाते है। अनन्त ऐश्वर्य के अधिपति परमात्मा को देखना और प्राप्त करना भला कौन न चाहेगा? वह इच्छा तो रहती है पर लोग यह समझ नही पाते कि प्रभु का दर्शन कैसे किया जाय ? गीता के उपरोक्त श्लोक में इस तथ्य को भली भाँति स्पष्ट कर दिया गया है। ईश्वर को चमडे की ऑखों से नहीं विवेक की दिव्य दृष्टि से देखा जा सकता है। चमड़े की आँखों से जो कुछ देखा जाता है वह परमात्मा के दर्शन में सहायक हो सकता है माध्यम वन सकता है पर वास्तविक स्वरूप तो व्यापक विवेक दृष्टि से ही देखा जाना सम्भव हो सकता है।

अर्जुन की इच्छा भगवान के दर्शन करने की थी। उन्होंने उसे कराया भी। पर वह किसी आकृति विशेष के रूप में नहीं वरन् विराट विश्व के रूप में कराया था। यह समस्त संसार भगवान का ही स्वरूप है। उसके भीतर एक ही अविच्छिन्न, सर्वव्यापक आत्मा की विद्यमानता अनुभव करना और उसी आधार पर अपना आचरण बना लेना भगवान के दर्शन का वास्तविक स्वरूप है कहा गया है कि-

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रश: ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ।।

अध्याय ११ श्लोक ५

श्री भगवान बोले- हे अर्जुन ? तू मेरे सैकड़ों और हजारों प्रकार के अर्थात् अनेकों प्रकार के नानावर्ण एवं आकृतियों वाले रूपों को देख।"

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ।।

-अध्याय ११ श्लोक १६

आपको मै अनेक बाहु उदर मुख नेत्रों वाला ओर सर्व ओर के अनन्त रूपों वाला देखता हूँ। हे विश्वेश्वर ! हे विश्वरूप ! मै न आपके अन्त को मध्य को और न आदि को ही देखता हूँ।

समस्त जड़ चेतन में भगवान को देखना प्रत्येक पदार्थ एवं प्राणी को भगवान का स्वरूप समझना उसके अन्तरात्मा में प्रभू की ज्योति का दर्शन करना ईश्वर का यही वास्तविक स्वरूप है जिसे इस स्वरूप की झाँकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो जाती है वह सब के साथ केवल सज्जनता एवं उदारता का ही व्यवहार कर सकता है। भला कोई ईश्वर के साथ दुव्यवहार करने का भी साहस करेगा? ऐसा करके कोई अपने हित की क्या कल्पना करेगा परमात्मा संसार की सर्वोपरि शक्ति है उसकी पूजा, आराधना, करके तो कुछ भला हो भी सकता है पर उसके साथ दुष्टता बरती जाय तो अप्रसन्नता एवं कोप का भाजन ही बनना पड़ेगा। यह जानने वाले कोई भी आस्तिक व्यक्ति किसी भी दूसरे के साथ अनीति बरतने या बुरा सोचने का साहस न कर सकेगा। यह स्थिति जिसे प्राप्त है वह सज्जन सदाचारी व्यक्ति ईश्वर का दर्शन करने और उसकी प्रसन्नता अनुकम्पा प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता है। जिसे ईश्वर का ज्ञान है उसकी स्थिति कैसी होती है, इसका विश्लेषण गीता ने निम्न प्रकार किया है।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणष्यामि स च मे न प्रणश्यति ।।

-अध्याय ६ श्लोक ३०

जो मुझको सर्वत्र देखता है और सब को मुझमें देखता है, उसको न मैं भूला हूँ और न वह मुझे भूलता है

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ।।

-अध्याय ६ श्लोक ३१)

जो व्यक्ति सब प्राणियों में समाये हुए मुझ भगवान को एकात्म बुद्धि से भजता है वह जो कुछ करता है वह मेरे निमित्त ही होता है।

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ।।

-अध्याय १३ श्लोक २८

जो सब में स्थिति परमात्मा को जो समान भावना से देखता है वह आत्मघात नहीं करता और परम गति को प्राप्त होता है।

सब का स्वामी परमात्मा सब में समाया परमात्मा बिराट ब्रह्म के रूप में सर्वत्र प्रस्तुत परमात्मा का वास्तविक स्वरूप समझने की चेष्टा जिनने की होगी, उनकी ईश्वर सम्बन्धी भ्रान्तियों का समाधान हो गया होगा। प्रतिमाओं को उन्होंने ईश्वर की प्रतिमा का माध्यम माना होगा, इसलिए किसी एक स्थान की प्रतिमा को उन्होंने विशेष महत्व न दिया होगा वरन् भगवान की सभी प्रतिमाओं में उन्हें समान रूप से परमेश्वर दृष्टिगोचर हुआ होगा। हर तीर्थ में हर उपासना मन्दिर में उन्हें समान रूप से प्रभु की आभा प्रकाशित होती दिखाई पड़ रही होगी। मतवादियों की कट्टरता ऐसी स्थिति में एक क्षण के लिए भी टिक नहीं सकती। सभी धर्म सम्प्रदायों के मूल में सदाचारमूलक निष्ठा उन्हें आसानी से दृष्टिगोचर हो सकती है इसी प्रकार विभिन्न नामों और आकार प्रकार से वर्णित किये जाने पर भी उन्हें एक ही ईश्वर की महिमा की चर्चा प्रतीत होती है। धार्मिक सहिष्णुता का आदर्श ईश्वर को विराट ब्रह्म के रूप में मानने से सहज ही निभ जाता है सामम्प्रदायिक उन्माद के लिये ऐसी दशा में कोई स्थान नहीं रहता। जब सब में सर्वत्र एक ही परमात्मा है तो उसकी व्याख्या विवेचना के अन्तरों को लेकर लड़ा क्यों जाय ?

विराट ब्रह्म की मान्यता से मनुष्य के अन्तःकरण में इस संसार के प्रति उत्कृष्ट श्रद्धा उत्पन्न होती है फिर इसे भव बन्धन, मायाजाल, स्वप्न आदि कहने का अवसर ही नहीं रहता विभिन्न वस्तुओं और प्राणियों के रूप में प्रत्यक्ष दृष्टि गोचर होने वाला भगवान स्वप्न कैसे कहा जायेगा ? उसे माया जन्जाल या भव बन्धन कैसे माना जायेगा? और संसार को घृणित या दुख मूलक समझकर उससे कहीं अन्यत्र भागने की चेष्ठा कौन करेगा फिर जब सर्वत्र ब्रह्म ही विद्यमान है तो उससे बाहर भागने का स्थान भी कहाँ मिलेगा गीता की विराट ब्रह्म मान्यता को स्वीकार करने के बाद न स्वप्नवाद के लिए कोई स्थान रहता न माया वाद के लिये और न पलायनवाद के लिये। इन भ्रान्तियों से मनुष्य सहज ही छूट जाता हैं। उसे घर छोड़कर कही एकान्त स्थान खोजने की जरुरत नही पड़ती। जिसे हर जगह प्रभु की झाँकी मिल रही होगी उसके लिए कण कण में पत्ते पत्ते में ईश्वर की समीपता का आननद हर घड़ी उपलब्ध रहेगा। हर स्थान में उसे तीर्थ स्थान जैसी पवित्रता प्रतीत होती रहेगी ।

ईश्वर प्रेम अर्थ उस आदर्श के अनुसार प्राणीमात्र का प्रेम ही रह जाता है। जीते जागते भगवान जब विभिन्न आकृतियों में सामने प्रस्तुत दीखेंगे तो तुलसीदास जी के मन में उठने वाली उस भावना के अनुरूप ही अपनी भी भावना उठेगी जिसको व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सिया राम मय सब जग जानी ।
करों प्रणाम जोरि युग पानी ।।

हर किसी के लिए श्रद्धा और सद्भावना यदि मन में से उमड़े तो निश्चित रूप से सद्व्यहार ही बन पडेगा। किसी के साथ अशिष्टता एवं अनीति बरतने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। भला भगवान को ठगने, सताने, तिरस्कृत करने का साहस कौन करेगा ? यदि भगवान शंख, चक्र, गदा, पद्म हाथों में लिए सामने आ खडे हों तो भला कौन उनका स्वागत सत्कार न करेगा ? उन्हें प्रसन्न करने के साधन कौन न जुटावेगा ? यह स्थिति उसकी होती है जो विराट ब्रह्म के रूप में हर किसी में परमेश्वर को उपस्थित देखता है उसके लिए नम्रता, सज्जनता, शिष्टता, उदारता बरतने के अतिरिक्त और कोई मार्ग ही नही रह जाता यह नीति जिसने भी अपनाली वह दूसरों का हृदय जीत लेगा अपने लिए दूसरों की अपार श्रद्धा सद्भावना अर्जित करेगा सहयोग के बदले में सहयोग का और सम्मान के बदले में सम्मान का लाभ प्राप्त करेगा। उसके व्यक्तिगत जीवन में इस आदर्शवाद की प्रतिक्रिया इतनी सुन्दर होगी कि वह अपने को स्वर्गीय परिस्थितियों में रहता हुआ अनुभव करेगा। उसके लिए यह संसार ही स्वर्ग होगा।

जहाँ चारों ओर ईश्वर का ही निवास हो हर घड़ी अपने प्राण प्रिय परमात्मा का दर्शन होता हो वहाँ भी यदि स्वर्ग न माना जाय तो और कहाँ माना जायेगा। यह मान्यताऐं अपना लेने पर कोई भी व्यक्ति ईश्वर दर्शन को उस आनन्द को प्राप्त करता रह सकता है जिसके लिए भक्त जन तरसते हैं। एक वार ईश्वर का दर्शन हो जाय तो धन्य हो जाय ऐसी आकांक्षा अगणित लोग रखते है और उसे प्राय: अपूर्ण ही लेकर जीवनलीला समाप्त कर लेते हैं। ऐसे लोग यदि भगवान के कहे अनुसार-गीता प्रतिपादित विराट् ब्रह्म भावना को हृदय गंम कर सर्वत्र ईश्वर दर्शन का आनन्द लाभ करें तो उनकी अतृप्त आकांक्षा तत्काल तृप्त हो सकती है।

भगवान ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा कर दी है कि चमड़े की आँखों से ईश्वर दर्शन कर सकना असम्भव है। इस प्रकार आज तक न किसी को दर्शन हुआ है और न आगे होगा। ध्यान की परिपक्वावस्था में कोई अपनी आराध्य प्रतिमा दृष्टिगोचर होने भी लगे तो उसे चित्तवृति निरोध अथवा भाव एकाग्रता का एक छोटा सा चमत्कार मात्र ही माना जायगा ईश्वर का वस्तुत कोई रूप नही वह निराकार निर्विकार है फिर उसे किसी रूप में देख सकना सम्भव हो भी कैसे सकता है ? परमात्मा केवल विवेक रूपी दिव्य चक्षुओं से देखा जाता है और वह अपने अन्तकरण में ज्वलन्त ज्योति के रूप में एवं विराट विश्व के कण कण में विद्यामान होने की भावना के साथ ही देखा जा सकता है जिन्हें ईश्वर दर्शन की लालसा है उन्हें उसके दर्शन का स्वरूप भी समझ ही लेना चाहिए इस सम्बन्ध में गीता द्वारा हर प्रकार की भ्रान्तियों का भली प्रकार समाधान हो जाता है।

जन साधारण के मन में यदि विराट् ब्रह्म की मान्यता गहराई तक उतर जाय तो किसी को किसी से दुर्व्यवहार करने की गुन्जायस न रहे। एक दूसरे के साथ सद्व्यवहार की नीति वरतें फलस्वरूप सज्जनता और श्रेष्ठता का वातावरण उत्पन्न होने से इस धरती पर स्वर्गीय सुख शान्ति ही बिखरी दीखें कलह क्लेशों का अन्त हो जाय और विघटनात्मक प्रवृतियाँ रचनात्मक कार्यो में लग पड़ें। यह परिवर्तन संसार को कितना सुखी कितना सुविकसित एवं सुख शान्तिमय बना सकता है उसकी आज तो कल्पना भी कर सकना कठिन है। आमतौर से मनुष्य अपनी आधी शक्तियों को शरीर यात्रा में लगाता है और आधी निरर्थक एवं अनर्थकारी विचारों एवं कार्यो में नष्ट करता रहता है। सद्विचारों एवं सत्कार्यो के लिए उसके पास बहाने मात्र को भी अवसर नही रहता। इस प्रकार गुजारे के अतिरिक्त बचा हुआ औसत मनुष्य का समय संसार के लिए संकट उत्पन्न करने का ही निमित्त बनता रहता है। यदि यह स्थिति बदल जाय और लोग अपनी विचारण एवं कार्य पद्धति रचनात्मक दिशा में लगानं लगें तो कुछ ही समय में चमत्कार उत्पन्न हो सकता है। फौज, पुलिस, जेल, कचहरी आदि प्रतिराधात्मक कार्यो में लगे हुए व्यक्ति यदि शिक्षा, लोक निर्माण आदि कार्यो में लग जायँ, हथियार बनाने में लगा हुआ पैसा यदि गरीबी, बीमारी दूर करने में लग जाय तो इस धरती को स्वर्ग बनने में देर न लगें।

पर यह हो कैसे, यह होना तभी सम्भव है जब मनुष्य की मूल आस्था में परिवर्तन हो। आस्तिकता की परम्पराओं को मानव जाति अतीत काल से अपनाये रही है। उसका परिष्कार अपेक्षित है। यह परिष्कार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बिराट् ब्रह्म की मान्यता के रूप में ही हो सकता है। यदि ईश्वर भक्ति या ईश्वर प्राप्ति का यह स्वरूप अपना लिया जाय तो मनुष्य की व्यक्तिगत और समाज की समष्टि गत सभी समस्याओं का ऐसा मंगलमय हल निकल सकता है जिसका परिणाम सब प्रकार सब के लिए शुभ ही शुभ हो।

दिव्य दृष्टि से ईश्वर दर्शन

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को नाना विधि अपने सर्वव्यापी ऐश्वर्य अनन्त शक्ति ऐश्वर्य के बारे में तरह तरह से समझाया। अपनी विराट् सत्ता को विस्तार से बताया। अर्जुन का इससे संन्तोष नहीं हुआ और भगवान से विराट् स्वरूप दिखाने के लिए कहने लगा। इस पर श्रीकृष्ण राजी हो गये और अर्जुन को उन्होंने दिव्य दृष्टि प्रदान की। तत्पश्चात् अपने विराट स्वरूप को दिखाया जो नानावर्ण, नाना प्रकार के दिव्य सैकड़ों हजारों रूपों से युक्त था। उस विराट् स्वरूप में समस्त विश्व ब्रह्माण्ड चराचर जीव मात्र सभी दिखाई दे रहे थे। हजारों सूर्य से भी अधिक प्रकशमान था उनका विराट् स्वरूप।

काकभुसुण्डि का प्रभु दर्शन

बालक रामचन्द्र जी आंगन मे बैठे हुए दही और चावल खा रहे थे। उधर काकभुसुण्डि पक्षी के रूप में वहाँ आ पहुँचे और उन्हें उनकी बाल सुलभ चेष्टायें देखकर ईश्वरीय अवतार होने में शंका हुई। भगवान अपने भक्त के मन कीं स्थिति जान गये और उन्होंने जब चावल का ग्रास मुहँ में रखा तो काकभुसुण्डि जी भी अन्दर प्रविष्ठ हो गए। पेट में जाने पर काकभुसुण्डि ने देखा कि वे विश्वव्यापी विराट् भगवान का दर्शन कर रहे हैं। वहाँ उन्हें तीनों लोक में चौदह भुवन दिखाई दिए। समस्त विश्व ब्रह्माण्ड लोक चराचर जीव मात्र उस विराट् सत्ता में इसी तरह दिखाई दे रहे थे जैसे मनुष्य के शरीर में बाल। काकभुसुण्डि जी ने चारों ओर घूम फिर कर देखा लेकिन उन्हें कोई आदि अन्त भी न मिला और इससे उनका भ्रम दूर हो गया।

परम शक्ति का उपाय

. देवगुरु बृहस्पति से कच ने ब्रह्म विद्या जानने की इच्छा प्रकट की देवगुरुने अपने पुत्र को प्रथम उपदेश दिया "वत्स जो भौतिक सुखों का परित्याग कर देता है उसी को परमात्मा मिलते हैं।" कच ने प्रसन्नतापूर्वक घर बार छोड़ दिया और जगंल में तत्पचर्या करने लगे पर उन्हें शान्ति न मिली। पुत्र की अवस्था जानने के लिए एक दिन बृहस्पति कच के आश्रम में गये। पुत्र ने पिता को प्रणाम कर अपनी स्थिति बताई। देवगुरु पुन: सर्वस्व त्याग का दूसरा उपदेश देकर चले गये। कच कमण्डलु यज्ञोपवीत आदि का भी परित्याग कर अवधूत वेष में भूखें रह कर तपस्या करने लगे तीन वर्ष बीत गये पर उनको आत्म शान्ति ना मिली। देवगुरु पुन: पुत्र की इच्छा जानने के लिए आये तो कच ने अपनी व्यग्रता प्रकट की देवगुरु ने तीसरा उपदेश देते हुए बताया वत्स ,आत्मा की शान्ति के लिए जीवन शोधन और आत्म परिष्कार की आवश्यकता है यही सर्व्रस्व त्याग का अर्थ है कच की समझ में आ गया और इस बार उसने आत्म शुद्धि करके परम शान्ति प्राप्त की।

धैर्य और श्रद्धा

नारदजी विष्णुलोक को जा रहे थे। एक महात्मा जी ने आग्रह किया, भगवान! मेरे लिए भी भगवन से पूछना कि वे मुझे कब तक दर्शन देगें ? नारद ने भगवान से पूछा उन्होंने बताया अभी उसे चौरासी लाख योनियाँ के १८ चक्कर लगाने पड़ेंगे। वापस लौटकर नारद ने महात्मा जी को सारी बात बतादी महात्माजी अधीर नहीं हुए। दर्शन तो होगे ही इस आशा से दूने उत्साह से तपश्चर्या करने लगे। भगवान् उसकी निष्ठा देखकर प्रसन्न हुए और दूसरे ही दिन दर्शन दे दिये। नारद को बात मालूम पड़ी तो भगवान विष्णु से गुस्सा करने लगे। भगवान बोले नारद जी ! धैर्य और निष्ठापूर्वक हमारी उपासना करता है उनके तो मैं सदैव समीप ही हूँ। देर से तो उन्हें दर्शन देता हूँ जो अधिक उतावली करते हैं। आध्यात्म की प्रथम कसौटी धैर्य और श्रद्धा ही है। जो इन पर खरा उतरता है उसे भगवान जल्दी ही मिल जाते हैं।

शोक का शमन

राजा चित्रकेतु के एक मात्र पुत्र को भी दूसरी रानियों ने ईर्ष्यावश विष दे दिया। पुत्र वहीं मर गया। यह देखकर राजा शोक में डूब गया और शिर पीटकर रोने लगा। महर्षि अगिरां तथा देवर्षि नारद शोक सन्तप्त राजमहल में पधारे। महर्षि ने तत्वज्ञान देकर राजा को समझाना चाहा पर मोह ममता वश राजा को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रबोध न हुआ। देवर्षि ने अब मृत जीवात्मा का आवाहन किया और उससे बोले देखो तुम्हारी मृत्यु से तुम्हारे माता-पिता कितने दुखी हैं। ज्योति बोली भगवन् कई जन्मों में ये मेरे पिता रहे कई में मैं इनका। यह सम्बन्ध तो शरीर के है आत्मा तो ईश्वर का तत्व मैं इनके पराधीन कैसे रह सकता हूँ। यह सुनते ही चित्रकेतु का दुख जाता रहा।

वास्तविक भक्त

एक बार पार्वती जी ने शंकर भगवान् से पूछा गंगा स्नान करने वाले प्राणी पापों से छूट जाते हैं। शंकरजी बोले जो भावनापूर्वक स्नान करता है। उसी को सद्गति मिलती है, अधिकांश तो मेला देखने जाते हैं। पार्वती जी ने गंगा स्नान का बड़ा महत्व सुना था। सन्तोष नही हुआ। शंकरजी ने कहा अच्छा चलो तुम्हें प्रत्यक्ष दिखाते हैं। कोढ़ी का रूप बनाकर वे रास्ते में बैठ गये साथ में पार्वती जी सुन्दरी स्त्री के रूप में उनके साथ हो गई। गंगा स्नान का पर्व था। अनेकों लोगों ने कोढ़ी के साथ सुन्दर स्त्री को देखा तो किसी ने कोढ़ी को गाली दी, किसी ने उस स्त्री से कहा तुम हमारे साथ चलो। जो भी देखता वह उस स्त्री की ओर आकर्षित होता। अन्त में एक ऐसा व्यक्ति भी मिला जिसने उस स्त्री के पतिव्रत की सराहना की और कोढ़ी को गंगा स्नान कराने में मदद दी। शंकर जी प्रकट हुए और बोले प्रिये यही श्रद्धालु सद्गति के सच्चे अधिकारी हैं।

अहंकार की कुपात्रता

महाराज जनश्रुति ने भल्लाक्ष हंस की बातें सुनीं तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे समझते थे अभी तक सदाचार और सत्कर्मों में उनकी बराबरी करने वाला दूसरा नही है पर अब गाड़ीवान रैक्य के बड़ा होने की बात से उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। दूसरे दिन उन्होंने उस गाड़ीवान की खोज कराई और बहुत सा धन, अश्व और आभूषण लेकर मुनि रैक्य के पास गये और बोले भगवन् आपकी कीर्ति सुनकर यहाँ आये हैं हमें ब्रह्म विद्या का उपदेश दीजिए। रैक्य मुनि ने उत्तर दिया राजन ब्रह्म विद्या सीखना है तो अपना अभिमान दूर करों और श्रद्वा विश्वास तथा नम्रता धारण करो। यह सुनकर राजा अपने ऊपर बड़ा लज्जित हुआ। अन्त में इन्हीं सद्गुणों के द्वारा उनकी ब्रह्मविद्या प्राप्ति की इच्छा पूर्ण हुई।

हठ क्यों करें ?

राजा परीक्षत मौत के भय से क्षुब्ध हो रहे थे। शुकदेव ने यह कथा प्रारम्भ की कि एक दिन एक राजा वन में भटककर एक बहेलिए की झोंपड़ी में पहुँचा और रात बिताने की याचना करने लगा। बहेलिया बोला भाई इस झोपड़ी में जगह जगह मॉस हड्डियाँ खाल आदि रखें हैं इनकी खुशवू से जो भी यहॉ आता है दूसरे दिन जाने का नाम ही नही लेता। इससे झगडा करना पडता है। इसलिये आपको यहाँ नही ठहरा सकते। पर राजा ने वैसा न करने का वचन दिया। बहेलिए ने अन्दर आने की स्वीकृति दे दी। रात भर में ही राजा के मन में वहाँ के संस्कार भर गये प्रातकाल न जाने का हठ करने लगा। शुकदेव जी यहाँ रुके और परीक्षित से पूछा-क्या उस रात का हठ करना उचित था। राजा बोले, बिलकुल नहीं। शुकदेव बोले, फिर आप ही हाड़ मॉस और खाल की कोठरी इस देह के छोड़ने में क्यों क्षुब्ध हो रहे है ? राजा सारी बात समझ गये और प्रसन्नतापूर्वक अपना शरीर त्याग दिया।

पत्थर में मेंढ़की

छत्रपति शिवाजी सामन्तगढ़ किले का निर्माण करा रहे थें। हजारो मजदूर काम में लगे थे, यह देखकर शिवाजी को अहंकार आ गया कि वे इतने व्यक्तियों का पेट पालन करा रहे है। उसी समय समर्थगुरु रामदास भी वहॉ जा पहुँचे। अन्तर्यामी गुरु को शिष्य की भावनायें समझते देर न लगी। उन्होंने शिवजी से पास ही पड़े भारी शिलाखण्ड को तुडवाने के लिए कहा। कई मजदूर लग गये। पत्थर के दो टुकड़े हो गये। बीच ने एक ओखली जैसा पोला स्थान जिसमें पानी भरा था एक मेंढ़की भी थी उसमें। यह देखकर समर्थगुरु ने व्यगं से कहा "वाह शिवाजी पत्थर के बीच मे मेंढ़की के लिए आपने कितना प्रबन्ध किया है।" शिवाजी अपने अहंकार की व्यर्थता को समझ गए और यह मान लिया कि संसार का भरण पोषण करने वाला परमात्मा ही है।

सच्चे भक्त की पहचान

नारद जी को अभिमान हो गया कि वे भगवान् को सब से अधिक प्रेम करते हैं। भगवान् ने इस बात को जाना। नारद को साथ लेकर एक दिन वे भ्रमण को निकले। रास्ते में एक तपस्वी मिला जो रूखे सूखे पत्ते खाता था और तलवार चलाने का निरन्तर अभ्यास करता था। नर वेषधारी भगवान् ने इन दोनों

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बातों का कारण पूछा। तपस्वी ने बताया महाराज ! सूखे पत्ते में इसलिये खाता हूँ कि फल फूल परमात्मा के दूसरे पुत्रों को खाने के लिए बचे रहें और तलवार का अभ्यास मैं अपने शत्रुओं को मारने के लिये करता हूँ। भगवान् ने पूछा- तुम्हारे वे शत्रु कौन कौन हैं ? पहला अर्जुन जिसने भगवान् से रथ हँकवा कर उन्हे कष्ट दिया दूसरी द्रोपदी, जिसने मेरे भगवान् को नंगे पैरों दौड़ाया और तीसरा नारद जो अकारण ही अनेकों प्रश्न पूछ पूछ कर भगवान् का सिर खाता रहता है।

भगवान् ने व्यंग करते हुए नारद से कहा- स्वावलम्बन का महत्व समझने वाला, ईश्वर से केवल सदबुद्धि माँगने वाला, और संसार के अन्य प्राणियों की सुख सुविधा का ध्यान रखने वाला, ही मेरा सच्चा मित्र हो सकता है।

एकान्त कहीं नहीं

सन्त वादिराज अपने अन्त्यज शिष्य कनक दास पर बहुत अधिक स्नेह रखते थे। यह बात अन्य शिष्यों को भली नहीं लगती थी। कनकदास की सच्ची ईश्वर निष्ठा पर उन्हें संदेह था। एक दिन स्वामी जी ने शिष्यों कोएक-एक केला देकर कहा लोगों के सामने फल खाना अच्छा नही होता तुम लोग एकान्त में फल खा आओं। थोड़ी देर में सभी शिष्य फल खाकर आ गये अकेले कनकदास के हाथ में केला बाकी था। सन्त ने केला न खाने का कारण पूछा। शिष्य बोला "भगवन् आपने एकान्त में फल खाने को कहा था, पर एकान्त तो कहीं भी नही है भगवन तो सर्वत्र व्याप्त है। फिर एकान्त कहाँ हो सकता है। ?" इस उत्तर से दूसरे शिष्य बड़ें लज्जित हुए।

तुलसी दास का परिवर्तन

तुलसी दास की पत्नी अपने पिता के घर गई हुई थी। उन्हें पत्नी से मिलने की तीव्र उत्कण्ठा हुई। अंधेरी रात में वर्षा हो रही थी। उसकी परवा किये बिना चल दिये। रास्ते में उमड़ती नदी पड़ी एक बहते हुए मुर्दे के सहारे उन्होंने नदी पार की। सुसराल पहुँचे तो वहाँ लोगो को जगाना उन्होंने उचित न समझा और पिछवाड़े से परनाले पर लटके सांप को रस्सी समझकर उसे पकडा और ऊपर चढ गये और पत्नी के पास पहुँचे।

पत्नी रत्नावली ने कहा यदि आपकी इतनी ही प्रति भगवान से हो जाय तो उन्हें प्राप्त कर आप जीवन को धन्य बना सकते हो। तुलसी दास को यह वचन चुभ गये और उनने सच्चे भक्त-अजर अमर लोक सेवक बन कर दिखा दिया।

भेदभाव का कारण

बिनोवा के पिताजी अपने घर में हमेशा एक लड़का बाहर से लाकर रख लेते और उसे घर के सदस्य की तरह रखा जाता। उसके खाने, पीने, अध्ययन आदि की व्यवस्था घर की तरह ही की जाती। यह सब बिनोवा जी की माता ही करती। बिनावा भी उस समय बालक थे घर में ठण्डी रोटियाँ बचती तो उनमें से पहले माताजी खातीं फिर बच जाती उन्हें बिनोवा को दिया जाता, लेकिन उस बालक को सदैव गर्म ताजा भोजन दिया जाता। एक बार बिनोवा जी ने हँसी में ही पूछ लिया माँ तू मूझे ठण्डी रोटी क्यों देती है ? यह भेदभाव अभी तुम्हारा गया नही ?"इस पर माँ बोली," बेटा मुझे वह बालक भगवत्सरूप दीखता है और तू पुत्रस्वरूप। तुझ में मेरी आसक्ति है ही। जब तू भी भगवत् स्वरूप लगने लगेगा तो यह भेद भाव छोड़ दूँगी। "

कावा कहाँ नहीं ?

नानक एक बार मक्का गये थे। वहाँ वे सोये हुए थे तो मुसलमानों ने आकर कहा - तू कैसा बेअदब है जो कावा की तरफ पैर करके सो रहा है ? नानक ने नम्रतापूर्वक कहा- मुझे हर दिशा में खुदा का घर दीखता है।जिधर उसका घर नहो वह दिशा मुझे बता दीजिए ताकि मै उधर ही पैर कर लूँ इस पर वे धमकाने वाले मुसलमान निरुत्तर हो गये।

वह देख रहा है

एक बार एक चोर अपने लड़के के साथ चोरी करने गया। लड़का स्वभाव से आस्तिक और भगवान का भक्त था। चोर ने लड़के को रखवाला किया और कहा कि कोई देखे तो मुझे बता देना और स्वयं चोरी करने में लग गया। थोड़ी देर बाद बालक ने पिता के पास जाकर कहा "पिताजी वह देख रहा है उस चोर ने चारों और निगाह दौडाई किन्तु कुछ भी दिखाई नहीं दिया। उसने धमकाते हुए लड़के से कहा "कौन देख रहा है?" बालक बोला- पिता जी सर्वव्यापी भगवान देख रहे हैं। इसीलिए मैने आपके कहे अनुसार सूचना दी थी।" बालक की बात सुनकर चोर के मन में ज्ञान का उदय हुआ और उसी दिन से चोरी करना छोड़ दिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नाम ही नहीं काम भी

एक राजा ने दो मालियों को एक-एक बगीचा सौंप दिया। उनकी रखवाली सुरक्षा का भार उन पर डाल कर राजा निश्चिन्त हो गया। उनमें से एक राजा को भगवान की तरह मानकर पूजा किया करता था उसने बगीचे में एक कुटिया बनाकर राजा की मूर्ति की पूजा करना शुरू कर दिया वह दिन रात इसी में लीन रहता। दूसरा माली अपने कर्तव्य उत्तरदायित्व को समझकर दिन रात बगीचे की सम्हाल में लगा रहता। बहुत समय बाद राजा आया और उसने देखा कि एक बगीचा सूखा पड़ा है और दूसरा हरा भरा। राजा ने दूसरे माली को राज्य के सभी बगीचों और उत्पादन केन्द्रों का संचालक बना दिया और पहले वाले माली को देश निकाला दे दिया और ईश्वर का नाम स्मरण से नहीं उसके कामों के प्रति लगनशील रह कर ही प्रसन्न किया जा सकता है।

पाप का पत्थर फेंको

एक चोर एक बार एक महात्मा के पास जाता और उससे ईश्वर दर्शन करने की प्रार्थना करता। एक दिन महात्मा ने चोर को अपने साथ लिया और एक पहाड़ी की चोटी पर पहुँच कर ईश्वर दर्शन कराने की बात कहीं। दोनों चल दिये। पहाड़ी के नीचे पहुँच कर महात्मा ने चोर के शिर पर चार पत्थर रख दिये और उन्हें लेकर चढ़ने के लिये कहा। कुछ दूर तक चलकर वह हाँफने लगा और बोझा उतारने की प्रार्थना की। इस पर महात्मा ने एक पत्थर उतरवा दिया। कुछ दूर चलने पर उसे फिर कठिनाई पड़ी। महात्मा ने एक और पत्थर उतरवा दिया। थोड़ी दूर बाद एक पत्थर और उतारने को विवश होना पड़ा और अन्त में जब चौथा पत्थर उतार दिया गया तब कही जाकर चोर का महात्मा के साथ प्रहाड़ की चोटी तक चढ़ सकना सम्भव हुआ।

चोटी पर पहुँचकर महात्मा ने कहा जब तक पापों का बोझ शिर पर रखा हुआ है तब तक पहाड़ की चोटी पर चढ़ने की तरह ईश्वर दर्शन भी कठिन है। जैसे पत्थर फेंकने पर तुम आसानी से चोटी तक चढ़ सके उसी तरह पापों का बोझ हटा देने पर आचरण को शुद्ध पवित्र बना लेने पर ईश्वर को प्राप्त कर सकने के अधिकरी बनोगे।

आत्म कल्याण के लिये त्याग

एकदिन एक राजा और एक महात्मा की भेंट हुई। महात्मा जी आत्मा का प्रभुत्व बड़ा मानते थे। लेकिन राजा राज्य को सर्वोपरि मानता था। इस पर विवाद चल पड़ा। साधु ने पूछा यदि तुम रेगिस्तान में प्यास से मर रहे हो और कोई एक लोटे के बदले आधा राज्य माँग रहा हो तो दोगे या नहीं ? राजा बोला देना ही पड़ेगा। यदि प्राण निकल रहे हों और अच्छा करने के लिए कोई वैद्य आधा राज्य माँगे तो दोगे या नहीं ? राजा बोले जरूर दे दूँगा। महात्माजी हँस पड़े बोले जिस जीवन की रक्षा के लिए एक लोटे पानी और थोड़ी सी दवा के लिए अपना राज्य दे सकते हो वह आत्मा से बड़ा तो है नहीं फिर आत्मा की रक्षा के लिए-आत्म कल्याण के लिए बड़े से बड़ा त्याग भी स्वल्प माना जाना चाहिए।

संकीर्णता का त्याग

महात्मा जी की बात पर एक व्यक्ति को संदेह था। कि जब ब्रह्म सर्वज्ञ शक्तिमान है तथा जीव अल्पज्ञ और कम सामर्थ्य वाला है तो फिर दोनों में एकता कैसी हो सकती है ? संत ने एक लोटा गंगाजल मंगाकर पूछा इसमें नाव चल सकती है ? जिज्ञासु बोला नहीं। तब वह जल महात्मा जी ने गंगा में डाल दिया और पूछा अब इसमें नाव चल सकती है जिज्ञासु ने उत्तर दिया हाँ। महात्मा जी ने समझाया इसी तरह मनुष्य भी लोटे के जल के समान जब तक संकीर्णताओं से घिरा रहता है तब तक वह अल्प शक्ति वाला रहता है पर जैसे ही वह संकीर्णता का परित्याग कर देता है उसे ब्रह्म की अनुभूति होने लगती है।

भगवत प्राप्ति की मनोदशा

एक महात्मा से किसी ने पूछा भगवान किस प्रकार की मनोदशा होने पर मिल जाते है ? इसके उत्तर में महात्मा उस व्यक्ति को नदी स्नान के लिए ले गऐ। गहरे पानी में वह व्यक्ति भी महात्मा के साथ घँसता चला गया। अवसर पाकर महात्मा ने उस व्यक्ति की गर्दन पकड़ कर पानी में दवोच दिया। वह बाहर निकलने के लिए छटपटाने लगा। एक दो गोता लग जाने पर महात्मा ने उसे बाहर निकाल लिया। पूछने पर उसने कहा डूवते समय मुझे प्राण संकट लग रहा था। और संसार की हर वस्तु की चिन्ता छोड़ कर केवल मात्र बचने के प्रयत्न में था। साधु ने कहा जिस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्षण भी ऐसी ही तीव्र लगन मनुष्य को आत्म कल्याण की लग जाती है तब उसे भगवत प्राप्ति में देर नहीं लगती है।

पाप से बचने का भय

एकराजा अपने मन्त्री के साथ महात्मा से मिलने के लिए चल पड़े। मन्त्री ने बताया जो रास्ते में कीड़े मकोड़े बचाकर नहीं चलता महात्मा जी उसे श्राप दे देते हैं। राजा इस भय से रास्ते भर कीड़े मकोड़े बचाता हुआ आश्रम में पहुँचा। महात्मा जी ने पूछा -"राजन् आपने रास्ते क्या क्या देखा ?" राजा ने उत्तर दिया "मै तो कीड़े मकोड़े को ही बचाता हुआ आया हूँ और कुछ देखने का अवसर ही नही मिला ।" महात्मा बोले इसी तरह जो मनुष्य ईश्वर के दण्ड से बचते हुए चलते है वे सामान्य कार्य करते हुए भी परमात्मा को प्राप्त कर लेते है।

उपासना का परिणाम

एक ब्राह्मण ने किसी सेठ के यहाँ अपने पाँच सौ रुपये जमा करा दिये ताकि कन्या के व्याह के समय व्याज समेत वे रुपये उसे मिल जावें बहुत वर्ष बीत गये। आवश्यकता पड़ने पर वह ब्राह्मण अपने रुपये वापिस लेने पहुँचा। पर सेठ की नीयत में बदी आ गई। उसने उस ब्राह्मण को पहचानने तक से इन्कार कर दिया और कहा- हमारे यहाँ आपका कोई पैसा जमा नहीं है।

ब्राह्मण राजा के पास पहुँचा। उससे पुकार की प्रमाण के प्रभाव से राजा कुछ कर तो नही सकते थे। पर उन्हें एक युक्ति सूझी और दूसरे दिन अपनी शोभा यात्रा नगरी में निकालने की घोषणा कर दी। ब्राह्मण से कह दिया कि- आप उस सेठ के मकान में कुछ पहले ही खड़े रहना। शोभा यात्रा निकली। सभी नागरिक आभिवादन करने खड़े थे। सेठ के मकान के पास से जब सवारी निकली तो राजा ने सवारी रोककर नियत स्थान पर खड़े ब्राह्मण को अपने पास बिठा लिया और उसे गुरुदेव कह कर संवोधन किया। कुछ आगे चल कर उस ब्राह्मण को सवारी से उतार दिया।

सेठ का हृदय काँपने लगा। राजा का गुरुदेव यह ब्राह्मण हैं। मेरी शिकायत कर देगा तो न जाने क्या दण्ड मिले? सेठ ने उस ब्राह्मण की तलाश में सेवक दौड़ाये कुछ दूर आगे जाने पर ही वे मिल गये। सेठ ने उसका बहुत सम्मान किया। और कहा वही खातों आपका धन जमा था, हमें स्मरण नही रहा था, उसके लिए क्षमा करें। सेठ ने व्याज समेत सारा रुपया और उसकी कन्या का विवाह के लिए कुछ विशेष दान देकर विदा किया।

ब्राह्मण मन ही मन सोचने लगा राजा के पास थोड़ी देर बैठने से का यह परिणाम होता है तो राजाओं के राजा ईश्वर के पास बैठने उसकी उपासना करने का तो न जाने कितना बड़ा प्रतिफल होगा। ?

प्रेमी की परीक्षा

एक राजा बड़े सरल स्वभाव का था। अनेक लोग उसकी झूँठी प्रशंसा करके खूब धन ठगा करते थे। कुछ दिन में भीड़ इतनी बढ़ी कि राजा स्वयं हैरान रहने लगा। अत: उसने राज पुरोहित से उसका उपाय पूछा। विमर्श के बाद एक युक्ति निकाली। राजा बीमारी का बहाना बना कर लेट गये और यह खबर फैला दी कि अच्छे होने के लिए पाँच व्यक्तियों का खून चाहिए। सारे शुभचिन्तक गायब हो गये केवल राजा और पुरोहित ही वहाँ शेष रहे। पुरोहित राजा से बोले- महाराज इसी तरह भगवान की उपासना सच्चे हृदय से करने वाले विरले ही होते है अधिकांश तो स्वार्थ और कामना पूर्ति के लिये झूठी उपासना ही करते है। भगवान अपने भक्त एवं प्रेमियों की परीक्षा करते रहते हैं और उनकी आन्तरिक महानता को परख लेते है तो अपना अनुग्रह प्रदान करते हैं।

मैं और मेरे का त्याग

कुये ने अपने पिता से शिकायत की, आप सभी नदी नालों को आश्रय देते हो पर मुझको दुराव क्यों रखा है? समुद्र ने उत्तर दिया- वत्स असीम और अनन्त का प्यार पाने के लिये "मै और मेरा" का क्षुद्र दृष्टिकोण त्यागना पड़ता है अपने आस पास स्वार्थ की दीवारें बनाये बैठे हो, इसी से मुझे नहीं पा सके अपनी सीमाओं का त्याग कर उन्मुक्त बनो तभी मुझे पा सकोगे।

एको देव: सर्वभूतेषु गूढ:
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्ष: सर्वभूताधिवास: साक्षी
चेता केवलो निर्गुणश्च ।।

वह एक परमदेव ही सब प्राणियों के अन्दर व्यापक है सबके अन्तरात्मा में छिपा हुआ है। वह सब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कार्यो का अध्यक्ष है सब प्राणियों के अन्दर वसने वाला है वह सबका साक्षी है सबको जानने वाला वह निगुर्ण अकेला ही सर्वत्र विद्यमान है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्व तस्य
भासा सर्वमिदं बिभाति ।।

उस ईश्वर की शक्ति के बिना सूर्य, चन्द्र तथा तारे कोई भी प्रकाशित नहीं हो सकते। यह विद्युत तथा अग्नि भी उस ईश्वर की सहायता बिना प्रकाशित नही हो सकते। उसकी परम ज्योति से ही यह सब प्रकाशित होते है। वही सबका प्रकाशक है।

भूः पादौ यस्य खञ्चोदर मसुरनिलश्चन्द्रसूर्यौ
च नेत्रे कर्णावाशा शिरो।
द्यौर्मुखमपि दहनो यस्य वास्तव्यमब्धिः ।
अनन्तस्थ यस्य विश्वं सुरनर
खगगोभोगिगन्धर्वदैत्यैश्चित्रं रंरम्यते
तन्त्रिभुवनवयुषं विष्णुमीशं नमामि ।।

जिस परमेश्वर के पृथ्वी ही पैर है और आकाश जिसका उदर है, वायु जिसका प्राण है, चन्द्रमा और सूर्य जिसकी आँखें हैं, दिशायें जिसके कान हैं, द्युलोक जिसका सिर है, अग्नि जिसका मुख है, यह समुद्र ही जिसका निवास स्थान गृह है। यह समस्त संसार जिसके अन्दर स्थिर है। मनुष्य, देवता, गौ, पशु, पक्षी, गन्धर्व, दैत्यों से जिसका यह विश्वरूपी शरीर चित्रित होकर शोभा दे रहा है। उस सबके स्वामी विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।

सर्वत्र ओत प्रोत वह महान देवाधि देव सूर्य समान अपने तेजोमय रूप को सर्वत्र फैलाये हुए भी है हमारे अज्ञानन्धकार के कारण हमसे छिपा हुआ है। उसको जानकर ही मनुष्य मृत्यु अथवा क्षुद्र भावना को दूर कर सकता है। अमृतत्व अथवा विशाल जीवन की प्राप्ति का कोई दूसरा मार्ग नही है।

नाविरतो दुश्चरितान् नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ।।

जो बुरे आचरण से नही हटा है जो अशांत है जिसका चित असमाहित या अशांत है। वह प्रज्ञान से केवल बुद्धि वाद से आत्मतत्व को नहीं पा सकता।

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्र सोऽक्षरः परमः स्वराट् ।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोग्निः स चन्द्रमाः।।

वह परब्रहा परमेश्वर ही ब्रहा है वही शिव है वही इन्द्र तथा वही अविनासी प्रकाशक है। वह परमेश्वर ही विष्णु और प्राण है। वही काल है। वही अग्नि है तथा वही चन्द्रमा है। वह परमात्मा ही विभिन्न रूपों में सर्वत्र विद्यमान है।

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्ये नित्यम्।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं
पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः।।

यह आत्मा अथवा परमात्मा सत्य तप सम्यग्ज्ञान और ब्रहाचर्य से ही प्राप्त किया जा सकता है। जिसे दोषहीन यति (सयंत जीवन व्यतीत करने वाले) देखते है। वह ज्योतिमय शुभ्र आत्मा इसी शरीर के अन्दर वर्तमान है। अर्थात् मनुष्य अपने अन्दर ही अपने विशुद्व स्वरूप अथवा परमात्मा के दर्शन कर सकता है।

नायामात्मा बलहीनेन लभ्यो न च
प्रमादात्तपसो वाप्यलिंगत्।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वास्तस्यैष
आत्मा विशते ब्रह्मधाम ।।

उस परमात्मा को बलहीन जन नही प्राप्ति कर सकता न कोई प्रमादी ही उसे जान सकता। उस ईश्वर को व्यर्थ के तप से तथा किसी लिंग से भी नही जाना जा सकता है। जो श्रेष्ठ विद्वान पाप पुण्य धोकर श्रेष्ठ उपायों से उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है वही उस ब्रह्म को प्राप्त होता है।

कस्तूरी तन में बसै, मृग ढूँढे बन माहिं ।
ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखे नाहिं ।।
कबीर माला ना जपो, जिह्वा कहो न राम ।
सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पावों विश्राम ।।
कठिन राम कौ काम है, सहज राम कौ नाम ।
करत राम कौ काम जे , परत राम सों काम ।।
ज्यों तिल माही तेल है, ज्यों चकमक में आग ।
तेरा साँई तुझ में , जागि सके तो जाग ।।
ज्यों नैनों में पुतली, त्यों मालिक घर माँय।
मूरख लोग ना जानहिं, बाहर ढूँढत जाँय ।।
घट बढ़ कहीं न जानिये , ब्रह्म रहा भरपूर ।
जिन जाना तिन निकट है , दूर कहैं ते दूर ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घीव दूध में रमि रह्या, प्यापक ही सब ठौर ।
दादू बकता बहुत हैं, मथि काढें ते और ।।
औगुन तजिये आप ते ज्यों केंचुल ते सांप ।
तबहि मिलै भगवंत गति, हृदय होय निष्पाप ।।
प्रभुता को सब भजत है , प्रभु को भजै न कोय ।
ज़ो कोइ प्रभु को भजै तो प्रभुता चेरी होय ।।
बासर सुख ना रैन सुख ना सुख सुपने मांह ।
कबीर बिछुटा राम से, ना सुख धूप न छांह ।।
साँई सो साँचा रहो, साँई साँच सुहाय ।
भावै लम्बे केश रख, भावै मूँड मुडाय ।।
तेरा सांई तुझी में, पुहुपन में बास ।
कस्तूरी का हिरण ज्यों ,फिर फिर ढूँढत घास।।
मुक्ति सत्य के साथ है, या तन करौ मत कोय ।
खेती करो अनाज की, सहज घास भुस होय।।
जे जन रूखे विषय रस, चिकने राम सनेह ।
तुलसी ते प्रिय राम को , कानन बसहिं कि गेह ।।

दोहा-

दिखरावा मातहि निज, अद्भुत रूप अखंड ।
रोम रोम प्रतिलागे , कोटि कोटि ब्रह्मंड ।।

इसी क्रम में भगवान ने बिराट् रूप दर्शन जो कौशल्या को कराया दर्शनीय है-

अगनित रवि ससि सिव चतुरानन ।
बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन ।।
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ।
सोउ देखा जो सुना न काऊ।।
देखी माया सब विधि गाढ़ी।
अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी।।
देखा जीब नचावहिं जाही ।
देखी भगति जो छोरइ ताही।।
तन पुलकित मुख वचन न आवा।
नयन मूँद चरनन सिर नावा।।

इसी प्रकार लंकाकाण्ड के अन्तर्गत भगवान राम को ईश्वर मानकर मन्दोदरी अपने पति लंकेश्वर रावण को समझाती हुई प्रभु का विराट रूप का वर्णन करती है। यथा-

दोहा-

विश्वरूप रघुवस मणि, करहु वचन विश्वास।
लोक कल्पना वेद कर, अंग-अंग प्रतिजासु ।।
पद पाताल सीस अज धामा।
अपरलोक अंग अंग विश्रामा ।।
भृकुटि विलास भयंकर काला।
नयन दिवाकर कच घनमाला।।
जासु घ्रान अस्विनी कुमारा।
निसि अरु दिवस निमेष अपारा ।।
श्रवन दिसा दस बेद बखानी ।
मारुत स्वाँस निगम निज बानी।।
अधर लोभ जमदसन कराला।
माया हास बाहु दिग पाला।।
आनन अनल अम्बुपति जीहा।
उत्पत पालन प्रलय समीहा।।
रोम राजि अष्टादस भारा।
अस्थि सैल सरिता नस जारा।।
उदर उदधि अधगो जातना ।
जगमय प्रभु की बहु कल्पना ।।

दोहा-

अहंकार सिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान ।
मनुज बास सचराचर, रूप राम भगवान ।।

इसी प्रकार उत्तर काण्ड में काकभुसुण्डिजी गरुड़ के प्रति कहते है कि हे गरुड़ सुनो मैने स्वयं ज्ञान प्राप्त करके प्रभु की आलोकिक लीलाओं का दर्शन किया है। यह सब मात्र प्रभु की कृपा से ही संभव है यथा-

उदर मांझ सुन अंडजराया।
देखहुँ बहु ब्रह्मंड निकाया।।
अति विचित्र तँह लोक अनेका ।
रचना अधिक एक ते एका।।
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा।
अगनित उडगन रवि रजनीसा।।
अगनित लोकपाल जमकाला ।
अगनित भूधर भूमि बिसाला।।
सागर सरि सर विपिन अपारा।
नाना भाँति सृष्टि विस्तारा।।
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किन्नर ।
चारि प्रकार जीव सचराचर।।

दोहा-

जो नहिं देखा नहिं सुना, जो मनहूँ न समाय।
सो सब अद्भुत देखेऊँ ,बैरनि कवन विधि जाय ।।
एक एक ब्रह्मांड मह रहेऊँ, वरस सत एक ।
एहि विधि देखत फिरउ मैं अंड कटाह अनेक ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भगवान शकंर जी अपना अनुभव सुनाते हुए कहते कि -

हरि व्यापक सर्वत्र समाना ।
प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना ।।
देस कालदिसि विदिसिहुँ माँही।
कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाही ।।
अग जगमय सब रहित विरागी।
प्रेम ते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।।

अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत भगवान.श्रीराम जब बाल्मीक आश्रम पर पहुंचे तब आवभगत के मश्चात् महर्षि श्रीराम का निवास स्थान बताते हुए कहते हैं।

सुनहु राम अब कहउँ निकेता ।
जहाँ बसहु सिय लखन समेता ।।
तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं ।
प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं ।।
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी।
प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी।।
काम कोह मद मान न मोहा।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।।
जिन्ह कें कपट दम्भ नहीं माया।
तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया।।
सब के प्रिय सब के हितकारी।
दुख सुख सरिस प्रशंसा गारी।।
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी।
जागत सोवत सरन तुम्हारी ।।
जननी सम जानहिं परनारी।
धनु पराव बिष तें बिष भारी।।
जे हरषहिं पर संपति देखी ।
दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी ।।
अवगुन तजि सबके गुन गहहीं ।
बिप्र धेनु हित संकट सहहीं।।
नीत निपुन जिन्ह कइ जग लीका ।
घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका।।
गुन तुम्हार समुझइ निज दोषा ।
जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा।।
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई ।
तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई।।
सरगु नरकु अपबरगु समाना।
जहँ तहँ देख धरें धनु बाना।।
करम वचन मन राउर चेरा।
राम करहु तेहि के उर डेरा।।

दोहा-

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु ।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु ।।

बालकाण्ड के अन्तर्गत तुलसीदास जी भगवान राम को प्रणाम करते हुए कहते है।

दोहा-

जड़ चेतन जग जीव जन, सकल राममय जानि।
बन्दहु सबके पद कमल, सदा जोरि जुग पानि ।।

बालकाण्ड के अन्तर्गत सन्त तुलसी दास जी श्री राम सीता को प्रणाम करते हुए कहते है। -

आकर चारि लाख चौरासी ।
जाति जीव जल थल नभ बासी ।।
सीय राममय सब जग जानी ।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।।

बालकाण्ड के अन्तर्गत भगवान शंकर ने भागवती पार्वती को निराकार ईश्वर की महत्ता बताते हुए कहा था। कि-

बिनुपद चलिअ सुनिअ बिनु काना ।
कर बिन कर्म करिअ विधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी ।
बिनु बानी वक्ता बड़ जोगी ।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा।
ग्रहइ घ्रान बिनु वास असेषा।।
अस सब भाँति अलौकिक करनी ।
महिमा जासु जाइ नहि बरनी ।।

।। दसवाँ प्रवचन समाप्त ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ग्यारहवाँ- प्रवचन

मानसिक संतुलन, संयमी जीवन

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ।।

-अध्याय १२ श्लोक १५

जिससे संसार उद्विग्न नहीं होता और जो संसार को उद्विग्न नहीं करता। जो हर्ष, क्रोध, भय और उद्वेग से रहित है वह मुझे (भगवान को) प्रिय है।

गीता के इस श्लोक में उस व्यक्ति की प्रशंसा की है जो अपना मानसिक संतुलन हर स्थिति में बनाये रहता है। छोटे-छोटे प्रिय-अप्रिय कारणों को लेकर उद्विग्न नहीं होने लगता। कारण स्पष्ट है-विचारों की उचित श्रृंखला और कार्यों की उचित गति विधि बनाये रखना केवल उसी के लिये संभव हो सकता है जिसे स्थिर मन और शान्त चित्त से विचारने तथा करने का अभ्यास हो। यदि यह स्थिति न रहे, मनुष्य पग-पग पर आवेशग्रस्त होता रहे, कभी अति उत्साह, कभी अति निराशा के झूले में झूलता रहे तो उस ज्वार भाटा आने वाले समुद्र में सामान्य जीवन की किश्ती का चल सकना ही न हो सके। अपनी गतिविधियों की रचनात्मक दिशा में लगाये रहने पर ही कुछ महत्वपूर्ण सफलताऐं संभव हो पाती हैं और इसकी सम्भावना तभी रहती हैं जब मानसिक स्थिरता ठीक तरह बनी रहे। अव्यवस्थित चित्त, पग-पग पर आवेश में आने वाले व्यक्तियों का धैर्य एवं साहस स्थिर नहीं रह पाता और उनका सब कुछ अधूरा एवं अस्त-व्यस्त ही पड़ा रहता है।

मानसिक स्थिरता अध्यात्मवाद का प्रमुख चिन्ह है। प्रत्येक विचारशील को शान्ति, गम्भीर और सन्तुलित मन होना चाहिये। भली और बुरी, प्रिय और अप्रिय परिस्थितियों के ताने से मनुष्य का जीवन बनाया गया है। धूप-छाँह की तरह , रात-दिन की तरह, हानि एवं लाभ की, असफलता एवं सफलता की परिस्थितियाँ आती रहती हैं। इस संसार में आज तक कोई व्यक्ति ऐसा पैदा नहीं हुआ जिसे केवल सफलताऐं ही मिली हैं, कभी असफलता न हुई हो। सच तो यह है कि हर सफलता के पीछे ढेरों बार असफलताओं का इतिहास छिपा रहता है। बच्चा बड़ा होकर चलना सीखने में सफलता प्राप्त करने से पहले कितनी ही बार गिरता और चोट खाता है। सफलता याद रखी जाती है और असफलता भुला दी जाती है यह ठीक है और उचित भी। यह सोचना तो असंगत ही होगा कि असफलताओं से टकराये बिना हर काम में सीधी सफलता ही मिलती जाये। जो ऐसी कल्पना किये बैठे रहते हैं उन्हें पग-पग पर निराश एवं उद्विग्न होना पड़ता है।

इसी प्रकार हर परिस्थिति अपने अनुकूल ही रहे यह भी संभव नहीं। यह संसार केवल हमारे ही लिये नहीं बना हैं, इसमें केवल हमारे ही स्वार्थ सन्निहित नहीं हैं वरन् उनके भी स्वार्थों का ध्यान रखा गया है, जिनका लाभ हमारी हानि होने पर ही संभव है। एक का घाटा दूसरे के लिये लाभ का कारण बनता है। एक की मृत्यु जहाँ एक परिवार के लिये शोक का कारण बनती है, वहाँ दूसरे परिवार में उसी आधार पर बच्चे के जन्म की खुशी मनाये जाने का अवसर मिलता है। इस विश्व की रचना ही इस प्रकार हुई है कि स्वाभाविक स्थिति को अस्वाभाविक मान कर अपने मन को असन्तुलित कर बैठते हैं, शोक, सन्ताप और नैराश्य उद्वेग में पड़ते रहते हैं। वे न तो मानव जीवन का स्वरूप समझते हैं और न इस संसार की बनावट का। विचारशील व्यक्ति अपनी मनोभूमि पहले ही ऐसी बनाये रखते हैं ताकि अप्रिय अवसर आने पर मानसिक सन्तुलन बिगड़ने न पावे। वे जानते हैं कि उद्वेग की जूड़ी,तिजारी मस्तिष्क पर चढ़ बैठेगी तो वह बेचारा बिल्कुल निकम्मा हो जायेगा, फिर उसके बूते कोई बात सोचना तक सम्भव न होगा। कठिनाई का हल निकालने के योग्य सूझ बूझ तो उसमें रहेगी ही कहाँ से ?

असंतुलित एंव उद्विग्न मन एक प्रकार के पागलपन से ग्रसित ही माना जा सकता है। पागल कितने ही तरह के होते हैं। जो पागलखानों में बन्द रहते, कपड़े फाड़ते, ईंट मारते या गाली बकते हैं उन्हें ही पागल नहीं कहते, वरन् हल्की किस्म के वे भी पागल ही हैं तो जरा-जरा सी बात पर तिनक जाते हैं, रूठे-मटके बैठे रहते हैं, निराशा व्यक्त करते एवं खिन्न,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

चिन्तित बने रहते हैं। यह एक प्रकार का मानसिक रोग हैं, जिसके कारण प्रस्तुत समस्याऐं सुलझने की अपेक्षा और अधिक उलझती चली जाती हैं। उद्वेग से ग्रस्त 'अधपगला' आदमी उलटी ही बात सोच सकता हैं, उसके मन में विघटनात्मक, विनाशात्मक विचार ही आ सकते हैं। मरने मारने की, भागने, छोड़ने, फोड़ने की बात ही वह सोच सकता है। यह सोचना जितना कार्य रूप में परिणित होने लगता हैं उतनी ही बड़ी विभीषिकाऐं भी सामने आकर खड़ी हो जाती है।

यह आवश्यक नहीं कि अपने सम्पर्क में आने वाले सभी व्यक्ति सज्जन या विचारशील ही हों। उनमें से कई ओछे और अविवेकी भी हो सकते हैं। उनसे उन्हीं के ढंग का व्यवहार करना पड़ता है। अपने कुटुम्ब के भी कई सदस्य ऐसे हो सकते हैं जो अपनी दृष्टि में कई दोष दुर्गुणों से ग्रसित हों। उनका सिर तो नहीं काटा जा सकता और न कोई ही जादू किसी के पास है कि वे अपनी स्वतंत्र प्रकृति को तुर्त-फुर्त छोड़ कर अपने आज्ञानुवर्ती बन जायें। इस दिशा में प्रयत्न जारी रखे जा सकते हैं, पर कितनी सफलता कितने समय में मिलेगी, इसका कुछ भी निश्चय नहीं,ऐसी दशा में यही उचित हो सकता हैं कि मध्यम मार्गी नीति अपना कर परिस्थितियों को सुधारने तक धैर्य रखा जाय। और जो कुछ है उसी का किसी प्रकार ताल मेल बिठाते हुये आगे बढ़ा जाय। बुद्धिमानी का तरीका यही हैं। पर जो आवेश ग्रस्त होते हैं वे तत्काल इधर-उधर की बात सोचते हैं और उनकी इस उतावली का परिणाम परिस्थितियों में और भी अधिक बिगाड़ उत्पन्न कर देता है।

छोटे-छोटे कारणों को लेकर आत्महत्या, कत्ल, फौजदारी, खून खराबी, दलबन्दी एवं भंयकर विनाशात्मक प्रवृत्तियाँ पनपते देखी गई हैं। जिनके कारण अनेकों व्यक्तियों को बहुत समय तक दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं। भयानक काण्डों के मूल में भी अधिकतर इतने छोटे कारण होते हैं कि संतुलित मन होने पर उन्हें हँसी-हँसी में चुटकी बजाते थोड़ी सी उदारता का सहारा लेकर हल किया जा सकता था। पर आवेश की प्रतिक्रिया आवेश, क्रोध की प्रतिक्रिया क्रोध, दुर्व्यवहार की प्रतिक्रिया दुर्व्यवहार-इस क्रम से बात बढ़ते-बढ़ते इतनी बढ़ी कि उस फैली-हुई बेल को समेटना ही कठिन हो गया। इस संसार में अधिकतर झगड़े इसी प्रकार बढ़ते हैं। भयंकर उत्पातों के मूल में वास्तविक कारण उतने गहरे नहीं होते जितना स्वभावों में रहने वाली उत्तेजना एवं अशिष्टिता। यही दुष्प्रवृत्ति संसार में अगणित विभीषिकाऐं उत्पन्न करने का कारण बनी हुई है।

एक दार्शनिक का कहना है कि-"संसार में आधे उत्पात अनैतिकता के कारण और आधे मानसिक उद्विग्नता के कारण होते हैं। यदि आवेश एवं उद्वेग जैसी मानसिक दुर्बलता पर विजय प्राप्त कर ली जाये तो संसार में फैले हुये संकटों में से आधे तो तुरन्त ही समाप्त हो सकते हैं।" अनैतिकता की तरह उद्विग्नता भी मानव जीवन के लिये समान रूप से हानिकारक है। दुःख दारिद्र की, शोक संताप की अभिवृद्धि में दोनों ही एक समान रूप से उत्तरदायी हैं। इसलिए जहाँ हमें पापों को दूर करने और धर्म को बढ़ाने के लिये प्रयत्न करना है, वहाँ आवेश ग्रस्त होने के पागलपन को भी ध्यान में रखना है। यदि पाप मिट जाय और असहिष्णुता एवं तुनक मिजाजी इसी प्रकार बने रहें तो संसार की नारकीय स्थिति इसी प्रकार बनी रहेगी। रुचि भिन्नता एवं विचारशैली की छोटी-मोटी भिन्नताओं को लेकर लोग परस्पर शिर फोड़ते रहेंगे। धर्म जैसे पवित्र विषय को माध्यम बना कर जब लोग खून खच्चर करने में नहीं चूकते तो फिर अन्य स्वभाव भिन्नता, विचार-भिन्नता जैसे व्यक्तिगत कारण तो हो ही सकते हैं जिनको लेकर स्वयं दुःख सागर में डूबे रहने एवं दूसरो से भिड़ पड़ने का अवसर मिल जाय।

गीता ने इस अवाँछनीय स्थिति को मानव जीवन में से बहिष्कृत करने का निर्देश किया है और सुझाया है कि प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को मानसिक संतुलन बनाये रहने का अभ्यासी होना चाहिये।प्रिय परिस्थितियों में न तो अहंकार एवं हर्षातिरेक में डूब जाना चाहिये। और न थोड़ी सी प्रतिकूलता एवं अड़चन प्रस्तुत देखकर हड़बड़ा जाना चाहिये। दोनों ही स्थितियों में अपनी गंभीरता बनाये रहनी चाहिये और संसार के स्वरूप एवं प्रवाह को समझते हुये धैर्य पूर्वक सब कुछ सुनना, समझना चाहिये। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि बिगड़ी परिस्थितियों को सुधारा न जाय और हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहा जाय। ऐसी अकर्मण्यता अपनाने से तो और भी अधिक नाश होगा। जहाँ आवेश बुरा हैं वहाँ आलस्य भी कम बुरा नहीं। एक को गरम आग तो दूसरी को ठंडी बर्फ कहा जा सकता है, दोनों की अति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समान रूप से घातक सिद्ध हो सकती हैं। अस्तु विपन्नताओं को हटाने के लिये उद्योग तो पूरी शक्ति एवं सामर्थ्य के साथ करना ही चाहिये पर साथ ही यह स्मरण रखना चाहिये कि कठिनाइयों का सही हल ढूँढने लायक सूझ बूझ केवल उसी मस्तिष्क में उत्पन्न होती है जो उद्विग्न एवं असंतुलित न हो रहा हो। यह हमारे ही हित में है कि प्रत्येक परिस्थिति में अपना संतुलन सुदृढ़ बनाये रहें। गीता ने इस स्थिति को आध्यात्मिक प्रगति के लिये अत्यन्त आवश्यक माना है। देखिये-

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।

-अध्याय २ श्लोक ५६

दुःखों की प्राप्ति में उद्वेग रहित मन वाला हो और सुखों की प्राप्ति में दूर हुई स्पृहा वाला हो। राग, भय, क्रोध आदि से रहित मुनि स्थिर बुद्धि वाला कहा जाता है।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

-अध्याय ६ श्लोक १७

युक्त आहार विहार करने वाले का, कर्मों में युक्त चेष्टा वाले का, व युक्त सोने व जागने वाले का योग दुःखनाशक अर्थात् सिद्ध होता है।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।

-अध्याय १७ श्लोक १५

उद्वेग न करना, प्रिय सत्य और हितकर वचन बोलना, तथा स्वाध्याय का अभ्यास यह वाचिक तप कहलाता है।

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ।।

-अध्याय १७ श्लोक १६

मन की प्रसन्नता, सौम्यभाव, मौन आत्मनिग्रह, भावनाओं की शुद्धि इतना यह मानस तप कहलाता है।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

-अध्याय १६ श्लोक १८

अहंकार, बल, घमण्ड, काम, क्रोध और संग्रह को त्याग कर ममता रहित और शान्त अन्तःकरण हुआ सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में एकीभाव होने के लिये योग्य होता है।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ।।

-अध्याय २ श्लोक ३८

सुख-दुःख, लाभ-हानि, जीत-हार को समान मानकर के फिर तू युद्ध के लिये युक्त हो। इससे तू पाप को प्राप्त नहीं होगा।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।

-अध्याय २ श्लोक ४७

कर्म करने में ही तेरा अधिकार है। फलों में कभी नहीं। कर्म फल के लिये तेरा कर्म न हो और अकर्म में तेरा संग नहो अर्थात् कर्म न करने में प्रीति न रख।

गीता में कहा गया है-'अनासक्ति योग', स्थिति प्रज्ञ अवस्था योग-स्थिति कर्मयोग आदि की जो व्याख्या की गई है, उसे सरल शब्दों में कहा जाय तो "मन को संतुलित रखते हुये कर्तव्य कर्मों में संलग्न रहना" इतनी विवेचना से भी काम चल सकता है। आत्मिक उन्नति इसी स्थिति पर निर्भर है। लौकिक प्रगति के लिए आवश्यक सूझ बूझ एवं क्षमता इसी आधार पर उपलब्ध होती है और आत्मिक शान्ति से लेकर जीवन लक्ष्य की प्राप्ति तक सारे प्रयोजनों की पूर्ति उसी आधार शिला पर संभव होती है। सुविकसित जीवन के लिये एवं अनिवार्य आवश्यकता के रूप में मानसिक संतुलन की अनुद्वेग स्थिति को प्राप्त करने के लिये हमें शक्ति भर प्रयत्न करना ही चाहिये।

इस संतुलित स्थिति को संयमी जीवन भी कह सकते हैं। आहार-विहार का संयम रखना उसी के लिये सम्भव है जो वासनाओं के आवेश पर नियंत्रण कर लेगा। तृष्णाओं को वही रोक सकेगा जिसे लालच का नशा बेकार नहीं बनाये रहता। इन्द्रिय भोगों एवं मानसिक लिप्साओं के आवेशों एवं उफानों को जो रोक सकता है वह संयमी व्यक्ति अपनी प्रगति का पथ निरन्तर प्रशस्त ही करता रहेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सन्तुलन और धैर्य की महत्ता

भगवान् विष्णु का बड़प्पन

एक बार महर्षि भृगु ने त्रिदेवों की परीक्षा लेने की सोची कि इनमें कौन बड़ा है। वे सर्व प्रथम पितामह ब्रह्मा की सभा में गये और उन्हें अभिवादन किये बिना ही सबसे आगे आ खड़े हुये। इस पर ब्रह्माजी बड़े क्रुद्ध हुये और भृगु को दण्ड देने के लिये तत्पर हो गये। भृगु वहाँ से चल दिए और महेश के पास पहुँचे। शंकर पार्वती के साथ बैठे हुये विनोद कर रहे थे। महर्षि भृगु ने देखकर व्यंग्यपूर्ण हँसी हँस दी। इस पर शंकर जी को बड़ा क्रोध आया और वे त्रिशूल लेकर भृगु के पीछे दौड़े। महर्षि अपनी जान बचाकर भागे और शंकर पार्वती के समझाने पर शान्त हो गये। तत्पश्चात भृगु जी विष्णु के पास पहुँचे। भगवान विष्णु शेष शैय्या पर सो रहे थे। लक्ष्मी उनके पैर दबा रही थीं। भृगुजी ने एकदम जाते ही उसकी छाती में लात मार दी। विष्णु भगवान् शान्त भाव से उठे और क्षमा माँगते हुये बोले-"ऋषिवर ! आपके इन कोमल पैरों में चोट तो नहीं लगी।" ऐसा कहकर उनके पैर दबाने लगे। लक्ष्मी हवा करने लगीं। भृगुजी का मन्तव्य पूरा हुआ। जो सब परिस्थितियों में सन्तुलित रहे वही बड़ा है।

अम्बरीष का धैर्य

महर्षि दुर्वासा अकारण ही अम्बरीष पर क्रोधित हो गये और क्रोधावेश में उसे बुरा भला कहने लगे। लेकिन अपनी कोई भूल न जानकर अम्बरीष शान्त रहे। उन्हें कोई परेशानी नहीं हुई। राजा की चुप्पी से दुर्वासा और भी क्रोधित हुये। उनके शरीर से भयंकर आकार वाला एक राक्षस प्रकट हुआ और अम्बरीष के चारों ओर डरावने हावभाव करता हुआ कूदने लगा। अम्बरीष इस पर भी परेशान न हुये। शान्त मन होकर भगवान का स्मरण करते रहे। इसी बीच भगवान ने दुर्वासा के इस अकारण क्रोध और एक सज्जन को तंग करने पर दुःखी होकर अपना सुदर्शन चक्र छोड़ा जिससे दुर्वासा अम्बरीष से क्षमा माँगने पर ही बचे।

साधना की सफलता का मार्ग

वैराग्य होने के पश्चात गौतम बुद्ध ने कई वर्ष तक जंगल में रहकर बड़ा कठोर तप किया। वहाँ उनका आहार लगभग बन्द हो गया था। इससे शरीर सूखकर अस्थि-चर्म मात्र रह गया। पर इतने पर भी आत्मज्ञान नहीं हुआ और इससे उनका चित्त भ्रमित रहता था।

एक दिन गौतम के तपस्या स्थान के पास होकर नगर की कुछ गायिकाऐं निकलीं। वे मार्ग में एक गीत गाती हुई चली जा रही थीं, जिसका पूरा आशय यह था कि-"वीणा के तारों को ढीला मत छोड़ो, अन्यथा मधुर स्वर नहीं निकलेगा। पर उनको इतना खीचों भी मत कि वे टूट जायें।"

इस गीत की ध्वनि गौतम के कान में पड़ी तो अकस्मात उनको अपनी भूल का पता लग गया। सुफल प्राप्त करने के लिये अत्यधिक कष्टपूर्ण तपस्या उचित नहीं, वरन् संयमित आहार, विश्राम, निद्रा आदि का जीवनयापन करने से ही साधना पूरी हो सकनी सम्भव है। चाहे सांसारिक लक्ष्य हो और चाहे आध्यात्मिक, सफलता के लिये मध्यम मार्ग का अनुसरण करना उचित है।

दुर्भावनाओं की वापिसी

भारद्वाज नामक किसी ब्राह्मण ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया और वह भिक्षु बनकर बुद्ध देव के पास रहने लगा। समाचार पाकर ब्राह्मण का एक सम्बन्धी वहाँ पहुँचा और बुद्ध देव को गालियाँ देने लगा। तथागत कुछ न बोले केवल गालियाँ सुनते रहे। अन्त में थककर वह ब्राह्मण भी चुप हो गया। अब बुद्ध ने पूछा-"ब्राह्मण ! आपके घर यदि अतिथि आये तो आप उसका सत्कार करोगे ?" क्यों नहीं, वह ब्राह्मण बोला।"यदि वह मेहमान आपकी वस्तुऐं स्वीकार न करे तो आप उसका क्या करेगे?" अपने पास रख लूँगा और क्या करूँगा- इस पर वह झल्लाकर बोला। "तो यदि मैं आपकी गालियाँ स्वीकार नही करता तो अब यह किसके पास जायेगी?" ब्राह्मण बड़ा लज्जित हुआ अपने किये पर पश्चाताप करने लगा।

छानबीन जरूरी

महर्षि घौर के पुत्र कण्व और प्रगाथ दोनों में बड़ा प्रेम था। प्रगाथ अपने बड़े भाई कण्व को पिता के समान मानते थे। कण्व की पत्नी भी प्रगाथ को पुत्र के समान मानती थीं। एक दिन कण्व समिधायें लेने गये थे। उनकी धर्मपत्नी यज्ञ वेदी के सामने बैठी थीं।, पास ही प्रगाथ सामगान कर रहा था। आलस्य वश प्रगाथ को निद्रा आ गई और वह ऋषि पत्नी के अंक में सिर रखकर सो गया। कण्व वन से लौटे तो उनके हृदय में भाई के लिये शंका उत्पन्न हुई । उन्होंने जोर से प्रगाथ की पीठ पर पाद प्रहार किया और कटु शब्द कहने लगे। प्रगाथ ने भाई के चरण पकड़ लिये, ऋषिपत्नी ने भी कण्व की आशंका दूर की। प्रगाथ की

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सरलवृत्ति देखकर कण्व को अपने किये पर बड़ा पश्चाताप हुआ।

जीवनमुक्ति का आधार

महाराज विम्बिसार जीवन मुक्त बनना चाहते थे, इसके लिये वे महावीर के चरणों में सारा राज्य तक अर्पित करने को तैयार थे। महावीर ने उन्हें पुष्पदन्त नामक श्रावक के पास जाकर एक सामायिक-फल प्राप्त करने का आदेश दिया। महाराज उधर ही चल पड़े। श्रावक ने बताया "महाराज! सामायिक का नाम तो समता है अत: इसे दिया तो नहीं जा सकता, आप भेदभाव का परित्याग कर सभी को आत्मवत् देखिये इसी से जीवनमुक्ति मिलेगी।" महाराज ने समझ लिया और उसी का अभ्यास करने लगे।

सादगी का ध्यान

श्रीराम शास्त्री जितने न्यायप्रिय थे उतना ही उनका जीवन सादा था। उनकी वेशभूषा में कोई बनावट या तड़क भड़क नहीं होती थी। किसी पर्व में उनकी पत्नी रनिवास में पधारीं। राजपुरोहित की स्त्री को साधारण वेष भूषा में देखकर उन्हें पेशवाओं का अपमान जान पड़ा। उन्होनें अनेक आभूषणों से गुरुमाता को अलंकृत किया और पालकी में बिठाकर घर भेजा। कहार द्वार पर आये, दरवाजा खुला और एक दम बन्द हो गया। कहार बोले- शास्त्री जी यह आपकी ही धर्मपत्नी हैं। "अरे भाई मेरी ब्राह्मणी ऐसी नहीं हो सकती। वह तो बड़े सादे वेष में रहती है।" आखिर उनकी पत्नी ने जब सारे आभूषण वापस कर दिये तभी घर का दरवाजा खुला।

श्रीराम शास्त्री ने अपनी पत्नी से कहा-भद्रे, हम लोक शिक्षण करने वाले ब्राह्मण हैं। हमें उस तरह की वेष भूषा ही धारण करनी चाहिये। जिसका अनुकरण करने वाले भी सज्जन जैसे दृष्टिगोचर हों। श्रेष्ठ व्यक्तियों की वेश भूषा सादगी की ही होनी चाहिये।

अयुक्त वचनों का दुष्परिणाम

एक व्यक्ति एक ज्योतिषी के पास गया और अपने भविष्य के बारे में पूछने लगा। ज्योतिषी ने कहा-"तुम्हारे सभी सम्बन्धी तुम्हारे देखते देखते मर जायेंगे और तुम अकेले ही रह जाओगे।" यह सुनकर वह मनुष्य बड़ा गुस्सें में हो गया। ज्योतिषी जी पिटाई से तो बच गये लेकिन दक्षिणा जाती रही।

वही व्यक्ति फिर दूसरे ज्योतिषी के पास गया। उस ज्योतिषी ने बताया-"भाई आपकी उम्र बहुत है। आप बहुत समय तक जीयेंगे,आप अपने नाती पोतों को भी पढ़ा लिखा सकेंगे और उनकी शादी करेंगे।" वह मनुष्य बड़ा खुश हुआ और पर्याप्त दक्षिणा भी ज्योतिषी को दी।

बात वही थी, सिर्फ उसे कहने से घटनाक्रम में परस्पर विरोधी परिस्थितियाँ बन गयीं। कटुवचन सदा सबके लिये हानिकारक ही होता है।

श्री रामचन्द्र की नम्रता

श्री रामचन्द्र जी के द्वारा सीता स्वयंवर में शिव धनुष तोड़ने पर परशुराम बड़े रुष्ट हुये और वे अपने क्रोधावेश में ही सभा मंच पर आ धमके। परशुराम तरह- तरह से धनुष तोड़ने वाले की भर्त्सना करने लगे। लक्ष्मण से नहीं रहा गया और वे परशुराम को कटु वचन सुनाने लगे। इस पर धैर्यवान राम ने बीच बचाव किया और परशुराम जी से नम्रतापूर्वक क्षमा याचना करते हुये अपने आपको धनुष तोड़ने का दोषी बताया। राम के हृदय पर परशुराम जी के कटु शब्दों का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। आखिर श्रीरामचन्द्र जी की नम्रता, सहनशीलता और शान्ति के सम्मुख परशुराम जी का गर्व दूर हो गया।

शील की सराहना

महर्षि बोधायन एक दिन शिष्यों समेत वन विहार के लिये गये। दोपहर तक सभी थक गये और एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे। नींद आ गई, सब सो गये। दिन ढले महर्षि की आँख खुली उन्होंने सभी शिष्यों को जगाया। सभी उठ बैठे पर गार्ग्य ज्यों का त्यों पड़ा रहा। महर्षि पास गये तो देखा गार्ग्य आँखें खोले चुपचाप पड़ा है उससे उठने को कहा गया। गार्ग्य ने लेटे हुये ही उत्तर दिया, भगवन् मरे पैरों में एक सर्प सो रहा है। मेरे उठने से उसकी नींद टूट जायेगी। दो घन्टे के बाद उसकी नींद टूट जायेगी और वह चला जायेगा। सभी लोग रुक गये। सर्प की नींद टूटी तो वह पास की झाड़ी में चला गया। महर्षि गार्ग्य के शीलका प्रशंसा करने लगे तो अन्य शिष्य मैत्रायण ने पूछा "हे देव! यह तो साहस का कार्य था आप इसे शील क्यों कहते हैं?" महर्षि बोले, "वत्स शील से साहस की शोभा होती हैं दु:शील से तो दु:स्साहस ही होता है। इसलिये शील ही सदैव सराहनीय होता है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उदारता और सहृदयता

मिथिला के राजा ने कौशल पर चढ़ाई कर दी और उसे जीत लिया। कौशल राज युद्ध भूमि से भाग गये। उन्हें जीवित पकड़ कर लाने के लिये मिथिलाधिपति ने एक हजार स्वर्ण मुद्राओं के इनाम की घोषणा की। कौशल नरेश उस समय एक ऐसे गाँव में थे जहाँ के सारे नवयुवक उनके साथ युद्ध में जान गवाँ चुके थे। गाँव की असहाय अवस्था से उनका जी बड़ा दुःखी हुआ। उन्होंने गाँव के वृद्धजनों को साथ लिया और मिथिला नरेश के दरबार में जा पहुँचे। उन्होंने अपना परिचय देकर उन ग्रामीणों को इनाम देने के लिये कहा। सभी आश्चर्य चकित थे। मिथिलापति उनकी उदारता के आगे बड़े लज्जित हुये और उनका राज्य वापस कर दिया।

स्वास्थ्य संतुलन का आधार

राजा शीलभद्र स्वस्थ होकर आश्रम से विदा होने लगे तो उन्होंने वहाँ के लोगों के स्वास्थ्य संरक्षण और उपचार आदि के लिये कुशल वैद्य की व्यवस्था कर दी। काफी समय बीत गया पर वैद्य के पास कोई भी उपचार के लिये नहीं आया। वे अपने निष्क्रिय जीवन से बड़े क्षुब्ध हुये, इसकी सूचना कुलपति को दी। आचार्य ने बताया,"वैद्यराज ! यहाँ सभी कड़ी मेहनता करते हैं, स्वल्प और सात्विक आहार करते हैं। इसलिये किसी के बीमार होने का प्रश्न ही नहीं उठता।" वैद्यराज ने कहा, सच ही जहाँ यह नियम पालन किये जाते हैं वहाँ वैद्यों की कोई आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यह कहकर वैद्यराज आश्रम से वापस चले गये।

ठोस रचनात्मक कार्य

राष्ट्रीय महासभा के प्रारम्भिक काल के प्रमुख कर्णधार सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी बहुत ही सुलझे हुये विचारों के नेता थे। जब राष्ट्रनिर्माण की ठोस योजना पर कभी गम्भीर विचार विमर्श होता, तो वे सदैव यही कहा करते थे-"सुदृढ़ स्वास्थ्य ही वह नीव हैं जिसके ऊपर सुदृढ़ राष्ट्र खड़ा हो सकता है।" उनका विश्वास था कि सबसे अधिक रचनात्मक कार्य यह है कि देश वासियों को उत्तम स्वास्थ्य बनाने की शिक्षा दी जाये। कसरत, व्यायाम, लाठी, तलवार आदि के द्वारा शारीरिक शक्तियों को विकसित किया जाये। क्योंकि उत्तम शरीर में उत्तम मस्तिष्क का, और उत्तम मस्तिष्क में उत्तम आत्मा का निवास हो सकता है। इन्हीं उत्तमताओं के आधार पर किसी महान राष्ट्र का निर्माण हो सकता है। शारीरिक उन्नति के बिना कोई भी उन्नति आगे नहीं बढ़ सकती।

वृद्धावस्था में सर बनर्जी के सारे बाल पक गये थे, दाढ़ी सूत की तरह सफेद हो गई थी। फिर भी वे हजार काम छोड़कर कसरत नित्य करते थे। अपने व्यक्तित्व से जिस किसी को भी उनसे प्रभावति किया, उस पर यह छाप अवश्य ड़ाली कि शरीर को बलवान बनाने के लिये स्वास्थ्य के नियमों का बड़ी सावधानी से पालन करे।

नम्रता और सौजन्य

नारी पुनरुत्थान के पुनीत कर्म में लगे हुये महर्षि कर्वे ने अपने रिश्ते की एक बाल विधवा से शादी करली। उन दिनों रुढ़िवाद की जड़ों पर किसी ने चोट भी नहीं की थी और वे हिली भी नहीं थीं।

पंचों ने कर्वे को जाति बहिष्कृत कर दिया। गाँव के देव मन्दिर में जब उत्सव चल रहा था तो वे भी जा पहुँचे। बहिष्कृत को सामूहिक आयोजन में सम्मिलित क्यों होने दिया जाये? आवाजें उठीं और उन्हें वहाँ से हटा दिया गया। कर्वे ने कहा यह तो भगवान का द्वार है, जब दूर से चांडाल भी दर्शन कर लेता तो मुझे क्यों रोकते हो ?

इतनी नम्रता का भी तिरस्कार ही हुआ। महर्षि के तर्क उन पाषाण हृदयों को प्रभावति न कर सके। उन्हें प्रवेश न मिला। पर धैर्य और लगन का चमत्कार तो देखिये। उन्हीं महर्षि कर्वे के प्रयत्न से महाराष्ट्र आज नारी प्रगति में अग्रणी हैं उनकी संस्था में सहस्त्रों नारियां उच्च शिक्षा प्राप्त कर समाज सुधार के आन्दोलन को गतिवान बनाने में संलग्न हैं।

बिना क्लोरोफार्म सुँघाये आपरेशन

कम्पाउण्डर क्लोरोफार्म सुघानें लाया कि अंगूठे की खाल कड़ी है और वहाँ जो आपरेशन करना हैं वह बड़ा है, तनिक से हिल जाने से नस कट सकती है और खतरा पैदा हो सकता है। इसलिये बेहोश करके आपरेशन करने की ही डाक्टर की राय है।

रोगी ने कहा इसकी कुछ भी जरुरत नहीं हैं। डाक्टर बिना डरे अपना काम करें, हिलने के कारण कोई खतरा होने की नौबत न आवेगी। अन्त में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आपरेशन बिना सुंघाये ही हुआ। रोगी शान्त भाव से बैठा रहा, उसने उफ तक नही की। डाक्टर चकित थें कि इतने बड़े आपरेशन में भी रोगी कैसे इतना धैर्य रख सका।

इस धैर्यवान रोगी का नाम था-चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, जो आगे चल कर भारत के प्रथम गवर्नर जनरल बने।

भीष्म पितामह की शरशैय्या

शिखण्डी को आगे करके अर्जुन ने पितामह भीष्म के ऊपर वाणों की वर्षा करना शुरु कर दिया। उनका सारा शरीर छलनी की तरह वाणों से छिद गया और वे युद्ध भूमि में अपने रथ से गिर पड़े। उनका शरीर वाणों पर इस तरह अधर रह गया कि धरती पर टिका नहीं। उस समय सूर्य दक्षिणायण था। भीष्म उत्तरायण की स्थिति में अपना जीवन छोड़ना चाहते थे। एक लम्बे समय तक पितामह उसी स्थिति में पड़े रहे और उन्होंने संकल्प बल से प्राणों को बनाये रखा। कालान्तर में सूर्य उत्तरायण हुआ और उन्होंने प्राण त्यागे। इस बीच में पितामह शान्त गम्भीर मुद्रा में शरशैया पर पड़े रहे। वेदना, दुःख का तनिक भी हावभाव उन्होंने प्रकट नहीं किया। वें अन्त तक आने जाने वालों से मिलते जुलते रहे, उन्हें उपदेश भी देते रहे।

सन्त ज्ञानेश्वर की सहिष्णुता

सन्त ज्ञानेश्वर के पिता संन्यासी हो गये थे। काफी समय तक संन्यास जीवन बिताकर वे पुनः ग्रहस्थ बन गये और पारिवारिक जीवन बिताने लगे। इससे ज्ञानेश्वर जी सहित उनके भाइयों, बहिनों आदि को जाति वालों ने बहिष्कृत कर दिया और उनका तरह-तरह से अपमान विरोध करने लगे। ज्ञानेश्वर जी इसकी तनिक भी परवाह नहीं की और अपने भाई-बहिन के साथ ज्ञान चर्चा तीर्थाटन भगवत आराधना में लगे रहे। लोगों ने इन्हें कई कष्ट दिये तरह तरह से तंग किया लेकिन वे कभी भी उत्तेजित नहीं हुये और न दुःखी हुये। कालान्तर में लोगों ने उनकी साधुता और विद्वता से प्रभावति होकर उनसे क्षमा माँगी और उनके अनुयायी बनें। इस समय भी ज्ञानेश्वर को कोई भारी प्रसन्नता न थी। वे सहज रूप में अपना जीवन बिताते रहें, अपने मार्ग पर चलते रहे।

फाँसी के दिन भी कसरत करने वाले बिस्मिल

फाँसी की तिथि आ चुकी थी। अब मौत के फन्दे में झूलने का अवसर एकाध-घन्टे के पश्चात आने वाला था लेकिन रामप्रसाद बिस्मिल जेलखाने की कुठरिया में दण्ड बैठक की कसरत करने में लगे हुये थे। जेलर आया और पूछने लगा-"रामप्रसाद ! कुछ देर बाद तो तुम्हें फाँसी लगने वाली है। अब भी कसरत क्यों कर रहे हो?" "जब मौत अपने समय पर आयेगी तो मैं अपने कार्यक्रमों को असमय में ही क्यों छोड़ दूँ?" और वे कसरत करते रहे। नित्य नियमानुसार स्नानादि अपने नियमित कृत्य फाँसी के समय तक भली प्रकार करते रहे। मौत इस तरह आई जैसे वह भी उनके जीवनक्रम का एक सहज कार्यक्रम हो।

कवि गंग की निर्भयता

कवि गंग की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई थी। वे काफी लोकप्रिय भी थे। एक बार बादशाह अकबर ने उन्हें अपने पास बुलाया और कुछ कविता सुनाने के लिये कहा। लेकिन उनकी इच्छा न थी। कवि स्वभाव से ही स्वतंत्रता प्रिय और विद्रोही होता है। गंग को बादशाह का तानाशाही आदेश अच्छा न लगा और उन्होंने इन्कार कर दिया। इस पर अकबर ने उन्हें मदोन्मत्त हाथी से कुचलवा देने की आज्ञा दे दी। लेकिन कवि की स्वतंत्रता और स्वाभिमानता शक्ति बल से नहीं कुचली जा सकती। बड़ी मस्ती में कवि गंग ने उस हाथी को आता हुआ देख कर कहा-

"चाह भई परमेश्वर को कवि गंग को लेन गणेश पठायो।"

और वे उस हाथी द्वारा कुचलवा दिये गये लेकिन उन्हें मरने और जीने के विषय में तनिक भी सुख-दुःख नहीं था।

गेरुए वस्त्र और सेवा

महात्मा गाँधी के सावरमती आश्रम में एक प्रसिद्ध साधु आये और उन्होंने देश सेवा कार्य करने की इच्छा प्रकट की।

बापू ने उनकी भावना का आदर करते हुये कहा- इसके लिये यह आवश्यक है कि आप गेरुए कपड़े छोड़ कर सादा कपड़े पहनें। क्योंकि इस वेष के कारण लोग आप से सेवा लेने के बजाय उल्टी आपकी सेवा करने लगेंगे। सेवक का वेष तो स्वामी से घटिया ही होना चाहिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवेश अविवेक

देवशर्मा के घर पुत्र ने जन्म लिया। उसी दिन एक नकुली ने नेवले को जन्म दिया। दयावश ब्राह्मणी ने उस बच्चे को भी पाल लिया। दोनों बच्चों में बड़ा प्रेम था। एक दिन ब्राह्मणी पानी भरने चली गई। बच्चा सो रहा था। नेवला भी पास ही बैठा था। दैवयोग से उधर एक सर्प निकला और बच्चे को काटने लपका। नेवले ने यह देखा तो साँप के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। उसके मुँह में खून लग गया। वह इसी अवस्था में मालकिन को देखने कुएँ की ओर दौड़ा। द्वार पर ही ब्राह्मणी मिल गई। नेवले के मुँह में खून लगा देख कर उसने सोचा यह बच्चे को काट कर आया है। यह विचार आते ही उसने भरा हुआ घड़ा नेवले के ऊपर दे मारा, नेवला मर गया। घर जाकर ब्राह्मणी ने सारी बात समझी तो उसे बड़ा पश्चाताप हुआ। इसलिये बिना विचारे कोई काम नहीं करना चाहिये।

अपने से छोटों के साथ तुलना करो

खरगोशों ने अपनी जातीय सभा बुलाई और अपनी मुसीबतों पर विचार करना शुरू किया। कष्ट गिनायें गये-गर्मी, चोट का अभाव, जानवरों, शिकारियों का भय, सब एक से एक बढ़चढ़ कर थे। अपनी अशक्तता पर ब्रह्माजी को भी कोसा और अन्त में आत्म हत्या करने का सर्व सम्मति से निश्चय किया। सब एक तालाब की ओर चल पड़े। मेढ़कों ने देखा तो डर कर पानी में छिप गये। यह देखकर एक समझदार खरगोश आगे आया और बोला, अब हमें आत्महत्या करने की आवश्यकता नहीं है। जब हम से भी अधिक डरपोक प्राणी मौजूद हैं तो हम ही क्यों प्राणत्याग करें। अपनी छोटो से तुलना की तो खरगोशों को बड़ा सन्तोष मिला और वापिस अपने घरों को लौट गये।

बन्धन मुक्त संन्यासी

एक सन्त को एक राजा ने अपने राज महज में ले आया और वैसी ही सुख सुविधाओं में रहने की व्यवस्था कर दी। कुछ दिन बाद राजा ने पूछा- महात्मन् ! हम आप तो सब एक ही स्थिति में हो गये। साधु ने उस समय तो कुछ उत्तर न दिया पर दूसरे दिन प्रात: जब टहलने के समय कुछ मील दोनों चले गये तो साधु ने कहा- राजन् ! हम आप एक ही स्थिति में हैं, चलें अब कुछ वर्ष वन में तप करें, घर न लौटें।

राजा ने कहा- मेरा सारा काम धाम बिगड़ जायेगा। मैं तो वन नहीं जा सकता मुझे तो घर ही लौटना पड़ेगा। अब आप भले ही वन चले जाये।

साधु ने कहा- राजन् ! मनुष्यों का स्तर उनकी बाह्य स्थिति से नहीं वरन् आन्तरिक स्थिति से लगाया जाता है। वन में रह कर भी लोभ,मोह में फँसा हुआ व्यक्ति अनुरक्त है और अनेक सांसारिक कार्यों को लोकहित की दृष्टि से करने वाला विरक्त। आप मोह और स्वार्थ छोड़ कर राजकाज चलावें तो गृहस्थ में रह कर भी विरक्त हो सकते हैं। तब आप को लोभ नहीं कर्तव्य ही प्रधान दृष्टिगोचर होगा।

सन्त स्वभाव

एक सन्त नदी में स्नान कर रहे थे। उन्होंने देखा कि एक बिच्छु पानी में बहता हुआ आ रहा है। उन्होंने उसे बचाने की दृष्टि से अपने हाथ में उठाया। दुष्ट स्वभाव के कारण उसने महात्मा के हाथ में डंक मार दिया। वेदना के कारण हाथ हिलने से बिच्छु गिर पड़ा। सन्त ने फिर से उसे उठाया और पूर्ववत् अब भी बिच्छू ने डंक मार दिया। वह फिर हाथ से छूट गया। तीसरी बार डंक का वार सहते हुये सन्त ने उसे गिरने नहीं दिया और उसे बाहर निकाल दिया। किनारे पर खड़े व्यक्ति ने पूछा-"महाराज ! इस दुष्ट को तो पानी में मरने के लिये छोड़ देना चाहिये।" सन्त बोले-"भाई जिस तरह यह अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता फिर भला मैं अपनी भलाई क्यों छोड़ूँगा।" वह मनुष्य महात्मा जी के हृदय की विशालता, सहनशीलता, संतुलन को देख कर उनके चरणों में नत मस्तक हो गया।

गम्भीरता और नम्रता

बादल बहुत गड़गड़ाये। गुस्से में समुद्र को डाटने लगे कि हम तुम्हें पी जायेगे। तुम्हारा शोषण कर लेंगे। बेचारा समुद्र कुछ नहीं बोला और उल्टे शीतल हवा से बादलों की थकान दूर करने लगा। नमी पाकर बादल बरसने लगे और देखते ही देखते उसी समुद्र में विलीन हो गये। यह देखकर चन्द्रमा बोला सच है अपकारी का उपकार करने वाले व्यक्ति समुद्र की ही तरह गम्भीर होते हैं।

नम्रता और ऐंठ

नदी के उस पार अहंकार में अकड़ा शमी वृक्ष खड़ा था। इस पार बेंतों की बेल खड़ी थी। रात में जोर की बाढ़ आ गई। शमी अकड़ा रहा, पानी की तेज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धारा ने उसकी जड़ काट दी-पेड़ उखड़ कर गिर गया। बेतों की बेल पानी में झुक गई। प्रवाह आया और चला गया। बेल जैसे कल थी आज भी उसी तरह लहलहा रही थी।

ऊपर देख नीचे उतर

समुद्र में जोर से तूफान आया। नाव डगमगाने लगी। पाल को मजबूती से बाँधने के लिये मल्लाहों का एक बालक ऊपर चढ़ गया। पर नीचे गरजते, उफान भरते समुद्र को देखा तो मारे भय के चिल्लाने लगा। बुढ़े मल्लाह ने कड़क कर कहा, नीचे मत देख, आकाश की ओर देखता हुआ नीचे उतर आ। बालक ने वैसा ही किया और नीचे आ गया। अनुभवी बूढ़े ने बताया जो डरता है, वही मरता है। मुसीबत में सदैव धैर्य से काम लेना चाहिये।

संसार को देखने से पहले अपने आपको भी देखें

एक बार दस युवक मेला देखने के लिये गये। उन्होंने दिनभर साथ रह कर मेला देखा और शाम को घर चलने की तैयारी करने लगे। जब सब साथियों की गिनती की कई तो वे नौ ही निकले। एक एक करके सब ने गिना किन्तु संख्या नौ ही रह जाती। सभी बड़ी चिन्ता में पड़ गये कि हम में से एक साथी रह गया। वस्तुत: बात ऐसी थी कि नौ साथियों को गिनने वाला अपने आप को भूल जाता था। इसी बीच एक महात्मा उधर आ निकले। चिन्ताग्रस्त युवकों को देखकर उन्होंने उनसे पूछताछ की, इस पर उन्होंने सब को एक सीध में खड़ा करके गिना और उस की संख्या पूरी करके उन्हें सन्तोष दिया।

मनुष्य स्वयं को भूलकर दुनियाँ का हिसाब किताब करने बैठ जाता है तो दुनियाँ उसे अधूरी अपूर्ण जान पड़ती है। यदि वह अपने आप से गिनती शुरू करे तो संसार की अपूर्णता को न बखाने।

क: काल: कानि मित्राणि को देश: कौ व्ययागमौ।
कश्चाहं का च मे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुह: ।।

कौन सा काल है, कौन-कौन मित्र हैं, कौन देश है, आय और व्यय क्या हैं, मैं कौन हूँ और मेरी क्या शक्ति हैं, इन बातों को बार बार सोचना विचारना चाहिये।

संपत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम्।
आपत्सु च महाशैलशिलासंघातकर्कशम् ।।

महान पुरुषों का चित्त सम्पत्ति की दशा में कमल के समान कोमल होता हैं पर आपत्तियों के आने पर महान् पर्वत की शिलाओं के समूह के समान कठिन होता जाता है।

क्वचिद्रुष्ट: क्वचित्तुष्टो रुष्टस्तुष्ट: क्षणेक्षणे।
अव्यवस्थित चित्तस्य प्रसादोऽपि भयंकर: ।।

जो व्यक्ति कभी तो रुष्ट होता है और कभी प्रसन्न हो जाता है इस प्रकार क्षण क्षण में रुष्ट और प्रसन्न होता रहता है ऐसे चञ्चल चित्त वाले पुरुष की प्रसन्नता भी भयंकर होती है।

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ।।

अधिक भोजन करना आयु, पुण्य, आरोग्य और स्वर्ग का नाशक होता है और लोक में निन्दित भी होता है। अतएव उसे त्याग देना चाहिये।

नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्।
आपत्स्वपि न मुह्यन्ति नरा: पण्डितबुद्धय: ।।

चतुर मनुष्य जो दुर्लभ वस्तु है उसे चाहते नहीं हैं। जो नष्ट हो गई उसका सोच नहीं करते हैं और आपत्ति काल में मोह नहीं करते।

उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमये तथा ।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ।।

उदय होता हुआ सूर्य भी रक्त होता हैं और अस्त होते समय भी रक्त रहता है। उसी तरह बुद्धिमान सज्जनों का रूप भी विपत्ति काल में और सम्पत्ति में एक समान रहता है। विकृत नहीं होता।

इदमेव हि पाण्डित्यं चातुर्यमिदमेव हि।
इदमेव सुबुद्धित्वमायादल्पतरो व्यय: ।।

यही पाण्डित्य है, यही चातुरता है, यही बुद्धिमत्ता है कि मनुष्य अपनी आय से व्यय बहुत कम करे।

न हृष्यत्यात्मसम्माने नावमानेन तप्यते ।
गंगो ह्रद इवाक्षोभ्यो य: स पण्डित उच्यते।।

जो व्यक्ति आत्म सम्मान से फूलता नहीं और तिरस्कार पाकर दु:खी नहीं होता हैवह गंगा के आगाध जल की भाँति कभी क्षुब्ध नहीं होता है वह वास्तव में पण्डित है।

न कञ्चिदवमन्यते सर्वस्य शृणुयान्मतम्।
बालस्याप्यर्थवद्वाक्यमुपयुञ्जीत पण्डित: ।।

बुद्धिमान, मनुष्य को चाहिये। कि वह किसी का अपमान न करे, सबके मत को सुने और एक बालक की भी अच्छी बात को सुनकर उसका उपयोग करे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

धनिनाऽपि निरुन्मादा युवानोऽपि न चंचला:।
प्रभावोऽप्यप्रमत्तास्ते महामहिमशात्मिन: ।।

जो धनवान होने पर उन्मादी नहीं होते , युवा होते हुये भी चञ्चल नहीं होते, प्रभावशाली होते हुये भी प्रमत्त नहीं होते वे ही सज्जनलोग महा महिमाशाली कहलाते हैं।

कर्मणा मनसा वाचा नोपतापयते परम् ।
सर्वथा शुद्धभावो य: स याति त्रिदिव नर:।।

जो मनुष्य मन वचन तथा कर्म से भी कभी किसी को दु:ख न हीं देता है, सर्वथा शुद्ध विचार करने वाला हैं वह स्वर्गलोक को प्राप्त करता है।

साधो: प्रकोपितस्यापि मनो नायाति विक्रियाम् ।
नहि तापयितुं शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया:।।

चाहे जैसे क्रोध में क्यों न हो सज्जन का स्वभाव कभी डामाडोल न होगा जैसे (जलते हुय) तिनको की आँच से समुद्र का जल कौन गरम कर सकता है।

वाचो वेगं मनस: क्रोधवेगं विधित्सावेगमुदरोपस्थवेगम्।
एतान्वेगान्यो विषहे दुदीर्णाँस्तं मन्येऽहं ब्राह्मणंवैमुनिं च।।

जो अपनी वाणी के आवेश को, मन के आवेग को, हृदयोत्पन्न क्रोध के आवेग को, काम करने को इच्छा के वेग को, उदर के वेग को, और जननेन्द्रिय के वेग को, रोकने की शक्ति रखता है उसी को मैं सच्चा ब्राह्मण एवं मुनि मानता हूँ।

रहिमन अति नहिं कीजिये, गहि रहिये निज कानि।
सहजन अति फूलै तऊ, डार पात की हानि।।
अति ही सरल न हूजिए, देखौ ज्यों बनराय।
सीधे-सीधे काटिये, बाँके तरु बचि जायँ।।
तुलसी सो समरथ सुमति, सुकृती साधुसुजान।
जो विचार व्यवहरहि जग, खरच लाभ अनुमान ।।
जाँचि किये बिन और की, बात साँच मति थर्प।
होत अँधेरी रैन में परी जेवरी सर्प।।
झूलै सुख में झूलनों , दु:ख जो काटैं रोय।
तुलसी ते संसार में नहीं, विवेकी दोय।।

सुन्दर काण्ड के अन्तर्गत श्री रामचन्द्रजी विभीषण से कह रहे हैं-

समदरसी इच्छा कछु नाहीं।
हरष सोक भय नहिं मन माहीं।
अस सज्जन मम उर बस कैसें।
लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें।।
तुम्ह सारिखे सन्त प्रिय मोरें।
धरउँ देह नहिं आन निहोरें।।
सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम।।
सुन लंकेस सकल गुन तोरें।
तातें तुम अतिसय प्रिय मोरें।।

किष्किन्धा काण्ड के अन्तर्गत श्री रामचन्द्रजी अपने भ्राता लक्ष्मण से कह रहे हैं-

देखिअत चक्रबाक खग नाहीं।
कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं।
ऊसर बरसइ तृन नहिं जामा।
जमि हरिजन हियँ उपज न कामा।।
विविध जन्तु संकुल महि भ्राजा।
प्रजा बाढ़ जिमि पाई सुराजा।
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना।
जिमि इन्द्रिय गन उपजें ग्याना।।
कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहि।।
कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग।।
बरषा बिगत सरद रितु आई।
लछिमन देखहु परम सुहाई।।
फूलें कास सकल महि छाई।
जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई।।
उदित अगस्त पन्थ जल सोषा।
जिमि लोभहि सोषइ सन्तोषा।
सरिता सर निर्मल जल सोहा।
सन्त हृदय जस गत मद मोहा।
रस रस सूख सरित सर पानी।
ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी।।
जानि सरद रितु खंञ्जन पाए।
पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए।।
पंक न रेनू सोह असि धरनी।
नीति निपुन नृप कै जसि करनी।।

अरण्यकाण्ड के अन्तर्गत सूर्पनखा रावण के समीप जाकर उससे कह रही है-

राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा।
हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा।।
विद्या बिनु बिबेक उपजाएँ।
श्रुत फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संग ते जती कुमन्त्र ते राजा।
मान ते ग्यान पान तें लाजा।।
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी।
नासहि बेगि नीति अस सुनी।।
रिपु रुज पावक पाप, प्रभु अहि गनिअ न छोट करि।
अस कहि विविध बिलाप, करि लागी रोदन करन ।।

किष्किन्धा काण्ड के अन्तर्गत श्री रामचन्द्रजी अपने भाई से कह रहे हैं-

दामिनि दमक रह न घन माहीं।
खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं।।
बरषहिं जलद भूमि निअराएँ।
जथा नवहिं बुध विद्या पाएँ।।
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें।
खल के बचन सन्त सह जैसें।।
छुद्र नदी भरि चलीं तोराई।
जस थोरेहुँ धन खल इतराई।।

।। ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।।

बारहवाँ- प्रवचन

ज्ञान और कर्म का समन्वय

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्री विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम्।।

-अध्याय १८ श्लोक ७८

जहाँ योगश्वर कृष्ण और जहाँ धनुर्धारी अर्जुन हों, लक्ष्मी,विजय, वृद्धि और अटल नीति है ऐसा मेरा मत है।

कृष्ण को ज्ञान का और अर्जुन को कर्म का प्रतीक माना गया है।भगवान ने गीता का ज्ञान देकर उद्बोधन किया, अर्जुन ने गाण्डीव उठाकर युद्ध आरम्भ कर दिया। इस प्रकार दोनों का सम्मिश्रण होने पर महाभारत में धर्म की विजय सम्भव हो सकी।

केवल ज्ञान पंगु के समान है और केवल कर्म अंधे के समान। अन्धा और पंगु मिलकर गहरी नदी पार कर सके थे, यह कथा प्रसिद्ध है। यदि अन्धे ने पंगे को अपने कन्धे पर न बिठाया होता और पंगे ने अन्धे का मार्ग दर्शन न किया होता तो दोनों ही निकम्मे बने नदी के किनारे पर बैठे रहते और उन्हें नदी पार कर लेने के अभीष्ट उद्देश्य में सफलता न मिली होती।

धर्म और अध्यात्म की उच्च दार्शनिक विचार-धारा बहुत ही श्रेष्ठ और प्रशंसनीय है, उसका जितना गुण गाया जाये और महत्व बताया जाये उतना ही कम है। पर साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि केवल उस तथा कथित ज्ञान तक सीमित रह जाने से भी काम नहीं चल सकता। यदि गीता, रामायण, भागवत आदि का पाठ करते रहा जाय, कथा प्रवचन सुनते रहा जाय तो उससे समझादारी तो बढ़ती है,पर इतने मात्र से कोई कहने लायक प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। कथा सुनने या अमुक पुस्तक का पाठ करने मात्र से जो लोग आत्मिक प्रगति की आशा लगाए बैठे हैं वे भ्रम में हैं। ज्ञान की सार्थकता तभी है जब वह कर्म रूप में परिणित हो सके। यदि वह सुनने समझने तक ही सीमित रह गया तो उस ज्ञान को नपुंसक, निष्प्राण कहा जायेगा। जैसे मिट्टी की बनी खिलौना गौ का दूध नहीं दुहा जा सकता। उसी प्रकार निष्प्राण ज्ञान से जीवन विकास की कोई समस्या हल नहीं हो सकती।

इसी प्रकार अविवेकपूर्वक, असंगत और अस्तव्यस्त काम करने से धमा चौकड़ी मच सकती है। हा-हा, हू-हू हो सकती है पर उससे भी कोई प्रयोजन पूरा नहीं हो सकता। बालू में से तेल निकालने की क्रिया से क्या परिणाम निकलेगा ? पानी को मथने से घी किसने पाया है ? बेचारे कोल्हू का बैल दिन भर चलते रहने पर भी कितनी यात्रा पूरी कर पाता है ? नाव को रस्सों से बाँध रखा जाये और फिर डाँड़ चलाते रहें तो वह परिश्रम किस काम आवेगा ? किसी अच्छी कार्य-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पद्धति के पीछे विवेकशीलता का समुचित संमिश्रण आवश्यक है।

कुविचार जब कुकर्मों का रूप धारण कर लेते हैं तभी दुष्परिणाम सामने आता है। जो कार्य रूप में परिणित न हो सके वैसे विचार आमतौर से लोगों के मनों में उठते रहते हैं पर उनसे मनोभूमि को गन्दा करने जैसी थोड़ी ही हानि होती है। उसी प्रकार उत्तम विचार मस्तिष्क में बने रहें तो उनसे भी कुछ तो अच्छा ही है पर कोई कहने लायक प्रतिफल तभी देखने को मिलेगा जब वे कार्यरूप में विकसित होने लगें। जीवन लक्ष्य की प्राप्ति के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि जो उत्तम ज्ञान सुना समझा गया हो उसे कार्य रूप में विकसित करने की तैयारी की जाये। उथले मन से सुना समझा ज्ञान मनोरंजन मात्र रह सकता है, पर जिसे भावनापूर्वक हृदयंगम किया गया होगा। वह कार्य रूप में परिणित हुये बिना न रह सकेगा। अध्यात्म ज्ञान को मनोरंजन के लिये, या हल्के मन से सुनने-समझने पर वह लाभ प्राप्त न हो सकेगा। जिसके लिये कि उस महान विचारधारा का निर्माण किया गया है।

गीता के प्रस्तुत बारह प्रवचनों में जीवन के प्राय: सभी पहलुओं पर आवश्यक प्रकाश डाला गया है और जिन्दगी को कैसे जिया जाय इसका अभीष्ट मार्गदर्शन भली प्रकार हो चुका है। सुर दुर्लभ मानव जन्म का अनुपम अवसर हैं चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के बाद, यदि एक योनि में एक वर्ष रहने का औसत मान लिया जाये तो ८४ लाख वर्ष बाद- यह अवसर मिलता है। उस अलभ्य सुअवसर को यदि कौड़ी मोल गँवा दिया जाये। वासनाओं और तृष्णाओं की मूर्खता में उसे बर्बाद कर दिया जाये तो इसे एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति ही कहा जायेगा। जिन्दगी के दिन तो किसी प्रकार हँसते रोते काटे जा सकते हैं पर जब शरीर छोड़ना पड़ता है तब जीव को अपनी भूलों के लिये कितना चीत्कार पूर्ण पश्चाताप करना पड़ता है? इसकी ठीक कल्पना तक कर सकना आज हमारे मोह ग्रस्त मस्तिष्क के लिये संभव नहीं हो पा रहा है। गीता का उद्बोधन इसलिये है कि समय रहते हम चेते और ईश्वर की इस अनन्य अनुकम्पा-मानव जीवन की उपलब्धि का श्रेष्ठतम् सदुपयोग करने के लिये कटिबद्ध हों।

ज्ञान और कर्म का सम्मिलित स्वरूप ही अन्त:करण में संस्कार का स्वरूप धारण करता है और उन परिपक्व संस्कारों के आधार पर ही आत्मिक निर्भरता रहती है। श्मशान वैराग्य तो आवेश रूप में यदाकदा उदय होता रहता है। उसका लाभ इतना ही है कि तत्काल उस आवेश में कोई सत्कर्म बन जाय, कोई शुभारम्भ चल पड़े तो अच्छा है अन्यथा उस आवेश के ठण्डा होते ही वही पुराना ढर्रा फिर लुढ़कने लगता है। इन आवेशों के ज्वार भाटे संस्कारवान परिपक्व मनोभूमि का निर्माण नहीं कर सकते और उसके बिना चिरस्थायी आत्मिक प्रगति की सम्भावना कहाँ रहती है? अस्तु श्रेयार्थी के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि वह उपलब्ध सद्ज्ञान को व्यवहारिक जीवन में उतारे उन्हें सत्कर्मों के रूप में परिणित करे। ईश्वर भक्ति का यही स्वरूप है। अर्जुन को भगवान ने कर्मरत किया था। वे चाहते तो उसे पूजा पाठ तक सीमित रहने वाला तथाकथित 'भागवत' बन जाने की बात भी सुझा सकते थे। जैसे कि वह संघर्ष में पड़ने से इन्कार कर रहा था। उसकी इच्छा का समर्थन कर सकते थे, पर उन्होंने वैसा किया नहीं। क्योंकि वे जानते थे कि ज्ञान को केवल विचारते पढ़ते-रहने, सुनते-रहने ,कल्पना क्षेत्र में उड़ाते रहने मात्र से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। इतने मात्र से ज्ञान का संस्कार रूप में परिणत होना सम्भव नहीं और इसके बिना आत्म विकास का तारतम्य भी कहाँ बैठता है ? कल्पना की उड़ानें लक्ष्य तक पहुँचने में कहाँ समर्थ होती हैं?

सद्ज्ञान की सार्थकता तभी है जब सत्कर्मों का रूप धारण करे। ज्ञान उपलब्ध हुआ या नहीं, इसकी परख इसी प्रकार की जा सकती है कि उसे उतनी गहराई तक हृदयंगम किया गया या नहीं कि वे वह मान्यताऐं व्यवहार में उतर सकें। यों जानकारी के रूप में तो न जाने कितनी पुस्तके, पत्रिकाऐं, हम पढ़ते रहते हैं। मनोरंजन एवं समयक्षेप करके उन्हें एक कोने में रख देते हैं। उनसे ज्ञानवान बनने का लाभ किसे मिलता है ? ज्ञान की दृष्टि से जो कुछ जाना गया है वह इतना प्रबल भी होना चाहिये कि उसे कार्यान्वित किये बिना रहा ही न जा सके। जीवन संघर्ष में पग-पग पर चलते हुये जो बाधाऐं आती हैं उनसे लड़ने के लिये जो काम आ सके, हथियारों का काम दे सके, उसी को सच्चा ज्ञान मानना चाहिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भगवान का अवतार उनकी प्रतिज्ञानुसार तब होता है जब परिस्थितियाँ विषम-विषमतर हो जाती है और उनको पलट डालने के लिये किसी प्रबल व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है। समय का परिवर्तन जन-सहयोग के बिना सम्भव नहीं। अवतार की प्रेरणा से जन मानव में उथल पुथल मचाती है और अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिये अगणित व्यक्तित्व सहयोग देने को अग्रसर होने लगते हैं। युग पलटने की आवश्यकता को पूरा करने के लिये भगवान ने महाभारत रचा था और उसमें जो कृष्ण के सच्चे भक्त थे। उन्होंने आगे बढ़ कर भाग लिया था। अर्जुन संघर्ष से बच कर पूजा पाठ जैसा सरल अवलम्बन पकड़ कर काम चलाना चाहते थे। पर भगवान ने उन्हें वैसा करने नहीं दिया। क्योंकि जब मुहल्ले में अग्निकाण्ड हो रहा हो घर छप्पर जलते चले आ रहे हों। तब कौन ऐसा होगा जो उसे बुझाने की अपेक्षा एकान्त में जाकर आसन प्राणायाम की बात सोचें। कोई समय ऐसे भी होते हैं जब मनुष्य को कठिन कर्तव्यों में संलग्न होना योग समाधि से भी अधिक श्रेयस्कर होता है। जिन दिनों गीता कही गई थी, उन दिनों इसी प्रकार की परिस्थिति थी। भगवान के सभी भक्तों को युग परिवर्तन का उद्देश्य पूरा करने के लिये किसी न किसी रूप में महाभारत में संलग्न होना पड़ा था।

आज ठीक वैसी ही परिस्थितियाँ हैं। आज गीता प्रवचन की बिल्कुल वैसी ही आवश्यकता हैं जैसी उन दिनों थी। मोहग्रस्त अर्जुन की स्थिति में भारतीय समाज अगणित कुण्ठाओं से ग्रस्त निष्प्राण जैसा बना पड़ा है। उसमें नवीन शक्ति अनुप्रणित करने की आवश्यकता है। गीता में इस प्रकार की क्षमता परिपूर्ण रूप से विद्यमान है। गीता को हाथ में लेकर क्रान्तिकारी आन्दोलन के कार्यकर्ता फाँसी के तख्तों पर चढ़ते थे। गीता का रहस्य का उद्घाटन कर लोकमान्य तिलक ने भारतीय राष्ट्र को अपना जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त करने की प्रेरणा दी थी। गीता के अनासक्त योग की व्याख्या करते हुये महात्मा गाँधी ने अपना सत्याग्रह रूपी सुदर्शन चक्र चलाया था। राजनैतिक क्रान्ति में-स्वतंत्रता संग्राम में गीता जो भूमिका अदा कर रही थी। उससे अंग्रेज घबरा गये और एक बार तो गीता को पकड़ने के लिये वारंट तक जारी कर दिये गये थे। वह भूल तब सुधरी जब उन्हें मालूम हुआ कि गीता कोई धर्म ग्रन्थ नहीं वरन् एक धर्म पुस्तक है। योगी अरविन्द की राष्ट्र उत्पादक तपश्चर्या के पीछे गीता की प्रेरणा विद्यमान थी। गीता के प्रवचनकर्ता बिनोवा भावे, वामन की अवतार की तरह भूमि माँगते हुये सर्वोदय का प्रकाश उत्पन्न कर रहे थे। युग परिवर्तन की इस संधिवेला में हजारों लाखों व्यक्ति मिलकर जो कार्य नहीं कर सकते वह अकेली गीता कर रही है। नये समाज का निर्माण इसी गीता भगवती के नेतृत्व में किया जा रहा है इसे हर कोई खुली आँखों से देख सकता है।

युग निर्माण आन्दोलन की पृष्ठ भूमि में जिन शत-सूत्री कार्यक्रमों का विधान हैं। उनका प्रयोजन एक ही हैं कि अध्यात्म ज्ञान को कोई प्रकाश जिन तक पहुँचे वे अपनी परिस्थितियों के अनुसार उसे कार्य रूप में परिणत करना आरम्भ कर दें। व्यक्तियों की परिस्थितियाँ और योग्यताएं विभिन्न प्रकार की होती है। हर व्यक्ति एक से काम नहीं कर सकता इसलिये इस योजना में इसकी पूरी-पूरी गुंजायश है कि न्यूनतम प्रतिभा एवं हीनतम परिस्थितियों का व्यक्ति भी अपने सद्भाव को सत्कार्य में परिणत करते हुये युग निर्माण की भूमिका में किसी न किसी प्रकार भाग ले सके। महाभारत युद्ध में शस्त्र चलाना ही एक मात्र काम न था। सेना के लिये भोजन बनाने से लेकर घायलों की चिकित्सा करने तक, घोड़ों को घास डालने से लेकर, दैनिक गन्दगी साफ करने तक, अगणित कार्य थे और विभिन्न परिस्थितियों के सैनिक अपने-अपने ढंग से उन कार्यों को करते हुये योद्धाओं का कर्तव्य ही पालन कर रहे थे। वर्तमान महाभारत में भी हममें से प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ कार्य कर सके उस दृष्टि से युग निर्माण योजना इस प्रकार बनाई गई है। जिसमें गिलहरी से लेकर गिद्ध, वानरों तक के लिये समुचित कार्यक्रम मौजूद है।

असंयम और अनिमितताओं के कारण हमारा सार्वजनिक स्वास्थ्य बुरी तरह गिरता जा रहा है। व्यक्तिवादी स्वार्थ और संकीर्णताओं से भरी लालची दृष्टि हमारे राष्ट्रीय चरित्र में घुन की तरह लगी हुई है। जनहित के कार्यों में किसी को रुचि नहीं । चोर से लेकर सन्त तक हर कोई अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की सिद्ध में ही सब कुछ मान कर उसी में निमग्न हो रहा है। आलस्य से शारीरिक क्षमता और प्रमाद से मानसिक योग्यताओं का सत्यनाश होता रहता है। यदि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हम आलस्य और प्रमाद के दुर्गुणों को छोड़कर शारीरिक और मानसिक शक्ति का रचनात्मक कार्यों में तत्परता पूर्वक प्रयोग करने लगें तो हमारी प्रगति एवं समृद्धि का पाराबार न रहे।

हमारे दैनिक अभ्यास में सफाई, मधुरता, शिष्टाचार, सहिष्णुा, सज्जनता, नागरिकता जैसे मनोवांछित गुणों की कितनी कमी हो रही है यह किसी से छिपा नहीं। विलासिता, आडम्बर, फैशन परस्ती, व्यसन नशेबाजी आदि भौंड़े कार्यों में कितना धन और समय बर्बाद होता है। उसे कौन नहीं जानता। नैतिक मर्यादाओं के उल्लंघन करने की उच्छृंखला एवं अपराध करने की प्रवृत्ति बढ़ते-बढ़ते सार्वजनिक जीवन के लिये संकट का रूप धारण कर रही है। चोरी, डकैती, ठगी, रिश्वत, जुआं आदि अर्थप्रयोजनों के लिये होने वाले दुष्कर्मों की तो बाढ़ सी ही आ रही है। कामुकता की अभिवृद्धि गंदे साहित्य, गंदे चित्र गंदे गीत और मनोरंजन के रूप में देखी जा सकती है। पत्नीव्रत धर्म और पतिव्रत धर्म की कड़ियाँ जिस प्रकार शिथिल होती जा रही है। यह हमारे भविष्य के अन्धकारमय बनाने के लिये कम भयावह नहीं है

सामाजिक कुरीतियों का वीभत्स ताण्डव नृत्य अलग ही चल रहा है। बाल विवाह, अनमेल विवाह, कन्या विक्रय, वर विक्रय, मृत्यु भोज, पशु बलि, भूत पलीत, ऊँच-नीच, स्त्रियों पर अवांछनीय प्रतिबन्ध जैसी कुरीतियों के कारण हमारा समाजिक ढाँचा ही चरमराने लगा है और उसके टूट कर गिर जाने का खतरा उत्पन्न हो गया। धर्म के नाम पर साधु ब्राह्मणों ने लूट खसोट मचा रखी हैं और भिक्षुओं की बाढ़ जिस आँधी-तूफान की तरह बढ़ी हैं उसका भार वहन करने में जनता के कंधे टूटने लगे हैं। जन साधारण में उन सद्भावों की उत्कृष्टा एवं आदर्शवादिता की दिन-दिन कमी होती चली जा रही हैं जिनके कारण मनुष्य को महापुरुष बनने का और समाज को गौरवान्वित होने अवसर मिलता है।

अपनी विपन्नताओं से हम सब भली प्रकार परिचित हैं। इनके दुष्परिणाम जन-साधारण को दुःख दारिद्र द्वारा वैयक्तिक रूप में तथा अगणित समस्याओं के रूप में सारे समाज को भुगतना पड़ रहा हैं स्थिति ऐसी हैं कि जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती । भगवान कृष्ण के सामने भी ऐसी ही विषम परिस्थितियाँ थीं। उन्होंने युद्ध के रूप में महाभारत खड़ा किया था। आज की परिस्थितियों में मनुष्य के बीच शस्त्रों द्वारा होने वाले युद्ध की आवश्यकता नहीं, पर यह अनिवार्य हो गया है। कि वर्तमान विषमताओं और विकृतियाँ से जूझा जाये और इन्हें परास्त कर उनके स्थान पर सतयुगी मान्यताओं एवं परिस्थितियों की प्रतिष्ठापना की जाये। युग निर्माण योजना के शत सूत्री कार्यक्रम इसी भावना को ध्यान में रखकर बनाये गये हैं।

धर्म राज्य की-रामराज्य की स्थापना हमारा उद्देश्य है। इसके लिये धर्म और असुरता से जूझना ही पड़ेगा। गीता यही सिखाती हैं । समय की यही पुकार हैं। अर्जुन को जो करना पड़ा था। वही हमें भी करना होगा। राजनैतिक क्रान्ति सम्पन्न हो चुकी हमें, बौद्धिक एवं नैतिक क्रान्ति करनी है। उसके बिना हमारा नैतिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान हो नहीं सकेगा। उज्जवल भविष्य का निर्माण तो स्वयं ही करना होगा और उसके लिये रचानात्मक संघर्ष में उसी त्याग, बलिदान को भावना से संलग्न होना होगा जिसमें कि युद्ध में संलग्न होने वाले अपने तन मन धन का मोह त्याग कर संलग्न होते है।

गीता प्रवचन का लाभ अर्जुन ने उठाया था। उसने भगवान द्वारा दिये गये ज्ञान को अपने कार्य रूप में परिणत करना तत्काल आरम्भ कर दिया था। उसने विश्वासपूर्वक कहा था-

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ।।

"हे अच्युत ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है और स्मृति भी मैंने प्राप्त कर ली है। अब मैं सन्देहों से मुक्त होकर स्थित हूँ। अब मैं आपका कहना करूँगा।"

यदि हमने भी गीता का प्रवचन सत्य मन से सुना, तो भगवान के वचनों को कार्य रूप में परिणत करने के लिये कटिबद्ध होना चाहिये। आत्म निर्माण के लिये, परिवार निर्माण के लिये और सामाज निर्माण के लिये अपनी क्षमता का अधिकाधिक अंश प्रयुक्त करना चाहिये। स्वस्थ शरीर, स्वच्छ मन एवं सभ्य समाज की रचना के लिये कुछ करने का निश्चय करना चाहिये। भगवान ने गीता का ज्ञान अर्जुन को कर्म में परिणित कराने के लिये दिया था। अर्जुन ने उसे उसी रूप में शिरोधार्य भी किया था। अब हमारी बारी है कि गीता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सप्ताह में सुने गये प्रवचनों को अपने जीवन में उतारने की योजना बनावें और वर्तमान युग के अत्यन्त महत्वपूर्ण महाभारत युग निर्माण में अपना समुचित योगदान देते हुये मानव जीवन को सार्थक बनावें।

ज्ञान और कर्म के समन्वय की आवश्यकता

महाभारत का विशाल ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा जाना था। महर्षि व्यास उसके लिये सोच सकते थे, उसकी रूपरेखा बना सकते थे लेकिन लेखन कार्य के लिये एक कुशल लेखक की आवश्यकता हुई और इस कार्य के लिये गणेश जी को नियुक्त किया गया। व्यास जी बोलते जाते थे। इस तरह दोनों के प्रयत्नों से महाभारत लिखा गया।

महर्षि बाल्मीकि के संरक्षण में रह कर लव-कुश ने वह सामर्थ्य प्राप्त की कि वीर हनुमान, राम, लक्ष्मण को भी उनसे पराजित होना पड़ा। बाल्मीक के ज्ञान और अपने क्षत्रिय संस्कारों के समन्वय से ही बालक लवकुश को यह विजय सम्भव हुई थी।

हिन्दू मान्यताओं के अनुसार श्रीराम ब्रह्म के अवतार थे और लक्ष्मण शेष नाग के शक्ति अवतार। इस तरह असुरों के नाश करने का महान कार्यक्रम ब्रह्म और शक्ति के सम्मिलित प्रयत्नों से सम्भव हो सका।

अर्जुन ने निशस्त्र श्रीकृष्ण को अपने लिये चुना और दुर्योधन ने श्री कृष्ण की सेना को। लेकिन अपार सेना बल होते हुये भी कौरवों को पराजय का सामना करना पड़ा। उधर श्रीकृष्ण के ज्ञान बल का सहारा पाकर अर्जुन ने अपने रण कौशल और शक्ति के बल पर महाभारत में विजय प्राप्त की।

चाणक्य एक दूरदर्शी विचारक राजनीतिज्ञ और विद्वान व्यक्ति था। नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र का प्रकाण्ड विद्वान। चन्द्रगुप्त एक कुशल प्रशासक और सैनिक था। दोनों के सम्मिलित प्रयासों के बल पर ही विशाल मौर्य साम्राज्य की नींव पड़ी।

राजा भोज की सभा में नवरत्न (नौ विद्वान) प्रसिद्ध थे। जिनकी सलाह के अनुसार वे राज्य कार्य चलाते थे। इन नौ रत्नों में कालिदास प्रमुख थे। राजा भोज के कुशल प्रशासन के आधार में ब्राह्म और क्षात्र शक्तियों का संगम ही मुख्य था।

भारत में हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान का श्री गणेश शंकराचार्य ने किया। बौद्धिक, दार्शनिक और ज्ञान बल के आधार पर शंकाराचार्य ने कार्य किया। लेकिन सुधन्वा की राज शक्ति का बल पाकर इस आन्दोलन ने जोर पकड़ा शंकराचार्य का ज्ञान और सुधन्वा का सक्रिय राजकीय सहयोग हिन्दू धर्म के प्रसार के मूल आधार रहे हैं।

देश मुगलों के अत्याचारों से पीड़ित था। हिन्दू धर्म और संस्कृति को खुले आम नष्ट किया जा रहा था। स्वामी रामदास ने इसे देखा तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ और इस सम्बन्ध में गहन चिन्तन मनन के द्वारा कार्यक्रम निर्धारित किया। पर्याप्त ज्ञान बल के द्वारा एक व्यवस्थित योजना बनाई जिसे शिवाजी ने कार्यान्वित किया। शिवाजी शस्त्र बल युद्ध कौशल और साहस के साथ गुलामी के अन्त करने के लिये लड़ते रहे। इस तरह रामदास और शिवाजी के सहयोग से एक महान् कार्य हुआ।

दण्डों स्वामी विरजानन्द आँखों से अन्धे थे। उन्होंने सारा जीवन ज्ञान विज्ञान के शोध में लगा दिया। उन्होंने उस समय की परिस्थितियों धर्म, दर्शन, ज्ञान के क्षेत्र में मौलिक तथ्य निश्चित किए जिन्हें समाज में प्रसारित करने के लिये एक कर्मठ व्यक्ति की आवश्यकता थी। महर्षि दयानन्द ने अपने गुरु के इस कार्य को पूरा किया। इस तरह विरजानन्द और दयानन्द के रूप में ज्ञान और कर्म सम्मिलित शक्ति से एक युगान्तरकारी कार्य पूर्ण हुआ। वर्तमान भारत का शुभारम्भ उन्हीं के प्रयत्नों से हुआ था।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने लम्बी उपासना, आराधना के पश्चात् मानव कल्याण जनसेवा के लिये जो विचार किया, उन्हें कार्यान्वित किया, स्वामी विवेकानन्द ने देश विदेशों में रामकृष्ण मिशन का जो सेवा कार्य चल रहा हैं उसके लिये ज्ञान, दर्शन, आत्मिक शक्ति को जुटाने वाले रामकृष्ण परमहंस थे तो उन्हें कार्य रूप में परिणित करने वाले स्वामी विवेकानन्द।

महात्मा गाँधी ने अपने ज्ञान, विवेक और आत्मशक्ति के बल पर भारत को आजादी के लिये तैयार किया, लेकिन पण्डित जवाहरलाल नेहरू, पटेल आदि कर्मवीरों ने उसे अपने कठोर श्रम और कर्तव्य निष्ठा से व्यवहारिक रूप दिया। गाँधी जी ने स्वतंत्र भारत का जो कल्पना दर्शन दिया जवाहरलालजी ने उसे कर्म की खराद में ढाल कर साकार किया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कार्लमार्क्स ने सांमयवाद का एक परिपूर्ण दर्शन और विचार किया। जिसके लिये मार्क्स जीवन भर संघर्षों कठिनाइयों परेशानियों में भी लगे रहें। साम्यवाद के उस परिपूर्ण और व्यवहारिक सिद्धान्तों को कार्य रूप में परिणित किया लेनिन ने। इस तरह मार्क्स और लेनिन साम्यवाद के प्रवर्तक माने जाते हैं।

जीवन का महान् ध्येय

याज्ञवल्क्य संन्यास लेने की दृष्टि से अपनी दोनों स्त्रियों को बुलाकर घर का सामान धन बराबर बाँटने लगे। इसी बीच मैत्रैयी ने पूछा- "भगवन ! आप इतना भरा पूरा सुख सुविधा सम्पन्न घर क्यों त्याग कर रहे हैं? याज्ञवल्क्य बोले-" मैत्रैयी मैंने जीवन के तीन आश्रम भली प्रकार बिता दिये। अब शेष जीवन मैं आत्मसाधना और जनसेवा के महत्वपूर्ण कार्यों में लगाऊँगा। हे मैत्रैयी- "संसार के सभी कार्य व्यापारों के उपरान्त मनुष्य को जीवन के इन पारमार्थिक कार्यक्रमों को नहीं भूलना चाहिये। ये सबसे महत्वपूर्ण है।" याज्ञवल्क्य की बातें सुनकर मैत्रैयी ने कहा-"भगवन् ! जिस महान् ध्येय के लिये आप इन सुख साधनों को महत्वपूर्ण नहीं समझते उन्हें मैं लेकर क्या करूँगी ? मैं भी आपके साथ रहकर इनके लिये प्रयत्न करूँगी।" और मैत्रेयी अपने पति के साथ रहकर आत्म साधना के कार्यक्रमों में लग गई।

कर्म-साधना से ज्ञानप्राप्ति

हाथ में समिधाऐं लेकर शिष्य आचार्य के पास ज्ञान प्राप्त करने के लिये गया। आचार्य ने उसका शिष्यत्व स्वीकार किया और उसको सौ गायें सौंप दी गईं। उनकी संख्या जब पाँच सौ हो जाये तब ज्ञान की दीक्षा देने का समय तय हुआ। एक लम्बे समय का कार्यक्रम शिष्य को सौंप दिया गया। शिष्य बड़े सवेरे उठता, गायों की देखभाल करता उन्हें जंगल में ले जाता। दिनभर वहाँ चराता। शाम को आकर गुरु की सेवा में उपस्थित होता। समय पूरा होने को आया। योजनानुसार गायों की संख्या पूरी हुई। एक दिनआचार्य ने शिष्य से कहा-" वत्स तुम्हारे चेहरे पर अपूर्व तेज दिखाई दे रहा है, तुम्हें तो ज्ञान प्राप्त हुआ मालूम पड़ता है।" ज्ञान तो गुरु से ही प्राप्त होता है। वह तो आपकी कृपा से मिलेगा ही।" शिष्य ने कहा। गुरु ने पूछा-वत्स तुम्हारे चेहरे पर ज्ञान का तेज अभी दिखाई दे रहा है, वह तुम्हें किसने दिया? इस पर शिष्य ने अपने गौ सेवा साधना काल के अनुभव सुनाये जिसके अनुसार उसे अग्नि, बैल पक्षियों से महत्वपूर्ण ज्ञान मिला। शिष्य के अनुभवों को सुनकर आचार्य बड़े प्रसन्न हुये और उसे ज्ञान की दीक्षा दी। धरती के खुले वातावरण में, सक्रिय जीवन की सेवामयी साधना स्वत: ज्ञान के जिस पाठ को सिखा देती हैं वस्तुत: वही व्यवहारवादी ज्ञान ही सार्थक होता है। केवल पुस्तकीय ज्ञान से ही काम नहीं चल सकता।

शुभकर्म में विलम्ब नहीं

एक बार एक ब्राह्मण ने युधिष्ठिर के पास जाकर दान की याचना की। युधिष्ठिर राज्य कार्यों में व्यस्त थे। इसलिये ब्राह्मण को दूसरे दिन आने को कह दिया। भीमसेन को यह बात अच्छी न लगी। उन्होंने सेवकों को बुलाकर सभी मंगलवाद्य बजाने की आज्ञा दी और स्वयं भी दुन्दुभि बजाने लगे। वाद्यों की आवाज सुनकर युधिष्ठिर दौड़े आए, उन्होंने भीम से इसका कारण पूछा। भीमसेन ने कहा- "महाराज ! आपने काल जीत लिया है इस खुशी में यह कर रहे हैं। कल ब्राह्मण को बुलाने का तात्पर्य यही है कि कल तक का समय आप के वश में है।" युधिष्ठिर ने अभिप्राय समझा और कहने लगे-सचमुच भीम ! अच्छे कार्यों में कभी देर नहीं करनी चाहिये।

त्रिशूल से पेट फाड़ा

हिरणाक्ष्य का बध हो गया पर वाराह भगवान् स्वर्ग न लौटे। चिन्तित देवताओं ने कारण जानने के लिये भगवान शंकर को भेजा। वाराह भगवान क्रीड़ा विनोद में लगे थे, जाने को तैयार न हुये। तब शंकर भगवान ने त्रिशूल से उनका पेट फाड़ दिया। भगवान जब स्वर्ग पहुँचे तो देवताओं ने देरी का कारण पूछा। भगवान शंकर बोले- भौतिक देह के सुखों में आसक्ति हो जाने के कारण भगवान यहाँ को तैयार न थे।जीवात्मा सुखों में आसक्ति के कारण ही अपना जीवन लक्ष्य भूल जाता है। इसलिये ज्ञानरूपी त्रिशूल द्वारा उसका मोह उदर विदारना पड़ता है। तब कहीं जीव कल्याण पथ पर चलने को अग्रसर होता है।

कोई काम छोटा नहीं

युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ शुरू होने को था। सब के लिये अपने-अपने काम बाँटे जा रहे थे। श्रीकृष्ण ने भी अपने लिये काम माँगा, लेकिन पाण्डवों ने कहा-"भगवान् ! आपके लिये तो हमारे पास कोई

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

काम नहीं है।" बहुत ज्यादा जोर देने पर उनसे कह दिया गया कि वे अपनी पंसद का काम स्वयं ढूँढ लें। सभी ने देखा कि श्रीकृष्ण यज्ञ में आदि से अन्त तक अतिथियों के चरण धोने, झूँठी पत्तलें उठाने तथा सफाई रखने का काम स्वयं करते रहे।

भगवान ने कहा- यों कोई काम छोटा नहीं। पर बड़ों को छोटे काम भी करने चाहियें ताकि उनमें अहंकार की और छोटों में हीनता की भावना उत्पन्न न होने पावे।

प्रयत्न करते रहने पर सफलता मिलती ही है

निर्विकल्प समाधि की साधना में सफलता न मिली तो उद्दालक बड़े निराश हुये। असफल होकर जीने की अपेक्षा मरना अच्छा है यह विचार कर वे निराहार रहकर शरीर सुखाने लगे। वृक्ष पर एक बीरुध नाम का तोता रहता था, उसने संतप्त और सजल नेत्रों से ऋषि की ओर देख कर कहा- भगवन् ! यह शरीर तो मरणधर्मा है ही, इसमें यों सुखाने में पुरुषार्थ क्या हुआ? अमृतत्व की प्राप्ति का प्रयास ही तो मनुष्य का सच्चा पुरुषार्थ हैं। बार-बार प्रयत्न करने वाले और असफलताओं से खिन्न न होने वाले ही लक्ष्य को प्राप्त करते हैं, क्या आपको यह विदित नहीं? शुक की बात महर्षि के हृदय में प्रवेश कर गई। अपने प्रयत्न फिर से प्रारम्भ कर दिये जिससे उन्हें निर्विकल्प समाधि की अवस्था प्राप्त हो गई।

ऐश्वर्य की रक्षा संयम से

इन्द्र को असुरों से अनेक बार परास्त होना पड़ा। भगवान की विशेष सहायता से ही वे बड़ी कठिनाई के साथ अपना इन्द्रासन लौटाने में सफल हो सके। इस बार-बार की पराजय का कारण एक दिन प्रजापति से पूछा- तो उन्होंने कहा कि ऐश्वर्य की रक्षा संयम से होती है। जो वैभव पाकर प्रमाद में फँस जाते हैं उन्हें पराभव का मुख देखना पड़ता है और वे तुम विलासी देवताओं की तरह ठोकरें खाते रहते हैं। यह मानव शरीर अपरिमित ऐश्वर्य है जो इसका संयम पूर्वक सदुपयोग कर लेते हैं वे ही पराभव का मुँह देखने से बच पाते हैं।

कर्म साधना से ज्ञान

नरोत्तम पेड़ के नीचे बैठा आराम कर रहा था कि ऊपर से पक्षी ने उस पर बीट कर दी। क्रोध से उसने ऊपर देखा तो चिड़िया जल कर भस्म हो गई। युवक को अपने तप बल का अंहकार हो गया। अपनी भूख मिटाने के लिये उसने एक ग्रामीण के दरवाजे पर जाकर भोजन की याचना की। गृहस्वामिनी अपने पति की सेवा कर रही थी। थोड़ी देर रुकने को कहा तो नरोत्तम को बड़ा क्रोध आया। स्त्री बात समझ गई और बोली- महात्मा जी,मैं चिड़िया नहीं हूँ जो जलकर भस्म हो जाऊँगी। मैंने भी तुलाधार से योग विद्या सीखी है। नरोत्तम तुलाधार के पास पहुँचा। तुलाधार ने जाते ही उसका अभिप्राय और पिछली घटनायें सुना दीं। आश्चर्य करने पर नरोत्तम को शिवाक चाण्डाल के पास जाने को कहा। नरोत्तम चाण्डाल के पास गया तो उसने भी पहले की सारी बातें बिना पूछे बतादी। महात्मा जी ने पूछा आप लोंगो ने किस साधना विधि से यह योग विद्या पाई है। चाण्डाल बोला- अपने कर्तव्य को भगवान की आज्ञा मान कर पूरा करना यही सबसे बड़ी साधना है इसी का फल मुझे मिला है।

पूर्व तैयारी

एक देश में ऐसी प्रथा थी कि जिस व्यक्ति को राजा बनाया जाता था उसे ५ वर्ष शासन करने के बाद निर्जन द्वीप में अकेला छोड़ दिया जाता था। बहुत से शासक इस नियम के अनुसार अपना अन्तिम जीवन कष्ट के साथ नष्ट कर चुके थे। इस बार सिंहासन खाली पड़ा हुआ था। भावी कष्टों की कल्पना करके कोई राजा बनने को तैयार नहीं था। एक बुद्धिमान मनुष्य ने इस पर विचार किया और शासक बनने के लिये अपना नाम घोषित किया। राजा बनने के तुरन्त बाद ही उसने शासन चलाने के साथ साथ उक्त निर्जन द्वीप को आबाद करना शुरू किया। वहाँ महल, मन्दिर, खाने पीने आदि की सभी सुविधायें जुटा दीं। पाँच साल में उस द्वीप को अपनी राजधानी के समान बना लिया। जब निर्वासित होने का समय आया तो राजधानी जैसे द्वीप में जाकर पहले की तरह सुखी जीवन बिताने लगा।

भावनाओं की उत्कृष्टता आवश्यक

सेठ जी ने पूरी भागवत की कथा सुन ली पर मोक्ष के कोई लक्षण दिखाई न दिये। पण्डित जी से शंका व्यक्त की। पण्डित जी को लोभ आ गया। बोले कलियुग में चौथाई फल मिलता है, इसलिये चार बार कथा सुनों तो पूरा फल मिलेगा। सेठजी ने वैसा ही किया। फिर भी कोई अच्छे परिणाम नजर न आये, फलस्वरूप पण्डित जी से झगड़ा करने लगे। समझौते के लिये एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उच्चकोटि के महात्मा बुलाये गये। महात्मा जी ने बताया शुकदेव ने परमार्थ भाव से कथा कही थी और परीक्षित ने उसे आत्म कल्याण के लिये वीतराग होकर सुना था, इसलिये उन्हें मोक्ष मिला। पर यहाँ पण्डित जी ने लोभ के वशीभूत होकर कथा कही और थोड़े खर्च में मुक्ति खरीदने के लोभ में सेठ जी ने सुनी, अत: उद्देश्य कैसे पूरा होता ? आत्म कल्याण के लिये बाह्य कर्मकाण्ड ही नहीं भावनायें भी होनी चाहिये, यह कह कर महात्मा जी विदा हो गये।

अज्ञान का पश्चाताप

एक राजा बन भ्रमण करते समय रास्ता भूल गया। रात हो गई तों एक ग्रामीण ने उदारतापूर्वक उनका आतिथ्य किया। चलते समय प्रसन्न होकर वे उसे एक चन्दन का बाग दे गये। ग्रामीण को चन्दन की उपयोगिता ज्ञात न थी, निदान चन्दन की लकड़ियाँ काट-काट कर और उनका कोयला बना-बना कर बेचने लगा। एक पेड़ बचा। उस दिन वर्षा के कारण कोयला नहीं बन सका तो वह लकड़ी लेकर शहर पहुँचा। आज उसे काफी दाम मिले तो चन्दन की उपयोगिता का उसे पता चला। इस पर वह बड़ा रोया और पछताया। पर अब क्या हो सकता था, सारा वन तो कट चुका था। मनुष्य जीवन का भी दुरुपयोग करते हैं। उन्हें भी इसी प्रकार अन्त में पछताना ही पड़ता है।

बुद्धिमान बनाम मूर्ख

दो मित्र एक आम के बगीचे के पास से गुजरे। पके हुये, सुन्दर आम को देख कर उनका जी ललचाने लगा।माली उधर से निकला तो उसने बताया कि मालिक के आदेशानुसार तुम शाम तक जितने आम चाहो, खा सकते हो। रात में यहाँ कोई नहीं ठहर सकता। दोनों प्रसन्नता पूर्वक घुस गये। एक पेड़ पर चढ़ गया और शाम तक खूब पेट भर आम खाये। दूसरा केवल मीठों की ही खोज करने में लगा रहा और शाम हो गई। दोनों बाहर निकल गये। माली बोला- भाई, यह संसार ऐसा ही है। इसमें जो सत्कर्मों का लाभ लेले वही बुद्धिमान है। जो मोह, ममता के प्रपंच में पड़ा रहता है। वह खाली हाथ ही विदा होता है।

लक्षाधीश गरीब

एक आदमी प्रतिदिन एक महात्माजी के पास जाकर कहता-भगवन् ! मुझे परमात्मा ने धन नहीं दिया आपकी कृपा हो जाये तो मैं भी अपनी निर्धनता दूर कर लूँ। महात्मा जी बोले- अपनी एक आँख बेच दे मैं दस हजार रुपया दूँगा। पर वह मनुष्य इसके लिये तैयार न हुआ। महात्मा ने क्रमश: हाथ, पाँव, नाक, कान आदि के भी दस-दस हजार रुपये लगाये पर मनुष्य राजी न हुआ। महात्मा बोला- भाई ! एक लाख से अधिक का तो तुम्हारा शरीर ही है, इसी पूँजी को लगा दे। अर्थात् परिश्रम करो तो तुम्हारी निर्धनता जरूर दूर हो सकती है।

अधिक लोभ से अधिक हानि

पारस तो मिल गया। अब वह व्यक्ति लोहे की तलाश में शहर पहुँचा। पर वह था बड़ा कंजूस, सस्ते लोहे की दुकान तलाश करने लगा। उस शहर में नहीं मिला तो दूसरे शहर दौड़ा। इसी दौड़-धूप में सारा समय गुजर गया और वह रत्ती भर भी सोना न बना सका। सातवें दिन महात्मा ने मणि वापस ले ली। अधिक लालसा और लिप्सा में समय लगाते रहने वाला अधिक घाटे में रहता हैं और जो प्रस्तुत साधनों का सदुपयोग करता है वह लाभान्वित होता है।

अपंगों का अनुदान

एक बार पाँच असमर्थ और अपंग इकट्ठे हुये। अन्धा बोला- मेरी आँखें होतीं तो जो कुछ अनुपयुक्त दिखाई देता उसे ठीक करता। लँगड़ा बोला- मैं तो दौड़-दौड़ कर लोगों की भलाई करता। निर्बल बोला- मेरे पास बल होता तो दीन दुखियों की सेवा सहायता करता। निर्धन ने कहा- धनी होता तो किसी को भूखा न रहने देता। मूर्ख बोला- मैं पण्डित होता तो लोगों को सच्चा ज्ञान देता। वरुण देव ने उनकी बाते सुनीं तो दया आ गई। उनकी इच्छायें पूरी कर दीं। पर अब तो अन्धा सौन्दर्य दर्शन में ही लीन रहने लगा। लँगड़ा सैर सपाटे के लिये निकल पड़ा। निर्धन धन के नशें मे डूब गया। निर्बल दूसरों को सताने लगा और मूर्ख अपनी शेखीं बघारने लगा। वरुण देव ने यह देखा तो उन्हें बड़ा दु:ख हुआ। अपनी शक्तियाँ छीन लीं। इस पर पाँचों फिर पछताने लगे कि प्राप्त अवसर को यों ही खो दिया। माता के उदर में पड़ा जीव एक प्रकार से अन्धा, अपाहिज ही होता है। ईश्वर उसे कृपा पूर्वक सब अवसर देते हैं। पर वह अभागा उनका दुरुपयोग करते हुये ही सारा जीवन बिता देता हैं और अन्त में फिर अन्धतामिस्त्र में लाखों वर्षों तक पड़ा रहने के लिये विवश होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य श्रेष्ठ या निकृष्ट

एक सभा में वाद-विवाद चल रहा था। एक पक्ष कहता था कि मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी हैं क्योंकि वह सभी जीवधारियों को वश में कर लेता है। दूसरा पक्ष कहता था कि मनुष्य कुत्ते से भी गया बीता है। क्योंकि इसमें असंयम की प्रवृत्ति हैं। निर्णय न निकल रहा था। विवाद बढ़ता ही जाता था। एक ज्ञानी उधर से जा रहे थे। सर्व सम्मति से उनकी सम्मति लेना तय हुआ। ज्ञानी ने दोनों पक्षों की बात सुनी और बोले-भाई मनुष्य जब तक सत्कर्म करता है तब तक वह सर्वश्रेष्ठ है किन्तु जब वह दुष्कर्म करने लगता है तभी वह नीच बन जाता है। उनके उत्तर से दोनों पक्ष सन्तुष्ट हो गये।

अन्धे की लापरवाही

एक अन्धे व्यक्ति को किसी अपराध में आजीवन कारावास का दण्ड मिला। वह जेल में बन्द रहने लगा। एक दिन राजा जेल का निरीक्षण करने गया। अन्धे ने अपनी व्यथा सुनाई और प्रार्थना की कि जेल से छुटकारे का यदि कोई मार्ग निकल सके तो बड़ा अनुग्रह हो।

न्याय और कानून की मर्यादाओं को राजा तोड़ना नहीं चाहता था। इसलिये उसे छोड़ा तो नही, पर इतना इशारा जेल कर्मचारियों को कर दिया कि यह अन्धा यदि फाटक से निकलना चाहे तो रोक थाम न करें। अन्धे को इस सुविधा से बड़ी प्रसन्नता हुई और वह जेल की दीवार टटोलते हुये दरवाजे पर पहुँचने का प्रयत्न करने लगा।

दुर्भाग्य से अन्धे के सिर में गंज का रोग था। जैसे ही फाटक के समीप वह पहुँचा तो वैसे ही वहाँ की ठण्डी हवा के स्पर्श से सिर की गंज खुजाने लगी। उसने दीवार छोड़ दी और दोनों हाथों से सिर खुजलाने लगा। साथ ही पैरों से चलता भी रहा। इसी बीच फाटक निकल गया और उस लम्बे जेलखाने की दीवारों का एक घेरा फिर लगाने के लिये विवश होना पड़ा। उस अन्धे की तरह ही हम जीवन मुक्ति के उस अवसर को खो देते हैं और मनुष्य जन्म शरीर यात्रा के निर्वाह मात्र में बर्वाद हो जाते हैं।

आत्मा को न भूलें

एक बार एक सेठ के घर आग लग गई। सेठ के कहने से लोग कीमती सामान, धन आदि तो निकालने लगे पर सेठ के बच्चे की ओर किसी का ध्यान न गया। जब सारा सामान निकल आया तब सेठ ने बच्चे की याद की पर तब तक तो वह जल चुका था। सेठ छाती पीट-पीट कर रोने लगा कि धन का अधिकारी तो मर गया। इस घटना का उल्लेख करते हुये सन्त ने कहा कि- शिष्य ! इसी तरह संसार के लोग दुनियावी सुखों के फेर में आत्मा को भूल जाते हैं।

जीवन को सूर्यकान्त मानें

महाप्राज्ञ का जब अन्तकाल निकट आया तो उसनें अत्यन्त प्रयत्न के द्वारा प्राप्त 'सूर्यकान्तमणि' अपने पुत्र सौमनस को दी और कहा- यह कामधेनु के समान मनोवांछा प्रदान करने वाली हैं। इसको सँभाल कर रखना। इससे तुम्हारी सब आवश्यकताऐं सहज पूर्ण हो सकेंगी और तुम्हें कभी भी किसी चीज का अभाव नहीं हो सकेगा।

सौमनस ने मणि तो ले ली पर पिता के उपदेशों पर कुछ ध्यान नहीं दिया। रात्रि के समय दीपक के स्थान पर वह उसका उपयोग करने लगा। एक दिन उसकी प्रेयसी वेश्या ने उपहार में वह मणि माँगी और सौमनस ने उसे बिना किसी संकोच के दे डाला।

वेश्या ने कुछ समय बाद एक जौहरी के हाथ में उसे बेच दिया और उस धन से श्रृंगार की सामग्री खरीद ली। जौहरी ने मणि की परीक्षा की और रासायनिक प्रयोगों द्वारा उसकी सहायता से बहुत सा सोना बना लिया। इससे वह बड़ा वैभवशाली बन गया और अपना जीवन राजा-महाराजाओं की तरह व्यतीत करने लगा। अनेक दीन दुखियों की भी उसने उस स्वर्ण राशि से बहुत सहायता की।

आनन्द ने अपने शिष्य विदुप को यह कथा सुनाते हुये कहा- वत्स ! यह जीवन सूर्यकान्त मणि के समान हैं इसका सदुपयोग करना कोई कोई पारखी जौहरी ही जानते हैं, अन्यथा सौमनस और गणिका की तरह उसे कौड़ी मोल गँवा देने वाले ही अधिक होते हैं।

रामकृष्ण मिशन

स्वामी विवेकानन्द ने देखा कि भारत में साधुओं का काम केवल उपदेश देना और अकर्मण्य जीवन बिताना है इससे न उनका भला होता हैं न देश का। उल्टे इससे अकर्मण्य और आलसियों की संख्या बढ़ती है। किसी उपयोगी काम में साधुओं को लगाने का स्वामी जी ने विचार किया। रामकृष्ण मिशन के माध्यम से स्वामी विवेकानन्द ने साधुओं के समक्ष एक कार्यक्रम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

रखा जन सेवा का। उक्त संस्था के अन्तर्गत आज बहुत बड़ी संख्या में साधु जन सेवा के कार्य में लगे हुए हैं। बिना किसी व्यवहारिक कार्यक्रम के उपदेश, व्याखान मात्र से देश का भला नहीं हो सकता। सेवा के बिना मुक्ति सम्भव नहीं। भजन का पूरा लाभ उसे ही मिलता है जो जीवन शोधन एवं परमार्थ का पुण्य प्रयत्न भी साथ साथ जारी रखें। एकांगी भजन लक्ष्य तक पहुँचने में कदापि समर्थ नही हो सकता। यह सोच कर स्वामी विवेकानन्द ने कर्मठ, लोक सेवी साधुओं की परम्परा स्थापित की और उसका सफल प्रयोग आज रामकृष्ण परमहंस मिशन में सर्वत्र देख सकते हैं।

आदर्श सन्त विनोबा

अब तक साधु सन्तों का अधिकतर कार्य एकान्तवास या भजन ही था। असामाजिक निरुद्योगी जीवन बिता कर जनता पर भारभूत बने रहना और अपना समय बरवाद करना यही उनका क्रम रहा है। विनोबा भावे ने इस समाज विरोधी और अकर्मण्य जीवन की बुनियाद को मिटाया स्वयं अपने आचरण द्वारा। वे एक दृष्टा विचारक और सन्त भी थे, लेकिन अपनी पदयात्रा, भूदान, सर्वोदय, शान्ति सेना आदि विविध जन सेवा के कार्यक्रम को सम्मिलित कर सन्त कर्तव्यों का एक सराहनीय आदर्श उपस्थित किया है।

न्यायाधीश का न्याय

पेशवाओं के जमाने में एक न्यायाधीश थे-रामशास्त्री प्रभुण। राघोवा ने अपने भतीजे का खून किया, जो पेशवा था। रामशास्त्री पेशवाओं के न्यायाधीश थे। उनकी तनख्वाह पाते थे। राघोवा पेशवा ने उन्हें अपने दरबार में बुलाया। पेशवा की पत्नी ने उनसे पूछा कि पेशवा ने प्रत्यक्ष खून किया है, अब तुम क्या चाहते हो? राम शास्त्री ने कहा कि न्यायासन पर बैठ कर मैं एक ही चीज सीखा हूँ कि इस राज्य में जो कोई दूसरे का खून करेगा, उसे देहान्त प्रायश्चित करना चाहिये। रानी ने दुबारा, तिबारा वही सवाल पूछा और उन्होंने हर बार देहान्त प्रायश्चित की ही बात कही। रानी ने कहा कि तुम क्या जानते हो कि हम तुम्हारी जीभ काट सकते हैं, तुम्हारे शरीर की बोटी-बोटी काट सकते हैं, तुम्हें काल कोठरी में बन्द कर सकते हैं ? राम शास्त्री ने जबाव दिया कि प्राणों के मोह के कारण मेरे मुँह से न्याय विरुद्ध कोई कमजोरी का शब्द निकलने से पहले अच्छा होगा कि आप इस जीभ को कटवा लें।

जीवन की खेती

मेहता कालूराम अपने पुत्र को खेती करने का आदेश देते हैं। नानक कहते हैं कि मैंने अपने लिये एक नई खेती बोई है और वह अच्छी उगी है। इस पर उनके पिता पूछते हैं- वह खेती कहाँ है? हमें दिखाओं नानक ने उत्तर देते हैं इस शरीर रूपी खेत में सत्कर्मों का हल चला कर परमात्मा के भजन रूपी बीज को मैंने बोया है। साधु संगति का इसमें पानी देता रहता हूँ और सन्तोष रूपी खाद लगाता हूँ। बुराइयों रूपी झाड़ झंखाड़ को उखाड़ता हूँ। वह घर धन्य है जहाँ ऐसी खेती होती है।

श्रद्धा और शक्ति

कबीरदास जी ने रामानन्दजी को अपना गुरु बनाने का निश्चय किया और वे उनके पास गये। लेकिन कबीर जुलाहा के पुत्र थे, अछूत जाति के थे। रामानन्द ने उन्हें दीक्षा देने से मना कर दिया। कबीर को एक तरकीब सूझी। वे आधी रात में जाकर गंगा के उस घाट की सीढ़ियों पर लेट गये जहाँ से रामानन्द जी स्नान करने जाया करते थे। ब्रह्म मुहूर्त में नित्य की तरह रामानन्द स्नान कर सीढ़ियों पर चढ़ रहे थे कि उनका पैर मनुष्य देह पर पड़ा और वह कह उठे राम ! राम ! कबीरदास जी ने उठ कर उन्हें प्रणाम किया और कहने लगे बस गुरुदेव! मुझे आप से दीक्षा मिल गई और उसी दिन से वे राम नाम का स्मरण करने लगे।

रामानन्दजी द्वारा दीक्षा देने से इन्कार करने पर भी कबीर ने अपनी श्रद्धा के आधार पर उन्हें गुरु माना और अपनी साधना पूर्ण की। श्रद्धा की शक्ति का कोई वारापार नहीं।

ईमानदारी और अनीति की कमाई

गुरु नानक के भोजन के लिये एक धनी के यहाँ से षटरस व्यंजनों का थाल आया। एक गरीब ने भी सूखी रोटी भेजी। गुरु अमीर का भोजन न खाकर गरीब का खाने लगे। शिष्यों ने इसका कारण पूछा तो उन्होंने दोनों थालों की रोटियों को निचोड़ कर दिखाया। एक में से दूध जैसी और एक में से खून जैसी धार निकली। गुरुदेव ने कहा- ईमानदारी और परिश्रम से कमाई गई रोटी अमृत तुल्य है और जिसे अनीति पूर्वक कमाया गया हो वह विष तुल्य है।

सज्जनों से सद्व्यवहार

एक दिन पण्डित जी की कथा सुनने एक डाकू

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी आया। पण्डित जी समझा रहे थे।"क्षमा और अहिंसा मनुष्य के भूषण है" इसका परित्याग न करना चाहिये। कथा समाप्त हुई। पण्डित जी दक्षिणा आदि लेकर गाँव की ओर चल पड़े। बीच मे जंगल पड़ता था। वहाँ पहुँचे कि डाकू आ धमका और पण्डित जी को सारा धन रख देने के लिये कहा। पण्डित जी थे निडर, पास में लाठी पड़ी हुई थी सो प्रहार करने के लिये डाकू की ओर दौड़े। डाकू घबड़ा गया और विनयपूर्वक बोला- महाराज आप तो कह रहे थे कि "क्षमा और अहिंसा मनुष्य का भूषण हैं।" इन्हें नहीं त्यागना चाहिये। पण्डित जी बोले वह तो सज्जनों के लिये था, तेरे जैसे दुष्टों के लिये यह लाठी ही उपयुक्त हैं पण्डित जी का रौद्ररूप देखकर डाकू वहाँ से भाग गया।

एक लकड़हारा अपनी योग्यता के कारण राजा का दोस्त बना और एक दिन वह राजमंत्री पद तक जा पहुँचा। रिश्वत लेने वाले भ्रष्ट कर्मचारी उससे जला करते थे और तरह तरह की शिकायतें राजा से किया करते थे। किसी ने यहाँ तक कहा कि उसके पास बहुत सा धन कोठरी वाली सन्दूक में रखा है। राजा को भी सन्देह होने लगा। एक दिन उसने उस सन्दूक को दिखाने के लिये कह दिया। पहले तो मंत्री ने आपत्ति की पर राजा के हठ के आगे वह विवश हो गया। संदूक खोला गया तो उसमें थोड़े से मैले कुचैले वस्त्र रखे थे। राजा ने पूछा यह क्या है? मंत्री ने बताया महाराज ये वह कपड़े हैं जिन्हे मैं आपकी मित्रता से पहले पहना करता था। इन्हें सुरक्षित इसलिये रखा है कि मुझे अपनी पूर्व स्थिति की याद बनी रहे ताकि किसी तरह का अन्याय मुझसे न हो। पूर्व जन्मों में ८४ लाख योनियों में भ्रमण करते हुये हमें कितनी कठिन परिस्थितियों और कटु अनुभवों का सामना करना पड़ा था, इसका ध्यान रहे तो मनुष्य जन्म में इतराने की नौबत न आवे।

मनोबल का कल्पवृक्ष

एक मनुष्य किसी गांव को जा रहा था। धूप प्यास का मारा वह एक पेड़ के नीचे विश्राम करने को लेट गया । पेड़ की ठण्डी छाया में उसका मन बड़ा प्रसन्न हुआ। वह कल्पना करने लगा "काश ! यहाँ पीने के लिये पानी होता।" इतने में ही उसने देखा कि एक ठण्डे पानी का झरना फूट पड़ा। उसने पानी पी कर प्यास बुझाई। फिर उसने सोचा कुछ खाने को होता तो कैसा रहता। इतने में ही एक स्वादिष्ट पदार्थों से भरा हुआ थाल आ गया। उसने भोजन करके सोने के लिये शैय्या की कल्पना की तो एक पलंग वस्त्र बिछा हुआ दिखाई दिया। इन सब घटना क्रमों से उसे भय हुआ कि कहीं यहाँ कोई मायावी राक्षस तो नहीं है। इतने में ही एक राक्षस सामने आ खड़ा हुआ।"यह मुझे खा न जाये" इस विचार के साथ ही राक्षस उस यात्री को खा गया। वस्तुतः वह वृक्ष कल्पवृक्ष था जो मन की इच्छा कि अनुसार फल देता था। मनुष्य का संकल्प एवं मनोबल एक प्रकार से कल्पवृक्ष ही है। उसका सदुपयोग करने वाला जीवन लक्ष्य प्राप्ति का अभीष्ट उद्देश्य पूर्ण कर सकता है।

ज्ञान में व्यवहार का समावेश

"भाई क्या पढ़ रहे हो ?" एक आदमी ने दुकानदार ने पूछा। वह बड़ा झुँझलाया , बोला- तुम्हारे जैसे मूर्ख भला इस ग्रन्थ को क्या समझेंगे? वह आदमी बोला लगता है कि ज्योतिष पढ़ रहे हो। तभी तो यह जान गये कि मैं मूर्ख हूँ। "नहीं , मैं व्यवहार शास्त्र पढ़ रहा हूँ" -दुकानदार बोला। उस आदमी ने व्यंग किया- तभी तुम्हारा व्यवहार इतना सुन्दर है। पास खड़े एक बुड्ढे ने कहा- सच है बेटा, पढ़ने का लाभ तभी है जब उसे व्यवहार में भी लाया जाये।

ज्ञान कर्म का सहयोग

"कर्म और भावना में कौन बड़ा है?" इसके लिये झगड़ा हो गया। निपटारे के लिये दोनों ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्माजी बोले- जो आकाश को छू ले वही बड़ा है। भावना ने छलाँग लगाई तो आकाश में पहुँच गई। पर नीचे न उतर पाई वहीं लटकी रह गई। कर्म ने सीढ़ियाँ बनानी शुरू कर कीं दोपहर तक ही थक गया। ब्रह्माजी ने दोनों को दुबारा बुला कर समझाया कि तुम्हारी पूर्णता साथ साथ रहने में ही हैं अकेले दोनों अधूरे हैं।

सन्तुलित विकास की आवश्यकता

सम्राट अशोक ने अपने जन्म दिवस के उत्सव के दिन घोषणा की कि "आज उस प्रांतीय शासक को पुरस्कृत किया जायेगा, जिसका गत वर्ष का शासन कार्य सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होगा।"

उत्तरीय प्रान्त के शासक ने कहा-" मैंने अपने प्रदेश की आय को पूवपिक्षा तिगुना कर दिया है।" दक्षिण विभाग के शासनकर्ता ने बतलाया-"पहले वर्षों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की अपेक्षा मैंने दुगुना सुवर्ण राज्यकोष में जमा करने को भेजा है" पूर्व वाले अधिकारी ने निवेदन किया- "मैंने अपने प्रदेश के उपद्रवकारियों का भली प्रकार से दमन करके वहाँ के शासन को सुदृढ़ बना दिया।" पश्चिम वाले कहने लगे-"मैंने प्रजा से प्राप्त होने वाले कर में वृद्धि की है, शासन व्यय को घटाया है और राजस्व को बढ़ाने की सब प्रकार से चेष्टा की है।"

अन्त में मध्य देश के अधिकारी ने उठकर कहा-"महाराज ! मैं तो राजस्व को बिल्कुल नहीं बढ़ा सका, वरन् गत वर्ष पहले की अपेक्षा बचत कम रही है। पर इस बीच में प्रजा की सुविधा के लिये अनेक चिकित्सालय धर्मशालायें, विद्यालय, जलाशय आदि का निर्माण कराया गया है। और कुछ कष्टदायक करों को भी कम कर दिया गया है।"

अशोक ने अन्तिम शासनाधिकारी के वक्तव्य से प्रसन्न होकर उसे पुरस्कृत किया और अन्य लोगों को समझाया कि केवल आय को बढ़ाने का ध्यान रखना ही पर्याप्त नहीं है। प्रजा के सुख समृद्धि की वृद्धि करना शासनकर्ता का सर्वप्रथम कर्तव्य है । इसी मार्ग का अनुसरण करने से हमारा राज स्थायी हो सकता है।

व्यावहारिक ज्ञान भी आवश्यक

अकेले पण्डितजी को लेकर मल्लाह नाव छोड़ने के लिये तैयार नहीं हुआ। पण्डित जी बोले अतिरिक्त मजदूरी में तुम्हें दो सुन्दर उपदेश दूँगा। मल्लाह राजी हो गया। नाव चलने लगी तो ब्राह्मण ने पूछा-"कुछ उपासना भी करते हो?" नाविक ने उत्तर दिया नहीं महाराज ! "तब तो एक तिहाई जीवन व्यर्थ चला गया।" फिर पूछा-"कुछ पढ़े लिखे हो" नहीं महाराज, मल्लाह ने वैसा ही जबाव दिया। पण्डित जी बोले,"फिर तो आपका दो तिहाई जीवन बेकार चला गया।" इसी बीच नाव एक चट्टान से टकरा कर टूट गई। पण्डित जी डूबने लगे। मल्लाह बोला महाराज ! तैरना जानते हो ? पण्डितजी बोले-नहीं। उन्हें बाहर निकालते हुये मल्लाह बोला तब तो आपका सारा जीवन बेकार चला गया होता। इसलिये दार्शनिक ज्ञान के साथ साथ कुछ व्यवहारिक ज्ञान भी प्राप्त कीजिये।

अग्रतः चतुरो वेदा पृष्ठतः सशरं धनु ।
इदं ब्राह्मं इदं क्षात्रं शास्त्रादपि शरादपि।।

आगे चारों वेद अर्थात् ज्ञान और पीछे वाण सहित धनुष से सफलता प्राप्त होती है। एक ज्ञान बल दूसरा शस्त्र बल दोनों के समन्वय अर्थात् ज्ञान और कर्म के संयोग से सफलता सम्भव होती है।

कर्मणां रहितं ज्ञानं पङ्गुना सदृशं भवेत्।
न तेन प्राप्यते किंचित् न च किंचित्प्रसाध्यते।।
एवं ज्ञानेन हीनं यत् कर्मान्धेन समं स्मृतम्।
मार्गो वा मार्गलक्ष्यं वा नैव तस्य प्रतीयते।।
कर्मणा मनसा वाचा कर्तव्यं कर्म कुर्वतः।
तस्मादेवेष्टसंसिद्धिश्चतुरस्रा प्रजायते।।

कर्म से रहित ज्ञान एक पंगु के समान होता है। उसमें न तो कोई वस्तु प्राप्त की जा सकती है, न कोई कार्य सिद्ध किया जा सकता है।

इसी तरह ज्ञान से रहित कर्म को एक अन्धे के सदृश समझना चाहिये। उसको मार्ग अथवा मार्ग का लक्ष्य कुछ भी प्रतीत नहीं होता।

इसलिये ठीक-ठीक इष्ट की प्राप्ति उसी मनुष्य को होती है। जो मन, वाणी और कर्म से अपने कर्त्तव्य कर्म को करता है। अर्थात् ज्ञान पुरस्सर कर्म से ही इष्ट की सिद्धि होती है।

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं संनिहिता मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ।।

यह शरीर अनित्य हैं नष्ट होने वाले हैं और यह धन दौलत ऐश्वर्य भी सदा रहने वाले नहीं हैं और मृत्यु अवश्यम्भावी है सदा निकट रहती है। यह विचार कर धर्म का संग्रह करना चाहिये।

अप्रिया न भविष्यन्ति प्रियोऽपि न भविष्यति।
अहं च न भविष्यामि सर्वं च न भविष्यति ।।

इस संसार में अप्रिय लगने वाले मनुष्य एवं पदार्थ नहीं रहेंगे और जो परम प्रिय लगने वाले हैं वे भी कुछ समय के पश्चात् न रहेंगे। मैं भी एक दिन यहाँ नहीं रहूँगा। यहाँ यह जो सब कुछ दिखाई देता है। वह कुछ भी न रहेगा। तात्पर्य यह है कि संसार की सभी वस्तु नश्वर हैं।

शास्त्रात्संगाच्च महतां प्रेरणां लभते नरः।
कुर्यात्तां तु कार्यरूपां लाभस्तदैव जीवने ।।

शास्त्र एवं सद्ग्रन्थों के अध्ययन करने से और महान् पुरुषों के साथ संगति करने से मनुष्य को सत्कर्म की प्रेरणा अवश्य प्राप्त होती हैं किन्तु उसको कार्य रूप में परिणित कर अमल में लाने ही से इस जीवन में सच्चा एवं वास्तविक लाभ होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अहन्यहनि भूतानि कच्छन्तीह यमालयम् ।
शेषा: स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमत: परम् ।।

इस लोक में प्रतिदिन ही प्राणी यमालय को चले जाते हैं किन्तु शेषलोग स्थिरता चाहते हैं इससे बड़ा और क्या आश्चर्य हो सकता है।

उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गति।
तथैव ज्ञान कर्माभ्यां जायते परमं पदम् ।।

जिस प्रकार पक्षी अपने दोनों परों की सहायता से आकाश में पहुँचता है उसी प्रकार मनुष्य ज्ञान कर्म के संयोजन से परम पद पर पहुँच सकता है ?

आयुष: क्षण एकोऽपि न लभ्य: स्वर्णकोटिभि:।
स चेन्निरर्थकं नीत: का नु हानिस्ततोऽधिका ।।

जीवन बड़ी अमूल्य वस्तु है।, इसका एक क्षण भी करोड़ों स्वर्णमुद्रा देने पर भी नहीं मिल सकता। ऐसा जीवन का अमूल्य क्षण व्यर्थ ही नष्ट हो जाये तो इससे बड़ी और क्या हानि हो सकती है?

जग रूठे डर कारने, उचित कहत सकुचात।
ते नर कायर जगत में, करें आपु उर घात।।
कथनी मीठी खांड़ सी, करनी विष की लोय।
कथनी तजि करनी करै, विष से अमृत होय।।
बिना ज्ञान कौ करम कहुँ, तारि सके संसार ।
कहा काटि करिहौ जु कर, धार बिना तलवार।।
भजन और उपकार करु, एक साथ चितलाय।
नापित धरि धरि धार जिमि, बार बनावत जाय।।
कबीर सो धन संचिये, जो आगे को होय।
शीश चढ़ाये पोटली, जात न देखा कोय।।
कालि करन्ता आज कर, आज करै सो हाल।
पीछे कछू न हायगौ, जो सिर आवे काल।।
कबीर धूलि समेट कर, पुड़ी जु बाँधी एह।
दिवस चारि का पेखना, अन्त खेह ही खेह।।
मानुष जन्म अमोल है, होय न दूजी बार।
पक्का फल जो गिर पड़ा, लगे न दूजी बार।।
दस द्वारे का पींजरा, तामें पंछी मौन।
रहे को अचरज होत है, गये अचम्भा कौन।।
तन मन धन दै कीजिये, निशदिन पर उपकार।
यही सार नर देह में, वाद विवाद विसार।।
तुसली या जग आय कै, पाँच रतन हैं सार।
संत मिलन अरु हरि भजन, दया दीन उपकार।।
सूरा के तो सिर नहीं, दाता के धन नाहिं ।
पतिवरता के तन नहीं, सुरति बसै पिय माहिं।।
कविरा गर्व न कीजिये, अस जीवन की आस।
टेसू फूलै दिवस दस खंखर, भया पलास ।।
जब तुम जग में आये, जग हंसमुख तुम रोय।
ऐसी करनी कर चलो तुम हंसमुख जग रोय।।
त्राण प्राण का ना हुआ किया न निज कल्याण।
तुलसी सो या जगत में जीवित ही म्रियमाण।।

किष्किन्धा काण्ड के अन्तर्गत भगवान राम पति वियोग में दु:खी तारा को समझाते हुये कहते हैं-

छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम सरीरा ।।
प्रगट सो तनु तव आगें सोवा।
जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा।।
उपजा ग्यान चरन तब लागी।
लीन्हेसि परम भगति बर माँगी ।।

किष्किन्धा काण्ड में बालि की मारने की प्रतिज्ञा करने पर सुग्रीव श्री रामचन्द्र जी से कह रहे हैं-

उपजा ग्यान बचन तब बोला।
नाथ कृपाँ मन भयउ अलोला।।
सुख सम्पति परिवार बड़ाई।
सब परिहरि करिहउँ सेवकाई।।
ए बस राम भगति के बाधक।
कहहिं संत तब पद अवराधक।।
सत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं।
मायाकृत परमारथ नाहीं ।।

उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत राजा श्री रामचन्द्र जी ने अपनी प्रजा को बुलाकर निम्न उपदेश दिए-

एक बार रघुनाथ बोलाए।
गुर द्विज पुरबासी सब आए ।।
बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन।
बोले बचन भगत भव भंजन ।।
सुनहु सकल पुरजन मम बानी।
कहउँ न कछु ममता उर आनी।।
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई।
सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई ।।
सोइ सेवक प्रियतम मम सोई।
मम अनुसासन मानै जोई ।।
जौं अनीति कछु भाषौं भाई।
तौ मोहि बरजहु भय बिसराई ।।
बड़ें भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।
पाइ न जेहिं परलोक सँवारा ।।
दोहा-
सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईश्वरहि मिथ्या दोस लगाइ ।।
एहि तन कर फल विषय न भाई।
स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई ।।
नर तनु पाइ विषयँ मन देहीं।
पलट सुधा ते सठ बिष लेहीं ।।
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई।
गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई ।।
आकर चारि लच्छ चौरासी।
जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी।।
फिरत सदा माया का प्रेरा।
काल कर्म सुभाव गुन घेरा।।
कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही।।
नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो।
सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।।
करनधार सदगुर दृढ़ नावा।
दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।
दोहा-
जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ।।

उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत कागभुसुण्डिजी गरुड़ से कह रहे हैं-

नर तन सम नहिं कवनिउ देही।
जीव चराचर जाचत तेही ।।
नरक स्वर्ग अपबर्ग नसेनी।
ग्यान बिराग भगति सुभ देनी।।
सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर।
होहिं विषय रत मंद मंदतर ।।
काँच किरिच बदलें ते लेहीं।
कर ते डारि परस मनि देहीं।।
नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं।
सन्त मिलन सम सुख जग नाहीं।।

लंकाकाण्ड के अन्तर्गत जब विभीषण ने श्री राम के रथ रहित होने पर चिन्ता प्रकट की तब श्री राम विभीषण से कह रहे हैं-

सुनहु सखा कह कृपानिधाना।
जेहिं जय होइ सो स्यन्दन आना।।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका।
सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।
बल बिवेक दम परहित घोरे।
क्षमा कृपा समता रजु जोरे ।।
ईस भजनु सारथी सुजाना।
बिरति चर्म संतोष कृपाना ।।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचण्डा।
बर बिग्यान कठिन कोदण्डा ।।
अमल अचल मन त्रोन समाना।
सम यम नियम सिलीमुख नाना।।
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा।
एहि सम बिजय उपाय न दूजा।।
सखा धर्ममय अस रथ जाके।
जीतन कतहुँ कबहुँ तहुँ रिपु ताकें।।
दोहा-
महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाके अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर।।

।। बारहवाँ प्रवचन समाप्त।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अथ श्री मद्भगवद्गीतामाहात्म्यम्

गीताशास्त्रमिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतः पुमान्।
विष्णोः पदमवाप्नोति भयशोकादिवर्जितः ।।१।।

जो मनुष्य इस परम पुण्यदायक गीता शास्त्र का श्रद्धापूर्वक नियम से पाठ करेगा, वह समस्त सांसारिक भय और शोकों से छुटकारा पाकर विष्णु लोक में उच्च स्थिति को प्राप्त होगा ।।१।।

गीताध्ययनशीलस्य प्राणायामपरस्य च ।
नैव सन्ति हि पापानि पूर्वजन्मकृतानि च ।।२।।

जो व्यक्ति नियमित रूप से गीता का अध्ययन और प्राणायाम का अभ्यास करता रहता है वह इस जन्म के तथा पूर्व जन्मों के समस्त कर्मों से छुटकारा पाया जाता है और उसे किसी प्रकार का पाप नहीं लग सकता ।।२।।

मलनिर्मोचनं पुंसां जलस्नानं दिने दिने ।
सकृद्गीताम्भसि स्नानं संसारमलनाशनम् ।।३।।

जिस प्रकार मैल को दूर करने के लिए प्रतिदिन जल से स्नान करना आवश्यक होता है उसी प्रकार गीता-रूपी पुण्य सलिल में स्नान करने से संसार के समस्त मल नष्ट हो जाते हैं ।।३।।

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ।।४।।

गीता का अध्ययन करते रहना सर्वश्रेष्ठ है, तत्पश्चात् अन्य शास्त्रों की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि यह ऐसा महान् शास्त्र है जो स्वयं भगवान् के मुख कमल से निकला है ।।४।।

भारतामृतसर्वस्वं विष्णोर्वक्त्राद्विनिःसृतम् ।
गीता गंगोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।।५।।

यह गीता महाभारत रूपी समुद्र का सारतत्व अर्थात् अमृत है और स्वयं भगवान के मुख से प्रकट हुई है, इसके उपदेश रूपी गंगाजल को पीने से पुनः संसारचक्र में फँसना नहीं पड़ता, अर्थात् गीता पाठ करने वाला निश्चय रूप से भगवान् की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ।।५।।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ।।६।।

समस्त उपनिषद् गाय के समान हैं, गोपाल नन्दन श्रीकृष्ण उनको दुहने वाले हैं अर्जुन बछड़े के तरह हैं, और गीता का अमृत रूपी ज्ञान दूध के समान है, जिसको श्रद्धावान् ज्ञानी ग्रहण करते हैं ।।६।।

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतमेको-
देवो देवकीपुत्र एव ।
एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि-
कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा ।।७।।

देवकी पुत्र श्रीकृष्ण की कही हुई गीता ही एकमात्र शास्त्र है, देवकीनन्दन कृष्ण ही एकमात्र पूजनीय देव हैं, उनका नाम ही एकमात्र तारने वाला मन्त्र है, और उनकी सेवा पूजा ही एकमात्र कर्तव्य परम कर्म है ।।७।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्रीमद्भगवद् गीता

(मूल और पद्यानुवाद)

प्रथम अध्याय

गीता के इस भाग में सभी अठारह अध्याय सम्मिलित किये गये हैं। उसके प्रत्येक श्लोक के साथ उसके पद्यानुवाद दिये गये हैं जो श्लोक में सन्निहित मूल भावना को स्पष्ट करते हैं। अन्त में गीता से सम्बन्धित कुछ विषयों को अधिक स्पष्ट किया गया है। जिससे कठिन विषयों को जन सामान्य भी हृदयंगम कर सकें।

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ।। १ ।।

रण की इच्छा से एकत्रित,
इस धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र बीच।
क्या किया पांडवों ने एवं मेरे
पुत्रों ने, आँख-मीच ।।

संजय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ।। २ ।।

संजय बोले धृतराष्ट्र सुनो,
लखकर के पाण्डव-सैन्य महा।
गुरु के समीप जाकर सादर,
दुर्योधन ने यों वचन कहा।।

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ।। ३ ।।

यह व्यूहाकार पाण्डवों की,
महती सेना गुरुवर देखो।
तव-शिष्य द्रु पद सुत के द्वारा है,
आरक्षित, इसको देखो।।

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ।। ४ ।।

इस धनुष युद्ध में भीमार्जुन सम हैं
बहु योधा शूर वीर।
सात्यकि विराट से महारथी ज्यों
द्रुपद कुशल अत्यन्त धीर।।

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः।। ५ ।।

नर पुंगव शैब्य तथा पुरुजित,
हैं धृष्टकेतु भी चेकितान।
काशी नरेश भी खड़े यहाँ,
जो अति पराक्रमी वीर्यवान।।

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ।। ६ ।।

विक्रान्त उत्तमौजा एवं अर्जुन सुत
वह अभिमन्यु वीर।
हैं धर्मराज भीमार्जुन भी,
प्रिय नकुल और सहदेव धीर।।

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ।। ७ ।।

जो जो प्रधान हैं शूरवीर,
इस मेरी सेना में गुरुवर।
शुभ नाम सहित मैं देता हूँ-
परिचय उनका सुनिये द्विजवर।।

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ।। ८ ।।

हैं आप पितामह भीष्म तथा
संग्राम-जयी कृप और कर्ण।
वैसे ही भूरिश्रवा वीर
अश्वत्थामा एवं विकर्ण।।

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ।। ९ ।।

हैं और बहुत से शूरवीर,
जो युद्ध-निपुण बलवान बड़े।
जो निज जीवन की आशा तज ,
मेरे हित ही युद्धार्थ खड़े।।

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ।। १० ।।

संरक्षित भीष्म पिता द्वारा,
यह मेरी सेना है अजेय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर, भीमसेन द्वारा रक्षित,
उनकी सेना है पराजेय।।
अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि।। ११।।
हो निज निज मोर्चों पर सुस्थिति,
अपने मन में शुभ भाव भरें।
फिर निसन्देह सब के ही सब
मिल-भीष्म सुरक्षा आज करें।।
तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखंदध्मौ प्रतापवान्।। १२।।
कर दुर्योधन को आह्लादित,
तब भीष्म पिता ने हँस कर के।
की घोर शंख ध्वनि हो प्रमुदित,
फिर सिंह सदृश गर्जना करके।।
ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ।। १३।।
जब शंख नगारे ढोल बजे तो
हुआ एक ही साथ शोर।
सारा नभ गूंज उठा उस क्षण,
सुनकर के यह जय घटा घोर।।
ततः श्वतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यै शंखौ प्रदध्मतुः।। १४।।
तनन्तर श्वेत हयों से युत,
उस उत्तम रथ में हो सुस्थित।
की दिव्य शंख ध्वनि माधव ने,
अर्जुन ने भी होकर प्रमुदित।।
पांचजन्यं हृषिकेशो देवदत्तं धनंजयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः।। १५।।
भगवान कृष्ण ने 'पांचजन्य'-
अर्जुन ने 'देवदत्त' भारी।
वर 'पौण्ड्र' भीम ने बजा शंख,
कर दी मानो रण तैयारी।।
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ।। १६।।
ले लिया 'अनन्त विजय' नृप ने,
जो धर्मराज कहलाये थे।
सहदेव नकुल ने 'मणि पुष्पक'
वे शंख 'सुघोष' बजाये थे।।
काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः।। १७।।
सात्यकि अजेय राजा विराट,
काशी नरेश धनुधारी ने।
फिर वीर शिखंडी महारथी,
तव धृष्टद्युम्न बलधारी ने।।
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक्।। १८।।
पाण्डवों द्रुपद ने मिलकर के
अभिमन्यु वीर ने जय कारन।
फिर शंख बजाये पृथक् पृथक्
अपने उन सबने हे राजन्! ।।
स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुली व्यनुनादयन् ।। १९।।
इन सब का सुनकर तुमुल घोष
धरती नभ भी हो गये सभय।
थर-थर काँप उठे कौरव,
जिनके थे निश्चय वज्र हृदय।।
अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ।। २०।।
कपिध्वज अर्जुन ने खड़े हुये-
धृतराष्ट्र सुतों को देख अहा।
ले धनुष बाण अपने कर में
तत्क्षण माधव से विहँस कहा।।
अर्जुन उवाच
हृषिकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते।
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत।। २१।।
हे योगेश्वर! हे कृष्ण! तनिक
मेरी विनती निज उर धरिये।
दोनों सेनाओं मध्य शीघ्र,
मेरा रथ, सुस्थापित करिये।।
यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ।। २२।।
जिससे मैं देख सकूँ उनको,
जो रण कामना लिये सुस्थित।
किन किन के साथ युद्ध करना
होगा मुझको हे कृष्ण! उचित।।
योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ।। २३।।
है कौन कौरवों के साथी
एवं शुभेच्छु यह जानूँगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

युद्धार्थ यहाँ आये हैं जो,
उनको निज वैरी मानूँगा।।

संजय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम्।। २४।।
दोनों सेनाओं बीच मध्य,
उत्तम रथ सुस्थापित करके।
बोले श्री कृष्ण धनंजय से,
थोड़ा सा प्रमुदित होकर के।।
भीष्मद्रोणप्रमुखत: सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरुनिति ।। २५।।
हैं भीष्म द्रोण सामने खड़े,
उस ओर खिंची जो शत्रु रेख।
हे पार्थ ! यहाँ समवेत हुये तू
सब कौरव, नृप और देख।।
तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थ: पितृनथ पितामहान।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ।। २६।।
देखा अर्जुन ने वहाँ सभी,
हैं स्वजन तथा कुछ वृद्ध बड़े।
आचार्य पुत्र मामा भाई,
प्रिय पौत्र आदि हैं सभी खड़े।।
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेय: सर्वान्बन्धूनबस्थितान्।। २७।।
स्नेही श्वसुरों को पुत्रों को,
देखा अर्जुन ने खड़े जहाँ।
आश्चर्य हुआ, ज्यों ही देखा-
सुहृदों मित्रों को खड़े वहाँ।।

अर्जुन उवाच

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।
दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्।। २८।।
उन खड़े सभी स्वजनों को लख,
सहसा ही उसका मन डोला।
होकर करुणा से युक्त व्यथित,
वह पार्थ कृष्ण से यों बोला।।
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ।। २९।।
हे कृष्ण ! स्वजन समुदाय देख,
हो रहे शिथिल मम अंग सभी।
तन काँप रहा, मुख सूख रहा,
हो उठता है रोमांच कभी।।
गाण्डीव स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्य स्थातुं भ्रमतीव च मे मन:।। ३०।।
गाण्डीव गिरा जाता कर से,
जल रहा कृष्ण ! सारा शरीर।
मैं नहीं खड़ा अब रह सकता,
मन भ्रमित हो रहा अति अधीर।।
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ।। ३१।।
हे कृष्ण ! आज लक्षण मुझको,
देते विपरीत दिखाई सब।
देखता नहीं कल्याण, तात !
स्वजनों को मार युद्ध में अब।।
न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन् गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ।।३२।।
मैं नहीं चाहता विजय राज्य,
मैं नहीं चाहता सुख सारे।
क्या अर्थ राज्य से भोगों से ?
क्या मुझको जीवन से प्यारे।।
येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगा: सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ।। ३३।।
हैं जिनके लिये अभीप्सित यह,
हे कृष्ण राज्य सुख और भोग।
धन जीवन की आशा तजकर,
हैं खड़े युद्ध में वही लोग।।
आचार्या: पितर: पुत्रास्तथैव च पितामहा:।
मातुला:श्वशुरा: पौत्रा:श्याला: सम्बन्धिनस्तथा।। ३४।।
आचार्य पुत्र चाचा दादा,
पाऊँगा इनको अरे कहाँ।
सम्बन्धी मामा श्वसुर पौत्र,
साले जो दिखते अभी यहाँ।।
एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतो: किं नु महीकृते ।। ३५।।
तीनों लोकों के मिलने पर भी,
मार न सकता मैं सबको।
फिर इस धरती के लिये कृष्ण !
बोलो कैसे मारूँ इनको।।
निहत्य धार्तराष्ट्रान्न: का प्रीति: स्याज्जनार्दन।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हेत्वैतानाततायिन: ।। ३६।।
धृतराष्ट्र सुतों को मार-मार,
बोलो प्रभु सुख कैसे होगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह मार आततायी ही सब,
मुझको क्या पाप नहीं होगा।।
तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान्।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव।। ३७।।
इसलिये कृष्ण ! अपने बान्धव,
धृतराष्ट्र पुत्र मारूँ कैसे ?
अपने कुटुम्ब को मार, कहो- होंगे
हम सुखी अरे कैसे ।।
यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम्।। ३८।।
हैं सभी लोभ से भ्रष्ट चित्त,
वे नहीं समझते इसे शाप।
कुल क्षय से क्या दोष तथा,
क्या मित्र द्रोह से अरे, पाप।।
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ।। ३९।।
कुल क्षय से अधिक दोष संभव,
क्या नहीं जानते इसे सभी ?
करना न चाहिये इस निमित्त
सम्यक विचार क्या कृष्ण कभी।।
कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत।। ४०।।
कुल के क्षय होने से सारे,
कुल धर्म सनातन मिट जाते।
इस धर्म नाश से सत्वर ही,
कुल में सब पाप सिमिट आते।।
अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ।। ४१।।
होने पर पाप वृद्धि भगवन !
कुल की स्त्रियाँ बिगड़ जातीं।
दूषित होने पर ही तो वे,
सन्तान वर्ण शंकर पातीं।।
संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।। ४२।।
कुलघाती यह सारे कुल को,
नीचे नरकों में ले जाते।
पिण्डोदक क्रिया नष्ट होते ही
पितर सदा को गिर जाते।।
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः।। ४३।।
इन संकरकारक दोषों से,
सारे सुकर्म हैं मिट जाते।
शाश्वत कुल जाति धर्म,
भगवन! इन सबके तत्क्षण मिट जाते।।
उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ।। ४४।।
हे कृष्ण ! विश्व में जिस जन का,
कुल धर्म नष्ट हो जाता है।
है सुना, घोर नरकों में वह,
कर चिर निवास,दुख पाता है।।
अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः।। ४५।।
होकर मतिमान सभी हम हैं,
करने को उद्यत पाप महा।
जो राज्य और सुख भोग हेतु,
करते निज कुल का नाश, अहा।।
यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्।। ४६।।
है उचित शस्त्र लेकर के यदि,
रण में मारें यह मुझे सभी।
होगी श्रेयस्कर मृत्यु यही,
प्रतिशोध न लूँगा-अरे, कभी।।
संजय उवाच
एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ।। ४७।।
संजय बोले हो शोकमग्न,
अर्जुन ऐसा ही कह कर के।।
रथ के पीछे जा बैठ गये,
अपने शर-धनु को तज करके।।

श्री मद्भगवद्गीता का 'अर्जुन विषाद योग' नामक प्रथम अध्याय समाप्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

द्वितीय अध्याय

संजय उवाच-

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ।।१।।

संजय बोले लख अर्जुन को ,
संतप्त नयन में नीर भरे।
बोले मधुसूदन अमिय वचन,
जिससे अशान्त कुछ धीर धरे।।

श्री भगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ।।२।।

हे पार्थ ! तुम्हें विषमस्थल में,
अज्ञान हुआ कैसे? बोलो।
यह है अकीर्तिकर अनुचित अति,
नाशक सुस्वर्ग आंखें खोलो।।

क्लेब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ।।३।।

तू बन न नपुंसक, कौन्तेय,
है कठिन यहाँ पर कौन काज।
तज, क्षुद्र हृदय की दुर्बलता,
युद्धार्थ खड़ा हो विहँस आज।।

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन।।४।।

अर्जुन बोले हे कृष्ण ! सुनो,
शर-धनु ले कैसे युद्ध करूँ।
मारूँ गुरू द्रोण, भीष्म को मैं,
उससे ही पहिले क्यों न मरूँ।।

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुंजीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान्।।५।।

इससे तो भिक्षा माँग,
उदर पोषण कर लेना शुभ होगा।
यदि मार स्वजन गुरु पूज्यों को,
सुख भोगों को मैंने भोगा।

न चैतद्विम्भ कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः।।६।।

यह भी तो नहीं जानते हम,
जीतेंगे अथवा हारेंगे।
जिनको न मार जीना चाहूँ,
क्या पता कि वे ही मारेंगे।।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।७।

कायरता से हो चुका नष्ट,
मेरा स्वभाव, मैं भ्रान्त-नाथ।
शरणागत शिष्य तुम्हारा हूँ,
कहिए, शुभ जो-रख वरद हाथ।।
कीजे प्रशस्त अब मेरा पथ,
गुरु बन मुझको अपना लीजे।
असमर्थ सदा मैं तुम समर्थ,
कुछ ऐसी कृपा कोर कीजे।।

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्।।८।।

पाऊँ यदि मैं देवत्व राज्य,
धन धान्य पूर्ण सुख भोग सभी।
पर क्या कर पायेंगे यह सब,
मेरे चिर दुख को दूर कभी।।

संजय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप ।
न योत्स्य इतिगोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह।।९।।

कहकर ऐसा-हे हृषीकेष,
मैं नहीं करूँगा युद्ध भूल।
अर्जुन चुप हो अति खिन्न हुआ,
ज्यों चुभे अजाने कई शूल।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः।। १०।।
दोनों सेनाओं बीच सुनो,
धृतराष्ट्र, कृष्ण हँसकर बोले।
उस शोकयुक्त अर्जुन को लख,
अपने मधु अरुण अधर खोले।।

श्री भगवानुवाच

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ।। ११।।
करता अशोच्य के लिये शोक,
पण्डित सम बातें करता है।
क्या कभी सुज्ञानी धर्म हेतु,
जीवन देने से डरता है।।
न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ।। १२।।
मैं था न कभी तू था न कभी,
अथवा यह नृप थे कभी नहीं।
होंगे न सभी यह क्या आगे,
अर्जुन ऐसा भी सही नहीं।।
देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ।। १३।।
जैसे बालापन युवा जरा, तन
में तीनों क्रम होते हैं।
वैसे ही जीव देह पाता,
पर धीर न मोहित होते हैं।।
मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।। १४।।
सर्दी गर्मी औ' सुखद दुखद,
यह विषय सदा ही नश्वर हैं।
कौन्तेय ! सहन कर तू उनको,
यह तो अनित्य क्षणभंगुर हैं।।
यं हि न व्यथयन्त्येते पुरूषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखंधीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।। १५।।
कर सकें न जिसको व्यथित विषय,
नर वही मुझे अति भाता है।
हे भारत ! दुख सुख सम जिसको,
वह धीर मोक्ष पा जाता है।।
नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ।। १६।।
अस्तित्व असत का नहीं,
और सत का भी यहाँ अभाव नहीं।
तत्वज्ञ जानते हैं-केवल,
सामर्थ्य किसी में और नहीं।।
अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।। १७।।
तू जान उसी को अविनाशी,
जिससे यह व्याप्त जगत सारा।
इस अविनाशी का नाश करे,
है कौन यहाँ पर बेचारा।।
अन्तवन्तइमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ।। १८।।
हैं नाश रहित अप्रमेय नित्य
जीवात्मा के यह सब शरीर।
जो नाशवान क्षणभंगुर हैं,
कर युद्ध शोच मत हो अधीर।।
य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।। १९।।
जो समझ आत्म को हन्ता,
औ' इसको मरा मानता है।
दोनों ही नहीं जानते वे,
यह मरा न मारा जाता है।।
न जायते म्रियते वा कदाचि न्नायं-
भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। २०।।
आत्मा न जन्मता मरता है,
होकर न पुनः होने वाला।
अज नित्य पुरातन शाश्वत है,
यह नाश नहीं होने वाला।।
वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्।। २१।।
जो पुरुष जान अज अव्यय नित,
अविनाशी इसे मानता है।
वह कैसे किसको मरवाता,
औ' कैसे किसे मारता है।।
वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि-
संयाति नवानि देही।। २२।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ज्यों त्याग पुराने वस्त्रों को ,
नर नूतन पट धारण करता।
त्यों त्याग पुरानी देह जीव,
अन्यान्य शरीरों को धरता।।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।। २३।।

शस्त्रादि काट सकते न इसे,
पावक न जला सकती इसको।
जल इसे न गीला कर सकता,
मारुत न सुखा सकता इसको।।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ।। २४।।

अच्छेद्य और अक्लेद्य पार्थ,
अदाह्य-अशोष्य पुरातन यह।
है निसन्देह थिर अचल नित्य,
व्यापक सर्वत्र सनातन यह।।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ।। २५।।

अव्यक्त अचिन्त्य धनंजय यह,
अविकारी कहते संत सभी।
तू जान अमरता आत्म की,
होगा न शोक से व्याप्त कभी।।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ।। २६।।

यदि सदा जन्म लेने वाला,
मरने वाला माने इसको।
तो भी हे महाबाहु अर्जुन,
है शोच्य कहो तू फिर किसको।।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।। २७।।

जग में जो पैदा होता है,
निश्चित है उसकी मृत्यु पार्थ।
मरने वाले का जन्मसिद्ध,
इसलिये न हो तू तनिक आर्त।।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ।। २८।।

अव्यक्त जन्म से पूर्व और,
अवयक्त मरण के बाद सभी।
होते हैं व्यक्त मध्य में ही,
प्राणी तू चिन्ता कर न कभी।।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति-
तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव-
कश्चित्।। २९।।

यह आत्मतत्व है बड़ा गहन,
कोई साश्चर्य देखता है।
वैसे ही कोई और इसे,
कहकर भी नहीं देखता है।।
आश्चर्य भांति सुनता कोई,
कोई इसको न मान पाता है।
कोई-कोई तो सुनकर भी ,
इस आत्मा को न जान पाता है।।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि।। ३०।।

कौन्तेय ! यह आत्मा तो,
नित है अवध्य सबके तन में।
इसलिये न कर तू तनिक सोच,
सम्पूर्ण भूत हित, निज मन में।।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते।। ३१।।

शुभ क्षात्र-धर्म के नाते तो,
तू भय करने के योग्य नहीं।
इस धर्म युद्ध से बढ़ कर तो,
क्षत्री को कुछ भी योग्य नहीं।।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्।। ३२।।

इस भाँति स्वर्ग के द्वार स्वयं,
हे पार्थ सुनो खुल जाते हैं।
कुछ भाग्यवान सच्चे क्षत्री,
ही तो यह अवसर पाते हैं।।

अथ चेत्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि।। ३३।।

यदि नहीं करोगे धर्म-युद्ध,
कैसे स्वधर्म पालन होगा।
यश और कीर्ति खोकर कैसे,
पापों का प्रक्षालन होगा।।

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ।। ३४।।

अपकीर्ति कथा तेरी अर्जुन,
चिरकाल रहेगी यह छाई।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो धीर जनों के लिये मरण से,
कहीं अधिक है दुखदाई।।
भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम्।। ३५।।
तू डरकर रण से भाग गया,
सब महारथी यह मानेंगे।
था श्रद्धास्पद तू जिन्हें पार्थ,
वह तुच्छ तुझे तब जानेंगे।।
अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम्।। ३६।।
तेरे बैरी खुश हो करके,
सब खोटी खरी सुनायेंगे।
इससे बढ़ क्या दुख होगा,
तुझको कायर बतलायेंगे।।
हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ।। ३७।।
मरने पर होगा स्वर्ग प्राप्त,
जीते पर पृथ्वी राज्य विजय।
'यह धरा वीर भोग्या' इससे,
युद्धार्थ खड़ा होकर निश्चय।।
सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ।। ३८।।
सुख-दुख सम लाभालाभ और,
जय हार समझ सम सभी कहीं।
हो समर हेतु तैयार वीर,
तो पाप लगेगा कभी नहीं।।
एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि।। ३९।।
है सुना सांख्य का ज्ञान अभी,
निष्काम कर्म का योग सुनो।
सद्बुद्धियुक्त हो तू जिससे,
छूटें भव बन्धन -इसे सुनो।।
नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।। ४०।।
है कर्मयोग का आदि अमिट,
औ बाधाओं से सदा परे।
इसका थोड़ा सा भी साधन,
कर देता क्षय सब भय गहरे।।
व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धियोऽव्यवसायिनाम्।। ४१।।
है निश्चयात्मक बुद्धि एक,
हे कुरुनन्दन इस शिव पथ में।
पर अज्ञ मानते हैं अनेक,
होते सुचक्र बहु ज्यों रथ में।।
यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ।। ४२।।
मानते सकामी बकवादी है
स्वर्ग श्रेष्ठ केवल अर्जुन।
इससे बढ़कर कुछ और नहीं,
पाते, वे जान मूढ़ दुर्जन।।
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ।। ४३।।
ऐश्वर्य भोग की प्राप्ति हेतु,
अविवेकी मिथ्या दुख सहते।
वे जन्म कर्म फल दायिनि हित,
शोभायुत वाणी को कहते ।।
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।। ४४।।
जो ऐसे भोगासक्त पुरुष,
चित उनका चंचल हो जाता।
है यही एक कारण जिससे,
निश्चय का भान न हो पाता।।
त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।। ४५।।
हैं विश्व प्रकाशक त्रिगुण यहाँ,
इससे तू निष्कामी ही बन।
निर्द्वन्द्व, नित्य सत्त्वस्थ योग,
तज क्षेम आत्म परायण बन।।
यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।। ४६।।
जैसे मिलते ही महा सिन्धु,
रहती न अपेक्षा लघु सर की।
होने पर साध्य-प्राप्त,यों क्या,
आवश्यक्ता साधनवर की।।
कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।। ४७।।
अधिकार तुझे है करने का,
केवल निष्काम कर्म नरवर।
दे फलासक्ति को त्याग,
यही जीवन का सच्चा मर्म सुघर।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

योगस्थ: कुरु कर्माणि संग त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योःसमो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। ४८।।
इसलिये असिद्धि सिद्धि में सम,
हो, त्याग सभी आसक्ति प्रबल।
योगस्थ कर्म कर हे अर्जुन,
यह ही है समता ज्ञान नवल।।
दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणा: फलहेतव:।। ४९।।
इस बुद्धि योग से, हे अर्जुन,
सब कर्म सकाम, तुच्छ-हैं सुन।
इसलिये शरण ले तू इसकी,
तज फलासक्ति अल्पज्ञ न बन।।
बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योग: कर्मसु कौशलम्।। ५०।।
जो बुद्धियुक्त है पुरुष,
उसे कब पाप पुण्य व्यापा अर्जुन?।
कर योग इसी से छूटेंगे,
तेरे सारे सु-कर्म बन्धन।।
कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिण:।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ता: पदं गच्छन्त्यनामयम् ।। ५१।।
हो बुद्धियोग से युक्त विज्ञ,
कर्मों का फल तज देते हैं।
वे जन्म बन्ध से मुक्त हुये,
अमृतमय पद पा लेते हैं।।
यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।। ५२।।
जब मोह रूप दलदल से यह,
तेरी मति, सुन-तर जायेगी।
वैराग्य सूर्य के उगते ही,
तब अघ रजनी ढर जायेगी।।
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ।। ५३।।
हो जायेगी यह बुद्धि विमल,
सिद्धान्त और तर्कों से जब।
निश्चय ही होगा प्राप्य तुझे,
समता का योग सुहावन तब।।

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधी:किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्।। ५४।।
सुन इस प्रकार प्रभु वचनों को,
पूछे अर्जुन ने प्रश्न चार।
लक्षण क्या समाधिस्थ जन का,
समझा कर कहिए, जगाधार!।।
फिर कहो कृपाकर हे केशव,
थिर बुद्धि बोलता है कैसे ?
रहता कैसे ? यह बतलाकर,
कहिये वह चलता है कैसे।।

श्री भगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्ट: स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।। ५५।।
सुन गूढ़ प्रश्न अर्जुन के यह,
श्री कृष्ण सहज ही मुसकाये।
एकाग्र चित्त हो सुनो सखे,
यह प्रश्न मुझे भी अति भाये।।
सब मनोकामनाओं को तज,
सन्तुष्ट स्वयं जो हो जाता।
जो आत्मा ही में करे रमण,
वह ही थिर बुद्धि कहा जाता।।
दु:खेष्वनुद्विग्नमना: सुखेषु विगतस्पृह:।
वीतरागभयक्रोध: स्थितधीर्मुनिरुच्यते।। ५६।।
उद्वेग रहित है मन जिसका,
दुख में सुख में न चाह जिसको।
जो वीतराग भयक्रोध मुक्त,
कहते थिर बुद्धि शान्त उसको।।
य: सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। ५७।।
सर्वत्र स्नेह से रहित हुआ,
जो शुभ में कभी प्रसन्न न हो।
थिर बुद्धि उसी की जो दुख पा,
मन में किंचित् भी खिन्न न हो।।
यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गनीव सर्वश: ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। ५८।।
कछुआ जैसे निज अंगों को,
लेता समेट चारों दिशि से।
थिर बुद्धि इन्द्रियाँ सिमटे जब,
वैसे ही विषयों की निशि से।।
विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन:।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।। ५९।।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हठ पूर्वक भोग त्याग करके,
आसक्ति नहीं जा पाती है।
केवल परमात्म सुदर्शन से,
यह तत्क्षण ही मिट जाती है।।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ।। ६०।।

करते हैं इन्द्रिय दमन हेतु,
विद्वान् अनेकों यत्न यहाँ।
हर लेती हैं फिर भी यह मन,
बलवती इन्द्रियाँ पार्थ, यहाँ।।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। ६१।।

कर सभी इन्द्रियाँ जो वश में,
हो योग युक्त मत्पर होता।
अर्जुन! थिर बुद्धि उसी की जो,
इन्द्रिय आधीन नहीं होता।।

ध्यायते विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।। ६२।।

आसक्ति, विषय के चिन्तन से,
होती इससे कामना नवल।
पड़ने से विघ्न कामना में,
होता है उद्भव क्रोध प्रबल।।

क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। ६३।।

उत्पन्न क्रोध से मोह, मोह से,
सुस्मृति विभ्रम हो जाती।
सुस्मृति विभ्रम से बुद्धिनाश,
फिर इससे मृत्यु निकट आती।।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयनन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।। ६४।।

हो राग द्वेष से हीन मनुज,
इन्द्रिय समूह वश है करता।
भोगता हुआ वह विषयों को,
मन में प्रसन्नता है भरता।।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।। ६५।।

मन में प्रसन्नता आते ही,
दुख का अभाव हो जाता है।
थिर होती बुद्धि शीघ्र उसकी,
जिसका चित शुभ हो जाता है।।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्।। ६६।।

साधना रहित नर के उर में,
आस्तिकता सुमति नहीं जैसे।
नास्तिक को शान्ति न सुलभ पार्थ,
फिर शान्ति रहित को सुख कैसे?।।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ।। ६७।।

विचरण करती इन्द्रियाँ मध्य,
मन जिस इन्द्रिय के साथ रहे।
वह बुद्धि हरण कर लेती ज्यों,
जल में नौका पा वायु वहे।।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। ६८।।

इन्द्रियाँ सभी विधि हैं जिसकी,
विषयों से वश में , अरे पार्थ !।
थिर बुद्धि उसी की होती है,
वह कभी न होता आर्त पार्थ !! ।।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।। ६९।।

जो निशा सर्व भूतों की है,
संयमी जागता है उस क्षण।
जिसमें सब जन जागा करते,
मुनियों की रात्रि वही निर्जन।।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रवशन्ति सर्वे स
शान्तिमाप्नोति न कामकामी।। ७०।।

परिपूर्ण सिंधु में आकर के,
सरिता जल रहता शान्त सदा।
अविचल गंभीर जलधि भी क्या,
हो सकता चंचल क्षुब्ध कदा ?
इस भाँति विषय सारे जाकर,
हो जाते जिसमें लीन सभी।
पाता वह शाश्वत शान्ति परम,
भोगों का इच्छुक नहीं कभी।।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ।। ७१।।

सम्पूर्ण कामनाओं को तज,
मद हीन सदा जो हो जाता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्मम निस्पृह होकर ही वह,
नर शान्ति परम पद जाता।।
एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।। ७२।।

ब्राह्मी स्थिति को पाकर के,
मोहित होता है कभी न नर।
हे पार्थ ! मृत्यु आने पर भी,
पाता वह ब्रह्मानन्द अमर।।

श्रीमद्भगवद्गीता का "सांख्य-योग" नामक दूसरा अध्याय समाप्त

तृतीय अध्याय

अर्जुन उवाच
ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव।। १।।
यदि ज्ञान श्रेष्ठ हैं कर्मों से,
जैसा कि आपने बतलाया।
फिर घोर कर्म हित क्यों करते,
मुझको प्रेरित यह क्या माया।।
व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्।। २।।
यह उलझन भरे वचन कहकर,
प्रभु मुझे भ्रमित क्यों करते हो।
कल्याण सुनिश्चित हो जिससे,
वह कहने में क्यों डरते हो।।
श्री भगवानुवाच
लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ।। ३।।
बोले श्री कृष्ण-सुनो अर्जुन,
निष्ठा हैं दो-बतलाया था।
ज्ञानी को ज्ञान योग कहकर,
योगी को कर्म बताया था।।
न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।। ४।।
कर्मों के अनारंभ से तो,
निष्कर्म नहीं हो सकते हैं।
कर्मों के त्याग मात्र से ही,
नर सिद्धि नहीं पा सकते है।।
न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ।। ५।।
बिन कर्म किये नर रह जाये,
क्षण भर- यह संभव नहीं कभी।
हो प्रकृति गुणों के वश निश्चित,
करने पड़ते हैं कर्म सभी।।
कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।। ६।।
मन से विषयों का चिन्तन कर,
जो कर्म इन्द्रियों को रोके।
मिथ्याचारी पाखण्डी वह,
कह मूर्ख उसे सब जग टोके।।
यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ।। ७।।
जो अनासक्त हो, इस मन से,
इन्द्रियाँ स्ववश कर लेता है।
कर कर्म इन्द्रियों से, जग
में-वह यश अर्जित कर लेता है।।
नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ।। ८।।
कुछ भी न कर्म करने से तो,
श्रेयस्कर करना कर्म श्रेष्ठ।
बिन किये कर्म, तन सिद्धि कहाँ ?
कर नियत कर्म अर्जुन ! यथेष्ट।।
यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंग समाचर ।। ९।।
बन्धन के भय से कर्मों का,
परित्याग न उचित कभी प्रियवर।
हो अनासक्त परमेश्वर-हित,
कर कर्मसदा सम्यक् सुन्दर।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।। १०।।
रच, यज्ञ प्रजा सह ब्रह्मा ने
सबके हितार्थ था यही कहा।
पूरी हो मनोकामनाएं इससे
धन मति गुण-ज्ञान महा।।
देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ।। ११।।
मख से होंगे सुर तुष्ट,
सत्य वे करें तुम्हें भी मुदित सदा।
हो आपस में यों सहयोगी,
पाओ सुकीर्ति कल्याण सदा।।
इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ।। १२।।
हो तुष्ट देव बिन माँगे ही,
देंगे प्रिय भोगों को सुन्दर।
लेगे, यदि उनको दिये बिना,
तो कहलाओगे तुम तस्कर।।
यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।।१३।।
होते सब पापों से विमुक्त,
यज्ञावशिष्ट जो खाते हैं।
निज हेतु पकाते जो पापी,
वे तो पापो को पाते हैं।।
अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ।। १४।।
प्राणी होते अन्न से,
और -इसकी उत्पत्ति वृष्टि से है।
यह वृष्टि यज्ञ से होती है,
मख की उत्पत्ति कर्म से है।।
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।। १५।।
तू जान कर्म को वेदोद्भव,
अरु वेद सदा अविनाशी से।
है इस प्रकार यज्ञ में ब्रह्म,
परमाक्षर नित्य सदा ही से।।
एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।। १६।।
जो सृष्टि चक्र अनुसार न चल,
कर्मों को नहीं किया करता।
पापायु मूढ़ भूभार बना,
कामी वह व्यर्थ जिया करता।।
यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते।। १७।।
रहता जो आत्म तृप्त मानव,
आत्मा में ही सन्तुष्ट सदा।
ऐसे आत्मारत को बोलो,
हो सकता कोई कार्य कदा।।
नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः।। १८।।
करने से और न करने से,
उसको होता कुछ खेद नहीं।
तो भी वह करता जग हितार्थ शुभ कर्म,
किसी में भेद नहीं।।
तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः।। १९।।
इससे तू होकर अनासक्त,
कर्तव्य कर्म को कर निश्चय।
पाता ऐसा नर शीघ्र ब्रह्म,
अनुपम अविनाशी पद अक्षय।।
कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ।। २०।।
आसक्ति हीन कर्मों द्वारा
जनकादि सिद्धि को प्राप्त हुये।
फिर देख लोक संग्रह यों कर,
जिससे तुमको अघ नहीं छुये।।
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।। २१।।
जो जो करता आचरण श्रेष्ठ,
नर और वही करने लगते।
जो कुछ कर देता, वह प्रमाण,
उस पर चल जन तरने लगते।।
न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ।। २२।।
है कुछ भी नहीं अप्राप्त मुझे,
कर्तव्य न कोई शेष, पार्थ।
तो भी सबके कल्याण हेतु,
करता रहता हूँ कर्म सार्थ।।
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।। २३।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

यदि, कुन्ती-पुत्र अतन्द्रित हो,
मैं कोई कर्म न करूँ कभी।
लग जाँय अनुकरण करने में,
मेरा ही निश्चित मनुज सभी।।
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ।। २४।।
रहने पर मेरे बिना कर्म,
सब लोक भ्रष्ट हो जायेंगे।
मैं बनूँ वर्ण-संकर-कर्त्ता,
सब मृत्युगोद सो जायेंगे।।
सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ।। २५।।
करते ज्यों कर्मासक्त हुये,
अज्ञानी अपने सभी काम।
त्यों अनासक्त हो करे विज्ञ,
जग हित शिक्षा के सभी काम।।
न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्।। २६।।
डाले न अज्ञ नर की मति में,
भ्रम बुद्धि भेद विद्वान कभी।
हो योग युक्त सब कर्म करें,
उनसे करवाये वही सभी।।
प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ।। २७।।
होते हैं प्रकृति गुणों द्वारा सब
कर्म स्वयं ही हे अर्जुन!।
है मान बैठता-'मैं कर्ता'- फिर भी
विमूढ़, दम्भी-दुर्जन।।
तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते।। २८।।
गुण और कर्म के वर्गों से,
तत्वज्ञ-न मोहित होता है।
गुण सदा गुणों में निहित मान,
आसक्त, न वह फिर होता है।।
प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत्।। २९।।
जो प्रकृति गुणों से मोहित हो,
गुण और कर्म में लीन अभी।
उन अज्ञमूढ़ लोगों को तो,
विद्वान करे विचलित न कभी।।
मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ।। ३०।।
तू ध्यान निष्ठ मन से अर्जुन,
सब कर्म मुझे ही अर्पित कर।
हो निर्मम आशरहित, निर्भय-कर
युद्ध, धर्म का पालन कर।।
ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः।।३१।।
जो कोई भी जन दोषरहित,
श्रद्धा से ऐसा करते हैं।
वे सब कर्मों के मुक्त हुये,
निस्पृह हो विचरण करते हैं।।
ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढ़ांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ।। ३२।।
जो चलें न मेरे इस मत पर,
तुम उन्हें दोष दर्शी मानो।
उन मूढ़ चित्तवालों को तो,
निश्चय ही सुपथ-भ्रष्ट जानो।।
सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।। ३३।।
हो प्रकृति गुणों के वश,
ज्ञानी-अज्ञानी करते कर्म यहाँ।
निग्रह क्या कर सकता इसमें,
उसमें इतनी सामर्थ्य कहाँ।।
इन्द्रियस्येन्द्रियार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ।। ३४।।
सब इन्द्रिय-भोगो में सुस्थित,
जो राग और है द्वेष,अहा।
हो कभी न उन दोनों के वश,
हैं यह पथ-बाधक शत्रु महा।।
श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।। ३५।।
गुण हीन स्वधर्म परम उत्तम,
पर धर्म नहीं हो सकता, वर।
पर-धर्म सदा भयकारी अति,
मरना स्वधर्म में श्रेयस्कर।।

अर्जुन उवाच

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः।। ३६।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बल-पूर्वक और बिना इच्छा
के कौन नियोजित है करता।
हे कृष्ण ! कहो किससे प्रेरित,
हो नर यह पाप किया करता।।

श्री भगवानुवाच

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।। ३७।।
उत्पन्न रजोगुण से होकर,
यह काम-क्रोध ही महा-अशन।
है यही कराता पाप सदा,
है यही महा वैरी, अर्जुन।।

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ।। ३८।।
ज्यों अग्नि, धूम से आच्छादित,
मल से दर्पण ढक जाता है।
ज्यो ढका'जेर' से गर्भ,
काम से त्यों सु ज्ञान ढक जाता है।।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ।। ३९।।
यह काम अग्नि के सदृश,
सुनो हरदम अतृप्त ही है रहता।
है यही ज्ञानियों का वैरी,
जिससे यह ज्ञान ढका रहता।।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याष्ठिान मुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ।। ४०।।
मन-बुद्धि और इन्द्रियाँ गेह,
जिसमे यह काम सदा रहता।
ढक ज्ञान, उन्हीं के द्वारा ही,
जीवात्मा को मोहित करता।।

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ।। ४१।।
इसलिये पाण्डु सुत ! तू पहिले,
इन्द्रियाँ सभी अपने वश कर।
विज्ञान ज्ञान का नाशक जो, यह
काम अरे, इसका वध कर।।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ।। ४२।।
हैं सूक्ष्म बली इन्द्रियाँ, और
मन हैं इनसे सर्वथा परे।
है बुद्धि, परे मन से आत्मा,
मति से भी है अत्यधिक परे।।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ।। ४३।।
यों आत्म ज्ञान को जान पार्थ,
मति के द्वारा मन वश में कर।
फिर काम रूप दुर्जय रिपु
का कर अन्त, अरे बन जा शंकर।।

श्री मद्भगवद्गीता का 'कर्म योग' नामक तीसरा अध्याय समाप्त

चतुर्थ अध्याय

श्रीभगवानुवाच

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवे ब्रवीत्।। १।।
था कल्प आदि में यह अर्जुन,
मैंने रवि के प्रति योग कहा।
फिर कहा सूर्य ने मनु के प्रति,
मनु ने निज सुत से इसे कहा।।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप।। २।।
कर परम्परा से प्राप्त इसे,
राजर्षि जनों ने जाना था।
वह कालान्तर में हुआ लोप,
जिसको महानतम माना था।।

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।। ३।।
वह ही अब योग पुरातन यह
कहता हूँ मैं तेरे हितार्थ।
है, क्योंकि भक्त तू सखा परम,
सुन मर्म भरा शुभ, योग, पार्थ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्जुन उवाच

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति।। ४।।
है लिया आपने जन्म अभी,
रवि बहुत पूर्व थे हुये, नाथ !
था कहा कल्प के आदि इसे,
कैसे मानूँ ? हे विश्वनाथ।।

श्रीभगवानुवाच

बहूनि में व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ।। ५।।
हो चुके बहुत से तेरे भी मेरे भी
जन्म यहाँ, अर्जुन।
तू नहीं जानता उन सबको,
पर मुझे ज्ञान है उनका, सुन।।
अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ।। ६।।
हो अज-अव्यय अविनाशी भी,
मैं मनुज-रूप धारण करता।
हो प्रकट योग माया से फिर,
सारा भू-भार हरण करता।।
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।। ७।।
जब जब होती है धर्म-हानि,
होती अधर्म की वृद्धि जहाँ।
निश्चित ही, कुन्ती पुत्र !
सुनो तब-तब होता मैं प्रकट वहाँ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।। ८।।
रक्षा करने सत्पुरुषों की,
करने दुष्टों का दमन सदा।
सुस्थापित करने धर्म श्रेष्ठ,
युग-युग में होता प्रकट सदा।।
जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देह पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।। ९।
है दिव्य अलौकिक कर्म-जन्म मेरा,
यों जो जानता सदय।
हो पुनर्जन्म से मुक्त वही,
पाता मुझको यह ध्रुव निश्चय।।
वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः।। १०।।
हो ज्ञान-रूप तप से पवित्र,
भय-राग-क्रोध से हीन सखे।
वे मेरे शरणागत होकर पा
चुके पूर्व में मुझे, सखे।।
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।। ११।।
मैं उनको वैसे भजता हूँ,
जो मुझको जैसे भजता है।
यह मर्म जानकर ही तो जन,
मर्म पथ पर चल सब तजता है।।
काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ।। १२।।
प्रिय, सुनो सकामी पुरुषों को,
देवों की पूजा भाती है।
थोड़े श्रम से ही शीघ्र उन्हें,
कर्मजा सिद्धि मिल जाती है।।
चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।। १३।।
ब्राह्मण-क्षत्रिय औ, वैश्य-शूद्र,
गुण-कर्म-वर्ग से बने सभी।
रच उन्हें अकर्ता हूँ फिर भी,
मुझको कर्ता मत मान कभी।।
न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते।। १४।।
निस्पृह मैं कर्मों के फल से,
कर सकते कर्म न लिप्त कभी।
जो मुझे जानता, हो जाता,
सारे कर्मों से मुक्त तभी।।
एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ।। १५।।
यों जान, पूर्वजों के द्वारा,
जो किया गया कर्तव्य-कर्म।
हो जिससे हृदय शान्त पावन,
कर तू वे ही कर्म धर्म।।
किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।। १६।।
क्या कर्म ? और क्या है अकर्म ?
इसमें बुध भी भ्रम जाते हैं।
कहता वह कर्म, जान जिससे,
सब भव-बन्धन कट जाते हैं।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मण:।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गति: ।। १७।।
है क्या स्वरूप इन दोनों का,
एवं विकर्म का भी अर्जुन ?
जानना चाहिए, हमें सभी-है क्योंकि,
कर्म-गति बड़ी गहन।।
कर्मण्यकर्म य: पश्येदकर्मणि च कर्म य: ।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्त: कृत्स्नकर्मकृत्।। १८।।
जो लखे कर्म में ही अकर्म,
देखे अकर्म में कर्म सदा।
सम्पूर्ण- कर्म- कर्ता योगी,
वह ही धीमान महान सदा।।
यस्य सर्वे समारम्भा: कामसंकल्पवर्जिता:।
ज्ञानग्निदग्धकर्माणं तमाहु: पण्डितं बुधा:।। १९।।
कामना-सहित, संकल्प-हीन,
हैं जिसके सारे कार्य यहाँ।
ज्ञानाग्नि-दग्ध हो चुके कर्म,
ज्ञानी भी कहते उसे महा।।
त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रय:।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति स:।। २०।।
सांसारिक-आश्रय त्याग सभी,
जो हरदम तृप्ति लिया करता।
तज फलासक्ति हो कर्म निरत,
वह है कुछ भी न किया करता।।
निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रह: ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।। २१।।
है जीत लिया तन-मन जिसने,
सम्पूर्ण परिग्रह को तज कर ।
होता न पाप को प्राप्त कभी,
करके वह दैहिक-कर्म सुघर ।।
यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वतीतो विमत्सर:।
सम: सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते।। २२।।
जो स्वत:-प्राप्ति-सन्तुष्ट,
और -है द्वन्द्वातीत विमत्सर नर ।
बँधता न कर्म करके भी वह,
सम सिद्धि-असिद्धि जिसे, नरवर ।।
गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतस:।
यज्ञायाचरत: कर्म समग्रं प्रविलीयते ।। २३।।
यज्ञार्थ कर्म करते जो जन,
होकर निर्भय, आसक्ति-हीन।
सम्पूर्ण कर्म कटते उसके,
वह मुक्त-ब्रह्म में सदा लीन।।
ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हवि, ब्रह्माग्नौ, ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमधिना ।। २४।।
है अर्पण ब्रह्म, ब्रह्म हवि भी,
ब्रह्माग्नि ब्रह्मकर्तादि हुतम्।
उस ब्रह्म-कर्म-युत जन द्वारा,
इसलिये प्राप्य भी ब्रह्म शुभम्।।
दैवमेवापरे यज्ञं योगिन: पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति।। २५।।
योगी जन अन्य, किया करते,
हैं देव यज्ञ सम्यक् प्रकार।
करते हैं ब्रह्म-अग्नि में हवि-मख
को मख के द्वारा विचार।।
श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ।। २६।।
श्रोतादिक सभी इन्द्रियों को,
कुछ संयम-अग्नि हवन करते ।
कुछ इन्द्रियाग्नि में शब्दादिक,
विषयों को हवन हेतु धरते।।
सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते।। २७।।
सम्पूर्ण इन्द्रियों की चेष्टा, औ,
प्राणों के व्यापारों को।
वे ज्ञान-दीप्त योगानल में,
कर हवन न ध्याते औरों को।।
द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतय: संशितव्रता:।। २८।।
करते हैं द्रव्य-यज्ञ कोई,
तप-योग -यज्ञ करते कोई।
करके कुछ तीक्ष्ण अहिंसा-व्रत,
फिर ज्ञान यज्ञ करते कोई।।
अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणा:।। २९।।
कुछ कर अपान को प्राण बीच,
कुछ कर अपान में प्राण हवन।
गति रोक अपान प्राण की कुछ,
करते हैं प्राणायाम सुजन।।
अपरे नियताहारा: प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्यते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषा: ।। ३०।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

करते प्राणों में प्राण हवन,
नियताहारा कुछ योगी जन।
यज्ञों से नष्ट हुआ कल्मष जिनका,
वे यज्ञ-विज्ञ हैं जन।।

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम।। ३१।।

पा जाते ब्रह्म सनातन,
जो-यज्ञों का ज्ञानामृत पीते।
हैं यज्ञ-हीन को लोक दुखद,
परलोक कहो कैसे जीते।।

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे।। ३२।।

हैं बहु प्रकार के यज्ञ जिन्हें वेदों
ने जग-हित गाया है।
तू समझ उन्हें सबको 'कर्मज' ले
जान 'तत्व' जो भाया है।।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।। ३३।।

है द्रव्य-यज्ञ से श्रेष्ठ, पार्थ ! यह
ज्ञान यज्ञ, तू उर धर-ले।
हो जाते लीन ज्ञान में सब,
यह कर्म-सोच तू कुछ कर ले।।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः।। ३४।।

करके प्रणाम, सेवायुत हो,
तू कर विज्ञों से प्रश्न सुघर।
मर्मज्ञ, तत्वदर्शी-ज्ञानी,
तुझको देंगे उपदेश अमर।।

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ।। ३५।।

जिसको कि जानकर हे अर्जुन !
फिर होगा तुझको मोह नहीं।
बन जायेगा तू समदर्शी,
होगा न किसी से द्रोह कहीं।।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ।। ३६।।

यदि सभी पापियों से बढ़ तू,
है अधिक पाप करने वाला।
इस ज्ञान-नाव द्वारा निश्चित तर जायेगा,
मति भ्रम वाला।।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।। ३७।।

प्रज्वलित अग्नि ज्यों ईंधन को,
कर देती भस्मसात, अर्जुन !
वैसे ही ज्ञान-अग्नि करती-कर्मों
को भस्मसात, ले सुन।।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।। ३८।।

है नहीं ज्ञान के सम पावन
कुछ भी साधन ऐसा सुन्दर !
स्वयमेव समत्व-योग द्वारा पाता
नर आत्मा अनुभव कर।।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।। ३९।।

जो श्रद्धावान जितेन्द्रिय जन
मत्कर्म-परायण हो जाता।
करके वह ज्ञान प्राप्त सत्वर,
चिर शान्ति अचल है पा जाता।।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।। ४०।।

जो श्रद्धा रहित, अज्ञ भ्रम-युत
उसका सब सुख खो जाता है।
संशय-युत जन का लोक और
परलोक भ्रष्ट हो जाता है।।

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय।। ४१।।

कर दिये समत्व योग द्वारा,
भगवत अर्पण हैं कर्म सभी।
कट गये ज्ञान से भ्रम जिसके
उसको न बाँधते कर्म कभी।।

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत।। ४२।।

निष्काम योग में सु-स्थित हो,
अज्ञान देख, मत हो अधीर !
तू काट ज्ञान असि से संशय,
युद्धार्थ खड़ा हो-कर्मवीर !!

श्री मद्भगवद्गीता का 'ज्ञान कर्म संन्यास योग' नामक चौथा अध्याय समाप्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पंचम अध्याय

अर्जुन उवाच

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्।। १।।

हे कृष्ण ! कभी संन्यास श्रेष्ठ,
फिर कभी बताते योग, अहो !
दोनों में से जो एक श्रेय,
मुझको निश्चय कर वही कहो !!

श्री भगवानुवाच

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगी विशिष्यते।। २।।

वैसे तो अर्जुन, योग और
संन्यास उभय हैं भवहारी।
है कर्म योग निष्काम श्रेष्ठ,
अति सुलभ और मंगलकारी।।

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ।। ३।।

करता न द्वेष-आकांक्षा जो,
संन्यासी वही नित्य अर्जुन।
निर्द्वन्द्व, उसे कब व्याप सका,
सर्वशः मुक्त यह भव बन्धन।।

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ।। ४।।

है'सांख्य' 'योग' यह अलग-अलग
करते हैं मूढ़, न पंडितजन।
पाते साधक परमेश्वर को,
दोनों का कर सम्यक साधन।।

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति।।५।।

पाते जो ज्ञानी परमधाम,
योगी भी उसको पाते हैं।
समझें जो 'सांख्य'-'योग' को सम,
वे ही यथार्थ लख पाते हैं।।

सन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति।। ६।।

निष्काम-कर्म के बिना कहो,
संन्यास सुलभ कैसे होगा।
निष्काम-कर्म-योगी मुनि को,
वह ब्रह्म अलभ कैसे होगा।।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ।। ७।।

जो विजितात्मा है शुद्धमना,
जो इन्द्रिय-लोलुप नहीं कभी।
समदर्शी योग-युक्त जन को,
कर सकते कर्म न लिप्त कभी।।

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्।। ८।।

तत्वज्ञ 'सांख्य-योगी' लखता,
सुनता, छूता, सूँघता हुआ।
खाता, जाता, बोलता हुआ,
सोता एवं त्यागता हुआ।।

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्।। ९।।

लेता वह श्वाँस, ग्रहण करता,
मींचता नेत्र खोलता हुआ।
इन्द्रियाँ स्वतः ही वर्त रहीं,
मानें जैसे कुछ नहीं हुआ।।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगंत्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ।। १०।।

जो सभी कर्म प्रभु अर्पित कर,
आसक्ति-त्याग नित कर्म करे।
ज्यों कमल पत्र जलसे न लिप्त,
त्यों वह पापों से सदा परे।।

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये।। ११।।

निष्काम कर्म योगी केवल,
इन्द्रिय मन बुद्धि देह से भी।
करते हैं आत्म शुद्धि के हित,
आसक्ति त्यागकर कर्म सभी।।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ।। १२।।

प्रभु अर्पित कर कर्मों के फल,
वह युक्त शान्ति है पा जाता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हो फलासक्त, वह नर अयुक्त-कामना
रज्जु से बँध जाता।।
सर्वकर्माणि मनसा संन्यास्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ।। १३।।
बन सदा अकर्ता, वशी पुरुष,
आत्मा में सुस्थित रहता है।
नौ द्वारे वाले तन गृह में,
वह धीर जितेन्द्रिय बसता है।।
न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ।। १४।।
कर्तृत्व-कर्म कर्मों के फल,
संयोग न रचता ईश कभी।
गुण सदा वर्त्तते हैं गुण में
यों प्रकृति वर्तती सहज सभी।।
नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।। १५।।
करता न ग्रहण शुभ-कर्म, पाप ईश्वर,
यह निश्चित ही जानो।
पर ढका ज्ञान, माया द्वारा-
इससे सब मोहित हैं-मानो।।
ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्।। १६।।
पर, आत्म ज्ञान द्वारा जिनका,
अज्ञान हृदय से हरता है।
वह ज्ञान सूर्य के सदृश स्वयं ही
ब्रह्म प्रकाशित करता है।।
तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ।। १७।।
तद्रूप बुद्धि-मन है जिनका,
जो ब्रह्म परायण,निष्ठ सदा।
निष्पाप ज्ञान द्वारा ही,
वे-हैं पुनर्जन्म से मुक्त सदा।।
विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि, चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।। १८।।
द्विज श्रेष्ठ स्वपच में भी ज्ञानी,
कोई अन्तर परखते हैं।
चाहे हाथी हो, श्वान,
धेनु-सम-भाव सभी में रखते हैं।।
इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः।।१९।।
है निरत, साम्य में मन जिनका,
संसार- मुक्त हैं, ऐसे नर !
निर्दोष ब्रह्म - सम ही हैं वे,
नित ब्रह्म लीन योगी नरवर !!
न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ।। २०।।
जो प्रिय को पाकर मुदित न हो,
पा अप्रिय को उद्विग्न कभी।
संशय विहीन थिर बुद्धि, ब्रह्मविद्,
आत्मलीन वह, कहें सभी।।
बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ।। २१।।
आसक्ति रहित जो भोगों में,
पाता प्रभु ध्यान-जनित सुख को।
वह ब्रह्मयोग युत महापुरुष,
अनुभव करता अक्षय सुख को।।
ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ।। २२।।
हैं क्षणिक सुखद, सब भोग सदा,
होते यथार्थ में दुखदाई।
हैं वे अनित्य, रमते न सुबुध-इसमें
ही है हित, सच भाई।।
शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः।। २३।।
जो काम क्रोध आवेग प्रबल,
सहने में सक्षम हो जाता ।
वह ही योगी, चिर सुखी पुरुष,
उनसे अजेय फिर हो जाता।।
योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगं ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ।। २४।।
जो अन्तः सुखी, आत्मरत नित,
है जिसकी आत्मा में प्रकाश।
निश्चय वह योगी करता है,
उस पूर्ण ब्रह्म में ही निवास।।
लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः।। २५।।
रत, सर्व-भूत-हित, नष्ट पाप,
भ्रम रहित सदा हैं जो जन भी।
एकाग्र चित्त, वे ध्यान मग्न-पाते हैं
ब्रह्म महान, सभी।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ।। २६ ।।
जो काम क्रोध से हैं वियुक्त,
जानें सब जग में ब्रह्म व्याप्त ।
है जीत लिया मन उनको,
तो-सर्वत्र सदा है ब्रह्म प्राप्त ।।

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ।। २७ ।।
सम्यक प्रकार से नयन दृष्टि,
जो भृकुटि -मध्य संयम करके ।
तज,विषय-भोग सारे अपान, औ,
प्राणवायु को सम करके ।।

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ।। २८ ।।
इन्द्रियाँ-बुद्धि-मन जीत चुका,
जो मोक्ष परायण सदा युक्त ।
वह मुनि, इच्छा-भय-क्रोध-रहित होकर,
रहता है सदा मुक्त ।।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ।। २९ ।।
जो यज्ञ और तप का भोक्ता,
मेरे को सदा जानता है ।
सबका प्रिय सुहृद, महेश्वर मैं,
यह जान, शान्ति वह पाता है ।।

श्री मद्भगवद्गीता का 'संन्यास-योग' नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त

षष्ठोऽध्यायः

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

श्री भगवानुवाच

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ।। १ ।।
जो सभी क्रिया-त्यागी निरग्नि,
संन्यासी योगी कभी न वह ।
पर, फलासक्ति तज, जो करता
योगी सु-कर्म संन्यासी वह ।।

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ।। २ ।।
जिसको संन्यास कहा वह ही है योग,
दत्तचित हो तू सुन ।
संकल्पों के संन्यास बिना,
है कौन यहाँ योगी ? अर्जुन ।।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ।। ३ ।।
यदि योग साधना का इच्छुक,
है हेतु सदा निष्काम-कर्म ।
पर,योगारूढ़ जनों को तो
संकल्प-शमन ही हेतु धर्म ।।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ।। ४ ।।
आसक्ति न इन्द्रिय-भोगों में,
कर्मों में जो आसक्त न हो ।
ऐसा संकल्प सर्व त्यागी,
उसको ही योगारूढ कहो ।।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।। ५ ।।
उद्धार स्वयं तू अपना कर,
यह दुर्लभ तन क्यों खोता है ।
है अन्य न कोई शत्रु-मित्र,
अपना आत्मा ही होता है ।।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ।। ६ ।।
जो जीत स्वयं को लेता है,
उसका आत्मा ही मित्र, सदा ।
जो अपने को न जीत पाता,
उसका आत्मा ही शत्रु सदा ।।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ।। ७ ।।
है सदा जितात्मा, शान्त और
मानापमान में है जो सम ।
शीतोष्ण और सुख-दुख में सम,
ऐसे नर को कुछ अधिक न कम ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः।। ८।।
जो है कूटस्थ, जितेन्द्रिय औ'
विज्ञान-ज्ञान से तृप्त जान।
सम, स्वर्ण और मिट्टी-पत्थर जिसको,
वह योगी ही महान।।

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते।। ९।।
जो उदासीन-मध्यस्थ-सुहृद-वैरी-
इन सब में है समान।
पापिष्ट, साधु बान्धव, वयस्क में
जो सम, वह है महान।।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ।। १०।।
जो योगी, संग्रह-हीन, जितेन्द्रिय
हो नित है वासना-रहित।
हो एकाकी सुस्थित हो,
निज आत्मा को प्रभु में करे निरत।।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।। ११।।
कुश-वसन और मृगछाला को
शुचि शुद्ध भूमि में ही रखकर।
अपने आसन को उच्च न रख,
नीचे में भी न करे सुस्थिर।।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ।। १२।।
उस आसन पर फिर बैठ,
स्वस्थ हो- निज मन को एकाग्र करे।
बन सदा जितेन्द्रिय, आत्म-शुद्धि-हित,
अर्जुन योगाभ्यास करे।।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।। १३।।
काया-शिर-ग्रीवा को समान,
दृढ़ धारण करते हुये अचल।
नासाग्र भाग अपना लखकर,
देखे न कहीं फिर, हो अविचल।।

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः।। १४।।
भय-रहित, ब्रह्मचारी, प्रशान्त
आत्मा-सर्वार्थ मुक्त होकर।
मन वश में कर, मम निरत चित्त,
मत्पर निश्चय सुस्थिर होकर।।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति।। १५।।
यों नित स्वाधीन मना बनकर,
मेरे में सुस्थित हो जाता।
योगी, निर्वाण परम पाकर-वह
शान्ति सहज ही पा जाता।।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।। १६।।
होता न सिद्ध यह योग,
बहुत खाने-कम खाने वाले को।
अति स्वप्न शील को नहीं,
नहीं अत्यन्त जागने वाले को।।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।। १७।।
नियमित आहार-विहारी को,
सोने या जगने वाले को।
दुख नाशक-योग प्राप्त होता,
शुभ चेष्टा करने वाले को।।

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृह सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा।। १८।।
हो जाता सुस्थित चित्त नियत,
जब परमात्मा में लीन सदा।
निस्पृह वह, सभी कामना तज-हो
जाता योगी व्यक्ति तदा।।

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचितस्य युञ्जतो योगमात्मनः ।। १९ ।।
है रहित वायु से सुस्थल में
ज्यों दीप सदा जलता रहता।
त्यों ही निशि दिन योगी का चित,
परमात्म-ध्यान में रत रहता।।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति।। २०।।
यह चित्त निरुद्ध योग से हो,
हो जाता है उपराम यदा।
करता साक्षात ब्रह्म का वह,
आत्मा में रहता तुष्ट सदा।।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः।। २१।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन्द्रियातीत जो बुद्धि-ग्राह्य,
आनन्द अनन्त प्राप्त करता।
तब सुस्थित इसी अवस्था में
योगी प्रभु-लीन सदा रहता।।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।। २२।।

परमात्म-लाभ से बढ़कर जो
मानता नहीं कुछ और यहाँ।
दुख, उसको लीन अवस्था में,
करदे विचलित सामर्थ्य कहाँ।।

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।। २३।।

जो दुःख रूप-भव-योग-रहित,
वह योग-ज्ञेय है हे अर्जुन।
निश्चय पूर्वक करणीय योग,
वह तत्पर चित से, ले तू सुन।।

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ।। २४।।

संकल्पों से होने वाली,
सम्पूर्ण कामनाओं को तज।
कर इन्द्रिय गण, मन द्वारा वश,
सम्यक प्रकार से उसको भज।।

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्।। २५।।

अतिरिक्त न है प्रभु से कुछ भी,
सुस्थित होकर वह ध्यान धरे।
फिर शनैः शनैः हो शान्त,
धैर्ययुत मति से मन स्वाधीन करे।।

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ।। २६।।

यह अस्थिर-चंचल मन,
जिस-जिस कारण से यहाँ-वहाँ विचरे।
उस उससे उसको रोक,
पुनः परमात्मा में लव-लीन करे।।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ।। २७।।

जो है प्रशान्त-मन,पाप -रहित,
जिसका रज गुण हो शान्त गया।
उस जीवन-मुक्त सु-योगी को,
मिलता है परमानन्द नया।।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ।। २८।।

यों आत्मा को कर ब्रह्म-निरत,
निर्द्वन्द्व सदा विचरण करता।
प्रभु-प्राप्ति-रूप-सुख को वह नित,
आत्मा में है अनुभव करता।।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ।। २९।।

सर्वत्र, योग-युक्तात्मा वह,
फिर समदर्शी हो जाता है।
सम्पूर्ण भूत आत्मा में, जो आत्मा
को सब में पाता है।।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।। ३०।।

जो देखे मुझे सभी में वह,
उन सब को मुझमें पाता है।
मैं उससे विलग नहीं, अर्जुन !
वह मुझसे विलग न जाता है।।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।। ३१।।

सब भूतों में सुस्थित मुझको
एकत्व भाव से जो भजता।
सर्वथा वर्तता वह योगी मुझको है
नहीं कभी तजता।।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।। ३२।।

जो योगी अपने सदृश सभी,
भूतों को देखे है महान।
सम देखे, सब में सुख-दुख भी
हे पार्थ ! वही योगी प्रधान।।

अर्जुन उवाच

यो यं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ।। ३३।।

है साम्य भाव से ध्यान योग,
जो कहा आपने मधुसूदन।
थिर नहीं देखता मैं उसको,
हे हरि चंचल होने से मन।।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।। ३४।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हे कृष्ण ! क्योंकि मन अति चंचल,
है दृढ़ प्रमथन-स्वभाव वाला।
इसलिये वायु की भाँति सदा,
दुष्कर वह वश होने वाला।।

श्रीभगवानुवाच

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।। ३५।।

श्रीहरि बोले-मन अति चंचल,
दुर्निग्रह, कुन्ती सुत-अर्जुन।
वश में होता, यह करने से
वैराग्य तथा अभ्यास कठिन।।

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः।। ३६।।

दुष्प्राप्य उन्हें है योग सदा,
जिनका मन रहता चपल व्यथित।
साधन से पाना सहज उसे,
मन वश जिसके यह मेरा मत।।

अर्जुन उवाच

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति।। ३७।।

बोले तब पार्थ योग विचलित है
शिथिल यत्न वाला जो जन।
वह योग सिद्धि को प्राप्त न हो,
पाता है किस गति को भगवन ?

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि।। ३८।।

क्या ब्रह्म प्राप्ति के पथ में वह,
सचमुच विमूढ़ हो जाता है ?
वह छिन्न-भिन्न घन के सदृश्य क्या
उभय भ्रष्ट हो जाता है ?

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते।। ३९।।

मेरे इस संशय को अशेष करने
में तुम केवल समर्थ।
तज तुम्हें मात्र मेटे यह भ्रम,
है कौन यहाँ ऐसा समर्थ।।

श्रीभगवानुवाच

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति।। ४०।।

बोले श्रीकृष्ण-कहीं ऐसा,
नर नाश नहीं होने वाला।
पाता न कभी दुर्गति अर्जुन,
शुभकर्म सदा करने वाला।।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।। ४१।।

कर प्राप्त श्रेष्ठ लोकों को वह,
उनमें वर्षों तक रहता है।
फिर पुण्यवान श्रीमानों के गृह
योग भ्रष्ट तन धरता है।।

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ।। ४२।।

अथवा धीमान योगियों के कुल
में वह जन्म ग्रहण करता।
दुर्लभ है ऐसा जन्म यहाँ,
जो नहीं सभी को है मिलता।।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन।। ४३।।

वह पूर्व-संस्कारों से ही
अर्जित कर लेता बुद्धि योग।
फिर ब्रह्म-प्राप्ति -हित रत रहता,
तज आशायें सब विषय भोग।।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ।। ४४।।

वह पूर्व संस्कारों के वश
आकर्षित होता उसी ओर।
वेदोक्त, सकाम-कर्म फल तज,
पा जाता प्रभु की कृपा कोर।।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।। ४५।।

योगी अत्याधिक यत्न से ही,
सब पाप मुक्त हो जाता है।
बहु जन्म सिद्धि को प्राप्त हुआ,
वह अक्षय पद को पाता है।।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।। ४६।।

ज्ञानी सकाम कर्मीजन से
एवं तपस्वियों से बढ़कर।
है योगी सर्वश्रेष्ठ, इससे अर्जुन
तू भी बन योगी, वर।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ।। ४७ ।।

सम्पूर्ण योगियों में भी जो
श्रद्धालु मुझे नित भजता है।
वह योगी मुझको परम श्रेष्ठ
कामादि सभी जो तजता है।।

श्रीमद्भगवद्गीता का 'आत्म संयम योग' नामक छठवाँ अध्याय समाप्त।

सप्तमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु।। १।।

बोले श्रीकृष्ण-मदाश्रय हो जो
लगे योग में, हे अर्जुन।
संशय विहीन, ज्यों सब-गुण-युत
जानेगा मुझको उसको सुन।।

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।। २।।

कहता सम्पूर्ण रूप से मैं यह
तत्वज्ञान अति मर्मयुक्त।
है जिसे जान कर शेष न कुछ जग में,
हो जाता वही मुक्त।।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चन्मां वेत्ति तत्त्वतः।। ३।।

करता है यत्न सहस्रों में
कोई ही, एक मुझे पाने।
उनमें से कोई हो मत्पर सह
तत्व मुझे निश्चय जाने।।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।। ४।।

पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु-नभ मन,
औ' बुद्धि तथा है अहंकार।
है ऐसी यह अष्टात्म प्रकृति,
जो है विभक्त सम्यक् प्रकार।।

अपरेयमित्स्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।। ५।।

है 'अपरा प्रकृति'पाण्डु नन्दन !
यह उक्त, दूसरी भी ले सुन।
वह कहलाती है 'परा प्रकृति'
जिससे कि जगत का उद्भव, गुन।।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।। ६।।

सम्पूर्ण भूत इन दोनों से,
धारण करते हैं जन्म, भूप।
मैं ही हूँ विश्व-प्रभव-कारण,
मैं ही हूँ इसका प्रलय रूप।।

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।। ७।।

मेरे सिवाय है नहीं अन्य कुछ भी,
देखो अर्जुन विचार।
यह जगत, सूत में मणि-गण-
इव है गुथा मुझी में, निर्विकार।।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ।। ८।।

शशि और सूर्य में हूँ प्रकाश,
हे अर्जुन ! मैं हूँ जल में रस।
सब वेदों में हूँ प्रणव,
शब्द नभ में पुरुषों में हूँ पौरुष।।

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ।। ९।।

पृथ्वी में पुण्य गंध, सारे भूतों
में हूँ उनका जीवन।
मैं हूँ तपस्वियों में शुचि तप,
हूँ तेज, अग्नि में-हे अर्जुन।।

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।। १०।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हे पार्थ ! सभी भूतों का ही
तू बीज सनातन-जान मुझे।
मतिमानों की हूँ बुद्धि,
तेज तेजस्वी-जन में मान मुझे।।

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।। ११।।

आसक्ति और कामना रहित,
बलवानों का बल मैं, अर्जुन।
धर्मानुकूल सब भूतों में हूँ काम,
इसे निर्भय हो सुन।।

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ।। १२।।

सत रज से और तमोगुण से
होने वाले यह भाव सभी।
मेरे से ही हैं हुये, किन्तु मैं
उनमें रहता नहीं कभी।।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्।। १३।।

इन तीन गुणों के भावों से,
मोहित है, अर्जुन विश्व सभी।
अव्यय, त्रिगुणों से परे-मुझे,
पाता न जान, नर सत्य कभी।।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।। १४।।

यह त्रिगुणमयी मेरी माया,
अत्यन्त अलौकिक है दुस्तर।
इस माया से वे तर जाते,
भजते हैं नित्य मुझे जो नर।।

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ।। १५।।

अपहृत है ज्ञान, नराधम जो-आसुरी
भाव में लिप्त सभी।
ऐसे वे पापी महामूढ
मुझको भजते हैं नहीं कभी।।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।। १६।।

केवल भजते हैं वही मुझे,
जो सुकृत सदा करते, अर्जुन।
ज्ञानी, अर्थार्थी, आर्त और
जिज्ञासु-यही चारों निशि दिन।।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।। १७।।

जो नित्य मुक्त है, एक भक्ति,
वह ही ज्ञानी अति उत्तम है।
मैं हूँ उस ज्ञानी को अति प्रिय,
वह ज्ञानी मुझे अधिक प्रिय है।।

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्।।१८।।

यह सब उदार, पर-ज्ञानी
तो मेरा स्वरूप ही है निश्चित।
है युक्तात्मा, अति उत्तम
वह मेरे में ही सम्यक्-सुस्थित।।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।। १९।।

जो जान अनेकों जन्मों में,
समझे-ईश्वर सर्वत्र व्याप्त।
जो भजता मुझको इस प्रकार
वह दुर्लभ, मुझको सदा प्राप्त।।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया।। २०।।

अपने स्वभाव से प्रेरित हो,
हृतज्ञान-नियम धारण करते ।
वे सभी सकामी भक्त अन्य
देवों का हैं पूजन करते।।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्।। २१।।

जो भक्त सकामी जिस सुर
की श्रद्धा से है पूजा करता।
श्रद्धा कर अचल उसी के प्रति,
विश्वास उसी में हूँ भरता।।

स तया श्रद्धया युक्तस्तयाराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान्।। २२।।

जो जन उस श्रद्धा से युत हो,
उस सुर की पूजा है करता।
मेरे द्वारा ही वह उससे
भोगों को प्राप्त किया करता।।

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि।। २३।।

जो अल्प बुद्धि, हैं सुर-पूजक,
देवों को ही वे पाते हैं।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर, मेरे भक्त अन्त में तो
निश्चित मुझको पा जाते हैं।।
अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ।। २४।।
अव्यक्त ब्रह्म को जो अव्यय
अक्षय अज मान नहीं पाते।
अनुपम अविनाशी भाव मूढ़,
वे मेरा जान नहीं पाते।।
नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढो यंनाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्।। २५।।
प्रत्यक्ष नहीं होता सबको,
मैं अपनी ही माया द्वारा।
इसलिये जान पाते न मूढ़,
मैं पुरुष सनातन हूँ न्यारा।।
वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन।। २६।।
गत वर्तमान आगत के सब
भूतों को मैं जानता, पार्थ।
पर, कोई भी श्रद्धा विहीन,
मुझको न जान पाता यथार्थ।।
इच्छाद्वेशसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप।। २७।।
हो रहे सभी प्राणी जग में
सुख दुःख आदि से दीन व्यथित।
हे पार्थ, द्वेष-इच्छा करती
उन लोगों को अति ही मोहित ?
येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढ़व्रताः।। २८।।
पर, श्रेष्ठ-पुरुष निष्काम-भाव
से पुण्य-कर्म नित करते हैं।
वे राग-द्वेष से मुक्त हुये,
दृढ़व्रती मुझे हीं भजते हैं।।
जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदु कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्।।२९।।
जो जरा-मरण से मुक्ति-हेतु
मेरा आश्रय अपनाते हैं।
वे ब्रह्म अखिल, कर्मों को भी सम्यक्,
अध्यात्म जानते हैं।।
साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदु।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः।। ३०।।
जो साधिभूत अधिदैव सहित,
जानते मुझे सर्वात्म-रूप।
वे युक्त चित्त, पा, मुझको ही-पड़ते
न कभी मोहान्ध-कूप।।

श्रीमद्भगवद्गीता का 'ज्ञान विज्ञान योग' नामक सातवाँ अध्याय समाप्त।

अष्टमोऽध्यायः

अर्जुन उवाच
किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ।। १।।
अर्जुन बोले क्या ब्रह्म ?
कर्म क्या है ? अध्यात्म बतादें क्या ?
अधिभूत किसे कहते, भगवन ?
अधिदैव मुझे समझा दें क्या ?
अधियज्ञः कथ कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथ ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः।। २।।
अधियज्ञ कौन है ! यहाँ कृष्ण !
क्यों कर शरीर में बतलाते ?
फिर अन्त समय मनुजों द्वारा,
तुम कैसे हो जाने जाते ?
श्रीभगवानुवाच
अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्मुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः।। ३।।
अर्जुन, अक्षर है ब्रह्म,
और जीवात्मा यह-अध्यात्म, सुनो।
जो भूत भाव उद्भव कर है
वह कर्म कहाता, इसे गुनो।।
अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ।। ४।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नश्वर पदार्थ अधिभूत यहाँ,
अधिदैव कहाता है चेतन।
सब देह धारियों के तन में
मैं ही अधियज्ञ, अरे अर्जुन।।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।। ५।।

जो पुरुष प्रयाण काल में भी,
कर याद-देह तज जाता है।
है नहीं तनिक इसमें 'संशय',
वह शीघ्र मुझे ही पाता है।।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ।। ६।।

जो जन जब भी जो भाव लिये,
अपनी यह देह त्यागता है।
उसको होता है प्राप्त वही,
निश्चय वह जिसे चाहता है।।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ।। ७।।

इसलिये अहर्निश हे अर्जुन !
कर युद्ध और सुमरन मेरा।
मुझमें अर्पित मन बुद्धि युक्त
तू पायेगा मुझमें डेरा।।

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्।। ८।।

अभ्यास-योग से युक्त हुआ,
करता जो थिर चित से चिन्तन।
वह परम दिव्य नर को पाता,
जिसको करते सब देव, नमन।।

कविं पुराणमनुशासितार मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप मादित्यवर्णं
तमसः परस्तात्।। ९।।

सूक्ष्माति सूक्ष्म सर्वज्ञ सहज,
रहता जो तुम से सदा परे।
जो इस अचिंत्य आदित्य वर्ण का,
मनन और आध्यान करे।।

प्रयाणकाले मनसाचलेन, भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं
परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।१०।।

जो भृकुटि बीच रख प्राण,
योग बल से उसको निहार पाता।
वह भक्ति युक्त नर अन्त समय ,
उस परम पुरुष को पा जाता।।

यदक्षरं वेदविदो वदन्तिविशन्ति-
यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य चरन्तितत्ते पदं-
संग्रहेण प्रवक्ष्ये।।११।।

कहते अक्षर वेदज्ञ जिसे,
आसक्ति रहित जिसमें जाते।
कहता तेरे हित, उस पद को,
हैं जिसे ब्रह्मचारी पाते।।

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्।।१२।।

रोके, सब इन्द्रिय द्वारों को
मन को उर में जो निश्चित कर।
सुस्थित हो योग धारणा कर,
मस्तक में प्राण धरे जो नर।।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।१३।।

एकाक्षर रूप ब्रह्म को जप,
जो मेरा चिन्तन करता है।
वह पुरुष परम गति पाता है,
जो 'ओम्-ओम्' कह मरता है।।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ।।१४।।

करता मेरा सुस्मरण सतत,
अर्जुन !उसको मैं नहीं अलभ।
जो नित्य युक्त योगी उसको,
तो मैं रहता हूँ सदा सुलभ।।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।।१५।।

जो परम सिद्धि को प्राप्त हुये,
ऐसे महान जन, सुनों सभी।
मुझको पाकर, होते न भक्त-वे
पुनर्जन्म को प्राप्त कभी।।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।।१६।।

जन ब्रह्मलोक तक जाकर भी,
फिर जन्म ग्रहण करते अर्जुन।
पर, मुझे प्राप्त कर, पुनर्जन्म होता
न कभी, उसका तू सुन।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः।। १७।।
ब्रह्मा का है जो एक दिवस,
उसमें सहस्त्र युग होते हैं।
इतनी ही रात्रि जानते जो,
वे अहोरात्रि विद होते हैं।।
अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके।। १८।।
सम्पूर्ण भूतगण दिन में ही,
ब्रह्मा के तन से होते हैं।
वे सभी रात्रि आने पर ही,
तत्क्षण उसमें फिर सोते हैं।।
भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ।। १९।।
होकर उत्पन्न प्रकृति वश सब,
उस निशि में लय हो जाता है।
यों ब्रह्मा निज शत वर्षों में ,
दूसरा प्रकट हो जाता है।।
पुनरावर्ती होने से तो आ
ब्रह्मलोक सब नश्वर हैं।
है कालातीत बस ब्रह्म मात्र,
सब और यहाँ क्षण भंगुर हैं।।
परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ।। २०।।
जो परे सर्वथा है उससे,
अव्यक्त सनातन हे अर्जुन।
सब भूत नष्ट होने पर भी ,
वह नष्ट नहीं होता, तू सुन।।
अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।। २१।।
जो है अव्यक्त और अक्षर-बस,
वही परम गति है ललाम।
जिसको पा, आवागमन मिटे-
वह ही है मेरा परम धाम।।
पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।। २२।।
जिसमें सुस्थित हैं सभी भूत,
जिससे यह सारा जगत व्याप्त।
अव्यक्त सनातन परम पुरुष,
है परम भक्ति से सदा प्राप्त।।

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ।। २३।।
जिस पथ पर चलकर योगीजन,
तन त्याग लौट आते न यहाँ।
वह भी अर्जुन बतलाऊँगा-
जिससे वे आते लौट यहाँ।।
अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जना ।।२४।।
हैं शुक्ल मार्ग से जाते जो,
षटमास उत्तरायण, नर-वर।
वे ब्रह्मविज्ञ योगीजन ही पा
जाते ब्रह्म, देह तजकर।।
धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासाः दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते।। २५।।
षटमास दक्षिणायन में जो,
जाता सकाम योगी मर कर।
शुभ कर्मों का फल भोग,
स्वर्ग से आता-लौट, इसी भू पर।।
शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वत मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ।। २६।।
हैं देवयान औ'पितृयान,
यह मार्ग सनातन कहलाते ।
है शुक्ल मार्ग से अनावृत्ति,
औ' कृष्ण मार्ग से दुख पाते।।
नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ।। २७।।
इससे तू योग युक्त होकर,
मुझको पाने का कर साधन।
योगी न कभी मोहित होता,
करके दोनों मत का पालन।।
वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु-
यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्।।२८।।
तप दान यज्ञ अध्ययन वेद में,
कहा गया जो पुण्य तात।
कर प्राप्त परम पद, वह योगी,
तजता उसको ज्यों जीव गात।।

श्रीमद्भगवद्गीता का 'अक्षर ब्रह्मयोग' नामक आठवाँ अध्याय समाप्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नवमोऽध्यायः

श्री भगवानुवाच

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ।। १ ।।
है नहीं दोष दर्शी अब तू,
बोले अर्जुन से मधुसूदन।
अति गोपनीय, भव दुख नाशक
यह ज्ञान स्वस्थ चित करो श्रवण।।
राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ।। २ ।।
सब विद्याओं का राजा यह
अत्युत्तम और पवित्र महा।
है धर्मयुक्त अति गोपनीय अव्यय,
साधन में सुगम अहा।।
अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ।। ३ ।।
इस तत्व ज्ञान को जो अर्जुन,
श्रद्धा विहीन धारण करते।
वे मुझे न होकर प्राप्त,
सदा संसार चक्र में हैं भ्रमते।।
मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ।। ४ ।।
यह मुझसे सारा जगत व्याप्त,
है मुझ में भूत सभी सुस्थित।
यह सब मेरी इच्छा वश हैं,
पर मैं उनमें न कभी सुस्थित।।
न च मत्स्थापि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ।। ५ ।।
वे नहीं सभी मुझ में सुस्थित,
तू देख प्रकृति का यह प्रभाव।
कर्ता-धर्ता पालक होकर
उनमें न तनिक मेरा लगाव।।
यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ।। ६ ।।
जैसे नभ में उत्पन्न वायु सुस्थित
रहता है नभ में ही।
वैसे ही यह सारे प्राणी सुस्थित
मुझमें गुन मन में ही।।
सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ।। ७ ।।
मेरी ही प्रकृति प्राप्त होते,
कल्पान्त भूत अर्जुन सारे।
फिर कल्प आदि में उन सबको
रचता हूँ मैं कौतुक धारे।
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ।। ८ ।।
जो त्रिगुणमयी माया द्वारा
अत्यन्त अवश हो जाते हैं।
वे बार बार निज कर्मों के
अनुकूल देह, भव पाते हैं।।
न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ।। ९ ।।
हे अर्जुन ! यही सकाम कर्म,
जग के बन्धन बन जाते हैं।
पर, उदासीन आसक्ति हीन
मुझको, न बाँध वे पाते हैं।।
मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ।। १० ।।
रचती यह मेरी माया ही,
सचराचर सारा जगत सदा।
उपरोक्त हेतु से होता है
इस जग में आवागमन सदा।।
अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ।। ११ ।।
मम परम भाव को जान न जो,
हैं अज्ञ-मूढ़ मति अति विभ्रम।
नर-तन रखने वाले मुझको,
वे तुच्छ समझते हैं हरदम।।
मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ।। १२ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अज्ञानी वृथा ज्ञान वाले,
वे वृथा कर्म नित करते हैं।
मोघाशा असुरों के स्वभाव
को ही वे धारण करते हैं।।

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ।। १३।।

जो, दैवी प्रकृति आसरा ले-
मुझको भूतादि समझते हैं।
वे ही अनन्य मन युक्त हुये,
मुझ अव्यय को नित भजते हैं।।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते।। १४।।

दृढ़व्रती, मुझे पाने के हित
रहते हैं ध्यान मग्न, अर्जुन।
करके पूजा वे भक्ति सहित,
करते रहते मेरा कीर्तन।।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्।। १५।।

कुछ ज्ञान यज्ञ से पूज मुझे
एकत्व भाव से भजते हैं।
कुछ स्वामी सेवक भाव मान
कुछ बहु प्रकार से भजते हैं।।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्।। १६।।

मैं श्रौत कर्म हूँ स्वधा यज्ञ,
मैं मंत्र और औषधि मैं ही।
मैं ही हूँ घृत, मैं अग्नि सदा,
हे अर्जुन ! हवन क्रिया मैं ही।।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ।। १७।।

इस जग का धाता-मातु-पिता,
मैं ज्ञेय पवित्र पितामह हूँ।
मैं ओंकार ऋग्वेद, और हूँ,
सामवेद मैं ही यजु, हूँ।।

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ।। १८।।

गति, भर्ता, प्रभु, साक्षी,
निवास सबका मैं ही तो हूँ अर्जुन।
सबका निधान, मैं प्रभव प्रलय
सबका कारण मैं ही हूं सुन।।

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ।। १९।।

मैं सूर्य रूप से तपता हूं,
कर्षित कर-जल बरसाता मैं।
मैं ही हूं अमृत और मृत्यु,
सत असत और सब कुछ ही मैं।।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति-
दिव्यान्दिवि देवभोगान्।। २०।।

त्रयभाँति सोमपायी नर जो,
पापों से पूत हुये अर्जुन।
वे पूज मुझे यज्ञों द्वारा
चाहते सदा स्वगिक-जीवन।।
वे अपने पुण्यों के फल से,
सुरलोक आदि पा जाते हैं।
फिर भोग अनेकों दिव्य भोग,
पीछे से अति पछताते हैं।।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं-
कामकामा लभन्ते।। २१।।

वे भोग महत् स्वर्गीय भोग,
होने पर पुण्य क्षीण-रोते।
क्षण भंगुर मृत्युलोक को पा,
वे दिव्य स्वर्ग सुख हैं खोते।।
वे फिर सकाम-कामीजन ही,
भोगों के फल को पाकर के।
आते हैं यहाँ अनेक बार,
वे दिव्य स्वर्ग में जाकर के।।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। २२।।

जो जन निष्काम भाव से ही,
मुझको चिन्तन कर भजते हैं।
करता मैं योग क्षेम वहन
उनका वे निर्भय रहते हैं।।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ।। २३।।

श्रद्धा से युक्त सकामी जो,
देवता अन्य पूजा करते ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पूजते यदपि वे भी मुझको,
पर जन विधिहीन कहा करते।।
अहं हि सर्वयज्ञानां भौक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते।। २४।।
सब यज्ञों का भोक्ता स्वामी मैं ही,
यों नहीं जानते वे।
इसलिये सदा ही अज्ञमूढ़ हैं
पुनर्जन्म को पाते वे।।
यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रता: ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।।२५।।
देवों के पूजक देवों को,
पितरों को पितृव्रती पाते।
भूतों के पूजक भूतों को,
मम भक्त मुझे ही हैं पाते।।
पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मन: ।।२६।।
जल-पत्र-पुष्प-फल जो कुछ भी
अपने भक्तों से पाता हूँ।
धर सगुण रूप हे पार्थ ! उसे,
अति प्रीति-सहित मैं खाता हूँ।।
यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।। २७।।
जो कुछ तू करता कर्म तथा
जो कुछ भी खाता है, नर-वर।
करता जो हवन, दान तप
तू वह सब मेरे ही अर्पण कर।।
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनै: ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि।। २८।।
संन्यास योग से युक्त
कर्म बन्धन से तू छूट जायेगा।
यों मुक्त हुआ उनसे निश्चय
तू मेरे को ही पायेगा।।
समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रिय: ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।। २९।।
मैं सब भूतों में सम व्यापक,
कोई न प्रियाप्रिय मेरा है।
जो भक्त प्रेम से भजते वे
मुझ में उनमें हिय मेरा है।।
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्य: सम्यग्व्यवसितो हि स:।। ३०।।
जो अधिक दुराचारी जन भी,
नित केवल मुझको भजता है।
निश्चित ही वह हैं साधु परम,
जो एकमात्र सब तजता है।।
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्त: प्रणश्यति ।। ३१।।
तत्क्षण धर्मात्मा होकर वह
शाश्वत शान्ति प्राप्त करता।
कौन्तेय ! जान तू मेरा जन,
निश्चय ही कभी नहीं मरता।।
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्यु: पापयोनय:।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।। ३२।।
शूद्रादिक वैश्य और नारी-पापी
जो मुझको ध्याते हैं।
वे भी मेरे आश्रित रहकर गति
परम सहज पा जाते हैं।।
किं पुनर्ब्राह्मणा: पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ।। ३३।।
भक्तों की क्या ? जब पापी भी,
तर जाते शुभ गति को पाकर।
भज, इससे तू केवल मुझको, यह
सुर दुर्लभ नर-तन पाकर।।
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वमात्मानं मत्परायण: ।। ३४।।
मेरे मन वाला, हो सुभक्त
जो मुझको नित्य प्रणाम करे।
मुझमें कर लीन स्वयं को वह,
निश्चय मेरा ही रूप धरे।।

श्री मद्भगवद्गीता का 'राज विद्याराज गुह्य योग' नामक नौवाँ अध्याय समाप्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दशम अध्यायः

श्री भगवानुवाच

भूय एव महाबाहो श्रृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया।। १।।
तू है अति प्रिय मम सखा भक्त,
सुन चित्त-युक्त हो इसे पार्थ।
यह अति रहस्यमय परम वचन
कहता हूँ मैं तेरे हितार्थ।।
न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः।। २।।
हैं नहीं जान पाते लीला,
मेरी महर्षि सुरगुण, अर्जुन।
हूं क्योंकि आदि कारण इनका,
सम्यक प्रकार से ले यह सुन।।
यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। ३।।
विभु-लोक महेश्वर-अज-अनादि,
जो ऐसा मुझे जानता है।
वह ज्ञानवान सब पापों से,
निश्चय विमुक्त हो जाता है।।
बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च।। ४।।
हे अर्जुन ! बुद्धि-क्षमा दम-शम,
सुख असंमोह दुख तथा प्रलय।
उत्पत्ति-ज्ञान-भय सत्य तथा
ऐसे ही क्रम से भाव अभय।।
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः।। ५।।
तप-तुष्टि-अहिंसा है अर्जुन !
यश-अयश आदि जो होते हैं।
नाना प्रकार के भाव सभी,
यह मुझसे ही तो होते हैं।।
महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः।।६।।
स्वायंभुव आदिक चौदह
मनु-सप्तर्षि महा, सनकादि चार।
मेरे मानस से प्रकट हुए
फिर उनसे सारा जग अपार।।
एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ।। ७।।
जो जान विभूति योग को
नर समझे मुझको सर्वत्र व्याप्त।
वह ध्यान योग द्वारा सुस्थित,
मुझको कर लेता शीघ्र प्राप्त।।
अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः।। ८।।
मैं ही सब जग का प्रभव
हेतु मुझसे ही जग चेष्टा करता।
यों जान तत्व से श्रद्धायुत
मुझको ही नित्य भजा करता।।
मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।। ९।।
जो लगा प्राण मन नित मुझमें,
मेरा गुणगान किया करते।
वे सहज तुष्ट रहकर मुझमें नित
ही लवलीन रहा करते ।।
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।। १०।।
जो प्रीति सहित भजते मुझको,
उन सतत युक्त भक्तों को, सुन।
देता हूँ बुद्धि योग,
जिससे वे पा लेते मुझको, अर्जुन।।
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।। ११।।
करने उन पर अनुकम्पा ही,
निज आत्म भाव सुस्थित होकर।
हर लेता ज्ञानदीप द्वारा मैं
उन सबका अज्ञान तिमिर।।

अर्जुन उवाच

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यामादि देवमंज विभुम्।। १२।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्जुन बोले परम धाम,
देवादिदेव विभु अज पावन।
हो दिव्य-सनातन पुरुष नित्य
तुम ही भक्तों के मन भावन।।
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे।। १३।।
देवल ऋषि, व्यास, असित कहते हैं
नारदादि देवर्षि सभी।
ऐसा ही कहते मेरे प्रति हे कृष्ण !
स्वयं हैं आप अभी।।
सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः।। १४।।
जो कहा आपने मेरे प्रति, वह
सभी सत्य है, हे गिरिधर।
पर, जान न पाते देव-दनुज,
इस लीला को भगवत ! सत्वर।।
स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ।। १५।।
भूतेश ! भूतभावन नर वर, हे
जग-पति हे देवादिदेव।
कैसे जानें ? जब अपने से हो
ज्ञेय स्वयं ही एकमेव।।
वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि।। १६।।
जिन-जिन विभूतियों के द्वारा हैं
व्याप्त आप, हे जगाधार।
मैं उन्हें जानने का इच्छुक
कहिये उनको सम्यक् प्रकार।।
कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया।। १७।।
मैं चिन्तन करता हुआ सदा,
कैसे तुमको पहिचानूँ।
कहिए, हे कृष्ण ! कृपा करके-
किन किन भावों से जानूँ।।
विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि श्रृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्।।१८।।
निज योग शक्ति, अपनी विभूति,
समझा कर कहिये गिरधारी।
होती न तृप्ति सुन अमिय वचन,
सुनने की उत्कंठा भारी।।

श्री भगवानुवाच
हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे।। १९।।
बोले श्रीकृष्ण यही मेरी हैं,
सब विभूतियाँ अति अनन्त।
अब बतलाऊँगा मैं तुमको
जो व्याप रही हैं दिग-दिगन्त।।
अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च।। २०।।
सब भूतों के उर में सुस्थित,
आत्मा सबका मैं ही यथार्थ।
हूँ सब भूतों का आदि मध्य, मैं ही हूँ
सब का अन्त, पार्थ।।
आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ।। २१।।
आदित्य गणों में विष्णु और
ज्योतिर्मानों में दिनकर हूँ।
मैं मरुतों बीच मरीचि और
नक्षत्रों में मैं हिमकर हूँ।।
वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना।। २२।।
वेदों में सामवेद मैं ही, हूँ
इन्द्र सुरों में मैं यथार्थ।
इन्द्रिय गण में मन जान मुझे,
सब भूतों में चेतना, पार्थ।।
रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्।। २३।।
एकादश रुद्रों में शंकर,
हूँ यक्ष राक्षसों में कुवेर।
वसुओं में हूँ पावक मैं ही,
गिरि-मालाओं में हूँ सुमेर।।
पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ।। २४।।
तू पुरोहितों में जान मुझे हे
पार्थ, बृहस्पति अति महान्।
सेनापतियों में त्यों स्कन्द,
तू जलाशयों में सिंधु मान।।
महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः।। २५।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मैं ही महर्षियों में भृगु हूँ,
सारे वचनों में ओंकार।
जप यज्ञ सभी यज्ञों में हूँ
अचलों में हिमवान मान।।

अश्वत्थ: सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारद: ।
गन्धर्वाणां चित्ररथ: सिद्धानां कपिलो मुनि:।। २६।।

देवर्षि जनों में हूँ नारद
अश्वत्थ सभी वृक्षों में मैं।
गन्धर्वों बीच चित्ररथ हूँ , सिद्धों
में स्वयं कपिल हूँ मैं।।

उच्चै:श्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम्।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ।। २७।।

घोड़ों में उच्चश्रवा और,
करियों में ऐरावत गजेन्द्र।
है अर्जुन ! सभी मनुष्यों में,
मैं ही तो केवल हूँ नरेन्द्र।।

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्प: सर्पाणामस्मि वासुकि:।। २८।।

मैं शस्त्रों में हूं वज्र और
गायों में कामधेनु ,अर्जुन।
मैं ही प्रजनन हित कामदेव,
सर्पों में हूँ वासुकि, तू सुन।।

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्।
पितृणामर्यामा चास्मि यम: संयमतामहम् ।। २९।।

मैं नागों में हूं शेषनाग, जलचरों
बीच मैं वरुण सबल।
हूं पितरों मध्यार्यमा, शासकों
में मैं ही यमराज प्रबल।।

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां काल: कलयतामहम्।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेश्च पक्षिणाम् ।। ३०।।

मैं गणकों में हूं काल, और
दैत्यों में हूं प्रहलाद दिव्य।
हूं गरुड़ पक्षियों में मैं ही,
पशुओं में हूं मृगराज भव्य।।

पवन: पवतामस्मि राम: शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि स्त्रोतसामस्मि जाहवी।। ३१।।

मैं पवन वेगवानों में हूँ ,
नदियों में सुरसरि हूं ललाम।
मैं मकर मछलियों में,
एवं हूं शस्त्र-धारियों मध्य राम।।

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वाद: प्रवदतामहम्।। ३२।।

हे अर्जुन ! सभी सृष्टियों का
मैं आदि अन्त औ' मध्य, अहा।
मैं वाद, विवादकारियों में,
विद्याओं में आध्यात्म महा।।

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्व: सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षय: कालो धाताहं विश्वतोमुख: ।। ३३।।

मैं द्वन्द्व, समासों में, समास-हूँ
वर्णों में अर्जुन अकार।
मैं अक्षय काल, विश्वतोमुख,
मैं ही सबका धाता उदार।।

मृत्यु: सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्ति: श्रीर्वाक्चनारीणांस्मृतिर्मेधा धृति: क्षमा।। ३४।।

मैं ही नारी में कीर्ति वाक्
स्मृति मेधा धृति रमा क्षमा।
भावी उद्भव का कारण मैं, हूं
मृत्यु तथा सर्वत्र रमा।।

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकर: ।। ३५।।

छन्दों में गायत्री महान् ,
मैं श्रुतियों में हूं बृहत्साम।
मासों में मार्गशीर्ष मैं ही,
ऋतुओं में कुसमाकर ललाम।।

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्।। ३६।।

छल -कर्ताओं में द्यूत, विजेताओं
में हूँ मैं विजय-भाव।
हूँ तेज, तपस्वी का, निश्चय
व्यवसायी का, सत सत्व-भाव।।

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजय:।
मुनीनामप्यहं व्यास: कवीनामुशना कवि: ।। ३७।।

हूँ कृष्ण वृष्णियों में मैं ही,
पाण्डव लोगों में मैं अर्जुन।
मुनियों में वेदव्यास और,
कवियों में शुक्राचार्य, सुजन।।

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम्।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्।। ३८।।

मैं दण्ड दमन-कर्ताओं का,
मैं ही विजयी की नीति-नवल।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मैं मौन गोप्य भावों में हूँ,
ज्ञानी में तत्वज्ञान निर्मल।।
यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्।। ३९।।
मैं सब भूतों का बीज स्वयं,
चर और अचर में सदा व्याप्त।
कोई भी मुझसे रहित नहीं,
कर निश्चय होगा मुझे प्राप्त।।
नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ।। ४०।।
हैं यह विभूतियाँ दिव्य सभी,
इनका है अन्त नहीं, अर्जुन।
फिर भी संक्षिप्त रूप से यह
तू समझ, किया है जो वर्णन।।
यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्।। ४१।।
जो-जो भी वस्तु विभूति-
युक्त है शक्ति-युक्त जग में सुन्दर।
उन-उन में मेरा तेज अंश,
ही व्याप रहा है, निश्चय कर।।
अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।। ४२।।
है अंशमात्र से सभी जगत,
सुस्थित मुझमें हे निर्विकार।
मैं हीं तो हूँ सर्वत्र व्याप्त,
बस एक मात्र है यही सार।।

श्रीमद्भगवद्गीता का 'विभूतियोग' नामक दशवाँ अध्याय समाप्त।

एकादश अध्यायः

अर्जुन उवाच
मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम।। १।।
बोले अर्जुन की कृपा बहुत,
अति गोपनीय वचनों द्वारा।
जिसको सुनकर हो गया नष्ट
अज्ञान, नाथ ! मेरा सारा।।
भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ।। २।।
सुन चुका पूर्ण विस्तर सहित,
मैं प्रभव प्रलय की कथा, नाथ।
कमल नयन हे अज अव्यय!
कर कृपा कीजिये अब सनाथ।।
एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम।। ३।।
अपने को कहते हो जैसा,
वैसा निश्चिय ही सत्य सभी।
चाहता देखना मैं फिर
भी, ऐश्वर्य रूप प्रत्यक्ष अभी।।
मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ।। ४।।
यदि विश्व रूप मेरे द्वारा, देखा
जाना हो शक्य प्रभो।
वह अविनाशी-अव्यय-स्वरूप
तो दिखा दीजिये शीघ्र विभो।।
श्रीभगवानुवाच
पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च।। ५।।
सुन अर्जुन की विनीत विनती,
भगवान कृष्ण बोले हँसकर।
नानाकृति वर्णों वाला यह,
तू देख रूप मेरा मनहर।।
पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत।। ६।।
द्वादश आदित्य आठ वसु औ',
उनचास मरुद्गण देख पार्थ।
अश्विनी युगुल, आश्चर्ययुक्त
वह दिव्य-रूप मुझमें, यथार्थ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि।। ७।।
हे गुडाकेश ! मेरे तन में
एकस्थ चराचर जगत देख।
जो और देखना चाहे तू,
वह दिव्य अलौकिक सभी देख।।
न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।। ८।।
अपने इन प्राकृत नेत्रों से,
तू देख न सकता यह स्वरूप।
देता हूं दिव्य-चक्षु जिससे
तू देख सके मेरा स्वरूप।।

संजय उवाच

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ।। ९।।
संजय बोले-ऐसा कहकर,
राजन् ! उन योगेश्वर हरि ने।
दिखलाया अपना दिव्य-रूप,
ऐश्वर्ययुक्त नर केहरि ने।।
अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्।। १०।।
बहु मुख नेत्रों से युक्त,
अनेकों दिव्याभरण किये धारण।
अद्भूत दर्शन वाले हाथों में
किये हुये आयुध धारण।।
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम्।। ११।।
वे दिव्य गंध से युक्त, किये थे
दिव्य वसन माला धारण।
देखा साश्चर्य विश्वतोमुख,
अर्जुन ने-जो जग का कारण।।
दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः।। १२।।
नभ में सहस्र रवि एक साथ, हो
उदित-करें जितना प्रकाश।
वह विश्वरूप की समता में,
था जुगनूवत राजन् ! प्रकाश।।
तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ।। १३।।
बहु विधि से होकर के विभक्त,
तत्क्षण अर्जुन ने यों देखा।
देवादिदेव के तन में ही
एकस्थ हुआ सब जग देखा।।
ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ।। १४।।
आश्चर्ययुक्त रोमों वाला
उसका शरीर सारा डोला।
सिर से प्रणाम कर जोड़ हाथ
लख विश्व रूप वह यों बोला।।

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ मृषींश्च-
सर्वानुरगांश्च दिव्यान्।।१५।।
हे कृष्ण ! आपके तन में तो,
हैं देव, सभी प्राणी सु-स्थित।
विधि, महादेव, ऋषिगण सारे,
हैं दिव्य-सर्प भी तो सुस्थित।।
अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि-
त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप।।१६।।
हैं आप अनेक भुजाधारी,
बहु उदर और बहु मुख वाले।
बहु नेत्रयुक्त, मैं देख रहा-हैं
आप अनन्त रूप वाले।।
है नहीं आपका कहीं आदि,
दिखलाता मुझे न अन्त कहीं।
हे विश्वेश्वर ! हे विश्वरूप !! है
कहीं आपका मध्य नहीं।।
किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशि-
सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं-
समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम्।।१७।।
माथे पर भव्य किरीट लगा,
है एक हाथ में चक्र दिव्य।
हैं सभी ओर से ज्योतिर्मय,
तेजोमय अतिशय नाथ, भव्य।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रज्वलित अग्नि रवि के सदृश,
हे प्रभावान तुम हो अव्यय।
हे दुर्निरीक्ष्य ! हे अप्रमेय !!
तुम ही अनादि, अज हो अक्षय।।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य-
विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्यय: शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे।।१८।।

हैं सदा आप ही ज्ञेय परम,
अविनाशी अक्षर जगाधार।
इस जग के परमाश्रय त्राता,
हे विश्वंभर अव्यय उदार।।
हैं आप अनादि धर्मरक्षक ! हैं
आप सनातन-पुरुष हरे।
हैं गुणातीत-यह मेरा मत,
हैं आप प्रकृति से सदा परे।।

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं-
शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्।।१९।।

हैं आप सदा ही आदि-रहित,
हे जगदीश्वर, हे परमेश्वर।
हैं मध्य-अन्त से आप परे,
हे भूतेश्वर, हे कालेश्वर।।
हैं आप अनन्त-बाहु वाले,
शशि-सूर्य-रूप नयनों वाले।
देखता विश्व को तप्त हुआ,
प्रज्वलित अग्नि-मय मुख वाले।।

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं-
त्वयैकेन दिशश्च सर्वा:।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं-
प्रव्यथितं महात्मन्।।२०।।

यह स्वर्ग-धरिणि के अन्तर का,
सारा नभ सभी दिशा में यह।
हैं एक आप से व्याप्त सभी
परिपूर्ण प्रभामय सारी यह।।
यह उग्र-आलौकिक रूप देख,
त्रैलोक्य प्रकंपित होता है।
प्रभु देख आपका विश्व रूप,
मम धैर्य धीरता खोता है।।

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति
केचिद्भीता: प्राञ्जलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघा: स्तुवन्ति-
त्वां स्तुतिभि: पुष्कलाभि:।।२१।।

यह सभी सुरों के संघ,
आप में ही प्रविष्ट होते जाते।
होकर तदात्म मानों अपना
अस्तित्व सभी खोते जाते।।
कोई भयभीत हुये, कोई कर
बद्ध किये गाते जाते।
ऋषि-सिद्ध-संघ कर-स्वस्ति वाद,
वर-स्तुतियाँ करते जाते।।

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा वीक्षन्ते-
त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे।।२२।।

एकादश रुद्र, तथा द्वादश आदित्य,
आठ वसु विश्व-देव।
अश्विनी-कुमार औ' पितर संघ,
गण साध्य तथा श्री पवनदेव।।
गंधर्व यक्ष राक्षस एवं सिद्धों
के भी समुदाय सभी।
विस्मित हो देख रहे सब ही,
जैसे देखा हो नहीं कभी।।

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरूपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोका: प्रव्यथितास्तथाहम्।।२३।।

हे महाबाहु ! लखकर बहुमुख,
बहुनेत्र तथा बहु हाथ चरण।
बहु जंघा और उदर वाले हैं आप,
लीजिये मुझे शरण।।
यह देख भयंकर रूप नाथ,
हो रहे लोक भी व्यथित सभी।
मैं अति व्याकुल -भयभीत,
कृष्ण ! काजै प्रबोध-कर क्षमा अभी।।

नभ: स्पृशं दीप्तमनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं-
न विन्दामि शमं च विष्णो।।२४।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हे विष्णु ! नभस्पर्शी प्रदीप्त,
हो बहु रूपों से युक्त-भव्य।
फैलाये, भारी मुखवाले,
ज्योतिर्मय नयन सुरम्य-दिव्य।।
इस भाँति आप को देख नाथ मैं
भीत-हृदय हूँ अति अधीर।
कीजै अब कृपा-वरद कर रख,
जिससे अब मैं रख सकूँ धीर।।

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास।। २५।।

लखकर विकराल सुदृढ़ डाढ़ें
दिग्भ्रमित हुआ जाता हूं मैं।
मुख देख, प्रलय की अग्नि
सदृश भय मथित हुआ जाता हूं मैं।।
होऊँ चिर सुख को प्राप्त, सदय !
व्यापे न कभी भव दुख प्रभुवर।
देवादिदेव, हे जग निवास !
अब हों मुझ पर प्रसन्न सत्वर।।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसंघैः।
भीष्मो द्रोणः सतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः।। २६।।

धृतराष्ट्र-पुत्र आदिक समेत,
जितने यह नृपति कहाते हैं।
मैं देख रहा वे सभी, आपके
मुख में क्रमशः जाते हैं।।
गुरु-द्रोण-भीष्म सह सूत पुत्र, हैं
दन्त-मध्य कुछ लटके से।
कुछ प्रमुख प्रमुख मेरे योधा,
दिख रहे अटकते-भटके से।।

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङैगः।। २७।।

लगता है जैसे यह सब ही,
स्वयमेव दौड़ते आते हैं।
दोनो डाढ़ों के बीच,
मुखों में कुछ प्रवेश पा जाते हैं।।
हो नष्ट-भ्रष्ट निज अंगो से,
कुछ ऐसे दिखलाई देते।
दाँतों के बीच लगे वे सब,
राई दिखलाई देते।।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति-
वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति।। २८।।

जैसे नदियाँ, बहु जल-प्रवाह
सागर की ओर बढ़ा करते।
वैसे ही शूर-वीर सबही,
हैं स्वतः जा रहे यह बढ़ते।।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि-
वक्त्राणि समृद्धवेगाः।। २९।।

प्रज्वलित अग्नि में ज्यों पतंग,
अत्यधिक वेग से आते हैं।
फिर होकर रूप मुग्ध उस पर, वे
हँस-हँस कर जल जाते हैं।।
वैसे ही अपने नाश हेतु यह
लोग स्वयं चलते आते।
फिर द्रुत-गति से तव मुख में ही,
वे सब प्रवेश पाते जाते।।

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो।। ३०।।

लगता जैसे सब लोकों को,
कर रहे ग्रसित हैं आप स्वयं।
कर रहे तप्त सारे जग को,
करके प्रकाश अति उग्र परम।।

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्।। ३१।।

उग्ररूप धारी महान् ! हे देव
श्रेष्ठ हैं कौन आप ?
निःसीम सगुण नर-तनु धारी है,
सका आपको कौन माप।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मैं नहीं जानता तव प्रवृत्ति,
इससे मुझको अपना लीजै।
कर ग्रहण, प्रेम से नमस्कार,
होकर प्रसन्न प्रभु वर दीजै।।

श्री भगवानुवाच

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविश्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः।। ३२।।

इस भांति पूछने पर-हरि ने
अर्जुन से कहा-मुदित होकर।
मैं महाकाल हूँ बढ़ा हुआ,
समझ अहं अपना खोकर।।
जो-जो अधर्म का आश्रय ले,
कौरव-सेना में सुस्थित है।
तू विमुख रहे रण से तो भी,
उन सबका नाश सुनिश्चित है।।

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।। ३३।।

इससे उठ तू, रिपु दल सँहार,
कर प्राप्त विजय सम्मानपूर्ण।
फिर भोग राज्य यह निष्कंटक,
सुखकर एवं धन धान्य पूर्ण।।
पहले ही इन सब वीरों को ,
मैं मार चुका हूँ हे अर्जुन।
तू आगे बढ़-युद्धार्थ, मात्र
होजा निमित्त-मेरा मत सुन।।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्।। ३४।।

गुरु द्रोण, पितामह भीष्म, कर्ण,
जयद्रथ, महान योधागण भी।
हैं मार दिये मैंने पहले,
इससे करना मत शोक कभी।।
इन मरे हुये योधाओं को,
तू मार-तनिक भी भय मतकर।
जीतेगा रिपुओं को निश्चय
कर युद्ध-स्वस्थ, चेतन होकर।।

संजय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जालिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य।। ३५।।

सुन केशव के वचनों को
यों बोला किरीटधारी अर्जुन।
कर बद्ध किये, पुलकित शरीर,
गद्गद वाणी जल भरे नयन।।
क्या करूँ और क्या नहीं ? नाथ !
यह भी कुछ नहीं समझ पाता।
करता प्रणाम, दो शरण मुझे,
यों तो अब रहा नहीं जाता।।

अर्जुन उवाच

स्थाने हृषिकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः।। ३६।।

हे अन्तर्यामी ! कर कीर्तन
हो रहा जगत सारा हर्षित।
राक्षस जा रहे दिशाओं में,
भागे सभीत हो अधिक व्यथित।
मिल सभी सिद्धगण प्रमुदित हो,
करते प्रणाम हैं बार-बार।
हे नाथ ! करो मेरी रक्षा,
हे करुणाकर ! हे जगाधार।।

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्।। ३७।।

हो तुम्हीं आदि कर्ता विधि के
देवादिदेव हे सर्वश्रेष्ठ।
फिर क्यों न करें सुर मिलकर
सब अर्चन वन्दन तब यों यथेष्ट।।
हे जगनिवास देवेश प्रभो,
विभु अज व्यापक तुम हो अनन्त।
सत और असत से परे तुम्ही,
सच्चिदानन्द अक्षर अनन्त।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य-
विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप।। ३८।।
हे पुरुष सनातन आदिदेव
सारे जग के परमाश्रय तुम।
सर्वज्ञ, सभी के ध्येय-पूज्य, हो
वेद्य और करुणालय तुम।।
तुम हो अनन्त तुम, परमधाम,
तुम ही सब जग से न्यारे हो।
तुमसे यह सारा जगत व्याप्त,
तुमही तो नन्द-दुलारे हो।।
वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्र कृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते।। ३९।।
तुम अग्नि और यमराज वरुण,
हो वायु शशांक परम ईश्वर।
तुम ही ब्रह्मा, ब्रह्मा के पितु,
तुम ही अविनाशी जगदीश्वर।।
अखिलेख सुरेश रमेश तुम्हीं
हे विश्वरूप, हे जगाधार।
है नमस्कार फिर नमस्कार,
हे विश्वंभर ! शत नमस्कार।।
नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अन्नतवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्व-
समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः।। ४०।।
है नमः तुम्हें सामर्थ्यवान,
आगे से पीछे से भगवन।
है सर्वात्मन ! फिर-फिर प्रणाम,
सर्वतः तुम्हें हे दुख-भंजन।।
हो अमित पराक्रमशाली तुम,
हे सर्वव्याप्त कंसारि हरे।
हे सर्वरूप! हे सर्वात्मन !!
हो तुम्हीं त्रिगुण से सदा परे।।
सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि।। ४१।।
चाहे वह कहा प्रेम वश ही,
अथवा प्रमाद वश या भय से।
हे कृष्ण ! सखा ! हे माधव !
जो, हठपूर्वक निकल गया मुझसे ।।
महिमा न जानते हुये देव,
जो कहा कभी मैंने अनुचित।
कीजे बस क्षमा उसे प्रभुवर !
लीजै अपना जिससे हो हित।।
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारश्य्यासनभोजनेषु।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहप्रमेयम्।। ४२।।
हे अच्युत ! तुम्हें हँसाने को,
जो कर्म हुये मेरे द्वारा।
एकाकी मित्रों के समक्ष,
जाने अनजाने हठद्वारा।।
शय्या-विहार-भोजन करते,
हो किया अगर अपराध कभी।
हे अप्रमेय ! वे तो मेरे,
हैं क्षम्य नाथ अपराध सभी।।
पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव।। ४३।।
हो पिता चराचर इस जग के,
हो तुम्ही सभी से अति महान्।
हो गुरु तुम ही, गुरु से
बढ़कर, अति पूजनीय सामर्थ्यवान।।
तीनों लोकों में हे भगवन !
है क्या कोई ऐसा महान्।
हो कैसे तुमसे श्रेष्ठ और कोई
भी, हे गुण के निधान।।
तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्।। ४४।।
इसलिये कृष्ण हे वंद्यनीय !
सिर को पद पद्मों में रखकर।
करता प्रणाम, हों मुदित आज, हे दीनबन्धु !
हे जगदीश्वर।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सुत के ज्यों पिता, प्रिया के पति
कर देता है अपराध क्षमा।
ज्यों सखा सखा, के वैसे ही
करदें मेरे अपराध क्षमा।।

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देव रूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास।। ४५।।

ऐसा स्वरूप तो हे भगवन !
पहिले देखा था नहीं कभी।
हर्षित हूं इसे देखकर के, पर मन है
भय से विकल अभी।।
जो दिखलाया था प्रथम रूप,
उसका ही शुभ दर्शन दीजै।
हे जग निवास ! होकर प्रसन्न,
अब तो मुझको अपना लीजै।।

किरीटिनं गदिनं चक्र हस्तमिच्छामि-
त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्त्रबाहो भव विश्वमूर्ते।। ४६।।

हो सिर पर मुकुट, चक्र कर में
वह भव्य गदा धारण कर फिर।
हे नाथ ! चतुर्भुज- रूप पुन:
दिखला दें वैसा ही सुन्दर।।
मैं दास आपका हूँ केवल कुछ
तो अब कृपा कोर कीजै।
हे सहसबाहु ! हे विश्वमूर्ति !!
अब तो मुझको अपना लीजै।।

श्रीभगवानुवाच

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्।। ४७।।

विनती सुनकर यों अर्जुन की,
बोले योगेश्वर-सुनो, पार्थ।
निज योगशक्ति से दिखलाया,
कर कृपा रूप अपना यथार्थ।।
है अति विराट् तेजोमय यह,
मेरा सुन्दर नि:सीम रूप।
देखा न किसी ने तुझे छोड़
अब तक ऐसा अनुपम स्वरूप।।

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च-
क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रै:।
एवं रूप: शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर।। ४८।।

मैं नहीं वेद से, यज्ञों से, अथवा
अध्ययन शक्य अर्जुन।
तप उग्र क्रियाओं द्वारा भी, मैं
दिखता नहीं कभी तू सुन।।
है कौन ? विराट् रूप देखे,
मेरा जो अर्जुन, इस प्रकार।
है देख न सकता तुझे छोड़
कोई भी-यह मेरा विचार।।

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्।
व्यपेतभी: प्रतीमना: पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य।। ४९।।

विकराल रूप यह मेरा लख,
हो मत विमूढ़ तू कुरु प्रवीर।
साहस कर रख धीरज इस क्षण हे वीर !
न हो इतना अधीर।।
भय रहित प्रीतियुत मन वाला,
होकर वह पहिला रूप पेख।
तू भक्त हमारा हैं इससे यह
सौम्य चतुर्भुज रूप देख।।

संजय उवाच

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूय:।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुन: सौम्यवपुर्महात्मा।। ५०।।

यों कहकर, रूप चतुर्भुज फिर
अर्जुन को प्रभु ने दिखलाया।
लख सौम्य शान्त प्रमुदित स्वरूप
उसने खोया धीरज पाया।।

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्त: सचेता: प्रकृतिं गत:।। ५१।।

बोला अर्जुन अति शान्त और
प्रभु का सुन्दर नर तन लखकर।
मैं शान्त चित्त हो गया नाथ !
अपने स्वभाव को फिर पाकर।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्री भगवानुवाच

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः।। ५२।।
सुनकर अर्जुन के वचनों को,
भगवान कृष्ण तब यों बोले।
यह रूप चतुर्भुज अति दुर्लभ
जो है देखा तूने भोले।।
पाते न कभी योगी मुनि भी जो
जप तप करते रहते हैं।
इसका दर्शन करने को तो,
सब देव तरसते रहते हैं।।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा।। ५३।।
दिखता न यज्ञ तप करने से,
मैं दान वेद से नहीं कभी।
देखा जो तूने रूप, उसे लख
पाते नर हैं नहीं कभी।।

भक्त्या त्वन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ।। ५४।।
हे पार्थ ! अनन्य भक्ति करके पा
सकते मुझको सभी यहाँ।
यों ज्ञेय, प्राप्त प्रत्यक्ष स्वयं, हूँ
एक तत्व से सदा यहाँ।।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।। ५५।।
निर्वैर सदा भूतो में जो,
आसक्ति रहित मेरा जन है।
मत्कर्म परायण भक्त सदा, पाता
जिसका मुझमें मन है।।

श्री मद्भगवद्गीता का ' विश्वरूप दर्शन योग' नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

द्वादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः।। १।।
सुन इस प्रकार प्रभु वचनों को,
अर्जुन बोले-हे गिरिधारी।
हैं कौन उपासक श्रेष्ठ ?
कहो-निर्गुण या सगुण, ध्यान धारी।।

श्री भगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ।। २।।
बोले श्री कृष्ण सदा,
मुझको-भजते रहते जो तनुधारी।
श्रद्धा से युक्त वही सेवक,
हैं श्रेष्ठ, मुझे प्रिय-धनुधारी।।

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्।। ३।।
वश में कर जो इन्द्रिय-समूह,
करते रहते मेरा चिन्तन।
अव्यक्त अचल अविनाशी का,
सर्वत्र सतत दर्शन-वन्दन।।

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।। ४।।
वे भी पा लेते सहज मुझे,
पर-हित में रत, जो सदा यहाँ।
हे पार्थ, वही सच्चे योगी,
मिलते हैं ऐसे सदा कहाँ।।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्त चेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ।। ५।।
है क्लेश अधिक उनको प्रियवर,
अव्यक्त निरत, जिनका उर है।
अति क्लिष्ट, अगव-निर्गुण साधन,
जिनको यह तन-मन-धन, वर है।।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ।। ६।।
सम्पूर्ण कर्म जो कर अर्पित,
मुझको भजते हैं रात-दिवस।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ऐसे सगुणोपासक मेरे- आराध्य,
सदा मैं उनके वश।।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।। ७।।
हे पार्थ, स्वयं बन उद्धारक
मैं उसको अपना लेता हूँ।
फिर शीघ्र अगम भव सागर
से, उनकी नैया को खेता हूँ।।
मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।। ८।।
तू लगा प्रथम अपने मन को,
केवल मुझमें, अन्यत्र नहीं।
कर बुद्धि समर्पित पुनः मुझे,
पायेगा, संशय नहीं कहीं।।
अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगने ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ।। ९।।
तू अगर समझता है, अर्जुन,
मन को वश में करना दुर्लभ।
कर फिर अभ्यास योग का तू,
जिससे होऊँगा तुझे सुलभ।।
अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ।। १०।।
अभ्यास नहीं यदि सरल, पार्थ !
मत्कर्म-परायण तू-हो जा।
पा लेगा सहज कर्म करते,
सर्वस्व अहं अपना खो जा।।
अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्।। ११।।
यदि इसमें भी असमर्थ, जीत मन,
मोह तोड़ देना होगा।
शरणागत बन, सब कर्मों का फल,
सहज छोड़ देना होगा।।
श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।। १२।।
बिन जाने ही अभ्यास-मर्म,
श्रेयस्कर है सद्ज्ञान यहाँ।
है सदा ज्ञान से श्रेष्ठ ध्यान,
इसकी ही महिमा पुण्य यहाँ।।
पर, इससे भी बढ़कर जग में है श्रेष्ठ,
कर्म-फल-त्याग, वीर।
बस, इसी त्याग से मिलती है
द्रुत परम शान्ति सच्ची, सुधीर।।
अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।। १३।।
जो द्वेष-भाव से रहित,
सदा सारे भूतों पर करे दया।
सम दुख-सुख में, निर्मम रहता,
औ' जिसका मद हो चला गया।।
संतुष्टः संततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मयर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।। १४।।
सन्तुष्ट सतत, सम लाभ-हानि,
योगी दृढ़ निश्चय धारा है।
अर्पित की जिसने मनोबुद्धि,
वह भक्त मुझे अति प्यारा है।।
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ।। १५।।
पा सके न जिससे कोई दुख,
उद्वेग नहीं व्यापे जिसको।
भय-हर्ष, अमर्ष रहित है जो,
हे पार्थ ! वही है प्रिय मुझको।।
अनेपक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।। १६।।
जो आकाँक्षा से रहित,
शुद्ध दुख-मुक्त, दक्ष है उदासीन।
वह आरंभों का त्यागी है,
सच मुझको प्रिय, ज्यों सुधा भी न।।
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।। १७।।
जो हो न कभी हर्षित न व्यथित,
जो शोक-द्वेष इच्छा न करे।
शुभ और अशुभ का परित्यागी,
है भक्त मुझे प्रिय वही, अरे।।
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ।। १८।।
जिसको समान है शत्रु-मित्र,
मानापमान सम लगता है।
शीतोष्ण दुःख-सुख है समान,
आसक्ति-हीन जो रहता है।।
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः।। १९।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निन्दा-सुस्तुति है तुल्य जिसे,
जो मनन शील, सन्तुष्ट सदा।
सुस्थिर मति जो अनिकेत,
भक्त हे पार्थ ! मुझे प्रिय वही सदा।।
ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।। २०।।
जो होकर एकमात्र मेरे,
इस धर्म-सुधा को पीते हैं।
श्रद्धालु भक्त अति प्रिय मुझको,
वे अजर-अमर हो जीते हैं।।

श्रीमद्भगवद्गीता का 'भक्ति योग' नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त

त्रयोदश अध्यायः

श्रीभगवानुवाच
इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ अति तद्विदः।। १।।
यों कहा कृष्ण ने कौन्तेय !
यह तन ही क्षेत्र कहा जाता ।
क्षेत्रज्ञ उसे कहते ज्ञानी,
जो पहिले इसे जान जाता।।
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं मतं यत्तज्ज्ञानं मम ।। २।।
तू जान अरे सब क्षेत्रों में,
क्षेत्रज्ञ स्वयं मुझको अर्जुन।
क्षेत्रज्ञ-क्षेत्र का विश्लेषण,
है ज्ञान, यही मेरा मत सुन।।
तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ।। ३।।
जो है, जैसा है क्षेत्र जहाँ,
कहते विकारयुत हैं जिसको।
वैसे ही है क्षेत्रज्ञ,
जिसे-संक्षिप्त सुनाता हूँ तुमको।।
ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतु मद्भिर्विनिश्चितैः ।। ४।।
ऋषियों द्वारा वेदों द्वारा-
जैसा है कहा गया अभिमत।
वह ब्रह्मसूत्र के दिव्य पदों
में युक्तियुक्त त्यों ही, निश्चित।।
महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः।। ५।।
मन-बुद्धि-प्रकृति सब महाभूत,
हे पार्थ ! और इन्द्रियाँ सभी।
फिर शब्द-रूप-सुस्पर्श-गंध
एवं रस पाँचों विषय सभी।।
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ।। ६।।
सुख-दुख-इच्छा धृति द्वेष और
प्रस्थूल-देह का पिंड पार्थ।
चेतनता सहित क्षेत्र का यह,
संक्षिप्त रूप ही है, यथार्थ।।
अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ।। ७।।
श्रद्धायुत हो गुरु की सेवा,
अभिमान दंभ का कर अभाव।
आर्जव-थिरता अरु शौच
अहिंसा आत्म विनिग्रह क्षमाभाव।।
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधि दुःखदोषानुदर्शनम्।। ८।।
इन्द्रिय-विषयों का त्याग तथा
मद को नित दूर किये रहना।
फिर जीवन जरा मरण रुज
में दुख-दोषों का विचार करना।।
असक्तिरनभिष्वंग पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु।। ९।।
धन आदि पुत्र दारा में भी,
आसक्ति रहित निर्मम रहना।
प्रिय अप्रिय के मिलने पर भी,
हे अर्जुन ! चित्त सुसम रहना।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ।। १०।।
विषयोसक्तों से उदासीन,
शुचि निर्जन देश-मध्य रहना।
अविचल भक्ति के द्वारा ही
हो योग युक्त चिन्तन करना।।
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।। ११।।
आध्यात्म और जो तत्वज्ञान
द्वारा सर्वत्र मुझे पाता।
है ज्ञान, अन्यथा जो इससे-अज्ञान
वही है कहलाता।।
ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म सत्तन्नासदुच्यते ।। १२।।
जो ज्ञेय, जानकर के जिसको
आनन्द प्राप्त हो जाता है।
वह आदि-रहित है परम ब्रह्म,
वह सत् न असत कहलाता है।।
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।। १३।।
सर्वतः हाथ पैरों वाला,
बहु नेत्र तथा मुख सिर वाला।
सुस्थित, सब जगत व्याप्त करके,
जो है सर्वतः श्रोत्र वाला।।
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।। १४।।
सर्वेन्द्रिय गुणाभास जिसमें,
जो सभी इन्द्रियों से विरहित।
गुणभोक्ता औ' धारक-पोषक,
वह ही निर्गुण आसक्ति-रहित।।
बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।। १५।।
सब भूतों के भीतर-बाहर,
चर-अचर रूप में जो सुस्थित।
अति सूक्ष्म, इसी से अविज्ञेय-
वह दूर पास में भी सुस्थित।।
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभुर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ।। १६।।
अविभक्त हुआ सब भूतों में,
भी वह विभक्त है, हे अर्जुन।
संहारक, ज्ञेय तथा पालक,
सबका उत्पादक वह ही सुन।।
ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।। १७।।
वह ब्रह्मज्योतियों की सुज्योति,
इस माया से है सदा परे।
सबमें सुस्थित है ज्ञान-रूप,
है ज्ञान-गम्य वह ज्ञेय, अरे।।
इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ।। १८।।
यों क्षेत्र, ज्ञान, है ज्ञेय, पार्थ !
दुर्लभ भी सुलभ कहा जाता।
इसे तत्व से जान भक्त,
मेरा स्वरूप है पा जाता।।
प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभा वपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान्।। १९।।
हैं प्रकृति-पुरुष दोनों अनादि,
ऐसा कुरु-नन्दन ! सत्य जान।
हैं त्रिगुण, विकार-प्रकृति-संभव,
तू समझ इन्हें, निज हृदय मान।।
कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरूच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखनां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते।। २०।।
है प्रकृति यही निश्चय पूर्वक,
इस कार्य-करण का प्रभव हेतु।
सुख-दुःखों के भोक्तापन में,
है जीवात्मा यह सदा हेतु।।
पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ।। २१।।
रहकर के नित्य प्रकृति में ही,
भोगता मनुज है त्रिगुण भोग।
सत्-असत-योनियों का कारण,
है निश्चय कर यह त्रिगुण-योग।।
उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः।। २२।।
इस तन में सुस्थित हुआ पुरुष,
परमात्मा कहलाता यथार्थ।
उपद्रष्टा-अनुमंता-भर्ता,
भोक्ता सर्वेश्वर वही, पार्थ।।
य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते।। २३।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यों प्रकृति पुरुष को गुणों सहित,
जो मनुज तत्व से गायेगा।
सर्वथा वर्तता हुआ,
भला वह पुनर्जन्म क्यों पायेगा।।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ।। २४।।

कुछ ध्यान मग्न, निर्मल मति हो,
निज उर में प्रभु को लाते हैं।
कुछ ज्ञानी सांख्य योग द्वारा,
कुछ कर्म योग से पाते हैं।।

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः।। २५।।

औरों से सुन अनजाने ही
जो श्रद्धा -सहित मुझे भजते ।
वे श्रवण-परायण भी निश्चय,
इस भव-सागर से हैं तरते।।

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजंगमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ।। २६।।

है योवन्मात्र यहाँ जो भी,
चर-अचर वस्तु देखो अर्जुन।
संयोग, क्षेत्र क्षेत्रज्ञ जान,
उन सब का ही उद्भव-कारण।।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।। २७।।

जो इन सब नश्वर-भूतों में,
उस नाश-रहित परमेश्वर को।
समता से सदा देखता है,
बस वही देखता है उसको।।

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्।।२८।।

सर्वत्र समान भाव से वह,
सब में ही प्रभु को पाता है।
नश्वर तन, आत्मा मान अमर,
वह श्रेष्ठ परम गति पाता है।

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति।। २९।।

करती है प्रकृति कर्म सारे,
है आत्मा नित्य अकर्ता ही।
ऐसे जो सदा देखता है,
वास्तव में लखता मनुज वही।।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा।। ३०।।

भिन्नता प्राणियों की जन जब,
एकस्थ ईश में पाता है।
संकल्प-मात्र से सृष्टि जान,
वह प्रभु में लय हो जाता है।।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते।। ३१।।

है गुणातीत, है यह अनादि,
तन में रहते भी हैं अव्यय।
निर्लिप्त अकर्ता सदा यही,
परमात्मा नित है अज-अक्षय।।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते।। ३२।।

सर्वत्र व्याप्त होकर ज्यों नभ,
निर्लिप्त, सूक्ष्म होने से ही।
त्यों ही रहकर आत्मा तन में,
होता न गुणों से लिप्त कभी।।

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।। ३३।।

ज्यों एक सूर्य ही पूर्ण लोक,
आलोकित कर देता अर्जुन।
त्यों ही क्षेत्री सम्पूर्ण क्षेत्र,
आलोकित कर देता है सुन।।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्।। ३४।।

जो क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ-भेद,
हैं ज्ञान-नेत्र से जान गये।
वे भूत प्रकृति से मुक्त हुये,
प्रभु को सचमुच पहिचान गये।।

श्रीमद्भगवद्गीता का 'क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग' नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

चतुर्दश अध्यायः

श्री भगवानुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ।। १ ।।
जो है ज्ञानों में सर्वे श्रेष्ठ,
वह ज्ञान बताऊँगा अर्जुन ।
जिसको कि जानकर प्राप्त हुये,
हैं परमसिद्धि को सब मुनि-जन ।।

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ।। २ ।।
मेरें स्वरूप को प्राप्त हुये,
जो इसका आश्रय लेते हैं ।
वे पुनर्जन्म से मुक्त, प्रलय
में किंचित दुखी न होते हैं ।।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ।। ३ ।।
है महत ब्रह्म मम योनि पार्थ !
जिसमें थापित कर बीच अलभ ।
होती जड़-चेतन मिलने से,
सब भूतों की उत्पत्ति सुलभ ।।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ।। ४ ।।
हे अर्जुन ! सभी योनियों में,
संभव होते जितने शरीर ।
उन सबकी तो माया जननी,
मैं स्वयं बीज-प्रद पिता-वीर ।।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ।। ५ ।।
सत-रज-तम यह तीनों गुण भी तो,
उत्पन्न प्रकृति से होते हैं ।
इस अव्यय आत्मा को तन में,
दृढ़ बाँध स्वयं वे सोते हैं ।।

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ।। ६ ।।
है सत्व, प्रकाशक निर्विकार,
उन तीनों में हे पार्थ ! सुनो ।
सुख और ज्ञान से कहता है,
जो बद्ध स्वयं ही, इसे गुनो ।।

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम् ।
तन्नि बध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम् ।। ७ ।।
तृष्णा से राग-रूप यह ही
उत्पन्न रजोगुण तुम जानो ।
जो फलासक्ति कर्मों में है,
बाँधती जीव को सच मानो ।।

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ।। ८ ।।
देहाभिमानियों को करता मोहि जो,
तम कहलाता है ।
अज्ञानज वह निद्रा प्रमाद,
आलस्य से जीव बाँधता है ।।

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ।। ९ ।।
सत सुख में सदा लगाता है,
रज कर्मों में प्रवृत्त करता ।
तम ढाँक ज्ञान को हे अर्जुन !
मन में प्रमाद को है भरता ।।

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ।। १० ।।
रज-तम को सदा दबा करके हे
अर्जुन ! सतगुण है बढ़ता ।
रज-सत को दबा तमोगुण त्यों,
तम-सत को दबा रजः बढ़ता ।।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ।। ११ ।।
जब हृदय-इन्द्रियों में तन में,
चेतनता बोध-शक्ति होती ।
आभास मिले ऐसा जिस क्षण,
सत की अभिवृद्धि तभी होती ।।

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणाशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ।। १२ ।।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बढ़ने पर रज, हे पार्थ ! सुनो,
होती है लोभ-प्रवृत्ति-अशम।
फिर स्वार्थ-बुद्धि से कर्मों का
आरंभ तथा बढ़ जाता भ्रम।।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ।। १३।।

हे पार्थ ! तमोगुण बढ़ने पर,
मानव निज जीवन खोते हैं।
अज्ञान-प्रमाद-मोह-आलस,
इससे ही पैदा होते हैं।।

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ।। १४।।

सत की बढ़ती में जीवात्मा,
जब कभी मृत्यु को पाता है।
तब श्रेष्ठकर्म करने वालों के,
शुभ लोकों को जाता है।।

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते।। १५।।

रज बढ़ने पर हो मृत्यु,
तभी होता वह कर्मासक्त मनुज।
तम के बढ़ने पर मरा हुआ,
निश्चित होता पशु-कीट-दनुज।।

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ।। १६।।

सत-कर्मों का सात्विक निर्मल,
फल होता सुख-वैराग्य-ज्ञान।
राजस का फल है दुःख निश्चित,
तामस का फल अज्ञान जान।।

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ।। १७।।

सत से होता है ज्ञान, और रज
से होता है लोभ महा।
तम से त्यों ही-अज्ञान तथा
आलस-प्रमाद अरु मोह कहा।।

ऊर्ध्वंगच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ।। १८।।

सतगुण में सुस्थित हुये पुरुष
ऊँचे स्वर्गादि लोक पाते।
राजस, नर-लोक, तथा तामस-
हैं निम्न योनियों में जाते।।

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति।। १९।।

है नित्य-अकर्ता-गुणातीत यह आत्मा,
जो जन हृदय धरे।
वह पाता है मेरा स्वरूप,
जो है माया से सदा परे।।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ।। २०।।

ऐसा नर निश्चित तीनों गुण,
ही सहज पार है कर जाता।
वह जीवन-जरा-मरण-दुख से
हो मुक्त, परम-पद है पाता।।

अर्जुन उवाच

कैर्लिङ्गैस्त्रीगुणानेतानतीतो भवति प्रभो।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते।। २१।।

हैं गुणातीत के क्या लक्षण ?
आचरण कहो कैसा होता ?
पूछा अर्जुन ने हे भगवन !
कैसे वह गुणातीत होता ?

श्री भगवानुवाच

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति।। २२।।

बोले श्री कृष्ण न जो माने
अज्ञान ज्ञान को बुरा कभी।
उनकी निवृत्ति होने पर भी,
करता न लालसा अरे-कभी।।

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते।। २३।।

जो उदासीनवत् हो सुस्थित,
होता न गुणों से है विचलित।
'वर्तते गुणों में गुण केवल' जो जान,
ईश में है सुस्थित।।

समदुःख सुखः स्वस्थः समलोष्टाश्माकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ।। २४।।

जो सुख-दुख को समान जाने,
मिट्टी-पत्थर-सुवर्ण को भी।
निन्दा-स्तुति में जो है समान,
है धीर, प्रियाप्रिय में सम भी।।

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते।। २५।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानापमान में जो सम है,
अरि-मित्र जिसे सम हों प्रतीत।
वह सब आरंभों का त्यागी,
अर्जुन ! कहलाता गुणातीत।।
मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ।। २६।।
जो मनुज अनन्य भक्ति द्वारा,
है मुझे निरन्तर ही भजता।
होता वह पाने योग्य मुझे,
जब- तीनों गुण सम्यक तजता।।
ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च।। २७।।
मैं ही अविनाशी परम ब्रह्म,
मैं ही अमृत हूँ धर्माश्रय।
हे अर्जुन ! मैं ही हूँ निश्चय,
उस ऐकान्तिक सुख का आश्रय।।

श्री मद्भगवद्गीता का 'गुणत्रय विभाग योग' नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त

पञ्चदश अध्यायः

श्री भगवानुवाच
ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।। १।।
है मूल ऊर्ध्व शाखा नीचे,
हैं वेद पर्ण जिसके सुन्दर।
अव्यय-अश्वत्थ जानते जो,
वेदज्ञ वही कहलाते नर।।
अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।। २।।
उस विश्व-वृक्ष की गुण-जल से हैं,
विषय-कोपलें अति सुन्दर।
शाखायें ऊँचे-नीचे भी,
हैं फैल रहीं सर्वत्र सुघर।।
कर्मानुकूल बन्धन वाली,
ममता-वासना-जड़ें भारी।
नीचे-ऊँचे सब लोकों में,
यह फैल रही हैं अति प्यारी।।
न रूपमस्येह तथोपलभ्यते,
नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल,
संगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।। ३।।
इस विश्व-वृक्ष का रूप यहाँ,
है पाया जाता नहीं तथा।
है इसका तो न आदि, अर्जुन !
है कभी न इसका अन्त यथा।।
सुस्थित यह नहीं भली विधि से,
सुविरूढ़ मूला वाला तरुवर।
तू काट इसे वैराग्य-शस्त्र द्वारा
सत्वर ही हे धनुधर।।
ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः-
प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।। ४।।
उस परम ब्रह्म परमेश्वर को,
खोजना चाहिये सब प्रकार।
जिसको कि प्राप्त कर कभी न नर,
कहलाता कोई निराधार।।
जिस आदि-पुरुष से जग-तरु का,
धीरे-धीरे विस्तार हुआ।
जो निश्चयपूर्वक भजता है,
उसकी ही केवल शरण हुआ।।
निर्मानमोहा जितसंगदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः-
पदमव्ययं तत्।। ५।।
जो मान मोह से रहित,
तथा-परमात्मा में सुस्थित हरदम।
कामना रहित, आसक्ति-हीन
सुख और दुःख में है जो सम।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

द्वन्द्वों से मुक्त हुये ज्ञानी,
जब आत्म-लीन हो जाते हैं।
तो अविनाशी-अव्यय-पद को,
वे शीघ्र प्राप्त हो जाते हैं।।

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्वन्ते तद्धाम परम मम ।। ६।।

जिसको पावक-शशि सूर्य कभी,
हैं नहीं प्रकाशित कर पाते।
वह मेरा परम-धाम,
जिसको पा-नर न लौटकर हैं आते।।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।। ७।।

मेरा ही अंश सनातन है,
यह जीव-देह में सदा, पार्थ।
माया सुस्थित, मन सहित
वही-इन्द्रियाँ खींचता है यथार्थ।।

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रमतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्।। ८।।

ज्यों वायु गंध को ले जाता,
वैसे ही यह जीवात्मा भी।
मन सहित इन्द्रियों को लेकर,
पाता अन्यान्य शरीर सही।।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ।। ९।।

यह घ्राण-चक्षु औ' श्रवण त्वचा,
रसना से मन को धरता है।
फिर जीवात्मा मन आश्रित हो,
विषयों का सेवन करता है।।

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।। १०।।

त्यागते हुये तन रखते भी,
भोगते गुणों से युक्त सभी।
जानते तत्व से हैं ज्ञानी,
उसको अज्ञानी नहीं कभी।।

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ।। ११।।

योगीजन करके यत्न सतत,
इस आत्मा का दर्शन करते।
पर करके यत्न विमूढ़ अधम,
इसको न देख पाते मरते।।

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।।१२।।

जो तेज सूर्य में सुस्थित हो,
सारा जग आलोकित करता।
वह सब मेरा ही तेज पार्थ !
जो शशि-पावक में है रहता।।

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः।।१३।।

मैं ही महि में करके प्रवेश,
सब भूतों को धारण करता।
फिर होकर रसमय-सोम सभी,
औषधियों का वर्धन करता।।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ।। १४।।

सबके तन में सुस्थित होकर,
मैं वैश्वानर कहलाता हूँ।
मैं ही हो प्राण-अपान युक्त,
वे चारों अन्न पचाता हूँ।।

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो,
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो,
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।।१५।।

मैं ही अन्तर्यामी बनकर,
सबके उर में सुस्थित रहता।
मेरे से स्मृति ज्ञान अपोहन,
यहाँ सदा होता रहता।।
जानने योग्य हूँ कुरुनन्दन !
सब वेदों के द्वारा मैं ही।
वेदान्तों का मैं ही कर्ता,
हूँ अरे वेदविद् तो मैं ही।।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।। १६।।

इस जग में क्षर-अक्षर ही तो,
हैं दो प्रकार के पुरुष अहा।
सब भूतों के तन तो हैं क्षर,
पर अक्षर है कूटस्थ महा।।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः।। १७।।

उन दोनों पुरुषों से अर्जुन !
निश्चय ही उत्तम पुरुष परे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

त्रय लोकों का धारक-पोषक,
अव्यय परमात्मा वही, अरे।।
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तम: ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथित: पुरुषोत्तम:।। १८।।
मैं क्षरातीत हूँ अक्षर से,
भी उत्तम कहलाता अर्जुन।
बस, इसीलिये तो लोक-वेद में,
पुरुषोत्तम कहलाता सुन।।
यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत।। १९।।
पुरुषोत्तम सदा जानता है,
जो ज्ञानीं मुझको इस प्रकार।
मुझको ही भजता है हरदम,
सर्वज्ञ-पुरुष वह सब प्रकार।।
इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत।। २०।।
है कहा बहुत ही गोपनीय,
मैंने यह ज्ञान श्रेष्ठ अर्जुन।
जिसको कि जानकर नर,
ज्ञानी एवं कृतार्थ हो जाता-सुन।।

श्री मद्भगवद्गीता का 'पुरुषोत्तम योग' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त

षोडश अध्याय:

श्रीभगवानुवाच
अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थिति: ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।। १।।
स्वाध्याय-यज्ञ-तप-दान और
दम-आर्जव-उर की शुद्धि, अभय।
ज्ञानार्थ ध्यान में दृढ़ सुस्थिति,
बोले अर्जुन से कृष्ण सदय।।
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्याग: शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।। २।।
अक्रोध-अहिंसा-सत्य-त्याग,
पर-निन्दा-शान्ति-दया -मृदुता।
लज्जा-आसक्ति-रहित होना,
एवं यह व्यर्थ अचंचलता।।
तेज: क्षमा धृति: शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ।। ३।।
धृति-क्षमा-तेज-अद्रोह-शौच,
एवं सम्मान-विहीन सदा।
है प्राप्त जिन्हें दैवी-सम्पद्,
उनके यह गुण हैं पार्थ, सदा।।
दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोध: पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ।। ४।।
हे पार्थ! दंभ-अभिमान-दर्प,
पारुष्य क्रोध-अज्ञान मान।
आसुरी सम्पदा प्राप्त जिसे,
उसे नर के लक्षण यही जान।।
दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।
मा शुच: संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव।। ५।।
दैवी सम्पदा विमुक्ति-हेतु,
आसुरी कही है-बन्धनार्थ।
तुझको दैवी सम्पदा प्राप्त,
इस लिये न कर तू शोक पार्थ।।
द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवी विस्तीरश: प्रोक्त आसुरं पार्थ मे श्रृणु।। ६।।
हैं दैव तथा आसुर दो ही,
हे अर्जुन! भूतों के स्वभाव।
सुन चुका दैव, विस्तार-सहित,
अब सुन तू असुरों का स्वभाव।।
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुरा: ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते।। ७।।
वे नहीं जानते हैं प्रवृत्ति
एवं निवृत्ति पापाचारी।
है शौच न उनमें सदाचार,
वे हैं निश्चय मिथ्याचारी।।
असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम्।। ८।।
वे कहते यह जग स्वयंभूत है
बिना ईश के निराधार।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नर नारी मिलन हेतु इसका,
यह भोगों का भंडार सार।।
एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः।। ९।।
यह मिथ्या ज्ञान ग्रहण कर वे,
करते रहते अपकार सदा।
वे अल्प बुद्धि नष्टात्म !
क्रूर-कर्मी बनते जग भार सदा।।
काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।। १०।।
वे दंभ-मान-मद युक्त हुये,
हैं असत कामनायें करते।
मिथ्या-सिद्धान्तों को ले वे,
नित भ्रष्ट-कर्म में रत रहते।।
चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः।। ११।।
वे मरने तक रहने वाली,
चिन्ताओं का आश्रय लेते।
कामोपभोग में तत्पर रह,
उसको आनन्द मान लेते।।
आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्।। १२।।
शत-आश-पाश में फँसे हुए,
वे काम क्रोध को अपनाते।
इन्द्रिय भोगों की पूर्ति-हेतु,
अन्याय-पूर्वक धन लाते।।
इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ।। १३।।
पा लिया आज तो यह मैंने,
कल और मनोरथ पाऊँगा।
इतना धन मेरे पास अभी,
फिर और धनी हो जाऊँगा।।
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी।। १४।।
यह वैरी मैंने मार लिया,
कल औरों को भी मारूँगा।
मैं भोगी-सिद्ध-सुखी-ईश्वर,
मैं नहीं किसी से हारूँगा।।
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ।। १५।।
मैं हूँ धनाढ्य, है कौन यहाँ?
दूसरा अरे, मेरे समान।
दे दान, करूँगा, हर्ष प्राप्त हैं,
वे मोहित ऐसे अजान।।
अनेकाचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ।। १६।।
हैं मोह-जाल में फँसे हुये,
वे भ्रमित-चित्त वाले दुर्जन।
आसक्त विषय-भोगों में हो,
वे पाते अशुचि नरक, अर्जुन ।।
आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ।। १७।।
वे आत्म-प्रशंसक पाखंडी,
धन मान और मद से युत हो।
करते हैं यजन अविधिपूर्वक,
वे यज्ञ दंभ से प्रेरित हो।।
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ।। १८।।
वे अहंकार-बल दर्प-काम-
क्रोधादि-परायण रहते हैं।
सबके तन में सुस्थित मुझको,
पर-निन्दक नहीं समझते हैं।।
तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ।। १९।।
जो क्रूर-नराधम-अति पापी,
हैं मुझसे द्वेष सदा करते।
वे असुर-योनियो में रह-रह
हर बार भयंकर दुख सहते।।
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्।। २०।।
आसुरी-योनि को प्राप्त हुये,
वे मूढ़ न मुझे कभी पाते।,
वे नीच-अधम गति को पाकर,
सचमुच नरकों में हैं जाते।।
त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।। २१।।
हैं काम क्रोध अरु लोभ,
पार्थ ! यह तीन नरक के द्वार सदा।
मानव के वैरी हैं निश्चय यह,
इससे तीनों त्याज्य सदा।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ।। २२ ।।
इन तीन नरक के द्वारों से,
जो पुरुष मुक्त हो जाता है।
चलकर कल्याण-पंथ पर
तो वह धीर परम गति पाता है।।
यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ।। २३ ।।
जो पुरुष शास्त्र की विधि को तज,
कर इच्छा से कर्म किया करता।
वह कभी सिद्धि सुख प्राप्त न कर,
है नहीं परम गति पा सकता।।
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।। २४ ।।
इस कार्याकार्य व्यवस्था में,
केवल कर शास्त्रों को प्रमान।
कर सभी शास्त्र विधि-युक्त
कर्म पहले उन सबका मर्म जान।।

श्रीमद्भगवद्गीता का 'दैवासुर संपद विभाग योग' नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त

सप्तदशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच
ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ।। १ ।।
हे कृष्ण ! शास्त्र-विधि को तज जो,
श्रद्धा से देव-यजन करते।
रज-तम-सात्विकी तीन में से,
उनकी निष्ठा को क्या कहते ?
श्री भगवानुवाच
त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ।। २ ।।
केवल स्वभावजा वह श्रद्धा,
निश्चय ही त्रिविधा होती है ।
बोले श्री कृष्ण-सुनो अर्जुन,
इसको पा, जो गति होती है ।।
सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।। ३ ।।
है सभी प्राणियों की श्रद्धा,
उनके भावानुरूप होती ।
यह पुरुष सदा से श्रद्धामय,
जैसी श्रद्धा वह गति होती ।।
यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ।। ४ ।।
सात्विक जन देवों को, राजस
यज्ञों को पूजा करते हैं ।
पर, तामस जन तो सदा,
भूत-प्रेतों को पूजा करते हैं ।।
अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ।। ५ ।।
जो मनुज शास्त्र-विधि को तजकर,
तप घोर स्वतः तपते रहते ।
वे अहंकार-युत हैं दंभी,
कामादि-राग बल-युत फिरते ।।
कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ।। ६ ।।
जो सभी प्राणियों को, एवं-मुझको
भी कृश करते रहते ।
आसुर-स्वभाव वाले वे सब, हैं
मूढ-व्यर्थ जीवन धरते ।।
आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ।। ७ ।।
ज्यों श्रद्धा त्रिविधा होती हैं,
अर्जुन त्यों ही आहार त्रिविध ।
वैसे ही ज्ञान-यज्ञ तप भी होते हैं,
जग में पार्थ त्रिविध ।।
आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ।। ८ ।।
बल-बुद्धि प्रीति-सुख आयु
और आरोग्य-वृद्धि हैं जो करते ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रस युक्त, स्निग्ध भोजन-पदार्थ,
सात्विक पुरुषों को प्रिय लगते ।।
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिना ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ।। ९ ।।
कड़वे-खट्टे-नमकीन गरम
जो तीक्ष्ण तथा रूखे रहते ।
यों दुखद और शोकद पदार्थ,
राजस पुरुषों को प्रिय लगते ।।
यातयामं गतरसं पूर्ति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ।। १० ।।
रस-रहित, अधपका जूठा भी,
बासी दुर्गन्ध युक्त भोजन ।
अपवित्र आहार सदा रुचिकर,
तामस लोगों को, हे अर्जुन ।।
अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ।। ११ ।।
शास्त्रानुसार जो नियत यज्ञ,
करना ही है कर्तव्य, पार्थ
तज,फलासक्ति-करते जो जन,
वह यज्ञ सात्विक है यथार्थ ।।
अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ।। १२ ।।
फल की इच्छा रखकर के जो,
केवल दंभार्थ यज्ञ करते ।
हें अर्जुन ! सब धीमान् उसे,
हैं राजस यज्ञ कहा करते ।।
विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ।। १३ ।।
जो शास्त्र-वेद-विधि-हीन सदा,
है बिना दक्षिणा के, अर्जुन ।
वह मंत्र-हीन, श्रद्धा-विरहित,
है यज्ञ-अरे, तामस-तू सुन ।।
देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।। १४ ।।
द्विज-देव-प्राज्ञ गुरु का पूजन,
शुभ ब्रह्मचर्य सारल्य सदा ।
पावनता और अहिंसा ही,
शारीरिक तप है, पार्थ सदा ।।
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ।। १५ ।।
जो अनुद्वेग कर, हितकारक,
है प्रिय-भाषण निश्चय यथार्थ ।
स्वाध्याय, नाम-जप असंदिग्ध,
है वाणी का तप, वीर पार्थ ।।
मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ।। १६ ।।
मन की प्रसन्नता, शान्त भाव,
मौनात्म-विनिग्रह सदा पार्थ ।
उर की पवित्रता मिल यह सब,
मानस तप है, तू सुन यथार्थ ।।
श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ।। १७ ।।
सब फलासक्ति तज युक्त पुरुष,
अर्जुन ऐसा उर-धरते हैं ।
श्रद्धापूर्वक पूर्वोक्त त्रिविध,
तप को वे सात्विक कहते हैं ।।
सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ।। १८ ।।
जो तप केवल पाखंड हेतु-आदर-
पूजार्थ किया जाता ।
वह क्षणिक अनिश्चित फल वाला,
राजस-तप सदा कहा जाता ।।
मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ।। १९ ।।
जो तप हठ-पूर्वक पर-पीड़न
एवं अनिष्ट-हित करते हैं ।
निश्चयपूर्वक हे पार्थ ! सुनो
उसको तामस-तप कहते हैं ।।
दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ।। २० ।।
जो देश-काल-पात्रानुसार,
है दान दिया जाता अर्जुन ।
कर्तव्य समझ जो अनुपकार-हित
होता है, सात्विक तू सुन ।।
यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ।। २१ ।।
जो दान क्लेश-पूर्वक अर्जुन !
देते हैं प्रत्युपकार-हेतु ।
सोद्देश दान ही वह राजस,
होता केवल परिणाम-हेतु ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्।। २२।।
जो दान बिना सम्मान किये,
है दिया कुपात्रों को जाता।
निश्चय ही ऐसा दान पार्थ!
केवल तामस माना जाता।।
ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा।। २३।।
यह त्रिविध ब्रह्म का नाम ओम्,
तत्-सत जो सदा हृदय धारे।
ब्राह्मण यज्ञादिक वेद, उसी
से रचे गए पहिले सारे।।
तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्।।२४।।
इसलिये ब्रह्मवादी विधियुत,
तप-यज्ञ-दान की क्रिया सभी।
करते हैं, प्रथम ओम् कहकर,
प्रारंभ पार्थ! वे सदा सभी।।
तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभि।। २५।।
यह सब उस प्रभु का है केवल,
जो फल न चाहते हुये कभी।
वे दान-यज्ञ-तप-क्रिया आदि,
करते मोक्षेच्छुक मनुज सभी।।
सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते।। २६।।
सद्भाव दिव्य भावों में है,
सत का सुप्रयोग किया जाता।
उत्तम कर्मों में भी इसका
अर्जुन उपयोग किया जाता।।
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते।। २७।।
तप-दान-यज्ञ में जो सुस्थिति
वह भी सत अर्जुन कहलाती।
उस परमात्मा के लिये क्रिया
जो की जाती- सत कहलाती।।
अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।। २८।।
श्रद्धा-विहीन हुत, दिया दान-
तप एवं जो कुछ कर्म किया।
वह सभी असत कहलाता है,
हे पार्थ! व्यर्थ वह यहाँ जिया।।

श्री मद्भगवद्गीता का 'श्रद्धात्रय विभाग योग' नामक सत्रहवां अध्याय समाप्त

अष्टादश अध्यायः

अर्जुन उवाच
संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषिकेश पृथक्केशिनिषूदन।। १।।
अर्जुन बोले- हे महाबाहु!
मेरी बिनती यह सुन लीजे।
संन्यास, त्याग का तत्व पृथक,
कहने की कृष्ण कृपा कीजे।।
श्री भगवानुवाच
काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः।। २।।
है काम्य-कर्म का त्याग जिसे,
संन्यास बताते हैं कुछ जन।
सब कर्मों के फल को तजना,
ही त्याग बताते हैं बुध-जन।।
त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः।
यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यमिति चापरे।। ३।।
हैं दोष युकत सब कर्म यहाँ,
इसलिये त्याज्य-कुछ कहते हैं।
तप-दान-यज्ञ यह नहीं त्याज्य,
कुछ ऐसा भी तो कहते हैं।।
निश्चयं शृणु मे तत्र त्याग भरतसत्तम।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः।। ४।।
परित्याग विषय में अब मेरा,
हे पुरुष श्रेष्ठ! दृढ़ निश्चय, सुन।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सात्विक-राजस एवं तामस-हैं
त्याग त्रिविध जग में अर्जुन।।
यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।। ५।।
हैं नहीं त्याज्य, करणीय सदा,
तप-दान और यज्ञादि कर्म।
पावन करने वाले हैं यह,
मतिमानों को तीनों सुकर्म।।
एतान्यपि तु कर्माणि संगंत्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ।। ६।।
यह श्रेष्ठ कर्म जितने भी हैं,
वे करने योग्य सभी, निश्चित।।
आसक्ति और फल को तजकर,
सब करो- यही है मेरा मत।
नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः।। ७।।
तज देता नियत-कर्म अर्जुन,
श्रेयस्कर कभी न कहलाता।
तज देना उसे मोह द्वारा,
यह तामस-त्याग कहा जाता।।
दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्।। ८।।
सब कर्मों को दुख-रूप समझ,
जो देहिक दुख-भय से तजता।
करके भी राजस-त्याग,
उसे-उसका फल कभी नहीं मिलता।।
कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
संगंत्यक्त्वा फलं स त्यागः सात्त्विको मतः।। ९।।
आसक्ति और फल तजकर जो,
शास्त्रोक्त-कर्म विधिवत करता।
वह ही है सात्विक-त्याग पार्थ,
मन शुभ-भावों से है भरता।।
न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः।। १०।।
अकुशल-कर्मों से नहीं द्वेष,
आसक्त न जो शुभ कर्मों में।
सतगुण से युक्त हुआ वह ही,
त्यागी ज्ञानी, सब धर्मों में।।
न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ।। ११।।
तन-धारी जन पूरी विधि से,
सब कर्मों को न त्याग पाता।
कर्मों के फल का त्यागी
जो वह ही त्यागी है कहलाता।।
अनिष्टमिष्टं मिश्रंच त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित्।।१२।।
तज देह, सकामी भी पाते-
शुभ-अशुभ और मिश्रित सब फल।
पर, त्यागी कभी नहीं पाता,
है किसी काल में यह त्रय-फल।।
पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्।। १३।।
सब कर्मों की संसिद्धि-हेतु,
यह केवल पाँच हेतु जानो।
जो सांख्य-योग में कहे गये,
उनको ही भली-भाँति मानो।।
अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैव चवात्र पञ्चमम्।। १४।।
कर्ता' 'आधार' तथा न्यारे-न्यारे हैं
'करण' यहाँ अर्जुन।
है पृथक्-पृथक् 'चेष्टा' एवं
पाँचवा हेतु है दैव' गहन।।
शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरितं वा पञ्चैते तस्य हेतवः।। १५।।
तन-मन-वाणी से जन जो भी हैं
जग में कार्य किया करते।
हों उचित या कि अनुचित,
उनके यह ही पाँचों कारण रहते।।
तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः।। १६।।
ऐसा होने पर भी विमूढ,
अपने को जो कर्ता माने।
है मलिन-बुद्धि अति अज्ञानी,
वह शुद्ध रूप कैसे जाने।।
यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते।। १७।।
जिसमें कर्ता का भाव नहीं,
है लिप्त न जिसकी बुद्धि यहाँ।
वह मार सभी लोकों को भी,
मारता न बँधता कभी यहाँ।↓

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ।। १८।।
ज्ञाता अरु ज्ञान ज्ञेय अर्जुन,
हैं यही कर्म के प्रेरक त्रय।
ऐसे ही कर्ता-कर्म-क्रिया,
हैं यही कर्म के संग्रह त्रय।।
ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि।। १९।।
हैं सांख्य-शास्त्र में कहे गये,
त्रय ज्ञान-कर्म-कर्ता अर्जुन।
होकर के शान्त और सुस्थित,
उनको भी भली भाँति तू सुन।।
सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्।। २०।।
जो पृथक्-पृथक् सब भूतों में,
अविभक्त-भाव से एक मान।
केवल मुझ अव्यय को लखता,
उसको तू सात्विक ज्ञान जान।।
पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ।। २१।।
सब भूतों में हो भिन्न-भिन्न,
भावों का जिससे भान, पार्थ।
उसको तू राजस ज्ञान जान,
मैं कहता हूँ तुझसे यथार्थ।।
यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ।। २२।।
जो एक कार्य में ही पूरी,
विधि से आसक्त हुआ रहता।
वह तामस ज्ञान तुच्छ है अति,
जो नित तत्वार्थ हीन रहता।।
नियतं संगरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्मयत्तत्सात्त्विकमुच्यते।। २३।।
फल की आशा को तज करके,
करता जो नियमित यहाँ कर्म।
वह राग-द्वेष से संग-रहित,
कहलाता सात्विक पुण्य कर्म।।
यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ।। २४।।
जो कर्म अहंकारी द्वारा,
फल की आशा से होता है।
है राजस कर्म वहीं जिसमें,
नर अहं न अपना खोता है।।
अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ।। २५।।
परिणाम-हानि-हिंसा न देख,
जो कर्मारंभ किया जाता।
अज्ञान-पूर्ण, सामर्थ्य हीन-वह
तामस कर्म कहा जाता।।
मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते।। २६।।
जो निर्विकार आसक्ति-रहित,
उत्साह धैर्य से हृदय भरे।
है सात्विक-कर्ता वह अर्जुन !
जो अनहंवादी, धीर धरे।।
रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्माकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः।। २७।।
रागी फल आशा का इच्छुक,
जो हर्ष शोक से युक्त, पार्थ।
वह लोभी हिंसात्मक-मलीन,
है राजस-कर्ता सुन यथार्थ।।
अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठोनैष्कृतिकोऽलसः।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ।। २८।।
शिक्षा से रहित घमंडी शठ,
जो आलस से मन बहलाता।
निष्क्रिय शोकाकुल दीर्घसूत्र,
तामस कर्ता वह कहलाता।।
बुद्धिर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय।। २९।।
इन तीनों गुणों के ही कारण,
है त्रिविधभेद निश्चय, अर्जुन।
सत बुद्धि और धृति का वर्णन,
विस्तार सहित तू मुझसे सुन।।
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी।। ३०।।
हे पार्थ ! प्रवृत्ति-निवृत्ति मोक्ष,
जाने भय, बन्धन और अभय।
जो जाने कार्याकार्य सदा,
वह ही तो सात्विक बुद्धि , सदय।।
यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी।। ३१।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो कार्याकार्य अधर्म-धर्म,
को नहीं जानती है यथार्थ।
निश्चय पूर्वक इसको मानो,
है वही बुद्धि राजसी, पार्थ।।

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी।। ३२।।

जो है आवृत्त तमोगुण से,
माने अधर्म को धर्म, पार्थ!
सब अर्थों को उलटा जाने,
तामसी बुद्धि वह ही यथार्थ।।

धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी।। ३३।।

अव्यभिचार्य धारणा से,
प्राणेन्द्रिय मन की क्रिया सभी।
धारे जो ध्यान योग द्वारा,
कहलाती 'धृति' सात्विकी तभी।।

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन ।
प्रसंगेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी।। ३४।।

फल इच्छुक जन जिस धृति द्वारा,
धारण करता कामार्थ-धर्म।
वह धृति राजसी कहाती है,
समझो तुम इसका पार्थ! मर्म।।

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी।। ३५।।

निद्राभय चिन्ता मद दुखको,
जिस धृति द्वारा धारण करता।
तामसी वही धृति हे अर्जुन!
दुर्बुद्धि सदा वह दुख सहता।।

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ।। ३६।।

अब सुनो त्रिविध सुख को अर्जुन!
मैं कहता हूँ तेरे हितार्थ।
करके अभ्यास ध्यान द्वारा,
जिससे जानेगा तू यथार्थ।।

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्।। ३७।।

लगता वह विष के सदृश प्रथम,
परिणाम सुधा सम होता है।
जो ईश-कृपा से मिलता है,
वह ही सात्विक सुख होता है।।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्।। ३८।।

जो होता सुख विषयेन्द्रिय से,
पहले अमृत सा लगता वह।
परिणाम गरल सम होता
फिर कहलाता है राजस सुख वह।।

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ।। ३९।।

जो प्रथम अन्त में भी न सुखद,
निद्रा आलस प्रमाद वाला।
तामस सुख कहलाता वह ही,
आत्मा मोहित करने वाला।।

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः।। ४०।।

दिवि में, पृथ्वी में, देवों में
प्राणी ऐसा है नहीं कहीं।
जो हो इन त्रिगुणों से विमुक्त,
मेरा यह मिथ्या वचन नहीं।।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः।। ४१।।

द्विज-क्षत्रिय वैश्य अन्त्यजों के हैं,
सारे कर्म विभक्त सुनो।
वे सभी स्वभावज हैं अर्जुन!
उनको गुण के अनुकूल गुनो।।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।। ४२।।

शम-दम-आर्जव-तप-क्षमा भाव,
आस्तिक-मति औ विज्ञान ज्ञान।
ब्राह्मण के कर्म स्वभावज हैं,
इनसे ही बनते वे महान।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।। ४३।।

धृति-तेज शौर्य चातुर्य और,
हटना न कभी रण से, अर्जुन।
स्वामीपन दान आदि यह ही,
स्वाभाविक क्षत्रिय कर्म गहन।।

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ।। ४४।।

कृषि-गौरक्षा-वाणिज्य आदि,
हैं वैश्यों के यह सहज-कर्म।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सब वर्णों की सेवा करना,
नि:स्वार्थ शूद्र का सहज-धर्म।।
स्वे स्वे कर्मण्यभिरत: संसिद्धिं लभते नर:।
स्वकर्मनिरत: सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु।। ४५।।
निज-निज कर्मों में निरत मनुष्य,
पाता है परमसिद्ध, मुझको।
जैसे निज कर्म-निरत-पाता,
है सिद्धि श्रवण कर तू उसको।
यत: प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानव:।। ४६।।
जिससे सब प्राणी प्रगट हुये,
जिससे यह व्याप्त जगत सारा।
पाते नर परम-सिद्ध केवल,
पूजा कर निज-कर्मों द्वारा।।
श्रेयान्स्व धर्मो विगुण: परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम् ।। ४७।।
निर्गुण भी अपना धर्म श्रेष्ठ,
पर-धर्म नहीं हो सकता वर।
होगा न पाप तुझको, अर्जुन !
इससे स्व-धर्म का पालन कर।।
सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निवावृता: ।। ४८।।
होने पर दोष-युक्त भी तो,
हैं नहीं त्याज्य,निज सहज-कर्म।
हैं क्योंकि दोष से आच्छादित,
धूम्राग्नि भाँति सब यहाँ कर्म।।
असक्तबुद्धि: सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृह:।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति।। ४९।।
निरासक्त बुद्धिवाला, जो
निस्पृह और जितात्मा नर।
पाता नैष्कर्म्य-सिद्धि को वह,
द्रुत साँख्य योग से निश्चयकर।।
सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ।। ५०।।
हे कुन्ती पुत्र ! सिद्ध योगी,
करता है प्राप्त ब्रह्म कैसे ।
सुन तत्व-ज्ञान की निष्ठा भी,
मिल जाती है उसको जैसे ।।
बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ।। ५१।।
हो शुद्ध-बुद्धि से युक्त तथा,
धृति द्वारा मन को वश में कर।
हो राग-द्वेष से हीन,
तथा शब्दायदिक विषयों को तजकर।।
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानस:।
ध्यानयोगपरो नित्य वैराग्यं समुपाश्रित: ।। ५२।।
एकान्त देश-सेवी जो नर,
तन-मन-वाणी वश में करके।
हो ध्यानयोग से युक्त नित्य,
वैराग्य सुदृढ़ धारण करके।।
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्मम: शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।। ५३।।
बल-क्रोध-काम-संग्रह-घमंड
फिर अहंकार जो तज देता।
वह ही प्रशान्त निश्चय करके,
तब पारब्रह्म को पा लेता।।
ब्रह्मभूत: प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
सम: सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ।। ५४।।
है जो प्रसन्न चित ब्रह्मलीन,
करता न शोक आकांक्षा ही।
सब भूतों में सम भाव हुआ,
पाता है मेरी भक्ति वही।।
भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वत:।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।। ५५।।
उस परा भक्ति के द्वारा वह
तत्वत: जान लेता मुझको।
यों होता लीन मुझी में जो,
मैं रहता नहीं अलभ उसको।।
सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रय:।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ।। ५६।।
निष्काम-कर्म-योगी मत्पर,
हो सभी कर्म करता जाता।
वह मेरी कृपा-मात्र से फिर,
शाश्वत-पद-अव्यय पा जाता।।
चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्पर:।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्त: सततं भव।। ५७।।
अर्जुन! सब कर्मों को मुझ में,
मन से अर्पण कर मत्पर हो।
आश्रय ले बुद्धियोग का
तू मेरे मनवाला तत्पर हो।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि।। ५८।।
मेरे मन वाला होकर यों,
पा-कृपा-कोर-तर जायेगा।
यदि अहंकार-वश सुना न कुछ,
तो स्वयं नष्ट हो जायेगा।।

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति।। ५९।।
यदि अहंकार का आश्रय ले-
तू नहीं करेगा युद्ध पार्थ।
क्षत्रिय का सहज-स्वभाव तुझे
योजित कर देगा सुन, यथार्थ।।

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत्।। ६०।।
होकर के मोहाधीन, पार्थ !
करना न चाहता तू जिसको।
परवश उस सहज प्रकृति द्वारा,
वह ही करना होगा तुझको।।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। ६१।।
सब भूतों के उर में अर्जुन !
सर्वज्ञ ईश सुस्थित रहता।
कर्मानुकूल जो जीवों को-
निज माया से प्रेरित करता।।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ।।६२।।
इसलिये सर्वभावेन पार्थ !
शरणागत हो सब कुछ तजकर।
उस प्रभु की कृपा मात्र से ही,
पायेगा परमशान्ति पद वर।।

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ।। ६३।।
अति गोपनीय से गोपनीय,
यह ज्ञान कहा मैंने हितकर।
हो अब जैसी तेरी इच्छा,
कर वही तुझे जो हो रुचिकर।।

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्।। ६४।।
अति गोपनीय, है मर्मयुक्त,
यह मेरा वचन, सखे अर्जुन।
इसलिये कहूँगा तेरे-हित,
है क्योंकि अधिक प्रिय तू अर्जुन।।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ।। ६५।।
मेरे मन वाला हो सुभक्त,
तू कर मुझको ही नमस्कार।
अतिशय प्रिय तू, कहता मैं सच,
पायेगा मुझको निर्विकार।।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। ६६।।
बस, मेरी एक शरण आ जा,
सब धर्म-कर्म आश्रय तजकर।
सारे पापों से कर दूँगा-मैं मुक्त तुझे,
कुछ शोक न कर।।

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति।। ६७।।
तेरे हित कहा गया पावन,
अतिमर्म-युक्त यह श्रेयस्कर।
कहना न चाहिये इसे कभी,
उससे जो भक्ति-हीन हो नर।।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः।। ६८।।
जो इस गीता को प्रेम सहित,
भक्तों में कहे-सुनायेगा।
वह निश्चय भव-सागर तर कर,
सत्वर मुझको ही पायेगा।।

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि।। ६९।।
उससे बढ़कर है मुझे न प्रिय,
प्रिय कर्ता पार्थ, और कोई।
ऐसा अतिशय प्रिय भक्त,
व्यक्ति होगा न धरणि पर भी कोई।।

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानेनज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः।। ७०।।
जो धर्मयुक्त हम दोनों का,
सम्वाद पढ़ेगा प्रेम-सहित।
मैं ज्ञान-यज्ञ द्वारा उससे,
पूजित होऊँगा, है निश्चित।।

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्।। ७१।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जो दोष दृष्टि से रहित,
तथा श्रद्धायुत हो यह श्रवण करे।
पापों से युक्त हुआ निश्चय,
वह शुभ लोकों को प्राप्त करे।।

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ।। ७२।।

एकाग्र चित्त से सुन करके,
पावन गीता की महिमा यह।
वह मोह जनित अज्ञान, पार्थ !
क्या हुआ न नष्ट अरे सच कह।।

अर्जुन उवाच

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ।। ७३।।

हो गया नष्ट सब मोह, कृष्ण !
पा करके कृपा त्वदीय यहाँ।
सुधि प्राप्त हुई, सन्देह गया,
मैं पालूंगा तव वचन, महा ।।

संजय उवाच

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ।। ७४।।

संजय ने कहा कि हे राजन !
अद्भुत रोमांचक सुखद पुण्य ।
कृष्णार्जुन का सम्वाद सुना,
अति दुर्लभ मैं हो गया धन्य ।।

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम्।। ७५।।

पा, व्यास कृपा से दिव्य-दृष्टि,
है सुना योग मैंने दुर्लभ ।
साक्षात् कृष्ण योगेश्वर ने,
अर्जुन के प्रति जो कहा अलभ ।।

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः।। ७६।।

सुन कृष्णार्जुन सम्वाद सत्य,
अद्भुत पावन शिव अति सुन्दर।
सुस्मृतिकर पुनः पुनः होता,
अति ही हर्षित मैं, हे नर-वर।।

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान्राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः।। ७७।।

सुस्मृत कर अद्भुत विश्वरूप,
आश्चर्यचकित हो जाता हूँ ।
मैं बारबार हर्षित होकर,
अपनी सुधि बुधि खो जाता हूँ।।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ।। ७८।।

राजन् ! योगेश्वर कृष्ण जहाँ,
हैं और धनुर्धर पार्थ जहाँ।
ऐसा मेरा मत है निश्चित-
श्री विजय-भूति-ध्रुव-नीति वहाँ।।

श्रीमद्भगवद्गीता का 'मोक्ष-संन्यास योग' नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त
।। श्री मद्भगवद्गीता समाप्त।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू धर्म का एक प्रधान स्तम्भ-गीता

मनुष्य का सर्वप्रधान उद्देश्य जीवन के रहस्य को समझना और तदनुसार बुद्धिमता पूर्वक व्यतीत करना बतलाया गया है। सभी धर्म शास्त्रों में नीति चरित्र परोपकार आदि के जो उपदेश दिये गये हैं, उनका सार यही है कि अपना जीवन मनुष्योचित ढंग से बितायें। इस प्रकार के धर्म ग्रन्थों में गीता का दर्जा सबसे ऊँचा है। गीता में धर्म की आरम्भिक बातें नहीं बतलाई गई और न बहुत स्पष्ट नैतिक नियमों का उपदेश दिया गया है। ये बातें तो धर्म के क्षेत्र में प्रवेश करने वाले सभी व्यक्ति जानते हैं और कुछ अंशों में उनका पालन करने का उद्योग भी करते हैं। गीता के आरम्भ के थोड़े से श्लोक तो भूमिका स्वरूप हैं जिनमें कथा रूप में महाभारत का युद्ध आरम्भ होते समय श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन को गीता का उपदेश देने के प्रसंग पर प्रकाश डाला गया। दूसरे अध्याय के ग्यारहवें श्लोक से गीता की वास्तविक शिक्षा आरम्भ होती है, जिसमें भगवान कृष्ण ने यह बात बताई है कि तुम घटनाओं का अर्थ गलत लगाते हो। बन्धुओं और गुरुजनों के मारने को तुम जितना महत्व देते हो वह बहुत अधिक है। उसका मूल्य इतना नहीं है। यहीं से कर्तव्य की अवाधता और देह की क्षुद्रता के सम्बन्ध में गीता का उद्देश्य आरम्भ होता है।

गीता जीवन शास्त्र है। यों तो सनातन हिन्दू धर्म का आधार वेद माने जाते हैं, पर वेद बड़े ग्रन्थ हैं, कठिन भाषा में लिखे हैं, और उनमें ऐसी बहुत सी क्रियाऐं हैं जिनको आचरण में लाना आधुनिक काल में अत्यन्त कठिन है। इसलिए वर्तमान काल में गीता का हिन्दुओं में प्राय: ऐसा स्थान हो गया है जैसा ईसाइयों में बाइबिल का है। गीता में एक और विशेष गुण है जिसे हम सार्वभौमिकता कह सकते हैं। गीता साम्प्रदायिक ग्रंथ नहीं है। इसमें हर देश के रहने वाले और हर धर्म के मानने वालों के लिये तत्व दर्शन की सामग्री मिल सकती है। गीता में वर्णित विषय को हम मुख्यत: इन चार विभागों में विभाजित कर सकते हैं -

नियम

संसार में हमको नियम हर जगह दिखाई पड़ता है। सूर्य ठीक समय से निकलता और अस्त होता है। भोजन और ओषधियों के गुण नियम के अनुसार होते हैं। सारा संसार, स्थावर, जंगम, सब नियम से बँधे पाये जाते हैं। एक विद्वान का कथन है कि इस सर्व व्यापक नियम के रूप में ईश्वर हमको नित्य दिखाई देता है। इसे हम इन शब्दों में भी कह सकते हैं कि जो नियम की अवाधता में विश्वास करता है वही आस्तिक ईश्वर का मानने वाला है। इस सम्बन्ध में गीता में कहा गया है -

पार्थ नैवे हनामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
नहि कल्याण कृत कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति।।

अर्थात्- "हे अर्जुन उस मनुष्य का न तो इस लोक में और न परलोक में ही नाश होता है और न बुरा होता है' जो भला कर्म करने वाला है उसकी कभी दुर्गति नहीं होती।" इस श्लोक में 'अमुत्र' (परलोक) शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है। पश्चिमी "कर्तव्या कर्तव्य शास्त्र" इस लोभ का विचार करके ही किसी कृति या घटना का मूल्य लगाता है। पर गीता इस लोक और परलोक दोनों का विचार करके मूल्य स्थिर करती है। इसलिये गीता का निर्णय अधिक पूर्ण और अधिक महत्व का होगा। नियम की अबाधता के उपदेश मात्र से ही यदि इस पर हमारा पूर्ण विश्वास हो जाये तो हमारे जीवन में महान परिवर्तन हो जायगा। जैसे किसी खजांची को कोई सरकारी दफ्तर कुछ रुपया नौकरों की तनख्वाह बाँटने को दे और वह उसे चुरा ले तो यह विचार पूरी मूढ़ता का होगा कि चोरी छिपी रहेगी। जिनको वेतन मिलना था वे शिकायत करेंगे तो चोरी खुल कर खजांची को सजा दी जायगी। यही नियम संसार के हर काम में है। कोई पाप चाहे सफलता पूर्वक थोड़े या बहुत काल के लिये छिपाया जा सके, पर अन्त में अपना बुरा फल दिये बिना न रहेगा। यह धारणा दृढ़ होने से हम स्वयं पाप से बचने लगेंगे और समाज का बड़ा हित होगा। गीता में कहा गया है-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योजु न ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमोमतः ।।

" हे अर्जुन! जो सब प्राणियों के सुख और दुःख को अपने सुख और दुख के समान समझता है, वह परम श्रेष्ठ योगी है।" यह उपदेश भी संसार के लिए व्यापक है। एक प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान ने भी कहा है कि "औरों के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा तुम दूसरों से अपने साथ चाहते हो।"

कर्म

जीवन की परिस्थितियाँ इतनी गहन और बहुधा उलझी हुई होती हैं कि विचारशील और अध्ययनशील व्यक्तियों को भी सरलता से मार्ग स्पष्ट नहीं दिखाई देता।" जीवन शास्त्र की दृष्टि से ऐसी स्थिति के लिये गीता में सर्वोत्तम मार्ग दर्शाया गया है: -

कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफल हेतुर्भू मास्ते सङ्गोऽत्स्वकर्मणि ।।

अर्थात, "तेरा कर्म करने मात्र में ही अधिकार है, फल में नहीं। कर्मों के फल के पीछे मत दौड़ और सावधान रह कि कहीं तू आलसी बनकर कर्म करना ही न छोड़ बैठे।"

इसमें स्वार्थ रहित काम करने का, लोकहित का काम करने का उपदेश दिया गया है। ईश्वर ने हमारे ही हित के लिये हमें जिस स्थिति में रखा है वही स्थिति हमारे लिये सबसे अच्छी है। इसलिये हमारा कल्याण इसी में है कि हम अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार अच्छे से अच्छा काम करते जाँय और उसका फल भगवान के ऊपर छोड़ दें। हमारा कर्म हमारे लिये बड़े महत्व की बात है क्योंकि कर्म से ही हमारा भला बुरा होता है। इसलिये इस सम्बन्ध में केवल नकारात्मक उपदेश कि 'कर्म करो पर फल की इच्छा न रक्खो" पर्याप्त नहीं है। इसलिये गीता में आगे चल कर कहा है -

यज्ञ शिष्टाशिनः सन्तो मुच्यंते सर्व किल्विषै।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्म कारणात् ।।

" यज्ञ करके जो बच रहे उसे खाने वाले श्रेष्ठ जन सब पापों से छूट जाते हैं, पर जो केवल अपने शरीर के पोषण के लिये भोजन पकाते हैं उन्हें पाप लगता है। गीता का 'यज्ञ' शब्द बड़े महत्व का है पंडितवर राधाकृष्णन कहते हैं-

"गीता का यज्ञ वेदों का यज्ञ" कर्मवाण नहीं है इसमें तो सभी त्यागमय कर्म शामिल हैं, जिन से व्यक्ति अपना धर्म एवं पुरुषार्थ सर्वव्यापक भगवान को अर्पण कर देता है। इसका आशय यह निकला कि निःस्वार्थ बुद्धि से किया गया प्रत्येक सार्वजनिक कार्य 'यज्ञ' है। जो स्थायी रूप से सार्वजनिक सेवा करता है और अपने निर्वाह के लिए कुछ धन पारिश्रमिक लेता है वह पुण्यात्मा है।

प्रज्ञान

जीवन के प्रत्येक क्षण में हम कुछ न कुछ कर्म करते रहते हैं। "न हि कश्चर्यत्क्षणमपि जातु निष्ठत्व कर्मकृत।" कर्म तो जीवन का लक्षण है। पर कर्म के लिये विवेक और विवेक के लिये ज्ञान की आवश्यकता होती है। अन्धा व्यक्ति दो सुन्दर वस्तुओं में से एक को कैसे चुनेगा ? अतः अच्छा जीवन बिताने के लिये ज्ञान की अनिवार्य आवश्यकता है।

गीता के अनुसार ईश्वर सारे जगत में व्याप्त है 'तागा मोतियों की माला में पुहा रहता है, इसी तागे के आधार पर सब मोती एक साथ टिके रहते हैं।' इसी प्रकार ईश्वर के आधार पर सारा जगत टिका है। चेतन और जड़ दोनों ईश्वर की प्रकृतियाँ हैं। इस प्रकार सारे जगत का स्वामी ईश्वर ही है। इस सम्बन्ध में गीता में स्पष्ट कहा गया है **"मया ततामिदं सर्व जगदव्यक्त मूर्तिना"** अर्थात् मेरी अव्यक्त मूर्ति से वह सारा जगत कपड़े के ताने बाने की भाँति बना हुआ है। कपड़े के ताने बाने की भाँति बना हुआ है। कपड़े में ताने वाने के सिवाय कुछ नहीं होता। जगत में भी जो कुछ है सब ईश्वर अव्यक्त अप्रकट होते हुये भी जगत रूप में प्रकट है। यह एक बड़ी ही आश्चर्य की बात जान पड़ती पर वास्तव में ईश्वर प्रकट भी है और अप्रकट भी।

भक्ति

गीता में कर्म, ज्ञान और भक्ति का समन्वय है। भक्ति से किया हुआ कर्म मीठा हो जाता है। माता अपनी सन्तान के लिये क्या-क्या कष्ट नहीं भोगती। जब बालक माता की गोद में आ बैठता है, तो उसे कितना सुख मिलता है। पर सब प्रकार के सांसारिक सुखों की प्रतिक्रिया में दुख भी रहता है। जिनकी सन्तान बीमार हो जाती है या मर जाती है, उन्हें कितना और कैसा गहरा दुख होता है ? सांसारिक प्रेम में सुख भी है और दुख भी। विचारशील मनुष्य ऐसा

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रेम चाहता है जिसमें प्रतिक्रिया न हो। ऐसा प्रेम सदा एक रस रहने वाले ईश्वर से ही हो सकता है। उसी प्रेम को 'भक्ति' कहते हैं। भक्ति का एक रूप जनता की नि:स्वार्थ सेवा है, क्योंकि भगवान सर्व व्यापक है।

गीता के ११वें अध्याय में अर्जुन को प्राप्त भगवान के विश्व रूप दर्शन का वर्णन है। अर्जुन ने संसार की सारी महानता, संसार की सारी सुन्दरता, महानता भगवान में देखी। ऐसे रूप के दर्शन हम कैसे कर सकते हैं। केवल प्रभुभक्ति ही यह फल दे सकती है, और उस भक्ति का फल केवल दर्शन नहीं वरन् भगवान का ज्ञान और उनमें प्रवेश करके उन्हीं का सा हो जाना है।

इस प्रकार मनुष्यों को सन्मार्ग दिखला कर सांसारिक बन्धनों से छुड़ाने की दृष्टि से गीता अद्वितीय है और उसका अनुशीलन हमारे लिए निश्चित रूप से कल्याणकारी है।

आचरण शास्त्र का अनुपम ग्रन्थ-गीता

श्री मद्भगवद् गीता का स्थान संसार के कुछ गिने चुने ग्रन्थों में है। इस महत्ता का कारण यही है कि यह जाति और देश की संकीर्ण सीमाओं से परे सभी को जीवन जीने का मार्ग बताती है। यही कारण है कि बोधायन, आचार्य शंकर, श्रीधर, रामानुज माध्व, मधुसूदन जैसे पूर्ववर्ती आचार्यों की तरह आधुनिक काल में भी लोकमान्य तिलक, गाँधी, बिनोवा, विवेकानन्द, श्री अरविन्द, डा० राधाकृष्ण सदृश मनीषियों ने इसकी महत्ता को स्वीकारा है। मात्र महत्ता को ही स्वीकार कर इति श्री कर दी हो, ऐसी बात नहीं है। इसमें निहित प्रेरणाऐं ग्रहण करके अपने आचरण में उतार कर शीर्ष स्थान भी प्राप्त किया है।

इसकी सार्वभौमिक विचारधारा को मात्र भारत ही नहीं सुदूर पश्चिम में भी मान्यता मिली है। पश्चिम के प्रो० मैक्समूलर, डा० पालडायसन, जानडेविड, थॉरो, राल्फ, वाल्डो, इमर्सन, सर एडविन एर्नाल्ड, क्रिस्टोफर जैसे अनेकानेक विद्वानों ने भी इसके विचारों की सार्वभौमिकता को स्वीकारा और अपने जीवन में उसे समावेशित कर कृतकृत्यता प्राप्त की है। गांधी, विनोबा की ही तरह जान डेविड, थॉरो भी गीता को माँ ही मानते थे। उनके अनुसार गीता में निहित विचारों के पवित्र दुग्धामृत पान करने वाले व्यक्ति को वह शक्ति मिलती है, जिससे कि जीवन समर के कठिनतम क्षणों में भी निराशा-उदासी आदि स्पर्श भी नहीं करती।

यद्यपि गीता सार्वकालिक होते हुए कालातीत है। फिर भी सामान्य मानव मन में यह जिज्ञासा उठती हैं कि गीता की रचना हुए सुदीर्घ काल बीत चुका है। इस बीच मानव मन की विचारधारा व अनुभूतियों में बहुत सारे परिवर्तन भी आए हैं, फिर आज की परिस्थितियों में मानवी चिंतन के लिए इसका संदेश क्या है ? इसकी व्यावहारिक महत्ता और आध्यात्मिक उपयोगिता क्या है ?

आधुनिक चिन्तकों के अनुसार मानव मन तो सदा ही आगे की ओर बढ़ता है, अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करता तथा अपने विचारों को विस्तृत करता है। इन्हीं परिवर्तनों का परिणाम है कि चिंतन की चिर पुरातन प्रणालियों का सूक्ष्म या प्रत्यक्ष रूप से मूल्य ही बदल जाता है। इस तरह प्राचीन सिद्धान्त तभी जीवित रह पाता है, जब वह इस परिवर्तन, संशोधन के लिए अपने को पूरी तरह सौंप दे।

पर गीता एक ऐसी अद्भुत व विलक्षण पुस्तक है जो असाधारण रूप से सहस्रों वर्षों से शाश्वत रूप में जीवित चली आ रही है और आज भी उतनी ही तरोताजा है। इसके वास्तविक सारतत्व में अभी भी उतनी ही नवीनता है जितनी कि महाभारत काल में थी। भारत में इसका समादर तो उन महान शास्त्रों के रूप में है जो अतीव प्रमाणित रूप में धार्मिक चिन्तन को नियंत्रित करते हैं। इसकी शिक्षा बहुमूल्य मानी जाती है इसका महत्व मात्र दर्शन या विद्याध्ययन के क्षेत्र में ही नहीं अपितु व्यावहारिक जीवन में भी जाग्रत और जीवन्त है।

चिन्तन हो या कर्म दोनों ही इससे अछूते नहीं। सही माने में इसके विचार भारतीय संस्कृति के पुनरुन्नयन नव जाग्रति के क्षेत्र में एक प्रेरणादायक शक्ति के रूप में भूमिका निबाहते आ रहे हैं और निबाह रहे हैं। एक प्रख्यात चिन्तक ने तो यहाँ तक कहा है कि आध्यात्मिक जीवन के लिए हमें जिन किन्हीं भी आध्यात्मिक सत्यों की आवश्यकता है वे सभी गीता में उपलब्ध हो सकते हैं। सम्भव है किसी को यह अविश्वासपूर्ण लगे। तथापि यह कहना किसी भी तरह अतिरंजित नहीं कि अधिकांश सार्वभौम सूत्र इसमें समावेशित है। यही कारण है कि यह भारत वर्ष की ही सीमा में आबद्ध नहीं है। सर्वत्र बिश्व भर में इसे एक महान ग्रन्थ के रूप में स्वीकारा गया है। यद्यपि यूरोप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

वालों ने इसके साधना सम्बन्धी रहस्यों की अपेक्षा इसकी विचाराधारा को हृदयंगम करने की अधिक कोशिश की है। स्वाभाविक रूप से प्रश्न उठता है कि वह कौन सी चीज है जो गीता के विचारों व सत्य को प्राण शक्ति देती है।

वह शक्ति आती है सामञ्जस्य, सन्तुलन और समन्वय के रूप में। इस महाग्रन्थ में अथ से इति तक ओत प्रोत इसके समस्त दर्शन और योग का केन्द्रीय ध्येय यह है कि अंतरंग की आध्यात्मिक पूर्णता के साथ बाह्य जीवन में कर्म की बाहरी यथार्थताओं का सुसामञ्जस्य स्थापित किया जाय।

आज यदि हम मानव जीवन में आने वाली समस्त समस्याओं के मूल कारणों की खोज करें, तो यही समझ में आता है कि हमारी अपनी सत्ता जटिल है- उसका मूल तत्व दुर्ज्ञेय है और जो आन्तरिक शक्ति इसके सभी रूपों का निर्धारण करती, समस्त उद्देश्यों प्रक्रियाओं का नियमन करती है वह गुह्य है। हम यों भी कह सकते हैं कि मानवी सत्ता एक त्रिविधि जाल है, जो एक साथ भौतिक प्राणिक, मानसिक होने के साथ आध्यात्मिक भी है। उसके जीवन और प्रकृति का वास्तविक सत्य क्या है ? उसका भाग्य उसे किस तरफ घसीटता है और पूर्णता का क्षेत्र किधर है ?

देखा गया है कि आध्यात्मिक या आदर्श समाधान सभी उहापोहों का हल निकाल सकते हैं पर मानव के बाह्य जीवन की अपरिहार्य समस्याओं का समाधान नहीं निकाल पाते इसी कारण मानव बुद्धि उनसे विमुख हो जाती है और मात्र शरीर और प्राण को ही स्वीकार कर इसी की स्वरित और सुव्यवस्थित तृप्ति को पूरा करने में जुट जाती है। इस तरह उसके लिए अन्य सभी चीजें गौण हो जाती हैं।

मन के इस तरह विकसित होने पर किसी ऊर्ध्व स्थिति तत्व की अस्पष्ट अनुभूति होती है। उसे एक अवस्था, एक शक्ति, एक उपस्थिति की झाँकी होती है। जो उसके निकट और भीतर है, तथा उसके प्रति अत्यन्त अंतरंग भी है। फिर भी उसकी अपेक्षा अधिक रूप से महान अपूर्व रूप से दूरस्थ और उसके ऊपर अवस्थित है। विकास की इस अवस्था में ऐसी वस्तु के अन्त:दर्शन होते है, जो चरम आदर्शों से भी अधिक तात्विक, निरपेक्ष अनन्त और अद्वितीय है। इसी को ईश्वर या ब्रह्म कहा गया है।

इसी आश्चर्यमय सत्ता के साथ एकत्व पाने के लिए पूर्ण तादात्म्य स्थापित करने के लिए मन पूरी तरह प्रयास करता है। ऐसी ही स्थिति में निरपेक्ष अध्यात्मवादी मानसिक सत्ता का खण्डन और देह आदि भौतिक सत्ता की निन्दा करने लगते हैं। वे सबको विलय करने के लिए आतुर हो जाते हैं। पर व्यवहार में मानव मन पर जो चीज निरन्तर दवाब डालती है वह है जीवन-आचार और कर्म की समस्या। इन दोनों के बीच तालमेल न बिठा पाने के कारण विद्वत्जन यह घोषणा कर बैठते हैं कि निर्वाण यहाँ के शारीरिक जीवन में नहीं अपितु इस जगत के परे विद्यमान किसी अमर लोक में है और सच्ची आध्यात्मिकता वहीं उपलब्ध हो सकती है।

इसी जगह गीता-आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, जगत, प्रकृति में सत्य की एक नई संस्थापना प्रस्तुत करती है। सत्य की जिस विचारणा को प्राचीन उपनिषदों से लाकर विकसित किया गया था, उसे वह विस्तृत कर नए साँचे में ढालती है। जीवन तथा कर्म की समस्या का समाधान प्रस्तुत करती है। गीता जहाँ उस व्यक्ति विशेष का, जो पूर्ण आध्यात्मिक जीवन के योग्य है आह्वान कर आध्यत्मिक राज्य में प्रवेश करने को कहती है, वहीं सम्पूर्ण मानव जाति को किसी भी तरह निराश न कर अध्यात्म की ओर उंन्मुख हो, नैतिक उद्देश्य को सामने रख क्रमिक विकास का निर्देश देती है।

जीवनेच्छा, शक्ति प्राप्ति की इच्छा, वासना की पूर्ति, बल पौरुष का गुणगान, अहं की पूजा उग्र स्वेच्छा पूर्ण अर्जन प्रवृति एवं अशांत स्वार्थदर्शी बुद्धि की उपासना को असुरता का पर्याय गुण धर्म बताती हुई घोर विनाश और सर्वनाश का द्वार घोषित करती है। देहपरायण मनुष्य को आत्म नियंत्रण करने आदर्शवादी विधान को स्वीकारने तथा विकास यात्रा पर चल पड़ने का संकेत देती है।

गीता अनन्त के चरम पंथी उपासक को अनिर्वचनीय ब्रह्म में अपने को लय करने के प्रयत्न को एक मार्ग बताती हुई स्पष्ट करती है। उसे बताती है कि व्यष्टि एवं समष्टि चेतना के मिलन से संभाव्य आनन्द को पाने के लिए मनुष्य को कही जंगल या

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहाड़ के एकान्त में भागने की आवश्यकता नहीं है। इस आनन्द की प्राप्ति तो अपने कर्तव्य कर्मों को भली प्रकार निर्वाह करने पर सहज ही हो सकती है। यही नहीं मनुष्य मुक्त होकर उस उच्चतम स्तर से अपना मानवीय कर्म भी करता रह सकता है। नि:सन्देह जीवन के विविध क्रिया कलाप एवं जगत के समस्त प्रयासों का अन्तिम शिखर और मर्म यही है एवं यह मार्गदर्शन श्रीमदभगवद् गीता से बड़े स्पष्ट सुग्राह्य रूप में मिलता है।

गीता क्या है?

गीता एक अपूर्व रत्नाकर है, इस रत्नाकर में गोता लगाकर बहुत से गोताखोर अनेक प्रकार के बहुमूल्य रत्नों को निकालते हैं और निकाल रहे हैं। शंकर, रामनुज, मध्व, निम्बार्क, बल्लभ आदि आचार्यगण इस रत्नाकार में गोता लगाने वाले बड़े बड़े गोताखोर हुए हैं। उन्हें भिन्न भिन्न रूप के अनेक सिद्वान्त रत्नों को गीता रूपी रत्नाकर से बड़े परिश्रम पूर्वक निकाला है। वे सब बहुमूल्य रत्न आज भी भारत के बाजार में बिकते हैं, और मुमुक्षु लोग उन्हें अपनी अपनी रुचि के अनुसार खरीदते हैं।

गीता एक अपूर्व रत्न है, जिसे जगत के एक अपूर्व कारीगर ने ऐसे विभिन्न ढंग से तराशा है कि उसके प्रत्येक अवयव से एक 'अखण्ड ज्योति' जगमगा रही है। इस ज्योति ने सूर्य की ज्योति को भी मात कर दिया है, क्योंकि सूर्य की ज्योति तो इस संसार को ही प्रकाशित करती है परन्तु यह ज्योति ब्रह्म लोक तक प्रकाश करती है जिसके सहारे से मुमुक्ष लोग अहरद्वा ब्रह्म लोक गमन करते हैं।

गीता त्रिवेणी संगम है। इसमें ज्ञानगंगा, कर्म यमुना और उपासना सरस्वती की विमल धाराऐं आकर एकत्रित हुई हैं। भला इसमें स्नान करने वालों को गर्भवास कैसे हो ? जो इस अष्टादश तरंगयुक्त त्रिवेणी में नित्य स्नान करता है वह 'ज्ञान सिद्धि सलभते ततायाति परमं पदम्' के अनुसार जीवितावस्था में ही ज्ञानसिद्धि को प्राप्त होकर जीवन मुक्ति हो परम पद की प्राप्त कर लेता है।

गीता एक पवित्र एवं निर्मल जल प्रपात (झरना) है इस झरने का उत्पत्ति स्थान असीम गम्भीर और स्थिर उपनिषद्रूप एक झील है। साधारण झरने के जल से इस झरने के जल में विशेषता यह है कि जो इसका जल एक बार पी लेता है उसकी पिपासा सदैव के लिए शान्त हो जाती है।

गीता एक 'मद्ययढ ज्योति' वाला प्रज्वलित प्रदीप है यह प्रदीप भारत-मन्दिर में प्रज्वलित हुंआ है, किन्तु प्रकाश समस्त जगत में करता है।

गीता एक परिष्कृत, स्वच्छ, बहुमूल्य दर्पण है। मनुष्यमात्र इस दर्पण में अपने यथार्थ स्वरूप को देख तथा समझ सकता है।

गीता मोक्ष मन्दिर की एक अपूर्व कुंजी है। कलियुग के लोगों को साधन रहित जानकर भगवान कृष्णचन्द्र जी ने इस कुंजी को द्वापर-युग के शेष भाग में पहले पहल अर्जुन को दिया था। इसके द्वारा अर्जुन तो स्वयं मोक्ष मन्दिर से पहुँच ही गए उनके पीछे भी अनेक युमुक्ष उसी कुंजी को लेकर इस भवसागर से पार उतर गये।

गीता संजीवनी बूटी है। जब कुरुक्षेत्र के युद्ध में मोह के वशीभूत होकर कृष्ण सखा अर्जुन किंकर्तव्य विमढ़ होकर भूत प्राय: अवस्था को प्राप्त हुए थे तब भगवान कृष्णचन्द्र ने गीता रूपी संजीवनी बूटी के अमृतमय रस को पिला कर अर्जुन को अपने कर्त्तव्य का प्रबोध कराया था।

गीता अमृत तुल्य पूर्ण पुष्टिकारक मधुर गोरस है। यह गोरस उपनिषद्रूपी कामधेनु के धर्म अर्थ, काम और मोह रूपी चार स्तनों से निकाला गया है। दूध निकालने वाले गोपाल नन्दन भगवान श्री कृष्णचन्द्र भी हैं। वत्स (बछड़ा) कृष्ण सखा अर्जुन हैं। अर्जुन ने इसका थोड़ा सा ही रस पिया था और कृत कृत्य हो गये। वह अविकृत गोरस अभी भी पृथ्वी पर विद्यमान है और सुधी समुदाय अहर्निश उसी रस को पीकर मस्त हो रहे हैं।

गीता एक मधुर मनोहर सुदृढ एवं भव्य अट्टालिका है। अग्रहायण शुक्ल एकादशी के शुभ मुहूर्त के अवसर पर धर्म क्षेत्र रूपी कुरुक्षेत्र की पवित्र भूमि में विश्वनियन्ता भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी ने पुरुष श्रेष्ठ अर्जुन के द्वारा इसकी नींव डलवाई और स्वयं उत्तम चातुर्य के साथ इसकी अपूर्व रचना की। इस अट्टालिका की तीन मंजिल हैं। नीचे की मंज़िल का नाम कर्म खण्ड बीच की मंजिल का नाम उपासना खण्ड और सर्वोपरि मंजिल का नाम ज्ञान-खण्ड है। ब्रह्मचर्य, सत्य, अहिंसा, शम, दम आदि अनेक विचित्र खम्भे इसमें लगे हुए हैं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जिनका दृश्य अपूर्व ही है। इस अट्टालिका के बहुत से शिखर भी हैं जिनमें रचयिता के आदेश लिखे गये हैं। उनमें से एक ऐसा है-

सर्वान् धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।
अहंत्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।

इस अट्टालिका में इनके रचयिता स्वयं निवास करते हैं और यहाँ रहकर तीनों लोकों का पालन करते हैं।

गीताश्रयो हि तिष्ठामि, गीता मे चोत्तदम्म् गृहम्।
गीता ज्ञानमुपाश्रित्य त्रिल्लोकान् पालयाम्यहम् ।।

गीता कल्प तरु है। इसका मूल वेद रूपी सरस दृढ़ भूमि में स्थिति है। इसके कर्म उपासना और ज्ञान काण्ड नामक तीन काण्ड इसमें यज्ञ, दान, तप, योग आदि अनेक शाखा प्रशाखाए हैं और शान्ति उपरांत आदि अनेक पत्र हैं। यह वृक्ष सदैव चार ही फल देता है जिनका नाम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष है, और चार प्रकार का भक्त आर्त, जिज्ञासु, यथार्थी तथा ज्ञानी उन चारों फलों का सेवन करते हैं।

गीता बह्म विद्या है- "गीता में परमा विद्या ब्रह्म रुपान संशयः" यह ब्रह्मविद्या भगवान पद्मनाम के श्री मुख-कमल से निकली है, अतएव पादोनिःसृत पवित्र गंगा से भी अधिक पवित्र है इसका दूसरा नाम ज्ञान गंगा भी है। इसमें जो सतत गोता लगाता रहता है उसकी सम्पूर्ण दुविधा नष्ट हो जाती है और वह दिव्य स्वरूप को प्राप्त होकर अक्षय, अमर बन जाता है।

गीता भगवान का हृदय है। "गीता में हृदय पार्थ ! भगवान के हृदय में अनन्त ज्ञान का भण्डार है। अतएव गीता में भी वही है। जो गीता की सेवा करेगा वह अनन्त ज्ञान का भागी बनेगा। भगवान के हृदय में कौस्तुभ मणि, बनमाला, भृगु लांछन और लक्ष्मी जी आदि चार वस्तु हैं। जो गीता रूप भगवान के हृदय को अपने हृदय मे धारण करेगा उसको भी ये चारों वस्तुए मिल जाऐंगी। अज्ञानाध्यान्त निवारक ज्ञान रूपी कौस्तुभ मणी मिल जायेगी। दूसरी चारों ओर सौरभ विस्तार करने वाली कीर्ति रूप बनमाला मिल जायगी। तीसरी इहलौकिक धन सम्पति रूप लक्ष्मी मिल जायेगी और चौथी भृगुलांछन रूप क्षमा आदि गुणों की प्राप्ति होगी।

गीता एक अपूर्व ग्रन्थ है, इसमें दिव्य अमर-संदेश है, सर्वश्रेष्ठ उपदेश है, यह उपदेश सर्व जाति वर्ण, आश्रम सम्प्रदायों के लिए समानभाव से उपयोगी है। मानव जाति का सनातन धर्मोपदेश है सार्वभौमे सदेश हैं। इसके वक्ता जगत गुरु भगवान श्री कृष्ण चन्द्रजी है, इसका श्रोता सत्वगुणी मानव जाति है, और श्रवण को फल अमरत्व की प्राप्ति है।

सक्षेपतः गीता इस जगत का अमर फल है। असार संसार का सार है, संसार सागर का आलोक स्तम्भ (Light House) है। मानव जीवन का पथ प्रदर्शक है। शास्त्र सागर का मथितार्थ है, उपनिषदों का सार है, वेदों का तत्व है, सनातन तत्वों का अवभासक है, एक अपूर्वग्रन्थ रत्न है। इसके सदृश ग्रन्थ संसार में न हुआ और न होगा। चाहे किसी देश, किसी भाषा, किसी जाति, किसी सम्प्रदाय या किसी मत को माननेवाला विद्वान हो, मुक्तकण्ठ से गीता की प्रशंसा करता है। अतएव गीता अपने ढंग का निराला ग्रन्थ हैं गीता गीता ही है।

गीता का तत्व हम नहीं जानते -

कृष्णो जानाति वै सम्यक् किचित्कुन्ती सुतःफलम्।
व्यासो वा व्यास पुत्रो वा याज्ञवल्क्योऽथ मैथिलः ।।

श्रीकृष्ण गीता को सम्यक जानते हैं। अर्जुन कुछ फल जानते हैं। व्यासजी, व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी योगी याज्ञवक्य और राजा जनक भी कुछ कुछ जानते थे।

तब हमारे लिये क्या कर्तव्य है-

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः।

गीता का अध्ययन ही सर्वथा कर्तव्य है। अन्य शास्त्रों के विस्तार की क्या आवश्यकता है।

महात्मा गाँधी के शब्दों में-'गीता माता है।'

बाईस तेईस साल की उम्र में जब मुझे ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा हुई। मालूम हुआ कि वेदों का अभ्यास करने के लिए पन्द्रह वर्ष चाहिए, पर इसके लिए मैं तैयार नहीं था। मुझे मालूम हुआ- मैंने नहीं पढा था कि गीता सब शास्त्रों का दोहन है, कामधेनु है। मुझे बतलाया गया कि उपनिषद् आदि का निचोड ७०० श्लोकों में आ गया है। थोड़ी संस्कृत की भी शिक्षा थी। मैंने सोचा कि यह तो सरल उपाय है मैंने अध्ययन किया और मेरे लिए वह बाइबिल कुरान नहीं रही माता बन गई। प्राकृतिक माता नहीं, ऐसी माता जो मेरे मर जाने पर भी रहेगी। उसे करोड़ों पुत्र और पुत्रियाँ बिना आपसी द्वेष भाव के उसका दुग्धपान कर सकते हैं पीड़ा के समय वे माता की गोद में बैठ सकते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं और पूछ सकते हैं कि यह संकट आ गया है, मैं क्या करूँ? माता आपको इसका उत्तर दे देगी। अस्पृश्यता के संबन्ध में भी मेरे ऊपर कितना हमला होता है, कितने लेाग विपरीत हैं। मैं माता से पूछता हूँ क्या करूँ ? वेद आदि तो पढ़ नहीं सकता। वह कहती है नवाँ अध्याय पढ़ले माता कहती हैं मैं तो उन्हीं के लिए पैदा हुई हूँ। मैं तो पंतियों के लिए हूँ।" इस तरह का आश्वासन वे ही पा सकते हैं जो सच्चे मातृभक्त हैं। जो सब उसी में से पान करना चाहते हैं वह उनके लिए कामधेनु है। कोई कोई कहते हैं कि गीता बहुत गूढ ग्रन्थ है, लोक मान्य तिलक के लिए वह गूढ ग्रन्थ भले ही हो, पर मेरे लिए तो इतना ही काफी है। पहला दूसरा और तीसरा अध्याय पढ़ लीजिए बाकी में तो इनकी बातों को दुहराना मात्र है। इसमें भी थोड़े से श्लोकों में सभी बातों का समावेश है और सबसे सरल गीता माता मे तीन जगह कहा है कि जो सब चीजों को छोड़कर मेरी गोद में बैठ जाते हैं उन्हें निराशा का स्थान नहीं, आनन्द ही आनन्द है।

गीता माता कहती हैं कि- पुरुषार्थ करो फल मुझे सौंप दो। ऐसी मोटी मोटी बातें मैने गीता माता से पाईं। मैं रोज-रोज उससे कुछ न कुछ प्राप्त करता हूँ। इसलिए मुझे निराशा कभी नहीं होती। दुनियाँ कहती है कि अस्पृश्यता आन्दोलन ठीक नहीं, गीता माता कह देती है कि ठीक है। आप लोग प्रतिदिन सुबह गीता का पाठ किया करें। यह सर्वोपरि ग्रन्थ है।.१८ अध्याय कण्ठ करना बड़े परिश्रम की बात नहीं। प्राणान्त के समय जब ऑखें काम नहीं देती केवल थोड़ी बुद्धि रह जाती है तो गीता से ही ब्रह्मनिर्वाण मिल जा सकता है।

मेरी समझ में गीता बहुत ही सरल ग्रन्थ है। जरूर ही इसमें कुछ मौलिक प्रश्न आते हैं, जिन्हें हल करना वेशक मुश्किल है, मगर गीताकी साधारण शिक्षा को समझना कठिन नहीं है। इसे सभी सम्प्रदाय प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हैं इसमें किसी प्रकार की साम्प्रदायिकता नहीं है। थोड़े में यह सम्पूर्ण संयुक्त नीति शास्त्र है यों तो यह दार्शनिक और भक्ति विषयक दोनों ही प्रकार का ग्रन्थ है। मैं अपनी यह सम्मति दुहराता हूँ कि हर हिन्दू लड़के और लड़की को संस्कृत जाननी चाहिए मगर अभी तो कई जमानों तक करोड़ों आदमी संस्कृत से कोरे ही रहेंगे। केवल संस्कृत न जानने के कारण गीता की शिक्षा से वंचित रहना तो आत्मघात करना होगा।

गीता का मनोवैज्ञानिक विवेचन

विश्व के सभी महान धर्मग्रन्थ देश काल की सीमा से परे हैं। वे शाश्वत और सार्वभौमिक हैं। भगवद्गीता इसी श्रेणी के धर्मग्रन्थों में आती है और इस प्रकार यह मात्र हिन्दुओं के लिए ही नहीं है। इसका सन्देश एक सार्वजनीन उपयोगिता की जानकारी कराता है। यह आज भी उसी प्रकार नवीन है जिस प्रकार कई शताब्दियों पूर्व गीताकार द्वारा अर्जुन को दिया गया था। वस्तुत: आधुनिक मानव को गीता के सन्देश की आवश्यकता है। यदि वह वैज्ञानिक और तकनीकीजन्य तनावों एवं दुश्चिन्ताओं से मुक्ति पाना चाहता है तो उसे गीता से प्रेरणा पानी चाहिए।

देखें ! आधुनिक मानव की मूल समस्याएँ क्या हैं? साइंस और टेक्नोलॉजी की नई तरक्की से आज की संस्कृति में रह रहे नर नारियों के जीवन में उनके नैतिक मूल्यों में काफी सीमा तक ह्रास हुआ है। मात्रात्मक मूल्यों का अपेक्षाकृत महत्व अधिक माना जाने लगा है। गुणात्मक उपयोगिता की उपेक्षा हो रही है। उसका आन्तरिक जीवन दरिद्र है और वह इस गरीबी की दासता से मुक्त होने के लिए संघर्ष कर रहा है। इसके लिए वह साइंस और टैक्नोलॉजी द्वारा उपलब्ध भौतिक पदार्थों को बटोरने में लगा है। मनुष्य इस समस्या का जो कि मूलत: मनोवैज्ञानिक है भौतिक हल ढूँढ़ रहा है। वह सोचता है कि विज्ञान जो कि शक्तिशाली हो रहा है, सभी समस्याओं को सुलझा सकता है किन्तु वह भूल जाता है कि विज्ञान गति की समस्या को सुलझा सकता है। वह दिशा का पथ प्रदर्शन नहीं कर सकता कि किस दिशा में चलना चाहिये। वह इस वास्तविकता के दृष्टिकोण को भूल गया है कि विज्ञान सुविधा प्रदान कर सकता है, किन्तु सुख शान्ति नहीं। सुख शान्ति पदार्थों के आधिपत्य से नहीं मिलती बल्कि मन को उसकी सभी अन्त:बाधाओं से मुक्त करने से ही मिलती है। इसलिए इसे पवित्र और निष्पाप कहा गया है। आधुनिक युग पदार्थों के ऊपर मानवीय ज्ञान के विजय का युग है, फिर भी मन को जीतने का रहस्य सीखना है। बिना मन को जीतने का रहस्य जाने पदार्थों पर विजय प्राप्ति की होड़ व्यर्थ ही नहीं बल्कि निरपेक्ष रूप से खतरनाक भी है। मनुष्य ने ज्ञान की प्राप्ति तो की है किन्तु उसमें विवेक की कमी है। जब तक वह ज्ञान को प्रज्ञा में परिवर्तित करने में असमर्थ है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तब तक उसका एवं सम्पूर्ण मानव प्रजाति का भविष्य मनहूस एवं अन्धकारमय है। दूसरे शब्दों में मानव आज सभी वस्तुओं के ऊपर "जीवन के यथार्थ दर्शन" की खोज में है जो मात्र हिन्दू दर्शन में पूर्वार्त अध्यात्म में उपलब्ध है।

भगवद्गीता जीवन के यथार्थ दर्शन का अकूत मूल्यों का संदेश है। गीता जीवन के मार्ग का मर्म बताती है ताकि आधुनिक मानव की प्रस्तुत चिर नवीन समस्याओं का निदान ढूँढ़ निकालने में सहायता मिले। भगवद्गीता न केवल यथार्थ कर्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है बल्कि वह बिना भूल के यह मर्म बतलाती है कि यथार्थ कर्म, यथार्थ बोध होने पर ही संभव है गीता के अनुसार यथार्थ बोध मानवीय मन की एक ऐसी स्थिति है, जिसमें वह समग्र और निर्विकार ध्यान के योग्य होता है। यह अवस्था विचारणा की भ्रान्ति से मुक्त अवस्था है एवं प्रतिकूलताओं से दूर है। गीता की शिक्षा अर्जुन को सीढ़ी दर सीढ़ी उद्विग्नता से प्रकाश की ओर ले जाती है। मन जो कि इच्छा वासना के आकर्षण से पकड़ लिया गया है वही बुद्धि के प्रकाश से ज्योर्तिमान होता है। दूसरे शब्दों में वह मानस से अतिमानस की ओर उसे ले जाती है।

प्रश्न उठता है कि क्या गीता मनुष्य को आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति हेतु दुनियादारी छोडने के लिए कहती है ? क्या यह सुझाव देती है कि मनुष्य को कर्म का परित्याग कर देना चाहिए ? भगवद्गीता की शिक्षा का अनोखापन इस तथ्य में सन्निहित है जिसमें वह यह कहती है कि आध्यात्मिक लक्ष्य की खोज जीवन के प्रतिदिन के दैनन्दिन क्रिया व्यापार में करना चाहिए। गीता यह कहती कि मानव सर्वोच्च प्रबन्ध का सभी कर्मों को उचित ढंग से करते हुए न कि कर्म से दूर भागते हुए प्राप्त कर सकता है। अब प्रश्न यह कि मनुष्य किस तरह यथार्थ कर्म को जान सकता है ? गीता यह कहती है कि जैसे ही मानव अपने को प्रतिक्रिया से मुक्त करता है। वह गहन गूढ़ निष्क्रियता (अकर्म) की अनुभूति करता है, निष्क्रियता या अकर्म ही निश्चय ही कर्म या क्रिया के सम्पादन के लिए यथार्थ पृष्ठभूमि है। कर्म जो यथार्थ हो, क्रिया जो स्वयं के विचार से मुक्त हो।

गीता के तीन प्रमुख योग की परिभाषाओं में से हमें उस मार्ग को समझना चाहिये जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने यथार्थ बोध को प्राप्त करने के लिए निर्देशित किया। जहाँ से अकेले उचित कर्म का आविर्भाव होता है। योग के बारे में गीता कहती है कि यह एक वियोजन है जिसमें दुख का संयोजन होता है। वह क्या है जो कि मानव को दुख से संसर्ग कराता है। निश्चय ही वह मन है इसकी सामर्थ्य तुलना एवं विषमता के द्वारा जानी जा सकती है। मानव के दुख की समस्या मूलत: मन की समस्या है जो कि तुलना एवं विषमता की प्रक्रिया को ग्रहण करने से पैदा हुई है। इस प्रक्रिया से ही उसकी सभी प्रतिक्रियाएँ प्रदुर्भूत होती है।

आधुनिक मानव निश्चय ही आन्तरिक द्वंदों से उद्विग्न एवं अशान्त है तथा यह अन्तर्द्वन्द ही उसके समग्र मनोवैज्ञानिक जीवन की अपूर्णता का कारण है। यह वियोजन ही समस्त दुखों का कारण है। वास्तव में वह अन्त: के सुनियोजन की खोज में है तथा संभवत: इसके लिए उच्चतर मार्गदर्शन गीता की अपेक्षा कोई नहीं हो सकता। समग्र व्यक्तित्व के निर्माण के लिए कर्म की सक्रियता एवं सुनियोजन गीता का एक शाश्वत संदेश है। जहॉ मन की प्रतिकूलता की स्थिति ज्ञानातीत है अकर्म का संतुलन मनोवैज्ञानिक समग्रता की स्थिति है। गीता हर समस्या से सम्बन्ध व्यापक दृष्टि से रखती है। व्याख्यान के बाद व्याख्यान अन्तत अंतिम प्रवचन में अर्जुन महत चेतना की इच्छा तथा अपनी वैयक्तिक महात्वाकांक्षा में परस्पर सम्बन्ध देखता है एवं प्रत्यक्ष बोध के द्वारा मानसिक अर्न्तद्वन्द की समाप्ति की स्थिति तक पहुँच जाता है। इस तरह वह पूर्ण समग्रता को प्राप्त करता है।

गीता का उद्बोधन आधुनिक युग की समस्याओं के लिए त्वरित एवं प्रयोगात्मक मार्गदर्शन प्रस्तुत करता है। वह मन की जटिलताओं को बाहर निकालने की राह दिखाती है तथा अति मानस की पूर्णता और मुक्तावस्था का दिग्दर्शन करती है। गीता कहती है कि यह रास्ता कुछ थोडे लोगों के लिए ही नहीं है। इस रास्ते पर वे सब चल सकते हैं जिन्होंने जीवन की उलझनों से मुक्ति का मार्ग खोजा है। एक उम्र में जहाँ व्यक्ति अधिक से अधिक राजनैतिक आर्थिक एवं सामाजिक शक्तियों के प्रभाव के कारण स्वयं को बौना नगण्य देखता है वहाँ पर गीता आशा और खुशहाली का सन्देश प्रदान करती है। इसके लिए वह उसे जीवन के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के मार्ग का दिग्दर्शन कराती है। जो समाप्त हुए महत्व को उसे पुन: दिलाने की ओर ले जाती है। गीता व्यक्ति को सक्रिय जीवन का रास्ता चुनने का मार्ग दर्शन करती है।

व्यक्ति का आध्यात्मिक पुनरुत्थान निश्चय ही सुखी समाज की संरचना का मार्ग है। वस्तुत: यह मानव में प्राण फूँकने वाला एवं शक्ति प्रदान करने वाला एक ऐसा शाश्वत संदेश है जो युगों-युगों तक चिर नवीन बना रहेगा।

गीता का प्रतिपाद्य - अनासक्त कर्मयोग

गीता अध्यात्म विद्या का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। सात सौ श्लोकों को अठारह अध्यायों मे गूँथकर यह छोटा सा ग्रन्थ भारतीय दर्शन का अनुपम प्रतिनिधित्व करता है। यह समस्त भारतीय, ज्ञान, भरतीय दर्शन, वेद शास्त्र उपनिषद् आदि जो कुछ भारतीय है और जिस पर हमें गर्व है और जिसे हम भारतीयता कहते हैं, को सही और सार रूप में प्रस्तुत करने वाली एक ही पुस्तक है।

महाभारत काल में, जब कि लोग भूल चुके थे वास्तविक ज्ञान को जीवन के सही मार्ग और दर्शन को और उलझे हुए थे कर्मकाण्ड में ताकि कामनाओं की पूर्ति हो सके, स्वर्ग की प्राप्ति हो सके और आराम का जीवन, विलासिता का जीवन जिया जा सके, एक दिव्य प्रकाश के रूप में गीता का अवतरण हुआ, जिसने अर्जुन को मोह से छुड़ा कर कार्यरत किया और भूली हुई भटकी हुई मानव जाति को सन्मार्ग का दर्शन कराया।

गीता में बताया गया है कि मानव जीवन का लक्ष्य कर्मकाण्ड में वर्णित सकाम कर्मों द्वारा कामनाओं की पूर्ति करना नहीं है। यह लक्ष्य कर्मो और उसके परिणाम स्वरुप जन्म मृत्यु के बन्धन में डालने वाला होने के साथ-साथ बहुत हेय है और इसकी उस लक्ष्य से कोई तुलना नहीं है जो निष्काम कर्म या अकर्म द्वारा प्राप्त होता है। उस लक्ष्य का नाम योग है। हाँ - योग। योग का अर्थ होता है मिलन, बूँद का सागर से मिलन, किरण का सूर्य से मिलन, मनुष्य की आत्मा का उस परमतत्व से मिलन, जिसको ब्रह्म कहते हैं जो इस सृष्टि का आदि और अन्त है।

वह दृश्य देखते ही बनता है जब नदी सागर में विलीन होकर अपना अस्तित्व खो देती है। आत्मा और परमात्मा का मिलन भी ऐसा ही परम आनन्ददायक है जिस की तुलना किसी अन्य सांसारिक सुख से हो ही नहीं सकती जिसको पाकर संसार के सारे सुख फीके पड़ जाते हैं, जिस को पाकर सदा के लिए दुखों से निवृत्ति हो जाती है।

उस योग का सीधा और सरल उपाय गीता में बताया गया है। 'निष्काम कर्म' अर्थात कर्म द्वारा संसारिक उपलब्धियों की इच्छा न करके कामना रहित, आशा रहित, राग रहित, अहंकार रहित और भय रहित होकर अपने स्वभाव के अनुसार कर्म करना और फल परमात्मा को समर्पित कर देना। कर्म करने के लिए मनुष्य विवश है। कर्म बन्धन से छूटने के लिए अपनी चिन्तन प्रणाली में परिवर्तन करने में वह स्वतन्त्र है। यही मनुष्य का कर्तव्य है।

अपने कर्तव्य पालन में सुख-दु:ख, सर्दी, गर्मी, लाभ-हानि, जीत-हार, यश-अपयश जीवन-मरण, भूत-भविष्य की चिन्ता न करके-कर्तव्य कर्म में रत रहना निष्काम कर्मयोगी का ढंग है। यह द्वन्द तो संसार में बारी बारी से आते हैं और जाते हैं। इनका प्रभाव क्षणिक और अस्थाई है तथा केवल नाशवान शरीर पर प्रभाव तक सीमित है। स्थाई तो केवल आत्मा है जो अछेद्य है अदाहन, अक्लेद्य और अशोष्य है। उस आत्मा का उत्थान और पतन ही वास्तविक उत्थान और पतन है। आत्मा का कल्याण योग में निहित है। उसी ओर मनुष्य स्वाभाविक गति से बढ़ रहा है यदि कामना आशा आसक्ति और अहंकार उसमें बाधा न डालें। अत: धर्म और अधर्म, अच्छाई और बुराई, ऊँच और नीच का विचार छोड़कर अपने स्वभाव के अनुसार निष्काम कर्म करना चाहिए।

गीता में यह भी बताया गया है कि स्वभाव के अनुसार ही मनुष्य चार प्रकार के होते हैं - ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र। इनके स्वभाव की व्याख्या भी की गई है। इनमें छोटे बड़े ऊँच नीच का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि सभी लोग अपने अपने स्वभाव के अनुसार कार्यरत रहें तो समाज की व्यवस्था स्वाभाविक और सुचारु रूप से चलते रहने में कोई सन्देह नहीं है।

कुछ विद्वानों के अनुसार इसमें कई योगों का कई मार्गों का प्रतिपादन है जिनमें मुख्य है - कर्मयोग ज्ञानयोग और भक्तियोग। परन्तु ऐसा भी नहीं है। युद्ध क्षेत्र में जब अर्जुन की बुद्धि अपने लिए मार्ग ढूँढ़ने में असफल रही तो दूसरे अध्याय में उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण से मार्ग दर्शन की प्रार्थना की। दूसरे ही अध्याय में अर्जुन को मार्ग बताया गया। अर्जुन ने उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ठीक से नहीं समझ पाया और तीसरे अध्याय के प्रारम्भ में ही प्रार्थना की कि मुझे भ्रम में मत डालिये। निश्चित रूप से मुझे एक ही मार्ग दिखाइये। ऐसी स्थिति में कई मार्ग बताना तर्क सगंत नहीं है। गीता में आदि से अन्त तक एक ही मार्ग का प्रतिपादन है और वह है। 'निष्काम कर्मयोग' का। इसी निष्काम कर्मयोग के मार्ग पर दो तरह के लोग चलते हैं एक वे जो वर्णाश्रम के सिद्धान्तों के अनुसार जीवन बिताते हैं जैसे राजा जनक और दूसरे वे जो वर्णश्रम के सिद्धान्तों को नहीं मानते जैसे स्वामी विवेकानन्द और शंकराचार्य। महात्मागाँधी भी चालीस वर्ष की अवस्था तक प्रथम वर्ग में रहे परन्तु बाद में सत्य की शोध के लिए दूसरे वर्ग में आ गये।

वास्तव में प्रत्येक मनुष्य के, व्यक्तित्व के तीन पहलू होते हैं- कर्मात्मक ज्ञानात्मक और भावात्मक। इसलिए एक ही व्यक्ति कर्मयोग ज्ञानयोग और भक्तियोग का अनुसरण करता है। इन तीनों को अलग-अलग व्यक्तियों में विभाजित नहीं किया जा सकता। अर्जुन एक ही व्यक्ति थे। दूसरे अध्याय में उन्हें बताया गया कि निष्काम कर्म योगी स्थित प्रज्ञ होता है और स्थित प्रज्ञ की पहचान उन्हें कराई गई । बारहवें अध्याय में उन्हें बताया गया कि निष्काम कर्मयोगी में आत्म समर्पण की भावना होती है और भक्ति के लक्षण उन्हें बताये गये। तेरहवें अध्याय में उन्हें बताया गया कि निष्काम कर्मयोगी को प्रकृति पुरुष का ज्ञान होता है और ज्ञान के लक्षण उन्हें बताये गये। चौदहवें अध्याय में उन्हें यह बताया गया कि निष्काम कर्मयोगी गुणातीत होता है और गुणातीत पुरुष के लक्षण उन्हें बताये गये। सौलहवें अध्याय में उन्हें बताया गया कि निष्काम कर्मयोगी दैवी सम्पदा सम्पन्न होता है और आसुरी सम्पदा ग्रहण नहीं करता इसीलिए दैवी और आसुरी सम्पदा के गुण बताये गये। यद्यपि अलग अलग अध्यायों में वर्णित होने के कारण अलग अलग मार्गों और व्यक्तियों के लक्षण मालूम होते हैं। वास्तव में वे सब एक ही योगी के लक्षण हैं। निष्काम कर्मयोगी के लक्षण और अर्जुन को निष्काम कर्मयोगी बनने का उपदेश पूरी गीता में किया गया है।

इस प्रकार गीता के सभी अध्याय एक ही निष्काम कर्मयोगी की माला में मोतियों की तरह पिरोये हुए हैं और गीता का प्रतिपाद्य विषय योग है जैसा कि प्रत्येक अध्याय के अन्त में लिखा है। उस योग अर्थात् आत्मा का परमात्मा से मिलन का उपाय निष्काम कर्म है। बार बार योगी बनने और युद्ध करने के लिए ही गीता में कहा गया है। सकाम कर्म और आसुरी निषिद्धकर्म की भर्त्सना की गई है।

वास्तव में गीता एक ही योग है, एक ही मार्ग है, एक ही ज्ञान है, एक ही भक्ति है और विश्व को देखने का एक ही दृष्टिकोण है। निष्काम कर्मयोगी का वही मार्ग, वही ज्ञान, वही भक्ति और दृष्टिकोण होता है। उसी मार्ग का अनुसरण करने के लिए मानव मात्र का आवाहन किया गया है। वह मार्ग सबके लिए खुला है। कोई पापी या दुराचारी ही क्यों न हो इस मार्ग का अनुसरण करके पवित्रात्मा हो जाता है।

गीता एक ऐसे समाज की कल्पना करती है जिसमें प्रत्येक मानव को स्वतन्त्रता और समानता का अधिकार है। मनुष्य और मनुष्य के बीच धर्म, जाति, वर्ण लिंग और धन की दीवारें नहीं हैं। प्रत्येक मानव अपने स्वभाव के अनुसार अनासक्त और निष्काम होकर मानव जाति की सेवा में लगा रहना अपना कर्तव्य समझता है तथा अकर्मण्यता, आलस्य और असुरता को त्याज्य मानता है। उसकी अपनी कामनाऐं और आवश्यकताऐं नहीं हैं। समाज की प्रगति और सम्पन्नता ही उसकी प्रगति और सम्पन्नता है। इस प्रकार के समाज का निर्माण करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। इन्हीं तथ्यों पर प्रकाश डालना और उन्हें अपनाने के लिए जनसाधारण को प्रोत्साहित करना यही गीता उद्देश्य है। इसी को गीता का प्रतिपाद्य अनासक्त कर्मयोग कह सकते हैं।

गीता का कर्मयोग

श्रीमद्भगवद्गीता की प्रवृत्ति युद्ध से विरत होते हुये अर्जुन को युद्धरत करने के लिए हुई है और इसमें गीता का ज्ञान सफल रहा है, अतः मानना होगा कि गीता प्रवृत्ति प्रधान ग्रंथ है। यों तो उसमें निवृत्ति का भी वर्णन है। परन्तु वह गीता का अपना विषय नहीं। अर्थो की खींचतान यदि नहीं की जावे तो गीता को निष्काम कर्म योग परक मानना ही होगा। गीता के प्रवृति प्रधान होने का एक पुष्ट प्रमाण है उसकी यह परम्परा जो भगवान ने बताया है-

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवे ऽब्रयीत ।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एवं परम्परा प्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।"

'अविनाशी मुझ परमात्मा ने यह (गीता रूपी) योग सूर्य को बतलाया था। सूर्य ने उसका उपदेश मनु को दिया और मनु ने इक्ष्वाकु को। इसी प्रकार परम्परा द्वारा आये इस योग को राजर्षि लोग जानते रहे।'

इस परम्परा में सभी प्रवृत्ति प्रधान क्षत्रिय बताये गये हैं। निवृत्ति प्रधान नारद, सनकादि, दत्तात्रय प्रभृति को छोड़कर सूर्य, मनु, और इक्ष्वाकु का नाम लिया गया है जो क्षत्रियवंश के प्रतिष्ठापक एवं कर्मरत नरेश हैं। आगे भी 'राजिर्षियों विदु' कहा गया है। यह ज्ञान प्रवृत्ति प्रधान राजर्षियों का रहा है निवृत्ति प्रधान ब्रह्मर्षियों का नहीं, लोक संग्रह के लिये निष्काम होकर राज्य करते हुये दुष्टों के दमन में तत्पर चक्रवर्ती नरेश इस ज्ञान का आश्रय लेते रहे हैं। इस परम्परा के अतिरिक्त भगवान ने स्थान स्थान पर स्पष्ट कहा भी है **'तयोस्तु कर्म संन्यासात कर्मयोगो विशिष्यते'** आदि।

सम्पूर्ण गीता निष्काम कर्म योग का शास्त्र है। उसमें कर्म योग के प्रत्येक पहलू पर विशद रूप से विचार किया गया है। लेकिन पूर्व काल में बर्णन की रीति 'समास व्यास विधिना' थी। किसी विषय को प्रथम कहीं थोड़े शब्दों में कह देते थे और पुनः उसी का विस्तार करते थे। भगवान ने इस परम्परा की रक्षा की है। सम्पूर्ण कर्मयोग को सूत्र रूप से एक श्लोक में बता दिया है। फिर उसी का विस्तार किया गया है। चार सूत्रों में गागर में सागर भर दिया गया है। वह कर्मयोग की चतुः सूत्री है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषुकदाचन ।
मा कर्मफल हेतुर्भूः मा ते संगो ऽस्त्वकर्मणि ।।

तेरा अधिकार कर्म करने में ही है फल में कभी नहीं। कर्म फल का कारण मत बन। अकर्म से तेरा साथ न होवे।

'कर्मण्येवाधिकारस्ते' कर्म करने में तेरा अधिकार है। कर्मयोग का यह प्रथम सूत्र है। इसमें बतलाया गया है कि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। कर्म करने से उसे कोई रोकता नहीं। मनुष्य योनि की यही विशेषता है कि इस मानव शरीर में आकर स्वेच्छानुसार कर्म कर सकता है। वह अपने उत्थान या पतन का मार्ग यहीं बनाता है। मानव शरीर में किये कर्मों को ही वह देव, दैत्य, पशु तिर्यकप्रभृति योनियों में भोगता है। गीता में इसके विपरीत दो श्लोक आते हैं -

ईश्वरः सर्वभूतानां हृदेशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया ।।

ईश्वर समस्त प्राणियों के हृदय में रहता है और अपनी माया से उन्हें यन्त्र पर चढ़े हुये की भाँति घुमाता रहता है।

"प्रकृती यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ।"

प्राणी मात्र अपने स्वभाव के अनुसार ही बर्ताव करते हैं वहाँ निरोध कुछ भी नहीं कर सकता ।

इस प्रकार के जो वाक्य आये हैं उनका तात्पर्य यह नहीं कि मनुष्य कर्म करने में परतन्त्र है। यदि वह कर्म करने में परतन्त्र हो तो शास्त्रों के समस्त विधि निषेध व्यर्थ हो जावेंगे। क्योंकि व्यवथा तो स्वतन्त्र के लिये ही बनती है। परतन्त्रता पूर्वक जो कर्म मानव करेगा, उसका फल भागी भी वह नहीं हो सकता। अतएव कर्म करने में मनुष्य को स्वतन्त्र ही मानना होगा। यही बात भगवान ने प्रथम सूत्र से कहा। ईश्वर प्राणिमात्र के हृदय में रहता और उन्हें यन्त्रारूढ़ की भांति घुमाया करता है तथा जीवमात्र अपनी अपनी प्रकृति के परतन्त्र हैं। इसको कहने का उद्देश्य मनुष्य कर्म करने में कहाँ तक स्वतन्त्र है, इस स्वतन्त्रता की सीमा बतलाना है। कर्म करने में स्वतन्त्र होते हुये भी मानव 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्' समर्थ तो है नहीं। उसके कर्म स्वातन्त्रय की सीमा है।

प्रत्येक व्यक्ति संसार में किसी न किसी विशेष उददेश से आता है और उसका एक जन्म जात स्वभाव भी होता है। वह उस विशेष उद्देश्य को करते हुये और स्वभाव के अनुसार कर्म करने में समर्थ होता है। उनके विपरीत जाने के लिये वह स्वतन्त्र नहीं। उदाहरण के रूप में अर्जुन को लीजिये। पृथ्वी के भार को दूर करने के विशेष उद्देश्य से उसका जन्म हुआ था। अतएव इस कार्य में वह ईश्वर परतन्त्र हुआ। उसे यह कार्य करना ही होगा। ईश्वर समस्त प्राणियों के हृदय में रहता हुआ उन्हें घुमाता रहता है इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि भगवान उदय में हैं और उन्हीं के प्रकाश से जीवन यावत्कर्म करता है। हमारे शरीर के भीतर जितने रक्त के कीटाणु हैं वे जिस स्थान पर हैं वहाँ रहने के लिये विवश है। कहा जा सकता है कि हमारी शक्ति उनके भीतर है और हमीं उनको संचालित करते हैं। परन्तु वे अपने स्थान पर रहते हुए अपने चेष्टाओं में स्वतन्त्र है। ऐसे ही ईश्वर द्वारा नियुक्त स्थान पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहते हुये संसार में अपने आने के विशेष उद्देश को पूर्ण करते हुये मनुष्य अपनी दूसरी चेष्टाओं में स्वतन्त्र है। यही मनुष्य का कर्म स्वातन्त्र्य।

'प्रकृती' यान्ति भूतानि' में जीव को स्वभाव परतन्त्र बताया गया है। स्वभाव परतन्त्रता से कर्म की स्वतन्त्रता में तो कोई बाधा आती नहीं। इतना अवश्य होता है कि स्वभाव के विपरीत चलने के लिये मनुष्य समर्थ नहीं। एक व्यक्ति का स्वभाव क्रोधी है। अब वह चाहे कि उसे क्रोध न आवे, यह असम्भव नहीं तो कठिनतम अवश्य है। लेकिन क्रोध के उपयोग में तो वह स्वतन्त्र है ही। वह पापियों, दुष्टों तथा अपने दुर्गुणों पर क्रोध करके संसार की भलाई एवं अपनी आत्मोन्नति कर सकता है। दुष्टों से मिल कर निरापराधियों पर क्रोध करेगा तो उसका परिणाम उसके लिये घातक होगा। इसी प्रकार के स्वभावों का भला और बुरा उपयोग हो सकता है। स्वभाव के उपयोग में मनुष्य स्वतन्त्र है और यही उपयोग उसकी उन्नति या अवनति का कारण होता है। अत: स्वभाव परतन्त्र होते हुए भी वह कर्म करने में स्वतन्त्र है, ऐसा कहने में कोई बाधा नहीं। इसीलिये भगवान ने 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' कहा। केवल कर्म में अधिकार है स्वभाव परिवर्तन या ईश्वर के दिये स्थान परिवर्तन में नहीं।

'मां फलेषु कदाचन' फल में तेरा अधिकार कभी नहीं। यह दूसरा सूत्र है कर्मयोग का। हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि एक ही परिस्थिति में एक ही प्रकार के साधन से एक ही कर्म के करने वालों में फल भेद होता है। कोई सफल होता है। कोई विफल होता है। कोई किसी अंश में ही सफल होता है और कोई हानि भी उठाता है। अत: उद्योग का फल उद्योग पर निर्भर हो ऐसी बात नहीं। फल तो प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त होता है। गोस्वामी जी ने कहा है-

'हानि लाभ जीवन मरण जस अपजस विधि हाथ।'

कर्म के परिणाम स्वरूप हानि-लाभ, जीवन-मृत्यु यश एवं अपयश ये प्रारब्ध के अनुसार होते हैं। इन्हें प्राप्त करने में हम परतन्त्र हैं। अत: कर्म का यह फल होगा ही या यह फल होना ही चाहिये ऐसा सोच कर कर्म करने वाले सर्वदा दुख पाते हैं। फल भगवान को समर्पित करके कर्तव्य बुद्धि से कर्म करना चाहिये। फलासक्ति ही सर्वदा कष्ट देती है। यदि फल आसक्ति छोड़ दी जावे तो फिर कष्ट क्यों हो।

जिसमें अपना अधिकार नहीं उसमें आसक्ति करके कष्ट तो भोगना ही पड़ेगा।

तीसरे सूत्र में कहा गया "मा कर्मफल हेतु र्भू:" कर्म फल के कारण मत बनो ! कर्म करने पर उसका अच्छा या बुरा पूरा या अधूरा कुछ न कुछ फल तो होता ही है। वह फल मेरे कर्म से, मेरे उद्योग से हुआ है ऐसा मत समझो। क्यों कि कर्म फल का कारण केवल उद्योग तो है नहीं।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ।।
शरीरवांमनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नर: ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पंचेते तस्य हेतव: ।।
तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु य: ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति र्मदुति: ।।

१८।१४।१५।१६

अधिष्ठान (कर्म का जो आधार है) कर्त्ता (करने वाले की शक्ति और योग्यता) नाना प्रकार की सामग्रियों (जो उपयोग में आती हैं उनकी अच्छाई बुराई) विविध प्रकार की भिन्न-भिन्न चेष्टा (जितनी तत्परता से और ठीक समय पर हों) तथा प्रारब्ध (जैसा अनुकूल या प्रतिकूल हो) ये पाँच उन सब उचित और अनुचित कर्मों के कारण होते हैं, जो मनुष्य शरीर से, मन से अथवा वाणी से प्रारम्भ करता है। अज्ञता वह जो कर्मों में केवल अपने को कारण मानता है वह दुर्बुद्धि ठीक नहीं समझता।

"प्रकृते: क्रियमाणानि गुणो: कर्माणि सर्वश: ।
अहंकार विमूढ़ात्मा कर्ता ऽहमिति मन्यते ।।"

सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के गुणों के द्वारा किये जाते हैं, केवल अहंकार से मूढ़ बुद्धि हुआ पुरुष अपने को कर्ता समझता है। यह कर्ता समझना ही बन्धन का हेतु है। जब पुरुष अपने को कर्ता मान लेता है, कर्म फल को अपने उद्योग का फल मानता है तो वह उसके पाप-पुण्य का भागी होकर संसार चक्र में भटकता रहता है। कर्तापन का यह अभिमान ही उसे पाप-पुण्य से युक्त करता है। अन्यथा-

"गुणा गुणेषु वर्तन्ते इति मत्वा न सज्जते।"

त्रिगुण अपने गुणों में ही बर्ताव कर रहे हैं, ऐसा समझ कर उनके द्वारा किये कर्मों से संसक्त नहीं होता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"यस्य नाहंकृतोभावोःबुद्धिर्यस्य न लिप्यति ।
हत्वाऽपि स इमान्लोकान्हन्ति न निबध्यते ।।"

मैंने यह कार्य किया है ऐसा अहंभाव जिसमें नहीं है जिसकी बुद्धि कर्म से लिप्त नहीं होती वह त्रिभुवन के संहार के सदृश घोर कर्म करे तो भी, न तो वह हत्यारा होता और न उसे उस कर्म से बन्धन होता। भगवान शंकर इसके साक्षात उदाहरण भी हैं। सम्पूर्ण विश्व का प्रलय करके भी वे शिव-कल्याण स्वरूप ही रहते हैं।

बात यह है कि कर्म में अहंकार व्यक्ति से पाप कराता है। पाप सर्वदा भोगेच्छा या स्वार्थ बुद्धि में होते हैं, ऐसे ही सकाम पुण्य कर्म भी अहंकार युक्त और यशादि की इच्छा से ही होते है। जिसमें फल का भाव नहीं हैं, उससे न तो पाप हो सकते और न ही सकाम पुण्य। वह केवल अपने स्वभाव के अनुसार उस कर्म को करेगा जिस कर्म विशेष के लिये विश्वनियन्ता ने उसे भेजा है। उसके द्वारा जो भी कर्म होता है वह विश्वकर्ता की इच्छा ही से होता है। अतः वह उस कर्म के फल से क्यों संसक्त होने लगा फल से तो संसर्ग तभी होता है जब उस फल में आसक्ति हो। मैंने उसे प्रकट किया है, ऐसा अहंकार हो अतएव भगवान इस अहंकार से जो कि मिथ्याहंकार है सावधान करते हैं' मा कर्मफल हेतु र्भूः' कर्मफल को अपने उद्योग का फल समझ उसके कारण मत बनो ! यह तो प्रारब्ध की देन है, भगवान का प्रसाद है।

'माते संगोस्त्वकर्मणि' यह चौथा और अन्तिम सूत्र है कि तुम्हारा अकर्म से संग न हो। आलसी बनकर बैठे मत रहो ! फल में अपना अधिकार ही नहीं, उद्योग करने पर भी फल होगा यह निश्चित नहीं, फल हो भी तो वह प्रारब्ध से होता है। उद्योग उसका कारण नहीं ऐसा समझकर उद्योग करना ही मत छोड़ दो कर्म करना तुम्हारा कर्तव्य है अतः तुम्हें कर्म तो करना ही चाहिये। क्योंकि तुम कर्म को छोड़ नहीं सकते। कर्म करने के लिये विवश हो।

"न कश्चिक्षणामपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते हादशः कर्मः सर्वा प्रकृतिजैर्गुणैः ।।"

कोई उत्पन्न हुआ प्राणी एक क्षण भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता। प्रकृति के गुणों से विवश होकर गुणों द्वारा उसमें कर्म कराया ही जाता है। सभी इस प्रकार प्रतिक्षण कर्म करते ही रहते हैं। चाहे हम इन्द्रियों को रोककर कर्म करने से विरत भी रख सकें पर मनीराम तो मानने से रहे। उनकी उधेड़ बुन तो चला ही करेगी। फिर इस प्रकार इन्द्रियों से कर्म न करना कोई अच्छा तो है नहीं-

"कर्म्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसास्वरन् ।
इन्द्रियार्थान विमूढ़ात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ।।"

जो मूर्ख बुद्धि पुरुष कर्मेन्द्रियों को कर्मों से रोक कर मन के द्वारा विषयों का चिन्तन करता है वह पाखंण्डी कहा जाता है इस प्रकार के पाखण्ड से कोई भी लाभ नहीं है, इस बाह्य त्याग के द्वारा कोई भी नैष्कर्म्यावस्था को नहीं पाता।

न कर्मणामनारम्भान्नेष्कर्म्य पुरुषोश्नुते ।
न च सन्यसनादेव सिद्धि समाधिमच्छति ।।

कर्म को आरम्भ न करने मात्र से पुरुष निष्कर्मावस्था का आनन्द नहीं प्राप्त करता और न तो करते हुये कर्मों को छोड़ देने (कर्म संन्यास) मात्र से नैष्कम्य सिद्धि को पाता है। निष्कर्मता तो मन का धर्म है। शरीर के द्वारा निष्क्रिय हो भी गये तो क्या लाभ ? क्योंकि बन्धन और मोक्ष का कारण तो है मन। इस मन को निष्क्रिय बनाना है। मन की निष्क्रियता है कर्म और कर्मफल से असक्त रहना। इस के अतिरिक्त शरीर से धर्म छोड़ देने से हानि भी है। सभी जानते हैं कि सत्वगुण का कर्म आनंद रजोगुण का धर्म क्रिया तथा तमोगुण का धर्म निद्रा एवं आलस्य है। कोई भी निरन्तर सत्वगुण में स्थिति रहे यह नितांत कठिन है। सत्वगुण में स्थिति न रहने पर यदि हम बलात् कर्म को त्याग दें और इस प्रकार रजोगुण में न रहने का दुराग्रह करें तो निश्चय है कि हमें तमोगुण में रहना होगा । हमारे द्वारा निद्रा एवं आलस्य का पोषण होगा। यह स्थिति किसी भी अध्यात्म मार्ग के पथिक के लिये भयंकर है।

एक महापुरुष का कहना है "चोर एवं डाकू तो अच्छे हैं, उन्हें भगवान मिल सकते हैं, लेकिन निरन्तर आलस्य में पड़े रहने वाले अच्छे नहीं। उन्हें कभी भी प्रभु के दर्शन न होंगे।" मतलब यह है कि रजोगुण से सतोगुण में पहुंचना तो शक्य है, लेकिन तमोगुण से सतोगुण में नहीं पहुँचा जा सकता। इसलिये घोर कर्म करने वाले डाकू प्रभृति भी राजसिक होने के कारण नींद एवं आलस्य में पड़े रहने वाले लोगों से श्रेष्ठ तथा भगवान के निकट हैं। कुछ भी न करके आलस्य में पड़े रहने की अपेक्षा कुछ भी करना बुरे से बुरा काम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भी करना अच्छा है क्योंकि क्रिया में मनुष्य तामसिकता से उठकर कुछ तो रजोगुण में आता ही है।

स्पष्ट है कि बल पूर्वक कर्म का त्याग किसी भी साधक के लिये हितकर नहीं हो सकता । इससे उसकी हानि ही होगी। कर्म त्याग करके वह अपने पतन का मार्ग बना लेगा। अतएव भगवान साधक को सावधान करते हैं 'माते संतोस्त्वकर्माणि' अकर्म से तुम्हारा संग न हो तुम कहीं आलसी न बन जाओ। इन चार सूत्रों द्वारा गीता के एक ही श्लोक में पार्थ-सारथि ने सम्पूर्ण कर्मयोग बतला दिया है। कर्म करने में तुम स्वतन्त्र हो परन्तु फल तुम्हारे आधीन नहीं कर्म का फल हो भी तो उस फल का कारण अपने को मत समझो। साथ ही कर्म करना छोड़ भी मत दो। यही सम्पूर्ण कर्मयोग है।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जहोषि ददासियत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।।

जो कुछ करते हो, जो भोजन करते हो, जो हवन करते हो, जो दान करते हो और जो तपस्या करते हो वह सब मेरे अर्पण कर दो। कर्म करते रहो। छोड़ो मत! पर उसे कर्तव्य समझकर और उसके फल को भगवदार्पण करते हुये।

निष्काम कर्मयोग

एक दार्शनिक विश्लेषण

कर्म ही वह केन्द्रीय धुरी है जिस पर इस सृष्टि का गतिचक्र अविराम घूम रहा है। संसार में जो कुछ दृश्यमान है उसका आधार यही प्रक्रिया है। जड़ कहे जाने वाले परमाणु में भी इलेक्ट्रान एक निश्चित परिकर में गति करते हुए अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखते हैं। चेतन जीव जगत भी भिन्न प्रकार की गति विधियों-क्रियाकलापों से अपने को नियोजित रखते हैं। कर्म में तत्पर हुए बिना यहाँ अपना अस्तित्व बनाए रह सकना असम्भव प्राय: है। जीवित रह सकें, इसके लिये कर्म आवश्यक ही नहीं आनिवार्य भी है। मनुष्येतर निम्न श्रेणी के प्राणियों में यह प्रकृति प्रेरणा से परिचालित है। उदरपूर्ति, वंशवृद्धि एवम निज की रक्षा तक ही सीमित है। इन सीमित प्रयोजनों की परिधि में ही उनका सम्पूर्ण जीवन परिभ्रमण करता है और एक दिन- काल-कवलित हो जाता है । अतएव उनके लिए सुख दु:ख की उच्चस्तरीय वैचारिक चेतना के परिष्कार समष्टि से एकाकार होने की आत्मिक अनुभूतियाँ निरर्थक एवम् परे हैं।

परम सत्ता के इस विश्व उद्यान में सर्वाधिक श्रेष्ठ एवम वरिष्ठ मानव मानसिक और बौद्धिक दृष्टि से परिपूर्ण विकसित होने के कारण एन्द्रिक सुखों की लघु परिधि में सीमित नहीं रह सकता। उसे उच्चस्तरीय इन्द्रियातीत परम आनन्द की तलाश है, जिसके लिए अल्पज्ञतावश इस सांसारिक मृग मरीचिका में भटकता है। इस भटकाव से मुक्ति पाने, निज के स्वरूप को पहचानने के लिए ऋषि-मनीषियों ने ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग का मार्ग अपनाने हेतु निर्देशित किया है। इनमें कर्मयोग राजमार्ग की तरह सुप्रशस्त है। क्योंकि यह हर मनोभूमि के व्यक्तियों एवम वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल है। इसमें न तो भूलभुलैयों की दुरूहता है, न ही भटकाव की कोई गुजांइश। यह इसलिए सभी के लिए उपयुक्त है क्योकि मनुष्य आजीवन किसी न किसी रूप में कर्म करता ही रहता है। कर्मो से पूर्णतया विरत हो जाना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। अतएव यदि कर्मयोग युक्त जीवन जी सकना सम्भव हो सके तो इसी जीवन में स्वर्ग एवं मोक्ष जैसी स्थिति का आनन्द पा सकना सबके लिए सम्भव है।

कर्म जीव और ब्रह्म को एकीकृत कर देने वाला योग तब बन जाता है जब वह निष्काम हो। क्योंकि कामनाओं से जकड़े रहना ही भव-बंधन है और इनसे छूटना ही मुक्ति। कर्मों से विरति तो सम्भव नहीं है फिर इस संसार में कैसे रहा जाय ? जीवन मुक्ति के परम सुख की उपलब्धि कैसे हो ? इसके लिए ईशावस्य उपनिषद् का ऋषि भी उपरोक्त उद्घोष करता हुआ कहता है तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा-अर्थात्-इस विश्व उद्यान में बिहार तो करें इसका उपयोग करें पर निर्लिप्त होकर निष्काम भाव से।

निष्काम कर्मयोग के सुविस्तीर्ण राजपथ पर चलने वाला पथिक निज की इच्छाओं, वासनाओं को परमसत्ता के प्रति समर्पित कर देता है। उसका जीवन संकीर्ण स्वार्थ की पूर्ति के लिए नहीं अपितु भगवती चेतना के इस विश्व-उद्यान को अधिकाधिक पुष्पित पल्लवित करने तथा इसे सुन्दर से सुन्दरतम बनाने में होता है। वह अपने कर्त्तव्यों के प्रति सतत जागरूक एवम तत्पर रहता है। उनको भली प्रकार निर्वाह में उसे अनिर्वचनीय परम सुख की अनुभूति होती है। इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकार वह निरन्तर कर्म में निरत रहता हुआ दिखाई देने पर भी अन्तर्मन में पूर्णतया अनासक्त होता है।

गीताकार ने इसी को समत्व भी कहा है और सभी प्रकार के योगों में इसे उत्कृष्ट बताया है। समत्व का तात्पर्य है समान भाव, चित्तवृत्तियों की चंचलता का सहज निरोध। जिसे योगदर्शन के प्रणेता पातञ्जलि ने योगश्चिन्तृवत्ति निरोधः कहकर समझाया है । गीता ने इसे ही समत्व कहा है। चित्त का चंचल होना कर्मों में बाधा व्यतिरेक पैदा करता है। हानि-लाभ, यश-अपयश, सुख-दुःख की उलझनों में जिसका मन सदा ही उलझता रहता है। जय होने पर जिसका अभिमान अस्सी गुना बढ़ जाता है। पराजय से जिसका मनोबल चूर-चूर हो जाता है। उससे सही ढंग से कर्म नहीं हो सकते हैं। जो हर परिस्थितियों उद्विग्नताओं से रहित होकर दृढ़ मनोबल से परमात्मा के प्रति पूर्ण समर्पित भाव से कर्म करता है वह ही इस समत्व भाव की निष्काम कर्मयोग की सच्ची आराधना करता है।

ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म निष्काम कर्मयोग की प्रथम अनिवार्यता है। सामान्यतया मनुष्य जो कर्म करता है। उसका कारण छुद्र स्वार्थपरता ही है उस समय वैश्य सत्ता की इस अनुपम कलाकृति को सजाने संवारने का विचार नहीं रहता है। स्वार्थ हेतु कर्म से संलग्न व्यक्ति अपने को प्रधान और परमात्मा को गौण मानता है। भला यदि किरण को प्रधान तथा सूर्य को नगण्य माना जाय तो यह अज्ञान के सिवा और है क्या? अतएव इसी अज्ञानता के निवारण एवं ब्रह्मार्पण बुद्धि से कार्य करने के सदज्ञान की प्राप्ति कराने वाले इस निष्काम कर्मयोग को ही समत्वयोग और बुद्धियोग भी कहा गया है। आस्था संकट एवम सारे अभावों की जड़ यह अज्ञान ही है। यदि इस भावना का समूलनाश हो जाय तो संकीर्ण स्वार्थपरता के गहन गम्भीर अंधकार में डूबा मानव निकले और विश्वात्मा के शाश्वत आलोक में आकर कुछ परमार्थ की भी सोचे पर इसका प्रारम्भ संगत्यक्तत्वा अर्थात् निष्कामता से ही होता है।

कर्म के परिणाम के प्रति अनासक्त होना इस दृष्टि से भी आवश्यक है कि मनुष्य का अधिकार क्षेत्र मात्र कर्म करने तक ही सीमित है। फल इस सीमा से बाहर है। यह तो सही है कि प्रत्येक कर्म का फल भी है और निश्चित समय पर उसकी प्राप्ति भी सुनिश्चित है, पर यह भी यथार्थ है कि इस महत्वपूर्ण प्रक्रिया का संचालन सूत्र किन्हीं अदृश्य हाथों में ही है। कई बार इस कर्मफल प्रक्रिया में व्यतिरेक होने जैसा आभास भी लगता है। एक निश्चित प्रकार के कर्म करने पर भी उसका सम्भावित परिणाम न देखकर कर्मफल व्यवस्था पर मन आशंकित हो उठता है। पर ऐसा होने का कारण यही है कि कर्मफल के सिद्धान्त को सही ढंग से समझाया नहीं गया। वर्तमान जीवन एवम् इससे सम्बद्ध भली-बुरी उपलब्धियाँ मात्र इसी जीवन की नहीं अपितु पूर्व संचित कर्मों का भी परिणाम है। कई बार ऐसा होता है अच्छे कर्म करने पर भी परिणाम अनुकूल नहीं होते, बीच में ऐसे विघ्न, व्यतिरेक आ जाते हैं जिसका निवारण मानवी सामर्थ्य से परे है। पर यह है वस्तुतः अदृश्य कर्मों के फल जो पूर्व जन्मों में सम्पादित किए गए हैं। जो कर्मफल की शाश्वत व्यवस्था के अनुसार कालान्तर में विविधि रूपों में प्रकट होते हैं। अतएव कर्म फल की प्राप्ति पूर्णतया सत्य होते हुए भी उसे आसक्ति का सर्वथा त्याग ही श्रेयस्कर है। इसके प्रति आसक्ति होने एवम मनोनुकूल परिणाम न मिलने पर मनुष्य हताशा और निराशा के गहरे गर्त में समा जाता है।

कर्मयोग के सुप्रसिद्ध व्याख्याकार स्वामी विवेकानन्द ने कहा है- निरन्तर कर्म करना पर उसमें पूर्ण अनासक्ति यही है जीवन का केन्द्रीय भाव। चाहें परिस्थितियाँ कितनी ही दुरूह व कंटकाकीर्ण क्यों न हों यहाँ तक कि मौत के मुंह में जाकर भी बिना तर्क वितर्क किए मानव एवम मानवता की सेवा और सहायता के लिए तत्पर रहो। क्षुद्र स्वार्थों की बेड़ियाँ तोड़ दो, भले ही वे सोने की हो क्यों न हों ? सम्पूर्ण विश्व शिव का स्वरूप ही है। आसक्ति को त्याग कर आत्मबल का अवलम्बन लेकर इसकी सेवा करना इसे उत्कृष्ट बनाना ही कर्मयोग का सही स्वरूप है। शिव भावे जीव सेवा इस महामंत्र को हृदयंगम करने पर ही कर्मयोग की व्याख्या समझ में आ सकती है।

निष्काम कर्मयोग के संदर्भ में कुछ लोग भ्रान्त धारणाएँ बना बैठे हैं। ये लोग विवेक को ताक पर रखकर कहते हैं कि जो भी कर्म हम करते है उनका कराने वाला तो परमात्मा है। वह काम अच्छा है या बुरा इससे हमें क्या चिन्ता ? इस भ्रान्त धारण के पोषण करने से मनुष्य कर्म और अकर्म के बीच विभेद नहीं कर पाता। होता यह है कि मन की निम्नगामी प्रवृत्तियाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पूरी तरह स्वतन्त्र हो जाती हैं। फलतः उत्थान की जगह पतन का पथ ही प्रशस्त होता है।

परमात्मा जो सृष्टि का नियामक और समूची सृष्टि का संचालक है उसने मानव को विवेक बुद्धि प्रदान कर कर्मों का अधिष्ठाता बनाया है। उसे कर्म करने की पूरी स्वतन्त्रता है। चाहे तो वह सत्कर्मों का सत्पथ अपना कर आत्मिक प्रगति के आलोकमय पथ पर चले अथवा दुष्कर्मों के कुमार्ग पर चलकर अवनति और पतन के गहरे अंधेरे गर्त में समा जाय। भले-बुरे कर्मों का उत्तरदायी मनुष्य ही है न कि परमात्मा। 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' से युक्त परमसत्ता भला दुष्कर्मों की प्रेरणाएं दे भी कैसे सकती हैं ? ऐसी प्रेरणाएं तो मनुष्य के अपवित्र एवम् कलुषित मन की उपज है। उस दिव्य सत्ता का प्रतीक प्रतिनिधि आत्मा तो हर एक के अन्दर विराजमान है जो नित्य-निरन्तर ,उच्चस्तरीय प्रेरणाएं सम्प्रेषित करता है। जो मन की उपेक्षा-अवेहलना के कारण व्यवहार जगत में नहीं आ पाती हैं। अतएव कर्माकर्म का दायित्व अपने ऊपर न मानना निष्काम कर्मयोग के अर्थ का अनर्थ करना ही है।

अनासक्त कर्मयाग यह शब्द ही अपना वास्तविक अर्थ सुस्पष्ट करता है। अनासक्ति का तात्पर्य है राग,द्वेष से विरक्ति। कोई भी कर्म-चाहे वह छोटा हो या बड़ा किया जाय तौ उसमें कर्त्तत्व का छुद्र अभिमान न जोड़ा जाय। यह अभिमान ही पापों का मूल है और उसकी उत्पत्ति का एक मात्र कारण है आसक्ति। दूसरा शब्द है कर्मयोग। गीताकार ने इसकी व्याख्या "योगः कर्मसु कौशलम्" अर्थात् कर्मो में कुशलता ही योग है कह कर की है और कार्य कुशल वही हो सकता है जिसे अनुचित और उचित कर्मो के अन्तर का परिपूर्ण ज्ञान हो। इस कुशल शब्द से वस्तुतः सत्यं शिवं सुन्दरम् की त्रिवेणी प्रवाहित है। अतएवं कार्य कुशलता में किसी भी तरह अशुभ-अशिव की गुजांइश ही नहीं है। अनासक्त कर्मयोग का सही माने में तात्पर्य यही है कि काम को पूरी कुशलता के साथ छुद्र अहंकार का त्याग कर किया जाय और उसके फल में स्पृहा न हो। इस निष्काम कर्म योग के तत्त्वदर्शन को हृदयंगम करके इस सुप्रशस्त, भागवती चेतना के दिव्य आलोक से आलोकित राजमार्ग पर चलकर कोई भी इस संसार में रहते हुए आत्मिक उत्कर्ष के चरम शिखर पर आरूढ़ हो सकता है और जीवन मुक्ति का परमानन्द का रसास्वादन कर सकता है।

निष्काम कर्मयोग एवं मुक्ति

पूर्व जन्मों के प्रारब्धवश इस जीवन में जो काम, संयोग और परिस्थितियाँ मनुष्य को उपलब्ध हों, उनमें सन्तोष रखते हुए आगे की उन्नति के लिये उद्योग करना धर्म है। शरीर जिस साधना में तत्पर हो उसी को पूरा करना मनुष्य का कर्तव्य है। अपनी परिस्थितियों से बहुत अधिक की कामना करना ही मनुष्य की दुःखद स्थिति का कारण है। अनियन्त्रित मनोरथ का त्याग करना ही अपने पूर्व-प्रारब्ध के लिये सन्तोष करने का अच्छा उपाय है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि आगे के लिये अधिक सुन्दर परिस्थितियाँ प्राप्त करने की चेष्टा न करें। श्रेय की इच्छा करने वाले मनुष्य को न तो निष्क्रिय रहना चाहिये और न ही विविध कामनायें करनी चाहिए।

सेना में सिपाही की योग्यता के अनुसार कमाण्डर उसे कोई एक काम सौंप देता है। योग्यता बड़ा लेने पर कमाण्डर क्रमशः उसे उच्च पद देता चला जाता है किन्तु सिपाही की स्थिति में रहते हुए सेनानायक के पद की आकांक्षा करने से न तो वह सिपाही के कर्तव्यों का भली-भांति पालन कर सकेगा और न ही सेना नायक का पद ही मिल सकेगा। इससे दुःख तो मिलेगा ही दुष्परिणाम भी उपस्थित हो सकते हैं।

एक ही परिस्थिति में यदि दत्तचित से लगे रहें तो उसमें भी आशाजनक परिणाम प्राप्त कर सकते हैं। कभी इधर, कभी उधर की दौड़ भाग करना मनुष्य की अस्थिरता का चिन्ह है। जो तरह-तरह की कामनायें मन में करते रहते हैं उन्हें ही यह परेशानी भुगतनी पड़ती है। अधिक से अधिक धन, अधिक सुख-सुविधाओं की लिप्सा ही मनुष्य को कमजोर और दुःखी बनाती है, क्योंकि यदि उन्नति की उचित योग्यता, शक्ति और परिस्थितियाँ न हुईं तो आकांक्षाओं की कभी पूर्ति नहीं हो सकेगी और उससे दुःखी अधीर, चिन्तित और निराश ही बने रहेंगे।

दूसरों को अधिक सुखी और सम्पन्न देखकर ईर्ष्या करना और परमात्मा को दोषी ठहराना मनुष्य की बहुत बड़ी भूल है। ऐसा वह इसलिए करता है कि उसे केवल अपने अधिकार प्रिय है। पूर्व जीवन में उसने क्या किया है इसकी भी तो कुछ संगत होनी चाहिये। किसी को कम किसी को अधिक देने का अन्याय भला

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परमात्मा क्यों करेगा ? मनुष्य अपने ही कर्मों का लाभ या घाटा उठाता है। एक रुपया देकर किसी को भला पाँच रुपये की कीमत की भी कोई वस्तु मिली है? योग्यता से अधिक दे देने की भूल भला परमात्मा क्यों करेगा? ऐसा यदि हो तो उसे लोग अन्यायी ही तो कहेंगे। यही क्या कुछ कम उपकार है जो उसने आपको मनुष्य जीवन जैसा अलभ्य अवसर प्रदान किया है। आप चाहें तो अपने जीवन का मूल्य बढ़ा सकते हैं और कर्त्तव्य पालन तथा अन्य सद्गुणों द्वारा आगे के लिये शुभ परिस्थितियाँ; अच्छे परिणाम और मंगल संयोग प्राप्त कर सकते हैं।

काम बदलने की चिन्ता आप मत कीजिये। यह एक प्रकार की 'कर्ण-हिंसा' है। इसी में पुरुषार्थ करते रहिये। भली परिस्थितियों के संयोग ईश्वरीय प्रेरणा से स्वत: प्राप्त हो जाते हैं। उसके लिये कोई जोड़-तोड़ नहीं करनी पड़ती। आप क्रियाशील रहिये, उद्योग करते जाइये। उन्नति के अवसर आपके जीवन में जरूर आयेंगे। पर कदाचित आपके प्रारब्ध कुछ इस तरह के नहीं हैं कि आप अधिक उन्नति कर सकें तो खीझ और उत्तेजना से प्राप्त परिस्थिति का सन्तोष भी आपको नहीं मिल सकेगा। इसीलिये फल प्राप्ति की कामना को गीताकार ने दोष बताया है और मनुष्य को निरन्तर कर्म करने की प्रेरणा दी है।

जागृत मनुष्य कभी क्रिया हीन नहीं रहेगा। प्राप्त परिस्थितियों में जो लोग प्रसन्नतापूर्वक लगे रहते हैं, जीवन का सुख उन्हीं को मिलता है। सुख किसी वस्तु या परिस्थिति विशेष में नहीं हैं। वह एक मानसिक भाव है जो प्रत्येक स्थिति में प्रसन्न रहने से मिल जाता है। छोटी-छोटी बातों में दु:खी रहने का तात्पर्य यह है कि आप परमात्मा के विधान की अवहेलना करना चाहते हैं। यों न सोचिये वरन् अपने से दयनीय स्थिति के व्यक्तियों से अपनी तुलना कीजिये और पूर्ण प्रसन्न रहने का प्रयत्न कीजिये। पुरुषार्थ करने की आप में शक्ति होगी तो अच्छे परिणाम भी मिल जायेंगे पर परिणाम की ओर अपना ध्यान बनाए रखकर प्राप्त आनन्द को क्यों छोड़ते हैं ? जागृत पुरुष इसीलिये प्रत्येक परिस्थिति में सुख का अनुभव करते हैं और तप त्याग, परोपकार द्वारा अपनी भावनाओं को उत्कृष्ट बनाकर आगे के लिये शुभ फल संचय कर लेते हैं। इसी जीवन की बढ़ी हुई योग्यता ही तो अन्य जन्मों के संस्कार रूप में दिखाई देती है।

दूसरी अवस्था में मनुष्य की कर्म भावना का विश्लेषण आता है। पुरुषार्थ अपनी शारीरिक या पारिवारिक आवश्यकतायें पूर्ण कर लेने को ही नहीं कहते। मनुष्य इस संसार में रहकर यहाँ के हवा, पानी, धरती प्रकाश आदि का स्वच्छन्द उपभोग करता है। इस तरह वह धरती माता का भी ऋणी है। जो उपकार प्रकृति और परमात्मा ने उस पर किये हैं उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का सही तरीका यह है कि मनुष्य भी प्राणिमात्र की सेवा और उपकार भावना से काम करे। स्वार्थों तक ही सीमित रहने से पशु और मनुष्यों में भेद भी कुछ नहीं रह जाता। परमात्मा का श्रेष्ठ पुत्र कहलाने का सौभाग्य तो तब मिलता है जब निष्काम भावना से सृष्टि के अन्य प्राणियों के साथ समता न्याय और कर्त्तव्य पालन की उदारता बनी रहे।

बच्चों का पालन-पोषण, व्यापार, देश-रक्षा, मेहनत-मजदूरी, ज्ञान-सम्पादन और जनमार्गदर्शन इन कर्मों में से ऊँच-नीच, छोटे-बड़े कम महत्वपूर्ण या अधिक महत्वपूर्ण होने की एक ही कसौटी हैं और वह हैं मनुष्य की भावना। स्वार्थ सम्मुख रखकर परोपकार दिखाई देने वाले कर्म भी फलदायक नहीं होते। निष्काम भाव से की हुई बच्चों की सेवा और प्राणिमात्र के हित के लिये किया गया उपदेश दोनों का ही फल समान है। क्योंकि उनकी भावना एक ही है। कर्म की विविधता में उसका मूल्य भावना स्तर पर आँका जाता है। किसी व्यक्ति की आप चोरों से रक्षा करें और बदले में आधा धन माँगने लगें तो आपकी यह सेवा प्रभावशील न रहेगी। कर्म का महत्व फल त्याग से है। सच्चा सुख, सन्तोष तो तब मिलता है जब मनुष्य अपने आप को परमात्मा का एक उपकरण मानकर विशुद्ध त्याग-भावना से परोपकार करता है। जीवन-मुक्त का लक्षण फल-प्राप्ति की कामना का परित्याग ही बताया जाता है।

प्रकृति हमें नित्य, निरन्तर निष्काम कर्म करने की शिक्षा देती रहती है। सूर्य चंद्रमा प्रकाश देते हैं। बदले में कुछ प्राप्त करने की उनकी कोई भावना नहीं होती। वृक्ष अपने फलों का उपभोग अपने लिये नहीं करते। पहाड़ लोगों को असीम खनिज देते हैं, नदियाँ शीतल जल से लोगों को तृप्त करती रहती हैं। इन्हें कभी किसी तरह की कोई भी कामना नहीं होती। लोक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कल्याण के लिये निरन्तर एक सी स्थिति में चलते रहना ही उनका धर्म है। मनुष्य की दशा भी इसी तरह की होनी चाहिये। सुख कर्म में है फल तो उसके विनाश का आरम्भ मात्र है।

मुक्ति एक लक्ष्य है जो निरन्तर चलते रहने से प्राप्त होता है। उच्च स्थिति प्राप्त करने के लिये मनुष्य छलाँग से काम नहीं ले सकता। बीच की साधनावस्था से होकर आगे बढ़ना ही स्वाभाविक नियम है। अकुलाहट, तीव्रता या चित्त में विकार आना मनोरथ पूरा न होने का लक्षण है।

आत्म-कल्याण के विविध साधनों में प्रत्येक स्थिति में हर मनुष्य के लिये सरल और सुलभ साधना-निष्काम कर्म की भावना ही है कठोर साधनों की अपेक्षा यह मार्ग अधिक सरल है। जिसे गीता में 'निष्काम कर्म योग' के नाम से प्रतिपादित किया गया है। कर्त्तव्य भावना का ज्ञान और मनोरथ के परित्याग से परमात्मा की स्थिति का बोध हो जाता है और मनुष्य जन्म-मरण के भव-बन्धन से मुक्ति पा लेता है। यही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। इसके लिये निष्काम कर्म से बढ़कर और कोई दूसरा उपाय श्रेष्ठ नहीं है।

गीता का दिव्य सन्देश

वेदान्त का भव्य भवन जिन तीन सशक्त आधारों पर टिका है, गीता उनमें से एक है। इसे भारतीय सांस्कृतिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक चिन्तन का प्रतीक प्रतिनिधि माना जाता है। इन दो आधार ब्रह्मसूत्र व उपनिषद प्रकारान्तर से इसमें समाहित हैं। इसमें जहाँ दार्शनिक चिन्तन के उदात्त भाव हैं,वहीं नीति आचार व्यवहार की विस्तीर्णता विशालता भी है।

इस महाग्रन्थ की वैचारिक उत्कृष्टता एवम् व्यावहारिक उपादेयता का आंकलन कर समय-समय पर अनेकानेक मनीषियों ने अपने विचारों के लिये इसी से समुचित आधार प्राप्त किये हैं। यही नहीं उनने अपनी बात की प्रामाणिकता इस प्रकार की अवलम्बन स्वीकार कर की है। इस प्रकार का अवलम्बन आज से नहीं अपितु आचार्य शंकर के भी पूर्ववर्ती आचार्यों बोधायन, एकायन तथा भृत प्रपञ्च आदि से लेकर परवर्ती आचार्यों रामानुज मध्वश्रीधर, मधुसूदन, आनन्दगिरि आदि ने प्राप्त किया है। प्राचीन काल की ही तरह विवेकानन्द, अरविन्द, गांधी, तिलक, विनोबा, राधाकृष्णनन् आदि ने भी अपने विचारों का सम्बल ज्ञान के इस महासमुद्र में ही पाया। पूर्व की ही भाँति सर एडविन, एरनाल्ड, किस्टोफर, ईशरउड, जान डेविड, थोरो, राल्फ बाल्डो इमर्सन, जान डेनिस, शोपेनहावर, हर्टमान, पाल, डायसन, ई० डब्लू हापकिन्स आदि पाश्चात्य विद्वानों ने भी इसका अध्ययन मनन चिन्तन कर स्वयं को कृत कृत्य किया।

इन सभी मनीषी चिन्तकों के देश काल-मत की भिन्नता के बाद भी सबका एक स्वर से गीता की प्रशंसा करना इसकी समन्वयवादिता तथा सार्वभौमिकता को स्पष्ट कर देता है। सचमुच इसका दिव्य सन्देश किसी जाति देश विशेष के लिये उपादेय न होकर सम्पूर्ण मानव जाति के लिये है। ऐसा भी नहीं है कि इसका लाभ मात्र उन्नत श्रेणी के ज्ञानी या विचारक ही ले सकते हैं। गांधी जी के शब्दों में यह तो सर्वसाधारण का मार्गदर्शक ग्रन्थ है। इसका मातृ सुलभ वात्सल्य प्रौढ़ ज्ञानियों की अपेक्षा अबोध अज्ञानी शिशुओं को अधिक प्राप्त होता है।

यह केन्द्रीय भाव जिसे गीता का महावाक्य भी कहा जा सकता है, इसके अतंरतम का सारतत्व है गीतोपदेश के समस्त जीवन और प्राण का श्वास प्रश्वास केन्द्र है। इसी से उस पवित्र भाव की निर्झरिणी प्रवाहित होती हैं जिसके सहारे मनुष्य सीमित मन के रास्ते से असीम अनन्त की ओर चलता है। गीता का यह केन्द्रस्थ विचार निर्झारिणी की त्रिविध धाराओं की त्रिवेणी का संगम विन्दु है इस पवित्र स्थल की सारी महत्ता एक ऐसी भावना की समन्वय साधकता है, जहाँ मानव की समूची प्रकृति को मान्यता मिलती है। यह महान दार्शनिक सम्प्रदायों के पीछे रहे हुए मूल औपनिषद, वेदान्त के समीप जाती है, क्योंकि यहीं हमें आत्मा मानव जीव तथा समष्टि जगत का अत्यन्त व्यापक गम्भीर जीवन्त एवम् समन्वित दर्शन होता है। परन्तु यहां जो कुछ अन्तर्ज्ञान मंत्र रूप तथा सांकेतिक भाषा से समाहित होने के कारण बुद्धि के समक्ष खुलकर नहीं आ पाता उसे गीता विचारणा तथा स्वानुभूति के प्रकाश से खोलकर सामने रखती है इसको देखने के लिये हमें अन्दर अज्ञान का आवरण भेदने की अदम्य लालसा जगानी पड़ेगी। बाकी हमारी सत्ता के स्वामी स्वयं देख लेंगे और पूरा करेंगे। यही गीताकार का कथन है।

परम जीवन के इस व्यापक दर्शन के उद्घाटन में ही गीता का एकीभूत अर्थ गाम्भीर्य और अनुपम श्री संवर्धन है। यहाँ सारे आवरणों को उठा वह स्पष्ट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करती है कि वे परमेश्वर सर्वव्याप्त है। अतएव मनुष्यों को सब के साथ आत्मैक्य ढूँढ निकालना तथा समस्त पदार्थों व प्राणियों को "आत्मौक्येन सर्वत्र" अनुभव कर तदनुसार कर्म करना होता है। इसी संगम स्थल में अवगाहन से भागवत सत्ता के अन्तःदर्शन होते हैं तथा सारा अन्तर्जगत विश्वमय हो जाता है। यह मिलन उन्हीं परम प्रिय से है जो पिता-माता सखा सर्वभूतों के अन्तरात्मा के आश्रय हैं। गीतोक्त उपदेश का परम और पूर्ण अर्थ है। यही वह ज्ञान है जिसे प्रकट करने के लिये भगवान वचनबद्ध हुये थे। इस ज्ञान की प्राप्ति के विविध साधन रूप ज्ञान कर्म और भक्ति के निरूपण कर इन सबको समन्वयकर वे उस परम वचन को कहते हैं जिसे अभी रख छोड़ा था। यह छोड़ना मात्र इसलिये था क्योंकि अभी तक अर्जुन की बुद्धि तर्क प्रवण थी। पर उसने तर्क की जगह ग्रहणशीलता तथा विनम्रता अर्जित कर ली है। उस परम वचन कहने के पूर्व "बौद्धिकता का अहं गया कि नहीं", इसका पुनः परीक्षण-अथ "चे-त्वमहं कारान्न श्रोप्यसि विनङ्क्ष्यसि" कह कर करते हैं। ग्रहणशीलता तर्क प्रवणता की जगह भाव प्रवणता के बारे में आश्वस्त हो पुनः निष्कर्ष रूप वचनों का गाम्भीर्य प्रकट करने के लिये "परमंवचः" शब्द का प्रयोग करते हैं।

पूर्व कथन को -"इति ते ज्ञान भारव्यातं गुह्या द्गुह्यतरं मया"-अर्थात् गुह्य और गुह्यातरं बताते हुये- महावाक्य की श्रेष्ठता एक बार पुनः इंगिति करते हुये-उसे सर्वगुह्यतमं बताकर वे भूयः श्रुणु मे परमं वचः कहते हैं। इस प्रकार बार बार निरीक्षण परीक्षण करने स्वतः इसको सर्वगुह्यतम तथा परम वचन स्वीकारने से इस महावाक्य की दिव्यता श्रेष्ठता स्वतः प्रमाणित हो जाती है। इस उपदेश को सुनने का अधिकारी अर्जुन सहज ही हो गया हो ऐसा भी नहीं है। उसने मन और बुद्धि को परम पुरुष के चरणों में समर्पित कर वह पात्रता अर्जित की थी, जिसके कारण उन्होंने स्वयं कहा- "ते प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हित काम्या इष्टोसिमे दृढ़मिति ततो वक्ष्यामिते हितम्" आज भी कोई अन्तःकरण व हृदय से इस भाव को ग्रहण करे तो वह अर्जुन की तरह अन्ततः स्वयं भगवत सत्ता से इस अन्तिम आदेश को सुनने का अधिकारी हो सकता है।

इस महावाक्य के महान संगीत का परम स्वर गीता अपने अन्तिम श्लोकों में घोषित करती है।

"मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे"।।
"सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहंत्वा सर्वपापेभ्योमोक्षयिष्यामि मा शुचः"।।

यह महावाक्य ज्ञान-कर्म-भक्ति तीनों की समन्वय साधना का साँध्य स्थल है। यहां सब कुछ एकत्व से परिणत हो जाता है। अद्वैत एक मेवाद्वितीयं के उत्कर्ष का स्थल यही है। पर इसका यह चरम लाभ इसको तोतें की तरह रटते रहने मात्र से प्राप्त नहीं होता। इसके लिये तो अर्जुन की तरह "करिष्ये वचनं तव" की कठोर प्रतिज्ञा में आबद्ध होना पड़ता है। निज की क्षुद्र आकांक्षाओं अभिलाषाओं को भागवत इच्छा में समाहित कर उसी को सहज स्वीकार करना पड़ता है।ऐसा करने पर ही भागवत प्रतिज्ञा साकार रूप में परिणत होगी।

यह ऐसा संगम स्थल है- जहाँ सारे मंत अपना वैचित्र्य त्यागकर एक रूप हो जाते हैं। विलक्षणबुद्धि वाला हो या बुद्धिहीन सभी यहाँ शान्ति प्राप्त करते हैं। क्योंकि सारा मर्म आचरण में निहित है आचरण ही इस महावाक्य की व्याख्या है। इस महावाक्य का चालीस वर्षों तक निरन्तर मनन कर-आचरण में उतारने वाले गांधीजी ने गीता माता में अपने सार निष्कर्ष को स्पष्ट करते हुये लिखा है-"गीता के अनुसार आचरण करने में प्रतिदिन निष्फलता प्राप्त होती है, इस निष्फलता में हम सफलता की उगी हुई किरणों की झाँकी देखते हैं।

उनके दो शब्द यथार्थ हैं। प्रारम्भ में हमारा अनगढ़ मन संभव है निष्फल हो- पर परिपूर्ण निष्ठा से करिष्येवचनं तव" की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये जुट पड़ने से हमारा जीवन वर्तमान जटिलताओं से उबर कर ज्योतिर्मय शिखरों तक सुनिश्चित रूप में जा पहुँचेगा।

भगवदार्पण: गीता का प्रेरक आदर्श

आत्मिक शुद्धि, आत्मिक शान्ति, तथा लोकहित के लिये अपने आपको भगवदार्पण करना हिन्दू संस्कृति की एक बड़ी विशेषता रही है। जब तक मनुष्य अपने आपको क्षुद्र सांसारिक जीव मानता रहता है और स्वयं अपनी व्यक्तिगत शक्ति से ही किसी महान उद्देश्य की पूर्ति चाहता है, तब तक वह सफल नहीं होता। उसकी शक्तियाँ पंगु सी रह जाती हैं। वह महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिये अपने आप को दुर्बल और पापयुक्त पाता है।

लेकिन इसके विपरीत जब वह सब ओर से सहायता की आशा त्याग कर एक मात्र ईश्वर को ही आत्म समर्पण कर देता है। तब वह मन में अमित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शान्ति का अनुभव करता है और गुप्त दैवी शक्ति प्राप्त करता है। अपने आपको भगवदार्पण कर देने से कोई कैसा ही पापी क्यों न हो, भगवान् की भक्ति के अद्भुत प्रभाव से उसके समस्त पापों का नाश हो जाता है। और उसे शीघ्र ही परम शान्ति मिल जाती है। किन्तु शर्त यही है कि यह आत्मार्पण विशुद्ध प्रेमभाव से होना चाहिये। अनन्य भाव से प्रेम पूर्वक अपने आपको ईश्वर में लय कर देने वाला दैवी शक्ति वाला हो जाता है और उसे सदा रहने वाली परम शान्ति प्राप्त होती है। जो संसार के अन्य आश्रयों को छोड़ नित्य निरन्तर निष्काम भाव से भगवान को सब कुछ सौंप देता है। भगवान उसकी रक्षा ही नहीं करते, वरन् उसका लौकिक एवं पारलौकिक भार भी सम्हालते हैं।

प्रभु को आत्मार्पण करते हुये मनुष्य अपनी समस्त मानसिक बौद्धिक तथा आत्मिक शक्तियों को समेट कर भगवान के चरणों में रख देता है। तब मानव की पुरानी प्रवृत्तियाँ जो सांसारिक भोगों में लिप्त थीं, जो निम्न कामों में ही लग कर समाप्त हो जाती थीं। एक नवीन दिशा की ओर नीचे से ऊँचाई की ओर, सांसारिकता से देवत्व की ओर उठने लगती है। नए आत्मिक मनोरथों की पूर्ति के लिये उसमें दैवी शक्तियों का सम्पर्क होता है। आत्मार्पण करने वाले में नया-जीवन आ जाता है। नए गीतों के लिये नई स्वर धारा फूटती है। भक्त का हृदय ही जैसे गीतों के रूप में बहने लगता है। वृत्तियों को संयमित कीजिये और फिर अपने सब कार्य अपनी शक्तियों तथा इच्छाओं को भगवान में समर्पित कर दीजिये। वही व्यक्ति लोककल्याण के कार्यों में पूर्ण सफल रहा है जिसने अपना सब कुछ भगवान को सौंप दिया है।

अपना सबकुछ ईश्वर को सौंप देना ईश्वर का दासानुदास या अंग बन कर आत्मिक शक्ति एकत्र करना-आत्मशुद्धि की यह साधना हमारे देश में प्राचीन काल से चली आयी है। गीता में भगवान ने आत्म शुद्धि का अनुष्ठान निम्न शब्दों में किया है :-

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।

हे भारत ! सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही अनन्य शरण को प्राप्त हो। उस परमात्मा की कृपा से ही परम शान्ति को और सनातन परमधाम को प्राप्त होगा।

लज्जा, भय, मान, बड़ाई, और आसक्ति को त्याग कर एवं शरीर और संसार में अहंता, ममता, रहित होकर केवल एक परमात्मा को ही परम आश्रय परम गति और सर्वस्व समझना तथा अनन्य भाव से अतिशय श्रद्धा भक्ति और प्रेम पूर्वक निरन्तर भगवान के नाम गुण प्रभाव और स्वरूप का चिन्तन करते रहना एवं भगवान का भजन स्मरण करते हुये ही उनकी आज्ञानुसार कर्तव्य तथा कर्मों का निस्वार्थ भाव से केवल परमेश्वर के लिये आचरण करना यह सब प्रकार से परमात्मा के अनन्यशरण होना है।

चेतसा सर्वकर्माणि मपि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोग मुपाश्रित्य मच्चितः सततं भव।।

सब कर्मों को मन से मुझ में अनन्य भाव से अर्पण करके मेरे परायण हुआ समत्वबुद्धि रूप निष्काम कर्मयोग को अवलम्बन करके निरन्तर मुझ में चित्त स्थिर करने वाला बन।

यस्य नाहं कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते।।

जिस पुरुष के अन्तःकरण में मैं कर्त्ता हूँ, ऐसा भाव नहीं है तथा जिसकी बुद्धि सांसारिक पदार्थों में और सम्पूर्ण कर्मों में लिपायमान नहीं होती, वह पुरुष इन सब लोकों को मारकर भी वास्तव में न तो मारता है और न पाप से बंधता है।

जैसे अग्नि वायु और जल के द्वारा प्रारब्ध वश किसी प्राणी की हिंसा होती देखने में आवे तो भी वास्तव में हिंसा नहीं है, वैसे ही जिस पुरुष का देह में अभिमान नहीं है और स्वार्थ रहित केवल संसार के हित के लिये ही जिसकी सम्पूर्ण क्रियाएँ होती है, उस पुरुष के शरीर और इन्द्रियों द्वारा यदि किसी प्राणी की हिंसा होती हुई लोक दृष्टि में देखी जाय, तो भी वास्तव में हिंसा नहीं है, क्योंकि आसक्ति, स्वार्थ और अहंकार के न होने से किसी प्राणी की हिंसा हो ही नहीं सकती तथा बिना कर्तृत्व अभिमान के किया हुआ कर्म वास्तव में अकर्म ही है, इसीलिये वह पुरुष पाप से नहीं बँधता है।

हमारे पास अपना कुछ नहीं है। जो कुछ है ईश्वर का ही है। हम अपने लिये नहीं वरन् सब कुछ ईश्वरीय सेवा के भाव से है। इस भावना से कार्य करने पर मनुष्य असंख्य शक्तियाँ प्राप्त करता है। इसी से कवि ने सत्य कहा है:-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"मेरा मुझको कुछ नहीं, जो कुछ है सब तोय।
तेरा मुझको सौंपते, क्या लागे है मोय ।।"

हे भगवान मेरा कुछ नहीं है। यह शरीर तुम्हारा है। यह तुम्हारे कार्यों संसार और समाज की सेवा के लिये लगे और फिर आपकी सेवा में वापस पहुँच जाये। इसमें मेरा क्या लगता है यह आपको अर्पित है।

संसार में बड़े-बडे महात्मा, विद्वान और विचारक हो गये हैं। मनुष्यों नेअपने जीवन ज्ञान विज्ञान की आराधना में सामाप्त कर दिये हैं। लोग जीवन भर नाना विषयों की एक से एक विद्वत्तापूर्ण पुस्तकें लिखते रहे हैं, किन्तु हम देखते हैं आज उनमें से अधिकांश पुस्तकें नष्ट हो गयीं। बहुत सी नष्ट होती जा रही हैं। जिन पुस्तकों के लेखकों ने केवल यश लिप्सा या विद्वत्ता के दंभ की पूर्ति का लक्ष्य सामने रख कर साहित्य साधना की थी, वे अन्धकार में क्षण भर के लिये प्रकाश करने वाली चिनगारी की तरह चमक कर बुझ गये। किन्तु जिन विद्वानों ने अपने को भगवदार्पण कर ईश्वरीय सत्ता से गुप्त दैवी बल ग्रहण कर साहित्य निर्माण किया, उनमें गुप्त रूप से ऐसी महान् शक्ति का आविर्भाव हुआ कि वह ग्रन्थ युगं युग होने पर आज भी सर्वत्र पूजनीय, प्रेरक और जनता के गले का हार बने हुये हैं।

महाकवि मिल्टन ने अपनी तमाम काव्य शक्तियों को ईश्वर के अर्पण कर दिया। अपने आप को ईश्वर का एक अंग या हिस्सा मात्र मानकर ईश्वरीय प्रेरणा से ग्रन्थ निर्माण किये। इससे उनकी कविता में वह दैवी शक्ति एवं बल आया कि वह शाश्वत भावना स्पष्ट कर सकी और बड़ी लोकप्रिय हुई। इसी प्रकार अपने अन्तिम दिनों मे महाकवि वर्डसवर्थ भी अध्यात्म में डूब गये और उनकी कविता उच्चतम् आत्मज्ञान की परिचायिका बनी। वे चरम प्रसिद्धि प्राप्त कर सके। भारत में गोस्वामी तुलसी दास, भक्त प्रवर सूरदास, मीराबाई, कबीर, गुरुनानक इत्यादि अनेक सन्त महाकवियों ने अपनी शक्तियों को ईश्वर के अपर्ण कर दिया। जैसे लोग पुष्प, अक्षत, धूप इत्यादि अर्पित करते हैं, वैसे उन्होंने अपनी काव्य शक्तियों को ईश्वर को अर्पित कर दिया। इस आत्मार्पण से उनकी स्वार्थ भावना यशोलिप्सा, प्रचार, भावना, अहंभाव दूर हो गये। उनका विशुद्ध आत्मतत्व निखर उठा। इस ब्रह्म संस्पर्श से वे भक्ति, प्रेम, विनय, सेवा, करुणा, नीति, इत्यादि के ऐसे हृदय स्पर्शी भजन, दोहे, गीत लिख सके, जो युग युग व्यतीत हो जाने पर आज भी हमें नये उत्साह आह्लाद प्रेम और प्रेरणा से भर देते हैं। यह भक्ति साहित्य आत्मार्पण का श्रेष्ठ उदाहरण है।

जो अपने लिये न लिखकर ईश्वर के लिये लिखता है ईश्वर का प्रतिनिधि होकर शब्द उच्चारण करता है, इस सम्पूर्ण विश्व में एक मात्र परमात्मा को ही प्रकट देखता है।(पुरुष एवेद सर्वम्-ऋग्वेद १०/९०/२) संसार को परमात्मा का ही प्रत्यक्ष स्वरूप मानकर इसकी सेवा भाव के लिये लिखता है, वह निश्चय ही स्थायी लोक रंजक साहित्य की सृष्टि करेगा। इसी उद्देश्य के लिये ईशावास्योपनिषद् में लिखा गया है:-

ॐईशावास्यामिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन व्यक्तेन भुञ्जिथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

अर्थात् संसार में जो कुछ है, वह ईश्वर से व्याप्त है। सब ईश्वर का है और ईश्वर मय है इस विश्व में परमात्मा ही अनेक रूपों में जन्म ले रहा है।

गीता करती है आज की समस्याओं का समाधान !

मानवी सभ्यता के अन्तः स्पन्दनों बाह्य गतिविधियों का अध्ययन विश्लेषण करने पर उद्घाटित तथ्य यही स्पष्ट करता है कि उसे अद्यतन काल में संकट पूर्ण स्थिति से गुजरना पड़ रहा है। बाह्यतः यह स्थिति किसी विश्व युद्ध जैसी भयावह न दिखाई देने पर भी अन्दर ही अन्दर घुमड़ने वाले ज्वालामुखी की तरह समूचे विश्व को अपने शिकंजे में फसाए हुये है।

नीति विहीन भौतिकता के यह स्पन्दन बाह्यतः अपना प्रभाव किस तरह से दिखा रहे हैं इसे बताते हुये येले विश्वविद्यालय अमेरिका के प्राध्यापक श्री एरिक फ्राम अपनी कृति"मैन फोर हिम सेल्फ:एन इन्क्वारी इन टू दि साइकोलाजी आफ एथिवस" में कहते हैं कि अनैतिक भौतिकता का घुमड़ता ज्वालामुखी मनोरोगों के रूप में अपने अंगारे फैलाकर मानव प्रजाति को नष्ट करता हुआ चला जा रहा है।

श्री फ्राम स्पष्टतया कहते हैं कि-"मनोरोगी होने का सीधा तात्पर्य है नैतिक मूल्यों की अवहेलना। उन्होंने इसी उपरोक्त कृति की भूमिका में स्पष्ट करते हुए कहा है कि मनोविज्ञान दर्शन नीति और समाज विज्ञान से पूर्णतया अभिन्न है। इनका परस्पर कभी तलाक नहीं हो सकता। इससे सम्बन्ध विच्छेद करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

वाले मनोविज्ञान को वह सूडो साइकोलाजी (झूठा मनोविज्ञान) कहते हैं।

भौतिकवादी सभ्यता की दौड़ में पृथ्वी के जिन भागों की गति काफी तेज है उनमें भी अमेरिका सब से आगे है। तदनुरूप वहाँ मनोव्यथाओं की बाढ़ भी अधिक हैं कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय इंग्लैण्ड के मनोविज्ञान के प्राध्यापक डा० डेविड इंग्लेबी ने अपनी कृति "क्रिटिकल साइकियाट्री में स्पष्ट किया है कि भौतिकता की दृष्टि से मुकुटमणि माने जाने वाले इस देश में मात्र एक वर्ष में मनश्चिकित्सकों ने तत्सम्बन्धित रोगों के लिये बीस करोड़ नुस्खे लिखे हैं। मनोव्यथा से पीड़ित व्यक्तियों की यह संख्या भौतिकता के बढ़ते हुये क्रम के अनुसार ही क्रमशः बढ़ती जा रही है।

लगातार बढ़ रही इस अर्ध विक्षिप्तता को रोकने के लिये तत्सम्बन्धी चिकित्सकों और चिकित्सालयों की वृद्धि भी नाकाम ही सिद्ध हुई है। डा० एरिफ आर० रैमर्स बर्ल्ड हेल्थ अर्गनाइजेशन की पत्रिका वर्ल्ड हेल्थ के अप्रैल १९८८ अंक में प्रकाशित अपने लेख "स्प्रिचुअल लीडरशिप इन हेल्थ" में लिखते हैं कि अभी तक हमने अपना विश्वास मनश्चिकित्सा की नई तकनीक विकसित करने तथा चिकित्सकों की सेना तैयार करने में बनाए रखा। किन्तु नाकाम होती जा रही यह कोशिशें इन रोगों के मूल कारण पर विचार करने पर विवश करती हैं। इस मूल कारण पर विचार करके डी कूपर ने "दि लैंग्वेज आफ मैडनेस" आर० डी लेडंग ने "सेल्फ सिम्पटम्स एण्ड सोसाइटी" तथा एफ बासाग्लिया ने "लिस्टिटीजिओन नेगाटा" में मनोरोगों के स्थायी निदान के लिये नैतिक मूल्यों की स्थापना पर बल दिया है। इन मनोअध्येयताओं के साथ अमेरिका के अल्वर्ट आइंस्टीन कालेज के प्राध्यापक जोल कापेल ब्रिस्टल विश्वविद्यालय में व्यवहार विज्ञान के प्राध्यापक एण्डीट्रीचर ने मिल कर प्रचलित मनश्चिकित्सा विधि के विरोध में एक आन्दोलन चलाया है। जिसे उन्होंने एण्टीसाइकियाट्री मूवमेन्ट का नाम दिया है।

नैतिकी के अध्यात्म प्रधान पक्ष के प्रवक्ता इमेन्युकल काण्ट व लॉक आदि हैं। इन्होंने शुद्ध बुद्धि पर जोर देकर सद्गुणों को ही परम श्रेष्ठ माना है मान्यताओं के अत्युच्च तथा आदर्शवादी होने के साथ उनमें व्यावहारिकता न होने से आलोचकों ने इसे कठोरतावाद का नाम दिया है। यही नहीं इसका सम्बन्ध ईसाई वैराग्यवाद से भी जोड़ा गया जिसका वर्णन विलियम जैम्स ने "वैराइटी आफ रिलीजस एक्सपीरियेन्सेज" में किया है। जिसे पढ़कर ही रोंगटें खड़े हो जाते हैं। जैसे कांटों के बिस्तर पर सोना, क्रास को पीठ पर ठुकवाना आदि। इसकी सैद्धान्तिकता कितनी ही आदर्शवादी दिखाई पड़े किन्तु व्यावहारिकता का नितान्त अभाव ही माना जायेगा।

पश्चिमी चिन्तन ने दो नीतिशास्त्रीय पद्धतियाँ ही प्रदान की हैं एक भोगवाद प्रधान, दूसरी आदर्शवाद प्रधान दो विपरीत छोरों पर हैं। किसी एक के चुनने के नाम पर स्वभावतः ही सुखवाद को चुना जा सकता है। ऐसी स्थिति में इनके माध्यम से नैतिक मूल्यों की स्थापना तथा दिशाविहीन मानव समाज को दिशा दर्शन करना नितान्त असम्भव सा जान पड़ता है।

इस असम्भव को सम्भव बनाने का कार्य भारतीय चिन्तन का मुकुटमणि मानी जाने वाली गीता सहज ढंग से सम्पन्न करती है। जहाँ इसमें सुखवाद को अनौचित्यपूर्ण बताकर गीताकार ने पंचम अध्याय के २२वें श्लोक में कहा है।"एन्द्रिक सुखभोग विषयी पुरुषों को सुख रूप प्रतीत होने पर भी दुःख का ही हेतु है, साथ ही अल्पकालिक भी हैं। इसी कारण विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमते हैं। "वहीं कठोरतावाद का खण्डन करते हुये १७वें अध्याय के छठे श्लोक में बताया गया है कि "जो शरीर रूप में स्थिति भूत समुदाय (पंचभूतों के कलेवर के साथ इन्द्रिय आदि तत्वों को) सुखाने वाले हैं, वे इसमें अन्तर्यामी को भी कृश करते हैं। ऐसे व्यक्ति अज्ञानी और आसुरी स्वभाव वाले हैं।"

निःसन्देह न सुखवाद ग्रहणीय है न कठोरतावाद। इन दोनों के पारस्परिक सामंजस्य से युक्त एक ऐसे नैतिक आदर्श की आवश्यकता है जिसको वर्तमान परिस्थिति में भी सहज और स्वाभावकि ढंग से परिपालित किया जा सके। पचैयरपा कालेज मद्रास के दर्शन शास्त्र के विद्वान डा० शंकरन "द एथिकल फिलासफी गीता" में इसकी नीति शास्त्रीय विधियों का मनौवैज्ञानिक विवेचन करते हुये कहते हैं कि- इसमें ह्यूम बैंथम हाब्स एरिस्टीपस, इपीक्यूरस जैसे सुख वादियों तथा सीनिक्स, स्टोइक, प्लेटो स्कूल मेन व काण्ट जैसे कठोरतावादियों के मध्य सुन्दर सामंजस्य उनके जन्म से सहस्त्रों वर्ष पूर्व ही स्थापित कर दिया गया था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस सामंजस्य पूर्ण स्थिति को गीता के छठे अध्याय के १७वें श्लोक में व्यक्त किया गया है। "शारीरिक पोषण के लिये यथोचित आहार मानसिकता की उर्ध्वगामिता को गति देते हुये विहार इन्हीं के अनुरूप कर्मों में अप्रमत्त चेष्टा विश्रान्ति के निमित्त आवश्यक निद्रा व पुन: इसको गतिमान रखने के लिये यथा समय जागरण ही ग्रहणीय है।"

नीति विषयक यह मर्यादा, रोगी स्वस्थ सभी के द्वारा ग्राह्य है। इसके परिपालन से बौद्धिक अशिक्षित सभी अपने जीवन को स्वस्थ समुन्नत बनाते हुये आवश्यक प्रगति कर सकते हैं। किन्तु इस महान नैतिक प्रविधि के रहते हुये भी हमारी अवगति क्यों हुई तथा हो रही है इसका कारण मनोअयेता एरिकफ्रॉम" अपने अन्य ग्रन्थ एस्क्रेय फ्रामफ्रीडम में स्पष्ट किया है। अभी तक हमने कुछ देर तक इस नीतिशास्त्र को रटने में जिव्हा को लगाए रखा तथा मन व कर्मेन्द्रियों को उच्छ्रखलता-पूर्ण आचारण में नियोजित किया। इसी कारण हमारी स्थिति अर्ध विक्षिप्त सी हुई है। इस तरह के रटने को वह "लिप सर्विस या "ओष्ठ सेवा" का नाम देते हैं। इसी आचरण विहीनता के कारण हमारा मस्तिष्क भले ही इक्कीसवीं सदी में विचरण करता हो किन्तु हृदय अभी भी पाषाण युगीन ही है।

मनीषीगण स्पष्ट करते हैं कि इस नैतिक आदर्श पर लगातार चिन्तन जहाँ हमारी मानसिक संरचना को परिवर्तित करेगा, वहीं कर्मों के द्वारा हुई इसकी अभिव्यक्ति हमारे जीवन के समूचे ढाँचे में विधेयात्मक परिवर्तन करने वाली होगी। यही एक वह उपाय हैं जिससे व्यक्तिगत व सामाजिक स्तर पर मनोरोगों से छुटकारा पाकर उसका अभिनव गठन कर सौन्दर्यवान बना व सृष्टि को सुन्दर बनाया जा सकता है।

गीता ही हमारी पथ प्रदर्शक है!

भारत के कई प्रान्तों में आतंकवाद एवं साम्प्रदायिक दंगों और उनसे होने वाली जान माल की अथाह क्षति का बाजार गर्म है। जिधर देखते हैं उधर ही मानवता के स्थान पर दानवता का ताण्डव नृत्य नजर आता है। हिन्दुओं के मन्दिर और मकान जलाये जा रहे हैं। करोड़ों की सम्पत्ति लूटी जा रही है। बच्चों, बूढ़ों और स्त्रियों तक का निर्दयता से बध किया जा रहा है। ये भयंकर उपद्रव जिनके सम्बन्ध में पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। आज प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहे हैं। हम अपने ही सम्मुख अपनी असंख्य मां-बहिनों, बच्चों तथा बहू-बेटियों को इस अकाल मृत्यु का ग्रास बनते हुये प्रतिदिन देख रहे हैं। किन्तु असमर्थता के कारण पीछे भागने के सिवाय हमारे पास दूसरा चारा ही नहीं।

जिस जाति के पूर्वजों ने पग पग पर संसार को वीरता की अलौकिक झन्कार सुनाई थी और अन्याय व अत्याचार का अन्त करके विश्व में सुख शान्ति का साम्राज्य स्थापित करने का दिव्य संदेश दिया था, आज उन्हीं के वंशज हम उनके उपदेश के विपरीत चलें तो यह जानकर किसे दु:ख न होगा?

शताब्दियों से परतन्त्रता की बेड़ियों मे जकड़ें हुये भारतीय समाज ने शारीरिक गुलामी के साथ साथ बौद्धिक परतन्त्रता को भी इस कदर अपना लिया कि उसने अपने साहित्य का ज्ञान तो दूर रहा- उसका परिचय प्राप्त करना भी व्यर्थ समझा और वैदेशिक साहित्य का केवल मात्र अध्ययन और उसका अन्धानुकारण ही जीवन का उच्च ध्येय समझ लिया। इस अन्धानुकरण और उपेक्षा भाव ने ही वास्तव में हिन्दू जाति का यह पतन कर डाला है। क्या ही अच्छा होता यदि प्रत्येक व्यक्ति केवल मात्र गीता का ही अध्ययन कर उसके पद चिन्हों पर चलता। रण से विमुख और कायरता की रट लगाने वाले अर्जुन जैसे क्षत्रिय को जिसने मधुर सन्देश द्वारा युद्ध के लिये उत्तेजित कर दिया और भयंकर संग्राम द्वारा असंख्य शत्रुओं का संहार करते हुये निर्बल पाण्डवों के गले में वैजयन्ती पहना दी। क्या आज भी उस गीता के प्रतिशब्द में वह धधकती हुई आग नहीं है ?

आज भी वह संसार में दानवता का दमन करते हुये मातृभूमि को - जो अपने ही कुपुत्रों की काली करतूतों से बुरी तरह खण्डित हो रही है। अखण्ड तथा सुखमय नहीं बना सकती है। किन्तु हिन्दुस्तान के वीर जाति का दुर्भाग्य है। उसने स्वदेशाभिमान और वीरता में विश्वास के स्थान पर केवल मात्र अपने ही भाइयों का खून चूस कर पूंजी इकट्ठी करना सीख लिया हैं। ये भावनायें ही उनमें कायरता भर रही है। गीता में ऐसे मनुष्यों को खूब फटकार दी है और उन्हें अनार्य तथा दुर्बल हृदय कहा गया है। इसी विषय पर अर्जुन को सम्बोधित करते हुये श्री कृष्ण ने कहा था-

कुतस्त्वा करमलमिदं विषमे समुपस्थितम्,
अनार्य जुष्टमस्वर्ग्यकीर्तिकरमर्जुन !

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्लैव्यं मा म गग: पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते,
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ट परन्तप !

हे अर्जुन ! इस संकट के अवसर पर तुम्हारे में इस प्रकार का अज्ञान युक्त मोह कैसे पैदा हो गया है कि-"मैं अपने सम्बन्धियों को रण में नहीं मारूँगा", यह भावना तो अनार्यों के हृदय में पैदा होती है। इससे अपयश और नरक ही प्राप्त होता है। इसलिये घबराओ मत ! तुम्हारे जैसे वीर पुरुष के लिये यह बात शोभा नहीं देती। हृदय दुर्बलता तथा क्षुद्रता को छोड़कर उठो और शत्रुओं से जाकर लड़ो, यदि तुम इस क्षात्र धर्म का पालन न करोगे तो -"तत: स्वधर्मं कीर्तिञ्च हत्वा पापमवाप्स्यसि" अर्थात् अपने धर्म और यश को त्याग कर पातकी कहलाओगे। उस दशा में संसार में तुम्हारा जीवित रहना उचित नहीं होगा, क्योंकि-'सम्भा-वितस्य चाकितिर्मरणादतिरिच्यते', ससांर में प्रतिष्ठित व्यक्ति की निन्दा मृत्यु से भी भयंकर है।

गीता के इन जीवन भरे उपदेशों ने ही एक बार अज्ञानान्धकार में पड़ी हुई हिन्दू जाति को जगाकर कर्त्तव्य' मार्ग की ओर अग्रसर किया था और भारत में पुन: हिन्दुत्व की जड़ पक्की की थी।

शत्रु से प्रतिक्रिया लेना हमारा शास्त्रोक्त धर्म है और शास्त्र ने यहां तक कह दिया है कि-'शत्रु को अपनी कन्या देकर भी मार देने में कोई दोष नहीं है। जो आदमी अपनी मातृभूमि को विधर्मियों द्वारा पद दलित देखकर भी कान में तेल डाल कर सोया रहता है। वह परम कृतघ्न है, पितर भी उसके हाथ की अञ्जलि ग्रहण नहीं करते-"पितरोऽपि न गृह्णन्ति तद्दत्तां सलिलाञ्जलिम्" हिन्दुओं के वेदों और शास्त्रों ने केवल वीरता के गीत ही नहीं गाये अपितु उनके पूज्य देवताओं ने स्वयं शस्त्र ग्रहण करते हुये इन शिक्षाओं को कार्य रूप में परिणत करके दिखला दिया है- शिवजी ने त्रिशूल, दुर्गा ने धनुष, तलवार, भाला आदि गणेश ने शंकु और हनुमान ने गदा ग्रहण की है। भीष्म ने तो यहां तक कह दिया था:-

अग्रत श्चतरो वेदा: पृष्टतो धनुरुद्यत: ।
इदं ब्राह्म इदं क्षात्रं शापेन च शरेण च।।

अर्थात् ब्राह्मण होने के नाते मेरे आगे चार वेद रखे हैं और मेरे पीछे युद्ध के लिये तैयार धनुष पड़ा है मेरे पास ब्राह्म और छात्र दोनों तेज हैं। जिससे काम पड़ेगा उसी का उपयोग करूँगा। खेद ! अपने पूर्वजों के इन आदर्शों को भूल कर आज हिन्दू जाति दूसरी ही ओर जा रही है। जिस जाति के नौनिहालों ने केवल एक स्त्री का अपमान न सहकर महाभारत जैसा भयंकर संग्राम करा डाला और उस अपमान का पूरा बदला लिया, उन्हीं की सन्तान आज की हिन्दू जाति है। जिसके सामने प्रतिदिन हजारों अवलाओं की अस्मतें लूटी जा रही हैं। उनकी हत्याएँ की जा रही हैं। उनके नन्हें शिशुओं को अग्नि की लपटों में धकेला जा रहा है और उनके परिवार वालों को कमरों में बन्द करके आग लगाकर भस्म किया जा रहा है। परन्तु फिर भी इनके खून में हरकत पैदा नहीं होती।

हिन्दुओं के सर्वश्रेष्ठ नेता श्रीकृष्ण को कौन नहीं जानता, जिनके श्री मुख से गीता के अमर उपदेश निकले हैं। उन जैसा वीर और दृढ़ प्रतिज्ञ मनुष्य आज तक कोई नहीं हुआ। जिस समय द्रोपदी ने उन्हें दूत के रूप में आते हुये देखा तो उसने कहा- "भैया ! तुम उनसे सन्धि करने तो जा रहे हो किन्तु मेरे बालों को न भूल जाना, इन्हीं बालों को खींच कर उन्होंने एक अवला का अपमान किया था।" तब श्री कृष्ण ने उत्तर दिया-"हे द्रोपदी ! चाहे हिमालय पर्वत चलने लग पड़े। पृथ्वी सौ टुकड़े हो जाये। और आकाश नक्षत्रों के सहित गिर पड़े, किन्तु मेरा वचन असत्य नहीं हो सकता, मैं उन आततायियों से बदला लेकर रहूँगा।"

श्रीकृष्ण ने जैसा कहा वैसा ही करके दिखला दिया और दुनिया के सामने एक ज्वलन्त आदर्श रख दिया कि-"आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारता" अर्थात् सामने आते हुये शत्रु को बिना सोचे समझे मार गिराना चाहिये। नीति शास्त्र भी कहता है कि-"सदसि वाक् पटुता युधि विक्रमा:" अर्थात् असली मनुष्य वही है जो सभा में वाक् चातुरी और रण में कौशल दिखलाये। सदियों के अपने इन उज्ज्वल आदर्शों को भूलकर हिन्दू जनता कमजोर तथा आत्म विस्मृत हो चुकी है। और आत्म गौरव तो इसमें लेश मात्र भी नहीं दिखाई पड़ता। केवल 'ब्लैक मार्केट' के जरिये पैसा कमाना और उसे ऐशो आराम में खर्च करना ही इसने अपना मुख्य ध्येय समझ लिया है। अपना देश अपनी सभ्यता और अपना साहित्य इसने बिल्कुल तुच्छ समझ लिया है।

मुसीबतों में पड़े हुये अपने लाखों भाइयों की दु:ख गाथाएँ सुनने की इसे आवश्यकता नहीं। जिस देश के अन्न जल और मिट्टी से जीवन प्राप्त कर यह देव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संस्कृति के अनुयायी फले और फूले है; उसी को विधर्मियों द्वारा पद दलित कराने में इसने कोई कसर शेष नहीं रखी। निरन्तर सुख निंद्रा में सोये रहने के कारण इसमें से देश भक्त और धीरता के भाव ही जाते रहे हैं। और देश की चिन्ता के स्थान पर इसे अपनी पूंजी की ही चिन्ता लग पड़ी है। विपत्ति काल में अपनी अन्याय से कमाई हुई पूंजी के साथ कायरों की तरह लुक छिप जाना ही इसने अपना आदर्श समझ लिया है। इस बुजदिली को सर्वप्रथम जन्म देने वाले हैं हमारे ये बड़े बड़े तोंद धारी पूंजीपति- जिन्होंने हर मुसीबत के समय देश के साथ गद्दारी की, धोखेवाज़ी की और गीता के पवित्र सिद्धान्त को ठुकरा कर समय से अनुचित लाभ उठाया और देश को हर सम्भव उपाय से चूस चूस कर अस्थि शेष कर डाला है।

एक ओर तो हजारों निरपराध व्यक्तियों, स्त्रियों, बूढ़ों और बच्चों की हत्याएँ की जा रही हैं। हिन्दुओं के मन्दिर, बांजार, धर्मशालाएँ तथा मकान जलाये जा रहे हैं। और अबलाओं के सतीत्व पर आक्रमण हो रहे हैं। तो दूसरी ओर हमारे ही भाई इन सब घटनाओं से अनजान बन कर "ब्लैक मार्केट" के चक्कर चला रहे हैं। और "पैसा गुरुणां गुरु" वाली कहावत चरितार्थ कर रहे हैं। मैं नहीं जानता कि ऐसे पापियों का बोझ उठाने के लिये हमारी मातृभूमि को कितने कष्ट का सामना करना पड़ रहा होगा। जब देश पर विधर्मियों के आक्रमण हो रहे हैं तब स्वयं बोरिया विस्तर बाँध कर दुबक जाना मनुष्यता नहीं-पशुता है और कायरता है। पिछले जमाने में जब कुछ डरपोक क्षत्रिय युद्ध से भाग कर अपने घरों में आते तो वीर क्षत्राणियां उन्हें सौ-सौ लानतें देतीं-"तुम क्षत्रिय कुल के कलंक हो, तुमने अपने कुल पर धब्बा लगाया है। उन वीर क्षत्राणियों को अपने पतियों और पुत्रों का इतना मोह नहीं था जितना कि युद्ध में क्षत्रित्व की शान रखने का।

आज कल देश में जितने दंगे और फसाद हो रहे हैं उनमें व्यक्तियों की स्वार्थान्धता, दुर्बलता और पलायन वृत्ति ही मुख्य कारण है। हमारे विरोधियों में यह विश्वास फैल गया है कि हिन्दू कायर और बुजदिल हैं, इसलिये वे उन पर आक्रमण करने का साहस कर देते हैं। हिन्दू बजाय भागने के - यदि संगठित होकर एक बार भी उनके दाँत खट्टे कर दें तो फिर उनमें फसाद करने की हिम्मत नहीं हो सकती। अत: हिन्दुओं की भलाई इसी में है कि वे एक बार गीता का अमर उपदेश सुनकर वीरता से उग्रपादियों गुण्डों का सामना करें।

हिन्दू-समाज को जागृत करने के लिये गीता एक अमूल्य साधन है। इसके एक-एक शब्द में वह उत्तेजना वह नवस्फूर्ति और वह अन्तरज्वाला भरी हुई है जो मुर्दे में भी जागृति पैदा करती है। श्री कृष्ण जैसे महान क्रान्तिकारी नेता के मुख से निकले हुये ये शब्द सुनने मात्र से ही शरीर के अणु-अणु में आग की लपटें पैदा कर देते हैं। आज की विषम परिस्थिति में यदि हमारी रक्षा हो सकती है तो इसी अनुपम ग्रन्थ के तूफानी उपदेशों को कार्यरूप में परिणत करने से।

गीता में भाग्य

न जाने क्यों और किस प्रकार यह घातक विश्वास जन साधारण के मस्तिष्कों में घर कर गया है कि मनुष्य का भविष्य भाग्य के आधीन है। ईश्वर ने जैसा कुछ भाग्य में लिख दिया है वही भोगना पड़ेगा। हमारे करने से कुछ नहीं हो सकता है। यह विचार मूर्ख और आलसी ही रख सकते हैं। अपनी त्रुटियों की जिम्मेदारी ईश्वर पर थोप कर लोग कुछ देर के लिए आत्म वंचना करलें इसके अतिरिक्त और कोई लाभ किसी को नहीं मिल सकता।

ईश्वर ने मनुष्य को बुद्धि देकर कर्म क्षेत्र में भेजा है कि वह इच्छानुसार काम करे और तदनुसार फल भोगे। ईश्वर किसी को बुरे कर्म करने की प्रेरणा नहीं करता। वह तो इन कर्म अकर्मों से बहुत दूर रहता है। गीता में भगवान कहते है:-

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभु:।
न कर्म फल संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ।।

।। गीता अ० ५ श्लोक १४।।

कर्तापन कर्म और कर्म फल को ईश्वर नहीं बनाता इनमें तो जीव स्वभाव से ही प्रवृत्त होता है।

अनादित्वान्निर्गुण त्वात्परमात्माय मव्यय: ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते।।

।। अ० १३ श्लोक ३१।।

हे अर्जुन ! ईश्वर अनादि है, निर्गुण है, और अपरिवर्तनशील है। वह शरीर में है तो भी कुछ नहीं करता और अच्छी या बुरी बात से उसका कोई सम्बन्ध नहीं।

न मां कर्माणि लिप्यन्ति न मे कर्म फले स्पृहा।
इति मां योऽभि जानाति कर्मभिर्नस बद्धयते ।।

।। अ० ४ श्लोक १४।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मुझे (ईश्वर को) कर्म फल की इच्छा नहीं है। इससे कर्म मुझको बन्धन में नहीं डालता और जो मनुष्य मुझको ऐसा समझता है कि ईश्वर न कुछ करता है और न कराता है। निरंजन, निष्काम, अकर्ता, अभोक्ता, अव्यय, निर्गुण, कूटस्थ, अचिन्त्य और अविकारी है, वह मनुष्य भी कर्म के बन्धन में नहीं पड़ता।

त्रिभिर्गुण मयै र्भावैरेभि: सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभि जानाति मामेभ्य परमव्ययम् ।।

।। अ० ७ श्लोक १३ ।।

सत्व गुण रजोगुण और तमोगुण इन तीन गुण वाले स्वभाव पर सारा जगत मोहित है। इसमें वह नहीं जानता कि मैं (ईश्वर) इन तीनों गुणों से अलग हूँ। श्रेष्ठ हूँ और विकार रहित हूँ।

मूढोऽयं नाभि जानाति लोकोमामजमव्ययम् ।

।। अ० ७ श्लोक २५ ।।

यह मूढ़ लोग नहीं जानते कि मैं अजन्मा और विकार रहित हूँ।

नादत्ते कस्य चित्पापं न चैव सुकृतं विभु: ।
अज्ञाने नावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तव: ।।

।। अ० ५ श्लोक १५ ।।

सर्वव्यापक ईश्वर किसी के पाप पुण्यों से सम्बन्ध नहीं रखता। अज्ञान से ज्ञान ढका होने के कारण ही जीव मोह में पड़ जाते हैं।

गीताकार ने स्पष्ट कर दिया है कि जो जैसा करता है वैसा पाता है इसमें ईश्वर भाग्य या और किसी का दोष नहीं हैं।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरत: संसिद्धि लभते नर: ।
स्वकर्म निरत: सिद्धिं यथ विन्दन्ति तच्छुणु ।।

।। अ० १८ श्लोक ४५ ।।

अपने अपने कर्म में लगे हुये मनुष्य अच्छी से अच्छी और बड़ी से बड़ी सिद्धि पाते हैं।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मै ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन: ।।

।। अ० ६ श्लोक ५ ।।

आत्मा ही आत्मा का मित्र है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है इसलिये आत्मा का उद्धार करना चाहिये, नाश नहीं।

बन्धुरात्मात्मन स्तस्य येनात्मैवात्मनोजित: ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ।।

।। अ० ६ श्लोक ६ ।।

जिसने आत्मा को अपनी आत्मा से जीता है उसकी आत्मा अपनी आत्मा का मित्र है और जो अनात्मा है अर्थात् आत्म ज्ञान से रहित है उसी की आत्मा उसके साथ शत्रु सा व्यवहार करती है।

गीता के अन्त में सारा ज्ञान सुनाने के बाद भी भगवान ने किसी प्रकार का हुक्म नहीं दिया वरन् उसकी स्वतंत्रता का सम्मान करते हुये यही कहा है-जो मेरी इच्छा हो सो कर।

इति ते ज्ञान माख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया ।
विमृश्यै यै तद्शेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ।।

।। अ० १८ श्लोक १३ ।।

मैंने तुझसे गुप्त से गुप्त ज्ञान कहा, इसको शुरू से अन्त तक विचार करके जैसी तेरी इच्छा हो वैसा कर।

हमें यह जानना चाहिये कि ईश्वर किसी के भाग्य में कुछ किसी के में कुछ लिख कर पक्षपात नहीं करता और न भविष्य को पहले से ही तैयार करके किसी को कर्म करने की स्वतंत्रता में बाधा डालता है। हर आदमी अपनी इच्छानुसार कर्म करने में पूर्ण स्वतंत्र हैं। कर्मों के अनुसार ही हम सब फल प्राप्त करते हैं। इसलिये भाग्य के ऊपर अवलंबित न रह कर मनुष्य को कर्म करना चाहिये।

गीता में मानवता के लक्षण

दु:खेष्वनुद्विग्नमना: सुखेषु विगतस्पृह: ।
बीत राग भय क्रोध: स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।।

जो दु:खों की प्राप्ति में उद्वेग रहित है मन जिसका और सुखों की प्राप्ति में दूर हो गई स्पृहा जिसकी तथा नष्ट हो गये है राग, भय और क्रोध जिसके ऐसा मुनि स्थिर बुद्धि कहा जाता है।

य: सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।

जो पुरुष सर्वत्र स्नेह रहित हुआ, उस शुभ तथा अशुभ वस्तुओं को प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है उसकी बुद्धि स्थिर है।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽगंनीव सर्वश: ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यरतस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।

जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है वैसे ही यह पुरुष जब सब ओर से अपनी इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषयों से समेट लेता है तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।।

उस निर्बलता के होने पर इसके सम्पूर्ण दुःखों का अभाव हो जाता है। और उस प्रसन्न चित्त वाले पुरुष की बुद्धि शीघ्र ही अच्छी प्रकार स्थिर हो जाता है।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहकारः सम दुःख सुखः क्षमी।।

इस प्रकार शान्ति को प्राप्त हुआ जो पुरुष सब भूतों में द्वेषभाव से रहित एवं स्वार्थ रहित सबका प्रेमी और हेतु रहित दयालु है तथा ममता से रहित एवं अहंकार से रहित सुख दुःखों की प्राप्ति में सम और क्षमावान है अर्थात् अपराध करने वाले को भी अभय देने वाला है।

संतुष्टः सततं योगी: यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।

जो ध्यान योग में युक्त हुआ, निरन्तर लाभ हानि में सन्तुष्ट है तथा मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुये मेरे में दृढ़ निश्चय वाला है वह मेरे में अर्पण किये हुये मन बुद्धि वाला मेरा भक्त मेरे को प्रिय है।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ।।

जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है, तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादिकों से रहित है वह भक्त मेरे को प्रिय है।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्ययः ।
स्वरिम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।

जो पुरुष आकांक्षा से रहित तथा बाहर भीतर से शुद्ध और चतुर है अर्थात् जिस काम के लिए आया था उसको पूरा कर चुका है एवं पक्षपात से रहित और दुःखों से छूटा हुआ है। वह सर्व आरम्भों का त्यागी अर्थात् मन वाणी और शरीर द्वारा प्रारब्ध से होने वाले सम्पूर्ण स्वाभाविक कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्यागी, मेरा भक्त मेरे को प्रिय है।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ।।

जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोच करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ कर्मों के फल का त्यागी हैं वह भक्तियुक्त पुरुष मेरे को प्रिय है।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानपमा न योः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविभजितः ।।

जो पुरुष शत्रु मित्र में और मान आपमान में सम है तथा सर्दी गर्मी और सुख दुःखादि द्वन्दों में सम है। और सब संसार में आशक्ति से रहित है।

तुल्यनिन्दास्तुतिमौनी संतुष्टो येन के पचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ।।

तथा जो निन्दा स्तुति को समान समझने वाला और मननशील है अर्थात् ईश्वर के स्वरूप का निरन्तर मनन करने वाला है एवं जिस प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा ही संतुष्ट है और रहने के स्थान में ममता रहित है, वह स्थिर बुद्धि वाला, भक्तिमान पुरुष मेरे को प्रिय है।

गीता का विश्वदर्शन

गीता की गणना यों हिन्दू धर्म के धर्मशास्त्रों में होती है। पर वस्तुतः वह विश्व धर्म, मानव धर्म, सार्वभौम धर्म का सबसे छोटा एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें तत्वज्ञान आचारशास्त्र नीति औचित्य विवेक और सभी महत्वपूर्ण विषयों का समावेश हो जाता है।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिये कि उन ग्रन्थों को मात्र पूजापाठ की वस्तु मान लिया जाता है। उनके उल्लेखों को वाचन या श्रवण ही पुण्यफल दाता मानकर सन्तोष कर लिया जाता है। यह आरम्भिक जानकारी या विषय वस्तु समझने के लिये किसी ग्रन्थ का पढ़ना समझना तो आवश्यक है पर इतने भर से ही यह नहीं मान लेना चाहिये कि अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति हो गई। यदि ऐसा ही होता तो महत्वपूर्ण ग्रंथों के मुद्रक, प्रकाशक, विक्रेता उन विषयों के अनुभवी पारंगत भी हो जाते और उनका वही लाभ उठाते जो उन प्रसंगों को जीवन में उतारने वाले उठाते हैं।

विश्व के देशों के मानचित्र एवं भूगोल बाजार में बिकते हैं उन्हें पढ़ने देखने से एक अनुभव तो होता है पर वह लाभ नहीं मिलता है जो उन क्षेत्रों का परिभ्रमण करने अथवा सम्पर्क साधने से मिलता है।

हिन्दू धर्म मे गीता रामायण भागवत आदि के कथा प्रसंग कहने सुनने के आयोजन आये दिन होते रहते हैं। पर उनके पीछे प्रायः मान्यता यही रहती है कि इस वाचन कथन पठन श्रवण भर से वह पुण्य मिल जाये। जो इनकी बताई गई रीति नीति जीवन में उतारने पर मिल सकना सम्भव है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गीता के प्रतिपादन वस्तुतः ऐसे हैं। जिससे उसे सार्वभौम तत्वज्ञान का विश्व धर्म का श्रेय मिला है।

लोकमान्य तिलक, गांधी जी, सातवलेकर, गीतानन्द, चिन्मयानन्द, शंकर, रामानुज, विनोबा, ज्ञानेश्वर तथा अनेक संस्कृत आचार्यों ने गीता के अर्थ तथा विवेचन अपनी अपनी दृष्टि से किये हैं और भी अनेक विश्व विद्वानों ने इस पर लेखनी उठायी है। और जो जितना गहरा उतरा है उसे उतना ही प्रकाश हाथ में लगा है।

सर एडविन आर्नाल्ड ने गीता का अंग्रेजी में पद्यानुवाद किया था। उन्होनें अनेकों पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान इस दार्शनिक सम्पदा की ओर खींचा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के वरिष्ठ अधिकारी चार्ल्स बिलकिन्स इस ग्रन्थ पर मुग्ध थे। भारत के गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने बड़ी बारीकी से इसे समझने का प्रयत्न किया और कम्पनी के आर्थिक अनुदान से इसका प्रकाशन इंग्लैण्ड में सन् १७८४ में कराया।

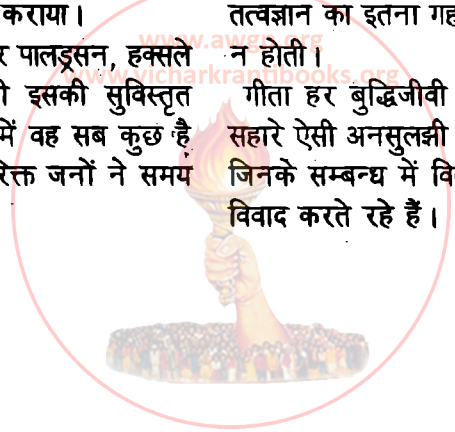
इसके अतिरिक्त प्रो० मैक्समूलर पालड्रसन, हक्सले क्रामस्टोफर, ईगरबुड आदि ने भी इसकी सुविस्तृत विवेचनाएँ की और कहा कि गीता में वह सब कुछ है जो विभिन्न धर्मों के विश्व के अतिरिक्त जनों ने समय समय पर किसी भी रूप में कहा है।

राजगोपालाचार्य और सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने पूर्वार्त्त और पाश्चात्य नीति दर्शन का इसे संगम समन्वय कहा है। स्वामी चिन्मयानन्द ने भी इस ग्रन्थ के कई सामान्य समझने जाने वाले प्रसंगों पर तीखा प्रकाश डाला है।

गीता यों महाभारत के १८ अध्याओं का पृथक से छपा एक संकलन मात्र है पर उसमें जीवन दर्शन से सम्बन्धित इतने अधिक विषयों का क्रमबद्ध रूप से गुन्थन किया गया है कि चिन्तन का कोई महत्वपूर्ण विषय उसमें छूटने नहीं पाया।

गीता माहात्म्य में उसे सभी उपनिषदों का सार कहा गया है। जिसे कृष्ण ने दुहा और अर्जुन रूपी बछड़े ने पिया है। पर वस्तुतः यह न कोई इतिहास है और न किसी सामयिक समस्या का सामाधान जैसा कि उसके प्रथम अध्याय की भूमिका को पढ़ने समझने से प्रतीत होता है। यदि ऐसा होता तो उसमें उपनिषद तत्वज्ञान का इतना गहरा समावेश करने की आवश्यकता न होती।

गीता हर बुद्धिजीवी के लिये पढ़ने योग्य है। उसके सहारे ऐसी अनसुलझी समस्याओं का समाधान मिलता है जिनके सम्बन्ध में विद्वजन असमंजस में ही बने और विवाद करते रहे हैं।



Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्री मद्भागवत कथा

(श्री कृष्ण कथा)

भगवान की कथा को भव-भेषज, सांसारिक कष्ट पीड़ाओं और पतन से मुक्ति दिलाने वाली औषधि कहा जाता है। यह कोई अत्युक्ति नहीं है। अवतारी पुरुष जहाँ अपने पुरुषार्थ से असुरता का उन्मूलन करके धर्म की स्थापना करते हैं वहाँ अपने जीवन के उदाहरण में जन-जन को आदर्शनिष्ठ बनाने की प्रेरणा का संचार भी करते हैं। उनके जन्म के उद्देश्यों में इस प्रेरणा संचार को भी गिना जाता है।

यदि प्रेरणा संचार केवल प्रत्यक्ष दर्शन तक ही सीमित रहे तो अवतारी पुरुषों के जीवन काल में भी उनके निकट रहने वाले थोड़े से व्यक्ति ही उसे पा सकते हैं। कथा गाथाओं द्वारा ही उनके जीवन की घटनाओं से प्रकाश ग्रहण किया जाता है। न केवल उसके जीवनकाल में बल्कि उसके बाद अनन्त समय तक यह प्रेरणा संचार का कार्य कथाओं के माध्यम से चलता रहता है। हर स्तर के, हर परिस्थिति के व्यक्ति उनका लाभ उठाते रहते हैं।

किन्तु आज की स्थिति देखने से यह लगता है कि यह औषधि अपना प्रभाव खो चुकी है। जन जीवन में जम कर बैठी विडम्बनायें मानों हिलने का नाम ही नहीं लेना चाहती। तो क्या सचमुच भगवान की कथायें प्रभाव हीन हैं ?

निर्णय लेने के लिए थोड़ा विवेक लगाना पड़ेगा। औषधि कब और कैसे प्रभाव करती है यह देखना चाहिए। औषधालय में औषधियाँ रहती हैं यह ठीक है। किन्तु किस रोगी के लिए कौन सी औषधि उपयुक्त है, यह निर्णय चिकित्सक को करना पड़ता है। साथ ही औषधि का सेवन रोगी को विधिपूर्वक करना पड़ता है। यदि औषधि का निर्धारण न किया जाय, कोई भी औषधि उठाकर खा ली जाय, या निर्धारित औषधि का भी सेवन ठीक से न किया जाय , तो प्रभाव न होने का दोष औषधि को नहीं उसके प्रयोगकर्त्ताओं को दिया ही जाना चाहिये

श्री मद् भागवत का अपने देश में बहुत प्रचलन भी है तथा उसके प्रति जन जीवन में सहज श्रद्धा भी व्याप्त है। श्री मद्भागवत कथा तथा उसके महत्वपूर्ण अंशों पर स्वतंत्र प्रवचन का क्रम जगह-जगह विद्वानों द्वारा चलाया जाता है। किन्तु उनके पीछे परम्परागत पुण्यार्जन की दृष्टि ही प्रधान रूप से रहती है। पुण्य के प्रति जन जीवन में उत्साह रहे यह तो ठीक है किन्तु कथावाचक अथवा प्रवचन कर्ता को अपने कर्तव्य की इति श्री इतने मात्र में ही नहीं समझ लेनी चाहिए। हर व्यास पीठ पर बैठने वाले का परम कर्तव्य हो जाता है कि प्रभु चरित्र को जनता के सामने इस ढंग से प्रस्तुत करे कि श्रोताओं के जीवन की समस्याओं, कुंठाओं, विडम्बनाओं का समाधान उससे सहज ही मिल जाय। जो कथावाचक अथवा प्रवचन कर्ता अपने इस उत्तरदायित्व के प्रति सजग तथा ईमानदार हैं। वही सच्चे अर्थों में व्यास पीठ पर बैठने का सम्मान पाने योग्य है।

व्यास पीठ के इस महान गौरव और वर्चस्व के प्रति जिनके मन में आदर है तथा जो उसकी प्रतिष्ठा बनाये रखना चाहते हैं अथवा लोक मंगल के लिए अपनी वाणी का प्रयोग करने के लिए जिनके मन में थोड़ा बहुत उत्साह है, उनके सहयोग के लिए ही यह पुस्तक तैयार की गयी है। इसके आधार पर थोड़े से अभ्यास से ही औसत बुद्धि तथा शिक्षा वाले व्यक्ति भी भारत की भावुक जनता को कथा के माध्यम से महत्वपूर्ण शिक्षा दे सकते हैं।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम और पूर्ण पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण की कथाओं के प्रति अपनी देश की जनता में बड़ी श्रद्धा है। उस श्रद्धा का सदुपयोग करके जन- जन के जीवन में ऐसे दिव्य मोड़ लाये जा सकते हैं। जिनके फलित होने पर देशवासी पुनः भूसुर तथा यह पुण्य भूमि स्वर्गादपि गरीयसी कहला सकें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्री कृष्ण कथा

प्रथम अध्याय

व०- जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञ: स्वराट् तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरय: । तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा, धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्य परं धीमहि।।१।।

❋ *जिसके द्वारा जन्मादि (सृजन, स्थिति तथा प्रलय) का चक्र चलता है, जो श्रेष्ठता का पोषक तथा निकृष्टता का निवारक है, चेतन है, जिससे ब्रह्म और हिरण्यगर्भ भी शक्ति पाते है, तथा जो आदि ज्ञान दाता है, जिसके सम्बन्ध में विद्वान भी मोहित हो जाते हैं, जैसे प्रकाश (तेज) के प्रभाव से जल में थल तथा थल में जल का आभास होता है। तैसे ही जिसके प्रभाव से यह त्रिगुणात्मक मिथ्या जगत भी सत्य जैसा लगता है, उस स्वयं प्रकाशित, माया आदि से सदा मुक्त, परं सत्य रूप परमात्मा को हम बुद्धि में धारण करते ।।१।।*

❋ (१) ईश्वर को आदि कारण तथा दिव्य चेतना के रूप में ही स्मरण किया जाना चाहिए। (२) हर वस्तु में उस मूल चेतन- सत्ता का अंश होने से जो आकर्षण दिखाई देता है उसे लोग स्थूल पदार्थों की महिमा भ्रमित होते हैं। इस भ्रम से बचना तथा हर आकर्षक वस्तु के पीछे उस मूल सत्ता की झलक देखना आवश्यक है। (३) वह स्वयं प्रकाशित है इसी लिए माया अर्थात् अज्ञान जनित कुचक्र से सदा मुक्त हैं। हमें भी अपने अन्दर प्रकाश उत्पन्न करना चाहिए। (४) परमात्मा केवल चर्चा का विषय नहीं, उसे बुद्धि में धारण करना, बुद्धि को उसके नियन्त्रण में छोड़ देना चाहिए। गायत्री मन्त्र में भी धीमहि शब्द इसी उद्देश्य से आया है।

✿ कथा के पूर्व इस प्रकार की बन्दना उद्देश्य पूर्वक की गयी है। श्रीकृष्ण कथा को श्रीमदभागवद् कथा भी कहा जाता है। महर्षि व्यास ने महाभारत जैसा ज्ञान विज्ञान की दृष्टि से सांगोपांग ग्रन्थ रचने के बाद यह अनुभव किया यह काफी नहीं। ज्ञान विज्ञान तो रावण, कंस आदि राक्षसों के पास भी था, किन्तु उनमें आदर्श परायणता का अभाव होने से वह लाभ की जगह हानिकारक सिद्ध हुआ। ईश्वर श्रेष्ठ आदर्शों एवं सिद्धान्तों का निर्माता, पोषक और प्रतीक है। अत: आदर्श परायण एवं ईश्वर परायण होना प्रकारान्तर से एक ही बात है। इसलिए श्रीव्यासदेव ने भागवत् की रचना की, ताकि लोग कथा के द्वारा ईश्वर के आदर्श रूप को समझें और उसको अपना कर जीवन लाभ प्राप्त कर सकें। इसी भाव को स्पष्ट करते हुए लिखा गया है-

धर्म: प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणा सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।।२।।

❋ *महामुनि व्यासदेव के द्वारा निर्मित इस श्रीमद्भागवत- महापुराण में मोक्षपर्यन्त फल की कामना से रहित, परम धर्म का निरूपण हुआ है। इसमे शुद्धान्त:करण युक्त सत्पुरुष के जानने योग्य, उस वास्तविक वस्तु- परमात्मा का निरूपण हुआ है, जो तीनों तापों का जड़ से नाश करने वाली और परम कल्याण देने वाली है।।२।।*

❋ (१) धर्म, तरह-तरह की कामनाओं की पूर्ति के लिए किये जाने वाले कर्मकाण्ड का नाम नहीं, वह मानवीय आदर्शों के अनुरूप आचरण पद्धति है। (२) परमात्मा के सही स्वरूप को परमार्थी सत्पुरुष ही जानना चाहते हैं। स्वार्थी धूर्त तो उसे भूलना चाहते हैं अथवा उसे भ्रान्त रूप देने का प्रयास करते हैं।, क्योंकि परमात्मा स्वार्थ नहीं परमार्थ का समर्थक है। (३) परमात्मा त्रितापों- अर्थात् दैहिक, दैविक तथा भौतिक कष्टों की जड़ काटता है। वह श्रेष्ठ प्रकृति के रूप में अन्त:करण में प्रस्फुटित होकर कष्टों के निवारण की क्षमता मनुष्य में पैदा करता है। बाहरी व्यक्ति की तरह सहायता करने वह नहीं आता। यही पद्धति कल्याणकारी भी है।

✿ भगवान की कथा को तीनों प्रकार के अधिभौतिक, अधिदेविक, एवं आध्यात्मिक तापों की काटने वाली कहा है इसका स्पष्ट अर्थ होता है कि इतना प्रभाव मृत्यु के बाद ही नहीं इसी जीवन में भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिखाई देने लगता है। मनुष्य के जीवन की दिशा बदल जाती है। साँसारिक सफलताओं से लेकर पारलौकिक उपलब्धियों तक उसकी गति बनी रहती है। अस्तु यह मान्यता बनाना एक बड़ा भ्रम है कि इस जीवन में कथा कोई परिवर्तन नहीं ला सकती, उससे तो मृत्यु के बाद ही स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है। स्वयं भगवान ने, ब्रह्मा जी को संबोधित करते हुए इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा:-।

श्रोतव्यं मम शास्त्रं हि यशोधर्मजयार्थिना ।
पापक्षयार्थ लोकेश मोक्षार्थ धर्मबुद्धिना ।। ३।।

✻ *लोकेश ! यश, धर्म और विजय के लिए* धर्मात्मा मनुष्य को मेरेभागवत: शास्त्र का श्रवण करना चाहिए ।।३।।

✻ यश मिलता है श्रेष्ठ आचरण के द्वारा तथा विजय मिलती है पुरुषार्थ साहस तथा सूझ बूझ से। धर्म मनुष्योचित कर्तव्यों को पहचानने तथा करने से सधता है। इन लौकिक सफलताओं का मार्ग दर्शन प्रभु कथा से ग्रहण करना चाहिए। पाप और पुण्य का सही स्वरूप भगवद्कथा से समझा जा सकता है तथा उसके अनुसार जीवन क्रम बनाने से पापों का क्षय तथा पुण्यों की वृद्धि संभव है। मनुष्य लोभ मोह, वासना तृष्णा इत्यादि बधनों को छोड़ने में- तोड़ने में सफल हो जाता है, अत: मुक्ति का अधिकारी हो जाता है।

✿ भगवान के कहे अनुसार कथा सुनने वालों को यह सब लाभ मिलने चाहिए, किन्तु ऐसा होता दिखाई नहीं पढ़ता। उसका कारण है कि कथा कहने सुनने वाले दोनों ही अपने आदर्श को भूल गये हैं। कथा को प्रभावशाली बनाने के लिये पहली शर्त है कथा कहने वाले की पात्रता। कथा कहने वाला विद्वान भले न हो किन्तु उसके अन्दर यह भावना बड़ी प्रखर होनी चाहिए कि जन जीवन को भगवान के आदर्शों के अनुरूप मोड़ना ढालना मेरा प्रधान उद्देश्य है। कथा को पेट भरने का साधन जिनने बना रखा है। उनसे प्रभावशाली कथा नहीं हो सकती।

एक बार भक्ति ने नारद जी से पूछा "हे ऋषिवर! भगवान की कथा के प्रभाव से लोगों के अन्दर ज्ञान एवं वैराग्य के भाव जागने- पुष्ट होने चाहिए, वह क्यों नहीं होते? नारदजी ने उत्तर दिया:-

विप्रैर्भागवती वार्ता गेहे गेहे जने जने ।
कारिता कृपणलोभेन कथासारस्ततो गत: ।। ४ ।।

✻ *ब्राह्मण लोग केवल अन्न- धनादि के लोभवश, घर-घर एवं जन-जन को भागवत कथा सुनाने लगे हैं, इसलिए कथा का प्रभाव चला गया।*

✻ (१) ब्राह्मण का कर्तव्य है कि वह घर-घर जाकर कथा कहे किन्तु लोभवश नहीं, कर्तव्य से प्रेरित होकर लोक मंगल की दृष्टि से ऐसा करे (२) कथा का प्रभाव शब्दों को दुहराने मात्र से नहीं उसके लिए वक्ता तथा श्रोता को श्रेष्ठ मनोभूमि बनानी पड़ती है।

✿ भगवद् कथा कहने और सुनने वाले की पात्रता कैसी हो इसका बड़ा सुन्दर चित्रण परीक्षित की कथा में किया गया है।

परीक्षित राजा थे, कर्तव्य परायण थे। किन्तु अहंकार वश ऋषि का अपमान कर बैठे इसीलिए उन्हें सात दिन के अन्दर सर्पदंश से मृत्यु का शाप लगा। राजा ने शेष जीवन का सर्वश्रेष्ठ उपयोग करने की ठानी। जीवन की दिशा कैसी हो यह समझने के लिए राजा ने भगवान कृष्ण का चरित्र सुनाने के लिए शुकदेवजी से अनुरोध किया। यह स्थिति है कथा के श्रोता की । जीवन के शेष समय का अच्छा से अच्छा उपयोग करने लेने की तड़प जिसके अन्दर है, भगवान के आदर्शों को समझकर, उसी दिशा में अपने जीवन को, अपनी शेष क्षमताओं को लगा देने की सच्ची लगन जिसके अन्दर जाग गई है वही कथा का सही लाभ उठा सकता है। श्रोता को परीक्षित अर्थात् इस कसौटी पर खरा सिद्ध होना चाहिए, यह है श्रोता के लिए मर्यादा जो परीक्षित के उदाहरण से समझायी गई है।

इसी प्रकार कथा वाचक की पात्रता- उसकी मनोभूमि का चित्रण शुकदेवजी के माध्यम से किया गया शुकदेवजी आत्म परिष्कार की साधना तथा ज्ञान प्रसार के कर्तव्य में बराबर लगे रहते थे। सच्ची लगन देखकर उन्होंने परीक्षित को कथा सुनाने के लिए समय निकाला। देवताओं ने सोचा कि लोभ देकर शुकदेव जी को इस बात के लिए राजी करलें कि वे परीक्षित की जगह हमें कथा सुनायें। शुकदेव निस्प्रह ब्राह्मण थे, अत: धन का आकर्षण उसका विचलित न कर सकेगा, देवता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह समझते थे। इसी लिए वे अमृत लेकर पहुँचे तथा उसके बदले में कथा का सौदा करना चाहा।

शुकदेवजी ने देवताओं की बात सुनी, उनमें जिज्ञासा के स्थान पर स्वार्थ वृत्ति देखकर उन्हें कथा के श्रोता की कसौटी पर खरा नहीं पाया। उन्होंने उनका सम्मान न करके उपहास कर दिया:-

क्वसुधा क्वकथा लोके क्व काच: क्व मणिर्महान्।
ब्रह्मरातो विचार्यैवं तदा देवाञ्जहास ह ।। ५ ।।

❋ *संसार में कहाँ कांच और कहाँ महामूल्य मणि तथा कहाँ सुधा और कहाँ कथा? श्री शुकदेवजी ने (यह सोचकर) उस समय देवताओं की हँसी उड़ा दी।*

❋ (१) कथा का सही लाभ उठाया जा सके तो वह अमृत की अपेक्षा उतनी ही अधिक श्रेष्ठ है जितनी कांच के मुकाबले में श्रेष्ठ मणि। (२) वक्ता को लोभ से मुक्त तथा कर्तव्य से प्रेरित होकर ही कथा कहनी चाहिए। (३) जो व्यक्ति अपनी सम्पन्नता का लोभ दिखाकर दूसरे का अधिकार छीनना चाहे वे चाहे जितने बड़े क्यों न समझे जाते हों, वस्तुत: सम्मान के नहीं उपहास के पात्र हैं।

❁ इस तरह देवताओं का उपहास कर शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को भगवान कृष्ण की कथा सुनाई। पहिले उन्होंने भगवान कृष्ण के पूर्वज यदुवंशियों का वर्णन किया फिर भगवान के अवतार लेने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा:-

यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मन:।
तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरि:।। ६।।

❋ *हे परीक्षित जब-जब संसार में धर्म का ह्रास हुआ और पाप की वृद्धि होती है, तब तब सर्वशक्तिमान भगवान श्रीहरि अवतार ग्रहण करते हैं ।। ६।।*

❋ (१) संसार में सन्तुलन बनाये रखना भगवान का कार्य है। (२) धर्म के ह्रास और अधर्म की वृद्धि से सृष्टि का सन्तुलन बिगड़ता है। (३) धर्म की वृद्धि और अधर्म का नाश करने हेतु भगवान अवतार लेते हैं।

❁ संसार में धर्म और अधर्म दोनों ही रहते हैं। कुछ व्यक्ति जो अधर्म ग्रस्त हो जाते हैं उनके कारण संसार में दु:ख और कष्ट बढ़ते हैं। ऐसे ही व्यक्तियों को कभी राक्षस, कभी दैत्य तथा कभी नर पिशाचों के रूप में याद किया जाता है। भगवान कृष्ण के जन्म से पूर्व असुरता राजाओं में प्रवेश कर गयी थी। उन्होंने भयंकर उत्पात मचा रखा था। तथा वे संगठित होकर देवत्व को समाप्त कर देने पर तुले हुए थे। इन विकट परिस्थितियों में जन्म लेकर भगवान कृष्ण ने अपने पुरुषार्थ द्वारा असुरता को समाप्त कर देवत्व की स्थापना की।

अक्षौहिणीनां पतिभिरसुरैर्नृपलाञ्छनै: ।
भुव आक्रम्यमाणाया अभाराय कृतोद्यम:।। ७।।
कर्माण्यपरिमेयाणि मनसापि सुरेश्वरै: ।
सहसंकर्षणश्चक्रे भगवान मधुसूदन: ।। ८।।

❋ *जब असुरों ने राजाओं का वेष धारण कर लिया और कई अक्षौहिणी सेना इकट्ठी करके वे सारी पृथ्वी को रौंदने लगे, तब पृथ्वी का भार उतारने के लिए भगवान् मधुसूदन बलराम जी के साथ अवतीर्ण हुए। उन्होंने ऐसे अद्भुत कार्य किये जिनके सम्बन्ध में बड़े-बड़े देवता मन से अनुमान भी नहीं कर सकते शरीर से करने की बात तो अलग रही । । ७-८।।*

❋ (१) असुरता आकृति नहीं प्रकृति पर आधारित है। (२) निरपराध लोगों को सताना असुरता की पहिचान है। (३) असुरता की वृद्धि से सामूहिक चेतना में व्याकुलता बढ़ जाती है। (४) भगवान का अवतार पराक्रमी एवं पुरुषार्थी व्यक्तित्व के रूप में होता है। तथा वे मानवीय प्रयत्नों एवं संगठित जन शक्ति द्वारा असंभव लगने वाले कार्यों को भी संभव बना देते हैं।

❁ शुकदेव जी बोले इस तरह भगवान अवतार लेकर अपने अनुकरणीय चरित्रों द्वारा लोगों को प्रेरणा देते हैं। तथा उनके द्वारा स्थापित आदर्शों के अनुसार चलने वाले व्यक्ति हर समय उन्हीं जैसी सफलता पाते हैं। शुकदेवजी से इस प्रकार संक्षेप में भगवान का चरित्र सुनकर परीक्षित की जिज्ञासा और बढ़ी उनके साथ विशाल जन समुदाय भी कथा सुन रहा था। अत: सबकी हित कामना से प्रेरित होकर परीक्षित ने शुकदेव जी से विस्तार पूर्वक कृष्ण चरित्र सुनाने का आग्रह करते हुए कहा:-

अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान् भूतभावन: ।
कृतवान् यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात्।।९।।

❋ *भगवान श्रीकृष्ण समस्त प्राणियों के जीवनदाता एवं सर्वात्मा हैं। उन्होंने अवतार लेकर जो-जो कार्य किये आप विस्तार पूर्वक उनका वर्णन कीजिए। ।। ९ ।।*

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❋ (१) सिर्फ अपनी संतुष्टि का ध्यान न रखकर सबको संतुष्ट करने का प्रयास करना चाहिए। (२) ज्ञानी वक्ता पाकर अपनी जिज्ञासा द्वारा तत्व को जानने का प्रयास करना चाहिए।

वरीयानेष ते प्रश्नः कृतो लोकहितं नृप ।
आत्मवित्सम्मतः पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः ।।१०।।

❋ *श्री शुकदेवजी ने कहा- परीक्षित! तुम्हारा लोकहित के लिए किया हुआ यह प्रश्न बहुत ही उत्तम है। मनुष्यों के लिए जितनी भी बातें सुनने या स्मरण करने योग्य है उन सबमें यह श्रेष्ठ है। आत्मज्ञानी महापुरुष ऐसे प्रश्न का बड़ा आदर करते हैं ।। १०।।*

❋ (१) अधिकारी श्रोता को पाकर श्रेष्ठ वक्ता प्रसन्न होते हैं। (२) समाज को ऊँचा उठाने की भावना से किये गये कार्यो की प्रशंसा होती है। (३) किसी चरित्र के बार-बार स्मरण करने और सुनने से अपने अन्दर वैसे ही भाव उठने लगते हैं, इसीलिए भगवान के आदर्श चरित्र को श्रवण एवं स्मरण के लिए श्रेष्ठ कहा गया है।

✿ उस समय राक्षस लोग मनुष्यों के रूप में अवतार लेकर अत्याचारी राजाओं के रूप में पृथ्वी भर में अपना प्रभुत्व स्थापित किये हुए थे। कंस, जरासंध, शिशुपाल, दंतवक्र, भौमासुर, दुर्योधन आदि अनेकों राजा जो अपने आप को क्षत्री कहते पृथ्वी का शोषण करने में लगे हुए थे। इन लोगों के अत्याचारों के कारण मानवता कराह रही थी। इनका संगठन बहुत मजबूत तथा ये लोग मनमाने अत्याचार करते थे। धार्मिक गतिविधियां समाप्त प्राय हो गई थीं। सन्मार्ग पर चलने वाले व्यक्तियों को अकारण दंडित किया जाता था। इस अनाचार से पृथ्वी अकुला उठी।

भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः ।
आक्रान्ता भूरिभारेण ब्राह्मणं शरणं ययौ ।। ११।।

❋ *परीक्षित ! उस समय लाखों दैत्यों के दल ने घमण्डी राजाओं का रूप धारणा कर अपने भारी भार से पृथ्वी को आक्रान्त कर रखा था। उससे त्राण पाने के लिए वह ब्रह्मा जी की शरण में गयी ।। ११।।*

❋ (१) शक्ति पाकर जो औरों को सताये वह दैत्य है। (२) असुर विध्वंस करते हैं। उनसे बचने के लिए ब्रह्मा अर्थात् निर्माण करने वाले की शरण में ही जाना पड़ता है(३) विपत्ति के समय बुद्धिमान से मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिए।

✿ पृथ्वी ने ब्रह्मा जी को अपनी कष्ट कथा सुनाई ब्रह्मा जी ने सहानुभूति पूर्वक उसकी दुख गाथा सुनी। फिर वे पृथ्वी, अन्य देवताओं और भगवान शंकर को साथ लेकर, क्षीरसागर के किनारे पर गये। वहाँ पहुँचकर सामूहिक रूप से पुरुष सूक्त द्वारा भगवान की प्रार्थना की। प्रार्थना करते करते ब्रह्मा समाधिस्थ हो गये। समाधि की अवस्था में उन्होंने आकाश वाणी सुनी तथा प्रार्थना समाप्त होने के बाद उन्होंने देवताओं को सम्बोधित करते हुए कहा :-

पुरैव पुंसावधृतो धराज्वरो भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् ।
स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद्भुवि ।। १२।।

❋ *भगवान को पृथ्वी के कष्ट का पहले से ही पता है। वे ईश्वरों के भी ईश्वर हैं। अतः अपनी कालशक्ति के द्वारा पृथ्वी का भार हरण करते हुए वे जब तक पृथ्वी पर लीला करें तब तक तुम लोग भी अपने-अपने अंशों के साथ पृथ्वी में जन्म लेकर उनके कार्यों में सहयोग दो ।। १२।।*

❋ (१) भगवान दिव्य चेतना के रूप में हैं तथा उन्हें बिना बताये ही सब कुछ मालूम रहता है (२) शुद्ध और निश्छल हृदय से तन्मयता की अवस्था में ही ईश्वरीय वाणी सुनी जा सकती है। (३) भगवान से प्रार्थना करने वालों को उनके कार्यों में सहयोग देना भी आवश्यक है ।(४) भगवान से पहिले उनके भक्तों का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। भगवान को बुलाने से पहिले उनके अनुरूप वातावरण बनाना चाहिए।

✿ देवताओं को आदेश और पृथ्वी को आश्वासन देकर ब्रह्माजी अपने लोक को चले गये। उनके आदेशनुसार देवताओं ने शीघ्र ही पृथ्वी पर जन्म धारण किया तथा इस तरह भगवान के अवतार की पूर्व भूमिका बनी।

प्रजापति कश्यप और उनकी पत्नी अदिति ने श्रेष्ठ संतान पाने के लिए तपस्या की थी। उनकी दीर्घ कालीन तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान ने उनके यहाँ पुत्र रूप में जन्म लेने का वरदान दिया था। वही कश्यप वसुदेव के रूप में तथा उनकी पत्नी अदिति देवकी के रूप में मथुरा में निवास कर रहे थे।

कंस के पिता उग्रसेन के छोटे भाई का नाम देवक था, देवकी उन्हीं की पुत्री थी । देवकी का विवाह वसुदेव के साथ हुआ। विदा के समय कंस स्नेह वश

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनी चचेरी बहिन का रथ स्वयं हाँक रहा था। मार्ग में उसे आकाशवाणी द्वारा मालूम हुआ कि देवकी के आठवें पुत्र द्वारा ही उसका वध होगा तब उसने देवकी को जान से मार डालने के लिए तलवार खींच ली। उस समय कंस को इस अनुचित कार्य से रोकते हुए वसुदेव जी ने कहा -

मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते ।
अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ।। १३।।

❋ *वीरवर ! जो जन्म लेते हैं उनके शरीर के साथ ही मृत्यु भी उत्पन्न होती है। आज हो या सौ वर्ष बाद -जो प्राणी है, उसकी मृत्यु निश्चित है ।। १३।।*

❋ (१) जीवन निश्चित अवधि के लिए मिला हुआ है, और मृत्यु निश्चित है। (२) मृत्यु को अनिवार्य समझकर शीघ्रता पूर्वक जीवन लक्ष्य पाने का प्रयत्न करना चाहिए।

✪ वसुदेव जी ने समझाया, हे कंस मृत्यु तो देवकी की भी निश्चित है। आप क्यों व्यर्थ इसको मारने का कलंक लेते हैं। फिर यह आपकी पुत्री जैसी है। अभी इसने संसार का कोई सुख नहीं देखा। अतः इसे कुछ दिन और जीने का मौका दीजिए। आप जैसे वीर को स्त्री और वह भी बहन की हत्या जैसा गलत कार्य शोभा नहीं देता इस तरह वसुदेव ने अनेक प्रकार कंस को समझाने का प्रयत्न किया पर कंस नही माना। तब उन्होंने सोचा

मृत्युर्बुद्धिमतापोत्यो यावद्बुद्धिलोदयम् ।
यद्यसौ न निवर्तेत नापराधोऽस्ति देहिनः ।। १४।।

❋ *बुद्धिमान पुरुषों को, जहाँ तक उसकी बुद्धि और बल साथ दे मृत्यु को टालने का प्रबन्ध करना चाहिए। प्रयत्न करने पर भी वह न टल सके तो फिर प्रयत्न करने वाले का दोष नहीं रहता अतः प्रयत्न करना चाहिए ।। १४।।*

❋ (१) किसी भी परिस्थिति में से मार्ग निकालने का प्रयास करना चाहिए। (२) भाग्य के नाम पर जो अपने प्रयास,पुरुषार्थ को छोड़ बैठते हैं, वे दोष के,पाप के भागी होते हैं।

✪ ऐसा सोचकर वसुदेव ने कंस से कहा आपको देवकी के पुत्र से ही खतरा है अतः मैं इसके पुत्र होते ही आपको सौंप दूंगा। कंस जानता था कि वसुदेव सत्यवादी हैं अतः उसने देवकी को छोड़ दिया।

जब देवकी के प्रथम पुत्र हुआ तो वसुदेव उसे लेकर कंस के पास पहुँचे किन्तु उसने यह कहकर कि आपके आठवें पुत्र से ही मुझे खतरा है, उस पुत्र को वापिस कर दिया।

किन्तु जब उसे पता चला कि देवता मुझे मारने की योजना बना रहे हैं। तब उसने वसुदेव देवकी को जेल में बंद कर दिया तथा उनके सभी पुत्रों को मारता गया । कंस ने सभी यदुवंशियों को सताना प्रारम्भ कर दिया। उसके पिता उग्रसेन ने उसकी अनीति का विरोध किया तो उसने उन्हें भी कैद कर दिया और स्वतः राज्य संचालन करने लगा। अन्य दुष्टों ने उसका साथ दिया। जरासंध आदि अनेक अत्याचारी राजाओं का सहयोग पाकर, कंस ने मनमाने अत्याचार करने प्रारम्भ कर दिये। उसी समय अपने पूर्व आश्वासन के अनुसार भगवान देवकी के गर्भ में आये।

सा देवकी सर्वजगन्निवास
निवासभूता नितरां न रेजे।
भोजेन्द्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा सरस्वती-
ज्ञानखले यथा सती ।।१५।।

❋ *जो प्रभु सारे संसार के आधार हैं देवकी उनका भी निवास स्थान बन गयी। परन्तु घड़े आदि के भीतर बंद किये हुए दीप का और अपनी विद्या दूसरे को न देने वाले ज्ञानखल की श्रेष्ठ विद्या का प्रकाश जैसे चारों ओर नही फैलता, वैसे ही कंस के कारागार में बंद देवकी की भी उतनी शोभा नहीं हुई ।। १५।।*

❋ (१) सारा विश्व भगवान का रूप है। (२) ईश्वर की शक्ति बीजरूप में हर जगह रहती है किन्तु उसका प्रभाव तथा विकास क्रिया शीलता के सहारे ही संभव होता है। (३) ज्ञान का दान दूसरों को न देने वाले ज्ञानी खल कहलाते हैं।

✪ गर्भ का काल पूरा होने पर जेल के अन्दर ही भाद्रपद कृष्ण पक्ष की अष्टमी की घोर अँधेरी रात्रि में भगवान का जन्म हुआ। वसुदेव जी ने देखा एक अद्भुत बालक पैदा हुआ है खुशी के कारण उन्होंने तत्काल गोदान का संकल्प किया तथा मन में निश्चय किया कि साक्षात् भगवान ही मेरे यहाँ पधारे हैं। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा -

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विदितोऽसि भवान् साक्षात् पुरुषः प्रकृते परः।
केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् ।।१६।।

❋ *वसुदेव जी ने कहा - मैं समझ गया कि आप प्रकृति से अतीत साक्षात पुरुषोत्तम हैं। आपका स्वरूप है केवल अनुभव और केवल आनन्द। आप समस्त बुद्धियों के एक मात्र दृष्टा हैं।।१६।।*

❋ (१) भगवान अनुभव से ही समझ में आते हैं। (२) भगवान दिव्य चेतना के रूप में अवतरित होते हैं तथा आनन्द के रूप में उनका अनुभव होता है (३) भगवान आत्मा रूप में बुद्धि दृष्टा और प्रेरक हैं।

✿ भगवान उनके सामने दिव्य रूप में प्रकट हुए, तब वसुदेव जी ने भगवान की स्तुति की। उनके बाद देवकी ने भी अपने हृदय की वेदना भगवान के सामने प्रस्तुत की भगवान ने उन दोनों को धैर्य बँधाते हुये वसुदेव जी से कहा-

अधुना कश्यपाशस्त्वं वसुदेव पिता मम।
देवकी देवमातेयमदितेरंशसम्भवा ।।१७।।

❋ *आप कश्यप जी हैं और तपस्या के प्रभाव से इस समय मेरे पिता वसुदेव हुए हैं। ये उत्तम तपस्या वाली देवमाता अदिति ही इस समय अपने अंश से मेरी माता देवकी के रूप में प्रकट हुई हैं।।१७।।*

❋ (१) श्रेष्ठ सन्तति पाने के लिए तपस्या के रूप में पूर्व तैयारी आवश्यक है। (२) लक्ष्य प्राप्ति हेतु कई जन्म भी लग सकते हैं। (३) आदर्श निष्ठ और अनुभवी माता पिता भी. कृष्ण जैसा पुत्र पा सकते हैं।

✿ फिर भगवान ने देवकी को संबोधित करते हुए कहा-

तदा वां परितुष्टोऽहममुना वपुषानघे।
तपसा श्रद्धया नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः।।१८।।

❋ *पुण्यमयी देवी ! उस समय मैं तुम दोनों पर प्रसन्न हुआ क्योंकि तुम दोनों ने तपस्या, श्रद्धा और प्रेममयी भक्ति से अपने हृदय में नित्य निरंतर मेरी भावना की थी। ।।१८।।*

❋ (१) भगवान को प्रसन्न करने के लिए तपस्या, श्रद्धा और प्रेम आवश्यक है। (२) हृदय में सदैव शुद्ध भावना रखकर ही भगवान का अनुभव किया जा सकता है।

✿ इस तरह दोनों को समझाकर भगवान शिशु रूप हो गये। अब वसुदेव ने अपने कर्तव्य पर ध्यान दिया। इस दिव्य बालक को कंस के हाथों से बचाने के लिए उसे सूतिका गृह से बाहर ले जाने का विचार किया। परिस्थितियाँ बाधक थीं, किन्तु वसुदेव जी के अन्दर ईश्वरीय प्रेरणा कार्य कर रही थी। अतः उन्होंने आत्म विश्वास पूर्वक अपना कार्य प्रारम्भ किया। वे जेल की विकट परिस्थितियों से मार्ग निकालने में सफल हुए। उन्होंने कृष्ण को उठा लिया और चल पड़े -

तया हृतप्रत्यतसर्ववृत्तिषु,
द्वाःस्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ।
द्वारस्तु सर्वाः पिहिता दुरत्यया,
बृहत्कपाटायसकीलश्रृखलैः ।।१९।।
माः कृष्णवाहे वसुदेव आगते।
स्वयं व्यवर्यन्त यथा तमो रवेः ।।२०।।

❋ *उस समय द्वारपाल और पुरवासियों की समस्त इन्द्रियों वृत्तियों की चेतना हर ली गई। वे सब के सब अचेत होकर सो गये। बंदीगृह के सभी दरवाजे बंद थे। उनमें बड़े-बड़े किवाड़ लोहे की जंजीर और ताले जड़े हुए थे। उनके बाहर जाना बड़ा कठिन था। परन्तु वसुदेव जी भगवान् श्रीकृष्ण को गोद में लेकर ज्यों ही उनके निकट-निकट पहुँचे ज्यों ही वे सब दरवाजे आप से आप खुल गये। ठीक वैसे ही जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकार दूर हो जाता है।। १९-२०।।*

❋ (१) आत्म विश्वासपूर्वक भगवान को साथ लेकर कार्य करने से विपरीत परिस्थितियों में भी मार्ग निकाला जा सकता है। (२) जब व्यक्ति की अन्तश्चेतना बंधन मुक्त होने के लिए संघर्षरत होती है तब उसके बंधन अवश्य टूट जाते हैं।

✿ वसुदेव जेल से निकलकर गोकुल जाने के लिये यमुना किनारे पहुँचे। घोर अन्धकार था वर्षा हो रही थी बीच-बीच में बिजली कौंध जाती थी। यमुना में भयंकर बाढ़ आई हुई थी।वसुदेव जी ने साहस पूर्वक यमुना पार की।

मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा
गम्भीरतोयौघजवोर्मिफेनिला।
भयानकावर्तशताकुला नदी मार्ग-
ददौ सिन्धुरिव श्रियःपते :।।२१।।

❋ *उन दिनों बार-बार वर्षा होती रहती थी इससे यमुना जी बहुत बढ़ गयी थी। उनका प्रवाह गहरा और तेज हो गया था। तरल तरंगों के कारण जल पर फेन ही फेन हो रहा था। सैकड़ों भयानक भँवर पड़ रहे थे। जैसे सीता पति भगवान् श्री राम जी को समुद्र ने*

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मार्ग दे दिया था। वैसे ही यमुना जी ने वसुदेव को निकलने का मार्ग दे दिया ।।२१।।

❋ (१) राम दल द्वारा अपनी शक्ति भर पुरुषार्थ करने पर ही समुद्र पार जाने के लिए मार्ग बना था।, वसुदेव ने भी यथा शक्ति पुरुषार्थ किया और भगवान की कृपा से सफलता पायी (२) ईश्वर विश्वासी और पुरुषार्थी व्यक्तियों का मार्ग कोई नहीं रोक सकता।

✪ कृष्ण को लेकर वसुदेव गोकुल पहुँचे वहाँ नंद बाबा के घर में सब सो रहे थे। उन्होंने यशोदा की शैय्या पर अपने पुत्र को सुला दिया तथा उनकी नव जात कन्या को लेकर बन्दी गृह में वापिस आकर देवकी के पास सुला दिया। कन्या के रोने की आवाज सुनकर पहरेदारों की नींद खुली उन्होंने कंस को सूचना दी। कंस भागता हुआ आया तथा देवकी की गोद से कन्या को छीन कर चट्टान पर पटक दिया। वह कन्या उसके हाथ से छूटकर आकाश में चली गई और कहा अरे मूर्ख तुझे मारने वाला तो कहीं और पैदा हो चुका है तू निर्दोष बालकों की हत्या न कर।

यह बात सुनकर कंस आश्चर्य में हुआ उसने देवकी और वसुदेव से क्षमा मांगी और उन्हें कारागार से मुक्त कर दिया। इसके बाद कंस ने अपने मंत्रियों को बुलाकर उनसे देवी का कथन सुनाकर राय माँगी। मंत्री भी कंस जैसे ही दुष्ट थे उन्होंने कहा देवता हमें मारने का प्रयास कर रहे हैं अत: हमें भी देवताओं को समाप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। हम लोग देव शक्तियों का पोषण करने वाली सभी सद्प्रवृतियों को समाप्त कर देंगे।

विप्रा गावश्च वेदाश्च तप: सत्यं दम: शम:।
श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनू: ।। २२।।

❋ *ब्राह्मण गौ वेद, तपस्या, सत्य, इन्द्रियदमन, मनोनिग्रह, श्रद्धा, तितिक्षा और यज्ञ विष्णु के शरीर है ।। २२।।*

❋ (१) ईश्वर दिव्य चेतना है अत: सद्गुणों और सत्प्रवृतियों के रूप में ही उसे देखा जा सकता है। (२)इन सत् प्रवृतियों का पोषण करना ही भगवान की पूजा है (३) इन सद्गुणों को समाप्त करने वाले राक्षस हैं।

✪ इस तरह सबने मिलकर निर्णय करके कंस को आश्वासन दिया कि हम लोग जा रहे हैं। तथा हमें जहाँ कहीं भी अच्छे कार्य होते मिलेंगे हम उन्हें नष्ट कर देंगे। कंस को मारने वाला कहाँ पैदा हुआ है यह पता न होने से उन राक्षसों ने सभी नव जात शिशुओं की हत्या कर देने की योजना बनायी।

एवं दुर्मेन्त्रिभि: कंस: सह सम्मन्त्र्य दुर्मति: ।
ब्रह्महिंसां हितं मेने कालपाशावृतोऽसुर: ।। २३।।

❋ *श्री शुकदेव जी कहते हैं -परीक्षित ! एक तो कंस की बुद्धि स्वयं बिगड़ी हुई थी। फिर उसे मन्त्री ऐसे मिले थे। जो उससे बढ़कर दुष्ट थे। इस प्रकार उनसे सलाह करके काल के फंदे में फँसे हुए असुर कंस ने यही समझा कि श्रेष्ठ प्रवृत्तियों को ही समाप्त कर दिया जाय ।। २३।।*

❋ इस संसार में सज्जन को सज्जन तथा दुष्ट को दुष्ट सलाहकार मिल जाते हैं। (२)यदि हमारा विवेक जागृत नहीं है तो दूसरों की सलाह हमें भटका भी सकती है।

✪ राक्षसों की वह सभा समाप्त हुई कंस अपने महल में चला गया तथा उन राक्षसों ने तरह-तरह के उत्पात करने प्रारम्भ कर दिये।

ते वै रज: प्रकृतयस्तमसा मूढचेतस: ।
सतां विद्वेषमाचेरुरारादागतमृत्यव: ।। २४।।

❋ *असुरों की प्रकृति रजोगुणी थी। तमोगुण के कारण उनका चित्त उचित और अनुचित के विवेक से रहित हो गया था। उनके सिर मौत नाच रही थी यही कारण है कि उन्होंने संतों से द्वेष किया।। २४।।*

❋ (१) राक्षस आकृति से नहीं दुष्ट प्रकृति से बनते हैं (२) सज्जनों से द्वेष करना पतन का कारण है। (३) विवेक रहित व्यक्ति न अपना हित कर सकते हैं न दूसरों का।

✪ इधर नन्द बाबा ने पुत्र की प्रसन्नता में उत्सव का आयोजन किया। जात कर्म संस्कार कराकर गोदान किया। फिर वार्षिक कर देने के लिए मथुरा गये। वहाँ उनकी वसुदेव जी से मुलाकात हुई वसुदेव ने बधाई दी तथा शीघ्र गोकुल लौटने को कहा।

पूतना नाम की एक राक्षसी थी जो कंस की आज्ञानुसार शिशुओं की हत्या करती फिर रही थी। वह सुन्दर स्त्री का वेश बना गोकुल में आई। उसने नन्द के घर जाकर प्यार करने के बहाने कृष्ण को उठा लिया उसके सौम्य रूप को देखकर यशोदा आदि नारियां उससे मना ना कर सकीं। वह दुष्ट छल से कृष्ण को मारने की बात सोचने लगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं
चराचरात्माऽऽसनिमीलितेक्षण:।
अनन्तमारोपयदङ्कमन्तकं यथोरगं
सुप्तमबुद्धिरज्जुधी:।। २५।।

❋ *भगवान श्री कृष्ण चर अचर सभी प्राणियों के आत्मा हैं। इसी लिए उन्होंने उसी क्षण जान लिया कि यह बच्चों को मार डालने वाला पूतना ग्रह है और अपने नेत्र बंद कर लिये जैसे कोई पुरुष भ्रमवश सोये हुए सर्प को रस्सी समझ कर उठा ले वैसे ही अपने कालरूप भगवान श्री कृष्ण को पूतना ने अपनी गोद में उठा लिया ।। २५।।*

❋ (१) भगवान को धोखा नहीं दिया जा सकता। (२) बनाकर दूसरों की छला जा सकता है किन्तु अपनी अन्तरात्मा नहीं। (३) भगवान सज्जनों के लिये दीनबन्धु तथा दुष्टों के काल रूप हैं।

✿ पूतना ने कृष्ण को गोद में लेकर दूध पिलाना प्रारम्भ किया वह अपने स्तनों में जहर लगाये हुए थी किन्तु कृष्ण दूध के साथ उसका प्राण ही निकालने लगे। यद्यपि वह राक्षसी बहुत छटपटायी किन्तु कृष्ण ने उसे नहीं छोड़ा इसी तरह पूतना का प्राणान्त हो गया।

कृष्ण को मारने के लिए राक्षसों के नये प्रयास होने लगे। कंस का भेजा हुआ तृणावर्त दैत्य बवंडर के रूप में आया तथा उन्हें ले उड़ा किन्तु कृष्ण ने उसका भी काम तमाम कर दिया।

गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचन: ।
अव्यक्तरावो न्यपतत् सहबालो व्यसुर्व्रजे ।। २६।।

❋ *भगवान ने इतनी जोर से उसका गला पकड़ रखा था कि वह असुर निश्चेष्ट हो गया। उसकी आँखें बाहर निकल आयीं। बोलती बंन्द हो गयी। प्राण पखेरू उड़ गये और बालक श्रीकृष्ण के साथ वह* ब्रज में गिर पड़ा।। २६।।

❋ (१) विपत्तियाँ भिन्न-भिन्न रूपों में आती हैं। (२) तेज से तेज व्यक्ति हर संकट में उबर आते हैं। (३) तेजस्वी को छोटा नहीं समझना चाहिए।

✿ कृष्ण और बलराम गोकुल में तरह-तरह की लीलायें करते बड़े होने लगे। गर्गाचार्य जी यदुवंशियों के कुल पुरोहित थे। वसुदेव ने अपने दो पुत्रों का नामकरण संस्कार कराने की प्रार्थना की । उन्होंने कहा मै यदुवंशियों का पुरोहित हूँ यदि कंस को पता चल गया तो वह इन्हें देवकी के पुत्र समझेगा। नन्द ने आश्वासन दिया कि किसी को कानों - कान भी मालूम नहीं होगी । तब उन्होंने गोशाला में एकान्त में दोनों बालकों के संस्कार की व्यवस्था करदी ।

एवं सम्प्रार्थितो विप्र: स्वचिकीर्षितमेव तत्।
चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयो ।। २७।।

❋ *श्री शुकदेव जी कहते हैं -गंगाचार्य तो संस्कार करना चाहते थे। जब नन्दबाबा ने उनसे इस प्रकार प्रार्थना की, तब उन्होंने एकान्त में छिपकर गुप्त रूप से दोनों बालकों का नामकरण संस्कार कर दिया।। २७।।*

❋ (१) संस्कार आवश्यक है। (२) समयानुसार संस्कार के विधि-विधान में परिवर्तन किया जाना उचित है।

कृष्ण कुछ बड़े हुए तथा गोप बालकों के साथ खेलने लगे। एक दिन कृष्ण के साथ खेलने वाले बच्चों ने आकर माँ यशोदा से शिकायत करदी कि कन्हैया ने मिट्टी खाई है। माँ ने सोचा इस तरह कृष्ण की आदत बिगड़ जायेगी। उन्होंने यह आदत छुड़ाने के लिए कृष्ण को भय दिखाया।

सा गृहीत्वा करे कृष्णमुपालभ्य हितैषिणी ।
यशोदा भयसम्भ्रान्तप्रेक्षणाक्षमभाषत ।। २८।।

❋ *हितैषिणी यशोदा ने श्री कृष्ण का हाथ पकड़ लिया। उस समय कृष्ण की आँखें डर के मारे नाच रही थीं। यशोदा माँ ने डाँटते हुए कहा ।। २९।।*

❋ (१) बच्चों को भरपूर प्यार दिया जाय किन्तु उनकी गल्तियाँ तथा बुरी आदतें छुड़ाने के लिए भी प्रयत्न किये जायें। (१) शिशु निर्माण माँ का विशेष उत्तरदायित्व होता है।

यशोदा ने डाँटकर पूछा क्यों नटखट तू बहुत ढीठ हो गया है तू ने अकेले छिपकर मिट्टी क्यों खाई ? तेरे साथ खेलेने वाले सभी बालकों तथा बलराम सभी तेरी शिकायत कर रहे हैं। कृष्ण बाल सुलभ चंचलता दिखाकर अपनी सफाई देने लगे। वे माँ को अपने दिव्य रूप का दर्शन कराना चाहते थे। इसलिए बोले "माँ मैने मिट्टी नहीं खाई। यदि आपको विश्वास न हो तो मेरा मुँह देखलो।" कृष्ण के ऐसा कहने पर माता यशोदा ने उनका मुँह देखा आश्चर्य - चकित रह गयी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सातंत्र दद्दशे विश्वं जगत् स्थास्नु च खं दिशः।
साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम् ।। २९।।

❋ *यशोदा ने देखा कि उनके मुँह में चर अचर सम्पूर्ण जगत विद्यमान है। आकाश (वह शून्य जिसमें किसी की गति नहीं) दिशायें, पहाड, द्वीप और समुद्रों के सहित सारी पृथ्वी बहने वाली वायु, विद्युत, अग्नि और तारों के साथ सम्पूर्ण ज्योतिमंडल सहित सम्पूर्ण विश्व को यशोदा ने कृष्ण के मुख के अन्दर देखा ।। २९।।*

❋ (१) यह सारा जगत ईश्वरमय है। विश्व के रूप में ही परमात्मा का दर्शन किया जा सकता है (२) भगवान की कृपा से विवेक दृष्टि उपलब्ध होने पर ही परमात्मा का अनुभव किया जा सकता है।

✿ माता यशोदा को भगवान के दिव्य दर्शन हो गये। वे ध्यानस्थ स्थिति में रह गईं और मन ही मन उनकी स्तुति करने लगीं। भगवान ने अपनी माया समेट ली और फिर माता पुत्र जैसे स्वाभाविक व्यवहार में चलने लगे।

एक समय कृष्ण को खिलाने के लिए यशोदा दही मथ कर माखन निकाल रही थीं । कृष्ण उनके पास आये तथा दूध पिलाने का हठ करने लगे माँ उन्हें दूध पिलाने लगी इतने में अंगीठी पर रखे हुए दूध में उफान आ गया। माँ कृष्ण को वहीं छोड़कर दूध उतारने के लिए दौड़ गयी। कृष्ण घर में घुसकर माखन खाने लगे। माँ ने देखा कृष्ण ऊखल पर चढ़े हुए माखन खा रहे हैं तथा बन्दरों को भी खिला रहे है। माँ हाथ में छड़ी लिये हुए दौड़ी, कृष्ण भागे। माँ ने उन्हें पकड़ लिया तथा ऊखल से बाँध दिया ताकि डरकर कृष्ण इस तरह की हरकतें करना छोड़ दें। माँ अन्य गृह कार्यों में लग गयी कृष्ण उस ऊखल को घसीटते हुए घर के बाहर पहुँच गये तथा ऊखल फंसाकर दो वृक्षों को तोड़ डाला। कुवेर के पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव नारद के श्राप के कारण वृक्ष हो गये थे उनका उद्धार हो गया। वे दिव्य देह धारण करके भगवान की स्तुति कर लगे।

यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः ।
तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसंगतैः ।। ३०।।

❋ *हे प्रभो आप प्राकृत शरीर से रहित हैं। फिर भी जब आप ऐसे पराक्रम प्रकट करते हैं जो साधारण शरीरधारियों के लिए शक्य नहीं हैं और जिनसे बढ़कर तो क्या जिनके समान भी कोई नहीं कर सकता तब उनके द्वारा उन शरीरों में आपके अवतारों का पता चल जाता है ।। ३०।।*

❋ (१) भगवान शरीर रहित हैं किन्तु शरीरों में भगवान की शक्ति अवतरित होती है।(२) जो मनुष्य के लिए कठिन है ऐसे कार्यों में तथा पराक्रम द्वारा ही ईश्वरीय शक्ति का पता लगता है।

✿ कृष्ण की स्तुति कर वे दोनों अपने लोक को चले गये। पेड़ टूटने की आवाज सुनकर माँ यशोदा तथा अन्य लोग दौड़े आये। कृष्ण को ऊखल से बँधा देखकर नन्दबाबा ने दौड़कर रस्सी की गांठ खोल कर कृष्ण को गोद में उठा लिया। इस तरह अनेक लीलाओं द्वारा कृष्ण सबको सुख पहुंचाने लगे।

एक दिन गोकुल के सभी गोपों ने विचार किया कि यहां तरह-तरह के उत्पात बढ़ते ही जा रहे हैं अतः इस स्थान को छोड़ देना चाहिये। सर्वसम्मति से वृन्दावन में बसने का निर्णय हुआ सभी लोग अपने घरों का सामान छकड़ों में लादकर वृन्दावन पहुँच गये तथा वहां सभी छकड़ों को अर्धचन्द्रकार रखकर रहने का स्थान बना लिया। नये स्थान में आकर कृष्ण और बलराम बहुत प्रसन्न हुए।

एवं ब्रजौकसां प्रीतिं यच्छन्तौ बालचेष्टितैः ।
कलवाक्यैः स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः ।। ३१।।

❋ *दोनों भाई अपनी तोतली बोली और अत्यन्त मधुर बालोचित लीलाओं से गोकुल की ही तरह वृन्दावन में भी व्रजवासियों को आनन्द देते रहे । थोड़े दिनों में समय आनेपर बछड़े चराने लगे ।।३१।।*

❋ (१) स्थान विशेष का मोह न करना चाहिए। (२) बाल विकास के लिए बचपन से ही कठिन जिम्मेदारी के कार्यों का अभ्यास आवश्यक है।

✿ दोनों भाई कृष्ण और बलराम अन्य ग्वाल बालों के साथ बछड़े चराने के लिए जाते तथा वहां कई तरह के बालोचित खेल खेलते एक दिन कृष्ण ने बछड़े का रूप बनाकर आये हुये बत्सासुर को मार डाला फिर एक दिन सभी बालक बछड़ों को पानी पिलाने यमुना किनारे ले गये वहां वे एक बड़े भारी बगुले को देख कर डर गये। कृष्ण उस बगुले के पास गये।

स वै बको नाम महानसुरो बकरूपधृक् ।
आगत्य सहसा कृष्णं तीक्ष्णतुण्डोऽग्रसद्बली ।। ३२।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❋ *वह 'बक' नाम का एक बड़ा भारी असुर था जो बगुले का रूप धर के वहां आया था। उसकी चोंच बड़ी तीखी थी और वह स्वयं बड़ा बलवान था। उसने झपट कर श्रीकृष्ण को निगल लिया। ।।३२।।*

❋ (१) बगुला कपट वेष का परिचायक है। (२) असुरता वेष बदलकर सज्जन के रूप में रहती है तथा मौका मिलते ही अचानक आक्रमण करती है।

✿ बगुले द्वारा कृष्ण का निगला जाना देखकर बलराम तथा अन्य सखा दुखी हो गये किन्तु वह बगुला कृष्ण को निगल नहीं सका। उसे लगा जैसे वह अंगारे को निगल रहा है उसका कण्ठ जलने लगा अत: उसने तत्काल कृष्ण को उगल दिया और उन्हें मार डालने के लिए उनके ऊपर प्रहार करने की तैयारी करने लगा।

तमापतन्तं स निगृह्य तुण्डयोर्दोर्भ्यां
बकंकंससखं सतां पतिं ।
पश्यत्सु बालेषु दरार लीलया
मुदाबहो वीरणवद् दिवौकसाम् ।। ३३ ।।

❋ *कंस का सखा बकासुर अभी भक्तवत्सल भगवान् श्री कृष्ण पर झपट ही रहा था कि उन्होंने अपने दोनों हाथों से उसके दोनों ठोर पकड़ लिये और ग्वालवालों के देखते-देखते खेल ही खेल में उसे वैसे ही चीर डाला, जैसे कोई वीरण नामक घास को चीर डाले। इससे देवताओं को बड़ा आनन्द हुआ ।। ३३।।*

❋ (१) असुरता दण्डनीय है। (२) दुश्मन को सम्हलने न देकर तत्काल समाप्त कर देना चाहिए। (३) असुरता की समाप्ति से ही देवत्व सुखी हो सकता है।

✿ कृष्ण सबेरे से ही भोजन सामग्री लेकर ग्वाल बालों के साथ बछड़े लेकर वन में चले जाते थे। बछड़े घास चरते रहते तथा बालक मिल जुलकर तरह-तरह के खेल खेलते रहते थे। एक बार सभी बालकों ने बछड़ों को पानी पिलाकर चरने के लिए छोड़ दिया। कृष्ण ने कहा, मित्रो! दिन बहुत चढ़ आया है अब हम लोगों को भोजन कर लेना चाहिए।

तथेति पाययित्वार्भा वत्सानारुध्य शाद्वले ।
मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजु: समं भगवता मुदा ।। ३४ ।।

❋ *ग्वालबालोंने एक स्वर से कहा-'ठीक है, ठीक है। उन्होंने बछड़ों को पानी पिलाकर हरी-हरी घास में छोड़ दिया और अपने-अपने छींके खोल खोलकर भगवान के साथ बड़े आनन्द से भोजन करने लगे।' ।। ३४।।*

❋ (१) कृष्ण बचपन से ही सबके साथ समानता का वर्ताव करते थे इसीलिए सब उन्हें प्राणों से भी ज्यादा प्रिय मानते थे। (२) प्रकृति की खुली गोद में खेलने खाने और परिश्रम करने का ही यह परिणाम था कि कृष्ण का शरीर इतना मजबूत हो गया था कि बड़े-बड़े योद्धा भी उन्हें पराजित न कर सके।

✿ सभी ग्वालबाल एक दूसरे के छींके की भोजन सामग्री छीन-छीन कर खा रहे थे। कृष्ण सबके बीच में बैठे तरह-तरह की बातें कर सबका मनोरंजन कर रहे थे। भोजन करते हुए देर हो गई, बछड़े चरते हुए दूर निकल गये। बालकों को होश आया बछड़े नहीं दिखे, उस दिन बछड़े घेरने की कृष्ण की पारी थी अत: बालकों को भोजन करते हुये छोड़कर कृष्ण हाथ में दही भात का कौर लिये हुए बछड़े तलाशने चले। ब्रह्मा को यह देख कर कृष्ण के बारे में भ्रम उत्पन्न हो गया। उन्होंने परीक्षा लेने के लिय बछड़ों को गुफा में छिपा दिया। जब बछड़े कृष्ण को नहीं मिले तब लौट कर ग्वाल बालों के पास आये किन्तु तब तक ब्रह्मा ने उन्हें भी छिपा दिया था। ब्रह्मा की यह करतूत देखकर कृष्ण ने उन्हें सीख देने की सोची ।

स्वयमात्माऽऽत्मगोवत्सान् प्रतिवार्यात्मवत्सकै: ।
क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद् व्रजम् ।। ३५ ।।

❋ *सर्वात्मा भगवान् स्वयं ही बछड़े बन गये और स्वयं ही ग्वाल बाल। अपने आत्म स्वरूप बछड़ों को अपने आत्म स्वरूप ग्वाल बालों के द्वारा घेर कर अपने ही साथ अनेकों प्रकार के खेल खेलते हुए उन्होंने ब्रज में प्रवेश किया ।। ३५ ।।*

❋ (१) इस लीला द्वारा भगवान ने संसार की इस वास्तविकता पर प्रकाश डाला कि एक ही परमात्मा जीव रूप से सभी मनुष्यों और पशुओं में समाया हुआ है।

✿ एक वर्ष बीत जाने पर ब्रह्मा पुन: ब्रज में आये उन्होंने देखा सारा कार्य यथावत चल रहा है। उनकी करतूत का कोई भी प्रभाव नहीं है भगवान स्वयं ही ग्वाल बाल बछड़े आदि बने हुए हैं। ब्रह्मा ने जहाँ बछड़ों और ग्वाल बालों को छिपाया था वहाँ जाकर देखा तो वे भी यथावत् थे। ब्रह्मा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने भगवान की महत्ता को समझा वे कृष्ण की स्तुति करने लगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मानमेवात्मतयाविजानतां
तेनैव जातं निखिलं प्रपञ्चितम् ।
ज्ञानेने भूयेऽपि च तत् प्रलीयते
रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा ।। ३६ ।।

जो पुरुष परमात्मा को आत्मा के रूप में नहीं जानते उन्हें उस अज्ञान के कारण ही इस नामरूपात्मक निखिल प्रपंच की उत्पत्ति का भ्रम हो जाता है, किन्तु ज्ञान होते ही इसकी वास्तविकता का बोध हो जाता है। जैसे रस्सी में भ्रम के कारण ही साँप की प्रतीत होती है और भ्रम की निवृत्ति होते ही उसकी निवृति हो जाती है ।। ३६ ।।

(१) एक ही आत्मा विभिन्न रूपों में प्रगट है। ज्ञान द्वारा ही इस सत्य का बोध हो सकता है। (२) अज्ञान की स्थिति में मनुष्य वास्तविकता को समझ नहीं पाता।

त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च ।
आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताज्ञता ।। ३७ ।।

भगवन् ! कितने आश्चर्य की बात है कि आप हैं सबकें आत्मा, पर लोग आपको पराया मानते हैं। शरीर आदि पराये हैं किन्तु उनको आत्मा मान बैठते हैं और इसके बाद आपको कहीं ढूँढ़ने लगते हैं। भले अज्ञानी जीवों का यह कितना बड़ा अज्ञान है ।। ३७ ।।

तावद् रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहम् ।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनः ।। ३८ ।।

❋ *सच्चिदानन्द स्वरूप श्यामसुन्दर ! तभी तक राग द्वेष आदि दोष, चोरों के समान सर्वस्व अपहरण करते रहते हैं तभी तक मोह पैर की बेड़ियों की तरह जकड़े रखता है जब तक जीवन आपका नहीं हो जाता ।। ३८ ।।*

❋ (१) भगवान का हो जाने का अर्थ है स्वयं को उनके प्रति समर्पित कर देना, उनसे भिन्न इच्छायें न रखना (२) हमारी लापरवाही के कारण ही दोष दुर्गुण हमें बन्धन में डाले हुए हैं।

✿ इस प्रकार भगवान की स्तुति कर ब्रह्मा ने सभी ग्वालबालों और बछड़ों को यथास्थान पहुँचा दिया। कृष्ण ने अपने रूप को समेट लिया। बालकों को इस रहस्य का पता भी नहीं लगा। वे उसी प्रकार भोजन कर रहे थे। कृष्ण बछड़ों को लेकर आ गये। सबने मिलकर बृज की ओर प्रस्थान किया। इस अवधि में सभी लोगों में अपने बच्चों और बछड़ों के प्रति अत्यधिक स्नेह उमड़ता रहा क्योंकि जगद्आत्मा श्रीकृष्ण स्वयं ही उन रूपों में उनके पास थे।

सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैव बल्लभः ।
इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्मद्वल्लभतयैव हि ।। ३९ ।।

❋ *श्री शुकदेव जी कहते हैं-राजन ! संसार के सभी प्राणी अपनी आत्मा से ही प्रेम करते हैं। पुत्र से, धन से या किसी से जो प्रेम होता हैं- तो इसलिए कि वे वस्तुएं अपनी आत्मा को प्रिय लगती हैं ।। ३९ ।।*

❋ आत्मा से प्रेम करने का मतलब आत्म कल्याण से है । आत्महित सर्वोपरि है अतः हमें सबसे अधिक प्रयास इसी दिशा में करना चाहिए।

कृष्ण और बलराम कुछ और बड़े हुए तथा उनकी आयु के अनुसार उन्हें और बड़ी जिम्मेवारी सौंपी गई। अब वे वत्सपाल से गोपाल बन गये। तथा इस तरह बचपन की बाल लीलायें त्याग कर अपने वय के अनुसार गृहकार्यों में सहयोग देने लगे।

ततश्च पौगण्डवयः श्रितौ व्रजे
बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदै
र्वृन्दावनं पुण्यमयीवचक्रतुः ।। ४० ।।

❋ *श्री शुकदेव जी कहते हैं परीक्षित् ! बलराम और कृष्ण छः वर्ष के हो गये। अब उन्हें गौएँ चराने की स्वीकृति मिल गयी। वे अपने सखा ग्वाल बालों के साथ गौएँ चराते हुए वृन्दावन में जाते और अपने चरणों से वृन्दावन को अत्यन्तपावन करते हैं ।। ४० ।।*

❋ (१) बच्चों की बढ़ती हुई आयु के अनुसार जिम्मेवारी तथा परिश्रम के कार्य उन्हें सौंपे जाने चाहिये। (२) श्रम का सम्मान करना चाहिये। यद्यपि नन्द बाबा नौकरों से भी कार्य करा सकते थे। किन्तु उन्होंने कृष्ण को गाय चराने का कार्य सौंपा। (३) स्वीकृति मिल गई का अर्थ कृष्ण स्वतः इस कार्य के लिये उत्सुक थे। नवयुवकों को इस वृत्ति का अनुसरण करना चाहिए।

✿ कृष्ण और बलराम ने वृज में सहकारिता का सुन्दर आदर्श प्रस्तुत किया। सभी साथी सबेरे ही अपनी-अपनी गायों को लेकर वन में चले जाते। वहाँ तरह-तरह के खेलों तथा अन्य कार्यों द्वारा मनोरंजन एवं परिश्रम करते। संगीत तथा गीत के कार्यक्रम भी होते। पक्षियों की बोली और उनकी चाल का अनुकरण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते हुए अभिनय भी होता। इस तरह दिन भर हँसी खुशी का वातावरण बना रहता।

क्वचित् क्रीडापरिश्रान्तं गोपोत्सङ्गोपबर्हणम् ।
स्वयं विश्रमयत्यार्य पादसंवाहनादिभिः ।। ४१।।
नृत्यतो गायतः क्वापि बल्गतौ युध्यतोर्मिथः ।
गृहीतहस्तौ गोपालन् हसन्तौ प्रशशंसतुः ।। ४२।।

❋ *जब बलराम जी खेलते-खेलते, थककर किसी ग्वालबाल की गोद के तकिये पर सिर रखकर लेट जाते तब श्रीकृष्ण उनके पैर दबाने लगते पंखा झलने लगते और इस प्रकार अपने बड़े भाई की थकावट दूर करते ।। ४१।।*

जब ग्वाल बाल नाचने लगते अथवा ताल ठोंक-ठोंक कर एक दूसरे से कुश्ती लड़ने लगते, तब श्याम और राम दोनों भाई हाथ डालकर खड़े हो जाते और हँस हँसकर वाह-वाह करते ।। ४२।।

❋ (१) कृष्ण और बलराम के परस्पर प्यार, जैसा ही भाइयों के बीच में स्नेह होना चाहिये (२) साथियों को प्रोत्साहन इसी प्रकार मित्रों का उत्साह वर्धन करना चाहिये। (३) स्वास्थ्य, मनोरंजन, खेलों द्वारा मनोरजंन एवं व्यायाम दोनों का लाभ मिलता है।

✿ एक दिन कृष्ण के सखा श्रीदामा ने उनसे कहा यहाँ से थोड़ी दूर पर ताड़ का एक वन है जिसमें पके हुए फल लगे हैं। किन्तु वहाँ धेनुका सुर नाम का दैत्य गधे के रूप में अपने साथियों के साथ रहता है। उसके कारण कोई भी उस वन के फल नहीं खा सकता। आप हमें वहाँ के फल अवश्य खिलाइये। उसकी बात सुनकर कृष्ण बलराम और अन्य सखाओं के साथ वहाँ पहुँचे। बलराम जी ने उन वृक्षों को हिलाया बहुत से फल गिरे आवाज सुन धेनुकासुर दौड़ा और उसने बलराम को मारने हेतु दुलत्ती चलाई।

स तं गृहीत्वा प्रपदोभ्रामियित्वैकपाणिना ।
चिक्षेप तृणराजाग्रे भ्रामणत्यक्तजीवितम् ।। ४३।।

❋ *बलराम जी ने अपने एक ही हाथ से उसके दोनों पैर पकड़ लिये और उसे आकाश में घुमाकर एक ताड़ के पेड़ पर दे मारा। घुमाते समय ही उस गधे के प्राण पखेरू उड़ गये थे ।। ४५ ।।*

❋ (१) कृष्ण बलराम और सखाओं में परस्पर सहयोग की भावना तथा शौर्य और साहस द्वारा आसुरी तत्वों का मुकाबला करने की प्रवृत्ति अनुकरणीय है।

✿ धेनुकासुर के मृत शरीर को घेरकर सब सखा प्रसन्न होने लगे। वे बोले यह दुष्ट प्रकृति सम्पदा के उपयोग से सबको वंचित रखता था। आज यह बल्देव भैया के हाथों उचित दण्ड पा गया। इसके बाद वे सब हँसते खेलते फल खाते हुए गायों को लेकर घर लौट गये। इस प्रकार श्रीकृष्ण और बलराम के हाथों उस क्षेत्र में विचरने वाले दैत्यों की संख्या दिनों दिन घटने लगी। ब्रजवासी नर-नारी उनके इस अद्भुत पराक्रम से बड़ा हर्ष, गौरव और संतोष अनुभव करते हुए सुखपूर्वक रहने लगे।

।। श्रीकृष्ण कथा प्रथम अध्याय समाप्त।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

द्वितीय अध्याय

स्वच्छन्दोपात्तदेहाय विशुद्धज्ञानमूर्तये ।
सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नमः ।। १।।

❋ *बिना किसी बन्धन के स्वेच्छा से ही शरीर धारण करने वाले मूर्तिमान ज्ञान स्वरूप, सर्वस्व, सबके आदि कारण तथा सबके आत्मा रूप में अवस्थित रहने वाले प्रभु ! आपको नमस्कार है ।। १।।*

❋ (१) ईश्वर बन्धन मुक्त हैं, वे स्वेच्छा से ही अवतरित होते हैं। (२) परमात्मा को मूर्तिरूप या मनुष्य रूप नहीं विशुद्ध ज्ञान रूप ही मानना चाहिए। (३) अवतार के नाम पर किसी शरीर विशेष में भगवान का विशेष प्रकाश भले ही दिखाई दे किन्तु वे वस्तुतः विश्व ही हैं।

✿ वृन्दावन में एक-एक करके दुष्टों का संहार करते हुए भगवान श्री कृष्ण शुक्ल पक्ष के चन्द्र की तरह बराबर विकसित हो रहे थे। उन दिनों सभी नर नारी तथा पशु पानी की आवश्यकता यमुना जल से ही पूरा करते थे। लोगों ने देखा कि यमुना का जल विषैला और उपयोग के अनुपयुक्त होता जा रहा है। इसका कारण खोजने पर यह पता लगा कि कालिया नामक नागराज अपने अनुचरों सहित उस जल में बिहार करता है और उसके विष के प्रभाव से ही जल दूषित हो रहा है। सर्प के विष के भय से कोई उसे रोक भी न सका। किन्तु नन्द नन्दन कन्हैया को यह पता लगा तो उन्होंने उसे सीख देने की ठान ली।

तं चण्डवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन
दुष्टां नदीं च खलसंयम नावतारः ।
कृष्णः कदम्बमधिरुह्य ततोऽतितुगं
मास्फोटयगाढरशनो न्यपतद् विषोदे ।। २।।

❋ *शुकदेव जी बोले-परीक्षित ! भगवान का अवतार तो दुष्टों का दमन करने के लिए होता ही है। जब उन्होंने देखा कि उस साँप के विष का वेग बड़ा प्रचण्ड (भयंकर) है और वह भयानक विष ही उसका महान बल है तथा उसके कारण मेरे विहार का स्थान यमुनाजी भी दूषित हो गयी हैं तब भगवान श्री कृष्ण अपनी कमर का फेंटा कसकर एक बहुत ऊँचे कदम्ब वृक्ष पर चढ़ गये और वहाँ से ताल ठोंककर उस विषैले जल में कूद पड़े ।। २।।*

❋ (१) अवतार का उद्देश्य दुष्टता के निवारण के लिए होता है। (२) दुष्टों का बल उनकी दुष्टता (विषैलापन) होता है। (३) दुष्ट अपनी मनमानी करते हुए यह ध्यान नहीं रखता कि इससे अन्य लोगों को क्या हानि हो रही हैं। (४) दुष्टता का सामना साहसपूर्वक करना चाहिए।

✿ कृष्ण सीधे कालिया नाग के सामने जा पहुँचे। क्रोधी नाग अपने बल के घमण्ड में किसी को कुछ समझता ही नहीं था। उसने कृष्ण पर आक्रमण कर दिया। किन्तु कृष्ण के आगे उसकी एक भी न चली। उसने हार कर उनके आगे आत्म समर्पण कर दिया।

उधर वृन्दावन में यह समाचार पहुँचा कि श्रीकृष्ण कालिया नाग के स्थान पर यमुना में कूद गये हैं। बाबा नन्द तथा माता यशोदा सहित लोग यमुना तट पर पहुँचे। तब तक श्रीकृष्ण नाग सहित बाहर आ गये। नाग ने अपने अपराध की क्षमा माँगी।

नात्र स्थेयं त्वया सर्व समुद्रं याहि माचिरम् ।
स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यो गोनृभिर्भुज्यतां नदी ।। ३।।

❋ *शुकदेव जी कहते हैं - कालिया नाग की बात सुनकर लीला मनुष्य भगवान श्रीकृष्ण ने कहा- सर्प अब तुझे यहाँ नहीं रहना चाहिये। तू अपने जाति भाई, पुत्र और स्त्रियों के साथ शीघ्र ही यहाँ से समुद्र में चला जा ताकि गौएँ और मनुष्य यमुना जल का उपयोग कर सकें ।। ३।।*

❋ (१) नाग अहंकार वश ही दूसरों की हानि की चिन्ता किये बिना मनुष्य और पशुओं के उपयोग के जल स्थल पर क्रीड़ा करता था। भगवानं ने उसका अहंकार भर तोड़ा- पर जीवित रहने दिया। केवल ऐसे स्थान पर रहने का आदेश दिया जहाँ उसके कारण प्राणियों को कष्ट न पहुँचे।

✿ कृष्ण के कहे अनुसार कालिया नाग वहाँ से चला गया। कृष्ण एवं बलराम सहित सभी गोपगण अपनी स्वाभाविक दिनचर्या में लग गये। तभी प्रलंब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नामक राक्षस वहाँ पहुँचा। उसने सोचा कि कृष्ण के सम्बन्ध में तो बहुत आतंक फैल गया है, पहले बलराम को ही ठिकाने लगाया जाय। वह मौका देखने लगा।

कृष्ण बलराम ग्वालों के साथ खेल खेलने लगे। शर्त यह थी कि हारने वाली टोली के बच्चे जीतने वालों को कंधे पर चढ़ाकर घुमायेंगे। प्रलंब भी बालक बनकर कृष्ण की टोली में मिल गया। खेल में बलरामजी की टोली जीत गयी। शर्त के अनुसार कृष्ण सहित उनकी टोली के लोग बलराम जी की टोली के खिलाड़ियों को कंधे पर बिठाने लगे। प्रलंब ने बल्देव को ही कंधे पर बिठा लिया तथा मौका पाकर ले भागा। बालक बलराम विशालकाय राक्षस के इस कृत्य से क्षण भर के लिए चकरा गये। किन्तु उन्होंने अपने आपको संभाल लिया।

अधागतस्मृतिरभयो रिपुं बलो
विहायसार्थमिव हरन्तमात्मन: ।
रुषाहनच्छिरति दृढेन मुष्टिना
सुराधिपोगिरिमिववज्ररंहसा ।। ४।।

❋ *दूसरे ही क्षण में अपने स्वरूप की याद आते ही उनका भय जाता रहा। बलराम जी ने देखा कि जैसे चोर किसी का धन चुराकर ले जाय वैसे ही वह शत्रु मुझे चुराकर आकाश मार्ग से लिये जा रहा है। उस समय जैसे इन्द्र ने पर्वतों पर वज्र चलाया था वैसे ही उन्होंने क्रोध करके उसके सिर पर एक घूँसा कसकर जमाया ।। ४।।*

❋ (१) अपने स्वरूप को भूल जाने से ही व्यक्ति अपने आपको कमजोर समझकर भयभीत होता है ।(२) अनैतिक व्यक्ति शक्तिशाली होने पर भी चोर की तरह ही व्यवहार करता है। (३) कठिन स्थिति सामने होने पर धैर्य और संतुलन बनाये रखना चाहिए और उसके निवारण के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए।

❁ श्री बलराम जी का घूँसा खाकर वह राक्षस होश हवास खो बैठा और कटे हुए वृक्ष की तरह धरती पर आ गिरा। उसके प्राण निकल गये कृष्ण सहित सभी सखाओं ने बलरामजी को घेर लिया देखा उन्हें चोट तो नहीं आयी। फिर उनके साहस तथा संतुलन की प्रशंसा करते हुए दुष्ट राक्षस के कपट का उसे उचित दण्ड मिल जाने पर प्रसन्नता व्यक्त की। इसके बाद सब बन्धु हँसते खेलते गायों सहित घरों को लौट गये।

श्रीकृष्ण अपने सखाओं के अन्दर खेल-खेल में ही श्रेष्ठ गुणों का विकास करते रहते थे। प्रकृति के सानिध्य में रहकर वे विविध माध्यम से उन्हें शिक्षा देते रहते थे। वर्षाऋतु में जब चारों और जंगल हरे भरे दिखने लगे तो श्री कृष्ण सखाओं को समझाते हुए कहने लगे।

जलस्थलौकस: सर्वे नववारिनिषेवया ।
अविभ्रद् रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया ।। ५।।

❋ *नये बरसाती जल के सेवन से सभी जलचर और थलचर प्राणियों की सुन्दरता बढ़ गयी थी जैसे भगवान की सेवा करने से बाहर और भीतर के दोनों ही रूप सुघड़ हो जाते हैं ।। ५।।*

❋ जब जड़ों द्वारा वृक्षों को नया रस मिलता है तभी वह हरे भरे होते हैं इसी प्रकार जब मनुष्यों में श्रेष्ठ विचारणाओं एवं भावनाओं का संचार होता है तो वह उल्लसित होने लगते हैं । (२) यह मान्यता गलत है कि भगवान की सेवा करने वाले व्यक्तियों में केवल अन्दर ही परिवर्तन होता है बाहर से वे चाहे जैसे बने रहें। उनके आंतरिक तथा वाह्य दोनों स्वरूप सुधर जाते हैं।

❁ इसी प्रकार पहाड़ों पर तेज वर्षा होती दिखाकर वे बोले :-

गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथु: ।
अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाधोक्षजचेतस: ।। ६।।

❋ *मूसलाधार वर्षा की चोट खाते रहने पर भी पर्वतों को कोई व्यथा नहीं होती जैसे दु:खों की भरमार होने पर भी उन पुरुषों को किसी प्रकार की व्यथा नहीं होती जिन्होंने अपना चित भगवान को समर्पित कर दिया है ।। ६।।*

❋ (१) तेज वर्षा से धरती और पर्वतों पर चोट तो पड़ती है पर उसका लाभ उस चोट के कष्ट की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। जीवन में कठिनाइयाँ इसी प्रकार कोई न कोई श्रेष्ठ लाभ देने ही आती हैं। (२)वे व्यक्ति भगवान अर्थात् श्रेष्ठ आदर्शों के प्रति समर्पित होते हैं उन्हें कठिनाइयों से कष्ट नहीं होता वे उसका लाभ उठा कर प्रसन्न ही होते हैं।

❁ एक बार श्रीकृष्ण बल्देव अपने सखाओं सहित गौये चराते वृन्दावन से बहुत दूर निकल गये। गर्मी की ऋतु थी, धूप बहुत तेज थी, वहीं पास ही घने वृक्षों की छाया में वे सब बैठ गये। तब श्रीकृष्ण सखाओं से कहने लगे मेरे प्रिय मित्रों जरा इन वृक्षों को देखो ! यह कितने भाग्यवान हैं। इनका सारा जीवन दूसरों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भलाई करने में बीत जाता है। अपनी छाया, लकड़ी, पत्ते, पुष्पों, फलों आदि सभी से प्राणी मात्र की सेवा करते हैं।

एतावज्जन्मसाफल्यं दहिनामिह देहिषु ।
प्राणैरर्थैर्धिया वाचाश्रेय एवाचरेत् सदा ।। ७।।

❋ *मेरे प्यारे मित्रों ! संसार में प्राणी तो बहुत हैं परन्तु उनके जीवन की सफलता इसी में है कि जहाँ तक हो सके अपने धन से, विचार से, वाणी से और प्राणों से भी ऐसे कर्म किये जायें जिनसें दूसरों की भलाई हो ।। ७।।*

❋ (१) परहित कर सकना सौभाग्य का चिन्ह है भले ही उसे स्वयं को कष्ट ही उठाने पड़ें (२) जीवन का श्रेष्ठ से श्रेष्ठ विचार भी परहित में न लग सके तो निरर्थक है। (३) परमेश्वर मनुष्य परहित में लगा देखकर ही प्रसन्न होते हैं।

✿ इस प्रकार चर्चा चल रही थी तभी कुछ ग्वालबालों ने श्रीकृष्ण को बतलाया कि इतनी दूर चलने से उन्हें बड़ी जोर से भूख लग आयी वहाँ निकट ही कुछ ब्राह्मण स्वर्ग प्राप्ति की कामना से अंगिरसं यज्ञ कर रहे थे। ग्वालबाल श्रीकृष्ण की स्वीकृति लेकर वहाँ गये तथा ब्राह्मणों को अभिवादन करके बोले :- हे भूसुरो हम ब्रज के ग्वालबाल हैं। गौये चराने दूर निकल आये हैं। यहाँ निकट कोई फलदार वृक्ष भी नहीं दिखाई देता कृपया हमें थोड़ा सा भात दे दें ताकि हम सकुशल घर. लौट सकें।

हे परीक्षित ! वे ब्राह्मण यज्ञ तो कर रहे थे किन्तु कामनायुक्त होने से स्वार्थी प्रकृति के थे। उन्होंने बालकों की बात पर ध्यान ही नहीं दिया। दुखी बालक श्रीकृष्ण के पास लौट आये। श्रीकृष्ण ने उनकी बात सुनी तो हँसे। बलराम जी से बोले देखो भैया कैसा तमाशा है ? यह ब्राह्मण स्वयं तो दूसरों के प्रति इतने अनुदार हैं और थोड़ा सा कर्मकाण्ड करके उसके बदले स्वर्ग की प्राप्ति की आकांक्षा करते हैं। फिर सखाओं से कहा भाइयो तुम अब उनकी पत्नियों के पास जाओ। महिलायें पुरुषों की अपेक्षा अधिक संवेदन शील और परमार्थ परायण होती हैं।

ग्वालबाल ब्राह्मणियों के पास गये। उनकी बात सुनकर ब्राह्मणियों का हृदय भर आया। वे परस्पर कहने लगीं देखो बहन ये छोटे-छोटे बच्चे गौयें चराकर अपने परिवार के कामों में हिस्सा बटाते हैं। बेचारे भूख से व्याकुल हैं। बच्चे सबके समान होते हैं। अतः मातृ धर्म के अनुसार हमें इनकी भूख शान्त करने का उपाय करना चाहिए। ऐसा कहकर वे श्रेष्ठ हित कारी भोजन सामग्री लेकर उन बालकों के साथ चलने को तैयार हो गयीं। उन्हें ऐसा करते देखकर उनके घर के लोग उन्हें रोकने लगे। अनजान बच्चों को मूल्यवान भोजन सामग्री देना तथा यज्ञ की व्यवस्था छोड़कर इस कार्य को महत्व देना उन्हें अच्छा न लगा। किन्तु ब्राह्मणियों ने शिष्ट, सुशील तथा कर्तव्य परायण भूखे बालकों की आवश्यकता पूरी करना अपना धर्म मानकर उनकी बात को महत्व नहीं दिया :-

निषिध्यमानाः पतिभिर्भ्रातृभिर्बन्धुभिः सुतैः ।
भागवत्युत्तम श्लोके दीर्घश्रुतधृताशयाः ।। ८।।

❋ *उन ब्राह्मणियों ने उत्तम भागवत कथा (ईश्वर की सच्ची भक्ति) को बहुत सुना था, इसलिए अपने भाई बन्धु तथा पति, पुत्रों द्वारा रोके जाने पर भी वे अपने कर्तव्य से नहीं हटी ।। ८।।*

❋ पति, पुत्र, बन्धु आदि की अनुचित आज्ञा को न मानकर भी श्रेष्ठ मानवीय आदर्शों का निर्वाह महिलाओं को करना उचित है।

✿ यमुना किनारे श्रीकृष्ण, बलराम जी तथा अन्य गोप बालकों को बड़े स्नेह पूर्वक उन माताओं ने भोजन कराया श्री कृष्ण ने उनके आदर्श की सराहना की ओर कहा-

प्राणबुद्धिमन स्वात्मदारापत्यधनादयः ।
यत्सम्पर्कात् प्रिया आतः कोन्कवरपः प्रियः ।। ९।।

❋ *प्राण, बुद्धि, मन, शरीर, स्वजन, स्त्री, पुत्र और धन आदि संसार की सभी वस्तुएं जिसके लिए और जिसके सन्निधि से प्रिय लगती हैं- उन्हें आत्मा से परमात्मा से बढ़कर और कौन प्यारा हो सकता है ।।९ ।।*

❋ (१) संसार की सभी विभूतियाँ तथा साधन उनमें भगवान का अंश होने के कारण ही प्रिय लगते हैं। (२) जो सम्बन्धी साधन तथा विभूतियाँ भगवान की (श्रेष्ठ आदर्शों) ओर गति दे वही अपनाने योग्य हैं अन्य नहीं।

✿ इस प्रकार सखाओं सहित भगवान श्रीकृष्ण को अपनी कर्तव्य परायणता तथा सद्भावनाओं से प्रसन्न करके ब्राह्मण पत्नियाँ लौट गयीं।

भगवान कृष्ण परम्पराओं के स्थान पर विवेक पूर्वक कार्य करने की प्रेरणा सबको देते रहते थे। नन्द

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बाबा सहित गोपगण अपने बचाये हुए धन का व्यय इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए पूजा समारोह में कर देते थे। श्रीकृष्ण को यह अपव्यय तो अखरा ही साथ ही उन्होंने देखा कि लोग कर्म सिद्धी को भूलकर दूसरों की कृपा से सुखी रहने की भ्रान्त धारणा के शिकार होते जा रहे हैं।

जब श्रीकृष्ण ने इस अपव्यय को रोकने तथा धन को उपयोगी कार्यों में करने की सलाह दी तो नन्द बाबा ने इन्द्र के क्रोध का भय दिखाया। कहा कि इन्द्र ही हमें सुख दुःख देते हैं पूजा न होने से वे नाराज हो जायेंगे। अनिष्ट होगा। इस पर श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाते हुए कहा:-

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते ।
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ।। १०।।

❋ *पिता जी ! प्राणी अपने कर्म के अनुसार ही पैदा होता और कर्म से ही मर जाता है। उसे उसके कर्म के अनुसार ही सुख-दुःख, भय और मंगल के निमित्तों की प्राप्ति होती हैं ।। १०।।*

❋ (१) मनुष्य जीवन कर्म प्रधान है। भाग्य भी कर्म का ही प्रतिफल है।

✿ श्रीकृष्ण ने नन्द बाबा को हर पक्ष से समझाया। बतलाया कि यदि यह मान लें कि ईश्वर सुख दुःख देता है तो वह भी जीव के कर्मों के अनुसार ही देता है। कर्म के अनुसार ही मनुष्य के स्वभाव और संस्कार बन जाते हैं।

तस्मात् सम्पूजयेत् कर्म स्वभावस्थः स्वकर्मकृत् ।
अञ्जसा येन वर्तेत तदे वास्य हि दैवतम् ।। ११।।

❋ *इसलिये पिता जी ! मनुष्य को चाहिये कि पूर्व संस्कारों के अनुसार अपने कर्तव्य धर्मों का पालन करता हुआ कर्म का ही आदर करें। मनुष्य का सब प्रकार निर्वाह करने वाला यह कर्म ही उसका आराध्य देव है ।। ११।।*

❋ (१) कर्म हीन मनुष्य दूसरों पर भार बनकर ही रहता है कर्मशील अपना और दूसरों का हित साधन कर लेता है। यह देने की देवता जैसी सामर्थ्य कर्म से प्राप्त होती है। इसलिए कर्म को आराध्य देव की संज्ञा दी गई है।

✿ श्रीकृष्ण के इस प्रकार समझाने पर नन्द बाबा तथा गोपगण कर्म का सिद्धान्त समझ गये उन्हें विश्वास हो गया कि मनुष्य का हित-अहित उसी के द्वारा किए कर्मों से होता है। किन्तु उन्होंने पूछा कि "यह जो तैयारियाँ इन्द्र यज्ञ के लिये हो गयी हैं उसका क्या किया जाय?" जब श्रीकृष्ण ने उन्हें बतलाया कि श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ बढ़ाने के लिए किये जाने वाले, लोक हितकारी श्रेष्ठ कर्मों को ही यज्ञ कहते हैं।

तस्माद् गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः ।
य इन्द्रयागसम्भारास्तैरयं साध्यतां मखः ।। १२।।

❋ *इसीलिए हम लोग गौओं ब्राह्मणों और गिरिराज का यज्ञ करने की तैयारी करें इन्द्र यज्ञ के लिए जो सामग्री इकट्ठी की गई है उन्हीं से इस यज्ञ का अनुष्ठान होने दें ।। १२।।*

❋ गौ सात्विकता, ब्राह्मण-जनहित के लिए समर्पित जीवन जीने वाले तथा गिरिराज गोवर्धन-प्राकृतिक सम्पदा सामूहिक श्रमशीलता के प्रतीक हैं। इन्हीं प्रवृत्तियों को बढ़ाने के लिए प्रयास करने का निर्देश भगवान ने दिया (२) भगवान की दृष्टि में इन्द्र पूजा की अपेक्षा इन सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाने का प्रयास करना श्रेष्ठ यज्ञ है।

अयाजयद्गोसवेन गोपराजं द्विजोत्तमैः ।
वित्तस्य चोरूभारस्य चिकीर्षन् सद्व्ययं विभुः ।।१३।।

❋ *भगवान् श्रीकृष्ण ने बढ़े हुए धन का सद्व्यय कराने की इच्छा से श्रेष्ठ ब्राह्मणों के द्वारा नन्दबाबा से गोवर्धन-पूजा रूप गोयज्ञ करवाया ।। १३।।*

❋ संयम पूर्वक रहकर श्रेष्ठ कार्यों के लिए धन बचाना तथा उसे उचित ढंग से विवेक पूर्वक खर्च करना हर नागरिक का कर्तव्य है। (२) पूजन ऐसे व्यक्तियों से कराया जाना चाहिए जो स्वार्थी न हों तथा पूजन के माध्यम से जीवन को सार्थक दिशा में बढ़ाने की प्रेरणा दे सकें। ऐसे व्यक्ति ही श्रेष्ठ ब्राह्मण कहलाते हैं। (३) गोयज्ञ का अर्थ है गौ संवर्धन के लिए किए गये प्रयास और व्यवस्थायें।

✿ इस प्रकार गोपों द्वारा धन के सार्थक उपयोग को इन्द्र ने अपनी उपेक्षा माना और क्रोधित हो उठे। उन्होंने अतिवृष्टि द्वारा वृजवासियों को परेशान करना चाहा। श्रीकृष्ण इन्द्र की इस ओछी नीयत को समझ गये। वे सोचने लगे :-

न हि सद्भावयुक्तानां सुराणामीश विस्मयः ।
मत्तोऽसतां मानभंगं प्रशमायोपकल्पते ।। १४।।

❋ *आश्चर्य है कि देवताओं के राजा इन्द्र में सद्भावना नहीं है। पद ऐश्वर्य के इनके घमंड को*

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तोड़ देना ही ठीक हैं, इससे अंत में इनका भी भला ही होगा ।। १४ ।।

❋ (१) देवताओं को सात्विक गुण प्रधान होना चाहिए। और लोकहित के हर श्रेष्ठ कार्य में सहयोग देना चाहिए। (२) अपने पद और ऐश्वर्य के कारण अपना कर्तव्य धर्म भूल जाये ऐसे अंहकार को तोड़ना ही उचित है। (३) गलत राह में चलने वाले को रोका जाय तो पहले तो वह परेशानी अनुभव करता है किन्तु बाद में उसका भी हित ही होता है।

✿ भगवान कृष्ण अपने कर्तव्य पर ध्यान देते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे-

तस्मात्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम् ।
गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहित: ।। १५ ।।

❋ *यह गोपगण मेरी शरण में हैं तथा मैने इनकी रक्षा करना स्वीकार किया है। मैं अपने योगबल से इनकी रक्षा करूँगा। सत्पुरुषों की रक्षा करना मेरा सदा का व्रत है। उसके पालन का अवसर आ गया है।। १५ ।।*

❋ (१) भगवान के आदर्शों पर चलने का साहस जो दिखाता है उनके हितों की रक्षा का ध्यान भगवान रखते हैं।

✿ भगवान कृष्ण ने गोवर्धन उठाकर गोपों तथा उनकी सम्पत्ति को बचा लिया। इन्द्र की अनीति न चल सकी वह अपनी हेकड़ी भूल गये। अपने कुकृत्य के लिए उन्होंने भगवान से क्षमा माँगी। कहा मैंने समझा कि आपने लोभ वश मेरा पूजन रोक दिया है मैं यह न समझ सका। आपका लक्ष्य तो जनहित ही है यह मेरी भूल थी। आपका तो शरीर श्रेष्ठ संकल्पों से ही बना है। आप ज्ञान रूप हैं :-

कुतौ नु तद्धेतव ईश तत्कृता
लोभादयो येऽबुधलिगंभावा ।
तथापि दण्डं भगवान् विभर्ति
धर्मस्य गुप्त्यै खलनिग्रहाय ।। १६ ।।

❋ *लोभादि (विविध दोष) तो अज्ञान के लक्षण हैं, आपमें वे होने का प्रश्न ही नहीं उठता। आप गुणातीत हैं किन्तु फिर भी आप की रक्षा और दुष्टता के निवारण के लिए दण्ड व्यवस्था अपने हाथ में ले कर अवतरित होते हैं ।। १६ ।।*

❋ (१) भगवान ज्ञान रूप है:- ज्ञान एवं अज्ञान जो दोषों से मुक्त हैं और मुक्ति दिलाते हैं (२) धर्म स्थापना दुष्टता का निराकरण ही अवतार का ये उद्देश्य है।

तवावतारोऽयमधोक्षजेह,
स्वयम्भराणामुरुभारजन्मनाम् ।
चमूपतीनामभवाय देव भवाय
युष्मच्चरणानुवर्तितनाम् ।। १७ ।।

❋ *हे ! स्वयं प्रकाश, इन्द्रियातीत परमात्मन् ! आपका यह आदर इसलिये हुआ है कि जो असुर सेनापति केवल स्वार्थ पालने में ही लगे हैं और पृथ्वी के लिए बड़े भारी भार के कारण बन रहे हैं उन्हें अनीति से हटाया जाय और जो आपके चरणों के सेवक हैं, आज्ञाकारी भक्तजन हैं, उनका अभ्युदय हो-उनकी रक्षा हो।। १७ ।।*

❋ (१) जो केवल स्वार्थ में ही लगे रहते हैं वे मनुष्यता पर कलंक और धरती पर भार रूप हैं। (२) भगवान स्वयं में पूर्ण तथा स्थूल साधनों की पकड़ से परे हैं। (३) चापलूसी करने वालों को नहीं उनके निर्देशों का पालन करने का साहस दिखाने वालों को वह अपना समर्थन एवं संरक्षण देते हैं।

✿ इन्द्र स्तुति कर चुके तब भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें स्नेहपूर्वक समझाया कि हे देवराज ! तुम स्वर्ग के राजा हो तुम्हें मनुष्यों द्वारा समर्पित पदार्थों अथवा उनके द्वारा मिलने वाली प्रशंसा की कामना नहीं होनी चाहिए मनुष्य अपनी त्याग-दान आदि सत्प्रवृत्तियों का विकास तुम्हारी पूजा के माध्यम से करें अथवा किसी अन्य उपयोगी ढंग से करें तुम्हें तो उनका समर्थन और सहयोग ही करना चाहिए। तुम्हारे अहंकार ने तुम्हें अपना कर्तव्य भुला दिया था इसीलिए मैंने उसे तोड़ दिया है। अब कभी घमंड न करना और अपने कर्तव्य में बराबर लगे रहना।

इन्द्र कृतज्ञता व्यक्त करते हुए चले गये। तब स्वर्ग से कामधेनु ने आकर उनकी वन्दना की। इन्द्र को कर्तव्य बोध कराने तथा गोपों को गो-संवर्धन में धन और पुरुषार्थ लगाने की सलाह देने के लिए उनका अभिनंदन किया। श्रीकृष्ण ने उन्हें आश्वस्त और संतुष्ट करके विदा किया। सब लोग सुखपूर्वक रहने लगे।

एक बार कार्तिक शुक्ल एकादशी का व्रत करके नन्दबाबा रात्रि में यमुना स्नान करने चले गये। वरुण के एक सेवक ने उन्हें पकड़ लिया। जब कृष्ण को यह पता लगा तो वे वरुण के पास जा पहुँचे। वरुण ने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनका बहुत सत्कार किया तथा जो सेवक बिना सोच विचार नन्दबाबा जैसे सज्जन को पकड़ लाया था उसके अज्ञान पर दुःख प्रकट करते हुए नन्दबाबा को सम्मान सहित विदा किया। वापिस लौटने पर गोपों ने कृष्ण को घेर लिया तथा उनके सम्बन्ध में अनेक चमत्कारी कल्पनायें करने लगे। श्रीकृष्ण ने सोचा कि यदि ये सब मुझे अपने से भिन्न बहुत बड़ा मानने लगेंगे तो इससे हमारे बीच की स्वाभाविक आत्मीयता समाप्त हो जायेगी। साथ ही यह मेरे द्वारा सारे कार्यों को पूरा कराने की सोचकर स्वयं निष्क्रिय होने लगेंगे। इससे इनका अहित ही होगा। अतः वे बोले :-

मन्यन्ते मां यथा सर्वे भवन्तो भीमविक्रमम् ।
तथाहं नावमन्तव्यः स्वजातीयोऽस्मि बान्धवः ।। १८।।

❋ *आप सब लोग मुझे जैसा भयानक पराक्रमी समझ रहे हैं, वैसा मानकर मेरा अनादर न करें। मैं तो आप लोगों का सजातीय भाई-बन्धु ही हूँ ।। १८।।*

❋ भगवान सहज आत्मीयता को सबसे बड़ा सन्मान मानते हैं लोग अपनी प्रशंसा में अपना आदर समझते हैं किन्तु भगवान उसमें परायेपन की गंध पाकर उसमें अपना अनादर मानते हैं।

✿ भगवान कृष्ण ने विचार किया कि इस प्रकार मेरे प्रति उनकी भ्रान्त धारणा का कारण यह है कि ये मेरे तथा अपने यथार्थ रूप को नही जानते ।

जनो वै लोक एकस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः ।
उच्चावचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन् ।। १९।।

❋ *इस संसार में जीव अज्ञानवश भाँति-भाँति की कामना और उनकी पूर्ति के लिए नाना प्रकार के कर्म करता है। फिर उनके फलस्वरूप (देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि) ऊँची-नीची योनियों में भटकता फिरता है अपने असली गति को-आत्म स्वरूप को नहीं पहचान पाता ।। १९।।*

❋ (१) तरह-तरह की कामनायें करना तथा उनकी पूर्ति करना मनुष्य को शानदार लगता है किन्तु है वह भ्रान्ति ही। (२) स्वयं अपने सम्बन्ध में न जानने के ही कारण मनुष्य भटकता है।

✿ तब भगवान ने अपने प्रियजनों को ब्रह्म हृद में प्रवेश कराकर अर्थात् ब्रह्म सम्बन्धी तत्वज्ञान में प्रवेश कराकर सही बोध कराया। तब उन्हें यह जानकर अचरच हुआ कि भगवान ज्ञानरूप हैं और चारों वेद उन्हीं की स्तुति अर्थात् व्याख्या करते हैं। इसके बाद सभी कार्य स्वाभाविक ढंग से चलने लगे।

एक दिन अरिष्टासुर नामक दैत्य बैल का रूप धारण करके ब्रज में घुस आया तथा सारे समाज को आतंकित करने लगा। श्रीकृष्ण को सूचना मिली तो वे वहाँ पहुँचे और ललकार कर बोले :-

बलदर्पहाहं दुष्टानां त्वद्विधानां दुरात्मनाम् ।
इत्यास्फोट्याच्युतोऽरिष्टं तलशब्देन कोपयन् ।। २०।।

❋ *देख तुझ जैसे दुरात्मा दुष्टों के बल का घमंड चूर-चूर कर देने वाला मैं हूँ। इस प्रकार ललकारकर भगवान् ने ताल ठोकी और उसे क्रोधित करने के लिये वे अपने एक सखा के गले में बाँह डालकर खड़े हो गये ।। २०।।*

❋ (१) वीर पुरुष दूसरों को कष्ट देने वाले दुष्टों का ध्यान अपनी ओर खींच लेते हैं और दूसरों को भयमुक्त कर देते हैं। (२) शत्रु को क्रोध दिलाना किन्तु स्वयं स्वाभाविक स्थिति में बने रहना आदर्श रणनीति है।

✿ अरिष्टासुर क्रोध से भरकर आगा पीछा सोचे बिना कृष्ण की ओर झपट पड़ा।

तमापतन्तं स निगृह्य शृंगयोः
पदा समाक्रय निपात्य भूतले ।
निष्पीडयामास यथाऽऽर्द्रमम्बरं कृत्वां
विषाणेन जघान सोऽपतत् ।। २१।।

❋ *भगवान ने जब देखा कि वह अब मुझ पर प्रहार करना ही चाहता है तब उन्होंने उसके सींग पकड़ लिए और उसे लात मारकर जमीन पर गिरा दिया और फिर पैरों से दबाकर इस प्रकार उसका कचूमर निकाला जैसे कोई गीला कपड़ा निचोड़ रहा हो । इसके बाद उसी का सींग उखाड़ करके उसको खूब पीटा जिससे वह पड़ा ही रह गया ।। २१।।*

❋ वीर पुरुष शान्त रहने के साथ पूर्व सतर्क भी रहते हैं। स्वयं आक्रमण नहीं करते-किन्तु आक्रमणकारी अपना बार कर पाये इसके पूर्व ही उसे काबू में ले लेते हैं।

✿ इस प्रकार अरिष्टासुर का भी वध हो गया। उधर कंस राक्षसों के बराबर मारे जाने के कारण परेशान था। नारदजी ने सोचा कि अब इसे भी ठिकाने लगाया जाना चाहिए वे कंस के पास पहुँचे और उसे बतलाया कि कृष्ण वसुदेव देवकी के पुत्र हैं और उन्होंने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तुम्हारे भेजे सारे राक्षसों को मारा है। यह सुनकर कंस क्रोधित होकर वसुदेव को तलवार लेकर मारने दौड़ा। नारद जी ने उसे रोक दिया तो उसने देवकी सहित उन्हें पुन: जेल में डलवा दिया। फिर केशी नामक दैत्य को बुलाकर कृष्ण को मारने के लिए भेज दिया।

इतने में कंस को संतोष न हुआ। यदि कृष्ण केशी के हाथों बच जाते हैं तो उन्हें छल पूर्वक मारने की तैयारी उसने की। अक्रूर को बुलाकर कहा कि तुम कृष्ण बलराम को मथुरा ले आओ। उनसे कहना कि मामा कंस ने मथुरा नगरी तथा एक विशेष समारोह देखने के लिए बुलाया है। नन्द सहित प्रधान गोपों को भी भेंट सामग्री लेकर आने को कहना। उनके यहाँ आने पर मैं उन्हें अपने कुवलयापीड हाथी से अथवा चाणूर, मुष्टिक आदि पहलवानों से मरवा डालूँगा। यदि ये सफल न हुए तो स्वयं ही उन्हें मार दूँगा। अक्रूर समझ गये कि कंस कालवश हो गया है अत: उसे सचेत तो किया किन्तु आज्ञापलन के लिए चल भी पड़े।

इधर केसी बड़े भारी घोड़े का रूप बनाकर व्रज पहुँचा और कृष्ण के हाथों खेल खेल में ही मारा गया। तब नारद जी वहाँ पहुँचे और भगवद् तत्व को जानने वाले देवर्षि उनकी स्तुति इस प्रकार करने लगे :-

त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैधसाम् ।
गूढो गुहाशय: साक्षी महापुरुष ईश्वर: ।। २२।।

❋ *जैसे एक ही अग्नि सभी लकड़ियों में व्याप्त रहती, वैसे एक ही आप समस्त प्राणियों के आत्मा हैं। आत्मा के रूप में होने पर भी आप अपने को छिपाये रखते हैं, क्योंकि आप पञ्चकोशरूप गुफाओं के भीतर रहते हैं। फिर भी पुरुषोत्तम के रूप में, सबके नियन्ता के रूप में और सबके साक्षी के रूप में आपका अनुभव होना ही है ।। २२।।*

❋ (१) परमात्मा सर्वव्यापी है परन्तु हमारे ही मलावरणों के कारण उनकी झलक नहीं मिल पाती। (२) उन्हें सर्वोच्च नियन्ता, सबका साक्षी और महापुरुषों के रूप में जाना समझा जा सकता हैं।

स त्वं भूघरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम् ।
अवतीर्णो विनाशाय सेतूनां रक्षणाय च ।। २३।।

❋ *वही आप दैत्य, प्रमथ और राक्षसों का, जिन्होंने आजकल राजाओं का वेष धारण कर रखा है विनाश करने के लिए तथा धर्म की मर्यादाओं की रक्षा करने के लिए अवतीर्ण हुए हैं ।।२३।।*

❋ (१) दैत्य एवं राक्षस आदि बाहर से तो मनुष्यों जैसे दिखते हैं उनके कर्म और स्वभाव ही राक्षसी होते हैं। (२)धर्म की रक्षा करने के लिये ऐसे छद्मवेशी राक्षसों का विनाश आवश्यक हो जाता है।

✿ नारद जी भगवान की वन्दना करके चले गये। उधर अक्रूरजी कंस का सन्देश लेकर चल पड़े। उनके मन में श्रीकृष्ण, बल्देव एवं अन्य गोपों के प्रति सद्भावना थी किन्तु वे सोचने लगे :-

न मय्युपैष्यत्यरिबुद्धिमच्युत:,
कंसस्य दूत: प्रहितोऽपि विश्वदृक् ।
योऽन्तर्बहिश्चेतस एतदीहितं
क्षेत्रज्ञ ईक्षत्यमलेन चक्षुषा ।। २४।।

मैं कंस का दूत हूँ। उसी के भेजने से उनके पास जा रहा हूँ कहीं वे मुझे अपना शत्रु तो न समझ बैठेंगे ? नहीं वे ऐसा कदापि नहीं समझ सकते। क्योंकि वे निर्विकार हैं, सम, अच्युत हैं, सारे विश्व के साक्षी हैं, सर्वज्ञ हैं, वे चित्त के बाहर भी हैं और भीतर भी। वे क्षेत्रज्ञ रूप में स्थित होकर अन्त:करण की एक-एक चेष्टा को अपनी निर्मल ज्ञान-दृष्टि के द्वारा देखते रहते हैं ।। २४।।

❋ (१) भगवान को उपर्युक्त गुणयुक्त मानना ही उनके प्रति सच्ची निष्ठा है। (२) भगवान स्थूल दृष्टि से ऊपरी बनाव शृंगार नहीं भीतरी स्तर देखते हैं। उन्हें धोखा नहीं दिया जा सकता।

न तस्य कश्चिद् दयित: सुहृत्तमो
न चाप्रियो द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा ।
तथापि भक्तान् भजते यथा तथा
सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थद: ।। २५।।

❋ न तो उन्हें कोई प्रिय है और न कोई अप्रिय। न तो उनका कोई आत्मीय सुहृद है और न तो शत्रु। उनकी उपेक्षा का पात्र भी कोई नहीं हैं। फिर भी जैसे कल्पवृक्ष अपने निकट आकर याचना करने वालों को उनकी मुँहमाँगी वस्तु देता है, वैसे ही भगवान भी, जो उन्हें जिसे प्रकार भजता है उसे उसी रूप में भजते हैं।।२५।।

❋ (१) भगवान के समभाव होने का यहाँ प्रतिपादन किया गया है। (२) भगवान से जो माँगो वही मिल जायगा-यह धारणा गलत है। उनसे ओछे स्वार्थों की पूर्ति करना-उनको ओछा व्यक्ति मानना जैसा ही है, उनसे

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ माँगना उन्हें श्रेष्ठ मानने का प्रमाण है। वे ओछी दृष्टि वाले को ओछा और श्रेष्ठ दृष्टि वाले को श्रेष्ठ मानकर उसके साथ उसी के अनुरूप व्यवहार करते हैं।

❁ इस प्रकार सोचते हुए अक्रूर जी नन्दगाँव पहुँच गये। अक्रूर रिश्ते में वसुदेवजी के भाई लगते थे। नन्दबाबा तथा कृष्ण-बल्देव ने उनका यथोचित आदर-सत्कार किया, उनके व्यवहार से अक्रूरजी की सारी थकान चली गई। सायंकालीन भोजन के बाद भगवान श्रीकृष्ण उनसे चर्चा करने बैठे। अपने परिजनों की कुशलता पूछते हुए वे कहने लगे-

किं नु नः कुशलं पृच्छे एधमाने कुलामये।
कंसे मातुलनाम्न्यंग स्वानां वस्तत्प्रजासुच।। २६।।

❋ *हमारा नाम मात्र का मामा कंस तो हमारे कुल के लिए भयंकर व्याधि है। जब तक उसकी बढ़ती हो रही है, तब तक हम अपने घर वालों और उनके बाल-बच्चों का कुशल मंगल क्या पूछें ? २६।।*

❋ (१) दृष्टों का उत्कर्ष समाज के लिए हानिकारक होता है। अक्रूरजी ने कंस के अत्याचारों का वर्णन किया, फिर उसकी आज्ञा उन्हें सुना दी।

श्रुत्वाक्रूरवचः कृष्णो बलश्च परवीरहा ।
प्रहस्य नन्दं पितरं राज्ञाऽऽदिष्टं विजज्ञतुः।। २७।।

❋ *अक्रूर जी की यह बात सुन कर विपक्षी शत्रुओं का दमन करने वाले भगवान श्रीकृष्ण और बलराम जी हँसने लगे और इसके बाद उन्होंने अपने पिता नन्दजी को कंस की आज्ञा सुना दी।। २७।।*

❋ नन्दबाबा ने तुरन्त प्रधान गोपों को बुलाया तथा छकड़े तैयार करने और गोरस एकत्रित करने का निर्देश दिया ताकि प्रातःकाल मथुरा के लिए प्रस्थान कर सकें। मथुरा में होने वाले समारोह को देखने की लालसा अनेक गोप तथा गोप-बालक भी तैयार हो गए। प्रातःकाल सब लोग चल पड़े। कृष्ण अपने माता-पिता के पास जा रहे हैं, वे लौटें या न लौटें। इस आशंका से ब्रज के नर-नारी दुखी थे। कृष्ण ने उन्हें 'मैं आऊँगा' कहकर आश्वस्त किया।

❁ सब लोग रवाना हुए, यमुना किनारे पहुँचकर सबने मुँह धोकर जल पिया। कृष्ण-बलराम को पुनः रथ में बिठाकर अक्रूरजी स्नान करने लगे। जल में गोता लगाकर वे गायत्री मंत्र का जप करने लगे। उन्हें जल के अन्दर दोनों भाई दीखे, आश्चर्य में पड़कर ऊपर आकर रथ पर दृष्टि डाली तो वहाँ भी वे दिखाई दिये। पुनः डुबकी लगाने पर उन्हें भगवान के दिव्य स्वरूप के दर्शन हुए, तब अक्रूरजी भाव-विभोर होकर अपनी दुर्बलताओं को भगवान के समक्ष प्रकट करते हुए उनकी स्तुति करने लगे।

नोत्सहेऽहं कृपणधीः कामकर्महतं मनः ।
रोद्धुं प्रमाथिभिश्चार्हिक्षेयमांयमितस्ततः।। २८।।

❋ *हे प्रभु ! मैं अविनाशी अक्षर वस्तु के ज्ञान से रहित हूँ। इसी से मेरे मन में अनेक वस्तुओं की कामना ओर उनकी पूर्ति करने के संकल्प उठते रहते हैं। इसके अतिरिक्त ये इन्द्रियाँ भी जो बड़ी प्रबल एवं दुर्दमनीय हैं, मन को मथ-मथकर बलपूर्वक इधर-उधर घसीट ले जाती हैं इसलिए इस मन को मैं रोक नहीं पाता।। २८।।*

❋ (१) मन का कार्य बुद्धि के मार्गदर्शन में इन्द्रियों पर अनुशासन बनाये रखना है किन्तु अज्ञान के कारण गलत कामनाओं तथा उनकी पूर्ति के लिए कर्म व्यवस्था में पड़कर मन की शक्तियाँ नष्ट होती रहती हैं, ऐसे क्षीण मन को इन्द्रियाँ बलपूर्वक उल्टे मार्ग पर घसीट ले जाती हैं

अद्भुतानीह यावन्ति भूमौ वियति वा जले।
त्वयि विश्वात्मके तानि किं मेऽदृष्टं विपर्यतः।। २९।।

❋ *अक्रूरजी ने कहा-प्रभो ! पृथ्वी, आकाश या जल में और सारे जगत में जितने भी अद्भुत पदार्थ हैं, वे सब आप ही हैं। क्योंकि आप विश्व रूप हैं। जब मैं आपको देख रहा हूँ, तब ऐसी कौन-सी अद्भुत वस्तु रह जाती है, जो मैंने न देखी हो।। २९।।*

❋ भगवान का विश्व रूप दीख जाने के बाद संसार की हर वस्तु अपनी परिचित तथा अपनी जैसी ही लगने लगती है।

❁ इसी बीच भगवान ने अपना दिव्य रूप समेट लिया। अक्रूर जी जल के बाहर आये और फुर्ती से तैयार होकर रथ में बैठ गये। इस दिव्य दर्शन की चर्चा श्रीकृष्ण से करते हुए चल पड़े। मथुरा पहुँचकर सबने नगर के बाहर एक बाग में डेरा डाल दिया। अक्रूरजी स्नेहवश श्रीकृष्ण-बलदेवजी से घर चलने का आग्रह करने लगे, इन्होंने उचित समय न समझकर उन्हें समझा-बुझाकर विदा कर दिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल से सभी लोग व्यवस्था और तैयारी में लग गये। तीसरे प्रहर श्रीकृष्ण अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भाई तथा मित्रों के साथ मथुरा नगरी देखने निकले। उन्होंने नगर में दुष्ट और सज्जन दोनों ही प्रकार के लोग देखे। दुष्ट व्यक्ति कंस के समर्थक तथा उससे रक्षित थे अत: उद्दण्ड भी थे। सज्जन व्यक्ति कंस के भय से संकुचित रहते थे। श्रीकृष्ण ने निर्भयता से दुष्टों को आतंकित तथा सज्जनों को सन्तुष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। नगर में सुदामा नामक एक माली रहता था, वह बड़ा ज्ञानी और भक्त था। श्रीकृष्ण-बलराम उसके यहाँ पहुँचे, उसने इनका स्वागत किया तथा भावनापूर्वक वन्दना करने लगा।

भवन्तौ खिल विश्वस्य जगत: कारणं परम्।
अवतीर्णाविहाँशेन क्षेमाय च भवाय च ।। ३०।।

❋ *आप दोनों सम्पूर्ण जगत के परम् कारण हैं। आप संसार के अभ्युदय, उन्नति और नि:श्रेयस्-मोक्ष के लिए ही इस पृथ्वी पर अपने ज्ञान, बल आदि अंशों के साथ अवतीर्ण हुए हैं।। ३०।।*

❋ (१) भगवान जगत के आदि कारण हैं। (२) उनका अवतार एक साथ अनेकों अंशों के सहित होता है, वे शरीर में ही सीमित नहीं होते।

✿ इस प्रकार दोनों भाई अपने सखाओं सहित नगर के सभी दर्शनीय स्थल देखते रहे। कई स्थानों पर उद्दण्ड अहंकारी दुष्टों से उनका सामना हुआ, उन्होंने उनकी दुष्टता का उचित दण्ड दिया। कंस के सैनिक उनके समर्थन के लिए आए तो दोनों भाइयों ने मिलकर उन्हें मारपीटकर भगा दिया। उनके द्वारा अनीति के साहसपूर्ण प्रतिकार तथा सज्जनों के सम्मान और समर्थन की अनेक घटनाओं की चर्चा सारे शहर में फैल गयी। दुष्ट आतंकित हो गये तथा जन श्रद्धा उनके पक्ष में हो गयी।

तयोस्तदद्भुतं वीर्यं निशम्य पुरवासिन: ।
तेज: प्रागल्भ्यं रूपं च मेनिरे विबुधोत्तमौ।। ३१।।

❋ *जब नगर निवासियों ने दोनों भाइयों के इस अद्भुत पराक्रम की बात सुनी और उनके तेज, साहस तथा अनुपम रूप को देखा तब उन्होंने यही निश्चय किया कि हो न हो ये दोनों कोई श्रेष्ठ देवता हैं।। ३१।।*

❋ (१) सत्कर्म परायण व्यक्ति जनश्रद्धा के अधिकारी हो जाते हैं। (२) मनुष्य के गुण उसे देवताओं जैसी श्रद्धा दिला सकते हैं।

✿ इस प्रकार एक दिन में ही सारा नगर देखकर, दुष्टों का मनोबल तोड़कर तथा जनमानस अपने पक्ष में करके दोनों भाई अपने डेरे पर लौट आए।

अवनिक्ताङ्घ्रियुगलोभुक्त्वा क्षीरोपसेचनम्।
ऊषतुस्ताँ सुखं रात्रि ज्ञात्वा कंसचिकिर्षितम्।। ३२।।

❋ *फिर हाथ-पैर धोकर श्रीकृष्ण और बलरामजी ने दूध से बने हुए खीर आदि पदार्थों का भोजन किया और कंस आगे क्या करना चाहता है, इस बात का पता लगाकर उस रात को वहीं आराम से सो गये।। ३२।।*

❋ (१) स्वच्छतापूर्वक सात्विक प्रकृति का पौष्टिक आहार करना चाहिये।(२) शत्रु की गतिविधियों का पता लगाकर पहले ही योजना बनाकर अपनी तैयारी रखनी चाहिये। (३) गंभीर स्थिति में भी चिन्ता मुक्त होकर आवश्यक विश्राम करना चाहिये।

✿ उधर कंस रात भर बेचैन रहा, उसके मन में भाँति-भाँति के अशुभ संकल्प उठते रहे, उसी प्रकार के दृश्य दीखते रहे। सबेरे सूर्योदय के साथ ही विशेष समारोह आरम्भ हुआ। रंगभूमि में सभी लोग यथास्थान जा बैठे। कंस के सिंहासन पर बैठते ही पहलवान तालें ठोकने लगे और नगाड़े बजने लगे। नहा-धोकर और संध्यादि से निवृत्त होकर दोनों भाइयों ने जब नगाड़े सुने तो वे भी रंगभूमि देखने चल पड़े।

रंगभूमि के मुख्य द्वार पर ही कुवलियापीड हाथी रास्ता रोके खड़ा था। महावत ने उन्हें जाने का रास्ता देने की अपेक्षा उन पर हाथी दौड़ा दिया। श्रीकृष्ण कुछ देर तक उसके साथ खेल करते रहे, उसे खूब छकाया फिर सूँड़ पकड़कर, गिराकर, उसे महावत सहित मार डाला। दोनों भाइयों ने उसके दाँतों को हाथ में लेकर, सखाओं सहित उन्होंने, रंगभूमि में प्रवेश किया।

मल्लानामशनिर्गृणां नरवर: स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्।
गोपानां स्वजनोऽसताँ शितिभुजां शास्त्रास्वपित्रो: शिशु।।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्वं परं योगिनां।
वृष्णीनाँ परदेवतेति विदितो रंग: गत: साग्रज: ।। ३३।।

❋ *जिस समय भगवान श्रीकृष्ण बलराम जी के साथ रंगभूमि में पधारे, उस समय वे पहलवानों को वज्र कठोर शरीर, साधारण मनुष्य को नर-रत्न, स्त्रियों को मूर्तिमान कामदेव, गोपों को स्वजन, दुष्टों को दण्ड देने वाले शासक, बालकों को माता-पिता के समान और बूढ़ों को शिशु, कंस को मृत्यु, ज्ञानियों को विराट्,*

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योगियों को परमतत्व और भक्त शिरोमणि वृष्णि-वंशियों को अपने इष्ट देव जान पड़े।। ३३।।

❋ (१) भगवान में सभी गुण हैं, उन्हें जो जिस दृष्टिकोण से देखता है उसे वैसे ही दीखते हैं।

✿ श्रीकृष्ण को इस प्रकार कुवलियापीड हाथी से बचकर आते देख चाणूर ने कपट भरे शब्दों में कहा-'आओ राजा कंस को प्रसन्न करने के लिए हम तुम कुश्ती लड़ें। जंगल में ग्वाले लोग कुश्ती बड़े प्रेम से लड़ा करते हैं।' श्रीकृष्ण ने कहा-'ठीक है राजा की प्रसन्नता के लिए हमें प्रयास करना चाहिये, किन्तु-

बाला वयं तुल्यबलैः क्रीडिष्यामो यथोचितम्।
भवेत्रियुद्धं माधर्मः स्पृशेन्मल्ल सभासद् ।। ३४।।

❋ *चाणूर ! हम लोग अभी बालक हैं, इसलिए हम अपने समान बल वाले बालकों के साथ ही कुश्ती लड़ने का खेल करेंगे। कुश्ती समान बल वालों के साथ ही होनी चाहिये, जिससे देखने वाले समुदाय को अन्याय के समर्थक होने का पाप न लगे।। ३४।।*

❋ (१) अनीति करने वाले के साथ-साथ वे भी पाप के भागी होते हैं जो उसे चुपचाप देखकर चुप रह जाते हैं, उसे रोकने का प्रयास नहीं करते।

✿ चाणूर ने कृष्ण की बात सुनकर कहा-'तुम दोनों भाई बालकों या किशोरों की कोटि में नहीं श्रेष्ठ पहलवानों की कोटि में आते हो। तुमने हजार हाथियों के बराबर बलशाली कुबलियापीड को खेल-खेल में ही मार डाला है, इसलिए तुम मुझसे और बलराम मुष्टिक से लड़ो। इसमें कोई अनीति नहीं है।

भगवान तनिक भी विचलित नहीं हुए, जैसे फूलों के गजरे की मार से गजराज विचलित नहीं होता। उन्होंने चाणूर की दोनों भुजाएं पकड़ लीं और अन्तरिक्ष में बड़े वेग से कई बार घुमाया।

भूपृष्ठे पोथयामास तरसा क्षीणजीवितम्।
विप्रस्ताकल्पकेशस्त्रगिन्द्रध्वज इवापतत् ।। ३५।।

❋ *शुकदेवजी बोले- हे परीक्षित ! चाणूर के प्राण तो घुमाने के समय ही निकल गये थे। कृष्ण ने उसे धरती पर दे मारा, उसकी वेशभूषा अस्त-व्यस्त हो गई, केश और मालायें बिखर गईं, वह इन्द्रध्वज की पूजा के लिए खड़े किये बड़े झण्डे के समान गिर पड़ा।। ३५।।*

❋ इधर मुष्टिक ने भी बलराम पर घूँसा चलाया, बदले में बलराम जी ने उसे तमाचा मारा।

प्रवेपितः स रुधिर मुद्वमन् मुखतोऽर्दितः।
व्यसुः पपातोर्व्युपस्थे वाताहत इवाङ घ्रिपः।। ३६।।

❋ *तमाचा लगने से वह काँप उठा और आँधी से खड़े हुए वृक्ष के समान अत्यन्त व्यथित ओर अन्त में प्राणहीन होकर खून उगलता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा।। ३६।।*

❋ (१) दोनों भाई पहले केवल दाँव-पेंच ही खेलते रहे, दुष्ट पहलवानों ने जब उन पर घातक प्रहार किये तो उन्होंने उसका वैसा ही जबाव देकर उन्हें मार डाला।

✿ चाणूर और मुष्टिक को धराशायी देखकर कूट, शल और तोशल नामक पहलवान एक साथ दोनों भाइयों पर टूट पड़े। उन दोनों वीरों ने एक-एक आघात से ही उन्हें ठण्डा कर दिया।

यह अद्भूत पराक्रम देखकर लोग धन्य-धन्य कर उठे। किन्तु कंस अत्यन्त क्रोधित हो उठा। अपने सेवकों से कहने लगा कि इन बालकों को शहर से निकालकर गोपों की सारी सम्पत्ति जब्त कर लो और वसुदेव एवं उग्रसेन को मार डालो। यह सुनकर कृष्ण उछलकर उसके सिंहासन के पास जा पहुँचे। कंस ढाल-तलवार लेकर उन पर वार करने लगा किन्तु कृष्ण ने फुर्ती से उसके वारों से बचकर उसे पकड़ लिया-

प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं,
निपात्य रंगोपरि तुंगमञ्चात्।
तस्योपरिष्टात् स्वयमब्जनाभः,
पपात विश्वाश्रय आत्मतन्त्रः।। ३७।।

❋ *इसी समय कंस का मुकुट गिर गया और भगवान ने उसके केश पकड़कर उसे भी उस ऊँचे मंच से रंगभूमि में गिरा दिया फिर आत्म-नियन्त्रित और सारे विश्व के आश्रय भगवान श्रीकृष्ण उसके ऊपर स्वयं कूद पड़े।। ३७।।*

❋ (१) जो स्वयं अपने आप में नियन्त्रित है वही किसी को आश्रय दे सकता है।

✿ श्रीकृष्ण जैसे ही कंस पर कूदे वैसे ही उसके प्राण निकल गये। यह देखकर न्योग्रोध आदि कंस के आठों भाई बदला लेने की भावना से एक साथ दौड़ पड़े।

तथातिरभसांस्ताँस्तु संयत्तान् रोहिणीसुतः।
अहन् परिघमुद्यम्य पशूनिव मृगाधिपः ।। ३८।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❋ *जब भगवान बलराम जी ने देखा कि वे बड़े वेग से युद्ध के लिए तैयार होकर दौड़े आ रहे हैं, तब उन्होंने परिघ उठाकर उन्हें वैसे ही मार डाला, जैसे सिंह पशुओं को मार डालता है।। ३८।।*

❋ (१) दोनों भाई एक-दूसरे के पूरक बनकर रहते थे । (२) शत्रु का इरादा देखकर उसका प्रतिकार कर लेना रण कौशल है।

✿ कंस वध से देवता और सज्जन लोग प्रसन्न हो उठे तथा उसके भाइयों की पत्नियाँ विलाप करने लगीं, वे पश्चाताप करती हुई कहने लगीं-

अनागसां त्वंभूतानां कृतवान् द्रोहमुल्बणम्।
तेनेमां भोदशां नीतो भुक्तघ्रूक्को लभेत शम ।। ३९।।

❋ *हे स्वामी ! आपने निरपराध प्राणियों के साथ घोर द्रोह किया था, अन्याय किया था, इसी से आपकी यह गति हुई। सच है, जो जगत के जीवों से द्रोह करता है, उनका अहित करता है ऐसा कौन पुरुष शान्ति पा सकता है।। ३९।।*

❋ (१) अपने स्वार्थ या अहंकारवश जो निरपराध प्राणियों को सताता है उसकी दुर्गति अवश्य ही होती है। (२) जो अपने सम्बन्धियों को अनीति करने से रोकता नहीं उन्हें इसी तरह पछताना पड़ता है।

✿ इसके बाद श्रीकृष्ण भाई बलराम जी सहित अपने माता-पिता के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम करके जेल से मुक्त किया। सभी प्रेम विभोर होकर मिले, वसुदेव जी उनकी प्रशंसा करने लगे, पर श्रीकृष्ण ने कहा कि हम इतने समय तक आपको सुख न पहुँचा सके, सेवा न कर सके यह हमारा दुर्भाग्य है।

सर्वार्थसम्भवो देहो जनितः पोषितो यतः।
न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्य शतायुषा।। ४०।।

❋ *पिता और माता ही इस शरीर को जन्म देते हैं और इसका लालन-पालन करते हैं तब कहीं यह शरीर धर्म, अर्थ, काम अथवा मोक्ष की प्राप्ति का साधन बनता हैं यदि कोई मनुष्य सौ वर्ष तक जी कर माता और पिता की सेवा करता रहे तब भी वह उनके उपकार से उऋण नहीं हो सकता।। ४०।।*

❋ (१) माता-पिता कभी भूल करें और बच्चों को उसका विरोध करना पड़े तो उनके उपकार के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए उनकी सेवा तो करनी चाहिये

मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतं शिशुम्।
गुरुं विप्रं प्रसन्नं च कल्पोऽबिभ्रच्छवसन मृतः।। ४१।।

❋ *जो पुरुष समर्थ होकर भी बूढ़े माता-पिता, सती पत्नी, बालक, सन्तान, गुरु, ब्राह्मण और शरणागत का भरण-पोषण नहीं करता वह जीता हुआ भी मुर्दे के समान ही है।। ४१।।*

❋ मुर्दा चाहे जिसका हो उससे घृणा ही होती है और उसे शीघ्र ही नष्ट कर देना उचित समझा जाता है। अपने उत्तरदायित्वों की उपेक्षा करने वाले व्यक्ति के साथ भी ऐसा ही होता है।

एवमाश्वास्य पितरौ भगवान देवकीसुतः।
मातामहं उग्रसेनं यदूनामकरोन्नृपम् ।। ४२।।

❋ *देवकी नन्दन भगवान श्रीकृष्ण ने इस प्रकार अपने माता-पिता को सान्त्वना देकर अपने नाना उग्रसेन को यदुवंशियों का राजा बना दिया।। ४२।।*

❋ उग्रेसन को जब सिंहासन पर बिठाया जाने लगा तो उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा कि आपने अपने पराक्रम से कंस को मारा है अतः आप ही राज्य के अधिकारी हैं। तब श्रीकृष्ण कहने लगे-

न हि राज्येन मे कार्यं नाप्यहं नृप काङ्क्षितः।
न चापिराज्यलुब्धेन मया कंसो निपातितः।। ४३।।
किं तु लोकहितार्थाय कीर्त्यर्थं च सुतस्तव।
व्यंगभूतः कुलस्यास्यं सानुजो विनिपातितः।। ४४।।

❋ *नरेश्वर ! मुझे राज्य से कोई प्रयोजन नहीं है। न तो राज्य का अभिलाषी हूँ और न राज्य के लोभ से मैंने कंस को मारा ही है। मैंने लोकहित के लिए और दुष्टों के दमन की अपनी सनातन प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए भाइयों सहित आपके पुत्र को मार गिराया है, जो कुल का विकृत (सड़ा हुआ) अंग था।। ४३-४४।।*

❋ (१) श्रेष्ठ पुरुष व्यक्तिगत लोभ या यश के लिए नहीं जनहित के लिए ही श्रम करते हैं और खतरे उठाते हैं। (२) जिस प्रकार सड़ा होने पर अपने शरीर का कोई अंग काट दिया जाता है उसी प्रकार अपने स्वजन भी यदि विकृत हों तो उनसे सम्बन्ध तोड़ ही लेना चाहिये।

✿ कंस की दुष्टता से दुखी होकर बड़ी संख्या में भले लोग घर छोड़कर अन्य स्थानों पर जा बसे थे। श्रीकृष्ण ने खोज-खोजकर यदु, वृष्णि, अन्धक, मधु, दाशार्ह और कुकुर वंशीय सभी स्वजनों को बुलाया और सान्त्वना देकर अपने-अपने स्थानों पर बसा दिया। क्योंकि जिनका अधिकार छिन गया है उन्हें पुनः उनका अधिकार दिलाना न्याय की माँग है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्रीकृष्ण एवं बलदेवजी ने राज्य में गणतंत्र की व्यवस्था लागू की, स्वयं पद मुक्त रहकर सबकी सुरक्षा तथा मार्गदर्शन का उत्तरदायित्व स्वीकार किया-

कृष्णसंकर्षणभुजेर्गुप्ता लब्धमनोरथाः।
गृहेषु रेमिरे सिद्धः कृष्णरामगतज्वराः।। ४५।।

❋ *अब सारे के सारे यदुवंशी भगवान श्रीकृष्ण तथा बलराम के बल से सुरक्षित थे। उनकी कृपा से उन्हें किसी प्रकार की व्यथा नहीं थी, दुःख नहीं था। वे कृतार्थ हो गये थे। आज वे अपने-अपने घरों में आनन्द से विहार कर रहे थे।*

।। श्रीकृष्ण कथा द्वितीय अध्याय समाप्त।।

तृतीय अध्याय

त्वां ब्रह्म केचिदवयन्त्युत धर्म मेके
एके पर सदसतोः पुरुषं परेशम्।
अन्येऽवयन्ति नवशक्तियुतं परं त्वां
केचिन्महापुरुषमव्ययमात्मतन्त्रम्।। १।।

❋ *प्रभो ! कोई-कोई आपको ब्रह्म समझते हैं तो दूसरे आपको धर्म कहकर वर्णन करते हैं। इसी प्रकार कोई आपको प्रकृति और पुरुष से परे परमेश्वर मानते हैं, तो कोई (विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञान, क्रिया, योग, प्रह्वी, सत्या, ईशाना, अनुग्रह) नौ शक्तियों से युक्त परम पुरुष तथा क्लेश, कर्म आदि के बन्धन से रहित, पूर्वजों के भी पूर्वज, अविनाशी, आत्म-नियन्त्रित पुरुष विशेष रूप से मानते हैं।। १।।*

❋ (१) एक ही तत्व विभिन्न नामों से जाना जाता है, नाम रूप के विवाद में न पड़कर सारग्रही बनना चाहिये।

✿ कंस को मारकर और उग्रसेन को राजा बनाकर कृष्ण और बलराम नन्दबाबा के पास आए तथा उनके चरणों में प्रणाम करके कहा-हे बाबा ! आप सभी गोपों के साथ ब्रज में जाइये। माँ तथा अन्य स्वजनों को हमारा प्रणाम कहिये। हम लोगों के साथ आपने जो एहसान किये हैं, हम उसका बदला कभी नहीं चुका सकते। आपने आपत्तिकाल में हमारा पालन-पोषण कर वास्तविक माता-पिता की भूमिका निभाई है।

स पिता सा च जननी यौ पुण्णीतां स्वापुत्रवत।
शिशून् बन्धुभिरुत्सृष्टानकल्पैः पोशरक्षणे ।। २।।

❋ *जिन्हें पालन-पोषण न करने के कारण स्वजन-सम्बन्धियों ने त्याग दिया है, उन बालकों को जो लोग अपने पुत्र के समान ही आत्मीयतापूर्वक पालन करते हैं, वे ही वास्तव में उनके माँ-बाप हैं।। २।।*

❋ (१) सज्जन व्यक्ति अपने और पराये का भेदभाव न करते हुए सभी बच्चों को प्यार करते हैं। बच्चों का पालन-पोषण करने तथा योग्य संस्कार देने वाले ही माँ-बाप का सम्मानित पद पा सकते हैं,मात्र जन्म देने वाले नहीं।

✿ इस तरह कृष्ण-बलराम ने नन्दबाबा तथा अन्य गोपों को सम्मान सहित विदा किया। कुछ ही समय बाद वसुदेव ने अभिभावक के दायित्वों का निर्वाह करते हुए अपने दोनों पुत्रों का यज्ञोपवीत संस्कार कराया।

अथ शूरसुतो राजन् पुत्रयाः रामकारयत् ।
पुरोधसा ब्राह्मणैश्च यथावद् द्विजसंस्कृतिम्।। ३।।

❋ *हे राजन् ! इसके बाद वसुदेव जी ने अपने पुरोहित गर्गाचार्य तथा दूसरे ब्राह्मणों से दोनों पुत्रों का विधिपूर्वक द्विजत्व प्रदान करने वाला यज्ञोपवीत संस्कार करवाया।। ३।।*

❋ (१) **जन्मना जायते शूद्रोः संस्कारात् द्विज उच्यते।** (जन्म से सभी शूद्र हैं, संस्कार से ही द्विजत्व की प्राप्ति होती है।) (२) पुरोहित तथा माता-पिता को यथासमय बच्चों के संस्कार कराने चाहिये। (३) यहाँ यज्ञोपवीत संस्कार की महत्ता और व्याख्या भी की जा सकती है।

ततश्च लब्ध संस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ।
गर्गाद् यदुकुलांचार्याद् गायत्रं व्रतमास्थितौ ।। ४।।

❋ *इस प्रकार यदुवंशी के आचार्य गर्गाजी से संस्कार कराकर बलराम जी और भगवान श्री कृष्ण द्विजत्व को*

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राप्त हुए तथा गायत्री व्रत (बुद्धि को सन्मार्ग में प्रतिष्ठित करने की दृढ़ साधना) में लग गये।

❋ (१) यहाँ गायत्री और उसके अर्थ की, व्याख्या की जा सकती है। (२) द्विजत्व एक व्रत है, जाति नहीं। (३) गायत्री की शिक्षाओं को जीवन में धारण करना ही गायत्री उपासना, गायत्री व्रत है। (४) व्रतशील जीवन ही वास्तविक जीवन है।

✪ यज्ञोपवीत संस्कार के बाद दोनों भाइयों की शिक्षण व्यवस्था कर उन्हें योग्य गुरु के पास भेजा गया। यद्यपि मथुरा में भी उनके शिक्षण की व्यवस्था बनायी जा सकती थी, किन्तु घर की अपेक्षा प्रेरणाप्रद वातावरण में दिया गया शिक्षण अधिक प्रभावी होता है, इसीलिए उन्हें घर से दूर गुरुकुल में भेजा गया।

अथो गुरुकुले वासमिच्छन्ताबुपजग्मतुः।
काश्यं सांदीपनिं नाम ह्यवन्तीपुरवासिनम्।। ५।।

❋ अब वे दोनों गुरुकुल में निवास करने की तथा शिक्षण पाने की इच्छा से काश्यप गोत्रीय सान्दीपनि मुनि के पास गये, जो अवन्तीपुर (उज्जैन) में रहते थे।

❋ (१) बच्चों को अपने पास ही रखने का मोह न करते हुए उन्हें प्रेरणाप्रद वातावरण में रखना चाहिये। (२) शिक्षा के प्रति कृष्ण-बलराम भी योग्य विद्यार्थियों जैसे अनुशासनपूर्वक वहाँ रहने लगे।

यथोपश्राद्य तौ दान्तौ गूरौ वृत्तिमनिन्दिताम्।
ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भवत्या देवमिवाद्दतौ ।। ६।।

❋ *उस समय वे बड़े सुसंयत, अपनी चेष्टाओं को सर्वथा नियमित रखे हुए थे। गुरुजी तो उनका आदर करते ही थे, भगवान श्रीकृष्ण और बलरामजी भी गुरु की उत्तम सेवा कैसे करनी चाहिये, यह आदर्श लोगों के सामने रखते हुए बड़ी भक्ति से इष्टदेव के समान उनकी सेवा करने लगे।। ६।।*

❋ (१) संयमित और अनुशासित विद्यार्थी ही शिक्षा पा सकते हैं। (२) योग्य विद्यार्थी गुरु के हृदय में अपना स्थान बना लेते हैं। (३) भगवान आपने आचरण का आदर्श उपस्थित करके ही लोक शिक्षण करते हैं। कृष्ण भक्तों की भी यही पद्धति होती है।

तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः।
प्रोवाच वेदानखिलान् सांगोपनिषदो गुरुः।। ७।।

❋ *गुरुवर सांदीपनि जी उनकी शुद्ध भाव से युक्त सेवा तथा अनुकरण वृत्ति से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने दोनों भाइयों को छहों अंगों और उपनिषदों के सहित वेदों की शिक्षा दी।। ७।।*

❋ (१) शिष्य की पात्रता ही गुरु तत्व को प्रभावित कर सकती है। (२) शिक्षा एकांगी नहीं जीवन के सभी पक्षों का ज्ञान कराने वाली होनी चाहिये।

✪ मनोयोग एवं परिश्रमपूर्वक अध्ययन करने के कारण दोनों भाई शीघ्र ही ज्ञान-विज्ञान में पारंगत हो गये। शिक्षण समाप्त होने पर गुरु की आज्ञा पाकर दोनों भाई मथुरा आ गये। मथुरा के नागरिक उनके वियोग में व्याकुल थे। वे सबसे प्रेमपूर्वक मिले तथा उग्रसेन को राज्य-व्यवस्था संचालन में सहयोग देते हुए मथुरा में निवास करने लगे।

भगवान कृष्ण ने एक दिन अपने सखा उद्धव को बुलाकर कहा, हे उद्धव ! ब्रज से आते समय मैंने अपने माता-पिता, मित्रों तथा अन्य स्नेहियों को आश्वासन दे दिया था कि मैं शीघ्र वापस आऊँगा। किन्तु घटनाओं ने ऐसा मोड़ लिया कि मैं ब्रज नहीं जा सका। अभी भी राज्य संचालन तथा अन्य नागरिक उत्तरदायित्व का कार्य संभालने के कारण मैं ब्रज नहीं जा सकता। उनका अन्य नागरिक कर्तव्यों का उत्तरदायित्व सँभालने के कारण मैं ब्रज नहीं जा सकता। अतः तुम वहाँ जाकर मेरे माता-पिता तथा अन्य स्वजनों से मेरा संदेश कहना तथा उनका कुशल समाचार लेकर आ जाना। कृष्ण का आदेश पा उद्धव ब्रज गये। वहाँ सबसे मिलकर उन्होंने कृष्ण का संदेश सुनाया फिर नन्दबाबा से कहा :-

एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी
रामो मुकुन्दः पुरुषः प्रधानम्।
अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य
ज्ञानस्य चेशात इमौ पुराणौ ।।८।।

❋ *बलराम और श्रीकृष्ण पुराणपुरुष हैं वे सारे संसार के उपादान कारण और निमित्त कारण भी हैं। भगवान् श्रीकृष्ण पुरुष हैं तो बलराम जी प्रधान (प्रकृति) ये ही दोनों समस्त शरीरों में प्रविष्ट होकर पंचभूतों तथा अत्यन्त विलक्षण जो ज्ञान स्वरूप जीव है, उसका संचालन करते हैं। ।।८।।*

❋ (१) जड़ और चेतन दोनों ही ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं। (२) ईश्वर का अंश होने से जीव स्वतः ज्ञानस्वरूप हैं।

✪ भगवान के सर्व व्यापक रूप के बारे में बता कर उद्धव ने कहा वैसे तो तत्व रूप में भगवान सब जगह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। किन्तु अपने आश्वासन के अनुसार कृष्ण कुछ दिनों के बाद अवश्य आयेंगे। माँ यशोदा और आप दोनों धैर्य धारण करें। आप दोनों बहुत भाग्यवान हैं। श्रीकृष्ण को उनका स्मरण है यह जानकर तो सबको प्रसन्नता हुई किन्तु उनके ब्रज में आने के कारण वे दुखी होने लगे। उन्हें लगने लगा कि जैसे किसी ने उनकी सम्पत्ति छीन ली हो। उनके मोह निवारण के लिए उद्धवजी कहने लगे :-

यथा भ्रमरिकादृष्टया भ्राम्यतीव महीयते ।
चित्ते कर्तरि तत्रात्मा कर्तेवाहंधिया स्मृतः ।। ९ ।।

❋ *जब बच्चे अथवा मनुष्य वेग से चक्कर लगाने लगते हैं तब उन्हें सारी पृथ्वी घूमती हुई जान पड़ती है। वैसे ही वास्तव में सब कुछ करने वाला चित्त ही है परन्तु उस चित्त में अहंबुद्धि हो जाने के कारण, भ्रमवश जीव अपने को कर्ता समझने लगता है ।। ८ ।।*

❋ (१) जड़ और चेतन के संयोग से उत्पन्न होने वाले चित्त ही कर्ता है। (२) दुःख का कारण भ्रम है अतः भ्रम का निवारण करना चाहिये।

युवयोरेव नैवायमात्मजो भगवान् हरिः ।
सर्वेषामात्मजो ह्यात्मा पिता माता स ईश्वरः ।। १० ।।

❋ *भगवान् श्रीकृष्ण केवल आप दोनों के ही पुत्र नहीं हैं वे समस्त प्राणियों के आत्मा, पुत्र, पिता, माता और शासक भी हैं ।। १० ।।*

❋ (१) भगवान से कोई भी रिश्ता स्थापित किया जा सकता है क्योंकि वे ही सब कुछ हैं। (२) ईश्वर का अर्थ शासक होता है जो दण्ड और पुरस्कार दोनों दे सकता है अतः उसकी व्यवस्था के प्रति सतर्क एवं सावधान रहना चाहिए।

✿ नन्द यशोदा की ही तरह ब्रजवासी सभी नर-नारी श्रीकृष्ण की याद में व्याकुल थे। उन्हें खाना सोना भी अच्छा नहीं लगता था। ज्ञानी उद्धवजी ने उन्हें आत्मा का स्वरूप समझाते हुए बतलाया कि वे श्रीकृष्ण से शारीरिक स्तर का सम्बन्ध न मानकर आत्मा के स्तर का सम्बन्ध मानें इससे सांसारिक सुख-दुःख से परे हो सकेंगे। उद्धवजी ने कहा :-

आत्मा ज्ञानमयः शुद्धोव्यतिरिक्तोऽगुणान्वयः ।
सुषुप्तिस्वप्नजाग्रद्भिर्मायावृत्तिभिरीयते ।। ११ ।।

❋ *आत्मा माया और माया के कार्यों से पृथक है। वह विशुद्ध ज्ञान स्वरूप एव अवान्तर भेदों से रहित सर्वथा शुद्ध है। कोई भी गुण उसका स्पर्श नहीं कर पाते तथा वह जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से परे है ।। ११ ।।*

❋ (१) जब मनुष्य स्वयं को आत्मा रूप में अनुभव करने लगता है तो सांसारिक सुख दुःख उसे प्रभावित नहीं कर पाते। वह परमार्थ पथ पर बढ़ता हुआ दिव्य आनन्द प्राप्त करता है।

✿ उद्धव ने बतलाया कि श्री कृष्ण ने कहा है कि मेरे विश्वरूप का स्मरण रखने से यह दूरी तथा प्रथकता की कल्पना से होने वाला दुःख शान्त हो जायेगा। उनका संदेश उन्ही के शब्दों में देते उन्होंने कहा।-

एतदन्तः समाम्नायो योगः सांख्यं मनीषिणाम् ।
त्यागस्तपो दमः सत्यं समुद्रान्ता इवापगाः ।। १२ ।।

❋ *भगवान कृष्ण ने कहा है - जिस प्रकार सभी नदियाँ घूम फिर कर समुद्र में ही पहुँचती है, उसी प्रकार मनस्वी पुरुषों का वेदाभ्यास, योगसाधना, आत्मानात्मविवेक, त्याग, तपस्या, इन्द्रियसंयम और सत्य आदि समस्त धर्म, मेरी प्राप्ति में ही समाप्त होते हैं। सबका सच्चा फल है मेरा साक्षात्कार, क्योंकि वे सब मन को निरुद्ध करके मेरे पास पहुँचते हैं ।। १२ ।।*

❋ (१) साधना कर्मकांड आदि को ही सब कुछ नहीं मान लेना चाहिए यह सब जीवन लक्ष्य प्राप्त करने के साधन भर हैं (२) छुद्रता का महानता में परिवर्तन ही आत्म साक्षात्कार या ईश्वर दर्शन है।

✿ ब्रजवासियों की भक्ति भावना तथा उद्धव के ज्ञान का आदान-प्रदान बहुत दिनों तक चलता रहा इससे दोनों पक्षों को बड़ा संतोष मिला। उद्धव बहुत दिनों तक ब्रज में रहे फिर उन्होंने नन्द बाबा, यशोदा मैया तथा अन्य ब्रजवासियों से मथुरा जाने की आज्ञा माँगी। सबसे विदा लेकर वे रथ पर सवार हुए नन्द बाबा तथा अन्य गोपों ने कृष्ण को देने के लिये बहुत सी भेंटें दी तथा आँखों में आँसू भरकर उद्धव से कहा :-

कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया ।
मंगलाचरितैर्दानै रतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ।। १३ ।।

❋ उद्धव जी ! हम सच कहते हैं, हमें मोक्ष की इच्छा बिल्कुल नही हैं। हम भगवान की इच्छा से अपने कर्मों के अनुसार चाहे जिस योनि में जन्म लें- वहाँ शुभ आचरण करें, और उसका फल यही पावें कि हमारे अपने ईश्वर श्रीकृष्ण में हमारी प्रीति हो।। १३ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

❋ (१) सच्चा प्रेम प्रतिदान नहीं चाहता (२) ईश्वर से अपने बुरे कर्मों की क्षमा नहीं श्रेष्ठ कर्म करने की शक्ति और उनके चरणों में प्रेम ही मांगना चाहिये। (३) सिद्धान्त जानने वाले बहादुरी पूर्वक अपने कर्मों का फल भोगने के लिये तैयार रहते हैं। (४) शुभ आचरणों की ओर लगाव होना ही ईश्वर कृपा है।

✪ उद्धव ब्रजवासियों के स्नेह से बड़े प्रभावित हुए। मथुरा आकर कृष्ण से मिले। ब्रजवासियों की भेंट उन्होंने कृष्ण को अर्पित की तथा उनका संदेश कृष्ण को सुनाया। श्रीकृष्ण उनके स्नेह सद्भाव का स्मरण करके गद्गद हो उठे।

एक दिन कृष्ण अपने बड़े भाई बलराम के साथ अक्रूर जी के यहाँ पधारे। अक्रूर ने उन्हें सुन्दर आसन पर बैठाल कर विधि पूर्वक उनका स्वागत किया और कहा हे प्रभु ! यह बड़े सौभाग्य की बात हैं कि कंस अपने अनुयाइयों के साथ मारा गया। उसे मारकर आपने यदुवंश को संकट से उबार लिया है। तथा उसे उन्नत और समृद्ध किया है।

त्वयोदितोऽयं जगतो हिताय
यदा यदा वेदपथः पुराणः ।
बाध्येत पाखण्डपथैरसद्भि
स्तदा भवान् सत्त्वगुणं विभर्ति ।। १४ ।।

❋ *आपने जगत के कल्याण के लिए यह सनातन वेद मार्ग प्रकट किया। जब जब इसे पाखण्ड पथ से चलने वाले दुष्टों के द्वारा क्षति पहुँचती है, तब आप शुद्ध सत्वमय शरीर ग्रहण करते हैं। तथा दुष्टों का संहार करते हैं ।। १४ ।।*

❋ (१) वेद ज्ञान और धर्म मर्यादाओं को लोक कल्याण के लिए ही प्रगट किया गया है (२) जन अकल्याण भगवान सहन नहीं करते। जिस शरीर में तमोगुण का प्रभाव होता है वह अनीति अनाचार करता है, शुद्ध सतोगुणी शरीर का अर्थ है सदा सत्कार्य परायण रहने वाला शरीर।

✪ इस तरह प्रेम पूर्ण वाणी द्वारा अक्रूर ने भगवान कृष्ण की स्तुति की। कृष्ण ने कहा चाचा आप हमारे श्रेष्ठ हितैषी हैं अतः आप पाण्डवों का हित करने तथा उनका कुशल समाचार जानने के लिए हस्तिनापुर जाइये। मैंने सुना है कि पांडु की मृत्यु के बाद पाण्डव अपनी माता कुन्ती के साथ दुख में पड़े हुए हैं। राजा धृतराष्ट्र अपने दुष्ट पुत्र दुर्योधन के अधीन है। अतः वे पाण्डवों के साथ न्याय नहीं कर पाते हैं। आप वहाँ जाकर उनकी क्षति के बारे में सही जानकारी प्राप्त कीजिए। आपके द्वारा वास्तविक जानकारी मिलने पर मैं ऐसा प्रयास करूँगा जिससे मेरे वे सुहृद सुखी हो सकें। अक्रूर से ऐसा कहकर कृष्ण बलराम के साथ वापिस आ गये।

भगवान की आज्ञा पाकर अक्रूर हस्तिनापुर गये। वहाँ वे सबसे मिले कुशल प्रश्नों का आदान प्रदान हुआ। कुन्ती और विदुर ने बताया कि पाण्डवों का प्रभाव देखकर दुर्योधन आदि उनसे जलते हैं, तथा पाण्डवों पर इसी तरह के अत्याचार करते हैं धृतराष्ट्र भी अपने पुत्रों का समर्थन करते हैं। कुन्ती ने कहा हे भाई मैंने सुना है कि हमारे भतीजे बड़े समर्थ हैं, क्या वे हमारी रक्षा करेंगे ? अक्रूर ने कुन्ती को धैर्य बँधाया फिर वे धृतराष्ट्र के पास जाकर उन्हें समझाने लगे, कि आप पाण्डवों के साथ अत्याचार करना बन्द कर दीजिये। क्यों कि मनुष्य कर्म बन्धन से बंधा है अपने कर्मों के फल उसे भोगने ही पड़ते है।

एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ।। १५ ।।

❋ *अक्रूर बोले हे धृतराष्ट्र ! जीव अकेला पैदा होता है और अकेला ही मर कर जाता है। अपनी करनी धरनी का, पाप पुण्य का फल भी अकेला ही भुगतता है।। १४ ।।*

❋ (१) यदि हम दूसरों के कारण पाप करेंगे तो उन्हें तो सुख मिलेगा किन्तु पाप हमें अकेले ही भोगने पड़ेंगे। (२) कर्मफल का सिद्धान्त अकाट्य है।

स्वयं किल्बषमादाय तैस्त्यक्तो नार्थकोविदः ।
असिद्धार्थो विशत्यन्धं स्वधर्मविमुखस्तमः ।। १६ ।।

❋ *जो अपने धर्म से विमुख है- सच पूछिये, तो वह अपना लौकिक स्वार्थ भी नहीं जानता। जिनके लिये वह अधर्म करता है, वे उसे छोड़ देंगे। उसे कभी संतोष का अनुभव न होगा और वह अपने पापों की गठरी सिर पर लादकर स्वयं घोर अन्धकार रूप नरक में जायेगा।। १६ ।।*

❋ (१) परमार्थ में ही वास्तविक स्वार्थ भी है। (२) अधर्म करने वाले को बाहर असहयोग तथा अन्दर असंतोष की दोहरी मार पड़ती है।

✪ अक्रूर ने धृतराष्ट्र को समझाने के लिये बहुत सी बातें कही फिर भी वह नहीं माना। अक्रूर ने

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लौटकर कृष्ण को हस्तिनापुर का सब समाचार कह सुनाया।

मगधराज जरासंध की दो पुत्रियाँ कंस को व्याही थीं। कंस की मृत्यु के बाद उन दोनों ने जाकर जरासंध से सब समाचार कह सुनाया। जरासंध बहुत दुखी हुआ और उसने निश्चय किया कि मैं एक भी यदुवंशी को इस पृथ्वी पर न रहने दूँगा। ऐसा संकल्प कर जरासंध ने विशाल सेना संगठित की तथा मथुरा पर चढ़ाई की। कृष्ण ने जरासंध की विशाल सेना को देखा भयभीत पुरवासियों के धैर्य बँधाया तथा अपने कर्तव्य का ध्यान करने लगे।

एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे ।
संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां बधाय च ।। १७ ।।
अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः संभ्रियते मया ।
विरामायाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित् ।। १८ ।।

❋ *मेरे अवतार का यही प्रयोजन है कि मैं पृथ्वी का बोझ हल्का कर साधु सज्जनों की रक्षा करूँ और दुष्ट दुर्जनों का संहार, धर्म रक्षा के लिये और बढ़ते हुये अधर्म को समय-समय पर रोकने के लिये मैं और भी अनेकों शरीर ग्रहण करता हूँ।। १७-१८ ।।*

❋ (१) सज्जनता की रक्षा के लिये दुष्टता का संहार भी जरूरी है भगवान के भक्तों को ऐसे कार्यों में सहयोग देना चाहिये। (२) सन्तुलन स्थापित करने के लिये समयानुसार ईश्वर के अनेकों अवतार होते रहते हैं।

बलं तदगार्णवदुर्गभैरवं
दुरन्तपारं मगधेन्द्रपालितम् ।
क्षयं प्रणीतं वसुदेवपुत्रयो-
र्विक्रीडितं तज्जगदीशयोः परम् ।। १९ ।।

❋ *परीक्षित ! जरासंध की वह सेना समुद्र के समान दुर्गम, भयावह और बड़ी कठिनाई से जीतने योग्य थी। परन्तु भगवान् श्री कृष्ण और बलराम जी ने थोड़े ही समय में उसे नष्ट कर डाला। वे सारे जगत् के स्वामी हैं तथा मनुष्य लीला कर रहे हैं।*

❋ *(१) जो परिस्थितियाँ दूसरों के लिये भयावह होती हैं। मनस्वी और तेजस्वी व्यक्तित्व उनसे जूझकर सफलता पा लेते हैं। (२) हमें विपत्तियों से न घबराते हुये साहस पूर्वक उनका मुकाबला करना चाहिये।*

✿ जरासंध की सारी सेना मारी गई तथा वह बलरामजी से पराजित हो गया। बलराम जी जरासंध को वरुण पाश में बाँधकर उसका वध करना ही चाहते थे कि कृष्ण भगवान् ने उसे यह समझाकर छुड़ा दिया कि यदि यह जीवित रहेगा तो और सेना इकट्ठी कर लावेगा और हमें पृथ्वी का भार उतारने में सुविधा होगी।

पराजित जरासंध राज्य त्याग कर तपस्या करने को तैयार हो रहा था किन्तु उसके साथियों ने समय का फेर कहकर उसे उत्साहित किया। उत्तेजित जरासंध ने सत्रह बार मथुरा पर आक्रमण किया तथा वह हर बार पराजित होता रहा। अठारहवीं बार उसने पुनः आक्रमण किया। उससे युद्ध छिड़ने वाला था, तभी काल यवन ने मथुरा पर आक्रमण कर दिया। इस तरह से मथुरा के घिर जाने पर बलराम जी के साथ विचार विमर्श करते हैं। कृष्ण ने सोचा यदि हम दोनों से लड़ेंगे तो विपत्ति में फँस जावेंगे मथुरा कोई ऐसा सुरक्षित दुर्ग भी नहीं है जिसमें रहकर दुश्मनों का मुकाबला किया जा सकें।

तस्मादद्य विधास्यामो दुर्गं द्विपददुर्गमम् ।
तत्र ज्ञातीन् समाधाय यवनं घातयामहे ।। २० ।।

❋ *इसलिये आज हम लोग एक ऐसा दुर्ग- ऐसा किला बनायेंगे, जिसमें किसी भी मनुष्य का प्रवेश करना कठिन होगा। अपने स्वजन संबंधियों को उसी किले में पहुँचाकर फिर इस यवन का वध करायेंगे।। २० ।।*

❋ (१) जोश में आकर कुछ भी कर बैठना गलत है, समय अनुसार विचार पूर्वक कार्य करना चाहिये।(२) विपत्ति के समय स्वजनों से परामर्श हितकारी होता है।

✿ बलरामजी से विचार विमर्श कर कृष्ण भगवान ने समुद्र के भीतर एक विशाल दुर्ग का निर्माण कराया। वह द्वारिकापुरी सभी प्रकार की सुविधाओं से सम्पन्न थी। भवन निर्माण के बाद सभी लोकपालों ने भगवान् के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने हेतु अपनी-अपनी भेंट सामग्री प्रस्तुत की।

यद् यद् भगवता दत्तमाधिपत्यं स्वसिद्धये ।
सर्वं प्रत्यर्पयामासुर्हरौ भूमिगते नृप ।। २१ ।।

❋ *परीक्षित ! सभी लोकपालों को भगवान् श्री कृष्ण ने ही उनके अधिकार के लिये शक्तियाँ और सिद्धियाँ दी हैं। जब भगवान श्री कृष्ण पृथ्वी पर अवतीर्ण होकर लीला करने लगे तब सभी सिद्धियाँ उन्होंने भगवान के चरणों में समर्पित कर दी।। २१ ।।*

❋ (१) सभी विभूतियाँ भगवान् की हैं। (२) भगवान के कार्य में सहायता करने के लिये ही अतिरिक्त क्षमतायें मिली हुई हैं। (३) भगवान् द्वारा दिया हुआ अनुदान उन्हीं को अर्पित कर देना चाहिये।

✿ इस तरह द्वारिकापुरी का निर्माण हो जाने पर श्रीकृष्ण ने असुरों को समाप्त करने की रणनीति बनाकर कार्य प्रारम्भ किया:-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमन्त्रितः ।
निर्जगाम पुरद्वारात् पद्ममाली निरायुधः ।। २२।।

❋ *भगवान श्री कृष्ण ने अपने समस्त स्वजन सम्बन्धियों को द्वारिका में पहुंचा दिया शेष प्रजा की रक्षा के लिए बलरामजी को मथुरा पुरी में रख दिया और उनसे सलाह लेकर गले में कमलों की माला पहने बिना कोई अस्त्र शस्त्र लिये स्वयं नगर के बड़े दरवाजे से बाहर निकल आये ।। २२।।*

❋ भगवान कृष्ण को मथुरा पुरी से बाहर निकलता देख काल यवन ने उन्हें पहचान लिया तथा निश्चय किया कि इनसे मैं भी बिना अस्त्र शस्त्रों के ही लड़ूँगा।

इति निश्चित्य यवनः प्रादवन्तं पराङ्मुखम् ।
अन्वधावज्जिघृक्षुस्तं दुरापमपि योगिनाम् ।। २३।।

❋ *ऐसा निश्चय करके जब कालयवन भगवान् श्रीकृष्ण की ओर दौड़ा तब वे दूसरी ओर मुँह करके रणभूमि से भाग चले और योगिदुर्लभ प्रभु को पकड़ने के लिये कालयवन उनके पीछे-पीछे अकेला ही दौड़ने लगा ।। २३।।*

❋ कृष्ण शत्रु के साथ कूटनीति की चाल चल रहे थे, वह सफल हुई। कालयवन समझा कि वे उसके भय के कारण भाग रहे हैं।

पलायनं यदुकुले जातस्य नव नोचितम् ।
इति क्षिपन्ननुगतो नैनं प्रापाहताशुभः ।। २४।।

❋ *कालयवन पीछे से बारंबार आक्षेप करता कि, "अरे भाई तुम तो परमयशस्वी यदुवंश में पैदा हुये हो। तुम्हारा इस प्रकार युद्ध छोड़कर भागना उचित नहीं है।" परन्तु अभी उसके अशुभ निःशेष नही हुए थे, इसलिये वह भगवान को पाने में समर्थ न हो सका ।। २४।।*

❋ (१) अशुभ कर्मों के शेष रहते भगवान को नहीं पाया जा सकता। (२) यदि श्रेष्ठ कुल परम्परा में उत्पन्न व्यक्ति कोई अनुचित कार्य करता है तो उसकी निन्दा होती है।

✿ बार-बार कृष्ण को पुकारते हुए काल यवन उनका पीछा करने लगा। किन्तु कृष्ण रुके नहीं भागते ही चले गये यवन उनके पीछे लगा रहा अन्त में भगवान एक गुफा में प्रवेश कर गये, वहाँ एक व्यक्ति सोया हुआ था।

कृष्ण ने उसे अपना पीताम्बर उढ़ा दिया और छिपकर देखने लगे। कालयवन भी उस गुफा के अन्दर ही घुसा और कहने लगा इसे देखो, मुझे चकमा देकर इतनी दूर ले आया और अब बड़ा साधु बनकर यहाँ मौज से सो रहा है। ऐसा कह उसने उस सोये हुए पुरुष को कस कर लात की ठोकर मारी।

स तावत्तस्य रुष्टस्य दृष्टिपातेन भारत ।
देहजेनाग्निना दग्धो भस्मसादभवत् क्षणात् ।।२५।।

❋ परीक्षित! वह पुरुष इस प्रकार ठोकर मारकर जगाये जाने से रुष्ट हो गया था। उसकी दृष्टि पड़ते ही कालयवन के शरीर में आग पैदा हो गयी और क्षण भर में जल कर राख का ढेर हो गया।

❋ (१) उत्तेजना में भरकर बिना बिचारे कुछ भी कर बैठना हानिकारक सिद्ध होता है।

✿ इस कथा को सुनकर परीक्षित ने शुकदेव जी से उस पुरुष के बारे में पूछा तब उन्होंने बताया कि वह राजा मुचकुन्द थे। राजा ने देवताओं के अनुरोध पर उनका सेनापति बन कर बहुत दिनों तक असुरों से युद्ध किया था। वह अपनी थकावट मिटाने के लिए सो रहे थे। देवताओं ने वरदान दिया कि तुम्हें जो कोई जगायेगा वह तुम्हारी दृष्टि पड़ते ही भस्म हो जावेगा। इस तरह कृष्ण ने युक्ति पूर्वक काल यवन को भस्म करा दिया तथा अपने दिव्य रूप में मुचकुन्द के समक्ष प्रकट हो गये। राजा के पूछने पर कृष्ण ने उन्हें अपना परिचय दिया। अपने भाग्य की सराहना करते हुए राजा ने कृष्ण भगवान की स्तुति करते हुए कहा :-

लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं
कथञ्चिदव्यङ्मयत्नतोऽनघ ।
पादारविन्दं न भजत्यसन्मति-
र्गृहान्धकूपे पतितो यथा पशुः।। २६।।

❋ *प्रभो। यह भूमि अत्यन्त पवित्र कर्मभूमि है, इसमें मनुष्य का जन्म होना अत्यन्त दुर्लभ है। अपने परम सौभाग्य और भगवान् की अहैतुकी कृपा से उसे अनायास ही प्राप्त करके भी जो तुच्छ व्यक्ति विषय सुख के लिए ही सारा प्रयत्न करते रहते हैं, भगवान के चरण कमलों की उपासना नहीं करते सेवा नहीं करते, वे तो ठीक उस पशु के समान हैं, जो तुच्छ तृण के लोभ से अँधेरे कूँए में गिर जाता है ।। २६।।*

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(१) मनुष्य जन्म की दुर्लभता का ध्यान रखें । (२) भजन सेवायां (सेवा करना) ही मानव का उद्देश्य है। (३) विषय भोगों में फंसा रहना मनुष्य को शोभा नहीं देता।

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवे –
ज्जनस्य यर्ह्यच्युत सत्समागमः ।
सत्संगमो यर्हि तदैव सद्गतौ
परावरेशे त्वयि जायते मतिः ।। २७।।

❋ *अपने स्वरूप में एक रस स्थिति रहने वाले भगवन् ! जीव अनादि काल से जन्म मृत्यु रूप संसार के चक्कर में भटक रहा है। जब उस चक्कर से छूटने का समय आता है तब उसे सत्संग प्राप्त होता है। यह निश्चय है कि जिस क्षण सत्संग प्राप्त होता है, उसी क्षण सन्तों के आश्रय, कार्य कारण रूप जगत् के एकमात्र स्वामी आप में जीव की बुद्धि अत्यन्त दृढ़ता से लग जाती है ।। २७।।*

❋ (१) श्रेष्ठ व्यक्तियों की संगति दुखों से छुड़ाकर सद्गति दिला सकती है। (२) भगवान में बुद्धि को लगा देने वाला वातावरण ही सत्संग है।

✪ राजा मुचकुन्द ने भगवान की स्तुति की उन्होंने उन्हें अपनी भक्ति करने का आदेश दिया। भगवान की आज्ञा प्राप्त कर राजा बद्रिकाश्रम में जाकर भगवान की आराधना करने लगे।

भगवान् पुनरावव्रज्य पुरीं यवनवेष्टिताम् ।
हत्वा म्लेच्छबलंनिन्ये तदीयं द्वारकां धनम् ।। २८।।

❋ *इधर भगवान श्री कृष्ण मथुरा पुरी में लौट आये। अब तक काल यवन की सेना ने उसे घेर रक्खा था। अब उन्होंने म्लेच्छों की सेना का संहार किया और उसका सारा धन छीन कर द्वारिका को चले ।। २८।।*

❋ (१) बिना सेनापति की सेना अव्यवस्थित हो जाती है और अव्यवस्थित लोग शक्तिशाली हों तो भी नष्ट हो जाते हैं।

✪ जिस समय भगवान कृष्ण यवन सेना का धन छीन ले जा रहे थे । उसी समय मगधराज जरासंध ने उन पर बड़े वेग से आक्रमण किया।

विलोक्य वेगरभसं रिपुसैन्यस्य माधवौ ।
मनुष्यचेष्टामापन्नौ राजन् दुद्र वतुर्द्रुतम् ।। २९।।

❋ *परीक्षित ! शत्रु सेना का प्रबल वेग देखकर भगवान श्रीकृष्ण और बलराम मनुष्यों की सी लीला करते हुए उसके सामने से बड़ी फुर्ती से सभा से निकले ।। २९।।*

❋ (१) आपत्ति के समय शीघ्र निर्णय एवं चुस्ती और फुर्ती आवश्यक है।

✪ कृष्ण एवं बलराम को भागते देख जरासंध ने अपना रथ सेना के साथ उनका पीछा किया किन्तु वह उन्हें पा नहीं सका। जब दोनों भाई थक गये तब वे बहुत ऊँचे प्रवर्षण पर्वत पर चढ़ गये। जरासंध ने देखा कि दोनों भाई पर्वत में छिप गये हैं तब उसने बहुत सा ईधन एकत्र कराकर पहाड़ में आग लगवादी।

जब आग जलने लगी तब कृष्ण और बलराम जरासंध के सैनिकों की नजर बचाकर उनके घेरे से बाहर आ गये। जरासंध ने समझा दोनों जलकर मर गये। और वह अपनी राजधानी वापिस लौट गया।

भगवान कृष्ण द्वारिका पहुँच कर सुखपूर्वक रहने लगे। इसके बाद में बलराम जी का रेवती से विवाह हुआ। कृष्ण भगवान का भी विदर्भ नरेश भीष्मक की कन्या रुकमिणी से विवाह हुआ।

श्रियस्तु भागः सजज्ञे रत्यर्थं पृथिवी तले ।
भीष्मकस्य कुले साध्वी रुक्मिणी नाम नामतः ।।३०।।

❋ *राजा भीष्मक की साध्वी कन्या रुकमिणी लक्ष्मी का अवतार थी। कृष्ण ने उन्हें ही पत्नी रूप में स्वीकार किया ।। ३०।।*

❋ भगवान के अवतार के साथ-साथ उनकी शक्ति भी अवतरित होती है। (२) गुणवती कन्या लक्ष्मी के समान होती है और उसे लोग सम्मान पूर्वक स्वीकार करते हैं।

✪ विवाह के उपरान्त दोनों भाई सुख पूर्वक द्वारिका में रहकर यदुवंशियों का मार्ग दर्शन करने लगे। बहुत समय बीत जाने के बाद कृष्ण मन में यह इच्छा हुई कि मैं अपने समान तेजस्वी एवं योग्य पुत्र समाज को दूँ। ऐसा सोचकर उन्होंने पुत्र प्राप्ति की इच्छा से घोर तप किया। इस घटना का विवरण कृष्ण ने इस तरह बताया।

ब्रह्मचर्य महाद्घोरं चीर्त्वा द्वादशवार्षिकम् ।
हिमवत् पार्श्वमभ्येत्य यो मया तपसार्जितः ।
समान व्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत ।
सनत्कुमारस्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः ।।३१।।

❋ *बारह वर्षों तक ब्रह्मचर्य व्रत पालन करते हुए मैने अपनी पत्नी रुकमिणी के साथ हिमालय में तपस्या*

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

की। उसी तप के प्रभाव से मुझे सनत् कुमार जैसा तेजस्वी प्रद्युम्न नामक पुत्र प्राप्त हुआ ।। ३१।।

❋ (१) आदर्श दम्पति ही श्रेष्ठ संतति उत्पन्न कर सकते हैं (२) सन्तान पैदा महान जिम्मेदारी का कार्य है तथा इसके लिए अपने शरीर और मन को उपयुक्त बनाना पड़ता है। इसके लिए कठोर प्रयास करना ही तप है।

❁ श्री कृष्ण अपने सुहृद पाण्डवों के समाचार भी मँगाते रहते थे। दुर्योधन आदि की अनीति के करण वे परेशान थे। भगवान कृष्ण द्वारिका की व्यवस्था से समय निकालकर उनसे मिलने इन्द्रप्रस्थ गये। पाण्डवों को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने नव विवाहिता द्रौपदी सहित उनका स्वागत किया तथा उनके दिव्य स्नेह का अनुभव करके स्वयं को धन्य माना। श्रीकृष्ण अपनी बुआ कुन्ती के पास गये । और उन्हें प्रणाम किया। साध्वी कुन्ती कृष्ण के अलौकिक स्वरूप को समझती थी, वे गद्गद् होकर कहने लगी।-

न तेऽस्ति स्वपरभ्रान्तिर्विश्वस्य सुहृदात्मनः।
तथापि स्मरतां शाश्वत् क्लेशान् हंसि हृदि स्थितः।।३२।।

❋ *मैं जानती हूँ कि तुम सम्पूर्ण जगत के परम हितैषी सुहृद और आत्मा हो। यह अपना है और यह पराया, इस प्रकार की भ्रान्ति तुम्हारे नहीं। ऐसा होने पर भी, श्रीकृष्ण ! जो सदा तुम्हें स्मरण करते हैं, उनके हृदय में आकर तुम बैठ जाते हो और उनको क्लेश परम्परा को सदा के लिए मिटा देते हो, ।। ३२।।*

❋ (१) भगवान सबके सुहृद हैं। (२) परिष्कृत आत्मा ही परमात्मा है। (३) अपने आत्म स्वरूप को जानना ही परमात्मा का स्मरण करना है। (४) अन्तः करण में परमात्मा का प्रकाश अनुभव होने पर सारे क्लेश मिट जाते हैं।

❁ भगवान कृष्ण ने कुन्ती को सान्त्वना दी। कुछ दिन इन्द्रप्रस्थ में रहकर पाण्डवों का मार्गदर्शन किया और फिर वे द्वारिका लौट आये। एक दिन द्वारिका के कुछ बालक घूमने के लिए गये। बहुत देर तक खेलने के बाद उन्हें प्यास लगी पानी की तलाश में वे कुएं के पास गये। कुएँ के अन्दर उन्होंने एक बड़ा भारी गिरगिट देखा। बालकों ने कृष्ण भगवान से सारा हाल बताया कृष्ण ने जाकर उस गिरगिट को निकाला उनका स्पर्श पाकर वह देव पुरुष में बदल गया।

श्री कृष्ण के पूछने पर उस दिव्य पुरुष ने अपने पूर्व जन्म का हाल सुनाया। उसने बतलाया कि मैं इक्ष्वाकु का पुत्र नृग हूँ। मैंने जीवन भर सुपात्रों को गौ, वस्त्र, तथा विद्या का दान किया किन्तु एक बार प्रमादवश भूल हो गयी। एक अपरिग्रही ब्राह्मण की गाय मेरी गायों में मिल गयी। सतर्कता के अभाव में मैं उसे न समझ सका और वह गाय अन्य ब्राह्मण को दान करदी। इस तथ्य का पता लगने पर दोनों ब्राह्मणों ने गाय लेने से इन्कार कर दिया। उन्हें क्लेश पहुँचाने का पाप मुझे लगा। मेरी मृत्यु के बाद यमराज ने मुझे बतलाया कि आपके पुण्यों के कारण आपको दिव्यलोकों का निवास मिलेगा - किन्तु पाप का फल तो भोगना ही पड़ेगा। पहले आप क्या भोगना चाहते हैं। मैने पहिले पाप का भोगना स्वीकार किया और गिरगिट योनि में कुछ समय रहना पड़ा।

ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव ।
स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्सन्दर्शनार्थिनः ।। ३३।।

❋ *नृग बोले हे प्रभो ! मैं ब्राह्मणों का सेवक दानी और आपका भक्त था, इसलिए इस स्थिति में भी पूर्व जन्म की स्मृति और आपके दर्शन की इच्छा बनी रही।। ३३।।*

❋ -(१) ब्राह्मणों के सेवक का अर्थ सदाचारी तथा परमार्थी व्यक्तियों की सेवा सहायता करने वाला। (२) अपने शुभ कर्म विपरीत समय में सहायक सिद्ध होते हैं। (३) अपना श्रेष्ठ चिन्तन हीन स्थिति से उबार लेता है।

❁ कृष्ण को अपने पूर्व जन्म की कथा सुनाकर सबके देखते देखते राजा नृग स्वर्ग को चले गये। बहुत दिन बीत जाने पर बलराम जी की इच्छा ब्रज जाने की हुई। वे रथ पर सवार होकर ब्रज पहुँचे उनसे मिलकर नन्द यशोदा तथा अन्य गोप प्रसन्न हुये। बलराम जी प्रेम पूर्वक ब्रज में निवास करने लगे।

जब बलराम ब्रज में निवास कर रहे थे। उसी समय राजा पौंड्रक ने संदेश भेजा। उसे उसके चापलूस दरबारियों ने बहका रखा था कि आप ही वासुदेव हैं तथा आपने ही पृथ्वी का भार उतारने के लिये अवतार लिया है। कृष्ण झूठ मूठ ही अवतार बना फिरता है। द्वारिका पहुँचकर पोंड्रक के दूत ने कृष्ण से उसका संदेश सुनाया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वासुदेवोऽवतीर्णोऽहमेक एव न चापरः ।
भूतानामनुकम्पार्थं त्वं तु मिथ्याभिधां त्यज।। ३४ ।।

❋ *एक मात्र मैं ही वासुदेव हूँ। दूसरा कोई नहीं है। प्राणियों पर कृपा करने के लिये मैंने ही अवतार ग्रहण किया है। तुमने झूठ-मूठ अपना नाम वासुदेव रख लिया है, अब उसे छोड़ दो।। ३४।।*

❋ (१) चापलूस साथी व्यक्ति को बहकाकर इसी तरह आसमान पर चढ़ा देते हैं। अतः चापलूसों से बचना चाहिये।

✪ दूत से पोंड्रक का संदेश सुनकर कृष्ण ने कहा अपने स्वामी से कह देना मैं उसी के ऊपर अपने शस्त्र छोड़ूँगा तथा वहीं अपने नाम का भी त्याग करूँगा। दूत वापिस चला गया। तब कृष्ण ने काशीपुरी पर चढ़ाई कर दी। उनका सामना करने हेतु नकली वासुदेव पौंड्रक अपने मित्र काशिराज के साथ रण भूमि में लाया गया उसने विष्णु का नकली वेष बना रखा था। वह सारा का सारा वेष बनाबटी था। मानों कोई अभिनेता रंगमंच पर अभिनय करने के लिये आया हो उसकी वेष भूषा अपने समान देखकर भगवान् श्रीकृष्ण खिलखिलाकर हँसने लगे ।। १५।।

श्री कृष्ण ने पौंड्रक की सारी सेना तहस नहस कर डाली और पौंड्रक से कहा तूने संदेश भिजवाया था कि मेरे शस्त्र धारण करना छोड़ दो अब तुम्हारे ऊपर ही अपने शस्त्र छोड़ रहा हूँ।

इति क्षिप्त्वा शितैर्वाणैर्विरथीकृत्य पौण्ड्रकम् ।
शिरोऽवृश्चद् रथांगेन वज्रेणेन्द्रो यथा गिरेः ।।३५।।

❋ *भगवान् श्री कृष्ण ने इस प्रकार पौण्ड्रक का तिरस्कार करके तीखे बाणों से उसके रथ को तोड़ फोड़ डाला और चक्र से उसका सिर ही उतार लिया जैसे इन्द्र ने अपने वज्र से पहाड़ की चोटियों को उखाड़ दिया था । ।। ३५।।*

❋ (१) दूसरों के बहकावे में आने वाले नकलचियों की दुर्दशा होती है। (२) वास्तविकता के सामने अवास्तविकता नहीं टिक सकती।

✪ श्रीकृष्ण पौण्ड्रक तथा उसके मित्र काशिराज को दण्डित कर द्वारिका लौट गये। यहाँ ब्रज में बलराम जी ने द्विविद नामक उत्पाती से ब्रज को मुक्ति दिलाई। द्विविद पहले सुग्रीव का मित्र था। इधर भौमासुर से उसकी मित्रता हो गयी थी। श्रीकृष्ण द्वारा भौमासुर के मारे जाने के कारण वह बदला लेने के लिए ब्रज वालों को अनेक प्रकार से सताया करता था। बलराम जी ने देखा कि यह बल के घमण्ड में अनीति ही करता जाता है तो उसे मारने का निश्चय कर लिया। शुकदेव जी बोले :-

एवं निहत्य द्विविदं जगद्व्यतिकरावहम् ।
संस्तूयमानो भगवज्जनैः स्वपुरमाविशत् ।। ३६।।

❋ *परीक्षित! द्विविद ने जगत् में बड़ा उपद्रव मचा रक्खा था, भगवान बलराम जी ने उसे मार डाला फिर वे द्वारिकापुरी में लौट आये। उस समय सभी पुरजन - परिजन भगवान् बलरामजी की प्रशंसा कर रहे थे। ।। ३६।।*

❋ (१) आततायी दण्डनीय हैं। (२) व्यक्ति के आचरण से ही उसका उत्थान पतन होता है। रामावतार के समय द्विविद भगवान का कृपा पात्र था क्योंकि वह सदाचारी था। दुराचरण करने के कारण वही द्विविद भगवान का बैरी हो गया और उन्होंने उसे मार डाला।

✪ भगवान् शरीर, इन्द्रियों और गुणों से परे हैं। वे अवतार रूप में सारे शरीर धर्मों का पालन कैसे करते हैं यह देखने के लिए नारदजी द्वारिका पहुंचे। भगवान ने उनका स्वागत किया तथा समझाया कि मैं सब गुणों से परे भले हूँ किन्तु देह धारण करके मनुष्यों को उत्तम जीवन जीने, व्यवहारिक मार्ग दर्शन देता हूँ। आप इसी दृष्टि से मेरे क्रिया कलापों को देखें वे बोले:-

ब्रह्मन् धर्मस्य वक्ताहं कर्ता तदनुमोदिता ।
तच्छिक्षयँल्लोकमिममास्थितः पुत्र मा खिदः ।। ३७।।

❋ *देवर्षि नारद जी! मैं ही धर्म का उपदेशक, पालन करने वाला और उसका अनुष्ठान करने वालों का अनुमोदनकर्ता भी हूँ। इसलिये संसार को धर्म की शिक्षा देने के उद्देश्य से ही मैं इस प्रकार धर्म का आचरण करता हूँ। मेरे प्यारे पुत्र ! तुम मेरी यह योग माया देखकर मोहित मत होना। ।। ३७।।*

❋ (१) ईश्वर धर्म रक्षक है । तथा अपने आचरण द्वारा लोगों को शिक्षण देने के लिए ही उनका अवतार होता है। (२) उपदेश देनें से पहले हमें स्वतः धर्माचरण करना चाहिए (३) धर्माचरण करने वाला ही वास्तविक धर्मप्रचारक होता है।

✪ नारद ने बारीकी से भगवान कृष्ण की दिनचर्या का अध्ययन किया। भगवान की दिनचर्या इस प्रकार थी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः।
दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ।। ३८।।

❋ *भगवान श्री कृष्ण प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त में उठ जाते और हाथ मुँह धोकर अपने मायातीत आत्मस्वरूप का ध्यान करने लगते। उस समय उनका रोम-रोम आनन्द से खिल उठता था। ।। ३८।।*

❋ (१) प्रातः काल उठने के लाभ (२) हमें भी अपने आत्मा स्वरूप का स्मरण करना चाहिए। जिससे हम कृष्ण जैसे बन सकें । (३) अपने स्वरूप को भूले रहने के कारण ही हम दुखी हैं।

अथाप्लुतोऽम्भस्यमले यथाविधि
क्रियाकलापं परिधाय वाससी ।
चकार संध्योपगमादि सत्तमो
हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः।। ३९।।

❋ *इसके बाद वे विधि पूर्वक निर्मल और पवित्र जल में स्नान कर फिर शुद्ध धोती पहन कर दुपट्टा ओढ़कर यथाविधि नित्यकर्म सन्ध्या वंदन आदि करते। इसके बाद हवन करते और मौन होकर गायत्री जप करते। क्यों नहीं, वे सत्पुरुषों के आदर्श जो हैं ।। ३९।।*

❋ (१) हमें अपनी दिनचर्या में इसी प्रकार नियमित होना चाहिए। (२) गायत्री और यज्ञ भारतीय संस्कृति के माता-पिता हैं। हमें अपने इन माता पिता की प्रतिदिन सेवा करनी चाहिए।

गोविप्रदेवतावृद्धगुरून् भूतानि सर्वशः ।
नमस्कृत्यात्मसम्भूती मंगलानि समस्पृशत् ।। ४०।।

❋ *तदनन्तर अपनी विभूतियाँ गौ, ब्राह्मण देवता, कुल के बड़े बूढ़े गुरुजन और समस्त प्राणियों को प्रणाम करके मांगलिक वस्तुओं का स्पर्श करते ।। ४०।।*

❋ *(१) माँगलिक स्पर्श का अर्थ है उनकी उचित देख-रेख व सुरक्षा तथा उपयोगिता की व्यवस्था बनाना।*

तत्राहुर्ब्राह्मणाः केचिदासीना ब्रह्मवादिनः ।
पूर्वेषां पुण्ययशसां राज्ञां चाकथयन् कथाः ।। ४१।।

❋ *कोई-कोई व्याख्या कर कुशल ब्राह्मण वहाँ बैठकर वेदमन्त्रों की व्याख्या करते और कोई पूर्वकालीन पवित्र कीर्ति नर-पतियों के चरित्र कहकर जाते। ।। ४१।।*

❋ (१) स्वाध्याय एवं सत्संग आवश्यक हैं। (२) श्रेष्ठ पुरुषों के चरित्र सुनने से स्वयं भी उनके जैसा बनने की प्रेरणा मिलती है।

❁ इस तरह गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए तथा अपने आचरण द्वारा लोगों को सदाचरण की प्रेरणा देते हुए कृष्ण द्वारिका में निवास कर रहे हैं। मगधराज जरासंध ने नरमेध करने के विचार से बहुत से राजाओं को कैद कर रखा था। एक दिन उन राजाओं की करुण कथा सुनाने के लिए एक व्यक्ति कृष्ण भगवान के पास आया उसने राजाओं का संदेश इस तरह सुनाया।

लोके भवाञ्जगदिनः कलयावतीर्णः
सद्रक्षणाय खलनिग्रहणाय चान्यः।
कश्चित् त्वदीयमतियाति निदेशमीश किं
वाजनः स्वकृतमृच्छति तन्न विध्मः ।। ४२।।

❋ *आप स्वयं जगदीश्वर हैं और आपने जगत में ज्ञान बल आदि कलाओं के साथ इसलिये अवतार ग्रहण किया है कि संतों की रक्षा करें और दुष्टों को दण्ड दें। ऐसी अवस्था में प्रभो ! जरासन्ध आदि कोई दूसरे राजा आपकी इच्छा और आज्ञा के विपरीत हमें कैसे कष्ट दे रहे हैं ? हमारे दुष्कर्मों के फल स्वरूप ऐसा हो रहा है यह बात भी समझ में नहीं आती क्योंकि हम सब आपके आदर्शों के अनुयायी हैं ।। ४२।।*

❋ (१) भगवान का अवतार समर्थ व्यक्ति के रूप में होता है अवतार का उद्देश्य संतों की रक्षा करने एवं दुष्टों को दण्ड देने के लिए होता है। (२) भक्तको भगवान के आदर्शों का अनुयायी होना चाहिए।

❁ दूत ने राजाओं का संदेश देकर उनकी मुक्ति की प्रार्थना की। तभी देवर्षि नारद भी वहां पहुंचे। श्रीकृष्ण ने उनका स्वागत करके उनसे पाण्डवों के समाचार पूछे। नारदजी ने बतलाया कि युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ कर रहे हैं। और उसमें आपके दर्शन भी चाहते हैं। नारद जी से समाचार पूछकर श्रीकृष्ण ने सभासदों से जरासंध के बारे में रायली । सभी उसे दण्डित करने के पक्ष में थे। उद्धव जी ने उसका वध करने के लिए महाबली भीमसेन का उपयोग करने की सलाह दी। वे बोले :-

स वै दुर्विषहो राजा नागायुतसमो बले ।
बलिनामपि चान्येषां भीमं समबलं विना ।। ४३।।

❋ *जरासन्ध बड़े-बड़े लोगों के भी दाँत खट्टे कर देता है, क्योंकि दस हजार हाथियों का बल उसे प्राप्त है। उसे यदि हरा सकते है तो केवल भीमसेन, क्योंकि वे भी वैसे ही बलधारी हैं ।। ४४।।*

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❋ (१) युक्ति पूर्वक तथा सबकी राय से ही कार्य करना चाहिए ।(२) जो जिस काम के करने योग्य है वही उसे कर सकता है।

✪ उद्धव जी ने अपना मत स्पष्ट करते हुए कहा कि राजसूययज्ञ राजनैतिक संतुलन लाने के लिए किया जाता है। अत: आप पाण्डवों के आग्रह को भी मानिये। तथा राजसूय यज्ञ की सार्थकता के लिए, भीम से, अन्यायी राजा जरासन्ध का वध करा दीजिए।

इत्युद्धववचो राजन् सर्वतोभद्रचुच्यतम् ।
देवर्षिर्यदुवृद्धाश्च कृष्णश्च प्रत्य पूजयन ।। ४४।।

उद्धव की यह सलाह हर प्रकार से कल्याणकारी थी। देवर्षि नारद, यदुकुल के वयो वृद्ध तथा स्वयं भगवान ने भी उसका समर्थन किया।

(१) सलाह विचार पूर्वक हितकारी ही दी जावें (२) उचित सलाह किसी के द्वारा भी दी जाय श्रेष्ठ जनों को उसका समर्थन करना चाहिए।

भगवान श्रीकृष्ण ने दूत को आश्वासन देकर विदा किया तथा स्वयं इन्द्र प्रस्थ के लिए प्रस्थान कर दिया।

।। श्री कृष्ण कथा तृतीय अध्याय समाप्त ।।

चतुर्थ अध्याय

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

यस्मिन्निदं यतश्चेदं तिष्ठत्यप्येति जायते ।
मृण्मयेष्विव मृज्जातिस्तस्मै ते ब्रह्मणे नम: ।। १।।

❋ *यह कार्य कारण रूप जगत् जिनसे उत्पन्न होता है, जिनमें स्थित है और जिनमें लीन होता है तथा जो मिट्टी की वस्तुओं में व्याप्त मृत्तिका के समान सबमें ओत प्रोत है - उन परब्रह्मस्वरूप आपको मैं नमस्कार करता हूँ । ।। १।।*

❋ (१) यह विश्व ब्रह्माण्ड ही परमात्मा का सगुण साकार रूप है। (२) विराट ब्रह्म को नमस्कार करना अपनी श्रद्धा को विश्वहित से जोड़ देना है।

✪ भगवान कृष्ण इन्द्रप्रस्थ पहुँचे। युधिष्ठिर तथा अन्य पाण्डवों ने उनका स्वागत किया। एक दिन कृष्ण तथा अन्य सभासद राज सभा में बैठे थे। युधिष्ठिर ने कृष्ण को आदरपूर्वक प्रणाम कर राजसूय यज्ञ करने की इच्छा व्यक्त की और कहा :-

न ब्रह्मण: स्वपरभेदमतिस्तव स्यात् ।
सर्वात्मन: समदृश: स्वसुखानुभूते: ।
संसेवतां सुरतरोरिव ते प्रसाद:
सेवानुरूपमुदयो न विपर्ययोऽत्र ।। २।।

प्रभो ! आप सबके आत्मा समदर्शी और स्वयं आत्मानन्द के साक्षात रूप हैं, स्वयं ब्रह्म हैं। आपमें यह मैं हूँ और यह दूसरा, यह अपना है और यह पराया इस प्रकार का भेदभाव नहीं है। फिर भी जो आपकी सेवा करते हैं, उन्हें उनकी भावना के अनुसार फल मिलता ही है- ठीक वैसे ही, जैसे- कल्पवृक्ष की सेवा करने वाले को। उस फल में जो न्यूनाधिकता होती है, वह तो न्यूनाधिक सेवा के अनुरूप ही होती है। इससे आप में विषमता या निर्दयता आदि दोष नहीं आते ।। २।।

❋ (१) भगवान निष्पक्ष हैं उनमें मेरे तेरे का भेद नहीं है। (२) उन्होंने कुछ सिद्धान्त निर्धारित कर रखे हैं-व्यक्ति उन्हीं के अनुसार अपनी भावना तथा सेवा के अनुरूप फल पाते हैं।

✪ भगवान कृष्ण ने युधिष्ठिर की प्रशंसा करते हुए उनके राजसूय यज्ञ करने के विचार का समर्थन किया और कहा:-

विजित्य नृपतीन् सर्वान् कृत्वा च जगतीं वशे ।
सम्भृत्य सर्वसम्भारानाहरस्व महाक्रतुम् ।। ३।।

❋ *महाराज ! पृथ्वी के समस्त नरपतियों को जीतकर सारी पृथ्वी को अपने वश में करके और यज्ञोचित सम्पूर्ण सामग्री एकत्रित करके फिर इस महायज्ञ का अनुष्ठान कीजिये ।। ३।।*

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❋ (१) भगवान अच्छे विचारों के समर्थक तथा उन्हें पूरा करने वाले हैं। (२) राजसूय यज्ञ राजनैतिक एकता का प्रतीक है उसके लिए उचित पूर्व तैयारी आवश्यक है।

✿ यद्यपि आप हर प्रकार से चक्रवर्ती सम्राट पद के उपयुक्त हैं। किन्तु जब तक सभी नरेशों को अपने समर्थन में नहीं लिया जाता तब तक यह क्रिया सम्पन्न नहीं हो सकती। इसमें आपको कोई कठिनाई भी नहीं है। किन्तु जरासंध इसमें प्रधान बाधा है उसे मारे बिना यह कार्य नहीं हो सकता इसने बहुत से राजाओं को कैद में कर रक्खा है। अत: जरासंध को मारकर राजाओं को मुक्त कराइये तभी आपका आयोजन सफल हो सकेगा।

युधिष्ठिर ने कहा जब आप ही उससे आतंकित हैं तो हम उसे कैसे जीत सकेंगे ? कृष्ण ने युधिष्ठिर को उत्साहित किया। उन्हें नीति का महत्व समझाते हुए कहा-

एतावदेव पुरुषै: कार्य हृदतोषणम् ।
नयेन विधिदृष्टेन यदुपक्रमते परान् ।।
सुनयस्यानपायस्य संयोगे परम: क्रम: ।। ४ ।।

❋ *वीर पुरुषों का इतना ही कर्तव्य है कि वे अपने हृदय के संतोष के लिये नीतिशास्त्र में बतायी हुई नीति के अनुसार शत्रुओं पर आक्रमण करें अच्छी नीति एवं सलाह प्राप्त होने पर आरम्भ किया हुआ कार्य पूर्णरूप से सफल होता है ।। ४ ।।*

❋ (१) कार्यसिद्धि में पुरुषार्थ ही प्रधान कारण है(२)अपनी पूरी शक्ति से कार्य करना चाहिए।

ते वयं नयमास्थाय शत्रुदेहसमीपगा: ।
कथमन्तं न गच्छेम वृक्षस्येव नदीरया: ।।
पररन्ध्रे पराक्रान्ता : स्वरन्ध्रावरणे स्थिता: ।। ५ ।।

❋ *जब हम लोग नीति का आश्रय लेकर शत्रु के शरीर के निकट तक पहुँच जायेंगे तब जैसे नदी का वेग किनारे के वृक्ष को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार हम शत्रु का अन्त क्यों न कर डालेंगे? हम अपने छिद्रों को छिपाये रखकर शत्रु के छिद्र को देखेंगे और अवसर मिलते ही उस पर बलपूर्वक आक्रमण कर देंगे ।। ५ ।।*

❋ (१) बुद्धिमत्तापूर्वक अपना कार्य बना लेना ही सर्वोत्तम नीति है। (२) अपनी कमजोरियाँ शत्रु से छिपाये रखनी चाहिए।

अथवैनं निहत्याजौ शेषेणापि समाहता: ।
प्राप्नुयाम तत: स्वर्गं ज्ञातित्राणपरायणा: ।। ६ ।।

❋ *अथवा यदि जरासंध को युद्ध में मारकर उसके पक्ष में रहने वाले शेष सैनिकों द्वारा हम भी मारे गये, तो भी कोई हानि नहीं है। अपने जाति भाइयों की रक्षा में संलग्न होने के कारण हमें स्वर्ग की प्राप्ति होगी ।। ६ ।।*

❋ (१) स्वकर्तव्य का पालन करते हुए मृत्यु भी श्रेयस्कर है। (२) स्वजनों तथा अशक्तों की रक्षा ही क्षत्रिय धर्म है। उसके लिए हर खतरा उठाया जाना चाहिए।

✿ इस तरह युधिष्ठिर को समझाकर कृष्ण ने कहा सेना सहित आक्रमण कर जरासंध को पराजित करना मुश्किल है अत: आप भीम और अर्जुन को मुझे सौंप दीजिए। हम तीनों युक्ति पूर्वक जरासन्ध का वध करने में समर्थ हो सकेंगे।

न शक्योऽसौ रणे जेतुं सर्वैरपि सुरासुरै: ।
बाहुयुद्धेन जेतव्य: स इत्युपलभामहे ।। ७ ।।

❋ *युद्ध में तो सम्पूर्ण देवता और असुर भी उसे जीत नहीं सकते, अत: मेरी समझ में यही आता है कि उसे बाहुयुद्ध के द्वारा जीतना चाहिए ।। ७ ।।*

❋ (१) किसी भी कार्य को करने से पूर्व लाभ हानि का विचार कर लेना चाहिए। (२) कोई भी व्यक्ति सम्पन्न नहीं होता। उसकी कमजोरी का विचार कर ही विपक्षी को पराजित करना चाहिए।

मयि नीतिर्बलं भीमे रक्षिता चावयोर्जय: ।
मागधं साधयिष्याम इष्टि त्रय इवाग्नय: ।। ८ ।।

❋ *मुझमें नीति है, भीमसेन में बल है और अर्जुन हम दोनों की रक्षा करने वाले हैं, अत: जैसे तीन अग्नियाँ यज्ञ को सिद्ध किया करती हैं, उसी प्रकार हम तीनों मिलकर जरासंध के वध का काम पूरा कर लेंगे ।। ८ ।।*

❋ (१) संगठन की शक्ति अपूर्ण को पूर्ण बनाती है। (२) नीति बल एवं शौर्य मिलकर ही कार्य सिद्ध में सक्षम हैं।

यदि मे हृदयं वेत्सि यदि ते प्रत्ययो मयि ।
भीमसेनार्जुनौ शीघ्रं न्यासभूतौ प्रयच्छ मे ।। ९ ।।

❋ *राजन्। यदि आप मेरे हृदय को जानते हैं और यदि आपका मुझ पर विश्वास है तो भीमसेन और अर्जुन शीघ्र ही धरोहर के रूप में मुझे दे दीजिए ।। ९ ।।*

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❋ (१) जिन्हें अपने प्रयत्न एवं पुरुषार्थ में विश्वास है उनका कार्य भी निश्चित सम्पन्न होता है। (२) जरासंध वध की सारी जिम्मेदारी कृष्ण ने अपने ऊपर ले ली।

✿ युधिष्ठिर ने कहा प्रभो मुझे पूरा विश्वास है कि आप जरासंध को मारने में अवश्य सफल होंगे। मुझे आपकी कार्य कुशलता पर पूरा भरोसा है। आप तीनों सुखपूर्वक यात्रा करें।

युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर तीनों वीर ब्राह्मणों का वेष बनाकर मगध के लिए चल पड़े। वे मगध की राजधानी जा पहुँचे। राजधानी परकोटे से घिरी हुई थी। वे परकोटे के दरवाजे से न जाकर चैत्यक पर्वत के ऊपर से राजधानी में प्रवेश कर गये तथा जरासंध के महल में जा पहुँचे। जरासंध ने उनका स्वागत किया। भीम और अर्जुन मौन रहे कृष्ण ने कहा इन दोनों ने मौन ले रखा है। आधी रात के बाद ही आप से बात हो सकेगी। जरासंध उन तीनों ब्राह्मणों को यज्ञशाला में ठहराकर स्वयं राजभवन चला गया।

आधी रात होने पर जरासंध उन ब्राह्मणों के पास पहुँचा। उसने कहा आप वेष तो ब्राह्मणों का बनाये हैं किन्तु आपके कार्य ब्राह्मण जैसे नहीं हैं। आपने चैतक्य पर्वत का शिखर तोड़कर राजधानी में प्रवेश किया है। फिर भी आप लोग निर्भय दिखाई देते हैं। यह अपराध आपने क्यों किया है। मुझे आप लोगों के बारे में संदेह है । अत: आप अपनी वास्तविकता बताइये

कृष्ण ने कहा राजन् शत्रु के घर में इसी तरह से प्रवेश किया जाता है। जरासंध ने कहा मेरी तो आपसे कोई शत्रुता नहीं है। तब कृष्ण ने कहा आपने समूची क्षत्रिय जाति से शत्रुता की है तथा क्षत्रिय जाति के मुखिया महापुरुष की आज्ञा से ही तुम्हें दण्ड देने आये हैं। तुमने अनेकों राजाओं को कैद कर रखा है। तथा तुम उनकी बलि करना चाहते हो।

अस्मांस्तदेनो गच्छेद्धि कृतं बार्हद्रथ त्वया ।
वयं हि शक्ता धर्मस्य रक्षणे धर्मचारिण: ।।
मनुष्याणां समालम्भो न च दृष्ट: कदाचन ।
स कथं मानुषैर्देवं यष्टुमिच्छसि शंकरम् ।।१०।।

❋ *बृहद्रथकुमार ! तुम्हारे द्वारा किया पाप हम सब लोगों पर लागू होगा, क्योंकि हम धर्म की रक्षा करने में समर्थ और धर्म का पालन करने वाले हैं। किसी देवता की पूजा के लिए मनुष्य का वध कभी नहीं देखा गया। फिर तुम कल्याणकारी देवता भगवान शिव की पूजा मनुष्यों की हिंसा द्वारा कैसे करना चाहते हो ।।१०।।*

❋ (१) अन्याय करने की तरह अन्याय सहना पाप है (२) किसी को भी कष्ट देने से अप्रसन्न होते हैं।

✿ तुमने वास्तव में ठीक ही कहा, हम लोग ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय हैं। ये दोनों भाई भीम और अर्जुन हैं तथा मैं हूँ। तुम्हारा बैरी कृष्ण। हम लोग महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा से तुम्हें तुम्हारे पापों का दण्ड देने के लिए आये हैं। यदि तुम इस दण्ड से बचना चाहते हो तो बंदी बनाये गये समस्त नरेशों को छोड़ दो।

त्वामाहवयामहे राजन् स्थिरो युध्यस्व मागध ।
मुञ्च वा नृपतीन् सर्वान् गच्छ वा त्वं यमक्षयम् ।।११।।

❋ *मगध के नरेश हम तुम्हें युद्ध के लिए ललकारते हैं। तुम डटकर युद्ध करो या समस्त राजाओं को छोड़ दो अथवा यमलोक की राह लो ।।११।।*

❋ (१) अनीति का इसी प्रकार साहस पूर्वक प्रतिरोध करना चाहिए। (२) अपराधी को भी सुधारने का मौका देना चाहिए।

✿ कृष्ण के इस प्रकार ललकार ने पर जरासंध अपने पुत्र सहदेव को गद्दी सौंप कर युद्ध के लिए तैयार हो गया। कृष्ण ने पूछा तुम हम तीनों में किसके साथ युद्ध करना चाहते हो ? उसने भीम के साथ युद्ध करना स्वीकार किया। दोनों में युद्ध प्रारम्भ हो गया तथा बिना रुके लगातार चलता रहा जरासंध कुछ थकने लगा तब भीम ने उसे जमीन पर गिरा दिया, एवं घुटनों से उसकी रीढ़ तोड़ डाली तथा कृष्ण के निर्देश के अनुसार उसका काम तमाम कर दिया।

एकं पादं पदाऽऽक्रम्य दोर्भ्यामन्यं प्रगृह्यस: ।
गुदत: पाटयामास शाखामिव महागज: ।।१२।।

❋ *फिर उसके एक पैर को अपने पैर के नीचे दबाया और दूसरे को अपने दोनों हाथों से पकड़ लिया। इसके बाद भीमसेन ने उसे पैरों के बीच से इस प्रकार चीर डाला जैसे गजराज वृक्ष की डाली चीर डाले। ।।१२।।*

❋ जरासंध के मारे जाने पर लोग जयजयकार करने लगे। कृष्ण और अर्जुन भीम से स्नेहपूर्वक मिले। इसके बाद जरासंध द्वारा कैद किये गये सभी राजा छोड़े गये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

✿ कारागार से मुक्त होकर सभी नरेशों ने कृष्ण की स्तुति की। कृष्ण ने उन्हें उपदेश दिया कि तुम लोग कभी भी अपनी सम्पति वैभव आदि का अभिमान न करना क्योंकि अभिमान ही पतन का कारण होता है।

हैहयो नहुषो वेनो रावणो नरकोऽपरे ।
श्रीमदाद् भ्रंशिताः स्थानाद् देवदैत्यनरेश्वराः ।। १३ ।।

❋ *हैहय, नहुष, वेन, रावण, नरकासुर आदि अनेकों देवता, दैत्य और नरपति वैभव और सत्ता के मद के कारण अपने स्थान से, पद से च्युत हो गये ।। १३ ।।*

❋ वैभव और अधिकार को समाज या ईश्वर की धरोहर मानकर उसका सदुपयोग करना चाहिए, स्वयं को उसका स्वामी न मानने से अहंकार नहीं होता।

उदासीनाश्च देहादावात्मारामा धृतव्रताः ।
मय्यावेश्य मनः सम्यङ् मामन्ते ब्रह्म यास्यथ ।। १४ ।।

❋ देह और देह के सम्बन्धियों से किसी प्रकार की आसक्ति न रखकर उदासीन रहो, अपने आप में, आत्मा में ही स्मरण करो और भजन तथा आश्रम के योग्य व्रतों का पालन करते रहो। अपना मन भली भाँति मुझमें लगा कर अन्त में तुम लोग मुझ ब्रह्मस्वरूप को ही प्राप्त हो जाओ।

❋ (१) आसक्ति रहित होकर कर्तव्य पालन करते हुए संसार में रहना चाहिए (२) आश्रम व्यवस्था व्यक्ति के विकास तथा समाज के उत्कर्ष के लिए उपयोगी है। उसके अनुरूप अपने कर्तव्य पूरे करने चाहिए।

✿ इस तरह सभी राजाओं को समझाकर कृष्ण ने उन्हें विदा किया। भगवान का गुणगान करते हुए सभी नरेश अपनी-अपनी राजधानी को लौट गये। कृष्ण भी भीम और अर्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ लौट आये। सब समाचार सुन युधिष्ठिर ने कृष्ण की बड़ी प्रशंसा की।

राजसूय यज्ञ की तैयारियाँ प्रारम्भ हुई। सभी नरेशों को आमन्त्रित किया गया। समय पर सभी पधारे।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा यज्ञदिदृक्षवः ।
तत्रेयुः सर्वराजानो राजा प्रकृतयो नृप ।। १५ ।।

❋ *राजन् ! राजसूय यज्ञ का दर्शन करने के लिए देश के सब राजा उनके मन्त्री तथा कर्मचारी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र- सब के सब वहाँ आये ।। १५ ।।*

❋ (१) यज्ञ में सबको आमन्त्रित करना चाहिये। (२) सभी वर्णों के व्यक्ति यज्ञ में भाग ले सकते हैं।

अथत्विजो महाशीलाः सदस्या ब्रह्मवादिनः ।
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा राजानो ये समागताः ।।
देवर्षिपितृभूतानि लोकपालाः सहानुगाः ।
पूजितास्तमनुज्ञाप्य स्वधामानि ययुर्नृप ।। १६ ।।

❋ *परीक्षित ! राजसूय यज्ञ में जितने लोग आये थे परम शीलवान्, ऋत्विज, ब्रह्मवादी सदस्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, राजा देवता, ऋषि, मुनि, पितर तथा अन्य प्राणी और अपने अनुयायियों के साथ लोकपाल आदि सबकी पूजा युधिष्ठिर ने की इनके बाद वे लोग धर्मराज से अनुमति लेकर अपने-अपने निवास स्थान को चले गये ।। १६ ।।*

❋ (१) यज्ञ में सभी वर्णों के व्यक्ति केवल दर्शक ही नहीं रहते थे उन्हें पूजा आदि कार्यों में बराबरी से भाग लेना होता था।

✿ सबका आदर सत्कार हो जाने के बाद यज्ञ में आये हुए नरेशों की पूजा का विचार किया गया। प्रथम पूजा के लिये किसे चुना जाय इसके लिये सम्मति माँगी गई और अधिकांश नरेशों ने कृष्ण की अग्रपूजा करने की राय दी। इसके अनुसार कृष्ण की पूजा और स्तुति की गयी। यह देखकर शिशुपाल उत्तेजित हो गया तथा वह कृष्ण को गालियाँ देने लगा। पाण्डव उत्तेजित होने लगे तो कृष्ण ने उन्हें रोका। लोगों ने कहा कि अनीति का प्रतिकार करने से आप उन्हें क्यों रोकते हैं ? कृष्ण बोले :-

शृण्वन्तु मे महीपाला येनैतत् क्षमितं मया ।
अपराधशतं क्षाम्यं मातुरस्यैव याचने ।।
दत्तं मया याचितं च तानि पूर्णानि पार्थिवाः ।
अधुना वधयिष्यामि पश्यतां वो महीक्षिताम् ।। १७ ।।

❋ *यहाँ बैठे हुए सब महीपाल यह सुन लें कि मैंने क्यों अब तक इसके अपराध क्षमा किये हैं ? इसी की माता के याचना करने पर मैंने उसे यह प्रार्थित वर दिया था कि शिशुपाल के सौ अपराध क्षमा कर दूँगा। राजाओं ! वे सब अपराध अब पूरे हो गये हैं, अतः आप सभी भूमिपतियों के देखते-देखते मैं अभी इसका वध किये देता हूँ ।*

❋ व्यक्तियों को सुधरने-समझने का अवसर एक सीमा तक ही दिया जाता है, फिर दण्ड ही देना पड़ता है।

✿ ऐसा कहकर-सभी के देखते-देखते कृष्ण ने चक्र से शिशुपाल का मस्तक काट डाला। युधिष्ठिर का यज्ञ सम्पन्न हुआ। कुछ दिन वहाँ रुक कर कृष्ण द्वारिका लौट आये। वहाँ शाल्व ने द्वारिका पर चढ़ाई कर दी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

थी। आते ही कृष्ण का उससे सामना हुआ। घमासान युद्ध के बाद कृष्ण ने शाल्व का वध कर डाला।

जहार तेनैव शिरः सकुण्डलं
किरीटयुक्तं पुरुमायिनो हरिः।
वज्रेण वृत्रस्य यथा पुरन्दरो
वभूव हाहेति वचस्तदा नृणाम्।। १८।।

❋ *भगवान श्रीकृष्ण ने उस चक्र से परम मायावी शाल्व का कुण्डल-किरीट सहित सिर धड़ से अलग कर दिया। ठीक वैसे ही जैसे इन्द्र ने वज्र से वृत्रासुर का सिर काट डाला था। उस समय शाल्व के सैनिक अत्यन्त दुःख से हाय-हाय चिल्ला उठे ।। १८।।*

❋ दुष्टों का संहार भी भगवान के अवतार का एक उद्देश्य है। इसमें क्रमशः सफलता मिलती जा रही है।

✪ राजसूय यज्ञ से पाण्डवों की प्रशंसा हुई। दुर्योधन ने इसे अपनी उपेक्षा और अपमान माना। उसने छल पूर्वक पाण्डवों को जुए में जीत लिया तथा द्रौपदी को भी अपमानित किया। भगवान ने उसकी लाज बचाई। पाण्डव १२ वर्ष के लिए वन चले गये। कृष्ण उनसे मिलने वन गये। पाण्डवों से मिलकर उन्हें सान्त्वना दी। अपने और अपने पतियों के अपमान के कारण द्रौपदी दुखी थी। कृष्ण ने उसे सान्त्वना दी और कहा:-

रोदिष्यन्ति स्त्रियो ह्येव यषां क्रुद्धासि भामिनि।
बीभत्सुशरसंच्छन्नाञ्छोणितौघपरिप्लुतान् ।। १९।।

❋ *श्रीकृष्ण बोले भामिनि ! तुम जिन पर क्रुद्ध हुई हो, उनकी स्त्रियाँ भी अपने प्राणप्यारे पतियों को अर्जुन के बाणों से छिन्न भिन्न और खून में लथपथ हो मरकर धरती पर पड़ा देख इसी प्रकार रोयेंगी।*

❋ (१) नारी का अपमान भगवान नहीं सहते। (२) समयानुसार पापों का दण्ड भोगना ही पड़ता है।

✪ इसके बाद कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा हे राजन! आपके ऊपर विपत्ति आई है वह आपके आचरण के कारण ही आई है। आपने जुआ खेल बड़ी भारी गलती की। यदि मैं उस समय वहाँ होता तो अपनी शक्ति जुआ को रोकने का अवश्य प्रयत्न करता क्योंकि :-

स्त्रियोऽक्षा मृगया पानमेतत् कामसमुत्थिम् ।
दुःख चतुष्टयं प्रोक्तं यैर्नरो भ्रश्यते श्रियः ।। २०।।

❋ *स्त्रियों के प्रति आसक्ति, जुआ खेलना, शिकार खेलने का शौक और मद्यपान-ये चार प्रकार के भोग कामनाजनित दुःख बताये गये हैं, जिनके कारण मनुष्य अपने धन ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो जाता है ।। २०।।*

❋ (१) स्त्री के प्रति आसक्ति नहीं उसकी दिव्यता के प्रति सम्मान भाव रखने चाहिए। (२) धन जुए से नहीं श्रम और उत्पादन से कमाया जाना चाहिए। (३) जन सुरक्षा के लिए घातक पशुओं को तो मारा जा सकता है पर शौकिया शिकार मनुष्य को क्रूर राक्षस बना देता है। (४) शराब आदि नशे, विवेक और भावना दोनों को कुंठित कर देते हैं। (५) जुए जैसे दोषों का दण्ड युधिष्ठर जैसों को भोगना पड़ा तो जन साधारण की तो बात क्या ?

न चेत् स मम राजेन्द्र गृह्णीयान्मधुरं वचः।
पथ्यं च भरतश्रेष्ठ निगृह्णीयां बलेन तम् ।। २१।।

❋ *राजेन्द्र ! भरत श्रेष्ठ ! यदि वे कौरव मेरे मधुर एवं हितकर वचन को सुनकर उसे न मानते तो मैं उन्हें बलपूर्वक रोक देता ।। २१।।*

❋ (१) अपने हितैषियों को गलत कार्यों से रोकना चाहिए। (२) यदि बुरे कार्यों को रोकने में बल प्रयोग भी करना पड़े तो करना चाहिए।

✪ सभी पाण्डवों और द्रौपदी को समझाकर कृष्ण द्वारिका आ गये। वनवासी पाण्डव एक बार तीर्थ यात्रा करते हुए प्रभास क्षेत्र पहुँचे। उन्हें दुर्बल देख बलराम जी ने दुख भरे वचन कहे। सात्यकि ने कहा हम लोग कौरवों को जीतकर पाण्डवों का राज्य वापिस कर लें। कृष्ण ने कहा पाण्डव स्वतः अपने पराक्रम से अपना राज्य पायेंगे हम उनकी मद्द करेंगे।

यदा तु पञ्चालपतिर्महात्मा
सकेकयश्चेदिपतिर्वयं च ।
युध्येम विक्रम्य रणे समेता
स्तदैव सर्वे रिपवो हि न स्युः ।।२२।।

❋ *जब महात्मा पञ्चालराज, केकय, चेदिराज और हम सब लोग एक साथ होकर रण में पराक्रम दिखायेंगे- उसी समय हमारे सारे शत्रुओं का अस्तित्व मिट जायेगा ।। २२।।*

❋ (१) अपने पुरुषार्थ से प्राप्त वैभव ही श्रेयस्कर है। (२) समयानुसार संगठित होकर पराक्रम करने से अवश्य कार्य सिद्धि होती है।

✪ पाण्डवों का अज्ञातवास समाप्त हुआ। राजा विराट की पुत्री उत्तरा से अभिमन्यु का विवाह हुआ। इस विवाह में पाण्डव पक्ष के सभी राजा इकट्ठे हुए। विवाह के बाद सब लोग सभा में एकत्र हुए। कृष्ण ने कहा यह तो आप लोगों को मालूम ही है कि किस प्रकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कौरवों ने छलपूर्वक पाण्डवों का राज्य हथिया लिया है। अब आप सब विचार करें कि पाण्डवों को उनका न्यायानुकूल राज्य किस प्रकार प्राप्त हो ?

द्रुपद, बलराम, सतयाकि आदि ने अपने अपने विचार प्रकट किये यह तय हुआ कि युद्ध अवश्य होगा अत: सब नरेशों के पास निमन्त्रण भेजना चाहिए। द्रुपद को सारी जिम्मेदारी सौंपकर कृष्ण बलराम आदि द्वारिका आ गये।

युद्ध की तैयारियां होने लगी। कृष्ण की सहायता दोनों पक्ष चाहते थे। अर्जुन कृष्ण को निमन्त्रित करने द्वारिका पहुँचे। उसी समय दुर्योधन भी वहाँ पहुँचे। कृष्ण सो रहे थे, दुर्योधन सिरहाने तरफ बैठा था। अर्जुन पाँव की तरफ खड़े हो गये, कृष्ण जागे, उन्होंने पहले अर्जुन को और बाद में दुर्योधन को देखा। दोनों ने अपने आने का कारण बताया और सहायता मांगी। कृष्ण ने दोनों को सहायता का आश्वासन दिया। उन्होंने कहा एक तरफ मैं बिना शस्त्र ग्रहण किये हुए रहूँगा और दूसरे तरफ मेरी नारायणी सेना रहेगी। अर्जुन ने कृष्ण को मांगा। दुर्योधन सेना माँगकर प्रसन्न होता हुआ चला गया। कृष्ण ने अर्जुन से पूछा तुमने बलवान सेना को छोड़ मुझे क्यों माँगा ? अर्जुन ने कहा- हे कृष्ण आपकी कृपा से मैं आपका महत्व समझता हूँ। अस्त्र धारण कर लड़ने वाले तो बहुत मिल जायेंगे। आप से तो हम सब गतिविधियों का संचालन करायेंगे। हममें जब भी शक्तियाँ हैं वह आपकी ही हैं। उनका ठीक से संचालन आप ही कर सकते हैं। इसलिए हम आपको वह सौंपना चाहते हैं।

उपपन्नमिदं पार्थयत् स्पर्धसि मया सह ।
सारथ्यं ते करिष्यामि काम: सम्पद्यतां तव ।। २३।।

❋ *भगवान् कृष्ण ने कहा- पार्थ ! तुम जो मुझे साथ लेकर शत्रुओं पर विजय के लिए स्पर्धा रखते हो यह तुम्हारे लिए ठीक ही हैं। मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा ।। २३।।*

❋ (१) अर्जुन जैसे बुद्धिमान व्यक्ति ही वैभव की अपेक्षा भगवान का महत्व समझकर उन्हें ही वरण करते हैं। (२) अपने जीवन रथ का सूत्र संचालन भगवान को सौंप देना सौभाग्य एवं समझदारी का चिन्ह है।

❁ कृष्ण अर्जुन के साथ आ गये। द्रुपद के पुरोहित सन्धि दूत बनकर हस्तिनापुर गये। दुर्योधन ने उनकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। पुरोहित वापिस लौट आये। युद्ध प्रारम्भ होते देख धृतराष्ट ने संजय द्वारा पाण्डवों को युद्ध से विरत करने का सन्देश भिजवाया। संजय ने अपने वाग्जाल में युधिष्ठिर को फँसाने का प्रयत्न किया। उन्होंने राज्य लोभ के कारण खून खराबी करने को धर्म के विरुद्ध बताया और शान्ति बनाये रखने का महत्व प्रदर्शित किया। कृष्ण ने संजय के तर्क का करारा जवाब दिया। उन्होंने कहा कि युद्ध राज्य लोभ से नहीं अनीति के विरुद्ध किया जा रहा है। धर्म और अधर्म, मैं और युधिष्ठिर भली प्रकार समझते हैं। हम कभी उसके विपरीत नहीं जायेंगे। श्रीकृष्ण ने चारों वर्णों के सहज कर्तव्य धर्मों का उल्लेख करते हुए कहा कि अनीति के निवारण के लिए युद्ध क्षत्री का सहज धर्म है। त्याग का अर्थ सांसारिक आकांक्षाओं का त्याग होता है, कर्तव्य का त्याग नहीं किया जाता। वे बोले :- हे संजय

तत्र योऽन्यत् कर्मण: साधु मन्येन्मोघं
तस्यालपितं दुर्बलस्य ।।
कर्मणैवेह प्लवते मातरिश्वा
कर्मणामी भान्ति देवा: परत्र।
अहोरात्रे विदधत् कर्मणैव ।। २४।।

❋ *जो सिद्धान्त के विपरीत कर्मों के त्याग को श्रेष्ठ मानता है वह दुर्बल है उसका कथन व्यर्थ ही है। सारे देवता कर्म से ही स्वर्ग लोक में प्रकाशित होते हैं। वायुदेव कर्म से ही सम्पूर्ण जगत् में विचरण करते हैं तथा सूर्य देव आलस्य छोड़कर कर्म द्वारा ही दिन रात का विभाग करते हुए प्रतिदिन उदित होते हैं ।। २४।।*

❋ (१) कर्म मार्ग ही सनातन एवं निरापद हैं। (२) हमें आलस्य एवं प्रमाद को छोड़कर कर्म करना चाहिए ताकि हम अपने उद्देश्य को पा सकें।

ते चेत् पित्र्ये कर्मणि वर्तमाना
आपेद्यरन् दिष्टवशेन मृत्युम् ।
यथाशक्त्या पूरयन्त: स्वकर्म
तदप्येषां निधनं स्यात् प्रशस्तम्।। २५।।

❋ *पाण्डव अपने बाप दादों के कर्म-क्षात्रधर्म में प्रवृत्त हो यथाशक्ति अपने कर्तव्य का पालन करते हुए यदि देववश मृत्यु को भी प्राप्त हो जायें तो इनकी वह मृत्यु उत्तम ही मानी जायेगी।*

❋ (१) कर्तव्य पालन करते हुए मृत्यु भी श्रेयस्कर है। अत: किसी भी भय से कर्तव्य का त्याग नहीं करना चाहिए।

यदा गृध्येत् परभूतौ नृशंसो
विधिप्रकोपाद् बलमाददान: ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ततो राजामभवद् युद्धमेतत
तत्र जातं वर्मशस्त्रं धनुश्च ।। २६।।

❋ *जब कोई क्रूर मनुष्य दूसरे की धन सम्पत्ति में लालच रखकर उसे ले लेने की इच्छा करता है, और विधाता से विमुख होकर सेना संग्रह करने लगता है उस समय राजाओं के सामने युद्ध का अवसर उपस्थित होता है। ऐसे ही युद्ध के लिए कवच, अस्त्र, शस्त्र, और धनुष का आविष्कार हुआ है। ।। २६।।*

❋ (१) जब सज्जनता को कमजोरी माना जाने लगे तथा दुष्ट दुराचारी दूसरों का हक छीनने लगें तब उनका सशस्त्र प्रतिकार भी करना ही चाहिए। (२) समयानुसार शास्त्र एवं शस्त्र दोनों का प्रयोग आवश्यक होता है ।

इन्द्रेणेतद् दस्युवधाय कर्म उत्पादितं
वर्म शस्त्रं धनुश्च ।
तत्र पुण्यं दस्युवधेन लभ्यते सोऽयं
दोषः कुरुभिस्तोव्ररूपः ।
अधर्मज्ञैर्धर्ममबुध्यमानैः प्रादुर्भूतः
संजय साधु तन्न ।। २७।।

❋ *स्वयं देवराज इन्द्र ने ऐसे लुटेरों का वध करने के लिए कवच, अस्त्र-शस्त्र और धनुष का आविष्कार किया है। (राजाओं को) लुटेरों का वध करने से पुण्य की प्राप्ति होती है। संजय ! कौरवों में यह लुटेरेपन का दोष तीव्र रूप से प्रकट हो गया है जो अच्छा नहीं है। वे अधर्म के तो पूरे पण्डित हैं परन्तु धर्म की बात बिल्कुल नहीं जानते ।। २७।।*

❋ (१) अधर्मी एव आततायियों को दण्ड देना प्राचीन सनातन मार्ग है। (२) दुष्टता का प्रतिरोध ईश्वरीय कार्य है उसमें पाप नहीं पुण्य ही है।

सोऽयं लोभान्मन्यते धर्मयेतं
यमिच्छति क्रोधवशानुगामी ।
भागः पुनः पाण्डवानां निविष्टस्तं
नः कस्मादाददीरन् परे वै ।।
अस्मिन् पदे युध्यतां नो वधोऽपि श्लाघ्यः
पित्र्यं परराज्याद् विशिष्टम् ।। २८।।

❋ *दुर्योधन क्रोध के वशीभूत हो उसके अनुसार चलने वाला है और वह लोभ से राज्य को ले लेना चाहता है। इसी को वह धर्म मान रहा है परन्तु वह तो पाण्डवों का भाग है जो कौरवों के यहाँ धरोहर के रूप में रखा गया है। संजय ! हमारे उस भाग को हमसे शत्रुता रखने वाले कौरव कैसे ले सकते हैं ? सूत! इस उद्देश्य के लिए युद्ध करते हुए हम लोगों का वध हो जाय तो वह भी हमारे लिए प्रसन्नता की बात ही है। बाप-दादों का राज्य पराये राज्य की अपेक्षा श्रेष्ठ है ।। २८।।*

❋ (१) मूर्ख लोग अधर्म भी धर्म कहकर करते हैं। (२) श्रेष्ठ उपयोग के लिए किसी को अपना हक दे देना तो अच्छा है किन्तु कोई अनीतिपूर्वक उसे छीने तो उसकी रक्षा के लिए संघर्ष करना चाहिए।

स्वयं त्वहं प्रार्थये तत्र गन्तुं
समाधातुं कार्यमेतद् विपन्नम् ।
अहापयित्वा यदि पाण्डवार्थं
शमं कुरुणामपि चेच्छकेयम् ।।
पुण्यं च मे स्याच्चरितं महोदयं
मुच्येरंश्च कुरवो मृत्युपाशात् ।। २९।।

❋ *इतने पर भी इस बिगड़े हुए कार्य को बनाने के लिए मैं स्वयं हस्तिनापुर चलना चाहता हूँ। यदि पाण्डवों का स्वार्थ नष्ट किये बिना ही कौरवों के साथ इनकी संधि कराने में सफल हो सका तो मेरे द्वारा यह परम पवित्र और महान अभ्युदय का कार्य सम्पन्न हो जायेगा तथा कौरव भी मौत के फँदे से छूट जायेंगे ।। २९।।*

❋ (१) शक्ति सामर्थ्य होते हुए भी संघर्ष को टालने एवं सम्मानपूर्ण समझौते के लिए तैयार रहना चाहिए। (२) जिसके द्वारा सबका हित संपादन हो सके वही महान् है।

सुयोधनो मन्युमयो महाद्रुमः
स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखाः ।
दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे
मूलं राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी ।।
युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुम
स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखाः ।
माद्री पुष्पफलसमृद्धे
मूलं त्वहं ब्रह्म च ब्रह्मणाश्च।। ३०।।

❋ *दुर्योधन क्रोधमय विशाल वृक्ष के समान है, कर्ण उस वृक्ष का स्कन्ध, शकुनि शाखा और दुशासन समृद्ध पुष्प है। अज्ञानी राजा धृतराष्ट्र ही इसके मूल (जड़) हैं। युधिष्ठिर धर्ममय विशाल वृक्ष हैं, अर्जुन (उस समृद्ध वृक्ष के) स्कन्ध, भीमसेन शाखा और माद्रीनन्दन नकुल सहदेव इसके समृद्ध फल-पुष्प हैं। मैं (भगवान) वेद और ब्राह्मण ही उस वृक्ष के मूल (जड़) हैं।*

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❋ (१) पाप वृक्ष की जड़ धृतराष्ट्र को बताया गया जो अन्धे अर्थात् अज्ञान तथा स्वार्थ के प्रतीक हैं। पुण्य की जड़ ईश्वर सबका पोषक, वेद अर्थात् ज्ञान तथा ब्रह्माण्ड परायण वृत्ति के प्रतीक हैं-

स्थिता: शमे महात्मान: पाण्डवा धर्मचारिण:।
योधा समर्थास्तद् विद्वन्त्वक्षीथा यथातथम् ।। ३१।।

❋ *विद्वान संजय ! धर्म का आचरण करने वाले महात्मा पाण्डव शान्ति के लिए भी तैयार और युद्ध में भी समर्थ हैं इन दोनों अवस्थाओं को समझकर तुम राजा धृतराष्ट्र से यथार्थ बातें कहना ।। ३१।।*

❋ (१) शान्ति प्रियता के लिए असमर्थ नहीं समर्थ व्यक्तित्व चाहिये।

✿ भगवान कृष्ण की बुद्धिमत्ता के कारण धृतराष्ट्र द्वारा पाण्डवों को गुमराह करने की योजना सफल न हो सकी। संजय को कृष्ण ने करारा उत्तर दिया और युधिष्ठिर ने भी अपना संदेश कहकर विदा कर दिया।

संजय के जाने के बाद युद्ध की आशंका से युधिष्ठिर ने कृष्ण से कहा-यदि किसी तरह यह युद्ध टल सके तो अवश्य टालने का प्रयास करना चाहिये, क्योंकि दुर्योधन आखिर मेरा भाई ही है। कृष्ण ने दुर्योधन की दुष्टता के सारे वृत्तान्त सुनाकर कहा कि दुष्टों के साथ दया का वर्ताव ठीक नहीं -

बध्य: सर्प ईवानार्य: सर्वलोकस्य दुर्मति: ।
जहीनं त्वममित्रघ्न मा राजन् विचिकित्सिथा।। ३२।।

❋ खोटी बुद्धि वाला दुराचारी दुर्योधन दुष्ट सर्प की भाँति सब लोगों के लिये बध्य है। शत्रुओं के नाश करने वाले. महाराज ! आप दुविधा में न पड़ें, इस दुष्ट को मार ही डालें।। ३२।।

❋ (१) यदि एक व्यक्ति के मारे जाने से सारा समाज सुखी होता हो तो ऐसे व्यक्ति को समाप्त कर देना ही उचित है। (२) जिस प्रकार सर्प को दूध पिलाने से उसका विष ही बढ़ता है, उसी तरह दुष्ट के साथ बरती जाने वाली उदारता का भी विपरीत परिणाम होता है।

✿ कृष्ण की न्यायोचित बात सुनकर अर्जुन ने उसका समर्थन किया और कहा आप ठीक कहते हैं, अब युद्ध के अतिरिक्त अन्य कोई रास्ता नहीं है। कृष्ण ने कहा, युधिष्ठिर के संतोष के लिए मैं स्वत: शान्ति दूत बनकर हस्तिनापुर जाऊँगा तथा युद्ध रोकने का भरसक प्रयास करूँगा। यदि कौरव न्याय मार्ग पर चलने को तैया हो गये तो अनावश्यक रक्तपात से कोई लाभ नहीं।

अहं हि तत् करिष्यामि परं पुरुषकारत:।
दवं तु न मया शक्यं कर्म कर्तुं कथंचन।। ३३।

❋ *मैं पुरुषार्थ में जितना हो सकता है, उतना संधि स्थापना के लिए प्रयास करूँगा, परन्तु प्रारब्ध के विधान को किसी प्रकार भी टाल देना या बदल देना मेरे लिए संभव नहीं।। ३३।।*

❋ (१) भाग्य और पुरुषार्थ दोनों का सन्तुलन बनाकर ही कार्य करना चाहिए। (२) कार्य सिद्धि हेतु भरसक प्रयत्न एवं पुरुषार्थ आवश्यक हैं। (३) हमारे पूर्वकृत कर्म ही भाग्य या प्रारब्ध हैं। उनका फल अवश्य भोगना पड़ता है। (४) भगवान भी हमें कर्मफल भोग से छुटकारा नहीं दिला सकते।

असकृच्चाप्यहं तेन त्वत्कृते पार्थ भेदित: ।
न मया तद् गृहींत च पापं तस्य चिकीर्षितम् ।। ३४।।

❋ *कुन्तीनन्दन ! उसने मुझे भी तुम्हारी ओर से फोड़ने के लिए अनेक बार चेष्टा की है परन्तु मैंने उसके पापपूर्ण प्रस्ताव को कभी स्वीकार नहीं किया है ।। ३४।।*

❋ (१) दुष्ट व्यक्ति सबके साथ दुष्टता करता है। (२) बड़ा से बड़ा आकर्षण उपस्थित होने पर भी हमें न्याय से विचलित नहीं होना चाहिए।

सर्वथा तु मया कार्यं धर्मराजस्य शासनम् ।
विभाव्यं तस्य भूयश्च कर्म पापं दुरात्मन: ।। ३५।।

❋ *मुझे वहाँ जाकर सबसे पहले धर्मराज की आज्ञा के अनुसार संधि के लिये सब प्रकार से प्रयत्न करना है। यदि यह प्रयत्न सफल न हुआ तो फिर मुझे यह विचार करना होगा कि पापी दुर्योधन को उसके पाप कर्मों का दण्ड किस प्रकार दिया जाय ?।। ३५।।*

❋ (१) अपनी शक्ति भर शान्ति स्थापना हेतु प्रयास करना चाहिए। (२) जो पाप का मार्ग छोड़ने के लिए तैयार नहीं उसे दण्ड देना आवश्यक हो जाता है।

✿ युधिष्ठिर और अर्जुन को समझाकर कृष्ण हस्तिनापुर यात्रा को तैयार हो गये। उनकी संधि यात्रा का समाचार सुन द्रौपदी उनके पास आई और अपने केश दिखाकर कहने लगी कि आप जा तो रहे हैं किन्तु उन दुष्टों ने मुझे केश पकड़ कर घसीटकर अपमानित किया था यह न भूल जाइयेगा। कृष्ण ने उसे सान्त्वना दी तथा हस्तिनापुर रवाना हो गये। हस्तिनापुर पहुँचकर सर्वप्रथम वे कुन्ती से मिले तथा उन्हें भी समझाया। इसके बाद वे दुर्योधन की राजसभा में पहुँचे। दुर्योधन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ने उनका स्वागत किया एवं भोजन के लिए उन्हें आमन्त्रित किया। कृष्ण ने निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया। उन्होंने इसका कारण पूछने पर बतलाया कि दूत को विपक्षी के यहाँ तब तक भोजन नहीं करना चाहिए जब तक कार्यसिद्ध न हो जाय। तुम भोजन के नाते मुझसे अपनत्व पैदा करने की बात मत सोचो। मै यों डिगने वाला नहीं हूँ।

नाहं कामान्न संरम्भान्न द्वेषान्नार्थकारणात् ।
न हेतुवादाल्लोभाद् वा धर्म जह्यां कथंचन ।। ३६ ।।

❋ *राजन! मैं काम से, क्रोध से, द्वेष से, स्वार्थवश, हेतुवाद (बहानेवाजी) अथवा लोभ से भी किसी प्रकार धर्म का त्याग नहीं कर सकता ।। ३६ ।।*

❋ (१) आपत्तिकाल में ही धर्म की परीक्षा होती है। (२) वीर पुरुष कभी भी धर्म को नहीं छोड़ते। (३) कृष्ण भक्तों में भी ऐसी ही दृढ़ता होनी चाहिए।

सम्प्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः।
न च सम्प्रीयसे राजन् न चैवापद्गता वयम् ।। ३७ ।।

❋ *किसी के घर का अन्न या तो प्रेम के कारण भोजन किया जाता है या आपत्ति में पड़ने पर (भूखों मरने पर)। नरेश्वर ! प्रेम तो तुम नहीं रखते और किसी आपत्ति में हम नहीं पड़े हैं ।। ३७ ।।*

❋ (१) अन्न के साथ सूक्ष्म संस्कार जुड़े रहते हैं। उसी के अनुसार हमारे मन का निर्माण होता है। अतः हमें आहार शुद्धि पर ध्यान देना चाहिये। (२) अवज्ञापूर्वक मिले हुए मिष्ठान्न की अपेक्षा प्रेम की सूखी रोटी अच्छी लगती है।

✿ दुर्योधन का निमन्त्रण अस्वीकार कर कृष्ण विदुर के यहाँ पधारे। विदुर ने उनका स्वागत किया तथा प्रेमपूर्वक भोजन कराया। भोजनोपरांत विदुर ने कहा धृतराष्ट्र के पुत्र आपके प्रति बुरी भावनाएँ रखते हैं अतः आपका उनकी सभा में जाना उचित नहीं हैं। कृष्ण ने कहा कि किसी भी भय प्रलोभन से मैं अपने कर्त्तव्य पथ से विचलित नहीं हो सकता। मैं अपने शक्ति भर युद्ध को रोकने तथा पाण्डवों को उनका न्यायोचित अधिकार दिलाने का प्रयास करूँगा। श्रीकृष्ण ने कहा -

आकेशग्रहणान्मित्रमकार्यात् संनिवर्तयन् ।
अवाच्यः कस्यचिद् भवति कृतयत्नो यथाबलम् ।। ३८ ।।

❋ *जो अपने मित्र को उसकी चोटी पकड़ कर भी बुरे कर्म से हटाने के लिए यथा शक्ति प्रयत्न करता हैं वह किसी की निन्दा का पात्र नहीं होता है ।। ३८ ।।*

❋ (१) मित्र के हर कार्य का समर्थन मित्रता नहीं बल्कि गलत कार्यो से उसे रोकना तथा अच्छे कार्यों में नियोजित करना ही वास्तविक मित्रता है। (२) अपने हितैषियों को बलपूर्वक ही बुरे मार्ग में जाने से रोकना चाहिए। (३) सद्कार्यों से ही व्यक्ति प्रशंसा प्राप्त करता है।

✿ विदुरजी को इस प्रकार समझाकर भगवान कृष्ण सभा में जाने के पूर्व वहीं विश्राम करने लगे।

।। श्रीकृष्ण कथा चतुर्थ अध्याय समाप्त ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पंचम अध्याय

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये ।
यं पश्यन्त्यमलात्मानं आकाशमिव केवलम् ।। १।।

❋ *प्रभो ! आप वेद मन्त्रों में तात्पर्य रूप से छिपे हुये परम ज्योति स्वरूप परम ब्रह्म हैं। शुद्ध हृदय महात्मागण आपके आकाश के समान सर्वव्यापक और निर्विकार (निर्लेप) स्वरूप का साक्षात्कार करते हैं।। ३४।।*

❋ (१) ईश्वर सर्वव्यापक हैं। उसे परिश्रम पूर्वक खोजना पड़ता है। (२) हृदय ही उसका मिलन स्थल है शुद्ध हृदय महात्मा ही उसका साक्षात्कार कर सकते हैं।

✿ भगवान कृष्ण प्रातःकाल सोकर उठे। नित्य कर्मों से निवृत होकर गायत्री जप, सूर्यार्घ्यदान, तथा हवन आदि उपासनात्मक कर्मकाण्ड किये। उसी समय दुर्योधन और शकुनी विदुर के यहाँ आये। उन्होंने कृष्ण से कहा कि भीष्म, द्रोण आदि गुरुजन तथा अन्य राजागण सभा में आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

भगवान कृष्ण कौरव सभा में जाने के लिए तैयार हुए। विदुर भी उनके साथ चले। सभा में पहुँचने पर उनका भव्य स्वागत हुआ। भगवान कृष्ण ने धृतराष्ट्र से कहा कि आप पाण्डवों को उनका न्यायोचित अधिकार प्रदान कर इस भयंकर युद्ध को टालिये। पाण्डव भी आपके पुत्र ही हैं। आप कौरव और पाण्डवों में सन्धि कराकर अपने वंश को नष्ट होने से बचाइये। यदि ये दोनों मिलकर रहने लगें तो आपका परिवार सारे विश्व के लिये अजेय हो जायेगा।

धृतराष्ट्र ने ध्यान पूर्वक कृष्ण की बात सुनी और कहा मैंने दुर्योधन को बहुत समझाया किन्तु वह अपनी हठ पर ही अड़ा हुआ है। गान्धारी, भीष्म तथा विदुर आदि सभी ने उसे समझाने की कोशिश की है किन्तु वह इतना दुष्ट है कि किसी का कहना नहीं मानता।

मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप ही दुर्योधन को समझाने का प्रयास करें शायद वह आपकी ही बात मान ले। यदि वह मान जाय तो एक महान विपत्ति टल जायगी तथा आप यश के भागी होंगे।

धृतराष्ट्र की बात सुन भगवान कृष्ण ने प्रेमयुक्त वाणी से दुर्योधन को समझाना प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा तुम सद्गुण सम्पन्न व्यक्ति हो। तुम्हारे पास धन वैभव की भी कमी नहीं है फिर तुम क्यों इस तरह अनीति पूर्ण व्यवहार करना चाहते हो ? पाण्डव तुम्हारे भाई हैं तुम्हें उनका न्यायोचित अधिकार दे देना चाहिये। ज्यादा लोभ अच्छा नहीं माना जाता। मात्र अर्थ और काम पर ही ध्यान न रखकर धर्म पालन का भी ध्यान रखना चाहिये।

पृथक च विनिविष्टानां धर्म धीरोऽनुरुध्यते ।
मध्यमोऽर्थ कलिं वाल; कामवेवानुरुध्यते ।। २।।

❋ *पृथक पृथक स्थित हुए धर्म, अर्थ और काम में से किसी एक को चुनना हो तो धीर पुरुष धर्म का ही अनुसरण करता है मध्यम श्रेणी का मनुष्य कलह के कारणभूत अर्थ को ही ग्रहण करता है और अधर्म श्रेणी का अज्ञानी पुरुष काम को ही पाना चाहता है ।। २।।*

❋ (१) व्यक्ति के आचरण द्वारा ही उसके उत्तम, मध्यम या निकृष्ट होने की पहिचान होती है। (२) अर्थ एवं काम शरीर के साथ ही नष्ट हो जाते हैं। तथा धर्म और अधर्म जीवात्मा के साथ जाते हैं।अतः अपने दूरगामी हित को ध्यान में रखते हुए धर्माचरण ही श्रेयस्कर है।

✿ अतः तुम भी श्रेष्ठ पुरुषों जैसा आचरण करते हुए धर्म का मार्ग ही ग्रहण करो, इसी में तुम्हारी तथा सारे समाज की भी भलाई है। सभा में उपस्थित भीष्म द्रोण, विदुर तथा धृतराष्ट्र सबने कृष्ण की बात का समर्थन करते हुए दुर्योधन से कृष्ण की बात मान लेने का आग्रह किया, किन्तु दुर्योधन ने किसी की बात नहीं मानी। अपने पक्ष को न्यायोचित सिद्ध करते हुए उसने कहा कि मैं जीवित रहते हुए सुई की नोक बराबर भूमि भी पाण्डवों को नहीं दे सकता। इस पर कृष्ण ने उसे खूब फटकारा जिससे वह दुःशासन के उकसाने पर सभा से उठकर चला गया।

दुर्योधन की उद्दण्डता पूर्ण बात सुनकर तथा उसका व्यवहार देखकर कृष्ण ने भीष्म आदि को सम्बोधित करते हुए कहा। आप लोगों ने बिना विचारे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुर्योधन के हाथ में सत्ता सौंपकर भारी गलती की है। यह किसी की बात मानता ही नहीं। अब कुरुवंश का हित इसी में है कि इसको कैद कर लिया जाय तथा इसके ऊपर बल पूर्वक नियन्त्रण स्थापित किया जाय तभी नर संहार रुक सकता है। दुष्ट इसी तरह नियंत्रण में लाये जा सकते हैं। मुझे भी कंस के साथ इसीलिए कठोर वर्ताव करना पड़ा था।

उग्रसेनसुतः कंसः परित्यक्तः स बान्धवैः ।
ज्ञातीनां हितकामेन मया शस्तो महामृधे ।। ३।।

❋ *समस्त भाई बन्धुओं ने उसका त्याग कर दिया था अतः सजातीय बन्धुओं के हित की इच्छा से मैंने महान् युद्ध में उस उग्रसेन पुत्र कंस को मार डाला।। २।।*

❋ (१) जिस तरह शरीर में उत्पन्न हुआ जहरीला फोड़ा जो किसी उपचार से ठीक नहीं हो रहा आपरेशन द्वारा निकालना पड़ता है। उसी प्रकार दुष्ट पुरुष को भी समाज हित की दृष्टि से रास्ते से हटा देना चाहिए। (२) दुष्टता का प्रतिरोध भी ईश्वरीय कार्य का एक अंग है।

✪ श्रीकृष्ण ने कहा यदि इस विषय में आप लोग साहस दिखा सकें तो यह कुरुवंश एवं सारे राष्ट्र के लिए हितकारी ही होगा।

त्यजेत् कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ।। ४।।

❋ *समस्त कुल की भलाई के लिए एक पुरुष को एक गाँव के हित के लिये एक कुल को जनपद के भले के लिए एक गाँव को और आत्मकल्याण के लिए समस्त भूमण्डल को त्याग दे ।। ४।।*

❋ (१) परोपकार की भावना का क्रमशः विकास करते हुए स्वार्थ एवं संकीर्णता को छोड़ना चाहिये। (२) व्यक्तिगत हित अनहित का विचार न करते हुए सर्वजनीन हित की दृष्टि से विचार करना चाहिये। (३) आत्म कल्याण का अर्थ विश्व कल्याण है।

✪ श्रीकृष्ण की सलाह सुनकर धृतराष्ट्र ने गान्धारी को बुलाया। गान्धारी ने भी दुर्योधन को बुलवाकर समझाया किन्तु वह नहीं माना। उल्टे अपने दुष्ट मन्त्रियों की सलाह से कृष्ण को ही बन्दी बनाने की योजना बनाने लगा। सात्यकि ने इस रहस्य का भण्डा फोड़ कर दिया। विदुर ने धृतराष्ट्र को चेतावनी दी कि आपके पुत्र अब अपने नष्ट होने की योजना बना रहे हैं। भगवान कृष्ण ने अट्टहास करते हुए अपने विश्व रूप का प्रदर्शन किया और कहा मुझे अकेला मत समझो मैं अभी सब कौरवों को बन्दी बनाकर पाण्डवों को राजा बना सकता हूँ। किन्तु मैं ऐसा करना नहीं चाहता। ऐसा कहकर सात्यकि और कृतवर्मा के साथ कृष्ण राज सभा से बाहर हो गये।

धृतराष्ट्र, भीष्म आदि उन्हें भेजने आये। कृष्ण ने सबसे विदा माँगी। कुन्ती विदुर के यहाँ रह रही थी, कृष्ण उनसे मिले तथा उन्हें सारा हाल सुनाकर पाण्डवों के लिए संदेश माँगा।

कुन्ती ने न्याय की रक्षा के लिए बलिदान भी हो जाने का औचित्य बतलाते हुए पाण्डवों के लिये यह संदेश भेजा :-

यदर्थं क्षत्रिया सूते, तस्य कालोऽमागताः ।
कालेहि समनुप्राप्ते, त्यक्तव्यमपि जीवितम् ।।
विक्रमेणार्जितान् भोगान् वृणीतं जीवितामपि ।
विक्रमाधिगताह्यर्था, प्रीणन्ति पुरुषोत्तमम् ।। ५।।

❋ *जिस कार्य के लिए क्षत्रियों का जन्म होता है वह अनीति निवारण के लिए पौरुष दिखलाने का समय आ गया है। ऐसा सुअवसर मिलने पर जीवन का मोह भी छोड़ देना चाहिये। मनुष्य को अपने जीवन में पुरुषार्थ द्वारा उपार्जित भोग ही स्वीकार करना चाहिये। श्रेष्ठ पुरुष अपने पुरुषार्थ से पैदा किया धन ही पसन्द करते हैं ।। ५।।*

❋ (१) क्षत्रिय जीवन की सार्थकता अनीति निवारण के लिये सर्वस्व की बाजी लगा देने में है (२) बिना पुरुषार्थ की कमाई अनैतिक है।

✪ कृष्ण चल पड़े। उन्होंने कर्ण को रथ पर बैठा लिया था उसे उसके जन्म की कथा सुनाकर यह बताया कि तुम कुन्ती के पुत्र हो अतः पाण्डवों के भाई हो। तुम पाण्डव पक्ष में आ जाओ तो युधिष्ठिर की जगह तुम्हीं राजा होगे। इस प्रकार तरह-तरह की बातों द्वारा कृष्ण ने कर्ण को पाण्डव पक्ष में लाने का प्रयास किया किन्तु कर्ण ने कहा- मैं विपत्ति के समय किसी भय या प्रलोभन से अपने मित्र दुर्योधन का साथ नहीं छोड़ सकता।

कृष्ण उपलब्ध (जहाँ पाण्डवों का शिविर था) लौट आये। युधिष्ठिर ने उनसे समाचार पूछा। कृष्ण ने विस्तार पूर्वक सारी बातें बताई और कहा कि सम्मान पूर्ण सन्धि के लिए जितने प्रयास हो सकते थे मैंने सब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर लिये। कौरव सत्ता के मद में चूर हैं अतः वे आपका न्यायोचित अधिकार देने को तैयार नहीं हैं। मैं सिर्फ पाँच गाँव लेकर ही सन्धि करने के लिए तैयार हो गया था। किन्तु-

एवमुक्तोऽपि दुष्टात्मा नैव भागं व्यमुञ्चत ।
दण्डं चतुर्थं पश्यामि तेषु पापेषु नान्यथा ।। ६।।

❋ *मेरे इस प्रकार कहने पर भी उस दुष्टात्मा ने राज्य का कोई भाग तुम्हारे लिये नहीं छोड़ा अर्थात् देना नहीं स्वीकार किया । अब तो मैं उन पापियों पर चौथे उपाय दण्ड के प्रयोग की ही आवश्यकता देखता हूँ अन्यथा उन्हें मार्ग पर लाना असम्भव है ।। ६।।*

❋ (१) यद्यपि दण्ड नीति कठोरता पूर्ण है किन्तु अन्य नीतियों के असफल होने पर उसी का उपयोग करना पड़ता है (२) अपना न्यायोचित अधिकार पाने का हर सम्भव प्रयास करना चाहिये।

✿ इस तरह कृष्ण ने विस्तार पूर्वक हस्तिनापुर का सब समाचार सुनाया। युधिष्ठिर ने आगे के कर्तव्य के बारे में पूछा- कृष्ण ने कहा-

न चापि वयमत्यर्थं परित्यागेन कर्सिचित ।
कौरवैः शममिच्छामस्तत्र युद्धमनन्तरम् ।। ७।।

❋ *हम लोग भी बहुत अधिक त्याग करके (सर्वस्व खोकर) कभी किसी भी दशा में कौरवों के साथ संधि की इच्छा नहीं रखते हैं। अतः इसके बाद हमारे लिये युद्ध ही करना उचित है।*

❋ (१) संसार में सम्मान पूर्वक ही जीना चाहिए। (२) त्याग वृत्ति का उपयोग दुष्टों के साथ करना उचित नहीं होता।

✿ युद्ध की सम्पूर्ण तैयारियाँ हो चुकी थी। यथा समय दोनों सेनाएँ कुरुक्षेत्र के मैदान में आमने सामने आ डटी। कृष्ण भी अर्जुन के सारथी बन कर मैदान में आये उन्होंने अर्जुन का उत्साह बढ़ाते हुए उनसे युद्ध के पूर्व माँ दुर्गा की आराधना करने को कहा।

शुचिर्भूत्वा महाबाहो संग्रामाभिमुखे स्थितः ।
पराजयाय शत्रूणां दुर्गास्तोत्रमुदीरय ।। ७।।

❋ *श्री भगवान बोले-महाबाहो ! तुम युद्ध के सम्मुख खड़े हो। पवित्र होकर शत्रुओं को पराजित करने के लिए दुर्गादेवी की स्तुति करो ।। ७।।*

❋ (१) दुर्गा संगठित देवशक्तियों की असुरता पर विजय की प्रतीक हैं। (२) ईश्वर स्मरण पूर्वक कार्य आरम्भ करना चाहिये।

✿ दुर्गास्तुति के बाद अर्जुन ने व्यवस्थित रूप से खड़ी हुई दोनों सेनाओं को देखकर कृष्ण से दोनों सेनाओं के बीच में अपने रथ को ले चलने को कहा। कृष्ण ने दोनों सेनाओं के बीच में अर्जुन के रथ को खड़ा किया तथा विपक्ष के प्रधान वीरों के बारे में बताया।

अर्जुन अपने सामने अपने स्वजनों को ही युद्ध के लिए उपस्थित देख स्वजन वध की आशंका से भयभीत हो उठा तथा कृष्ण से युद्ध की निरर्थकता एवं कुटुम्ब वध की हानियां बताकर कहने लगा कि इस युद्ध की अपेक्षा तो वन में जाकर गुजारा कर लेना ठीक है। ऐसा कहकर अर्जुन ने गाण्डीव रख दिया और सिर झुकाकर रथ के पिछले भाग में बैठ गया। बड़ी विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गयी। युद्ध की घोषणा हो चुकी थी शंख बज चुके थे युद्ध प्रारम्भ होने वाला था किन्तु जिस पर पाण्डव पक्ष की जीत-हार का सारा उत्तरदायित्व था वही योद्धा सिर झुकाये बैठा था। कृष्ण ने अर्जुन की कायरता को समझा तथा मुस्कुराकर अर्जुन का उत्साह बढ़ाते हुए कहा :-

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ।।
क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत् त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ।। ८।।

❋ *श्रीभगवान् बोले-अर्जुन! तुझे इस असमय (संकट के समय में)यह मोह किस हेतु से प्राप्त हुआ ? न तो यह श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा आचरित न स्वर्ग दायक है और न कीर्ति करने वाला है। हे पार्थ ! नपुंसकता को मत प्राप्त हो, तुममें यह उचित नहीं जान पड़ती। परंतप ! हृदय की तुच्छ दुर्बलता को त्यागकर तू युद्ध के लिए खड़ा हो जा ।।८।।*

❋ (१) वीरता प्रदर्शन के अवसर पर कायरता दिखाना लोक परलोक दोनों में दुखदायी है। (२) हृदय की दुर्बलता ही कार्य में बाधक है अतः इसका त्याग कर बलवान बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। (३) भगवान उद्बोधन एवं शक्ति संचार ही करते हैं कार्य हमें ही करना पड़ेगा। (४) साधना समर में हमें तनकर खड़े हो जाना चाहिए।

✿ अर्जुन की बुद्धि मोहग्रस्त हो गयी थी। उसके मोह के निवारण के लिए श्रीकृष्ण ने गीता का उपदेश किया। ज्ञान द्वारा मोह का निवारण होने पर अर्जुन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

युद्ध के लिए तैयार हो गया। घमासान युद्ध छिड़ा। भीष्म कौरवों के सेनापति थे। उनके द्वारा पाण्डव पक्ष की बड़ी हानि हो रही थी। कृष्ण की बुद्धिमत्ता के कारण दस दिन युद्ध के बाद भीष्म का पतन हुआ तथा वह शर सैय्या पर सो गये। अब द्रोण कौरवों के सेनापति बने उन्होंने चक्रव्यूह की रचना की युक्ति पूर्वक कृष्ण और अर्जुन को दूसरी जगह युद्ध में उलझा दिया गया। अभिमन्यु चक्रव्यूह भेदन के लिए व्यूह के अन्दर घुसा उसने पराजित होकर सात महारथियों ने उसे घेरा एवं सबने मिलकर उस निहत्ते बालक की हत्या कर दी।

पाण्डव पक्ष में हाहाकार मच गया कृष्ण और अर्जुन लौटकर आये सुभद्रा ने रोते हुए कृष्ण से अपनी मनोव्यथा व्यक्त की। भगवान कृष्णनेसुभद्रा का उत्साह बढ़ाते हुए अभिमन्यु की मृत्यु की प्रशंसा की और कहा :-

वीरसूर्वीरपत्नी त्वं वीरजा वीरबान्धवा ।
मा शुचस्तनयै भद्रे गतः स परमां गतिम् ।। ९।।

❋ *सुभद्रा ! तुम वीर माता, वीर पत्नी, वीर कन्या और वीर भाइयों की बहिन हो तुम पुत्र के लिए शोक न करो। वह उत्तम गति को प्राप्त हुआ है।*

❋ (१) आदर्श भारतीय नारी के गौरव का चित्रण। (२) अपना कर्तव्य पालन करते हुए मृत्यु का वरण करने वाले क्षत्रिय उत्तम गति पाते हैं। (३) अभिमन्यु जैसे पुत्र उत्पन्न करने वाली माँ धन्य है।

❁ अभिमन्यु के वध से उत्तेजित अर्जुन ने दूसरे दिन सूर्यास्त से पूर्व जयद्रथ को मारने तथा प्रतिज्ञा पूरी न होने पर आग में जल जाने की प्रतिज्ञा कर ली। दोनों पक्षों में सनसनी फैल गयी। दुर्योधन ने जयद्रथ को बचाने हेतु अपनी सारी शक्ति लगा दी। युधिष्ठिर चिंतित हो गये कि जयद्रथ का वध कैसे हो सकेगा। कृष्ण ने उन्हें यह कह कर आश्वासन दिया।

अहं च तत् करिष्यामि यथा कुन्तीसुतोऽर्जुनः।
धर्तराष्ट्रस्य सैन्यानि धक्ष्यत्यग्निरिवेन्धनम् ।। १०।।

❋ *मैं भी वही करूँगा, जिससे कुन्ती पुत्र अर्जुन दुर्योधन की सारी कामनाओं को उसी प्रकार जला डालेंगे, जैसे आग ईंधन को जलाती है ।। १०।।*

❋ (१) भगवान धर्माचरण करने वाले तथा संकल्पपूर्वक कार्य करने वाले भक्तों की अवश्य सहायता करते हैं। (२) ईश्वर की कृपा और जीव का पुरुषार्थ मिलकर असम्भव कार्य को संभव बना देते हैं।

❁ युधिष्ठिर को समझाकर कृष्ण रथ ले रणभूमि में पहुँचे। उस दिन बहुत ही भयंकर युद्ध हुआ। अर्जुन की फुर्ती देखने योग्य थी। उनके सामने कोई टिक नहीं सका। अन्त में दुर्योधन अर्जुन से युद्ध करने आया। कृष्ण ने सारे अनर्थ की जड़ उसे ही मानते हुए अर्जुन को उसका वध कर डालने हेतु प्रोत्साहित करते हुए कहा :-

अत्र क्रोधविषं पार्थ विमुञ्च चिरसम्भृतम् ।
एष मूलमनर्थानां पाण्डवानां महारथः ।। ११।।

❋ *पार्थ ! तुम बहुत दिनों से संजोकर रक्खे हुए अपने क्रोधरूपी विष को इसके ऊपर छोड़ो। महारथी दुर्योधन ही पाण्डवों के सारे अनर्थों की जड़ है।। ११।।*

❋ (१) क्रोध विष है अतः उसका प्रयोग सावधानीपूर्वक करना चाहिए। (२) अनर्थ के मूल कारण को खोजकर उसे नष्ट कर देना चाहिए (३) भगवान जिसके सारथी होते हैं उसे इसी तरह प्रेरित करते हैं।

अस्मिन् हते त्वया सैन्यमनाथं भिद्यतामिदम्।
वैरस्यायास्त्ववभृथो मूलं छिन्धि दुरात्मनाम् ।। १२।।

❋ *इसके मारे जाने पर अनाथ हुई इस कौरव सेना का संहार करो। दुरात्माओं के जड़ काट डालो। जिससे इस वैररूपी यज्ञ का अन्त होकर अवभृथ स्नान का अवसर प्राप्त हो ।। १२।।*

❋ (१) जिस तरह जड़ कट जाने से वृक्ष सूख जाते हैं उसी तरह अनर्थ का मूल कारण समाप्त हो जाने पर उसके सहायक भी नष्ट हो जाते हैं। (२) दुष्टता का निवारण भी एक पवित्र कार्य है।

❁ कृष्ण द्वारा प्रोत्साहन पाकर अर्जुन ने दुर्योधन पर बाण वर्षा प्रारम्भ कर दी। दुर्योधन अभेद्य कवच धारण किए हुए था। अतः उस पर अर्जुन के बाणों का कोई असर नहीं हुआ। भगवंान ने पुनः उसका जोश बढ़ाया। अर्जुन ने युक्तिपूर्वक दुर्योधन को घायल कर दिया तथा वह मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ इसके बाद घमासान युद्ध हुआ। अर्जुन ने सभी महारथियों से सुरक्षित जयद्रथ का वध सूर्यास्त से पूर्व ही कर डाला।

जयद्रथ के मारे जाने से कौरव सेना में हाहाकार मच गया। दुर्योधन ने द्रोणाचार्य सहित सभी वीरों की निन्दा की उस दिन रात्रि में भी युद्ध चलता रहा। भीमपुत्र घटोत्कच की वीरता और माया के कारण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कौरवसेना मरणासन्न स्थिति में पहुँच गई अन्त में कर्ण द्वारा इन्द्र की शक्ति से घटोत्कच का वध हुआ।

घटोत्कच के मारे जाने पर पाण्डव सेना में शोक छा गया। किन्तु कृष्ण प्रसन्न थे। अर्जुन के पूछने पर कृष्ण ने कहा- घटोत्कच राक्षस था एवं पाप कर्म करता था। अत: उसके मारे जाने से मुझे प्रसन्नता है। पापी चाहे अपने पक्ष का हो, चाहे शत्रु पक्ष का, मैं उसका संहारक ही हूँ। फिर जिस इन्द्र की शक्ति का प्रयोग तुम्हारे ऊपर होने वाला था वह भी व्यर्थ हो गयी। इससे भी मुझे खुशी है। धीरे-धीरे दुष्टों का संहार होता जा रहा है तथा मेरे अवतार का उद्देश्य भी पूरा हो रहा है।

वधार्थं तस्य जानेऽहमन्येषां च सुरद्विषाम् ।
त्वत्सहायो नरव्याघ्र लोकानां हितकाम्यया ।। १३ ।।

❋ *नरव्याघ्र ! मैं सम्पूर्ण लोकों के हित के लिए और शिशुपाल एवं अन्य देवद्रोहियों का वध करने के लिए ही तुम्हारे साथ इस जगत में अवतीर्ण हुआ हूँ ।। १३ ।।*

❋ (१) दुष्टदलन एवं सबका हित करने की दृष्टि से ही भगवान का अवतार होता है (२) नारायण के कार्य में सहायता करने के लिए श्रेष्ठ नर भी पैदा होते हैं।

धर्मसंस्थापनार्थं हि प्रतिज्ञैषा ममाव्यया ।
ब्रह्म सत्यं दम: शौचं धर्मो ह्रीश्रीर्धृति: क्षमा ।।
यत्र तत्र रमे नित्यमहं सत्येन ते शपे ।। १४ ।।

❋ *धर्म की स्थापना के लिए ही मैंने यह अटल प्रतिज्ञा कर रखी है। मैं तुमसे सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ कि जहाँ वेद, सत्य, दम, शौच, धर्म, लज्जा, श्री, धृति और क्षमा का निवास है वहीं मैं सदा सुखपूर्वक रहता हूँ।*

❋ (१) जहाँ सद्गुण रहते हैं भगवान वहीं निवास करते हैं। (२) भगवान को यदि हम अपने हृदय में बसाना चाहते हैं तो हमें सद्गुणों को धारण करना चाहिए।

✿ द्रोणाचार्य के मारे जाने के बाद कर्ण को कौरव सेना का सेनापति बनाया गया था। कर्ण के इच्छानुसार शल्य उसके सारथी बने। युद्ध प्रारम्भ हुआ कर्ण ने प्रबल वेग से आक्रमण किया। अर्जुन अश्वत्थामा से युद्ध कर रहे थे। कर्ण से युधिष्ठिर का युद्ध हुआ। कर्ण ने अपने बाणों से युधिष्ठिर को घायल कर दिया। प्राणसंकट उपस्थित होने पर युधिष्ठिर रणभूमि से भाग कर शिविर में आ गये।

पता चलने पर भीम को युद्ध संचालन का भार सौंपकर कृष्ण और अर्जुन युधिष्ठिर को देखने आये। युधिष्ठिर ने समझा कर्ण मारा गया। अत: उन्होंने कृष्ण एवं अर्जुन की प्रशंसा करते हुए युद्ध का वृतान्त पूछा जब उन्हें यह पता लगा कि कर्ण जीवित है तो उन्होंने अर्जुन को धिक्कारते हुए उनके गांडीव की निन्दा की और कहा इसे दूसरे को दे दो। इस पर अर्जुन युधिष्ठिर को मारने को तैयार हो गये। कृष्ण ने रोका तब अर्जुन ने अपनी प्रतिज्ञा बताई और कहा कि मैंने प्रतिज्ञा ले रखी है कि जो गाण्डीव की निंदा करेगा मैं उसका वध कर डालूंगा। अत: अब मैं सत्य पालन हेतु युधिष्ठिर का वध अवश्य करूँगा। कृष्ण ने कहा तुमने सत्य का मर्म नहीं समझा।

सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद् विद्यते परम् ।
तत्वेनैव सुदुर्ज्ञेयं पश्य सत्यमनुष्ठितम् ।। १५ ।।

❋ *सत्य से बढ़कर दूसरा कुछ नहीं है परन्तु यह समझ लो कि सत्य रूपों द्वारा आचरण में लाये हुए सत्य के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान अत्यन्त कठिन होता है।। १५ ।।*

❋ (१) सत्य मात्र शब्दाडम्बर नहीं है। (२) सत्य मन वाणी एवं कर्म में ओत-प्रोत रहना चाहिए। (३) सतपुरुषों के आचरण द्वारा प्रेरणा प्राप्त कर अपने कर्तव्य का निर्धारण करना चाहिए।

धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजा: ।
यत् स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चय: ।। १६ ।।

❋ *धर्म ही प्रजा को धारण करता है और धारणा के कारण ही उसे धर्म कहते हैं। इसलिये जो धारण सबके हित के युक्त हो वही धर्म है। ऐसा ही धर्म शास्त्रों का सिद्धान्त है ।। ५६ ।।*

❋ (१) कर्त्तव्यपरायणता ही धर्म है। (२) धर्म के साथ हित का भाव जुड़ा रहता है।

येऽन्यायेन जिहीर्षन्तो धर्ममिच्छन्ति कर्हिचित् ।
अकूजनेन मोक्षं वा नानुकूजेत् कथंचन ।।
अवश्यं कूजितव्यं वा शंकरेन्नप्यकूजत: ।
श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं तत् सत्यमविचारितम् ।। ९७ ।।

❋ *जो लोग अन्यायपूर्वक दूसरों के धन आदि का अपहरण कर लेना चाहते हैं। वे कभी अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए दूसरों से सत्य भाषण रूप धर्म का पालन कराना चाहते हों तो वहाँ उनके समक्ष मौन रहकर उनसे पिंड छुड़ाने की चेष्टा करें। कुछ बोलें नहीं यदि*

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बोलना जरूरी हो अथवा न बोलने से सन्देह होने लगे तो वहाँ असत्य बोलना ही उचित है ऐसे समय उस असत्य को बिना बिचारे ही सत्य समझो ।। १७ ।।

❋ (१) सत्य भाषण का उद्देश्य मानवीय हितों की रक्षा ही है तथा इसका प्रयोग धर्म का पालन करने वालों के साथ ही किया जाना चाहिए। (२) सत्य साधना शब्दों तक ही सीमित नहीं भावना तथा क्रिया प्रतिक्रिया भी उससे जुड़ी रहती है।

श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं तत् सत्यमविचारितम् ।
न च तेभ्यो धनं देयं शक्ये सति कथंचन ।। १८ ।।

❋ *यदि झूठी शपथ खाने पर लुटेरों के द्वारा बन्धन में पड़ने से छुटकारा पाया जा सके तो वहाँ असत्य बोलना ही सत्य है। जहाँ तक बस चले उन लुटेरों को धन नहीं देना चाहिये ।। १८ ।।*

❋ (१) चोर डाकुओं से सत्य बोलना सत्य की हत्या है। (२) देशकाल परिस्थिति के अनुसार सत्याचरण की परिभाषा बदलती है।

कृष्ण के समझाने पर अर्जुन कुछ शान्त हुए किन्तु उन्हें प्रतिज्ञा भंग का डर बना ही रहा। तब कृष्ण ने कहा कि गुरुजनों का अपमान ही उनकी हत्या है। अत: युधिष्ठिर का अपमान करने से ही काम चल जायेगा। अर्जुन ने युधिष्ठिर को तू कहकर अपमानित किया। इस पर युधिष्ठिर वन जाने को तैयार हो गये। कृष्ण ने उन्हें समझाकर रोका। अर्जुन भी युधिष्ठिर का अपमान करने के कारण आत्महत्या के लिए तैयार हो रहे थे। कृष्ण ने कहा अपने मुँह अपनी प्रशंसा भी आत्महत्या है। अत: अर्जुन ने अपनी प्रशंसा कर इस पाप का प्रायश्चित किया।

युद्ध पुन: प्रारम्भ हुआ। कर्ण कौरव सेना का सेनापति था तथा दुर्योधन की सारी आशायें उसी पर केन्द्रित थीं। जब अर्जुन से कर्ण का सामना हुआ तो भगवान कृष्ण ने अर्जुन का उत्साह बढ़ाते हुए कहा-

आत्मानं मन्यते वीरं येन पाप: सुयोधन: ।
तमद्य मूलं पापानां जहि सौतिं धनंजय ।। १९ ।।

❋ *धनंजय ! जिसके साथ होने से पापी दुर्योधन अपने को वीर मानता है वह सूतपुत्र कर्ण ही सारे पापों की जड़ है, अत: आज तुम उसे मार डालो ।। १९ ।।*

❋ (१) पापी को सहायता करने वाला भी पापी है। (२) पाप को जड़ सहित नष्ट करने का प्रयास करना चाहिए।

पाण्डवान् सृञ्जयाँश्चैव पञ्चालांश्चैव भारत: ।
हन्यादुपेक्षित: कर्णो रोगी देहमिवागत: ।। २० ।।

❋ *भारत ! जैसे प्राप्त हुए रोग की चिकित्सा न की गयी तो वह शरीर को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार यदि कर्ण की उपेक्षा की गयी तो वह पाण्डवों, सृञ्जयों और पाञ्चालों का भी नाश कर सकता है ।। २० ।।*

❋ (१) रोग पाप एवं शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। (२) यदि समय पर सावधानी न बरती जाय तो जरा सा रोग बढ़ कर शरीर को एवं जरा पाप, पुण्य को नष्ट कर देता है।

त्वं हि शक्तो रणे जेतुं सकर्णानपि कौरवान् ।
नान्यो युधि युधां श्रेष्ठ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।। २१ ।।

❋ *योद्धाओं में श्रेष्ठ ! केवल तुम्हीं संग्राम में कर्ण सहित सम्पूर्ण कौरवों को जीत सकते हो, दूसरा कोई नहीं, यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ। ।। २१ ।।*

❋ (१) योग्य एवं समर्थ व्यक्ति ही किसी कार्य को सम्पन्न कर सकता है। (२)भगवान इसी तरह प्रेरणा एवं उत्साह के माध्यम से कार्य सम्पन्न कराते हैं।

❁ भगवान कृष्ण से प्रोत्साहन पाकर अर्जुन ने कर्ण पर आक्रमण किया। भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। इसी समय अचानक कर्ण के रथ का पहिया जमीन में धँस गया। रथ के पहिये को निकालने के लिए कर्ण नीचे उतरा। अर्जुन की वाण वर्षा जारी थी। कर्ण ने उसे रोकते हुए कहा तुम्हारा यह कार्य धर्म विरुद्ध है। जब मैं अपने रथ का पहिया निकाल कर पुन: रथ पर सवार हो जाऊँ तब तुम्हें युद्ध करना चाहिए। अर्जुन शिथिल पड़ने लगे तब कृष्ण ने कर्ण को फटकारते हुए कहा :-

तमब्रवीद् वासुदवो रथस्थो राधेय
दिष्टया स्मरसीह धर्मम्-।
प्रायेण नीचा व्यसनेषु मग्ना निदन्ति
दैवं कुकृतं न तु स्वम् ।। २२ ।।
यद् द्रोपदी मेक वस्त्रां समाया-
मनायमेस्त्वं च सुयोधनश्च।
दु:शासन शकुनि: सौबलश्च
नते कर्ण प्रत्य मात्तत्र धर्म: ।।२३ ।।

❋ *तब रथ पर बैठे हुए भगवान कृष्ण ने कर्ण से कहा, सौभग्य की बात है कि तुम्हें धर्म की बात याद आ रही है प्राय: देखने में यह आता है कि नीच मनुष्य विपत्ति में अपने किये हुए कुकर्म की नहीं देवताओं की*

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निंदा करते हैं। जब तुमने दुर्योधन दु:शासन और सुबल पुत्र शकुनी ने एक वस्त्र धारण करने वाली रजस्वला द्रौपदी को सभा में बुलाया था। उस समय तुम्हारे मन में धर्म विचार नहीं उठा । ।। २२-२३।।

❋ (१) धर्म वही है जिसका विपत्ति एवं सम्पत्ति में समान रूप से पालन किया जाय (२) विपत्ति में किसी की निंदा बेकार है। मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार ही फल पाता है। (३) सम्पति के समय पापाचार करना एवं विपत्ति में धर्म की आड़ लेना हास्यास्पद है।

यदाभिमन्यु बहवो युद्धे जघ्नुर्महारथा: ।
परिवार्य रणे बालं क्व ते धर्मस्तदा गत:।। २४।।
यद्येष धर्मस्त्वत्र न विद्यते हि
किं सर्वथा तालुविशोषणेन ।
अद्येष धर्म्याणि विधत्स्व सूत
तथापि जीवन्न विमोक्ष्यसे हि ।।२५।।
नलो ह्यक्षैर्निर्जित: पुष्करेण
पुनर्यशो राज्यमवाप वीर्यात।
प्राप्तन्तथा पाण्डवा बाहुवीर्यात
सर्वे समेता परिवृतलोभा ।। २६।।

❋ *जब युद्ध में अकेले बालक अभिमन्यु को तुम बहुत से महारथियों ने घेरकर मारा उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ?*

उन अवसरों पर यह धर्म नहीं था तो आज भी यहाँ सर्वथा धर्म की दुहाई देकर तालु सुखाने से क्या लाभ?

सूत अब यहाँ धर्म की कितनी ही दुहाई क्यों न दे डालो, तथापि तुम्हारा छुटकारा नहीं हो सकता। पुष्कर ने राजा नल को जुए में जीत लिया था। किन्तु उन्होंने अपने ही पराक्रम से पुन: अपने राज्य और यश दोनों को प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार लोभ शून्य पाण्डव भी अपनी भुजाओं के बल से सम्पूर्ण सगे सम्बन्धियों के साथ रह कर समरागंण में बढ़े-चढ़े शत्रुओं का संहार करके फिर अपना राज्य प्राप्त करेंगे।।२४-२५-२६।।

❋ (१) श्रद्धा पूर्वक आचरण किया हुआ धर्म ही विपत्ति के समय सहायक होता है (२) पाप का फल भोगना ही पड़ता है। (३) परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। अत: पाप पूर्वक सफलता पाकर यह नहीं सोचना चाहिये कि हम सदा सफल ही होंगे। (४) पराक्रमी व्यक्ति धैर्यपूर्वक अपना लक्ष्य पा ही लेता है।

✿ कृष्ण से प्रोत्साहन पाकर अर्जुन ने कर्ण का वध कर डाला। कर्ण के मारे जाने के बाद शल्य कौरव सेना के सेनापति बनाये गये। युधिष्ठिर, द्वारा उनका भी वध हुआ। शल्य मरते ही सेना अव्यवस्थित हो गई। प्राय: सभी वीर मारे गये। दुर्योधन घायल अवस्था में प्राण बचाकर भाग खड़ा हुआ। कृष्ण के साथ सभी पाण्डव दुर्योधन की खोज में निकले-

दुर्योधन एक सरोवर के जल को स्तम्भित कर उसी के नीचे घुसा हुआ था। कृष्ण पाण्डवों सहित उस सरोवर के किनारे पहुँचे वहाँ दुर्योधन की माया देख उन्होंने युधिष्ठिर से कहा।

मायाविन इमां मायां मायया जहि भारत।
मायावी मायया वध्य: सत्यमेतद् युधिष्ठिर ।। २७।।

❋ *भारत ! मायावी दुर्योधन की इस माया को आप माया द्वारा ही नष्ट कर डालिये। युधिष्ठिर! मायावी का वध माया से ही करना चाहिए यह सच्ची नीति है।। २७।।*

❋ (१) शठे शाठ्यं समाचरेत्। (२) दुष्टता को नष्ट करना ही हमारा उद्देश्य होना चाहिये। इसके लिए हर सम्भव प्रयत्न किया जाना चाहिए।

तथा पौलत्स्यतनयो रावणो नाम राक्षस: ।
रामेण निहतो राजन् सानुबन्ध: सहानुग: ।। २८।।

❋ *राजन् ! पुलस्त्य कुमार विश्वश्रवा का पुत्र रावण नामक राक्षस श्री रामचन्द्रजी के द्वारा क्रियात्मक उपाय और युक्ति - कौशल के सहारे ही सम्बन्धियों और सेवकों सहित मारा गया ।। २८।।*

❋ (१) धर्म के साथ-साथ, पराक्रम, पुरुषार्थ, समयानुसार कार्य, युक्ति तथा कुशलता के द्वारा ही कार्य सिद्धि होती है।

क्रिया बलवती राजन् नान्यत् किंचिद् युधिष्ठिर ।
दैत्याश्च दानवाश्चैव राक्षसा: पार्थिवास्तथा ।।
क्रियाभ्युपायैर्निहता: क्रियां तस्मात समाचर ।। २९।।

❋ *राजन् ! कार्य कौशल ही बलवान है, दूसरी कोई वस्तु नहीं। युधिष्ठिर । दैत्य,दानव, राक्षस तथा बहुत से भूपाल क्रियात्मक उपायों से ही मारे गये अत: आप भी क्रियात्मक उपाय का ही आश्रय लें ।। २९।।*

❋ (१) कोरे सिद्धान्त से कुछ नहीं होता, सफलता पाने के लिए उचित कार्य पद्धति जाननी और अपनानी चाहिए।

✿ कृष्ण के निर्देशानुसार युधिष्ठिर और भीम ने दुर्योधन को युद्ध के लिए ललकारा। भीम की कटूक्तियों को सुन दुर्योधन पानी से बाहर निकला। भीम के साथ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसका भंयकर युद्ध हुआ। जब दोनों का युद्ध चल रहा था।, उसी समय बलराम जी भी तीर्थ यात्रा करते हुए वहाँ पधारे। भीम ने अपमी गदा के प्रहार से दुर्योधन की जाँघ तोड़ डाली। नियम विरुद्ध गदा युद्ध को देखकर बलराम उत्तेजित हो गये तथा भीम को मारने दौड़े। कृष्ण ने उन्हें रोका और समझाते हुए कहा:-

आत्मवृद्धिर्मित्र वृद्धि मित्र मित्रोदयस्तथा ।
विपरीतं द्विषत्स्वेतत् षड्विधा वृद्धिरात्मनः ।। ३०।।
आत्मन्यपि च मित्रे च विपरीतं यदा भवेत् ।
तदा विद्यान्मनोग्लानिमाशु शान्तिकरो भवेत्।। ३१।।

❋ *भैया ! अपनी उन्नति छः प्रकार की होती है- अपनी वृद्धि, मित्र की वृद्धि और मित्र के मित्र की वृद्धि। तथा शत्रु पक्ष में इसके विपरीत स्थिति अर्थात् शत्रु की हानि, शत्रु के मित्र की हानि तथा शत्रु के मित्र के मित्र की हानि। अपनी और अपने मित्र की यदि विपरीत परिस्थिति हो तो मन ही मन ग्लानि का अनुभव करना चाहिये और मित्रों की उस हानि के निवारण के लिए शीघ्र प्रयत्नशील होना चाहिये ।। ३०-३१।।*

❋ (१) अपनी और अपने मित्रों की सब प्रकार की उन्नति के लिये हमें सचेष्ट रहना चाहिये। (२) सच्चे सहयोगी बड़े काम के होते हैं अतः अच्छे मित्र बनाने चाहिए।

जन्मप्रभृतिलुब्धश्च पापश्चैव दुरात्मवान् ।
निहतो भीमसेनेन दुर्बुद्धिः कुलपांसनः ।। ३२।।

❋ *यह दुरात्मा, दुर्बुद्धि एवं पापी दुर्योधन जन्म से ही लोभी तथा कुरुक्षेत्र का कलंक रहा है, जो भीमसेन के हाथ से मारा गया है ।। ३२।।*

❋ (१) दुष्ट को दण्ड मिलने पर सबको प्रसन्नता होती है। (२) समयानुसार पाप का दण्ड अवश्य मिलता है।

✿ कृष्ण द्वारा भीम का समर्थन एवं दुर्योधन की निन्दा किये जाने पर बलराम वहाँ से चले गये। किन्तु दुर्योधन उत्तेजित होकर कृष्ण को बुरा भला कहने लगा। कृष्ण ने उसे फटकारते हुए कहा :-

विषं ते भीमसेनाप दत्तं सर्वे च पाण्डवाः ।
प्रदीपिता जतुगृहे मात्रा सह सुदुर्मते ।। ३३।।

❋ *सुदुर्मते ! तुमने भीमसेन को विष दिया समस्त पाण्डवों को उनकी माता के साथ लाक्षागृह में जला डालने का प्रयत्न किया ।। ३३।।*

❋ (१) व्यक्ति जब सफल होता है तब अपनी प्रशंसा करता है किन्तु असफल होने पर दूसरों की निन्दा करने लगता है अतः दूसरों को दोषी न मानकर अपने कर्मों पर विचार करना चाहिए।

हतस्त्वमसि गान्धारे सभ्रातृसुतबान्धवः ।
सगणः ससुहृच्चैव पापं मार्गमनुष्ठितः ।। ३४।।

❋ *गान्धारी नन्दन ! तुमने पाप-के रास्ते पर पैर रखा था। इस लिये तुम भाई, पुत्र, बान्धव, सेवक और सुहृदगणों सहित मारे गये हो ।। ३४।।*

❋ (१) समयानुसार पाप का फल खुद भोगना पड़ता है। (२) पापी साथियों को भी दण्ड मिलता है।

यान्यकार्याणि चास्माकं कृतानीति प्रभाषसे ।
वैगुण्येन तवात्यर्थं सर्वं हि तदनुनिष्ठितम् ।। ३५।।

❋ *तुम जिन्हें हमारे किये हुए अनुचित कार्य बता रहे हो वे सब तुम्हारे महान दोष से ही किये गये हैं।। ३५।।*

❋ अनीति प्रारम्भ करने वाले पर उसी की अनीति पलटकर चोट करती है।

लोभेनातिबलेन त्वं तृष्णया च वशीकृतः ।
कृतवानस्यकार्याणि विपाकस्तस्य भुज्यताम् ।। ३६।।

❋ *तुमने अत्यन्त प्रबल लोभ और तृष्णा के वशीभूत होकर न करने योग्य कार्य किये, अतः उनका परिणाम अब तुम्हीं भोगो ।। ३६।।*

❋ व्यक्ति अपने दोष दुर्गुणों के कारण ही पाप में लिप्त होता है। इसलिये दोष दुर्गुण ही हमारे सबसे बड़े शत्रु हैं। इन्हें समाप्त करने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिए।

✿ युद्ध समाप्त हुआ। युधिष्ठिर को दुर्योधन आदि सम्बन्धियों के मारे जाने का बहुत दुख हुआ। उन्होंने दुख प्रगट करते हुए कृष्ण से कहा कि हम लोगों ने गलत ढंग से अपने शत्रुओं को मारा है। अतः हम लोग पाप के भागी होंगे। कृष्ण भगवान ने उन्हें समझाते हुए कहा:-

न च वो हृदि कर्तव्यं यदयं घातितो रिपुः ।
मिथ्यावध्यास्तथोपायैर्वहवः शत्रबोऽधिकाः ।। ३७।।

❋ *इस प्रकार जो यह शत्रु मारा गया है, इसके लिए तुम्हें अपने मन में विचार नहीं करना चाहिये। बहुतेरे अधिक शक्तिशाली शत्रु नाना प्रकार के उपायों और कूटनीति के प्रयोगों द्वारा मारने के योग्य होते हैं ।। ३७।।*

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❋ (१) अधर्माचरण करने वाले शक्तिशाली अधिक संख्या में हों तब उन्हें युक्तिपूर्वक नष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिए।

पूर्वैरनुगतो मार्गो देवैरसुरघातिभि: ।
सभ्दिश्चानुगत: पन्था स सर्वैरनुगम्यते ।। ३८।।

❋ *असुरों का विनाश करने वाले पूर्ववर्ती देवताओं ने इस मार्ग का आश्रय लिया है। श्रेष्ठ पुरुष जिस मार्ग से चले हैं, उसका सभी लोग अनुसरण करते हैं ।। ३८।।*

❋ (१) श्रेष्ठ पुरुषों के आचरणों का ही अनुसरण करना चाहिए। (२) श्रेष्ठ पुरुषों के आचरणों का लोग अनुसरण करते हैं अत: उन्हें लोक शिक्षण के योग्य ही कार्य करना चाहिए।

✿ अपने पुत्रों की मृत्यु के कारण धृतराष्ट्र एवं गान्धारी बहुत दुखी थे। गान्धारी की तेजस्विता के कारण युधिष्ठिर भयभीत थे। उन्हें डर था कि यदि गान्धारी ने श्राप दे दिया तो हम सब नष्ट हो जायेंगे। उन्होंने कृष्ण से प्रार्थना की कि आप गान्धारी को समझाइये। उनके अनुरोध पर कृष्ण गान्धारी के पास गये तथा उन्हें समझाते हुए कहा कि दुर्योधन के दुष्कर्मों के कारण ही ऐसा हुआ है। आपने भी दुर्योधन को समझाया था किन्तु वह नही माना।-

दुर्योधनस्त्या चोक्तो जयार्थी पुरुषं वच: ।
श्रृणुया मूढ वचो मह्यं यतो धर्मस्ततो जय:।। ३९।।

❋ *तुमने विजय की अभिलाषा रखने वाले दुर्योधन को सम्बोधित करके उससे बड़ी रुखाई के साथ कहा था- ओ मूढ़ मेरी बात सुन ले जहाँ धर्म होता है उस पक्ष की जीत होती है ।। ३९।।*

❋ (१) अन्त में धर्म ही विजयी होता है अधर्म नहीं। (२) जो माँ अपने पुत्रों को धर्म पर बढ़ने की प्रेरणा दे वही माता कहला सकती हैं।

✿ कृष्ण की बात सुन गान्धारी को ध्यान आगया कि उनके पुत्र ने कर्म सिद्धान्त के अनुसार अपने दोषों का दण्ड ही पाया है। अत: पाण्डवों पर क्रोध छोड़ दिया। एक दिन प्रात: काल युधिष्ठिर भगवान कृष्ण के पास गये। उन्होंने देखा कृष्ण ध्यानस्थ हैं। बाद में उन्होंने पूछा आप तो स्वयं भगवान हैं सब लोग आपका ध्यान करते हैं किन्तु आप किसका ध्यान कर रहे थे। कृष्ण ने कहा जो मेरा ध्यान करते हैं मैं भी उनका ध्यान किया करता हूँ।

एकीकृत्येन्द्रियग्रामं मन: संयम्य मेधया ।
शरणं मामुपागच्छत् ततो मे तद्रतं मन: ।। ४०।।

❋ *भीष्मजी अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों की वृत्तियों को एकाग्र कर बुद्धि के द्वारा मन का संयम। करके मेरी शरण में आ गये सो, इसी लिये मेरा मन भी उन्हीं में जा लगा ।। ४०।।*

❋ (१) जिनका मन भगवान में लगा रहता है उनमें भगवान का मन भी लगा रहता है। हम भगवान के प्रति जैसी भावना रखेंगें भगवान भी हमारे प्रति वैसी ही भावना रखेंगे।

✿ इसके बाद पाण्डवों और द्रौपदी के साथ भगवान श्रीकृष्ण शरशैय्या पर पड़े हुए भीष्म से मिलने गये भीष्म ने अपने सौभाग्य की सराहना करते हुए भगवान के प्रति आभार व्यक्त किया। कृष्ण ने कहा

दमे तपसि सत्ये च दाने च निरत: शुचि: ।
अर्हस्त्वं भीष्म मां द्रष्टुं तपसा स्वेन पार्थिव ।। ४१।।

❋ *आप इन्द्रिय संयम, तपस्या, सत्य और दान में तत्पर रहने वाले तथा परम पवित्र हैं। भूपाल आप अपने तपोबल से ही मेरा दर्शन करने के योग्य हैं।। ४१।।*

❋ (१) जो व्यक्ति अपने धर्म पर आरूढ हैं उन्हें भगवान का दर्शन करने जाना नहीं पड़ता। भगवान उन्हें स्वत:दर्शन देने को पधारते हैं।

✿ श्रीकृष्ण के दर्शन और चर्चा से भीष्म को बड़ी शान्ति मिली। वे शान्तभाव से शर-शैय्या पर सूर्य उत्तरायण होने की प्रतीक्षा करने लगे। एक दिन अर्जुन ने भगवान कृष्ण से पूछा प्रभो! आप अपने प्रसिद्ध नामों का रहस्य मुझे समझाइये। कृष्ण ने कहा हे अर्जुन मुझमें और तुममें कोई अंतर नहीं है। दोनों के अवतार का एक ही उद्देश्य है।

त्वं चैवाहं च कौन्तेय नरनारायणौ स्मृतौ।
भारावतरणार्थं तु प्रविष्टौ मानुषीं तनुम् ।। ४२।।

❋ *कुन्ती नन्दन । तुम और मैं दोनों ही नर-नारायण नामक ऋषि हैं । और पृथ्वी का भार उतारने के लिए हमने मानव शरीर में प्रवेश किया है।*

❋ (१) नर नारायण का सखा है। (२)भगवान के सहायक के रूप में ही नर का सृजन किया गया है। (३) मनुष्य जन्म का उद्देश्य धर्म की स्थापना और अधर्म का नाश ही है।

इस तरह अपने बारे में सही जानकारी पाकर अर्जुन को अपने कर्तव्य की गुरुता का बोध हुआ और अपने आगे के कर्तव्य में लग गये।

।। श्री कृष्ण कथा पंचम अध्याय समाप्त ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

षष्ठम् अध्याय

न यस्य सख्यं पुरुषोऽवैति सख्युः ।
सखा वसन् संवसतः पुरेऽस्मिन् ।।
गुणो यथा गुणिनौ व्यक्तदृष्टे-
स्तस्मै महेशाय नमस्करोमि ।। १।।

❋ *शरीर में जीव और ईश्वर एक साथ परम मित्र की तरह रहते हैं, किन्तु हे प्रभु ! यह जीव आपके सखाभाव को समझ नहीं पाता। क्योंकि जिस प्रकार गुण अपने स्रोत को, दृष्टि आँख को, गंध नाक को, रस जीभ को नहीं समझ पाते उसी प्रकार आपकी चेतना के अंश से चैतन्य जीव आपको नहीं समझ पाता ऐसे आप महेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ।। १।।*

❋ (१) ईश्वर का निवास इस शरीर में हमेशा रहता है। (२) वह सबका शासक है फिर भी सहायता के लिए मित्र भाव से रहता है।-(३) बल्ब के प्रकाश से सब कुछ देखा जाता है किन्तु बिजली उससे नहीं देखी जा सकती, बल्ब का प्रकाशित होना ही बिजली का प्रमाण है। इसी प्रकार ईश्वर दिखता नहीं पर जीव में चेतना होना ही उसका प्रमाण हैं।

✿ महाभारत युद्ध में हुए नरसंहार से युधिष्ठिर दुखी थे। भगवान श्रीकृष्ण उन्हें अनेक प्रकार से समझाने लगे। उन्होंने बतलाया कि इस प्रकार दुःख मनुष्य को सही ज्ञान न होने से ही होता है।

सर्वं जिह्मं मृत्युपदमार्जवं ब्रह्मणः पदम् ।
एतावान् ज्ञानविषयः किं प्रलापः करिष्यति ।।
नैव ते निष्ठितं कर्म नैव ते शस्त्रदो जिताः ।
कथं शत्रुं शरीरस्थमात्मनो नावबुध्यसे ।। २।।

❋ भगवान श्री कृष्ण ने कहा- धर्मराज कुटिलता मृत्यु का स्थान है। और सरलता ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है। इस बात को ठीक-ठीक समझ लेना ही ज्ञान का विषय है। इसके विपरीत जो कुछ कहा जाता है, *वह निरर्थक प्रलाप है। आपने अपने कर्तव्य कर्म को पूरा नहीं किया। आपने अभी तक शत्रुओं पर विजय भी नहीं पायी। आपका शत्रु तो आपके शरीर के भीतर बैठा हुआ है। आप अपने शत्रु को क्यों नहीं पहचानते हैं ।।२।।*

❋ (१) यथार्थ को छिपाकर उससे भिन्न बात को प्रकट करने का प्रयास कुटिलता है। यही हमें नाश की ओर ले जाती है। (२) जीवन में सरलता होने से मनुष्य का जीवन अन्दर बाहर एक सा हो जाता है और ईश्वर प्राप्ति की स्थिति बन जाती हैं (३) अपने अंदर छिपे दोष ही हमारे शत्रु हैं, उन्हें पहचानकर नष्ट करना हमारा मुख्य कर्तव्य है।

✿ बात को और अधिक स्पष्ट करने के लिये श्रीकृष्ण जी ने युधिष्ठिर को वृत्रासुर की कथा सुनाई। वृत्रासुर के उत्पातों से क्रुद्ध होकर इन्द्र ने उस पर वज्र चलाया। वज्र की चोट से ध्वस्त होकर वह पृथ्वी,जल, अग्नि, वायु एवं आकाश तत्वों में छिपा, किन्तु इन्द्र ने हर जगह उस पर प्रहार किये तब वह असुर उनके शरीर के अंदर ही जा छिपा।

ततो वृत्र शरीरस्थं जघान भरतर्षभ ।
शतक्रतुरदृश्येन वज्रेणतीह नः श्रुतम् ।। ३।।

❋ *तब इन्द्र ने अपने ही शरीर में छिपे हुए वृत्रासुर को अदृश्य वज्र के प्रहार से मार डाला ।। ३।।*

❋ (१) आसुरी वृतियां ही वृत्रासुर हैं, और आत्मा चेतना ही इन्द्र है। श्रेष्ठ संकल्पों के अदृश्य वज्र से ही उन अदृश्य शत्रुओं को मारा जाता है। (२) हर व्यक्ति को अपने अन्दर छिपे वृत्रासुर को नष्ट करना चाहिए। (३) कथाओं के माध्यम से श्रेष्ठ सिद्धान्त समझाये जाते हैं कथाओं के इस उद्देश्य को समझना चाहिए।

✿ वृत्रासुर की कथा के सहारे अपने अन्दर की आसुरी वृत्तियों को नष्ट करने की आवश्यकता समझाते हुए श्रीकृष्ण ने मन के साथ संघर्ष का महत्व भी समझाया। उन्होंने बतलाया कि आकाँक्षायें और वृत्तियां मन से पैदा होती। जब आसुरी वृत्तियों को हानिकारक समझकर उन्हें दूर करने की कोशिश की जाती है तो मन उसका विरोध करता है। ऐसी स्थिति में मन के साथ भी संघर्ष करना पड़ता है। श्रीकृष्ण ने बतलाया कि जिस प्रकार बाहरी युद्धों में शौर्य, साहस, सूझ-बूझ और तैयारी की आवश्यकता पड़ती है वही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सब प्रकार आन्तरिक युद्ध के लिए भी आवश्यक है। इसके लिए हर व्यक्ति को तैयार रहना चाहिए श्रीकृष्ण ने कहा:-

यच्च ते द्रोणभीष्माभ्यां युद्धमासीद ।
मनसैकेन योद्धव्यं तत् ते युद्धमुपस्थितम् ।। ४।।
तस्मादभ्युपगन्तव्यं युद्धाय भरतर्षभ ।
परमव्यक्तरूपस्य पारं युक्त्या स्वकर्मभि: ।। ५।।
यत्र नैव शरै: कार्यं न भृत्यैर्न च बन्धुभि ।
आत्मनेकेन योद्धव्यं तत् ते युद्धमुपस्थितम् ।। ६।।

❋ *शत्रुदमन! द्रोणाचार्य और भीष्म के साथ जो युद्ध हुआ था। वैसा ही युद्ध आपके सामने उपस्थित है। इस समय आपको अकेले अपने मन के साथ युद्ध करना होगा। भरत भूषण ! अत: उस युद्ध के लिए आपको तैयार हो जाना चाहिए। अपने कर्तव्य का पालन करते हुए योग के द्वारा मन को वशीभूत करके आप माया से परे ब्रह्म को प्राप्त कीजिए। मन के साथ होने वाले इस युद्ध में न तो बाणों का काम है और न सेवकों तथा बन्धु बान्धवों का ही। इस संमय इसमें अकेले आपको ही युद्ध करना है और वह युद्ध सामने उपस्थित है ।। ४-५-६।।*

❋ (१) मन को जीतना ही हमारा सबसे बड़ा आवश्यक कार्य है । (२) इस महत्वपूर्ण कार्य में कोई दूसरा हमारी सहायता नहीं कर सकता है (३) यदि हम मन को न जीत सके तो बाहरी संघर्षों की विजय से भी हमें सुख एवं शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती।

✿ भगवान श्री कृष्ण इन्द्रप्रस्थ में पाण्डवों के साथ बहुत समय तक रहे। युद्ध में मारे गये पुत्रों परिजनों के दुख से उन्हें मुक्त किया। इसके लिए अनेक प्रकार की ज्ञान चर्चा तथा सुन्दर प्राकृतिक स्थलों तथा तीर्थ स्थानों के भ्रमण के कार्यक्रम वे बनाते रहे। राज्य को आदर्श ढंग से संचालित करने के लिए भी उन्हें मार्गदर्शन तथा सहयोग दिया। इस प्रकार वहाँ का संतुलन बन जाने पर श्रीकृष्ण ने द्वारिका पुरी के प्रति अपने कर्तव्यों का स्मरण करते हुए इन्द्रप्रस्थ से विदा चाही। उन्होंने अर्जुन से अपनी इच्छा व्यक्त की और बताया कि अब विशेष प्रयोजन न रह जाने से यहाँ रुकना आवश्यक नहीं है। वे बोले -

प्रयोजन चापि निवासकारणे
न विद्यते मे त्वदृते नृपात्मज।
स्थिता हि पृथ्वी तव पार्थ शासने
गुरो: सुवृत्तस्य युधिष्ठिरस्य च।। ७।।

❋ *राजकुमार ! अब तुम्हारे साथ मन बहलाने के सिवा मेरे यहाँ रहने का कोई प्रयोजन नहीं रह गया है। पार्थ ! यह सारी पृथ्वी तुम्हारे और सदाचारी गुरु युधिष्ठिर के शासन में पूर्णत: स्थित है।। ७।।*

❋ (१) कार्य समाप्त होने के बाद निष्प्रयोजन कहीं भी नहीं रुकना चाहिये। (२) सदाचारी व्यक्ति ही गुरु एवं शासक होने योग्य हैं।

✿ श्री कृष्ण के जाने की बात से पाण्डवों को दु:ख तो हुआ किन्तु केवल अपनी प्रसन्नता के लिये उन्हें रोके रहना भी उचित न समझा। फिर भी उन्हें कुछ समय और रुक कर भावी जीवन के मार्गदर्शन देने की प्रार्थना की। श्री कृष्ण उनके स्नेह और ज्ञान के प्रति जिज्ञासा देखकर कुछ दिन और रुक गये।

एक बार विश्वकर्मा द्वारा बनाये गये सुन्दर सभा भवन में बन्धु-बान्धवों सहित अर्जुन ने उनसे श्रेष्ठ पुरुषों के आचरण सम्बन्धी जानकारी चाही। श्री कृष्ण ने श्रेष्ठ पुरुषों के लिये श्रेष्ठ आचरणों का अभ्यास और उन्हीं का प्रचार करने की सलाह दी। उन्होंने कहा :-

प्रवर्ततं शुभानां च तत् सतां वृत्तमुच्यते ।
तत: धर्म: प्रभवति य: प्रजा पाति शाश्वती: ।। ८।।

❋ *शुभ कर्मों के प्रचार करना- यह सब श्रेष्ठ पुरुषों का बर्ताव कहलाता है। इनके अनुष्ठान से धर्म होता है, जो सदा प्रजा वर्ग की रक्षा करता है।। ८।।*

❋ (१)सत्कर्मों को ही धर्म कहते हैं तथा इन्हीं से समाज में सुव्यवस्था रहती है।

✿ सदाचार परायण रहने के लिये अपनी इन्द्रियों को वश में रखने की आवश्यकता समझाते हुये श्री कृष्ण ने उन्हें बतलाया कि स्वच्छन्द इन्द्रियाँ मनुष्य को श्रेष्ठ मार्ग से डिगा देती हैं। इन्हें नियन्त्रण में रखने का लाभ बताते हुये वे बोले :-

देवानामपि देवत्वं युक्त: कारयते वशी ।
ब्रह्म चाव्ययमाप्नोति हित्वा देहमशाश्वतम् ।। ९।।

❋ *अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाला योगी पुरुष देवताओं का भी देवता हो सकता है। वह इस अनित्य शरीर का त्याग करके अविनाशी ब्रह्म को प्राप्त होता है।। ९।।*

❋ (१) देवता आकृति से नहीं प्रकृति से होते हैं। (२) इन्द्रियों को वश में रखने वाला योगी हो सकता है। (३) अपने आपको परमात्मा से जोड़ देना ही योग है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कामचारी तु कामेन य इन्द्रियसुखे रत: ।
ब्रह्मचारी सदैवैष य इन्द्रियजये रत: ।। १०।।

❋ *कामनाओं द्वारा इन्द्रिय सुख में लगा रहने वाला मनुष्य 'काम चारी' और इन्द्रिय संयम में प्रवृत्त रहने वाला पुरुष सदा ही "ब्रह्मचारी" है।। १०।।*

❋ (१)इन्द्रियों के सुख को लक्ष्य करके नहीं ब्रह्म अर्थात् परमात्मा को लक्ष्य करके कर्मों का निर्धारण करना और उनमें लगना ही ब्रह्मचर्य है।(२) ब्रह्मचारी अर्थात् ईश्वर के निर्देश के अनुसार चलने वाला ही व्यक्ति ही उसे पा सकता है।

न त्वसौ चक्षुषा ग्राह्यो न च सर्वैरपीन्द्रयै: ।
मनसैव प्रदीपेन महानात्मा प्रदृश्यते ।। ११।।

❋ *उस ब्रह्म का इन चर्मचक्षुओं से दर्शन नहीं हो सकता, सम्पूर्ण इन्द्रियों से भी उसको ग्रहण नहीं किया जा सकता है, केवल बुद्धिरूपी दीपक की सहायता से ही उस महान आत्मा का दर्शन होता है।। ११।।*

❋ (१) ईश्वर की अनुभूति के लिये स्थूल-इन्द्रियों तथा स्थूल कर्मकाण्ड काफी नहीं हैं। उसके लिये बुद्धि को प्रकाशित करना आवश्यक होता है। (२) महान् आत्मा ही परमात्मा है।

✿ पाण्डवों ने पूछा कि हे योगेश्वर ! हमने सुना है कि मनुष्य के अन्दर दुष्ट प्रवृत्तियों के रूप में दानवों का निवास रहता है। जो जीव को जबरदस्ती अपने पथ से भटका देते हैं। साधक उन्हें परास्त करते रहते हैं। यह कैसे तथा किसके मार्गदर्शन से संभव होता है। श्री कृष्ण ने समझाया कि हर मनुष्य के अन्दर ईश्वर की दिव्य चेतना का एक अंश रहता है वही सबका मार्गदर्शन करता है। मनुष्य शुद्ध बुद्धि के द्वारा उसके संकेतों को समझ सकता है। और उनका लाभ उठाता रहता है वे कहने लगे :-

एको गुरुर्नास्ति ततो द्वितीयो
यो हृच्छयस्तमहमनुब्रवीमि।
तेनानुशिष्टा गुरुणा सदैव
पराभूत दानव: सर्व एव ।। १२।।

❋ *एक ही गुरु है दूसरा नहीं। जो हृदय में स्थित है उस परमात्मा को ही मैं गुरु बतला रहा हूँ उसी गुरु के अनुशासन से समस्त दानव हार गये हैं।*

❋ (१) हृदय में स्थित दिव्य चेतना ही सद्गुरु है, लौकिक गुरु उसी को जागृत करने में सहयोग भी देते हैं। (२) इस दिव्य चेतना के मार्गदर्शन को मानकर चलने से अजेय लगने वाले दुष्प्रवृत्ति रूपी दानव हार जाते हैं।

✿ अन्त: करण स्थित गुरु मनुष्य को कैसे सदाचारी बनाता है उसका क्रम समझाते हुए भगवान ने बतलाया कि जिस कार्य में मनुष्य की प्रवृति होती है वह उसे ही करने लगता है। यदि श्रेष्ठ कार्यों में ही प्रवृति हो तो फिर हीन आचरण हो ही नहीं सकते। इस हृदय में स्थित गुरु का अनुशासन स्वीकार कर लेने पर वह मनुष्य को श्रेष्ठ कर्मों की ओर प्रवृत्त कर देता है।

तस्य चानुमते कर्म तत: पश्चात् प्रवर्तते ।
गुरुर्बोद्धा च श्रोता च द्रष्टा च हृदि नि: सृत ।।१३।।

❋ *पहले वह धर्म का अनुमोदन करता है, उसके बाद जीव के उस कर्म में प्रवृति होती है। इस प्रकार हृदय में प्रकट होने वाला परमात्मा ही गुरु, ज्ञानी, श्रोता और द्रष्टा है ।। १३।।*

❋ (१) भगवान का अवतरण पहले अन्त: करण में श्रेष्ठ प्रवृतियों के रूप में होता है। (२) गुरु अथवा परमात्मा से अपनी प्रवृतियों का शोधन कराना चाहिए आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं।

✿ अर्जुन ने पूछा, हे वासुदेव! मनुष्य अपने अन्तकरण में स्थित इस गुरु के निर्देशों की उपेक्षा करके गलत कामों में कैसे लग जाता है? श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाया कि यह सब अज्ञान के कारण साँसारिक आकर्षणों के लोभ में पड़कर होता है। उसके प्रति सावधान रहकर उसके निवारण का मार्ग बतलाते हुए उन्होंने कहा:-

अकार्यमपि येनेह प्रयुक्त: सेवते नर: ।
तं लोभमसिभिस्तीक्ष्णैनिकृत्य सुखमेधते ।। १४।।

❋ *जिससे प्रेरित होकर मनुष्य न करने योग्य कार्य भी कर डालता है, उस दोष का नाम लोभ है। उसे ज्ञानरूप तलवार से काटकर मनुष्य सुख अनुभव कर सकता है।। १४।।*

❋ ज्ञान की तलवार का अर्थ है श्रेष्ठ विचारों से हीन विचारों का काटना। तुरन्त का लाभ देखकर मनुष्य लोभ में पड़ जाता है। ज्ञान द्वारा यह समझ में आ जाता है कि थोड़े लाभ के पीछे बड़ी हानि छिपी है तो लोभ समाप्त हो जाता है।

✿ श्री कृष्ण के मुखारविन्द से इस प्रकार उपदेश सुनकर अर्जुन बोले "हे असुर निकन्दन। आपकी कृपा से हमारे मनों में श्रेष्ठ सत्पुरुष के जीवन क्रम के प्रति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिज्ञासा जाग गयी है। अत: आप कृपा करके हम संसारियों के मार्गदर्शन के लिए उस पर प्रकाश डालिये। हे वासुदेव! अपने श्रेष्ठ आचरणों के कारण भुसुर कहलाने वाले ब्राह्मण अनेक प्रकार के उत्तरदायित्वों को सँभालते हुए कैसे ईश्वर साक्षात्कार कर लेते हैं। गृहस्थ आश्रम में रहकर मनुष्य को किस प्रकार आचरण करना चाहिए।

श्री कृष्ण इस प्रश्न से प्रसन्न होते हुए बोले, हे कौन्तेय! तुमने तत्व की बात पूछी। सच्चे ब्राह्मण लोकहित के लिए अनेक उत्तरदायित्व संभालते हैं और अपने स्वार्थ के लिए श्रम करने वालों से भी अधिक तत्परता से विभिन्न कार्य करते रहते हैं। किन्तु उनकी अपनी कोई आकांक्षा नहीं होती इसलिये वे कर्म करते हुए भी कर्मबन्धन से मुक्त होते हैं। देखने में उनके कार्य भिन्न-भिन्न भले ही दिखते हैं किन्तु उनका एक ही उद्देश्य जनहित होता है, तथा एक ही विचार - एक ही आदर्श से वे प्रेरित होते हैं-

नानालिङ्गश्रमस्थानां येषां बुद्धि शमात्मिका ।
ते भावमेकमायान्ति सरित: सागरं यथा ।। १५ ।।

✻ *उन ब्राह्मणों के श्रम स्थान अर्थात् कार्यस्थल तथा चिन्ह भिन्न-भिन्न होते हैं फिर भी उनका मार्ग एक ही होता है विभिन्न आश्रमों में रहते हुए भी उनकी बुद्धि शान्ति साधना में ही लगी रहती है । जिस प्रकार अनेक स्थलों पर अनेक दिशाओं में बहती हुई नदियाँ एक समुद्र की ओर ही बहती उसी प्रकार वे एक ही भावना से प्रेरित होकर विश्वात्मा के हित के लिए कार्य करते हैं और उसी में मिल जाते हैं ।। १५ ।।*

✻ (१) उद्देश्य एक हो तो बाहरी स्थूल चिन्ह और आचरणों के भेद से कोई अन्तर नहीं पड़ता। (२) सद्बुद्धि तथा सद्भावना युक्त होना ही ब्राह्मणत्व की सच्ची पहचान है। (३) कर्म बन्धन से मुक्त होने के लिए क्रियाहीन होना पड़ता है - यह मान्यता गलत है।

✪ फिर गृहस्थ धर्म का महत्व और कर्तव्यों पर प्रकाश डालते हुए भगवान बोले :-

गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुक: ।
चत्वार आश्रम: प्रोक्ता: सर्वेगाहैस्थमूलका: ।। १६ ।।
य: कश्चिदिह लोकेऽस्मिन्नागम: परिकीर्तित: ।
तस्यान्तगमनं श्रेय: कीर्तिरिषा सनातनी ।। १७ ।।

✻ *ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास - ये चार आश्रम शास्त्रों में बताये गये हैं। गृहस्थ आश्रम ही इन सबका केन्द्र है। इस संसार में जो कुछ भी अपनाने योग्य तथा न अपनाने योग्य आचार शास्त्र है, उसका पूर्ण जानकार होना गृहस्थ द्विजों के लिए उत्तम बात है। इसी से सनातन यश की प्राप्ति होती है ।। १६-१७ ।।*

✻ (१) गृहस्थ श्रेष्ठ ब्रह्मचारियों का निर्माण कर सकता है तथा अपने उत्तरदायित्वों से मुक्त होकर वानप्रस्थ तथा संन्यास के बड़े उत्तरदायित्व भी संभाल सकता है इसलिये इसे केन्द्र कहा गया है। (२) स्वयं भटकने न पावे तथा दूसरों को भी सही सलाह दे सके इसके लिए उचित अनुचित पक्षों की पूरी-पूरी जानकारी रखना सद्गृहस्थं के लिए आवश्यक है।

स्वदारनिरतो नित्यं शिष्टाचारो जितेन्द्रिय: ।
पञ्चभिश्च महायज्ञै: श्रद्धधानो यजेदिह ।। १८ ।।

✻ *अपनी पत्नी के प्रति वफादार रहना, सदा सत्पुरुषों के आचार का पालन करना और इन्द्रियों को वश में रखना गृहस्थ के लिए परम आवश्यक है। उसे श्रद्धापूर्वक पंचमहायज्ञों के द्वारा देवता आदि का यजन करना चाहिए।*

✻ (१) पत्नी को मनुष्योचित अधिकार एवं सम्मान देना उसके विकास और संरक्षण की व्यवस्था रखना तथा पर स्त्री के प्रति आकर्षित न होना पत्नी के प्रति वफादार रहना है। (२) इन्द्रियों को उचित सीमा तक हितकारी कार्यों में ही लगाना उन्हें काबू में रखना है।

न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो मुनि: ।
न च वाङ्गचपल इति शिष्टस्य गोचर: ।। १९ ।।

गृहस्थ को चाहिये कि हाथ, पैर, नेत्र, वाणी तथा शरीर को चपल न होने दे अर्थात उनके द्वारा कोई अनुचित या निरर्थक कार्य न होने दे । यही सत्पुरुष का बर्ताव (शिष्टाचार) है ।। १९ ।।

नियतो यमदानाभ्यां सदा शिष्टेश्च संविशेत् ।
जितशिश्नोदरो मैत्र: शिष्टाचारसमन्वित: ।। २० ।।

✻ *शौच-संतोष आदि नियमों और सत्य अहिंसा आदि यमों के पालन पूर्वक यथा शक्ति दान करता रहे तथा सदा शिष्ट पुरुष के साथ निवास करे। शिष्टाचार का पालन करते हुए जिह्वा और कामेन्द्रिय को काबू में रखे सबके साथ मित्रता का बर्ताव करे ।। २० ।।*

✻ (१) यम:- सत्य, , अहिंसा, , ब्रह्मचर्य, अस्तेय (चोरी न करना)अपरिग्रह (जमाखोरी न करना) तथा नियम- शौच, तप, स्वाध्याय, संतोष और ईश्वर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रणिधान (ईश्वर विश्वास) का महत्व समझाया जा सकता है ।(२) दान- उचित उपयोग से बचे धन को श्रेष्ठ कार्यों के लिए लगा देना गृहस्थ का धर्म है। (३) श्रेष्ठ व्यक्तियों की संगति का महत्व समझें। (४) जीभ और कर्मेन्द्रियाँ ही विशेष रूप से भटकाती हैं इन पर नियंत्रण का विशेष ध्यान रखें। (५) सबके हित का प्रयास करना ही सबके साथ मित्रता बरतना है।

❁ ब्राह्मण और गृहस्थ के सम्बन्ध में विवेचना सुनने के बाद अर्जुन के मन में शरीर तथा आत्मा के सम्बन्ध में जानने की इच्छा उत्पन्न हुई। यह जिज्ञासा जानकर योगेश्वर श्रीकृष्ण ने कहा हे परमतप मैं तुम्हें इस सम्बन्ध में गुरु शिष्य का संवाद सुनाता हूँ जिससे तुम्हारी जिज्ञासा का समाधान हो सकेगा। शिष्य ने गुरु से पूछा कि शरीर और आत्मा कैसे संयुक्त रहकर कार्य करते हैं, और उनकी सद्गति किस आधार पर संभव है। गुरु ने शिष्य का समाधान करते हुए कहा कि शरीर एक उपकरण है और आत्मा उसका उपयोग करती है।

महदश्वसमायुक्तं बुद्धिसंयमनं रथम् ।
समारुह्य स भूतात्मा समन्तात् परिधावति ।। २१।।

❋ *शरीर एक रथ है, जिसमें इन्द्रिय रूपी घोड़े जुते हुए हैं बुद्धिरूपी सारथि के द्वारा उसका नियन्त्रण हो रहा है, उस देहरूपी रथ पर सवार होकर वह भूतात्मा चारों ओर सक्रिय होता है ।। २१।।*

❋ (१) शरीर तथा इन्द्रियों की उपयोगिता बुद्धि के नियंत्रण में रहने पर ही है। (२) शरीर और इन्द्रियों को अपने स्वामी आत्मा के लक्ष्य में सहायक बनना चाहिए।

❁ गुरु ने बतलाया कि कार्य तो शरीर और इन्द्रियाँ ही करती हैं किन्तु कौन सा कार्य किया जाय यह निर्धारण आत्मा के लक्ष्य को ध्यान में रखकर बुद्धि को करना चाहिए। क्योंकि शरीर और जीव की दुर्गति या सद्गति कर्म सिद्धान्त के अनुसार ही होती है-

एवं कर्म कृतं चित्रं विषयस्थं पृथक् पृथक्।
यथा कर्म कृतं लोके तथैतानुपपद्यते ।। २२।।

❋ *इसी प्रकार किये हुये विचित्र कर्म अलग फल देने वाले होते हैं संसार में जिनके द्वारा जैसा कर्म किया गया है उन्हें वैसा ही फल प्राप्त होता है।। २२।।*

❋ (१) कौन सा कार्य आकर्षक लगता है यह न देखकर उसकी प्रतिक्रिया क्या होगी यह सोचकर कार्य का चुनाव करना चाहिये।

❁ गुरु ने बतलाया कि श्रेष्ठ जीवन लक्ष्य को समझकर भी लोग उसे पा नहीं पाते इसका कारण उनमें तप का अभाव होता है। श्रेष्ठ लक्ष्य को पाने के लिये जो कठिन जीवन क्रम अपनाना पड़ता है उसका अभ्यस्त अपने आपको बनाना तप है। तप का प्रभाव बतलाते हुये वे बोले-

यद्दुरापं दुरम्नायं दुराधर्ष दुरन्वयम् ।
तत् सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्।। २३।।

❋ *सारे साधनों की जड़ तपस्या ही है। जिसको पाना, जिसका अभ्यास करना, जिसे अधिकार में लेना और जिसकी संगति मिलना नितान्त कठिन है, वह सब तपस्या के द्वारा साध्य हो जाता है, क्योंकि तप का प्रभाव असाधारण है।। २३।।*

❋ (१) जिन्हें कुछ उल्लेखनीय सफलतायें पानी हैं, उन्हें आराम तलबी छोड़कर तपस्वी जीवन अपनाना चाहिये।

तपः प्रदीप इत्याहुराचारो धर्मसाधकः ।
ज्ञानं वै परमं विद्यात् संन्यासं तप उत्तमम्।। २४।।
यस्तु वेद निराधारं ज्ञानं तत्वविनिश्चयात् ।
सर्वभूतस्थमात्मानं स सर्वगतिरिष्यते ।। २५।।

❋ *ज्ञानी पुरुषों का कहना है कि तपस्या दीपक है, आचरण से धर्म सधता है, ज्ञान-परब्रह्म का स्वरूप है और संन्यास ही उत्तम तप है। व्यक्ति तत्व को समझकर ज्ञानस्वरूप, निराधार और सम्पूर्ण प्राणियों के भीतर रहने वाले आत्मा को जान लेता है, वह सर्वव्यापक हो जाता है।। २४-२५।।*

❋ (१) तपस्या के प्रभाव से सही दिशा का बोध हो जाता है (२) ज्ञान की महत्ता समझें। (३) तप का अर्थ शरीर की यातनायें देना नहीं श्रेष्ठ जीवन क्रम में अपनाना है।

❁ यह तत्वज्ञान सुनकर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा हे जनार्दन ! यह प्रश्नकर्ता शिष्य कौन है तथा यह समाधान करने वाला गुरु कौन है? श्री कृष्ण मुस्कराकर बोले- हे अर्जुन ! मैंने तुम्हें यहाँ अलंकारिक ढंग से समझाया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अहं गुरुर्महाबाहो मन: शिष्यं च विद्धि मे ।
त्वत् प्रीत्या गुह्यमेतच्च कथितं ते धनंजय।। २६।।

❋ *महाबाहो ! मैं ही गुरु हूँ और मन को ही मेरा शिष्य समझो। धनंजय ! तुम्हारे स्नेहवश मैंने इस गोपनीय रहस्य का वर्णन किया है।। २६।।*

❋ (१) हर व्यक्ति में निहित ईश्वर की चेतना ही वास्तव में गुरु है। मन को उसके शिष्य की तरह उसके निर्देशों पर चलना चाहिए। (२) स्नेह का नाता सबसे सघन होता है उसमें व्यक्ति कोई छिपाव नहीं रख पाता।

✿ इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण पाण्डवों को सब प्रकार संतुष्ट करके अपने अपने कर्तव्यों के प्रति-सावधान करके द्वारिका के लिए रवाना हो गये। मार्ग में ऋषि उत्तंक का आश्रम पड़ा। महाभारत में हुए नरसंहार से उनका भी मन दु:खी था। श्रीकृष्ण को देखकर वे अपना क्रोध प्रकट करते हुए कहने लगे- हे कृष्ण। गलत काम होता देखकर अज्ञानी और असमर्थ कुछ न करें तो वे क्षम्य हैं किन्तु तुम्हारे जैसे समर्थ को क्षमा नहीं किया जा सकता। तुम दोनों पक्षों को समझाकर अथवा अपने प्रभाव से युद्ध को टाल सकते थे किन्तु तुमने ऐसा नहीं किया। यह प्रमाद का लक्षण है इसलिए मैं तुम्हें शाप दूँगा।

श्री कृष्ण विनम्रतापूर्वक बोले-हे ऋषिवर ! आपका रोष ठीक है। यदि शासन व्यवस्था सँभालने वालों के कार्यों पर आप जैसे विचारशील महात्मा दृष्टि न रखें, उनकी भूलों को न सुधारें तो अनर्थ हो सकता है। सत्ता के नशे में स्वच्छन्द शासक कर्तव्य पथ से भटक सकते हैं किन्तु मैं अपने प्रयासों और कार्यों का विवरण आपके सामने रखना चाहता हूँ। उसे सुनकर फिर आप जैसा उचित समझें करें।

ऋषि की सहमति पाकर श्री कृष्ण ने उन्हें सारा विवरण सुनाया। स्वयं संधिदूत बनकर जाने की बात बतायी। अनीति उन्मूलन के लिए युद्ध के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग न रह जाने की स्थिति उन्हें समझायी। ऋषि को सत्पात्र समझकर उन्हें अपना विश्वरूप भी दिखाया। इससे ऋषि का समाधान हो गया। उन्होंने श्रीकृष्ण की वन्दना और सराहना की। वहाँ से चलकर श्रीकृष्ण पुन: द्वारिका पहुँचकर अपने कार्य में लग गये।

परीक्षित ने शुकदेवजी से कहा कि भगवान धन वैभव की अपेक्षा सद्भावना तथा श्रेष्ठ आचरण को अधिक महत्व देते हैं इस तथ्य को कृपया स्पष्ट करें तब शुकदेव जी उन्हें श्रीकृष्ण के बाल सखा सुदामा की कथा सुनाई।

कृष्णस्यासीत् सखा कश्चिद् ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तम:।
विरक्त इन्द्रियार्थेषु प्रशान्तात्मा जितेन्द्रिय:।। २७।।

❋ श्री शुकदेव जी ने कहा- परीक्षित! एक ब्राह्मण भगवान् श्री कृष्ण के परम मित्र थे। वे बड़े ब्रह्मज्ञानी, विषयों से विरक्त, शान्तचित और जितेन्द्रिय थे।। २७।।

❋ (१) ब्राह्मण केवल नाम और वेषधारी नहीं श्रेष्ठ प्रवृत्तियों तथा गुणों से युक्त व्यक्ति कहलाते हैं।

✿ उन दोनों ने बाल्य काल में संदीपनि ऋषि के गुरुकुल में अध्ययन किया था। श्रीकृष्ण क्षात्रधर्म के अनुसार देश के शासन तन्त्र को व्यवस्थित करने में लग गये थे और सुदामा ने ब्राह्मणोचित साधना तथा ज्ञान प्रसार का क्षेत्र सँभाला था। वे गुरुकुल चलाते थे। कार्य विस्तार के साथ आर्थिक आवश्यकतायें भी बढ़ने लगी। वे श्रम पूर्वक उन्हें पूरा करते तथा आवश्यकतायें सीमित रखते हुए संतोष पूर्वक रहते थे। उनकी पत्नी ने उनसे आग्रह किया कि श्रेष्ठ काम में कृष्ण जैसे सम्पन्न तथा सत्कार्य परायण व्यक्ति की सहायता लेनी चाहिए।

स एवं भार्यया विप्रो बहुश: प्रार्थितो मुहु: ।
अयं हि परमो लाभ उत्तमश्लोकदर्शनम् ।। २८।।

❋ *इस प्रकार जब उन ब्राह्मण देवता की पत्नी ने अपने पतिदेव से कई बार बड़ी नम्रता से प्रार्थना की, तब उन्होंने सोचा कि धन की तो कोई बात नहीं है परन्तु भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन हो जायेगा, यह तो जीवन का बहुत बड़ा लाभ है' ।। २८।।*

❋ (१) पत्नी का कर्त्तव्य है कि पति से उचित कार्य के लिए बार बार आग्रह करे। (२) ब्राह्मण प्राप्त धन का उचित उपयोग तो करते हैं किन्तु उसे ही प्रधान मानकर नहीं चलते।

✿ सुदामा द्वारिका जाने के लिए तैयार हो गये। उनकी पत्नी ने बड़े प्रेम से अपने हाथ से कूटा हुआ चिउड़ा एक पोटली में श्रीकृष्ण की भेंट के लिए बाँध दिया। सुदामा द्वारिका पहुँचे तथा द्वारपाल द्वारा अपने आने की सूचना श्री कृष्ण तक भेजी। सुदामा का नाम सुनते ही श्रीकृष्ण स्वयं दौड़े आये तथा उन द्विज श्रेष्ठ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को हृदय से लगा लिया। उन्हें आसन पर बिठा कर रुक्मिणी सहित उनका सत्कार एवं पूजन किया। फिर बड़े प्रेम से परस्पर चर्चा करने लगे।

कथयाञ्चक्रतुर्गाथाः पूर्वा गुरुकुले सतोः ।
आत्मनो ललिता राजन् करौ गृह्य परस्परम् ।। २९ ।।

❋ *भगवान श्रीकृष्ण और वे ब्राह्मण दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़ कर अपने पूर्वजीवन की उन आनन्द दायक घटनाओं का स्मरण और वर्णन करने लगे, जो गुरुकुल में रहते समय घटित हुई थीं ।। २९ ।।*

❋ (१) मित्रता में भावनात्मक सम्बन्ध होते हैं । अमीर गरीब के भेद मिट जाते हैं (२) अपने स्नेहियों के मिलने पर किसी की बुराई के कटु प्रसंग नहीं आनन्द और प्रेरणा देने वाले प्रसंगों पर चर्चा करनी चाहिए।

✿ श्रीकृष्ण को सुदामा का जीवन क्रम ज्ञात था। वे धन की लालसा में न पड़कर समाज में सत्प्रवृत्तियों के फैलाने में लगे थे। श्री कृष्ण उनका हार्दिक स्वागत कर रहे थे। देखने वालों को आश्चर्य हो रहा था कि लोक नायक श्री कृष्ण इस भिखारी जैसे दिखने वाले व्यक्ति को अपने बड़े भाई बलराम जी जैसा सम्मान क्यों दे रहे हैं? श्रीकृष्ण सुदामा को सराहते हुए कहने लगे

केचित् कुर्वन्ति कर्माणि कामैरहतचेतसः ।
त्यजन्तः प्रकृतीदैवीर्यथाहं लोकसंग्रहम् ।। ३० ।।
कश्चिद् गुरुकुले वासं ब्रह्मन् स्वरसि नौ यतः ।
द्विजो विज्ञाय विज्ञेयं समसः पारमश्नुते ।। ३१ ।।

❋ *हे सुदामा। जगत में बिरले ही लोग ऐसे होते हैं, जो साँसारिक विषय सम्बन्धी वासनाओं का त्याग कर देते हैं और चित्त में स्वयं की कुछ भी कामनायें न रहने पर भी मेरे समान केवल लोक मंगल के लिए कर्म करते रहते हैं ।। ३० ।।*

ब्राह्मण शिरोमणे ! क्या आपको उस समय की बात याद है, जब हम दोनों एक साथ गुरुकुल में निवास करते थे। सचमुच गुरुकुल में ही द्विजातियों को अपने ज्ञातव्य वस्तु का ज्ञान होता है, जिसके द्वारा वे अज्ञानान्धकार से पार हो जाते हैं।। ३१ ।।

❋ (१) भगवान तथा उनके सच्चे भक्त अपनी व्यक्तिगत कामनाओं से मुक्त होते हैं ,फिर भी निष्क्रिय नहीं रहते, वे स्वार्थ के लिए काम करने वालों से भी अधिक लोकमंगल के लिए क्रियाशील रहते हैं। (२) गुरुकुल जैसे उपयुक्त वातावरण में तथा सत्पुरुषों के सानिध्य में सत्प्रवृतियों का विकास संभव होता है।

✿ कृष्ण को वह प्रसंग याद आया जब वे और सुदामा वर्षा ऋतु में मेघों की चिन्ता न करके भी समिधायें लेने जंगल चले गये थे। वहाँ भीषण वर्षा में फँसकर रह गये। गुरु ने उनकी सराहना करते हुए कहा था।

अहो हे पुत्रका यूयमस्मदर्थेऽतिदुःखिता ।
आत्मा वै प्राणिनां प्रेष्ठस्तमनादृत्य मत्पराः ।। ३२ ।।

❋ *वे कहने लगे - आश्चर्य है, आश्यर्च है ! पुत्रों तुम लोगों ने हमारे लिए अत्यन्त कष्ट उठाया। सभी प्राणियों को अपना शरीर सबसे अधिक प्रिय होता है परन्तु तुम दोनों उसकी भी परवाह न करके हमारी सेवा में ही संलग्न रहे ।। ३२ ।।*

❋ (१) सत्कार्य के लिए शारीरिक कष्टों के भय से पीछे नहीं हटना चाहिए। (२) सत्कार्यों की सराहना तथा सत्कार्य करने वालों के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करके उस दिशा में लोगों का उत्साह पैदा किया जाना चाहिए।

✿ इस प्रकार दोनों मित्र बड़े प्रेम से चर्चा करते रहे। सुदामा ने आश्रम की धर्म व्यवस्था की चर्चा नहीं चलाई फिर भी श्रीकृष्ण ने उन सब बातों को समझ लिया।

सर्वभूतात्मदकं साक्षात् तस्यागमनकारणम् ।
विज्ञायाचिन्तयन्नायं श्रीकामो माभजत् पुरा ।।३३ ।।
पत्न्याः पतिव्रतायास्तु सखा प्रियचिकीर्षया ।
प्राप्तो मामस्य दास्यामि सम्पदोऽमर्त्यदुर्लभाः ।। ३४ ।।

❋ *भगवान श्री कृष्ण समस्त प्राणियों के हृदय का एक-एक संकल्प और उनका अभाव भी जानते हैं। उन्होंने ब्राह्मण के आने का कारण, उसके हृदय की बात जान ली अब वे विचार करने लगे कि एक तो यह मेरा प्यारा सखा है दूसरे इसने कभी लक्ष्मी की कामना से मेरा भजन नहीं किया है। इस समय यह अपनी पतिव्रता पत्नी को प्रसन्न करने के लिए उसी के आग्रह से यहाँ आया है। अब मैं इसे ऐसी सम्पत्ति दूँगा जो देवताओं के लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है।। ३३-३४ ।।*

❋ (१) भगवान से हमारे संकल्प तथा आवश्यकतायें छिपी नहीं रहतीं (२) श्रेष्ठ भक्त भगवान से साधन नहीं सत्प्रवृत्तियाँ ही मांगते हैं। (३) पत्नी की नेक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सलाह मानने पर वे उस गृहस्थ पर प्रसन्न होते हैं। (४) वे व्यक्ति की पात्रता देखकर दुर्लभ सम्पत्तियां अनायास ही दे देते हैं।

❁ अपने अन्दर ऐसा निश्चय करके श्रीकृष्ण प्रत्यक्ष में सुदामा से घर की चर्चा करने लगे। बोले हमारी भाभी जी ने हमारे लिए कुछ प्रेमोपहार अवश्य भेजा होगा। सुदामा पहले तो कुछ सहमे फिर वह चिउड़े की पोटली निकाली। श्रीकृष्ण ने उसे बड़ी आतुरता से हाथ बढ़ाकर ले लिया और बड़े आदर के साथ कहने लगे :-

नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे ।
तर्पयन्त्यंगं मां विश्वमेते पृथुकतण्डुला: ।। ३५ ।।

❋ *प्यारे मित्र ! यह तो तुम मेरे लिये अत्यन्त प्रिय भेंट ले आये हो। ये चिउड़े न केवल मुझे बल्कि सारे संसार को तृप्त करने के लिए पर्याप्त हैं ।। ३५ ।।*

❋ (१) भगवान को वस्तुओं की नहीं श्रेष्ठ भावनाओं की चाह होती है। सुदामा तथा उनकी पत्नी की श्रेष्ठ भावना को कृष्ण ने स्वयं अपने तथा सारे संसार को तृप्त करने में समर्थ माना।

❁ कृष्ण का स्नेह सन्मान पाकर सुदामा द्वारिका से विदा हुए। श्री कृष्ण ने उन्हें प्रत्यक्ष में कुछ धन सम्पत्ति नहीं दी फिर भी उन्होंने न तो कुछ माँगा और न उसके कारण खिन्न हुए। वे सच्चे ब्राह्मण थे उन्हें इस बात की लज्जा लग रही थी कि कृष्ण से इतना सन्मान उन्होंने स्वीकार किया जबकि उसके अनुरूप उन्हें कुछ देने या कुछ करने योग्य वे नहीं हैं। फिर भी वे कृष्ण के गुणों को सोच-सोचकर आनन्द और प्रेरणा प्राप्त कर रहे थे।

श्वोभूते विश्वभावेन स्वसुखेनाभिवन्दित: ।
जगाम स्वालयं तात पथ्यनुव्रज्य नन्दित: ।। ३६ ।।

❋ *वे अपने चित की करतूत पर कुछ लज्जित से होकर भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन जनित आनन्द में डूबते-उतराते अपने घर की ओर चल पड़े।। ३६ ।।*

❋ (१) सज्जन अपनी छोटी-छोटी भूलों के प्रति भी पैनी दृष्टि रखते हैं। तथा हर व्यक्ति से उसकी श्रेष्ठता की प्रेरणा लेकर आनन्दित होते हैं।

❁ सम्पन्न व्यक्तियों को श्रेष्ठ कार्यों में कैसा सहयोग करना चाहिए इसका आदर्श सुदामा को समझ में तब आया जब वे अपने आश्रम में पहुँचे। श्री कृष्ण ने सुदामापुरी के उस आश्रम को हर प्रकार साधन सम्पन्न बना दिया था। सुदामा समझ गये कि भगवान अपने भक्तों को माया में लिप्त नहीं देखना चाहते इसलिए उन्हें सीधे धन सम्पत्ति नहीं देते किन्तु उनके द्वारा चलाये जाने वाले लोक मंगल के कार्यों के सारे अभाव पूरे करना कर्तव्य मानते हैं।इसलिए सुदामा ने ईश्वरीय उद्देश्य के लिए प्राप्त साधनों का उपयोग करते हुए स्वयं तपस्वी जीवन बिताना उचित समझा।

इत्थं व्यवसितो बुद्धया भक्तोऽतीव जनार्दने।
विषयाञ्जायया त्यक्ष्यन् बुभुजे नातिलम्पट: ।। ३७ ।।

❋ *परीक्षित ! अपनी बुद्धि से इस प्रकार निश्चय करके वे ब्राह्मण देवता स्वयं त्याग पूर्वक अनासक्त भाव से अपनी पत्नी के साथ रहते हुए भगवत् प्रसाद स्वरूप इस सम्पत्ति का उपयोग सत्कार्यों में करने लगे।। ३७ ।।*

❋ (१)अपने त्यागी होने के अहंकार में सम्पन्न लोगों द्वारा मिल सकने वाले साधनों की उपेक्षा भी न करें किन्तु उन्हें पाकर स्वयं के तप को भी भूल न जायें।

❁ इस प्रकार सुदामा ऋषियों की तरह जीवन बिताते हुए संसार में यश तथा परलोक में पुण्य तथा परमेश्वर के प्रेम के अधिकारी हुए।

उधर पाण्डव शासन व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए अश्वमेघ यज्ञ का आयोजन करने लगे। उनका निमन्त्रण पाकर श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न, सात्यकि आदि को साथ लेकर हस्तिनापुर पहुँचे। पाण्डव यज्ञ की व्यवस्था के लिए हिमालय गये थे। इसी बीच उत्तरा के प्रसव हुआ और अश्वत्थामा के अस्त्र के प्रभाव से मरा हुआ पुत्र पैदा हुआ। सब ओर शोक छा गया कुन्ती द्रौपदी आदि विलाप करने लगीं। समाचार पाकर कृष्ण वहाँ पहुँचे तथा उन्हें ढाढ़सा बंधाया। उन्होंने अपने तप और सत्यपालन का प्रभाव देकर उस बालक में प्राण संचार किये। उन्होंने कहा कि यदि मैंने खेल में भी असत्य न बोला हो अपने कर्तव्य धर्म से कभी विचलित न हुआ होऊँ तो यह अभिमन्यु पुत्र जीवित हो जाय :-

यथा कंसश्च केसी च धर्मेण निहतौ मया ।
तेन सत्येन बालोऽयं पुन: संजीवतामयम् ।। ३८ ।।

❋ *यदि मैंने कंस और केशी का धर्म के अनुसार वध किया है तो इस सत्य के प्रभाव से यह बालक फिर जीवित हो जाय ।। ३८ ।।*

❋ (१) अनीति करने वाले दुष्टों का वध भी धर्म और सत्य की साधना का अंग है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❁ श्रीकृष्ण द्वारा इस प्रकार संकल्प पूर्वक अपने तप और सत्य का अंश लगा देने से वह मृत बालक जी उठा। सब ओर हर्ष छा गया। पाण्डव लौटकर आये और सारा समाचार पाकर वे श्रीकृष्णके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करने लगे। फिर युधिष्ठिर ने उनसे कहा कि इस शरीर का कुछ ठिकाना नहीं इसलिये यज्ञ करने में जल्दी की गई है। श्रीकृष्ण ने उनकी सराहना की तथा कहा कि राज्य पा लेना भर बड़ी बात नहीं उसकी समुचित व्यवस्था मुख्य बात है। आपने अपने इस धर्म कर्तव्य को महत्व दिया। यह मनुष्य शरीर के अनुरूप कार्य है। वे बोले -

जन्मान्तरसहस्रेस्तु मनुष्यत्वं हि दुर्लभम् ।
तद् गत्वापीह यो धर्म न करोति स्ववाञ्चितः ।। ३९ ।।

❋ *हजारों योनियों में भटकने के बाद भी मनुष्य योनि का मिलना दुर्लभ होता है। ऐसे अमूल्य मानव तन को पाकर भी जो धर्म का अनुष्ठान करे वह महान लाभ से वंचित रह जाता है ।। ६९ ।।*

❋ (१) धर्म किन्ही कर्मकाण्डों को नहीं आत्मोत्कर्ष तथा लोक हित के प्रति अपने कर्तव्यों के पालन को कहते हैं।

अनागतानि कार्याणि कर्तुं गणयते मनः ।
शारीरकं समुद्दिश्य स्मयते नूनमन्तकः ।। ४० ।।
तस्माद् धर्मसहायस्तु धर्मं संचिनुयात् सदा ।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ।। ४१ ।।

❋ *मनुष्य का मन भविष्य के कार्यों को करने का हिसाब लगाया करता है किन्तु काल उसके नाशवान शरीर को लक्ष्य करके मुस्कराता रहता है इसलिये धर्म को ही सहायक मान कर सदा उसी के संग्रह में लगे रहना चाहिये, क्योंकि धर्म की सहायता से मनुष्य दुस्तर नरक के पार हो जाता है ।। ४०-४१ ।।*

❋ (१) मनुष्य को अपने अन्त का पता नहीं रहता इसलिये अधिक महत्व के कार्य आगे के लिए टालते नहीं रहना चाहिए। (२) सांसारिक उपलब्धियों की अपेक्षा धर्म कर्तव्यों का पालन अधिकाधिक टिकाऊ लाभ पहुँचाता है।

❁ श्रीकृष्ण का इस प्रकार कथन सुनकर सभी लोग उत्साह पूर्वक अश्वमेघ यज्ञ की व्यवस्था में लग गये। सबके सहयोग और पुरुषार्थ से श्रीकृष्ण के संरक्षण एवं मार्गदर्शन में वह यज्ञ भी सफल हो गया तथा चक्रवर्ती शासन की स्थापना हो गयी। यज्ञ के बाद युधिष्ठिर ने तीर्थ यात्रा के लिए जाने की इच्छा व्यक्त की। श्रीकृष्ण ने उन्हें तीर्थ का मर्म समझाया । कहा कि तीर्थ स्थानों को नहीं श्रेष्ठ प्रवृत्तियों को मानना चाहिये। वे बोले -

तपस्तीर्थ दया तीर्थ शीलं तीर्थ युधिष्ठिर ।
अल्पसंतोषकं तीर्थ नारी तीर्थ पतिव्रता ।। ४२ ।।

❋ *हे युधिष्ठिर तप, दया, शील, संतोष यह सद्गुण भी तीर्थ रूप हैं, पतिव्रता नारी भी एक तीर्थ है ।। ४२ ।।*

❋ (१) जिसके सानिध्य से मनुष्य में दिव्यता उभरे उसे तीर्थ कहा जा सकता है, इस दृष्टि से सद्गुरु तथा श्रेष्ठ आचरण संपन्न नारी को तीर्थ कहा गया है।

आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्थ
मात्मा तीर्थसर्वतीर्थप्रधानम् ।
आत्मा यज्ञः सततं मन्यते वै
स्वर्गो मोक्षः सर्वमात्मन्यधीनम् ।।
आचरनेर्मल्यमुपागतेन
सत्यक्षमानिस्तुलशीतलेन ।
ज्ञानाम्बुना स्नाति हि नित्यमेवं
किं तस्य भूयः सलिलेनतीर्थम् ।।

❋ *हे राजन् ! आत्मा रूपी नदी पवित्र तीर्थ है यह सब तीर्थों में प्रमुख है। आत्मा को यज्ञ रूप माना गया है। स्वर्ग मोक्ष सब आत्मा के ही आधीन हैं जो सदाचार से सालन अत्यन्त निर्मल हो गया है, तथा सत्य और क्षमा के द्वारा जिसमें अतुलनीय शीलता आ गई है ज्ञान रूपी जल में निरन्तर स्नान करने वाले ऐसे मनुष्य को पानी भरे तीर्थ की भी क्या आवश्यकता है ?।। ४३ ।।*

❋ (१) इससे आत्म परिष्कार का अद्भुत महत्व प्रतिपादित होता है।

❁ श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाया कि तीर्थों में श्रेष्ठ आत्मायें तप द्वारा आत्म परिष्कार के लिए उपयुक्त वातावरण बनाती हैं। तीर्थ यात्रा को अपने आत्म परिष्कार तथा ज्ञान संवर्धन का साधन मानकर उसे पूरा करना उचित है मात्र किन्ही मूर्तियों के दर्शन अथवा किन्ही जलाशयों में स्नान कर लेना पर्याप्त नहीं मान लेना चाहिए। युधिष्ठिर ने भगवान की बात को प्रारम्भ से, ध्यान से सुना तथा उसी के अनुसार अपनी यात्रा की तैयारी कर दी।

।। श्रीकृष्ण कथा षष्ठम् अध्याय समाप्त ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सप्तम् अध्याय

तस्मै नमो भगवते त्रिगुणाय गुणात्मने ।
केवलायाद्वितीयाय गुरवे ब्रह्ममूर्तये ।। १।।

❋ *हे प्रभु ! आप त्रिगुणों के रूप में दिखते हैं किन्तु वस्तुत: उन गुणों के भी आत्मा-आदि कारण आप हैं। केवल आपकी ही सत्ता इस जगत में है-दूसरी कोई सत्ता नहीं है। आप ही गुरु रूप हैं आप ही ब्रह्मस्वरूप हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।। १।।*

❋ (१) भगवान को सर्वव्यापी सबके आदि कारण सर्वोच्च सत्ता के रूप में याद रखना चाहिए (२) ब्रह्म के रूप में वही परम लक्ष्य है तथा गुरु रूप में वही लक्ष्य प्राप्ति का मार्ग सुझाता है तथा सहयोग देता है।

✪ .दुष्टों का विनाश करवा कर और धर्मराज्य की स्थापना कर भगवान श्रीकृष्ण और बलरामजी द्वारिकापुरी में यादवों को व्यवस्थित बनाने में लग गये। शक्ति साधन तथा श्रीकृष्ण बलराम का समर्थ संरक्षण पाकर यदुवंशियों में मनमाना आचरण करने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी थी। उन्हें सिद्धांतनिष्ठ बनाने के लिए श्रीकृष्ण प्रयास करने लगे।

एक बार सूर्यग्रहण पड़ा। ग्रहण के समय तीर्थ स्नान के लिए लोग जाते हैं। अपने परिजनों को श्रेष्ठ ऋषियों महात्माओं के सत्संग का लाभ दिलाने की दृष्टि से श्रीकृष्ण सबको लेकर कुरुक्षेत्र तीर्थ गये। वहां द्रौपदी सहित पाण्डव तथा परिवार सहित नन्दबाबा भी पहुँचे। सब बड़े स्नेह से एक दूसरे से मिले, बैठे। श्रीकृष्ण के दर्शनों के लिए व्यास, नारद, च्यवन, विश्वामित्र, भारद्वाज, गौतम, कश्यप, परशुराम, वशिष्ठ, भृगु, अत्रि, मार्कण्डेय, वृहस्पति, सनकादि, अजस्त्थ,याज्ञवल्क्य आदि अनेक ऋषि अपने शिष्यों के साथ पहुँचे। श्रीकृष्ण ने उन सबका उचित आदर सत्कार किया, आसन देकर बैठाया तथा उनके आने पर प्रसन्नता व्यक्त करने लगे। श्रीकृष्ण बोले हे ऋषिश्रेष्ठ ! यहाँ हमारे आने का मुख्य उद्देश्य आप सबका दर्शन लाभ पाना ही था। आप ही अपनी तपस्या से तीर्थों का निर्माण करते हैं। जिनका ज्ञान कम है वे स्थूल तीर्थों को ही महत्व देते हैं और संतो का लाभ नहीं उठा पाते :-

किं स्वल्पतपसां नृणामर्चायां देवचक्षुषाम् ।
दर्शनस्पर्शनप्रश्नप्रह्वपादार्चनादिकम् ।। २।।
न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामया: ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधव: ।। ३।।

❋ *जिन्होंने बहुत थोड़ी तपस्या की है और जो लोग अपने इष्टदेव को समस्त प्राणियों के हृदय में नहीं देख पाते केवल मूर्तिविशेष में ही उनका दर्शन करते हैं उन्हें आप लोगों के दर्शन स्पर्श,कुशल-प्रश्न, प्रणाम और पादपूजन आदि का सुअवसर भला कब मिल सकता है, केवल जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं कहलाते और केवल मिट्टी या पत्थर की प्रतिमाएँ ही देवता नहीं होती संत पुरुष ही वास्तव में तीर्थ ओर देवता हैं क्योंकि उनका बहुत समय तक सेवन किया जाय तब वे पवित्र करते हैं, परन्तु संत पुरुष का दर्शन तो तुरन्त कृतार्थ कर देता है ।। २-३।।*

❋ (१) ईश्वर को सर्वव्यापी अनुभव करने के लिए तपोनिष्ठ होना पड़ता है। (२) स्थूल को ही सब कुछ मान लेने वाले सूक्ष्म के बड़े लाभ से वंचित रह जाते हैं। (३) तीर्थ सूक्ष्म संस्कारयुक्त वातावरण का नाम है, स्थान का नहीं। उसका लाभ स्थान विशेष पर मिल सकता है किन्तु सच्चे सन्तों के सान्निध्य से वह लाभ किसी भी जगह मिल सकता है।

यस्यात्मबुद्धि: कुणपे त्रिधातुके
स्वधी: कलत्रादिषु: भौम इज्यधी ।
यत्तीर्थबुद्धि: सलिले न कर्हिचि-
ज्जनेष्वाभिज्ञेषु स एव गोखर ।। ४।।

❋ *श्रीकृष्ण ने आगे कहा-महात्माओं और सभासदों ! जो मनुष्य वात, पित्त और कफ-इन तीन धातुओं से बने हुए शवतुल्य शरीर को ही आत्मा-अपना मै, स्त्री, पुत्र आदि को ही अपना और मिट्टी, पत्थर, काष्ठ आदि से बने रूपों को ही इष्टदेव मानता है तथा जो केवल जल को ही तीर्थ समझता है-ज्ञानी महापुरुषों*

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को नहीं वह मनुष्य होने पर भी पशुओं में भी नीच गधा ही है।। ४।।

❋ (१) अपने शरीर ही नहीं अन्दर के चेतन को अपना स्वरूप समझना चाहिए। (२) शारीरिक सम्बन्धियों से आगे बढ़ कर विचार और आत्मिक सम्बन्धों तक अपनत्व का विस्तार किया जाना आवश्यक है। (३) सत्पुरुषों को चैतन्य तीर्थ कहा जाता है। (४) विवेक का उपयोग न कर पाना पशुता की निशानी है।

✿ भगवान के श्रीमुख से इस प्रकार मर्म की बात सुनकर सभासदों की आँखों के आगे से अज्ञान का पर्दा हटा। ऋषि आदि उनकी स्तुति करने लगे :-

ब्रह्म ते हृदयं शुक्ल तपःस्वाध्यायसंयमैः ।
यत्रोपलब्धं सद् व्यक्तमव्यक्तं च ततः परम् ।।.५।।

हे भगवन् ! आपका हृदय निर्मल है तपस्या, स्वाध्याय और संयम आदि के द्वारा उसी में (हृदय में) आपके साकार-निराकार रूप और दोनों के अधिष्ठान स्वरूप परब्रह्म का साक्षात्कार होता है ।। ५।।

(१) निर्मल हृदयों में ही भगवान का बोध होता हैं। (२) प्रभु की अनुभूति साकार हो या निराकार, अपने अंदर ही होती है बाहर नहीं।

✿ ऋषिगण जब स्तुति कर चुके तो वसुदेवजी ने उनसे अपने कल्याण के लिए सलाह मांगी। ऋषियों को इस पर आश्चर्य हुआ कि वह भगवान कृष्ण के होते हुए भी हमसे क्यों मार्गदर्शन चाहते हैं। तब नारदजी ने उन्हें समझाते हुए कहा कि यह कृष्ण के प्रति बच्चे का ही भाव रखते हैं, इसलिये उनसे दिव्य ज्ञान पाने की कल्पना नहीं कर पाते। फिर मनुष्य का स्वभाव है कि जो सुगमता से उपलब्ध होता है उसका महत्व नहीं समझ पाते। नारदजी बोले :-

संनिकर्षो हि मर्त्यानामनादरणकारणम् ।
गागंहित्वा यथान्याम्भस्तत्रत्यो यापि शुद्धये ।। ६।।

❋ *बहुत पास रहना मनुष्यों के अनादर का कारण हुआ करता है। देखते हैं गंगातट पर रहने वाला पुरुष गंगाजल छोड़कर अपनी शुद्धि के लिए दूसरे तीर्थ में जाता है ।। ६।।*

❋ (१) मनुष्य को जो प्राप्त है उसका सही मूल्यांकन करके लाभ उठाने का अभ्यास किया जाना चाहिए।

✿ नारदजी का संकेत समझकर ऋषियों ने वसुदेवजी तथा अन्य नागरिकों को सद्गृहस्थों के लिये उचित मार्ग का उपदेश दिया। उन्हें अपने पारिवारिक कर्तव्यों से जल्दी से जल्दी मुक्त होकर परमार्थ परायण तपस्वी जीवन अपनाने की सलाह दी। ऋषियों ने कहा :-

वित्तैषणां यज्ञदानैर्गृहैर्दारसुतैषणाम् ।
आत्मलोकैषणां देव कालेन विसृजेद् बुधः ।
ग्रामे त्यक्तैषणाः सर्वे ययुर्धीरास्तपोवनम् ।। ७।।

❋ *वसुदेवजी ! विचारवान पुरुष को चाहिए कि यज्ञ, दान आदि के द्वारा वित्तेषणा तथा समय का प्रभाव देखकर स्त्री पुत्रादि की एषणा तथा लोकेषणा को समाप्त कर दे। इस प्रकार सभी धीर पुरुष गृहस्थ जीवन में ही तीनों प्रकार की एषणाओं-इच्छाओं का परित्याग करके तपोवन का रास्ता लें ऐसा नियम है ।। ७।।*

❋ (१) तीनों एषणाओं का स्वरूप समझाया जा सकता है । (२) सत्कार्यों में धन को लगाते रहने से धन के प्रति मोह नहीं होता (३) समय के प्रभाव से स्त्री, पुत्रादि तथा यश भी नहीं रहते यह चिन्तन करने से उनके प्रति मोह भी नष्ट हो जाता है।

✿ ऋषियों ने बतलाया कि मनुष्य अपने सांसारिक ऋणों को ही महत्व देता है किन्तु उस पर पितृऋण, ऋषिऋण, तथा देवऋण भी होता है। इनको चुकाना भी आवश्यक है। श्रेष्ठ समाज की रचना के लिए उपयुक्त व्यक्तियों का निर्माण करके पितृऋण तथा उपासना, आत्मशोधन, तप, परमार्थ आदि के द्वारा अपने अन्दर ऋषियो जैसा व्यक्तित्व पैदा करने से ऋषि ऋण चुकाया जाता है। लोकहित के कार्यों-यज्ञ आदि के माध्यम से संसार में सद्भावना, सदविचारणा तथा सत्कर्म फैलाकर देवऋण से मुक्ति मिलती है।

ऋषियों का उपदेश सुनकर वसुदेवजी ने वहीं यज्ञ की दीक्षा ली। पारिवारिक उत्तरदायित्व से अपने को मुक्त करके यज्ञीय जीवनक्रम अपनाने का संकल्प करते हुए एक सार्वजनिक यज्ञ करके सभी तीर्थ यात्रियों को इसकी प्रेरणा दी। यज्ञ सम्पन्न करके, ऋषियों का आशीर्वाद पाकर वसुदेवजी परिजनों सहित द्वारिका लौट गये।

राजा परीक्षित ने भगवद्कथा का रस लेते हुए शुकदेवजी से पूछा कि हे ऋषिवर ! देखा गया है कि संसारीजन तो धन-धान्य का भरपूर उपभोग करते हैं किन्तु लक्ष्मीपति भगवान के प्रिय भक्तों को अभावग्रस्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

त्यागमय जीवन विताना पड़ता है इसका क्या कारण है? शुकदेवजी ने कहा राजन् ! यही प्रश्न अश्वमेघ यज्ञ के बाद युधिष्ठिर ने स्वयं भगवान से पूछा था तब भगवान ने स्वयं उन्हें जो उत्तर दिया था वह मैं सुनाता हूँ। भगवान ने कहा-हे धर्मराज ! मनुष्य मुझे बहुत प्रिय है, मैंने उन्हें अपने सुख-दुःख, उत्थान-पतन के लिए स्वतन्त्रता दे रखी है। उनके संकल्प ही में मैं उन्हें सहायता देता हूँ। जो सांसारिक सुखों की कामना और उनके लिए प्रयास करते हैं। उन्हें वह मिल जाता है पर जो भक्त मेरे निकटतम अनुग्रह की सच्ची कामना करते हैं मैं उनका ध्यान लौकिक सम्पत्ति से हटाकर अलौकिक सम्पत्ति की ओर खींचता हूँ। उनका सम्बन्ध स्वार्थी स्वजनों से तोड़कर आदर्शपरायण व्यक्तियों से जोड़ता हूँ।

यस्याहमनुग्रह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः ।
ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दुःखदुःखितम् ।।८।।
स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद् धनेहया।
मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम् ।।९।।

❋ *जिस पर मैं कृपा करता हूँ पहले धीरे-धीरे उसके धन का हरण कर लेता हूँ। तब उसे निर्धन देखकर उसके स्वार्थी स्वजन सम्बन्धी भी उसके दुःख की चिन्ता न करके उसे त्याग देते हैं। ऐसी स्थिति में जब वह धन के विषय में किये गये उद्योगों से विमुख होकर मेरे आदर्शों में लगे हुए श्रेष्ठ जनों में से, मित्रता जोड़ता है तब उस पर मेरी कृपा की वर्षा होती है ।। ८-९ ।।*

❋ (१) धन दौलत पाने के लिए भगवान की भक्ति करना भ्रान्ति है। (२) भगवान भक्त को जो अलौकिक सम्पदा देना चाहते हैं। उसका महत्व समझें तथा आदर्शनिष्ठ जीवन अपनायें।

✿ शुकदेवजी इस प्रकार परीक्षित का समाधान करके आगे की कथा कहने लगे। वे बोले- राजन् ! भगवान कृष्ण ने संसार को आतताइयों से मुक्त करके धर्म व्यवस्था बनायी। इस कार्य को उन्होंने अकेले भी किया। पाण्डवों तथा यदुवंशियों की सहायता से भी आगे बढ़ाया। पाण्डव तो उनके निर्देश के अनुसार मर्यादित जीवन जीने लगे किन्तु यदुवंशियों में अहंकार तथा स्वच्छन्दता पनपने लगी। श्रीकृष्ण ने सोचा कि मेरे रहते तो ये नियंत्रित हैं, किन्तु बाद में ये सब स्वच्छन्द होकर अनर्थ पैदा करेंगे।

यह सोचकर उन्होंने अपने अन्तिम कर्तव्य का निर्धारण इस प्रकार किया :-

नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत्
कथञ्जिन्मत्संश्रयस्य विभवोन्नहनस्य नित्यम् ।
अन्तःकलिं यदुकुलस्य विधाय वेणुस्तम्बस्य
बाह्यमिव शान्तिमुपैमि धाम ।।१०।।

❋ *यह यदुवंशी मेरे आश्रित हैं और हाथी, घोड़े, जनबल, धनबल आदि विशाल वैभव के कारण उच्छृखंल हो रहे हैं। अन्य किसी से इनकी पराजय नहीं हो सकती। बाँस के वन में परस्पर रगड़ से उत्पन्न अग्नि की तरह परस्पर संघर्ष से ही इन्हें समाप्त करके ही शान्ति संभव हैं। इसके बाद ही मैं मनुष्य शरीर छोड़कर अपने लोक को जाऊँगा ।। १० ।।*

❋ (१) भगवान अपने कर्तव्यों का पालन बड़ी कठोरता से करते हैं- उनके अपने कहलाने वाले भी उनके आदर्शों की उपेक्षा करने का उचित दण्ड पाते हैं।

✿ भगवान ने ज्ञानी भक्त उद्धव को बुलाकर अपनी योजना समझायी और कहा कि मेरे शरीर छोड़ देने पर तुम अपने आपको मेरे प्रकाश से वंचित न मानना तुम मुझे अपनी अन्दर आत्मा के रूप में अनुभव करना। इसका ढंग बतलाते हुए भगवान् बोले:-

तस्माद् युक्तेन्द्रियग्रामो युक्तचित्त इदं जगत् ।
आत्मनीक्षस्व विततमात्मानं मय्यधीश्वरे ।। ११।।
ज्ञानविज्ञानसंयुक्त आत्मभूतः शारीरिणाम् ।
आत्मानुभवतुष्टात्मा नान्तरायैर्विहन्यसे ।। १२।।

❋ *तुम पहले अपनी समस्त इन्द्रियों को अपने वश में कर लो, और चित्त की समस्त वृत्तियों को भी साध लो। फिर ऐसा अनुभव करो कि यह सारा संसार जगत् अपने आत्मा में ही फैला हुआ है और आत्मा मुझ सर्वात्मा इन्द्रियातीत ब्रह्म से एक है, अभिन्न है। तब ज्ञान और विज्ञान से भली-भाँति सम्पन्न होकर तुम अपने आत्मा को सभी शरीरधारियों के आत्मा के रूप में अनुभव करके संतुष्ट हो जाओगे। इसलिए किसी भी विघ्न से तुम पीड़ित नहीं हो सकोगे।। ११-१२ ।।*

❋ (१) अन्तःकरण में ईश्वर के साक्षात्कार की यह सीढ़ियाँ भली प्रकार समझकर उनकी साधना करनी चाहिए। (२) आत्म तत्व का अनुभव होते ही मनुष्य अपने आपको ईश्वर की तरह सर्वव्यापी अनुभव करने लगता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❁ उद्धवजी ने भगवान से पूछा कि योगेश्वर ! अपनी प्रगति के लिए मार्गदर्शक गुरु की आवश्यकता पड़ती है। इस आवश्यकता की पूर्ति आत्मिक स्तर पर कैसे की जा सकती है ? यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले :-

आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः ।
यत् प्रत्यक्षानुमानाभ्या श्रेयोऽसावनुविन्दते ।। १३ ।।

❋ *समस्त प्राणियों का विशेषकर मनुष्य का आत्मा ही अपना उपदेशक गुरु है। वह अपने अनुभव और अनुमान के द्वारा अपने हित-अहित का निर्णय करने में पूर्णतः समर्थ हैं ।। १३ ।।*

❋ आत्मा ही सद्गुरु है, बुद्धि को उसी से निर्देश लेने का अभ्यास कराया जाना चाहिए।

पुरुषत्वे च मां धीराः सांख्ययोगविशारदः ।
आविस्तरां प्रपश्यन्ति सर्वशक्त्युपबृंहितम् ।। १४ ।।

❋ *योगविशारद धीर पुरुष इस मनुष्य योनि में इन्द्रिय शक्ति मनः शक्ति आदि के आश्रयभूत मुझ आत्मतत्व को पूर्णतः प्रकटरूप से साक्षात्कार कर लेते हैं ।। १४ ।।*

❋ (१) निरर्थक चेष्टाओं में इन्द्रियों की शक्ति नष्ट न की जाय तो उनके सहारे से ईश्वर साक्षात्कार संभव है।

एकद्वित्रिचतुष्पादो बहुपादस्तथापदः ।
बह्व्यः सन्ति पुरः सृष्टास्तासां मे पौरुषी प्रियाः ।। १५ ।।

❋ *मैंने एक पैर वाले, दो पैर वाले, तीन पैर वाले, चार पैर वाले, चार से अधिक पैर वाले और बिना पैर के -इत्यादि अनेक प्रकार के शरीरों का निर्माण किया है। उनमें मुझे सबसे अधिक प्रिय मनुष्य का ही शरीर है ।। १५ ।।*

❋ (१) भगवान का प्रिय शरीर पाकर कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जो उन्हें अप्रिय हो।

❁ भगवान ने उद्धव को समझाया कि मनुष्य आत्मा के संकेत समझने लगे तो अपनी प्रगति और सद्गति के लिए ईश्वर के संकेत किसी स्रोत से पा सकता है। इस संदर्भ में उन्होंने अवधूत दत्तात्रेयजी की कथा सुनायी। उन्होंने अपने २४ गुरु घोषित किए थे। राजा यदु के प्रश्न का उत्तर देते हुए दत्तात्रेय जी ने अपने गुरुओं का विवरण इस प्रकार सुनाया। वे बोले हे- राजन् ! मेरे २४ गुरु क्रमशः (१) पृथ्वी, (२) वायु, (३) आकाश, (४) जल, (५) अग्नि, (६) चन्द्रमा, (७) सूर्य, (८) कबूतर, (९) अजगर, (१०) समुद्र, (११) पतंग, (१२) भौंरा एवं मधुमक्खी, (१३) हाथी, (१४) शहद निकालने वाला (१५) हिरण, (१६) मछली, (१७) वैश्या, (१८) कुरर पक्षी, (१९) बालक,(२०) कन्या, (२१) बाण चलाने वाला, (२२) सर्प, (२३) मकड़ी तथा (२४) भृंगी कीट है।

उनसे प्राप्त शिक्षाओं का वर्णन करते हुए उन्होंने बतलाया मैंने पृथ्वी से धैर्य और सहनशक्ति की शिक्षा ली। पृथ्वी की तरह वृक्ष, खनिज, फसल आदि देकर परमार्थ करते रहने की वृत्ति भी अनुकरणीय है। शरीर के भीतर वायु थोड़े से तृप्त होने, आवश्यकताओं को न बढ़ाने का उपदेश देता है। बाहर वायु, सतत क्रियाशीलता, सब जगह जाना किन्तु कहीं आसक्त न होना सिखाता है। गंध पृथ्वी का गुण है, उसे वायु धारण करता है पर उससे मुक्त रहता है। आत्मा भी शरीर को धारण करे, पर निर्लिप्त रहे।

आकाश सर्वव्यापी है किन्तु स्थूल हलचलों से अप्रभावित रहता है। आत्मा का भी यही गुण है। साधक को जल की तरह स्वच्छ पवित्र तथा शीतल होना चाहिए तथा अपने संसर्ग में आने वालों में भी यह गुण पैदा करने चाहिए।

अग्नि की तेजस्विता, ऊर्ध्वगामी रहना, कुछ संग्रह न करना, सबको अपने रूप में बदल लेना किन्तु किसी के विकार से प्रभावित न होना, सबको समान वितरण कर देना आदि प्रवृत्तियाँ अपनाने योग्य हैं। वह अनेक रूपों में दीखते हुए भी किसी रूप में बँधी नहीं हैं ऐसी ही आत्मा है।

हे राजन् ! चन्द्रमा की घटती बढ़ती कलायें बतलाती हैं कि जीवन में अच्छे बुरे परिवर्तन आते जाते रहते हैं। एक स्थिति टिकती नहीं। सूर्य आत्मा की तरह अनेक विम्बों में होते हुए भी एक ही है। वह पृथ्वी से जल सोख लेता है और फिर उसी पर बरसा देता है। मनुष्य भी पुरुषार्थ से कण-कण साधन एकत्रित करें और आवश्यकतानुसार सूर्य की तरह उन्हें दान कर दे।

कबूतर ने मोह में पड़कर निरर्थक संतान पैदा कर लीं। बहेलिये द्वारा उन्हें पकड़ लिये जाने पर स्वयं मुक्त होते हुए भी जाल में कूद पड़ा। मनुष्य भी कुटुम्ब के प्रति मोह ग्रस्त होकर पतित हो जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ।
गृहेषु खगवत् सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः ।। १६ ।।

❋ *यह मनुष्य शरीर मुक्ति का खुला हुआ द्वार है इसे पाकर भी जो कबूतर की तरह गृहस्थी में ही फँसा हुआ है वह अपने उच्च स्तर से गिर रहा है शास्त्र की भाषा में वह 'आरूढ़च्युत' हैं ।। १६ ।।*

❋ अजगर के सम्बन्ध में दत्तात्रेय जी ने बतलाया कि वह इन्द्रिय सुखों के लिए चेष्टा नहीं करता मनुष्य को भी ऐसा ही करना चाहिए।

सुखमैन्द्रियकं राजन् स्वर्गे नरक एव च ।
देहिनां यद्यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत् तद्बुधः ।।१७।।

❋ *हे राजन् ! इन्द्रिय सुख तो स्वर्ग एवं नर्क दोनों ही जगह मिल सकते हैं किन्तु उस दिशा में किये गये कर्मों के अनुसार दुःख न चाहने पर भी भोगना पड़ता है, इसलिए पुरुष इन्द्रिय सुखों की इच्छा नहीं करते ।। १५ ।।*

❋ (१) इन्द्रिय सुख स्वाभाविक ढँग से प्राप्त हो तो कोई हानि नहीं पर उनके लिये ऐसे कार्य न करे जिनके फलस्वरूप बाद में दुःख उठाने पड़े।

✿ पतंगे से यह सीख मिलती है कि दूर से चमकदार दिखने वाली वस्तुओं के आकर्षण में पड़कर ना समझ लोग नष्ट हो जाते हैं।

योषिद्धिरण्याभरणाम्बरादि
द्रव्येषु मायारचितेषु मूढः ।
प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्धया
पतंगवन्नश्यति नष्टदृष्टिः ।। १८ ।।

❋ *जो मूढ़ कामिनी कंचन, गहने, कपड़े आदि नाशवान मायिक पदार्थों में फँसा हुआ है और जिसकी सम्पूर्ण चित्तवृत्ति उनके उपभोग के लिये लालायित है वह अपनी विवेक बुद्धि खोकर पतंगे के समान नष्ट हो जाता है ।। १८ ।।*

अणुभ्यश्च महद्भयश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः ।
सर्वतः सारमादद्यात् पुष्पेभ्य इव षट्पदः ।। १९ ।।

❋ *जिस प्रकार भौंरा विभिन्न पुष्पों से चाहे वे छोटे हों या बड़े उनका सार संग्रह करता है, वैसे ही बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि छोटे-बड़े सभी शास्त्रों से उनका सार उनका रस निचोड़ ले ।। १९ ।।*

❋ अवधूतजी ने कहा कि भौंरा संग्रह नहीं करता किन्तु मधुमक्खी संग्रहवृत्ति के कारण समूह के साथ-साथ स्वयं भी मारी जाती है।

हथिनी के पीछे लगा कामवासना से प्रेरित हाथी पकड़ा जाता देखकर दत्तात्रेयजी ने प्रेरणा ली कि नारी को कभी भोग्या रूप में न देखें।

न देयं नोपभोग्यं च लुब्धैर्यद् दुःखसंचितम् ।
भुङ्क्ते तदपि तजान्यो मधुहेवार्थविन्मधु ।। २०।।

❋ *मैंने मधु निकालने वाले पुरुष से यह शिक्षा ग्रहण की है कि संसार के लोभी पुरुष बड़ी कठिनाई से धन का संचय करते रहते हैं, किन्तु वह संचित धन न किसी को दान करते हैं और न स्वयं उसका उपभोग करते हैं। जैसे मधु निकालने वाला मधुमक्खियों द्वारा संचित रस को निकाल लेता है, वैसे ही उनके संचित धन को भी उसकी टोह रखने वाला कोई दूसरा पुरुष ही भोगता है ।। २० ।।*

✿ हिरण संगीत की धुन से मुग्ध होकर शिकारी द्वारा मारा जाता है। मनुष्य इस प्रकार किसी इन्द्रिय का आसक्त न हो।

जिह्वयातिप्रमाथिन्या जनो रसविमोहितः ।
मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धिर्मीनस्तु बडिशैर्यथा ।। २१।।

अब मैं तुम्हें मछली की सीख सुनाता हूँ। जैसे मछली काँटे में लगे हुए माँस के टुकड़े के लोभ से अपने प्राण गँवा देती है, वैसे ही स्वाद का लोभी दुर्बुद्धि मनुष्य भी अपनी मन को मथकर व्याकुल कर देने वाली जिह्वा के वश में हो जाता है और मारा जाता है ।। २१ ।।

तावज्जितेन्द्रियो न स्याद् विजितान्येन्द्रियः पुमान् ।
न जयेद् रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे ।। २२।।

❋ *मनुष्य और सब इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेने पर भी तब तक जितेन्द्रिय नहीं हो सकता, जब तक रसनेन्द्रिय को अपने वश में नहीं कर लेता और यदि रसनेन्द्रिय को वश में कर लिया तब तो मानो सभी इन्द्रियाँ वश में हो गईं ।। २२ ।।*

✿ पिंगला वैश्या धनी पुरुष की आशा में आधी रात तक बैठी-बैठी हताश हो गयी तो उसे वैराग्य हो गया। उसने समझ लिया कि विषयों की आशा में मनुष्य निरर्थक दुःख उठाता है । विरक्ति ही हल है। उसने गाया:-

आत्मैव ह्यात्मनो गोप्ता निविद्येत यदाखिलात् ।
अप्रमत्त इदं पश्येद् ग्रस्तं कालाहिना जगत् ।। २३।।

❋ *जिस समय जीव समस्त विषयों से विरक्त हो जाता है, उस समय वह स्वयं ही अपनी रक्षा कर*

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेता है। इसलिये बड़ी सावधानी के साथ यह देखते रहना चाहिए कि सारा जगत् कालरूपी अजगर से ग्रस्त है।। २३।।

✿ इस प्रकार निर्णय करके वह शान्ति से सो गयी। मनुष्य भी विषय विरक्त होकर ही शान्ति पा सकता है। कुरर पक्षी की चोंच में माँस का टुकड़ा देखकर बलवान पक्षी उस पर टूट पड़े। उसने वह टुकड़ा छोड़ दिया और बच गया। छोटी सी वस्तु का लोभ छोड़कर निरर्थक झंझट से बचना बुद्धिमानी है।

बालक को निश्छल और अपने आप में मस्त-देखकर मैंने वैसा बनकर ईश्वर सान्निध्य पाने की प्रेरणा प्राप्त की। कन्या मेहमानों के लिए चुपचाप धान कूटने बैठी तो चूड़ियाँ आवाज करने लगीं। जब केवल एक-एक चूड़ी रह गयी तब आवाज बंद हुई। मैंने सीखा कि साधक साधना काल में अकेला रहे। नहीं तो चर्चा और हो हल्ला के कारण साधना नहीं हो पाती।

बाण चलाने वाले से मैंने लक्ष्य के प्रति एकाग्रता तथा उसी दिशा में इन्द्रियों की क्रियाशीलता का नियोजन सीखा। सर्प की तरह साधक कम बोलने वाला हो बाहरी आकार से उसकी शक्ति का पता न लगे तथा एक स्थान पर घर बनाकर न बैठ जाय, पर्यटनशील रहे।

यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णां संतत्य वक्त्रतः ।
तया विहृत्य भूयस्तां ग्रसत्येवं महेश्वरः ।। २४।।

✻ *जैसे मकड़ी अपने हृदय से मुँह के द्वारा जाला फैलाती है, उसी में विहार करती है और फिर उसे निगल जाती है। वैसे ही परमेश्वर भी इस जगत् को अपने में से उत्पन्न करते हैं, उसमें जीवरूप से विहार करते हैं और फिर अपने में लीन कर लेते हैं।। २४।।*

✻ भृंगी अन्य कीड़े को पकड़कर अपने निवास में बंद कर देता है। उसके चिन्तन के प्रभाव से वह कीड़ा भी भृंगी बन जाता है। चिन्तन की शक्ति से जीव भी ब्रह्म बन सकता है।

इस प्रकार चौबीस गुरुओं का विवरण सुनाकर दत्तात्रेयजी ने कहा कि मैं अपने शरीर को भी गुरु मानता हूँ। इससे विवेक और वैराग्य की शिक्षा मिलती है। सभी इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों की ओर खींचती हैं। उचित अनुचित का विवेक करना तथा वैराग्य भाव साधे बिना इसका सदुपयोग संभव नहीं है। उन्होंने कहा राजन् वास्तव में अपनी बुद्धि का उपयोग किए बिना किसी गुरु का लाभ नहीं उठाया जा सकता :-

न ह्येकस्माद् गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात् सुपुष्कलम् ।
वृह्यैतद्वितीयं वै गीयते बहुधर्षिभिः ।। २५।।

✻ *केवल गुरु से ही सुस्थिर और पर्याप्त ज्ञान नहीं मिल सकता अपनी बुद्धि का भी उपयोग करना पड़ता है। एक ही ब्रह्मा का गान अनेक ऋषि अनेक प्रकार से करते हैं।*

✻ (१) गुरु का मार्गदर्शन और अपना प्रयास मिलकर ही लाभ दे सकता है।

✿ भगवान-श्रीकृष्ण ने इस प्रकार अनेक प्रसंग सुनाकर प्रियभक्त उद्धव को बद्रिकाश्रम तप करने भेज दिया। फिर उन्होंने द्वारिकावासी स्त्री बच्चों तथा बूढ़ों को शंखोद्धार क्षेत्र भेज दिया तथा अन्य सबको लेकर द्रभास क्षेत्र-समद्रु तट पर गए। वहाँ उन्होंने सबको मंगल कृत्य एवं स्नान करने के लिए कहा सबने उनकी आज्ञानुसार स्नान पूजन किया।

ततस्तस्मिन महापानं पपुमैरेयकं मधु ।
दिष्टविभ्रंशितधियो यद्द्रवैर्भ्रश्यते मतिः ।। २६।।

✻ *यह सब तो उन्होंने किया परन्तु मैरेयक नामक मदिरा का पान करने लगे जिसके नशे से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। वह पीने में तो अवश्य मीठी लगती है परंतु परिणाम से सर्वनाश करने वाली है ।। २६।।*

✿ शराब के नशे में उन्मत्त होकर वे यदुवंशी एक दूसरे से लड़ने लगे। रथ अश्व आदि वाहनों तथा शस्त्रास्त्रों का भी प्रयोग करने लगे। श्रीकृष्ण एवं बलराम के रोकने पर भी न रुके तथा उन्हें भी अपना शत्रु मानने लगें। परिणाम यह हुआ कि समुद्र तट पर वे परस्पर ही मर कटकर समाप्त हो गये।

एवं नष्टेषु सर्वेषु कुलेषु स्वेषु केशवः ।
अवतारितो भुवो भार इति मेनेऽवशेषितः ।। २७।।

✻ *जब भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि समस्त यदुवंशियों का संहार हो चुका, तब उन्होंने यह सोचकर सन्तोष की साँस ली कि पृथ्वी का बचा-खुचा भार भी उतर गया ।। २७।।*

✻ (१) उद्दण्ड आततायियों के निकट सम्बन्धी भी उनसे मुक्ति पाकर संतोष पाते हैं । (२) भगवान हर कीमत पर अपना कर्तव्य पूरा करते हैं।

रामः समुद्रवेलायां योगमास्थाय पौरुषम् ।
तत्याज लोकं मानुषं संयोज्यात्मानमात्मनि ।। २८।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❋ *परीक्षित ! बलरामजी ने समुद्र तट पर बैठकर एकाग्रचित्त से परमात्मचिंतन करते हुए अपने आत्मा को आत्मस्वरूप में ही स्थिर कर लिया और मनुष्य शरीर छोड़ दिया ।। २८।।*

✿ जब श्रीकृष्ण ने देखा कि बड़े भैय्या बलरामजी भी परमपद में लीन हो गये हैं तो वे पीपल के पेड़ के नीचे जा बैठे। जरा नाम के एक बहेलिए ने दूर से उनके तलवे को हिरण का मुँह समझकर तीर मार दिया। जब उसे सही स्थिति का पता लगा तो वे दुखी होकर क्षमा माँगने लगा। भगवान ने उसे पूर्वजन्म की याद दिलायी। वह बहेलिया त्रेता युग में बालि था। राम जन्म में भगवान ने उसे छिपकर मारा था इसलिए इस जन्म में उसके तीर से अपने देह त्यागने की तैयारी की। श्रीकृष्ण ने बहेलिए से कहा तेरा कोई दोष नहीं है तूने मेरे कर्म की व्यवस्था के अनुसार ही यह कार्य किया है।

माभैजरि त्वमुत्तिष्ठ काम एष कृतो हि मे।
याहि त्वं मदनुज्ञातः स्वर्ग सुकृतिनां पदम् ।। २९।।

❋ *अरे ! उठ तू भय मतकर। तूने तो मेरा ही काम किया है तू मेरी आज्ञा से बड़े पुण्यात्मा लोगों को प्राप्त होने वाले स्वर्ग में निवास कर ।। २९।।*

❋ (१) कर्म सिद्धान्त के प्रति भगवान की कठिन मर्यादा (२) भगवान अपने सिद्धान्त के अनुरूप कार्य करने वालों को उच्चतम पुण्य का भागी बनाते हैं।

❋ इस प्रकार भगवान ने व्याध को वरदान दिया और अपने स्थान पर बैठ गये। तभी उन्हें खोजते उनके सारथी दारुक वहाँ पहुँचे। भगवान ने उन्हें समझाया, कहा यादवों के विनाश, बलराम जी तथा हमारे शरीर त्याग की सूचना द्वारिकावासियों को दे दो। उन्हें द्वारिका छोड़कर अर्जुन के संरक्षण में चले जाने का निर्देश देना। दारुक को विदा कर भगवान श्रीकृष्ण ने अपने पार्थिव शरीर को छोड़ दिया। शुकदेव जी बोले:-

राजन् परस्य तनुभृज्जननाप्ययेहा
मायाविडम्बनमवेहि यथा नटस्य ।
सृष्टवाऽऽत्मनेदमनुविश्य विहृत्य चान्ते संहृत्य
चात्ममहिनोपरतः स आस्ते ।। ३०।।

परीक्षित ! जैसे नट अनेकों प्रकार के स्वांग बनाता है, परन्तु रहता है उन सबसे निर्लेप, वैसे ही भगवान का मनुष्यों के समान जन्म लेना लीला करना और फिर उसे संवरण कर लेना उनकी माया का विलासमात्र है, अभिनय मात्र है। वे स्वयं ही जगत् की सृष्टि करके इसमें प्रवेश करके विहार करते हैं और अन्त में हार लीला करके अपने अनन्त महिमामय स्वरूप में ही स्थित हो जाते हैं ।। ३०।।

तथाप्यशेषस्थितिसम्भवाप्यये
ध्वनन्यहेतुर्यदशेषशक्तिधृक ।
नैच्छतप्रणेतुं वपुरत्र शेषितं
मर्त्येन कि स्वस्थगतिं प्रदर्शयन्।। ३१।।

❋ *यद्यपि भगवान श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत की स्थिति, उत्पत्ति और संहार के निरपेक्ष कारण हैं और सम्पूर्ण शक्तियों को धारण करने वाले हैं तथापि उन्होंने अपने शरीर को इस संसार में बचा रखने की इच्छा नहीं की। इससे उन्होंने यह दिखाया कि इस मनुष्य शरीर से मुझे क्या प्रयोजन है ? आत्मनिष्ठ पुरुषों के लिए यही आदर्श है कि वे भी शरीर के प्रति मोह न रखें। ।। ३१।।*

✿ ऋषियों को भगवद् कथा सुनाकर शौनकजी इस कथा का माहात्म्य बतलाते हुए कहने लगे :-

सर्ववेदान्तसारं यद् ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् ।
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम् ।। ३२।।

❋ *यह समस्त उपनिषदों का सार है, ब्रह्म और आत्मा की एकरूपता । यही श्री मद्भागवत कां प्रतिपाद्य विषय है इसके निर्माण का प्रयोजन है एक मात्र कैवल्यं मोक्ष ।। ३२।।*

(१) आत्मा परमात्मा की एकता को शास्त्रों का सार तत्व माना गया है (२) कैवल्य मोक्ष का अर्थ है सारे बन्धनों से छुटकारा केवल परमात्मा तत्व का बोध होना ।

तत्र ज्ञानविराग भक्ति
सहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं ।
तच्छृण्वन् विपठन् विचारणपरो
भक्तया विमुच्येन्नरः ।। ३३।।

❋ *इस कथा की विशेषता है ज्ञान, वैराग्य एवं भक्ति सहित निष्काम कर्मयोग। इसे विचार पूर्वक सुनने या पढ़ने वाला भगवान की भक्ति एवं मोक्ष का अधिकारी होता है ।। ३३।।*

❋ (१) कथा से कर्म, ज्ञान तथा भक्ति तीनों की वृद्धि श्रोता में होनी चाहिए, किन्तु यह तभी संभव है जब इसे विचारपूर्वक सुना और पढ़ा जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❁ कथा सम्पूर्ण होनेपर लोगों को यज्ञीय जीवन क्रम की प्रेरणा देने के लिए विधिवत हवन करना चाहिए। भागवत् में हवन गायत्री मन्त्र से ही करने का उल्लेख मिलता है। :-

अथवा हवनं कुर्याद्गायत्र्या सुसमाहिता ।
तन्मयत्वात्पुराणस्य परमस्य च तत्त्वतः ।। ३४ ।।

✻ *अथवा एकाग्र चित्त से गायत्री मन्त्र द्वारा हवन करें क्योंकि तत्वतः यह महापुराण गायत्री स्वरूप ही है ।। ३४ ।।*

❁ भागवद् का अर्थ होता है ईश्वर परायणता इसे सद्बुद्धि एवं सदाचार द्वारा ही पाया जा सकता है। गायत्री को सद्ज्ञान तथा यज्ञ को सद्कर्म का मूल कहा गया है। इसी लिये भागवत कथा के बाद उस कथा की सार्थकता के लिए गायत्री मन्त्र द्वारा यज्ञ करने का विधान बनाया गया है।

।। श्रीकृष्ण कथा-सप्तम् अध्याय समाप्त ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्रीमद्भागवत और गायत्री की एकरूपता

गायत्री को वेदमाता कहा गया है। जिस प्रकार गायत्री मन्त्र में सन्निहित तत्वों की व्याख्या वेदों ने की है उसी प्रकार श्रीमद्भागवत महापुराण में भी व्यास जी ने उसी क्रम को अपनाया है। श्रीमद्भागवत के श्लोक निश्चित अन्तर पर गायत्री मन्त्र के २४ अक्षरों से सम्पुटित हैं। कथा का प्रारम्भ भी "सत्यं परं धीमहि" उक्ति के साथ किया गया हैं। अनेक ग्रन्थों में इस तथ्य का प्रतिपादन किया गया है। श्रीधरी टीका में इस रहस्य को स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हुए लिखा है :-

सत्यं परै धीमहि। तं धीमहि इति गायत्र्या: प्रारम्भेण गात्र्याख्य ब्रह्म विद्या रूपयेत्पुराणमिति ।

व्यास जी ने गायत्री के प्रतिपाद्य 'सत्यं परं धीमहि' तत्व से ही भागवत का प्रारम्भ किया। अन्य कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं :-

गायत्री भाष्य रूपोऽसौ वेदार्थ परिवृंहित:। मंत्रराज गायत्री २

भागवत में गायत्री के भाष्य रूप में वेदों का तत्व वर्णित है।

अर्थोऽयं ब्रह्म सूत्राणां भारतार्थ-विनिर्णय: ।

गायत्री भाष्य रूपोऽसौ वेदार्थ परिवृंहणम् ।। गरुड़ पु० ।।

ब्रह्म सूत्रों के अर्थ,महाभारत के निर्णय, वेदों के उपवृंहण में गायत्री मन्त्र के भाष्य स्वरूप ही पुराण विनिर्मित हुए हैं।

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्म विस्तर ।

वृत्रासुर वधोपत तदु भागदतमिब्यते ।। मत्स्य पुराण।।

भागवत इस पुराण का नाम है जिसमें गायत्री मन्त्र आधार धर्म की विस्तृत विवेचना की गई है उसमें वृत्रासुर वध आदि के कथानकों का उल्लेख है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्री मद्भागवत के प्रेरक तत्व

इस के अन्तर्गत १२ प्रवचनों को संकलित किया गया है, जिनका क्रम इस प्रकार है:-

(१) मानव जीवन की महत्ता और उपयोगिता
(२) सिद्धियों सफलताओं का केन्द्र मनुष्य का अन्त: करण
(३) ईश्वर का स्वरूप और उससे सम्बन्ध
(४) अकाट्य कर्मफल सिद्धान्त
(५) सत् पुरुष - स्वरूप और महत्ता
(६) परमार्थ वृत्ति की अनिवार्यता
(७) ज्ञान और विवेक की साधना करें
(८) धर्म का स्वरूप समझें और अपनायें
(९) सदगृहस्थ का आदर्श
(१०) धन और उसका सदुपयोग
(११) भेदहीन सामाजिक दृष्टिकोण
(१२) अनीति का उन्मूलन भी अनिवार्य है।



Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानव जीवन की महत्ता और उपयोगिता

एक बार लक्ष्मी जी भगवान विष्णु से कहने लगीं- "प्रभो ! आप रूप - गुण से परे हैं, फिर भी संसार के हित के लिए आप देह धारण करके अवतार लेते हैं । क्या कारण है कि अवतार लेने के लिए आप बार-बार मनुष्य शरीर ही चुनते हैं।" भगवान ने हँसकर उत्तर दिया "देवी मनुष्य शरीर के साथ जो विशेषतायें - विभूतियां जुड़ी हैं उनके माध्यम से मेरा कार्य सुगमता से पूरा हो जाता है इसीलिए मैं मनुष्य शरीर में ही बार-बार अवतरित होता रहता हूँ।"

भगवान के इस कथन से मनुष्य शरीर की महत्ता का बोध होता है। अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य को प्राप्त अनेक सुविधाओं को देखकर भी यही निष्कर्ष निकलता है। किन्तु हड्डी माँस के ढाँचे को ही मनुष्य शरीर मान लेना भूल है। उसके साथ जुड़े सूक्ष्म शरीर (बुद्धि) तथा कारण शरीर संवेदनाओं को लक्ष्य करके ही उसकी महत्ता गायी है अथवा लाभ उठाये जा सकते हैं ।

इसी तथ्य को बड़े सुन्दर ढंग से भगवान दत्तात्रेय - राजा यदु (ययाति के पुत्र - यदुवंशियों के पूर्वज) समझाते हुए कहते हैं:-

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयाऽऽत्मशक्त्या
वृक्षान् सरीसृपपशून् खगदंशमत्स्यान ।
तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय
ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः।।

वैसे तो भगवान ने अपनी अचिन्त्य शक्ति माया से वृक्ष सरीसृप (रेंगने वाले) पशु पक्षी डाँस और मछली आदि अनेकों प्रकार की योनियां रची हैं, परन्तु उनसे उन्हें सन्तोष न हुआ तथा उन्होंने मनुष्य शरीर की सृष्टि की। यह ऐसी बुद्धि से युक्त है जो ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकती है। इसकी रचना करके वे बहुत आनन्दित हुए।

इस कथन में दो तथ्य उभरते हैं-(१) मनुष्य शरीर की विशेष बुद्धि सहित होने पर है। (२) इसे उच्च उद्देश्यों के लिए प्रयुक्त करने में इसकी सार्थकता है ।

मनुष्य जीवन का सदुपयोग किया जा सके इसके लिए उसे शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रखना आवश्यक है। शरीर भी एक श्रेष्ठ साधन है इसे गलत ढंग से उपयोग करके नष्ट भ्रष्ट नहीं कर देना चाहिए। अनुपयुक्त कार्यों में इसे लगाने से यह नष्ट हो जाता है । भगवान कृष्ण यह भी समझाते हुए गरुड़ जी से कहते हैं, हे गरुड़-

मनुष्यः शतजीवी च पुरा वेदेन भाषितम् ।
विकर्मणः प्रभावेण शीघ्रं चापि विनश्यति ।।

वेद ने मनुष्य को शतायु कहा है किन्तु कुकर्म के प्रभाव से वह शीघ्र नष्ट हो जाता है।

संसार के सभी प्राणी अपनी अपनी स्वाभाविक आयु तक जीवित रहते हैं, मनुष्य के कुकर्म (असंयम आदि) ही उसकी अल्पायु के कारण बनते हैं। यहाँ ध्यान देने योग्य यह तथ्य भी है कि किसी प्रकार शरीर बनाये रखना ही जीवित रहना नहीं कहलाता। जीवन का अर्थ है क्रिया शीलता प्रखरता-मनुष्य जब तक प्रखर एवं क्रियाशील रहे। ऐसा जीवन शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति ही जी सकता है। रोगीव्यक्ति वह सौभाग्य नहीं पा सकता है।

रोग शारीरिक भी होते हैं और मानसिक भी । रोगों के सम्बन्ध में भगवान कृष्ण कहते हैं:-

द्विविधो जायते व्याधिः शारीरो मानसस्तथा।
परस्परं तयोर्जन्म निर्द्वन्द्वं नोपपद्यते ।।

दो प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं - शारीरिक एवं मानसिक। इन दोनों का जन्म एक दूसरे के संयोग से होता है। दोनों के पारस्परिक संयोग के बिना इनकी उत्पति संभव नहीं ।

शरीर में कोई विकार हो और मनुष्य का मन उसका समर्थन न करे-उसे दूर करने का संकल्प करे, तो वह विकार टिक नहीं पाता । इसी प्रकार मानसिक असंतुलन होने पर भी यदि स्वस्थ शरीर को उपयुक्त कार्यों में क्रियाशील रखा जा सके तो मानसिक रोग भी स्थिर नहीं रह पाते ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जगद्गुरु शंकराचार्य के भगंदर का फोड़ा था तथा विनोबा के पेट में अल्सर बना रहा - किन्तु दोनों ही मानसिक संकल्प के कारण रोगी जैसी स्थिति में पड़े नहीं रहे ।

उपयुक्त कार्यों में क्रियाशील रहा जा सके तो मानसिक रोग स्थिर नहीं रह सकते ।

रोगों का मर्म न समझकर लोग ओषधियों द्वारा स्वस्थ रहने का प्रयास करते हैं । ओषधियाँ थोड़ी बहुत सहायक भले ही सिद्ध हो जावें, किन्तु वस्तुत: स्वस्थ एवं तेजस्वी - सार्थक जीवन जीने का मार्ग तो मर्यादित नियम-संयम द्वारा हो सकता है।

एक राजा ने एक गांव में एक ओषधालय खोला। एक वर्ष तक वहाँ कोई रोगी ही न पहुँचा। पता लगा कि गांव वाले नियम संयम से रहते हैं इसलिए उन्हें रोग होते ही नहीं ।

नियम बद्ध जीवनक्रम मनुष्य को न केवल निरोगी बल्कि कल्याण पद पाने में भी समर्थ बनाता है। शुकदेव जी कहते हैं- हे परीक्षित !

नाश्नत: पथ्यमेवान्नं व्याधयोऽभिभवन्ति हि।
एवं नियमकृद्राजन् शनै: क्षेमाय कल्पते ।।
देहवाग्बुद्धिजं धीरा धर्मज्ञा: श्रद्धयान्विता:।
क्षिपन्त्यघं महदपि वेणुगुल्ममिवानल: ।।

जो व्यक्ति सुपथ्य रूप में ही अन्न का सेवन करता है उसे रोग नहीं घेर पाते, तथा जो नियमों का पालन करता है वह धीरे धीरे आत्म - कल्याण की स्थिति पा लेता है । जो शरीर, वाणी तथा बुद्धि से श्रद्धा पूर्वक श्रेष्ठ नियमों का पालन करता है उसके बड़े-बड़े पाप भी उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे बांस की रगड़ से पैदा अग्नि से झाड़ियाँ जल जाती हैं ।

श्री शुकदेवजी का मत है कि भोजन स्वाद की नहीं स्वास्थ्य की दृष्टि से किया जाय । रोग भी पाप-अर्थात् कुकर्मों के प्रतिफल हैं । श्रेष्ठ नियमों के पालन से सामान्य स्वस्थ जीवन के साथ - साथ परम कल्याण की भी प्राप्ति हो सकती है। किन्तु नियमों का पालन शरीर, वाणी तथा अन्त:करण तीनों के संयोग से किया जाय। मात्र दिखावा करने से कल्याण की प्राप्ति तो दूर उलटी हानि ही होती है। यह तथ्य हिरण्यकश्यप के वध के बाद - प्रहलाद एवं नृसिंह भगवान के वार्तालाप में बड़ी स्पष्टता से उभरता है। प्रहलाद जी कहते हैं- हे पुरुषोत्तम-

मौनव्रत श्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म -
व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्या:।
प्राय: परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां
वार्ताभवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम्।

मोक्ष के दस साधन प्रसिद्ध हैं- मौन, ब्रह्मचर्य, शास्त्र श्रवण, तपस्या, स्वाध्याय, स्वधर्मपालन, युक्तियों से शास्त्रों की व्याख्या, एकान्त सेवन, जप और समाधि। परन्तु जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, उनके लिए ये सब जीविका के साधन - व्यापारमात्र रह जाते हैं और दम्भियों के लिए तो जब तक उनकी पोल खुलती नहीं तभी तक ये जीवन निर्वाह के साधन रहते हैं और भंडाफोड़ हो जाने पर वह भी नहीं रह जाते ।

यह श्रेष्ठ नियम यदि ठीक ढंग से पाले जाएँ तो मनुष्य जीवन के उच्चतम लक्ष्य तक भी पहुँच सकते हैं । इन्द्रियों का संयम-संतुलन न होने से श्रेष्ठ लक्ष्य तक तो नहीं पहुँच पाते लेकिन लौकिक आजीविका जैसे कुछ साधन बन जाते हैं । लेकिन जो केवल दिखावे के लिए नियम पालन करते हैं, उनके हाथ तो बदनामी ही लगती है।

प्रहलाद जी ने इन्द्रियों में संयम की बात इसलिए कही क्योंकि वे अनियंत्रित होने पर मनुष्य को जबर्दस्ती गलत मार्ग पर खींच ले जाती हैं। इस तथ्य को बड़े रोचक ढंग से भगवान दत्तात्रेय राजा यदु को समझाते हुए कहते हैं -

जिह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हि तर्षा
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्म शक्ति-
र्बह्व्य: सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ।।

जैसे बहुत सी सौतें अपने एक पति को अपनी-अपनी ओर खींचती हैं वैसे ही जीव को जीभ एक ओर स्वादिष्ट पदार्थों की ओर खींचती है तो प्यास-जल की ओर जननेन्द्रिय स्त्री संभोग की ओर ले जाना चाहती हैं तो त्वचा, पेट और कान दूसरी तरफ, कोमल स्पर्श, भोजन और मधुर शब्द की ओर खींचने लगते हैं । नाक सुन्दर गन्ध की ओर ले जाना चाहती है तो चंचल नेत्र कहीं दूसरी ओर रूप देखने के लिए, इस प्रकार कामेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ दोनों ही इसे सताती हैं ।

इन्द्रियाँ इस प्रकार बलवान तभी हो पाती हैं, जब उन्हें चिन्तन का समर्थन मिलता है। इन्द्रियों को जो विषय प्रिय हैं, चित्त जब उनका चिन्तन करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लगता है तो वे विषय सारे व्यक्तित्व पर छा जाते हैं ।' ऐसी स्थिति में मनुष्य का व्यक्तित्व बड़ा हीन हो जाता है। यह तथ्य राजा परीक्षित को समझाते हुए शुकदेवजी कहते हैं -

विषयाभिनिवेशेन नात्मानं वेद नापरम् ।
वृक्षजीविकया जीवन् व्यर्थ भस्त्रेव यः श्वसन् ।।

विषयों का चिन्तन करते करते वह विषय रूप हो जाता है। उसका जीवन वृक्षों के समान हो जाता है। उसके शरीर में उसी प्रकार व्यर्थ श्वास चलता रहता है, जैसे लुहार की धौंकनी की हवा। उसे न अपना ज्ञान रहता है और न किसी दूसरे का । सर्वथा आत्मवंचित हो जाता है।

स्पष्ट है कि अपने जीवन - लक्ष्य से विचलित हुआ व्यक्ति जीवित रहते हुए भी मुर्दे के समान हो जाता है । मनुष्य की श्रेष्ठता उसके मनुष्यत्व, उसके ज्ञान और उसके आत्मबोध में ही सन्निहित है। जब इन्द्रियों के समर्थन में मन लग जाता है तो उसकी शक्ति उसी रास्ते बह जाती है । मानवोचित सदुद्देश्यों के लिए उसकी क्षमता का उपयोग हीं नहीं हो पाता।

यह मर्म भगवान सनत्कुमार राजा पृथु (राजा वेन के पुत्र-२४ अवतारों में से एक कहा जाता है कि धरती का नाम पृथ्वी इन्हीं के कारण पड़ा है) से बतलाते हैं -

इन्द्रियैर्विषयाकृष्टैराक्षिप्तं ध्यायतां मनः ।
चेतनां हरते बुद्धेः स्तम्बस्तोयमिव हृदपात् ।।

जो लोग विषय चिन्तन में लगे रहते हैं उनकी इन्द्रियाँ विषयों में फंस जाती हैं तथा मनको भी उन्हीं की ओर खींच ले जाती हैं । फिर तो उसे जलाशय के तीर पर उगे हुए कुशादि अपनी जड़ों से उसका जल खींचते रहते हैं, उसी प्रकार वह इन्द्रियासक्त मन बुद्धि की विचार शक्ति को क्रमशः हर लेता है।

मनुष्य को मनुष्योचित स्तर तक पहुँचाने वाली उसकी बुद्धि और उसका मन ही है, इन्द्रियों के असंयम से उनकी शान्ति निरर्थक कार्यों में खर्च हो जाती है। इसलिए बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि इन्द्रियों का उपयोग तो करें, लेकिन उनको संयम द्वारा नियन्त्रण में रखें । ताकि अपनी महत्वपूर्ण शक्तियों को सदुपयोग के लिए सुरक्षित रख सकें।भगवान कृष्ण अपने बाल सखाओं को वर्षा के माध्यम में यही तथ्य समझाते हैं। वर्षा काल में खेतों में काम करते हुए किसानों को दिखाते हुए वे कहते हैं --"देखो सखाओ !

केदारेभ्यस्त्वपोऽगृह्णन् कर्षका दृढसेतुभिः ।
यथा प्राणैः स्रवज्ज्ञानं तन्निरोधेन योगिनः ।।

किसान खेतों की मेंड़ मजबूत करके जल का बहना रोकने लगे - जैसे योगीजन अपनी इन्द्रियों को विषयों की ओर जाने से रोककर, प्रत्याहार करके उनके द्वारा क्षीण होते हुए ज्ञान की रक्षा करते हैं ।

वास्तव में विषयों का चिन्तन अज्ञान के कारण ही होता है।मनुष्य यह समझता है कि बाहरी पदार्थोंमें संग्रह और प्रयोग से ही उसे बड़प्पन मिल सकता है। लेकिन वह अपनी आन्तरिक महत्ता को भूल जाता है। कम साधनों से महत्वपूर्ण कार्य कर लेना बुद्धिमानों का लक्षण माना जाता है। यह तथ्य समझकर मनुष्य अपने जीवन को भी इन्द्रियों में विषयों के पीछे भटकने से रोक सकता है । लेकिन वह मुक्ति ही पाता है और अपने हाथों अपनी दुर्गति कर बैठता है। राजसूय यज्ञ के बाद नारद भी युधिष्ठिर को मनुष्य जीवन की यह विडम्बना बतलाते हुए कहते हैं।

सन्तुष्टः केन वा राजन्न वर्तेतापि चारिणा ।
ओपस्थ्यजैह्व्यकार्पण्याद् गृहपालायते जनः ।।

युधिष्ठिर ! न जाने क्यों मनुष्य केवल जल मात्र से ही सन्तुष्ट रह कर अपने जीवन का निर्वाह नहीं कर लेता । अपितु रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रिय के फेर में पड़कर वह बेचारा घर की चौकसी करने वाले कुत्ते के समान हो जाता है।

यदि मनुष्य स्वाद को जीत सके तो कम से कम खर्च में भी पौष्टिक आहार कर सकता है । कामेन्द्रिय को वश में रख सके तो जीवन रस की रक्षा तो कर ही सकता है। बढ़ती हुई आबादी की समस्या का भी समाधान हो सकता है। इन्हें काबू में न ला सकने के कारण व्यक्ति जीवन भर उसी चक्कर में ही जीता है, स्वार्थ की सीमा से बाहर निकल ही नहीं पाता ।

बहुत बार लोग सोचने लगते हैं कि इन्द्रियों की कामनाओं को सन्तुष्ट करके आगे बढ़ा जा सकता है, संतोष पाया जा सकता है। लेकिन यह भ्रमहै। वामन भगवान राजा बलि को यही तथ्य समझाते हुए कहते हैं-

यावन्तो विषयाः प्रेष्ठास्त्रिलोक्यामजितेन्द्रियम् ।
न शक्नुवन्ति ते सर्वे प्रतिपूरयितुं नृप ।।

राजन् । संसार के सब के सब प्यारे विषय एक मनुष्य की कामनाओं को भी पूर्ण करने में समर्थ नहीं हैं,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि वह अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाला-सन्तोषी न हो ।

यह कथन अतिशयोक्ति नहीं है, अनेक लोगों ने इस तरह के प्रयास किए हैं और अन्त में निराशा, अपयश के भागी ही बने हैं । हिरण्यकशिपु ऐसे ही अभागों में से एक था। उसने अपनी अनुपम शक्ति से सांसारिक विषयों को पाने और उनके द्वारा सन्तोष प्राप्त करने के लिए झोंक दिया । लेकिन उसका अन्त क्या हुआ, यह सभी जानते हैं। नारद भी युधिष्ठिर से हिरण्यकश्यपु के प्रयास की विवेचना करते हुए कहते है।

स इत्थं निर्जितककुवेकराड् विषयान्।
यथोपजोपं भुञ्जानो नातृप्यदजितेन्द्रियः।।

इस प्रकार दिग्विजयी और एकछत्र सम्राट् होकर वह अपने को प्रिय लगने वाले विषयों का स्वच्छ उपभोग करने लगा। परन्तु इतने विषयों से भी उसकी तृप्ति न हो सकी । क्योंकि अन्ततः वह इन्द्रियों का दास ही तो था।

वामन भगवान एक नयी बात कहते हैं । सुखोपभोग की सामग्री इकट्ठी करने में मनुष्य अपनी शान समझते हैं- किन्तु वह उन्हें इन्द्रियों के निर्देश पर उचित-अनुचित सोचे बिना बाध्य होकर करता है। वह सम्पति का स्वामी नहीं इन्द्रियों का दास बन जाता है।

मनुष्य का अन्तः करण अपना स्तर खोकर सन्तोष नहीं पा सकता । वास्तव में वह अपने शरीर का स्वामी है। लेकिन उंचित-अनुचित भूलकर इन्द्रियों को सन्तुष्ट करने में प्रकरण में वह उनका दास हो जाता है। स्वामी दास बनकर कभी सन्तोष नहीं पा सकता । ऐसी स्थिति में पहुँचकर आत्मप्रतारणा और पश्चाताप ही उसके हाथ में लगता है।

राजा पुरुरवा को भी ऐसा ही पश्चाताप करना पड़ा। वे उर्वशी के मोह में पड़ गये थे। जब वह उन्हें देखकर चली गयी , तो वे बेहाल हो गए, लेकिन उनकी अन्तरात्मा ने उन्हें धिक्कारा, और उन्होंने अपने मोह के कारण हुए अपने इस पतन को स्वीकार करते हुए विचार किया।

त्वड् मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंहतौ ।
विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदन्तरम् ।।

यह शरीर त्वचा, मांस, रुधिर, स्नायु, मेदा, मज्जा और हड्डियों का टेर और मल मूत्र तथा पीव से भरा हुआ है। यदि मनुष्य इसमें रमता है, तो मल मूत्र कीड़ों में और उसमें अन्तर ही क्या है ?

शरीर का उपयोग करें तो यह उचित है- किन्तु शरीर के परे चेतना के बारे में न कुछ सोचें, न करें, तो उसकी मनोभूमि कीड़ों जैसी ही कही जायगी ।

मनुष्य का अन्तःकरण पशुओं और कीड़े मकोड़े जैसे स्तर से कभी सन्तोष नहीं पा सकता । मनुष्य के पास जितनी भी लौकिक विभूतियां हों, इस सन्तोष के अभाव में वह नारकीय कष्ट भी अनुभव करता है। यही बात युधिष्ठिर को नारदजी ने समझाते हुए कहा ।

पण्डिता बहवो राजन्बहुज्ञाः संशयच्छिदः।
सदसस्पतयोऽप्येके असन्तोषात् पतन्त्यध ।।

अनेक विषयों के ज्ञाता,शंकाओं का समाधान करके चित्त में शास्त्रोक्त अर्थ को बैठा देने वाले और विद्वत्सभाओं के सभापति बड़े बड़े विद्वान् भी असन्तोष के कारण गिर जाते हैं ।

विद्वान होना और बात है और मनुष्य का आत्मिक स्तर ऊँचा होना दूसरी बात है। विद्वान तो रावण भी था, किन्तु पराये धन और स्त्री पाने की लालसा उसे ले डूबी।

अन्तःकरण का असंतोष दूर करने के लिए भ्रमित मनुष्य और अधिक साधन-सम्पति बटोरने का प्रयास करता है। लेकिन यह रास्ता गलत ही सिद्ध होता है। वास्तव में प्रयास इसमें उल्टी दिशा में होना चाहिए। इन्द्रियों के विषयों में मन की शान्ति नष्ट न हो, इसके लिए मन और इन्द्रियों को अपने नियन्त्रण में लेने का प्रयास करना पड़ता है। इस दिशा में सावधानी बरतने का निर्देश देते हुए श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं-

मनोगति न विसृजेज्जितप्राणो जितेन्द्रिय :।
सत्वसम्पन्नया बुद्धया मनः आत्मवशं नयेत् ।।

इन्द्रियों और प्राणों को अपने वश में रखे और मनको एक क्षण के लिए भी स्वतन्त्र न छोड़े। उसकी एक-एक चाल एक-एक हरकत को देखता रहे। इस प्रकार सत्व संपन्न बुद्धि के द्वारा धीरे धीरे मन को वश में कर लेना चाहिए।

मन इन्द्रियों को काबू में रख सकता है लेकिन उसे बुद्धि विवेक के नियंत्रण में चलने का अभ्यास करना चाहिए । जो मन में आये सो करें, यह बात गलत है। बुद्धि से उचित-अनुचित का निर्णय करें और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उसी के अनुसार मन को लगायें यह ढंग कल्याणकारी है।

मन यदि अपने नियंत्रण में हो जाता है तो इन्द्रियां मन के अधीन होने के कारण मनुष्य को विचलित नहीं कर पातीं । मन बड़ा सामर्थ्यवान है, जिस ओर चलता है, उस ओर कुछ न कुछ उल्लेखनीय कार्य कर दिखाता है ।

महर्षि कपिल (सांख्य दर्शन के प्रणेता) अपनी मां देवहुति (मनुकी पुत्री) से चर्चा करते हुए मन की क्षमता का उल्लेख करते हुए कहते हैं।

चेतः खल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम्।
गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये ।।

इस जीव के बन्धन और मोक्ष का कारण मन ही माना गया है। विषयों में आसक्त होने पर वह बन्धन का हेतु होता है और परमात्मा में अनुरक्त होने पर वही मोक्ष का कारण बन जाता है।

बन्धन का अर्थ है- विकारों से बंधा होना। ओछे स्वार्थों में फंसा हुआ व्यक्ति भव बन्धनों में बंधा हुआ कहलाता है। परमात्मा श्रेष्ठ आदर्शों का प्रतीक है। अब मनुष्य उच्च आदर्शों के लिए जीवन जीता है, ओछे स्वार्थों से नहीं बंधता तो जीवन्मुक्ति की स्थिति पाने लगता है। इस दृष्टि से मनुष्य को महान बनने से रोकने वाले उसके शत्रु , उसके अन्तः करण में रहने वाले दोष-दुर्गुण ही हैं। देवर्षि नारद धर्मराज से कहते हैं -

रागो द्वेषश्च लोभश्च शोकमोहौ भयं मदः।
मानोऽवमानोऽसूया च माया हिंसा च मत्सरः।।

राग, द्वेष लोभ, शोक, मोह, भय, मद, मान, अपमान, दूसरे के गुणों में दोष निकालना, छल, हिंसा, दूसरे की उन्नति देखकर जलना, तृष्णा, प्रमाद,- ये सब और ऐसे ही जीवों के और भी बहुत से शत्रु हैं ।। ४३।।

यह दोष वैभव सम्पन्न और बुद्धि-सम्पन्न मनुष्यों में भी पाए जाते हैं । जैसे गन्दगी अच्छे वस्त्र पहने हुए व्यक्ति की भी शोभा घटा देती है उसी प्रकार दोष, मनुष्य के वैभव-बुद्धि को भी बदनाम कर देते हैं। मनुष्य के अन्तःकरण की शोभा उसकी आत्मीयता के विस्तार में है। छोटे दायरे में उसे कैद करने से उसकी महत्ता घट जाती है।

योगवशिष्ठ में श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि-

न क्वचिद्राजते कायो ममतामेध्यदूषितः।
प्राज्ञोऽप्यतिबहुज्ञोऽपि दुःशील इव मानुष।।

जैसे अत्यन्त बुद्धिमान् तथा विशेषज्ञ व्यक्ति भी दुष्ट-स्वभाव का होने से शोभा नहीं पाता, उसी प्रकार ममता रूपी मल में लिपटा हुआ प्राणी भी कहीं शोभा नहीं पाता ।

विद्वान दुष्ट हो तो उसकी विद्वता का उपयोग लोगों को कष्ट पहुँचाने में ही होता है। अपने शरीर अथवा परिवार के मोह में पड़ा व्यक्ति भी कोई श्रेष्ठ काम नहीं कर पाता । उसके विकार उसे तेजस्वी नहीं बनने देते ।

इसीलिए अपने मलों को धोते रहना , पवित्रता बनाए रखना हर धर्म कृत्य के साथ जुड़ा हुआ है। लोग केवल बाहरी पवित्रता को ही ध्यान में रखते हैं लेकिन आन्तरिक पवित्रता के बिना बाहरी पवित्रता निरर्थक सिद्ध होती है।

राजा निमि (राजा जनक के पूर्वज) बड़े विचारशील थे। श्रेष्ठ पुरुषों से जीवन की सार्थकता के सूत्रों पर चर्चा किया करते थे। एक बार योगीश्वर उनके यहां पहुँचे । उनसे हुई चर्चा के दौरान एक योगीश्वर ने विभिन्न तरह की पवित्रताओं का उल्लेख करते हुए उनसे कहा कि राजन्!

शौचं तपस्तितिक्षा च मौनं स्वाध्यायमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वन्द्वसंज्ञयोः ।।

मिट्टी, जल आदि से बाह्य शरीर की पवित्रता, छल-कपट आदि के त्याग से भीतर की पवित्रता, अपने धर्म का अनुष्ठान ,सहनशक्ति, मौन, स्वाध्याय, सरलता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा तथा शीत उष्ण, सुख, दुख आदि द्वन्द्वों में हर्ष विषाद से रहित होना सीखें।

हर श्रेष्ठ गुण किसी न किसी विकार को दूर करता है। विकारों का दूर करना ही पवित्रता बढ़ना है। इस प्रकार सर्वांगीण पवित्रता को जीवन में स्थान देकर कोई भी मनुष्य जीवन का श्रेष्ठतम लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। इन सभी प्रकार की पवित्रताओं में हृदय की पवित्रता को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। भगवान श्री कृष्ण युधिष्ठिर से कहते हैं-

पञ्चस्वेतेषु शौचेषु हृदि शौचं विशिष्यते।
हृदयस्य च शौचेन स्वर्गं गच्छन्ति मानवाः।।

इन पाँचों शुद्धियों में हृदय की शुद्धि सबसे बढ़

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर है। हृदय की शुद्धि से मनुष्य स्वर्ग में जाते हैं।

स्वर्ग कोई स्थान विशेष नहीं, मनुष्य के अन्त:करण की स्थिति का विशेष नाम है । हर मनुष्य का इस पर स्वाभाविक अधिकार है। मनुष्य जीवन जैसे अद्भुत अनुदानों को पाकर भी मनुष्य रोगी, दु:खी, दीन, असन्तुष्ट बना रहता है, इस विडम्बना का एक मात्र कारण यह है कि वह अपने आत्म विकास में, आदर्शवादिता में श्रेष्ठ जीवन-लक्ष्य को भूल जाता है। लक्ष्य को पाने के लिए मनुष्य को अपनी सारी शक्तियों को उसी एक ओर लगा देनी होती हैं। भगवान दत्तात्रेय ने बाण चलाने वालों को लक्ष्यभेद मारते हुए देखा, वह सही दिशा में लगाने के लिए सब ओर से ध्यान हटाकर श्वास को भी रोककर निशाना साध रहा था । मरते हुए देखकर उन्हें जो प्रेरणा मिली उसका वर्णन वे राजा यदु से (२४ गुरुओं के प्रसंग के अन्तर्गत) कहते हैं।

मन एकत्र संयुञ्ज्याज्जितश्वासो जितासन।
वैराग्याभ्यासयोगेन ध्रियमाणमतन्द्रित:।।

राजन्! मैंने बाण बनाने वाले से यह सीखा है कि आसन और श्वास को जीतकर वैराग्य और अभ्यास के द्वारा अपने मनको वश में करले और फिर बड़ी सावधानी के साथ उसे एक लक्ष्य में लगा दे ।

मनुष्य को भी चाहिए कि इस देव-दुर्लभ जीवन की विभूतियों को यों ही बर्बाद न होने दें । जीवन के लक्ष्य को समझें, उसकी प्राप्ति के मार्गों और तरीकों को अपनाएँ, पूरी तत्परता से उस ओर अपनी शक्तियों को लगादें तो कोई कारण नहीं कि वह नर से नारायण, पुरुष से पुरुषोत्तम, आत्मा से महात्मा और परमात्मा तक की उपलब्धियां न पा सकें ।

सिद्धियों सफलताओं का केन्द्र मनुष्य का अन्त:करण

मनुष्य योनि जीवात्मा को परमात्मा द्वारा मिल सकने वाला सर्वोत्तम उपहार है। प्राचीन ऋषि महर्षियों से लेकर आधुनिक विचारकों तक ने इस अमूल्य अवसर की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। एक बार व्यास जी से पूछा गया कि आपने अनेक शास्त्रों की रचना की है, आप अपनी सभी रचनाओं का सारांश बतलायें। व्यासजी ने कहा, **"गुह्यंब्रह्म तदिदं ब्रवीमि, नहि मानुषात् श्रेष्ठ तरं हि क्वचित्"** मैं तुम्हें रहस्य की बात बताता हूँ मनुष्यत्व से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। इसी तरह के उद्धरणों से हमारे शास्त्र भरे पड़े हैं। वास्तव में इस मानव जीवन की जितनी भी प्रशंसा की जाय कम है। इसके माध्यम से जीवात्मा हर क्षेत्र की अगणित उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकता है । यदि जीवन का सदुपयोग किया जा सके तो नर से नारायण तक बना जा सकता है।

शरीर की दृष्टि से मनुष्य के जीवन को विशेष उल्लेखनीय नहीं कहा जा सकता। अनेक जानवर शारीरिक विशेषताओं की दृष्टि से मनुष्य से आगे हैं। मनुष्य की विशेषता है दिव्य क्षमताओं का केन्द्र उसका अन्त:करण। मनुष्य केवल पंचतत्वों का पुतला मात्र नहीं है। उसके ऊपर दिव्य चेतना के रूप में ईश्वरीय सत्ता का निवास है। श्रीमद्भागवत् में इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए भगवान शेष राजा चित्रकेतु से कहते हैं -

लब्ध्वेह मानुषीं योनिं ज्ञानविज्ञानसम्भवाम्।
आत्मानं यो बुद्धयेत न क्वचिंच्छममाप्नुयात्।।

यह मनुष्य योनि ज्ञान और विज्ञान का मूल स्रोत है। जो इसे पाकर भी अपने आत्म-स्वरूप परमात्मा को नहीं जान लेता, उसे कहीं किसी भी योनि में शान्ति नहीं मिल सकती ।

मनुष्य की सारी विशेषता उसका ज्ञान और विज्ञान है किन्तु यह विशेषताएं उसमें बीज रूप में विद्यमान हैं। मात्र बीज से फसल प्राप्त नहीं हो सकती। भूमि, खाद, पानी, वातावरण आदि अन्य साधनों की भी आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता। यदि कोई कृषक मात्र बीज से ही संतुष्ट हो जाय तो वह अपेक्षित परिणाम नहीं प्राप्त कर सकता। बीज तो मात्र एक संभावना भर है। अपने अन्दर बीज रूप शक्तियों को विकसित करने के लिए हमें सुयोग्य कृषक की भूमिका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्पादित करनी चाहिए। यदि हमने इस अमूल्य अवसर को खो दिया तो फिर हमें कभी भी अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

यह सोचना भ्रान्ति है कि कोई अन्य हमारी उन्नति कर सकता है। सहायक कोई भी बन सकता है किन्तु प्रधान उत्तर दायित्व तो हमारा अपना ही होता है। जितनी जल्दी हम इस सत्य को समझ जायें उतना ही अच्छा है । हमारे उत्थान-पतन की पूर्णत: हमारी ही जिम्मेदारी है। "मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है।" अत: हमें अपना उत्तरदायित्व स्वयं वहन करने हेतु कमर कस कर तैयार हो जाना चाहिए। गरुड़ पुराण में स्वयं भगवान कृष्ण अपने प्रिय वाहन गरुड़ को सम्बोधित करते हुए कहते हैं-

आत्मैव यदि नात्मानमहितेभ्यो निवारयेत् ।
कोऽन्यो हितकरस्तस्मादात्मानं सुखयिष्यति ।।

यदि व्यक्ति स्वयं अपने अहित का निवारण नहीं करता तो दूसरा कौन है जो उसके दुखों का निवारण कर उसे सुख पहुँचावेगा ?

आखिर हमारे दु:खों का कारण क्या है? हम सोचते हैं हम तो बहुत अच्छे हैं । यह संसार ही बुरा है। परिस्थितियाँ खराब हैं। हमारे साथी ठीक नहीं हैं। दूसरे लोग हमें कष्ट दे रहे हैं । हमारा यह चिन्तन सही नहीं है। हमें अपने चिन्तन की धारा सही दिशा में नियोजित करनी चाहिए ।

वास्तव में इस संसार में न तो कोई किसी को सुख दे सकता है न दुख । अपने कर्मों के कारण ही हम सुख या दुख पाते हैं। जब हमारा अन्त:करण दूषित हो जाता है तभी हमें उसके दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं। आग जहाँ उत्पन्न होती है उस स्थान को ही जलाती है। इसी तरह दोष दुर्गुण भी जिस अन्त:करण में उत्पन्न होते हैं उसे ही दग्ध करते रहते हैं। यद्यपि हमें तत्काल अपने दोषों दुर्गुणों का दुष्परिणाम नहीं दिखाई देता किन्तु पापों का घड़ा भर जाने पर फूटता ही है। कंस की मृत्यु के बाद उसकी मृत्यु के कारणों का स्पष्टी करण करते हुए भगवान कृष्ण अपने नाना उग्रसेन से कहते हैं-

स्वदोषेणैव दग्धस्य सूनोस्तव नराधिप ।
नाहं वै कारणं तत्र कालस्तत्र च कारणम् ।।

नरेश्वर ! आपका पुत्र अपने ही दोषों से दग्ध हुआ है। उसकी मृत्यु का कारण मैं नहीं, काल है।

हम सोचते हैं कृष्ण ने कंस को मारा किन्तु यह नहीं सोचते कि क्यों मारा ? यदि कंस सदाचारी रहा होता तो कृष्ण उसे कैसे मार सकते थे ? उपर्युक्त श्लोक में कृष्ण ने काल को भी कंस की मृत्यु का कारण बताया है। इस पर विचार करने से रहस्य स्पष्ट हो जाता है। हर वस्तु के विकास में समय लगता है। बीज को वृक्ष बनने में पर्याप्त समय अपेक्षित है । दोष और दुर्गुण हमारे अन्त:करण में पनपते रहते हैं तथा हम उनकी ओर से बेखबर बने रहते हैं। समयानुसार जब उनका परिणाम हमारे सामने आता है तब हम चीखते चिल्लाते तथा दूसरों पर दोषारोपण करने लगते हैं। किन्तु इससे क्या होता है ? परिणाम तो हमें भोगना ही पड़ता है। इसीलिए रहस्य के जानने वाले व्यर्थ दोषारोपण न करते हुए अपनी जिम्मेदारी स्वीकार कर उस के निराकरण का प्रयास करते हैं। भागवत में कृष्ण-उद्धव संवाद में एक ब्राह्मण की कथा आती है वह विपत्तियों से घिरा होने पर भी किसी पर दोषारोपण न करते हुए कहता है-

नायं जनो मे सुखदु:खहेतु -
र्न देवताऽऽत्मा ग्रहकर्मकाला:।
मन: परं कारणमामनन्ति
संसारचक्र परिवर्तयेद् यत् ।।

ब्राह्मण कहता है- मेरे सुख अथवा दु:ख का कारण न ये मनुष्य हैं, न देवता हैं, न शरीर है, न ग्रह, कर्म एवं काल आदि हैं। श्रुतियां और महात्माजन मन को ही इसका परम कारण बताते हैं और मन ही इस सारे संसार चक्र को चला रहा है।

इस श्लोक में मानो आध्यात्म का सार ही बता दिया गया है। वास्तव में मन ही सुख-दुख तथा सभी समस्याओं का मूल कारण है। अन्यत्र भी कहा गया है **"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो"** मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण है। स्पष्ट है कि यदि हम वास्तविक सुख-शान्ति चाहते हैं तो हमें परिस्थित नहीं,मन: स्थिति बदलने का प्रयत्न - पुरुषार्थ करना चाहिए। परिस्थितियाँ तो मन: स्थिति की छाया मात्र हैं किन्तु हम मन का महत्व ही नहीं समझते। यदि हमने इस तथ्य का महत्व समझा होता तो हम मन को परिष्कृत एवं प्रशिक्षित करने में लग गए होते। फिर हम देखते कि जिस प्रकार जंगली हाथी जो अप्रशिक्षित अवस्था में बरबादी करता है वही प्रशिक्षित हाथी मनुष्य के लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कितना उपयोगी बन जाता है। यद्यपि यहाँ परिस्थिति के महत्व को नकारा नहीं जा रहा । उनका भी महत्व है तथा व्यक्ति के उत्थान पतन में उनका भी योगदान है किन्तु सबका मूल स्रोत हमारा अन्त: करण ही है। इस बारे में शुकदेव जी परीक्षित से कहते हैं -

पुंसांकलिकृतान् दोषान् द्रव्यदेशात्मसम्भवान् ।
सर्वान् हरति चित्तस्थो भगवान् पुरुषोत्तमः ।।

परीक्षित् ! कलियुग के अनेकों दोष हैं । कुछ वस्तुएँ दूषित हो जाती हैं, स्थानों में भी दोष की प्रधानता हो जाती है फिर भी सब दोषों का मूल स्रोत तो अन्त: कारण ही है, परन्तु जब पुरुषोत्तम भगवान् हृदय में आ विराजते हैं तब उनकी सन्निधि मात्र से ही सब के सब दोष नष्ट हो जाते हैं ।

आजकल यह मान्यता प्रचलित है कि यह कलियुग है, अत: युग प्रभाव के कारण व्यक्ति सुख शान्ति नहीं पा सकता । मालूम पड़ता है कि युग कोई ऐसी शक्ति है जो व्यक्ति को जबरन पाप करने को मजबूर करती है। क्या यह मान्यता सही है ? यदि ऐसा ही होता तो इस युग में एक भी महापुरुष पैदा न हो सकता था किन्तु इतिहास देखने पर पता चलता है कि बुद्ध से लेकर गाँधी तक महापुरुषों की एक अविछिन्न परंपरा चली आ रही है। वास्तव में युग जैसी कोई ऐसी शक्तिशाली सत्ता नहीं है जो हमें पाप कर्म करने हेतु मजबूर कर सके। तो फिर आखिर यह युग है क्या ? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए हमें भागवत की शरण लेनी पड़ेगी । आइये देखें शुकदेवजी परीक्षित से कलियुग की परिभाषा बताते हुए कहते हैं :-

यदा मायानृतं तन्द्रा निद्रा हिंसा विषादनम् ।
शोको मोहो भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः ।

मनुष्य के अन्त:करण में जिस झूठ-कपट, तन्द्रा, हिंसाविषाद, शोक-मोह, भय और दीनता की प्रधानता हो उसे तमोगुण प्रधान कलियुग समझना चाहिये ।

इस परिभाषा पर विचार करने से पता चलता है कि वास्वत में तमोगुण की वृद्धियां ही कलियुग है । हम सभी जानते हैं कि इस संसार की रचना सत, रज एवं तम इन तीन गुणों को मिलाकर हुई है। मनुष्य का अन्त:करण भी इन्हीं गुणों से निर्मित है। जब तक इन तीनों में सन्तुलन बना रहता है तब तक हमारा जीवन भी व्यवस्थित रहता है । किन्तु जब सत एवं रज को दबा कर तमोगुण हमारे ऊपर शासन करने लगता है तब हमारे अन्त:करण में कलियुग छा जाता है तथा उसी का प्रतिबिम्ब बाह्य परिस्थितियों के रूप में हमारे सामने आ खड़ा होता है । इस तरह हमारे दोष दुर्गुण ही कलियुग के रूप में हमें पीड़ा और पतन में झोंक देते हैं, यदि हम साहस पूर्वक अपने दोष दुर्गुणों को अपने अन्त:करण से निकालने में समर्थ हो सकें तो परिस्थितियां बदलते देर न लगे । शुकदेव, परीक्षित के अगले श्लोक में यह तथ्य भी स्पष्ट हो जाता है । वे कहते हैं

प्रभवन्ति यदा सत्वे मनोबुद्धीन्द्रियाणि च ।
तदा कृतयुगं विद्याज्जाने तपसि यद् रुचिः ।।

जिस समय मन-बुद्धि और इन्द्रियां सत्वगुण में स्थित होकर अपना-अपना काम करने लगती हैं उस समय सतयुग समझना चाहिये । सत्वगुण की प्रधानता के समय मनुष्य ज्ञान और तपस्या से अधिक प्रेम करने लगता है ।

इस श्लोक में अपने भीतर सतयुग की स्थापना का रहस्य बताया गया है । तथा इसकी विधि का निर्देश भी किया गया है । यदि हम चाहते हैं कि हमारे अन्दर तथा बाहर सतयुग आ जाय तो हमें ज्ञान एवं तप से प्रेम करना चाहिये । ज्ञान का अर्थ सद्विचार और विवेक है। हमें विवेकी बनना चाहिए। अपनी सभी भावनाओं, विचारणाओं एवं क्रियाओं को विवेक की कसौटी पर कसना चाहिए तथा जो सही हो उसे अपनाना और गलत को छोड़ देने का साहस करना चाहिए अर्थात् श्रेष्ठ कार्यों को तय करने के लिए किया जाने वाला श्रम और सह जाने वाला कष्ट अन्त:करण को निर्मल बनाने हेतु तथा श्रेष्ठ कार्यों को सम्पन्न करने के लिए हमें अगणित कठिनाइयों का सामना करना होगा । यदि इस संघर्ष में आने वाले कष्टों का हम दृढ़ता पूर्वक सामना कर सकें तो हम वास्तविक तपस्वी कहे जा सकेंगे ।

ऐसा सार्थक तप हमारे अन्त:करण को इतना निर्मल बनाने में समर्थ होता है कि उसमें भगवान की सत्ता का स्पष्ट दर्शन किया जा सकता है । ईश्वर की दिव्यसत्ता सभी के अन्दर है किन्तु अपनी कामनाओं की कालिमा के कारण मनुष्य उसको देख नहीं पाता । इस संदर्भ में भागवत में राजा सत्यव्रत मत्स्य भगवान से कहते हैं :-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

त्वं सर्वलोकस्य सुहृत् प्रियेश्वरो
ह्यात्मा गुरूर्ज्ञानमभीष्टसिद्धिः ।
तथापि लोको न भवन्तमन्धधी-
र्जानाति सन्नं हृदि बद्धकामः ।।

आप सारे लोक के सुहृद्, प्रियतम, ईश्वर और आत्मा हैं। गुरु, उसके द्वारा प्राप्त होने वाला ज्ञान और अभीष्ट की सिद्धि भी आपका ही स्वरूप है। फिर भी कामनाओं के बन्धन से जकड़े जाकर लोग अन्धे हो रहे हैं । उन्हें इस बात का पता ही नहीं है कि आग उनके हृदय में हा विद्यमान है।

पूर्वोक्त श्लोक राजा सत्य व्रत ने भगवान से अपनी अनुभूति के रूप में कहा है। इससे पता चलता है कि सत्य व्रत धारण करने वाला ही अपनी अन्तरात्मा में परमात्मा की अनुभूति कर सकता है । किन्तु कैसी विडम्बना है कि हम असत्य व्रत होकर परमात्मा की अनुभूति करना चाहते हैं। क्या ऐसा सम्भव है ? सिद्धान्त अकाट्य होते हैं उन्हें बदला नहीं जा सकता । अतः हमें सत्य-व्रत होकर ही आत्म साक्षात्कार का प्रयत्न करना चाहिये । किन्तु हम तो कामनाओं, वासनाओं, और तृष्णाओं से जकड़े हुए मोहान्ध होकर लक्ष्य से विपरीत दिशा में भागे जा रहे हैं क्या इस तरह हम अपना लक्ष्य पा सकेंगे ? हम सोचते हैं सुख और शान्ति बाहर की वस्तुओं और परिस्थितियों में है यदि हमें हमारी मन चाही वस्तुऐं मिल जायें तो हम सुखी हो सकते हैं । यद्यपि यह असम्भव है । फिर भी मान लीजिए हमारी इच्छित वस्तुऐं हमें मिल जायें तो हम वास्तव में सुखी हो सकेंगे ? इतिहास में रावण, कंस, दुर्योधन , सिकन्दर आदि अनेकों के विवरण से पता चलता है कि उन्हें संसार की सभी वस्तुऐं और भोग सामग्रियाँ प्रचुर मात्रा में मिली हुई थीं किन्तु क्या ये सब सुखी हो सके ? या संसार की सुख शान्ति में वृद्धि कर सके ? स्पष्ट है कि इन्होंने संसार में तबाही मचाई तथा हाथ मलते और पश्चाताप करते हुये संसार से चले गए। भागवत में राजा ययाति की कथा आती है । ययाति चक्रवर्ती सम्राट थे तथा उन्होंने जीवन भर मन वांछित भोगों को भोगा, बुढ़ापा आने पर भी उन्हें सन्तोष नहीं हुआ तब उन्होंने अपने छोटे पुत्र से अपने बदले में उसकी जवानी लेकर भी विषयों से तृप्ति चाही । किन्तु क्या वे तृप्त हो सके ? आइये उन्हीं से उनका अनुभव सुनें। ययाति अपनी पत्नी देवयानी से कहते हैं -

यत् प्रथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
न दुह्यान्ति मनः प्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ।।

प्रिये ! पृथ्वी में जितने भी धान्य (चावल, जौ आदि) सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं-वे सब के सब मिलकर भी उस पुरुष के मन को संतुष्ट नहीं कर सकते जो कामनाओं के प्रहार से जर्जर हो रहा है।

जब ययाति तथा आज तक के अन्य बड़े बड़े धनवानों को भी संसार की वस्तुओं से सुख नहीं मिल सका तो किसी को भी कैसे मिल सकेगा ? क्या हमारे लिए संसार के नियम में परिवर्तन हो जायेगा ? विवेक की पुकार है कि समय रहते हम अपनी गलती महसूस करें तथा पतन की ओर गतिशील अपनी जीवन धारा में संयम का बांध निर्मित्त कर इसे उत्थान की ओर मोड़ें। इसका एक ही तरीका है "सादा जीवन उच्च विचार" हम सांसारिक वस्तुओं सम्बन्धी अपने दृष्टि कोण में परिवर्तन कर उपभोग के लिये नहीं मात्र उपयोग के लिए ही उनका संग्रह करें । इसी वृत्ति का नाम संतोष है। हमारे जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक हमें मिला हुआ ही है अतः हमें तृष्णा और वासना की आग में जलने की आवश्यकता नहीं है।अपनी आंतरिक संतोष की वृत्ति के कारण पैदा सुख अधिक टिकाऊ तथा सार्थक होता है । यह तथ्य बड़े सुन्दर ढंग से भगवान श्रीकृष्ण अपने सखा उद्धव को समझाते हैं ।

सदा सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ।
शर्कराकण्टकादिभ्यो यथोपानत्पदः शिवम् ।।

जैसे पैरों में जूता पहनकर चलने वाले को कंकड़ और कांटों से कोई डर नहीं होता -वैसे ही जिसके मन में सन्तोष है उसके लिए सर्वदा और सब कहीं सुख ही सुख है, दुःख है ही नहीं ।

सन्तोष-एक वृत्ति है तथा सुख और शान्ति उसका परिणाम किन्तु दुर्भाग्य वश हमारे यहाँ सन्तोष का अर्थ आलस्य और प्रमाद माना जाता है। आलस्य और प्रमाद तो तमोगुण के लक्षण हैं जबकि सन्तोष सत्वगुण से उत्पन्न होता है । सन्तोष का अर्थ यह नहीं है कि हम हाथ पर हाथ रखकर बैठ जायें और गाने लगें "अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम" वास्तव में संतोष का अर्थ है प्रगति पथ पर धैर्य पूर्वक चलते हुए मार्ग में आने वाले कष्टों और कठिनाइयों का प्रभाव अपने ऊपर न पड़ने देना । संसार के कांटे हम नहीं बीन सकते किन्तु यदि हमने संतोष रुपी जूते

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहन रक्खे हैं तो कोई भी कांटा हमारे मार्ग में बाधक नहीं बन सकता । हम अपनी शक्ति भर अपनी सर्वांगीण उन्नति के लिए प्रयास करें तथा हर परिस्थिति का दृढ़ता पूर्वक मुकाबला करें तथा हर समय मानसिक शान्ति बनाये रखें यही संतोष है। लोग कामनाओं की पूर्ति से संतोष पाना चाहते हैं किन्तु यह मार्ग गलत है। वह तो कामनाओं को समाप्त करने से ही मिलता है। अपनी नासमझी के कारण हम भगवान से भी मनोकामना पूर्ति का ही वरदान मांगते हैं। किन्तु भगवान मनोकामना पूरी नहीं करते । रामचरित मानस में विश्वमोहनी के मोह में पड़े हुए नारद की कथा से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है । अत: हमें विचारशील साधकों के स्वर में स्वर मिलाते हुए भगवान से यही वर माँगना चाहिए जो भक्त शिरोमणि प्रहलाद ने भगवान नृसिंह के बार-बार आग्रह करने के बाद माँगा था :-

यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम् ।।

मेरे वरदानिशिरोमणि स्वामी ! यदि आप मुझे मुँह माँगा वर देना ही चाहते हैं तो यह वर दीजिये कि मेरे हृदय में कभी किसी कामना का बीज अंकुरित ही न हो।

सच्चे भक्त की भगवान से यही याचना हो सकती है । तथा यह पूरी भी होती है । यही है वह राजमार्ग जिस पर चलकर अनेकों ने सुख शान्ति पाई है तथा अभी भी पा रहे हैं। कामनाएँ ही हमें भटका रहीं हैं। इनसे छुट्टी पाकर हमें अपने अन्त:कारण की सफाई में लगना चाहिए किन्तु यह शुद्धि किसी तीर्थ या सरोवर के जल में स्नान करने से नहीं हो सकती । इसके लिये हमें मानस तीर्थ में स्नान करना पड़ेगा तभी हम शुद्ध हो सकेंगे । अत: बाहर समस्याओं का हल ढूँढ़ने का दृष्टिकोण बदलकर हमें अपने अन्तर में डुबकी लगानी चाहिए । यदि हम इस वास्तविक तीर्थ में स्नान कर सकें तो अवश्य शुद्ध हो सकते हैं । कृष्ण पुराण में पक्षिराज गरुड़ से मानस तीर्थ का माहात्म्य बताते हुए कहते हैं :-

ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे ।
य: स्नातो मानसे तीर्थे न स लिप्येत पातकै:।।
न काष्ठे विद्यते देवो न शिलायां न मृत्यु च ।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद् भावं समाचरेत् ।।
प्रात: प्रात: प्रपश्यन्ति नर्मदां मत्स्यघातिन: ।
न ते शिवपुरीं यान्ति चित्तवृत्तिर्गरीयसी ।।

जो मानस तीर्थ के सत्यरूपी जल से पूर्ण राग द्वेष रूपी मल को दूर करने वाले ज्ञान-सरोवर में स्नान करता रहता है वह पापों से कभी लिप्त नहीं होता । देवता न तो काष्ठ में है न पत्थर में और न मिट्टी में ही। देवता तो भाव में बसते हैं अत: सदा सद्भाव की वृद्धि करनी चाहिए । मछली मारने वाले मछुए प्रतिदिन बड़े तड़के ही नर्मदाजी का दर्शन किया करते हैं, पर उन्हें शिवपुरी की प्राप्ति नहीं होती, इसमें उनकी चित्त शुद्धि का अभाव ही प्रमुख कारण है ।

उपर्युक्त प्रतिपादन से स्पष्ट है कि भाव शुद्धि, विचार शुद्धि एवं क्रिया शुद्धि ही वास्तविक शुद्धि है। बाह्य कर्मकाण्ड इन्हीं अन्तर शुद्धियों को जाग्रत करने हेतु बनाये गये हैं । इनसे यदि भाव शुद्धि का प्रयोजन सिद्ध न हो सके तो इन्हें निरर्थक ही समझना चाहिए। अत: हमें अपना सारा ध्यान भाव शुद्धि पर ही केन्द्रित करना चाहिये । भावनाऐं शुद्ध हो जाने पर हमारे विचार भी शुद्ध होंगे तथा हमारी क्रिया भी तदनुसार होगी । यदि हमने नर्मदा में मछली मारने वाले मछुवों की तरह से मात्र देव-तीर्थ दर्शन एवं स्नान को ही सब कुछ मान लिया तो हमारा अन्त:करण कभी भी शुद्ध नहीं हो सकता । किन्तु कर्मकाण्डों के आकाश-पाताल जैसे माहत्म्य पढ़ सुन कर हम अन्त:करण की निर्मलता पर ध्यान ही नहीं देते तथा कुलीनता, धन, रूप, विद्या, बुद्धि आदि के मद से मतवाले हो उठते हैं । जबकि आत्मसाक्षात्कार या ईश्वर दर्शन के मार्ग में इन उपलब्धियों का कोई महत्व नहीं है। उल्टे इन सबका घमण्ड और पैदा हो जाता है । घमण्ड भी चित्त को अशुद्ध बना देता है। वस्तुओं की प्राप्ति को सौभाग्य मानने की अपेक्षा उनकी प्राप्ति पर घमंड न होना सौभाग्य का चिन्ह है। राजा बलि को तमाम ऐश्वर्य पाकर भी घमण्ड नहीं हुआ तो वामन भगवान ब्रह्माजी से कहते हैं,-

जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभि: ।
यद्यस्य न भवेत् स्तम्भस्तत्रायं मदनुग्रह: ।।

मनुष्य योनि में जन्म लेकर यदि कुलीनता, कर्म, अवस्था, रूप, विद्या, ऐश्वर्य और धन आदि के कारण घमंड न हो जाय तो समझना चाहिए कि मेरी बड़ी ही कृपा है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

वास्तव में अहंकार आत्मशुद्धि के आध्यात्म मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। कहा गया है "अहंकारो सिद्धि बाधक" यद्यपि मैं की समाप्ति ही साधना का मूल प्रयोजन है किन्तु हम विभिन्न प्रक्रियाओं और माध्यमों द्वारा अपने क्षुद्र अहं को ही पुष्ट करते हैं । हम पूजा पाठ तथा अन्य सभी कार्य केवल इसलिए करते हैं कि लोग हमें महात्मा कहने लगें । हमें महात्मा बनने में नहीं महात्मा कहे जाने में अपार आनन्द होता है । कभी हम कुलीनता का प्रदर्शन करते हैं तथा कभी अपनी विद्या, बुद्धि या वैभव का। यदि यह भी न हों तो हम अपने पूजा पाठ का प्रदर्शन कर यह संतोष कर लेते हैं कि इस लोक में न सही परलोक में तो हमें अवश्य सफलता मिलेगी किन्तु ऐसा संभव है? क्षुद्र अहं के रहते हुए क्या परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है ? यदि हम वास्तव में आत्मसाक्षात्कार करना चाहते हैं तो हमें परमात्मा जैसा ही विशाल और उदार अन्तकरण बनाना पड़ेगा तथा इसके लिऐ क्षुद्र मैं का विसर्जन आवश्यक है। किन्तु इस मार्ग में हमारे दोष-दुर्गुण तथा वासना और तृष्णा ही अवरोध उत्पन्न करते हैं। इसलिए सभी शास्त्र तथा ऋषि महापुरुष एक मत से आत्म शुद्धि पर सर्वाधिक जोर देते हैं। भागवत में युधिष्ठिर को साधन मार्ग का निर्देश करते हुए नारद जी कहते हैं-

षड्वर्गसंयमैकान्ता: सर्वा नियमचोदना: ।
तदन्ता यदि नो योगानावहेयु: श्रमावहा: ।।

शास्त्रों में जितने भी नियम सम्बन्धी आदेश हैं उनका एक मात्र तात्पर्य यही है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर- इन छ: शत्रुओं पर विजय प्राप्त करली जाय अथवा पाँचों इन्द्रियां और मन- ये छ: वश में हो जायँ । ऐसा होने पर भी यदि उन नियमों के द्वारा भगवान के ध्यान-चिन्तन आदि की प्राप्ति नहीं होती तो उन्हें केवल श्रम ही श्रम समझना चाहिए ।

ईश्वर महान है तथा महान आत्मा ही उसका साक्षात्कार करने में सक्षम है। सभी नियमों एवं कर्मकाण्डों का एक मात्र यही प्रयोजन हैं कि हम अपनी कमजोरियों को निरस्त कर मन एवं इन्द्रियों की क्षुद्र ललक से ऊपर उठें तथा उस महान सत्ता में अपने आपको विलीन करदें। किन्तु यह बात हमारी समझ में नहीं आती। हमारी दशा उस अन्धे जैसी है जिसे उँगली के इशारे से सूर्य को बताने की कोशिश की जा रही थी किन्तु अन्धा होने के कारण वह सूर्य को तो नहीं देख सका उँगली को ही सूर्य समझ कर उसे ही पकड़ कर बैठ गया । कर्म काण्ड और पूजा-पाठ मात्र इशारे हैं तथा ये सब हमें लक्ष्य की ओर इंगित करते हैं। किन्तु हम इन्हें ही लक्ष्य समझ लेते हैं तथा सारा जीवन इसी टंट-घंट में बिता देते हैं और समझते हैं कि हमने लक्ष्य पा लिया। हमें अपनी भूल स्वीकार करनी चाहिए तथा पूजा-पाठ एवं अन्य कर्म काण्डों का वास्तविक प्रयोजन समझकर सही दिशा में गतिशील होना चाहिए। भागवत में सही आध्यात्म का स्वरूप समझाते हुए सूतजी शौनकादि ऋषियों से कहते हैं-

मण्ड़लं देवयजनं दीक्षा संस्कार आत्मन: ।
परिचर्या भगवत आत्मनो दुरितक्षय: ।।

सूर्य मण्डल अथवा अग्निमण्डल ही भगवान् की पूजा का स्थान है, अन्त:करण की शुद्धि ही मन्त्र दीक्षा है और अपने समस्त पाप को नष्ट कर देना ही भगवान की पूजा है।

इस श्लोक में भगवान की पूजा का ढंग समझाया गया है। सूर्य तथा अग्नि भगवान के प्रत्यक्ष प्रतीक हैं । प्रतीक याने लक्ष्य हमें जैसी प्रखरता, तेजस्विता, नियमितता तथा लोक मंगल के लिए समर्पित जीवन पद्धति अपनानी चाहिये । तथा अग्नि जैसी ऊर्ध्वगामिता, सबको अपने आप में विलीन कर लेने की क्षमता सदा प्रज्वलित रहने और अपनी उपलब्धियों को संसार में वितरित करते रहने जैसी अनेक क्रियाओं को अपनी साधना पद्धति में स्थान देना चाहिये । हमारा अन्त: करण ही आत्मा से परमात्मा के मिलन का पवित्र स्थल है। अत: अपनी मलीनताओं को ध्वस्त कर हमें आत्मा में परमात्मा के साक्षात्कार का चरम लक्ष्य प्राप्त करना चाहिए। यही वास्तविक पूजा है। भागवत में नृसिंह भगवान की स्तुति करते हुए भक्त शिरोमणि प्रहलाद कहते हैं-

नैवात्मन: प्रभुरयं निजलाभपूर्णो
मानं जनादविदुष: करुणो वृणीने ।
यद् यज्जनो भगवते विदधीत मानं
तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्री: ।।

सर्वशक्तिमान् प्रभु अपने स्वरूप के साक्षात्कार से ही परिपूर्ण हैं। उन्हें अपने लिए क्षुद्र पुरुषों से पूजा ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। वे करुणावश ही

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भोले भक्तों के लिए उनके द्वारा की हुई पूजा स्वीकार कर लेते हैं। जैसे अपने मुखका सौन्दर्य दर्पण में दीखने वाले प्रतिबिम्ब को भी सुन्दर बना देता है, वैसे ही भक्त भगवान् के प्रति जो - जो सम्मान प्रकट करता है, वह उसे ही प्राप्त होता है।

भगवान पूर्ण काम हैं । हमारे द्वारा समर्पित क्षुद्र वस्तुओं से उन्हें क्या प्रयोजन हो सकता है ? सारा संसार भगवान का ही है । यदि प्रभु की वस्तुऐं हम प्रभु को समर्पित करते हैं तो इसमें हमारी क्या विशेषता है? हमारी पूजा से परमात्मा को कोई लाभ नहीं है। तो क्या कर्म काण्ड और पूजा पाठ निरर्थक है ? नहीं, इन माध्यमों से हम अपनी त्याग एवं समर्पण की भावनाओं को पुष्ट करते हैं। जिस तरह भावना विहीन क्रिया निरर्थक है उसी तरह क्रिया विहीन भावना भी व्यर्थ है। अत: हमें कर्मकाण्ड और पूजा का सही स्वरूप समझ कर इन क्रियाओं के माध्यम से अपनी भावनाओं को पुष्ट कर प्रभु को आत्मसमर्पण के महान लक्ष्य की ओर गतिशील होना चाहिए। तथा हर अन्त: बाह्य प्रयासों के माध्यम से अपने अन्त:करण को विशुद्ध बनाने का भगीरथ प्रयास करना चाहिए । यह कार्य सम्पन्न होते ही हमारा अन्त:करण प्रभु का पवित्र मंदिर बन जायगा तथा मन मंदिर में ही उस परम ज्योति को साक्षात्कार कर हम धन्य हो जायेंगे। भगवान शिव माँ सती को अपनी पूजा पद्धति के बारे में बताते हुए कहते हैं -

सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं
यदीयते तत्र पुमानपावृत: ।
सत्वे च तस्मिन् भगवान् वासुदेवो
ह्यधोक्षजो मे नमसा विधीयते ।।

विशुद्ध अन्त:करण का नाम ही वसुदेव है, क्योंकि उसी में भगवान् वासुदेव का अपरोक्ष अनुभव होता है। उस शुद्ध चित्त में स्थित इन्द्रियातीत भगवान् वासुदेव को ही मैं नमस्कार किया करता हूँ।

शास्त्रों में "वसुदेव" की व्याख्या करते हुये बताया गया है **''वासे वासे तिष्ठति वासुदेव''** जो सब जगह निवास करता है वही वसुदेव है । इस तरह हमारे हृदय में भी वसुदेव का निवास है। किन्तु जिस प्रकार मलीन दर्पण में मुख छवि नहीं दिखाई पड़ती उसी तरह हम अपने मलीन अन्त:करण में परमात्मा को नहीं देख पाते । इसमें एक ही बाधा है हमारे मन की चंचलता । अत: हमें अपनी संपूर्ण शक्ति इसी समस्या के समाधान में लगाना चाहिए। यद्यपि यह कार्य दुष्कर है किन्तु इसके बिना और कोई मार्ग नहीं है। हमें हिम्मत न हारकर गीता में भगवान द्वारा अर्जुन को दिये गये निर्देश के अनुसार कार्य करना चाहिए **"अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते"** यदि हम निरंतर अभ्यास करते रहें तो अवश्य सफल होंगे हमें मनोबल गिराना नहीं चाहिए । मनुष्य का मन अद्भुत क्षमता सम्पन्न है। भागवत कथा में कृष्ण -उद्धव संवाद के अन्तर्गत ब्राह्मण की कथा के अन्तर्गत मन की सामर्थ्य का उल्लेख करते हुए कहा गया है:-

मनोवशेऽन्ये ह्यभवन स्म देवा
मनश्च नान्यस्य वशं समेति।
भीष्मी हि देव: सहस: सहीयान्
युञ्ज्याद् वशे तं स हि देवदेव: ।।

सभी इन्द्रियाँ मन के वश में हैं। मन किसी भी इन्द्रिय के वश में नहीं है। यह मन बलवान अत्यन्त भयंकर देव है। जो इसको अपने वश में कर लेता है, वही देव देव- इन्द्रियों का विजेता है ।

क्या हम इस लक्ष्य को पाना चाहते हैं? यदि हाँ। तो हमें इसी क्षण से अपने प्रयत्न प्रारम्भ कर देने चाहिए। मंजिल की ओर बढ़ाया एक-एक कदम हमें लक्ष्य की ओर ले जाता है। जब इसके सिवा अन्य कोई मार्ग ही नहीं हैं तो हमें अनावश्यक देर न करते हुये तत्काल प्रयत्न प्रारम्भ करना चाहिए । अब सारा रहस्य हमारी समझ में आगया। अभी तक हम अपना वास्तविक स्वरूप न समझकर पराधीन बने हुऐ थे। अब हमें स्वाधीन होने का प्रयास करना चाहिए तथा अपने अन्त:करण में "स्वराज्य " की स्थापना करनी चाहिए। महाभारत में अर्जुन को "स्वराज्य" का स्वरूप समझाते हुये भगवान कृष्ण कहते हैं -

तस्मादेतं सम्यगवेक्ष्य लोभं
निगृह्य धृत्याऽऽत्मनि राज्यमिच्छेत् ।
एतद् राज्यं नान्यदस्तीह राज्य-
मात्मैव राजा विदितो यथावत् ।।

इसलिए इस लोभ के स्वरूप को अच्छी तरह समझकर इसे धैर्यपूर्वक दबाकर आत्मराज्य पर अधिकार पाने की इच्छा करनी चाहिए यह वास्तविक स्वराज्य है। यहां दूसरा कोई राज्य नहीं है। आत्मा का यथार्थ ज्ञान हो जाने पर वही राजा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभी तक हम मोह निद्रा में पड़े हुऐ थे । अत: हमारे सेवक हमारे ऊपर शासन कर रहे थे । अब हम जाग गये हैं अत: जिस तरह मकान मालिक के जागते रहने पर चोरों की घात नहीं लगती उसी तरह अब दोष दुर्गणों के जन्म दाता मन और इन्द्रियों के छलावे में हम नहीं फसेंगे। आईये तुलसी दासजी के स्वर में स्वर मिलाकर हम भी कहें **"अबलों नसानी अब न नसैहों"** हमारी क्षमतायें महान हैं, यदि हम अपना वास्तविक आसन ग्रहण करलें तो सेवकों को हमारी इच्छा के अनुसार ही कार्य करना पड़ेगा । क्या हम ऐसा कर सकेंगे? करना ही पड़ेगा क्योंकि "पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं" परमात्मा हमारे साथ है। हम अवश्य सफल होंगे क्योंकि यही हमारा "स्वभाव" है। मन पर विजय पाते ही हमारी स्थिति में आमूल चूल परिवर्तन हो जावेगा। तब हमारी स्थिति भागवत में राजा चित्रकेतु को दिये गये महर्षि अंगिरा के उपदेश जैसी हो जावेगी । महर्षि अंगिरा राजा चित्रकेतु से कहते हैं -

यस्यात्मानुवशश्चेत्स्यात्सव तद्वशगा इम ।
लोका: सपाला यच्छन्तिं सर्व बलिमतन्द्रिता: ।।

सच्ची बात तो यह है कि जिसका मन अपने वश में है उसके ये सभी वश में होते हैं । इतना ही नहीं सभी लोक और लोकपाल भी बड़ी सावधानी से उसे भेंट देकर उनकी प्रसन्नता चाहते हैं।

अभी तक हम दूसरों को प्रसन्न करने के लिए बहुत भटकते रहे। अब हमें अपने अंन्त:करण का महत्व समझना चाहिए । मन को अपने नियंत्रण में रख कर वह पद प्राप्त करना चाहिए जिसके लिए देवता भी लालायित रहते हैं। इस अमूल्य मानव जीवन का सदुपयोग संभव है। अपने अन्त:करण को दोषों से मुक्त बनाकर, सदगुणों से सजाकर, दिव्य क्षमताओं को विकसित करके हम सांसारिक सफलतायें तथा पारलौकिक उपलब्धियां पा सकते हैं । श्रेष्ठ सुखी जीवन जीते हैं परमात्मा के सान्निध्य तक का लाभ उठा सकते हैं।

ईश्वर का स्वरूप और उससे सम्बन्ध

ईश्वर विश्वास मनुष्य जीवन की सार्थकता और सुव्यवस्था के लिए बहुत आवश्यक है। यों तो, सामान्य नैतिक सिद्धान्तों पर आस्था रखते हुए भी मनुष्य नेक जीवन जी सकता है । अपने व्यक्तिगत उत्कर्ष और सामाजिक उन्नति में सफल योगदान दे सकता है। लेकिन ईश्वर - विश्वास के अभाव में वह कभी भी भटक सकता है। एक सर्वव्यापी सर्व समर्थ न्यायकारी सत्ता के रूप में ईश्वर की मान्यता मनुष्य को आदर्शनिष्ठ, समाजनिष्ठ तथा विकासोन्मुख बनाऐ रखने में उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

आस्तिकता को आज उपेक्षणीय और निरर्थक इसलिए माना जाने लगा है कि ईश्वर के सम्बन्ध में बड़ी भ्रान्त मान्यताएँ फैलादी गई हैं । लोग यह समझने लगे हैं कि ईश्वर हम जैसा ही कोई निकृष्ट मनोभूमि वाला व्यक्ति है, जो थोड़ी सी खुशामद से प्रसन्न हो जाता है या पूजा स्तुति करने वालों से सन्तुष्ट हो जाता है। आज आस्तिक कहलाने वालों की गतिविधियों को देखकर यही निष्कर्ष निकलता है। लेकिन विवेक कहता है कि ऐसी अनैतिक सत्ता ईश्वर तो नहीं हो सकती, शैतान भले हो ।

कुछ लोग ईश्वर को करुणा निधान, कृपानिधान तक मानकर ही रह जाते हैं । यह मान्यता सत्य होते हुए भी एकांगी है। ईश्वर जहां पीड़ितों के प्रति करुणा निधान है, वहाँ दुष्टों के लिए रुद्र भी है। जिस समय भगवान कृष्ण देवकी के गर्भ में आते हैं, उस समय देवतागण उनकी स्तुति करते हुए कहते हैं -

विभर्षि रूपाण्यववोध आत्मा
क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य।
सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि
सतामभद्राणि मुहु: खलानाम् ।।

हे प्रभु । आप चराचर जगत के कल्याण के लिये ही अनेकों रूप धारण करते हैं । आपके वे रूप विशुद्ध, अप्राकृत, सत्वमय होते हैं और संत पुरुषों को बहुत सुख देते हैं । साथ ही दुष्टों को उनकी दुष्टता का दण्ड भी देते हैं । उनके लिए अमंगलमय भी होते हैं ।

स्पष्ट है कि सज्जन व्यक्ति उनकी करुणा और दया का लाभ पाते हैं और दुष्ट उनकी न्याय-व्यवस्था

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के अनुसार दंड पाते हैं। सज्जनों के लिए वे हर्ष देने वाले और असज्जनों के लिए वे भय का कारण हैं।

चूंकि ईश्वर सामान्य दृष्टि से दिखाई नहीं देता ,इसलिए लोग उसे भूल जाते हैं। ईश्वर परायण व्यक्ति भी उसे मन्दिरों और पूजा स्थलों तक ही सीमित मान लेते हैं । ऐसे सीमाबद्ध भगवान से किसी श्रेष्ठ लाभ की आशा कैसे की जा सकती है? यदि भगवान पर आस्था रखनी ही है, तो उसे सर्वत्र तथा सर्वव्यापी के रूप में ही मानना चाहिए । स्वायम्भुव मनुष्य अपनी तपस्या के समय अपने आपको उद्बोधन देते हुए कहते हैं-

यं न पश्यन्तं चक्षुर्यस्य न रिष्यति ।
तं भूतनिलयं देवं सुपर्णमुपधावत ।।

भगवान् सबके साक्षी हैं। उन्हें बुद्धि-वृतियाँ या नेत्र आदि इन्द्रियाँ नहीं देख सकती, परन्तु उनकी ज्ञान शक्ति अखण्ड है। समस्त प्राणियों के हृदय में रहने वाले उन्हीं स्वयं प्रकाश असग्ड परमात्मा की शरण ग्रहण करो।

किसी सामान्य अधिकारी की उपस्थिति का ध्यान होने पर भी मनुष्य अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होता, तो उस सर्वोच्च सत्ता की उपस्थिति अपने अन्दर ही अनुभव करने वाला व्यक्ति भला कैसे कुमार्ग गामी हो सकता है?

एक गुरु ने अपने शिष्यों को ईश्वर निष्ठा की परीक्षा के लिए उन्हें एक मुर्गी देकर उसे एकान्त में काटकर लाने की बात कही । उनमें से एक शिष्य बिना काटे ही मुर्गी लौटा ले गया और बोला मुझे तो भय लगता है ईश्वर सब जगह देख रहा है। उसे सच्चा आस्तिक माना गया ।

लोग यह मानते हैं कि ईश्वर कोई विभिन्न व्यक्ति का नाम है, जो किसी को अधिक प्यार करता है, किसी को कम । लेकिन यह धारणा गलत है । भगवान शिव देवी पार्वती को यह मर्म समझाते हुऐ कहते हैं-

न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि बा।
आत्मत्वात्सर्वभूतानां सर्वभूतप्रियो हरि ।।

भगवान् को न कोई प्रिय है और न अप्रिय । उनका न कोई अपना है और न पराया । वे सभी प्राणियों के आत्मा हैं, इसलिए सभी प्राणियों के प्रिय हैं।

जब भगवान के प्रेमी रूप का वर्णन किया जाता है, तो लोग यह मानने लगते हैं कि प्रेम के प्रभाव में भगवान अपनी न्याय व्यवस्था की उपेक्षा करने लगते हैं। यह ममता मनुष्य को कुमार्गगामी बना देती है। इस मान्यता का खंडन करते हुए हस्तिनापुर से द्वारका जाते हुए रास्ते में उत्तम ऋषि से हुई चर्चा के दौरान भगवान कृष्ण कहते हैं-

भूतग्रामस्य सर्वस्य स्रष्टा संहार एव च ।
अधर्मे वर्तमानानां सर्वेषामहमच्युतः ।।

समस्त प्राणि समुदाय की सृष्टि और संहार भी मेरे ही द्वारा होते हैं । अधर्म में लगे हुए सभी मनुष्यों को दण्ड देने वाला और अपनी मर्यादा से कभी च्युत न होने वाला ईश्वर मैं ही हूँ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भगवान का कार्य केवल सृष्टि ही नहीं, संहार भी है । वे धर्माचरण करने वाले के लिए कृपालु, करुणासागर और दीनदयाल हैं, तो अधर्म पर चलने वाले को दंड भी देते हैं । उन्हें छला नहीं जा सकता। नकली प्रेम दिखाने वाले को तो साधारण मनुष्य भी कुछ ही समय में पहचान जाते हैं। कोई व्यक्ति आपके सामने मीठी-मीठी बात करे और फिर आपके विरुद्ध आचरण करे तो उसके प्रति प्रत्यक्ष शत्रु से भी अधिक रोष एवं घृणा का भाव पैदा होता है। फिर ईश्वर का नाम मात्र जपने, अपने को ईश्वर का प्रेमी बताने वाले, लेकिन आचरण से असुरता का परिचय देने वाले को ईश्वर दंड न दें यह कैसे हो सकता है। चापलूसी से समझदार व्यक्ति भी प्रसन्न नहीं होते , फिर अन्तर्यामी भगवान को प्रेम प्रदान द्वारा प्रसन्न कर उनसे यह आवेदन करना कि वे मेरे लिए न्याय की मर्यादा छोड़ देंगे हास्यास्पद ही कहा जाएगा। ईश्वर कभी भी अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता।

भगवान के सम्बन्ध में भ्रान्तियाँ इसलिए पैदा हो जाती हैं कि उन्हें शक्ति रूप से नहीं व्यक्ति रूप से मानने लगते हैं। ईश्वर चेतना रूप है किन्तु यदि उनका स्थूल रूप ही देखना है तो इस विश्व को ही उनका स्वरूप माना जा सकता है। शुकदेवजी परीक्षित को समझाते हुए कहते हैं। हे राजन्-

विशेषस्तस्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम् ।
यत्रेदं दृश्यते विश्व भूतं भव्यं भवच्च सत् ।।

यह कार्य रूप सम्पूर्ण विश्व जो कुछ कभी था, है या होगा-सब का सब जिसमें दीख पड़ता है, वही भगवान् का स्थूल से स्थूल और विराट् शरीर है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ईश्वर किसी स्वरूप के परे है यह जानते हुए भी मनुष्य उन्हें मनुष्य के रूप में ही मानना समझना चाहता है। इसलिए ऋषियों, ने विराट पुरुष रूप में देखने का निर्देश दिया है। सूतजी विराट पुरुष की व्याख्या करते हुए शौनक जी से कहते हैं-

एतद् वै पौरुषं रूपं भूः पादौ द्यौः शिरसि नभः।
नाभिः सूर्योऽक्षिणी नासे वायुः कर्णौदिशः प्रभोः।।

यह भगवान् का ही पुरुष रूप है । पृथ्वी उनके चरण हैं, आकाश मस्तक है, अन्तरिक्ष नाभि है, सूर्य नेत्र है, वायु नासिका है और दिशाएँ कान हैं ।। ६।।

भगवान के इसी विराट स्वरूप की उपासना ही सर्वश्रेष्ठ लोगों ने सदा की है। अर्जुन को भी भगवान ने अपना यही विराट रूप दिखलाया था और माता यशोदा को भी । काकभुशुण्डिजी और क्रौशल्या को भी भगवान राम के इसी रूप के दर्शन हुए थे।

ऐसे विराट सर्वव्यापी भगवान का अणु-अणु महत्व है, उदात्त है। उनका प्रत्येक स्वरूप उनके हर हिस्से की अभिव्यक्ति श्रेष्ठ है। प्रत्येक श्रेष्ठ चिन्तन में तो हमें उन्हें श्रेष्ठ प्रवृतियों के रूप में समझना तथा अपनाना सबसे अधिक लाभप्रद है। कृष्ण ने अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए प्रत्येक श्रेष्ठ वस्तु एवं विचार को ही अपना स्वरूप कहा है। शुकदेवजी भी राजा परीक्षित से यही कहते हैं-

स एष आत्मात्मवतामधीश्वर-
त्रयीमयो धर्ममयस्तपोमय
गतव्यलीकैरजशंकरादिभि-
र्वितर्क्यलिङ्गो भगवान् प्रसीदत।।

वे ही भगवान ज्ञानियों के आत्मा हैं, कर्म काण्डियों के लिए वेदमूर्ति हैं, धार्मिकों के लिये धर्ममूर्ति हैं और तपस्वियों के लिए तप- स्वरूप हैं । ब्रह्मा, शंकर आदि बड़े-बड़े देवता भी अपने शुद्ध हृदय से उनके स्वरूप का चिन्तन करते और आश्चर्य चकित देखते हैं मुझ पर अपने अनुग्रह की - प्रसाद की वर्षा करें ।

जब श्रेष्ठ प्रवृतियों और भावनाओं के रूप में भगवान को स्वीकार कर लिया जाता है तो वे जिस प्रकार अपने अन्दर अनुभव होते हैं उसी प्रकार, अन्य प्रकार, अन्य व्यक्तियों में भी उनकी आभा दिखाई देती है। दूसरों के अन्दर स्थिति सत् प्रवृतियों का सम्मान ईश्वर का ही सम्मान है, जो द्वेष वश दूसरों के दोषों को ही महत्व देते हैं और उनका असम्मान करते हैं वे ईश्वर का ही असम्मान करते हैं । कंस वध के बाद भगवान श्रीकृष्ण नन्द बाबा आदि को मथुरा से विदा करते हुए यही बात समझाते हुए कहते हैं-

पापग्रस्तेन दुर्बुद्धया विधिना वञ्चितेन च ।
स्वात्माह सर्वजन्तुनां स्वात्माहं नादृतः स्वयम् ।।

मैं सब जन्तुओं का आत्मा हूँ, परन्तु दुर्बुद्धि, सौभाग्य हीन, पापग्रस्त जीव मुझमें अपने आत्मा का भी आदर नहीं करते ।

आदर करने का अर्थ बाहरी दिखावा नहीं । एक दूसरे की अच्छाइयों को सच्चे हृदय से मान्यता देना तथा उनका सदुपयोग करना आवश्यक है।

हर मनुष्य में कुछ न कुछ श्रेष्ठतायें होती हैं। इस नाते ईश्वर की झलक उनमें दीखती है। किन्तु श्रेष्ठ पुरुषों से उनकी विभिन्न विशेषतायें विशेष रूप से, अधिक मात्रा में उभर कर सामने आती हैं तथा समयानुसार जन कल्याण का कार्य उनके द्वारा पूरा होता रहता है । शुकदेव जी का कथन यह है कि :-

ज्ञानं चानुयुगं ब्रूते हरिः सिद्धस्वरूपधृक् ।
ऋषिरूपधरः कर्म योगं योगेशरूपधृक् ।।

भगवान् युग युग में सनक आदि सिद्धों का रूप धारण करके ज्ञान का, याज्ञवल्क्य आदि ऋषियों का रूप धारण करके कर्म का और दत्तात्रेय आदि योगेश्वरों के रूप में योग का उपदेश करते हैं।

मनुष्य ईश्वर को सूक्ष्म रूप से नहीं समझ पाता- किसी स्थूल वस्तु के माध्यम से सुगमता से समझ लेता है। श्रेष्ठ पुरुषों में श्रेष्ठता के रूप में ईश्वर की झलक मिलती है इसलिए वे उन्हें ईश्वर की मूर्ति के रूप में मानते हैं। उनसे प्रेरणायें लेकर अपने जीवन को आदर्श बनाना उनकी पूजा करना है। इसी उद्देश्य के लिए ऋषियों ने पत्थर की प्रतिमायें भी बनायीं । उनके माध्यम से ईश्वरीय आदर्शों की प्रेरणा मनुष्यों को मिल सकती हैं किन्तु यदि मूर्तियों को ही सब कुछ मान लिया जाय - प्राणियों में व्याप्त ईश्वर की उपेक्षा की जाय तो साधक को लाभ नहीं मिल सकता । नारद जी मूर्ति पूजा के प्रचलन का इतिहास बतलाते हुए उसका लाभ मिल सकने की शर्त बतलाते हुए युधिष्ठिर से कहते हैं:-

ततोऽर्चायां हरिं केचित् संश्रद्धाय सपर्यया ।
उपासत उपास्तापि नार्थदा पुरुषाद्विषाम् ।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तभी से कितने ही लोग बड़ी श्रद्धा और सामग्री से प्रतिमा में ही भगवान् की पूजा करते हैं । परन्तु जो मनुष्य से द्वेष करते हैं, उन्हें प्रतिमा की उपासना करने पर भी सिद्धि नहीं मिल सकती । यही बात भगवान कपिल अपनी माता देवहूति से कहते हैं -

अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयानघे ।
नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः ।।

माताजी ! जो दूसरे जीवों का अपमान करता है, वह बहुत सी घटिया- बढ़िया सामग्रियों से अनेक प्रकार के विधि विधान के साथ मेरी मूर्ति का पूजन भी करे तो भी मैं उससे प्रसन्न नहीं हो सकता ।

विधि-विधान महत्वपूर्ण हैं । पूजन भी फलप्रद है पर विधि विधान किसके लिए ? पूजन किसका ? मूर्ति के आकार का ? या उसमें प्रतिष्ठित प्राण का, चेतना का । यदि आकार मात्र का पूजन हो रहा है तो आकार में भला क्या हल चल बिना प्राण के, यदि प्राण का, ऊर्जा का, चेतना का पूजन हो रहा है तो वह चेतना क्या सिर्फ उस मूर्ति में सीमित है ? जीवों के भीतर भी तो वही चेतना है। अतः अपमान उसी चेतना का ही तो है । अपने ही अपमान से देवता या ईश्वर भला कभी प्रसन्न हो सकते हैं। इसलिए सिर्फ प्रतिमा में पूजन का अर्थ है समस्त जीवों में भरी ईश्वरीय चेतना की उपेक्षा। भगवान कपिल अपनी बात और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् ।
हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः ।।

मैं सबका आत्मा, परमेश्वर सभी भूतों में स्थित हूँ ऐसी दशा में जो मोहवश मेरी उपेक्षा करके केवल प्रतिमा के पूजन मेंही लगा रहता है, वह तो मानो भस्म में ही हवन करता है।

भस्म निर्जीवता का प्रतीक है। हवन का लाभ अग्नि से ही मिल सकता है। इसी प्रकार प्रतिमा के माध्यम से यदि सर्वव्यापी परमात्मा पर आस्था नहीं बढ़ती तो प्रतिमा पूजन का कोई लाभ नहीं । बल्कि समय और साधन नष्ट ही होते हैं । ईश्वर के प्रचलित आकार और नाम किसी न किसी श्रेष्ठ आदर्श के प्रतीक ही हैं । भगवान कृष्ण युधिष्ठिर जी को 'शिव' शब्द की व्याख्या करते हुए समझाते हैं -

समेधयति यन्नित्यं सर्वान् वै सर्वकर्मभिः ।
मनुष्याञ्छिवमन्विच्छंस्तस्मादेष शिवः स्मृतः ।।

सब प्रकार के कर्मों द्वारा सब लोगों की उन्नति करते हैं और सबका कल्याण चाहते हैं, इसलिए इनका नाम शिव है। जो सब का कल्याण चाहने वाला रूप है उसका नाम 'शिव' है।

जो पालनकर्ता रूप है उसका नाम है विष्णु तथा जो संहारकर्ता का रूप है उसका नाम है रुद्र । नाम और रूप ये दोनों उपाधियाँ हैं नाम रूप दुई ईश उपाधी-तुलसी दास मानस जैसे एम० ए०, एम० एस० सी० की उपाधि का अर्थ है अमुक उपाधिधारी व्यक्ति अमुक किस्म के ज्ञान का वाहक है । प्रत्येक नाम व रूप कुछ निश्चित गुण समूहों की ओर इशारा करता है। महत्वपूर्ण हैं वे गुणसमूह, न कि सिर्फ नाम या रूप । महत्वपूर्ण है अर्जित ज्ञान न कि सिर्फ उपाधियां (डिग्रियां) ईश्वर सभी गुणों के एकमात्र आश्रय हैं। अलग - अलग गुण समूहों का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं। ईश्वर के भिन्न-भिन्न रूप आपस में कोई बिल्कुल अलग वस्तुऐं नहीं । शुकदेव राजा परीक्षित से कहते हैं-

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ।।

वास्तव में भगवन् प्रकृति सम्बन्धी वृद्धि-विनाश, प्रमाण, प्रमेय और गुणगुणीभाव से रहित हैं । वे अचिन्त्य, अनन्त, अप्राकृत, परम कल्याणस्वरूप गुणों के एकमात्र आश्रय हैं । उन्होंने यह जो अपने को तथा अपनी लीला को प्रकट किया है, उसका प्रयोजन केवल इतना ही है कि जीव उसके सहारे अपना परम कल्याण सम्पादन करे।

निराकार ईश्वर साकार रूप में अवतार लेकर भी जन कल्याण के उद्देश्य से ही आते हैं। उनके चरित्र देखकर लोग प्रेरणा लेते रहें । वह अवतार का उद्देश्य होता है। वैसे श्रेष्ठ प्रवृतियों के रूप में उन्हें सदैव ही प्रकट किया और अपनाया जा सकता है। देवी सती के पिता दक्ष प्रजापति से उनका यज्ञ विध्वंस हो जाने के बाद भगवान विष्णु स्पष्ट रूप से कहते हैं -

तपो मे हृदयं ब्रह्मं स्तनुर्विद्या क्रियाऽऽकृतिः ।
अङ्गानि क्रतवो जाता धर्म आत्मासवः सुराः ।।

ब्रह्मन् । तपस्या मेरा हृदय है, विद्या शरीर है, कर्म आकृति है, यज्ञ अंग है, धर्म मन है और देवता प्राण है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तपस्या आत्म परिष्कार, आत्मविकास अथवा जन कल्याण के लिए अपनाये गये कष्ट पूर्ण जीवन क्रम को कहते हैं । विद्या मात्र अक्षर ज्ञान नहीं सही दिशा जिससे मिल सके वह विद्या है । कर्म तो जीवन का अभिन्न अंग है । यज्ञ कहते हैं लोक कल्याणके लिए किए जाने वाले त्याग बलिदान को। धर्म कर्तव्य परायणता तथा सदाचार है। तथा देवता वे हैं जो दूसरों के हित में - दूसरों को सहयोग अनुदान देने में ही लगे रहते हैं। जीवन में यह सब प्रवृतियाँ आने लगें तो समझना चाहिए कि ईश्वर का प्रकाश अपने अन्दर भी आ रहा है।

भगवान के सम्बन्ध में ऐसे ही भाव स्वयम्भू मनु भी अपनी स्तुति में कहते हैं-

तमीहमानं निरहङ्कृतं बुधं
निराशिषं पूर्णमनन्यचोदितम्।
नम्र शिक्षयन्तं जिवर्त्मसंस्थितं
प्रभुं प्रपद्येऽखिलधर्मभावनम् ।।

भगवान् ज्ञानस्वरूप हैं, इसलिये उनमें अहंकार का लेश भी नहीं है। वे सर्वतः परिपूर्ण हैं, इसलिये उन्हें किसी वस्तु की कामना नहीं है। वे बिना किसी की प्रेरणा के स्वेच्छा से ही कर्म करते हैं । वे अपनी ही बनायी हुई मर्यादा में स्थित रह कर अपने कर्मों के द्वारा मनुष्यों को शिक्षा देते हैं । वे ही समस्त धर्मों के प्रवर्तक और उनके जीवनदाता हैं। मैं उन्हीं प्रभु की शरण में हूँ।

भगवान मनु के कथन से स्पष्ट होता है कि धर्मों का उद्गम एक ही है - खोजने पर उन सब में समान तत्व मिल सकते हैं । प्रभु न तो स्वयं मर्यादा भंग करते हैं और न वैसा किया जाना पंसद करते हैं। स्वेच्छा से अपने कर्तव्य का पालन ईश्वरत्व का लक्षण है । प्रभु का स्वरूप समझकर उनकी शरण में जाना अर्थात उनके आदर्शों में ही जीवन लगा देना उचित है। यही समझदारी है। ईश्वर आराधना के बदले स्वार्थ पूर्ति की बात सोचना मूर्खता है। देवराज इन्द्र अपनी विमाता दिति को यही तथ्य समझाते हुए कहते हैं-

आराध्यात्मप्रद देवं स्वात्मानं जगदीश्वरम्।
को वृणुते गुणस्पर्श बुधः स्यान्नकेऽपि यत्।।

भगवान् जगदीश्वर सबके आराध्यदेव और अपने आत्मा ही हैं। वे प्रसन्न होकर अपने आप तक का दान कर देते हैं । भला ऐसा कौन बुद्धिमान् है , जो उनकी आराधना करके विषयभोगों का वरदान माँगे। माताजी ! ये विषयभोग तो नरक में भी मिल सकते हैं।

भगवान अपने आप का दान करते हैं अर्थात् सही ढंग से आराधना करने वाला ईश्वरत्व प्राप्त कर लेता है। ईश्वरतत्व छोड़कर विषय भोग मूर्खता है। विषय भोग सुख के ही नहीं दुख के भी कारण बन जाते हैं इसलिए उन्हें नर्क में भी मिलने की बात कही गयी है।

यहाँ यह शंका उठ सकती है कि तब स्वर्गादि में विभिन्न विषय-सुख ही तो मिलने की बात कही जाती है। यदि विषय - सुख त्याज्य हैं तो फिर स्वर्ग में उनमें मिलने की बात कहकर स्वर्ग के लिए पुरुषार्थ करने की प्रेरणा क्यों दी जाती है? इसी का उत्तर भगवान कृष्ण ने उद्धव को दिया है ।

फलश्रुतिरियं नृणां न श्रेयो रोचनं परम्।
श्रेयोविवक्षया प्रोक्तं यथा भैषज्यरोचनम् ।।

उद्धवजी ! श्रुतियों में स्वर्ग आदि की जो फल श्रुति मिलती है वह पुरूषार्थ सार्थकता सिद्ध करने के लिए नहीं, वह तो प्राणियों को श्रेय मार्ग पर ले जाने के लिए ओषधि के सम्बन्ध में कहे जाने वाले रोचक शब्दों की तरह है।

जैसे बच्चों को दवा पिलाने के लिए कह देते हैं बेटा ! प्रेम से पीलो तो तुम्हें खिलौने मिलेंगे। बच्चा आराम का महत्व नहीं समझता खिलौनों का महत्व समझता है, उस बहाने से अपने हित का काम स्वीकार कर लेता है। सामान्य मनुष्य भी श्रेष्ठ जीवन क्रम के लाभ नहीं समझता - उसे विषयों के सुख मालूम होते हैं । स्वर्ग में विषय सुख मिलने की बात से अपने लाभ का अन्दाज लग जाता है और वह उस मार्ग पर चल पड़ता है। ऐसा कहना झूठ भी नहीं है - क्योंकि जो कहा जाता है उससे अधिक ही लाभ उस मार्ग पर चलने वाले को प्राप्त होता है।

इसलिए भगवान से सांसारिक कामनाओं की पूर्ति की प्रार्थना करना घाटे का ही काम है। साथ ही वह भक्त और भगवान के सम्बन्धों के भी प्रतिकूल है। भक्त प्रभु का सेवक कहलाता है। सेवक स्वामी के आदर्श का उल्लेख करते हुए भक्त प्रहलाद भगवान नृसिंह से कहते हैं-

यस्त आशिष आशास्ते न भृत्यः स वै वाणिक् ।
आशासानो न व भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः ।
न स्वामौ भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन् यो राति चाशिषः।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो स्वामी से अपनी कामनाओं की पूर्ति चाहता है, वह सेवक नहीं, और जो सेवक से सेवा कराने के लिए उसका स्वामी बनने के लिये उसकी कामनाएँ पूर्ण करता है, वह स्वामी नहीं ।

सेवक भला स्वामी से अपनी सेवा कराना चाहेगा ? अपनी इच्छाएं पूरी कराना चाहेगा ? जीव यह कामना करे कि ईश्वर हमारी इच्छा पूरी करें इसका अर्थ है कि ईश्वर नहीं जानता कि उचित क्या है, अनुचित क्या। इसलिए हम जो चाहें और बताऐं वह भगवान करता चले। और अगर न करे तो ? तब हम उसकी पूजा करना बन्द कर देंगे। यदि स्वामी इस लोभ में कि सेवक मेरी सेवा करता रहे उस सेवक की कामनाएं पूरी करने लगे तो स्थिति क्या होगी? उस सेवक की सब कामनाऐं पूरी कर उसे सन्तुष्ट रखने की चिन्ता स्वामी को हमेशा बनी रहेगी यानी वह स्वामी अपने सेवक की इच्छाएं पूरी करने की दौड़धूप में या किसी चिन्ता में लगा रहेगा। तब वह स्वामी कैसा ? वह तो उस सेवक का ही सेवक बन गया ।

लेकिन भोगों के पीछे व्याकुल लोग यही मानते हैं कि हमारे प्रेम प्रदर्शन से प्रसन्न ईश्वर हम पर कृपा करके हमें सदा धन वैभव देते रहेंगे। किन्तु उन्हें यह पता नहीं कि भगवान धन वैभव देते ही नहीं धन वैभव लेते भी हैं। गोवर्धन धारण के बाद इन्द्र को अपनी नीति समझाते हुए कहते हैं -

मामैश्वर्यश्रीमदान्धो दण्डपाणिं न पश्यति ।
तं भ्रंशयामि मम्पद्मद्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ।।

जो ऐश्वर्य और धन - सम्पत्ति के मदसे अन्धा हो जाता है, वह यह नहीं देखता कि मै कालरूप परमेश्वर हाथ में दण्ड लेकर उसके सिर पर सवार हूँ। मैं जिस पर अनुग्रह करना चाहता हूँ , उसे ऐश्वर्य-भ्रष्ट कर देता हूँ।

भगवान वैभव देते हैं उसके द्वारा जन कल्याण किये जाने के लिए, लेकिन यदि कोई व्यक्ति उस धन का अहंकारी बन जाय उसे अपने ही लिए खर्च करने की अनीति बरतने लगे, तो वे उसे छीन भी लेते हैं। इन्द्र ने अपनी शक्ति का दुरुपयोग करने का प्रयास किया तो उन्हें अपमानित होना पड़ा । भगवान इसीलिए भक्तों को अनुदान देने के पहले उनकी उदारता की परीक्षा लेते हैं प्राय: देने की वृत्ति होती है उसी को वे अनुदान देते हैं । भगवान श्री कृष्ण स्वयं अपने इस क्रम का उल्लेख करते हुए कहते हैं-

भक्ता मह्य: प्रयच्छन्ति भक्ते भोगं ददाम्यति ।
पूर्व निबेदित भक्तै र्देहागारसुतादिकम् ।।

भक्तलोग मुझे देते हैं और मैं उन्हें देता हूँ। भक्तगण पहले ही अपने शरीर, घरबार तथा पुत्र आदि मुझे समर्पण कर देते हैं ।

जो भी व्यक्ति अपने आपको ईश्वर के हवाले कर देता है अर्थात सारी शक्ति - सम्पत्ति तथा विभूतियों को ईश्वरीय कार्यों में लगा देता है उसे भगवान अपने अक्षय भण्डार का अधिकारी बना देते हैं। मनुष्य इस तथ्य को न समझकर सांसारिक कामनाओं की पूर्ति में अपनी शक्ति लगाता रहता है। दत्तात्रेय के २४ गुरुओं के प्रसंग में पिंगला वेश्या की कथा भी आती है। वह स्वार्थ में ही लगे रहने की अपेक्षा जब ईश्वर से सम्बन्ध बनाने का महत्व समझती है तो स्वयं ही कह उठती है-

सुहृत् प्रष्ठतमो नाथ भात्मा चायं शरीरिणाम् ।
तं विक्रीयात्मनैवाह रमेऽनेन यथा रमा ।।

मेरे हृदय में विराजमान प्रभु ! समस्त प्राणियों के हितैषी, सुहृद्, प्रियतम, स्वामी और आत्मा हैं । अब मैं अपने आपको देकर इन्हें खरीद लूँगी और इनके साथ वैसे ही विहार करूँगी, जैसे लक्ष्मी जी करती हैं।

और पर-पुरुषों को निरन्तर तन-मन अर्पण से सिर्फ रिक्त होती जा रही पिंगला ने अपने आपको प्रभु को समर्पित करने के बाद सभी कुछ पा लिया, मन की प्रफुल्लता, तन की ताजगी और पवित्रता, आत्मा का आनन्द और शक्ति , अक्षय यश और अनन्त शोभा। सम्पूर्ण समर्पण से सर्वतो मुखी समृद्धि मिलती है। सब कुछ सोंप देने पर सभी कुछ मिल जाता है । लेकिन अपने आपको प्रभु के चरणों में समर्पित कर देना यकायक संभव नहीं होता । उस विधि को सीखना और अभ्यास में लाना पड़ता है। स्वयं अपना समय, पुरुषार्थ, ज्ञान, धन, प्रभाव आदि को प्रभु के कार्यों में जन हित में लगाने का अभ्यास करना पड़ता है। यही नहीं, अपने से सम्बद्ध व्यक्तियों को भी उसमें लगाने का क्रम अपनाना चाहिए। राजा यदु से योगीश्वर - 'प्रबुद्ध' कहते हैं -

इष्ट दर्त्त तपो जप्तं वृत्त यच्चात्मन: प्रियम् ।
दाराद् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मैनिवेदनम् ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राजा निमि से चौथे योगीश्वर - प्रबुद्ध ने कहा- यज्ञ, दान, तप अथवा जप, सदाचार का पालन और स्त्री, पुत्र, अपना जीवन, प्राण तथा जो कुछ आपको प्रिय लगता हो - सब का सब भगवान् के चरणों में निवेदन करना, उन्हें सौप देना सीखें ।।

हम यही मार्ग अपनाकर प्रभु का प्रेम पा सकते हैं, लौकिक और पारलौकिक सफलतायें प्राप्त कर सकते हैं। ईश्वर के सही स्वरूप के प्रति अपनी आस्था जागृत करें तथा उनके कार्यों में जन कल्याण के लिए अपने साधनों को अंश-अंश करके ही सही पर पूरी निष्ठा से लगाने का अभ्यास प्रारम्भ कर दें तो जीवन की सार्थकता-सफलता तथा प्रभु का स्नेह हमें अवश्य प्राप्त हो सकता है।

अकाट्य कर्मफल सिद्धान्त

महाभारत के युद्ध में भगवान कृष्ण के भानजे, बीर बालक अभिमन्यु का अन्याय पूर्वक वध कर डाला। सारे पांडव पक्ष में शोक छा गया ।'भगवान कृष्ण व अर्जुन संसप्तकों से युद्ध करने गये हुये थे। उनके वापिस लौटने पर अभिमन्यु की माँ एवं कृष्ण की प्रिय बहिन सुभद्रा ने रोते हुए कृष्ण से कहा तुम तो स्वयं भगवान हो तुम्हारे रहते हुए भी तुम्हारे प्राणों से भी ज्यादा प्रिय भानजे - की मृत्यु हो गयी और तुम उसे न रोक सके । ऐसा तुमने क्यों किया? भगवान कृष्ण ने सुभद्रा को समझाते हुए कहा- मैं भगवान अवश्य हूँ किन्तु मैं कर्मफल व्यवस्था में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकता । आखिर यह कर्मफल व्यवस्था है क्या जिसमें स्वयं भगवान भी हस्तक्षेप नहीं कर सकते ।

इस सृष्टि की रचना के बाद तब भगवान ने इस विशाल ब्रह्माण्ड सुव्यवस्थित संचालन हेतु कुछ नियम और मर्यादायें स्थापित कीं तथा कर्मानुसार फल प्राप्ति का दृढ़ सिद्धान्त बनाया ताकि यह सारा ब्रह्माण्ड एवं इसमें निवास करने वाले जीवधारी एक निश्चित विधि विधान के अनुसार चल सकें। गोस्वामी तुलसीदास ने विनय पत्रिका में कहा 'जिन्ह बाँधिस असुर नाग मुनि प्रबल कर्म की डोरी' प्रबल शब्द ध्यान देने योग्य है। ये व्यवस्था इतनी अकाट्य है कि स्वयं भगवान भी इसका सम्मान करते हैं। आदर्श नियम वही है जिसका बनाने वाला भी उसका पालन करे। भगवान ने यह व्यवस्था बनाई तथा समयानुसार कर्म फल भोगने का सिद्धान्त सुचारु रूप से चलाने हेतु स्वयं ही न्यायाधीश का पद सम्हाला। जब से यह सृष्टि बनी है तब से कर्मफल व्यवस्था का दृढ़ता पूर्वक पालन हो रहा है। तथा सृष्टि के अन्त तक होता रहेगा। भागवत में हम अपने प्रिय सखा उद्धव से व्यवस्था के बारे में बताते हुए भगवान कृष्ण कहते है-

मया कालात्मना धात्रा कर्मयुक्तमिदं जगत् ।
गुणप्रवाह एतस्मिन्नुन्मज्जति निमज्जति ।।

यह सारा जगत् कर्म और उनके संस्कारों से युक्त है । मैं ही कालरूप से कर्मों के अनुसार उनके फल का विधान करता हूँ । इस गुण प्रवाह में पड़कर जीव कभी डूब जाता है और कभी ऊपर आ जाता है - कभी उसकी अधोगति होती है और कभी उसे पुन्यगति-उच्चगति प्राप्त हो जाती है।

भगवान कहते है मैं काल हूँ। कार्ल का अर्थ है समय। जिस तरह बीज बोने के तुरन्त बाद फल की प्राप्ति नहीं होती उसी प्रकार इस व्यवस्था की भी विशेषता है कि कर्मफल तत्काल नहीं मिलता किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि कर्मों का परिणाम समाप्त हो गया। समयानुसार हमें अपने कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। आखिर ऐसा क्यों है? हम कह सकते हैं कि इस व्यवस्था की कोई आवश्यकता नहीं थी। तथा कुछ समय के लिए इसे नकार भी सकते हैं। किन्तु यदि हम गम्भीरता पूर्वक विचार करें तो इसकी उपयोगिता हमारी समझ में आ सकती है। जब छोटे-छोटे राज्य भी बिना विधि व्यवस्था के नहीं चल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकते तब इतना विशाल ब्रह्माण्ड बिना नियम एवं अनुशासन के कैसे संचालित हो सकता है? कर्मफल व्यवस्था की उपयोगिता बताते हुए इसी प्रसंग में भगवान श्री कृष्ण उद्धव से कहते हैं -

देशकालादिभावानां वस्तुनां महि सत्तम ।
गुणदोषौ विधीयेते नियमार्थ कर्मणाम् ।।

साधुश्रेष्ठ ! देश, काल ,फल निमित्त , अधिकारी और धान्य आदि वस्तुओं के गुण-दोष का विधान भी मेरे द्वारा इसलिए किया गया है कि कर्मों में लोगों की उच्चछृंखल प्रवृति न हो ,मर्यादा का भंग न होने पावे।

इतनी सशक्त व्यवस्था के होते हुये भी जरा देर से दण्ड प्राप्त होने के कारण जब इतनी अव्यवस्था फैल जाती है तब यदि वह दण्ड विधान बिलकुल ही न रहा होता तब तो यह संसार चल ही न सका होता। इसलिए भगवान ने कर्मफल का विधान किया है जिससे मर्यादाओं एवं नियमों का पालन हो सके तथा ईश्वर के प्रिय पुत्र सभी जीव इस सुरम्य सृष्टि का रसास्वादन कर सकें । यदि हम इन नियमों को समझकर सुचारु रूप से इनका पालन कर सकें तो लौकिक पारलौकिक सभी प्रकार के लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

किन्तु हम तत्काल लाभ के लोभ में पड़कर जानते हुए भी दुष्कर्म करते हैं तथा छुट-पुट कर्म कांडों का सहारा लेकर सोचते हैं कि हम इस दण्ड विधान से बच जायेंगे । क्या ऐसा सम्भव है ? कदापि नहीं । हमें भगवान को करुणासिन्धु भर नहीं काल रूप भी याद रखना चाहिए। भागवत में माँ देवहूति को काल के बारे में बताते हुए कपिल भगवान कहते हैं -

न चास्य कश्चिद्दयितो न द्वेष्यो न च बान्धवः ।
आविशत्यप्रमत्तोऽसौ प्रमत्तं जनमन्तकृत् ।।

इसका न तो कोई मित्र है, न कोई शत्रु और न कोई सगा सम्बन्धी ही है। यह सर्वदा सजग रहता है और अपने स्वरूपभूत श्रीभगवान् को भूलकर भोगरूप प्रमाद में पड़े हुए प्राणियों पर आक्रमण करके उनका संहार करता है।

स्पष्ट है कि भगवान की यह व्यवस्था सजग, सक्षम, निर्मम तथा किसी के भी पक्ष में न झुकने वाली है। अतः हमें चाहिए कि हम प्रमाद को छोड़ कर कर्म की गुरुता को स्वीकार करें तथा इसकी रोशनी में अपने कर्मों का पुनर्निर्धारण करें । इसके सिवा अन्य कोई मार्ग नहीं है। मृत्यु की तलवार कच्चे धागे में टँगी हुई हमारी गर्दन में लटक रही है। अपने दुष्कर्मों के हम ही पूर्णतः उत्तरदायी हैं तथा इनका दंड हमें अवश्य ही भोगना पड़ेगा । क्या ही अच्छा होता हम समय रहते चेत जाते । समय बीत जाने पर पश्चाताप के अतिरिक्त और कुछ हमारे हाथ लगने वाला नहीं है। 'अब पछिताये होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गई खेत' इसी स्थति के आने के पूर्व ही हमें सावधान हो जाना चाहिए। यदि हम सोचते हों कि हम भगवान को चकमा दें सकेंगे तो यह हमारी भूल है। हम किसी प्रकार नहीं बच सकते । भागवत में यमदूत एवं विष्णु दूतों की चर्चा के प्रसंग में कहा गया है -

सूर्योऽग्निः खं मरुद्गावः सोमः सन्ध्याहनी दिशः ।
कं कुः कालो धर्म इति ह्येते देहस्य साक्षिणः ।।
एतैरधर्मो विज्ञातः स्थानं दण्डस्य युज्यते ।
सर्वे कर्मानुरोधेन दण्डमर्हन्ति कारिणः ।।

जीव शरीर या मनोवृत्तियों से जितने कर्म करता है, उसके साक्षी रहते हैं-सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु, इन्द्रियाँ, चन्द्रमा, सन्ध्या, रात, दिन, दिशाएँ, जल, पृथ्वी, काल और धर्म । इनके द्वारा अधर्म का पता चल जाता है और तब दण्ड के पात्र का निर्णय होता है । पाप कर्म करने वाले सभी अपने-अपने कर्मों के अनुसार दंडनीय होते हैं ।

कितनी सशक्त है यह व्यवस्था । इतने गवाहों के होते हुए भी क्या हम अपने जुर्म से इन्कार कर सकते हैं ? और यदि इन्कार करें भी तो क्या दंड व्यवस्था से बच सकते हैं ? जब हमारी इन्द्रियाँ जिनके माध्यम से हम दुष्कर्म करते हैं वही हमारे विपक्ष में गवाही देने को तैयार हैं तब हम कैसे बच सकते हैं। हमारी क्या विसात ? इस पृथ्वी पर इतने शक्तिशाली लोग हुए हैं जिन्होंने इन सभी साक्षियों के ऊपर अपना रोब जमा रखा था । क्या ये सब इनके इशारे पर चलते थे। किन्तु क्या इतने शक्तिशाली लोग भी कर्मफल भोग से बच सके ? इतिहास और शास्त्र साक्षी है कि आज तक कोई भी कर्मफल भोग से नहीं बच सका । भविष्य पुराण में ज्ञात इतिहास के सबसे अधिक शक्तिशाली व्यक्ति रावण के बारे में बताते हुए भगवान कृष्ण युधिष्ठिर से कहते हैं -

दुर्गस्त्रिकूटः परिखाः समुद्रा
रक्षांसि योधा धनदाच्च वित्तम् ।
मन्त्रश्च यस्यौशनसा प्रणीतः
स रावणो दैववशाद्विनष्टः ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिसका त्रिकुट ही दुर्ग था, समुद्र जिसकी खाई थी राक्षस जिसके योद्धा सिपाही थे और कुबेर का वैभव जिसका धन था और शुक्राचार्य द्वारा निर्धारित जिसकी नीति थी, वह रावण भी तो देव के वश होकर विनष्ट हो गया ।

जब रावण जैसा प्रतापी जिसके बारे में कहा जाता है कि उसने काल को भी अपनी पाटी में बाँध रखा था नहीं बच सका तो हम किस खेत की मूली हैं कि बच जायेंगे । हमारे शास्त्र ऐसे व्यक्तियों के उदाहरणों से भरे पड़े हैं जो अपने युग के अपार शक्तिशाली लोग थे तथा जो अपने सिवा किसी अन्य की सत्ता को स्वीकार नहीं करते थे तथा स्वयं को ईश्वर बताते थे । वेन, नहुष, हिरण्यकशिपु, सहस्त्रबाहु, आदि न मालुम कितने उदाहरण हमारे सामने हैं किन्तु काल ने किसी के साथ कोई रियायत नहीं की । पापों का घड़ा भर जाने पर सबको सूद सहित अपने कर्मों का फल भोगना पड़ा। दण्ड मिलने पर हम कहते हैं कि बड़ा अन्धेर है कि हमें दण्ड मिला । किन्तु हमें जानना चाहिएं कि हमारे पाप के कर्म ही समयानुसार दंड के रूप में प्रकट होते हैं । दूसरे तो निमित्त मात्र ही होते हैं । रावण रणभूमि में घायल पड़ा हुआ था तथा उसके शरीर में हजारों छिद्रों से रक्त प्रवाहित हो रहा था। लक्ष्मण ने भगवान राम से पूछा प्रभो आपने तो रावण की छाती में एक बाण ही मारा था किन्तु ये हजारों घाव कैसे हो गये ? राम ने कहा लक्ष्मण मैं तो निमित्त मात्र हूँ । यह तो रावण के दुष्कर्म ही उसके शरीर को फोड़कर बह निकले हैं । भागवत में कंस वध के उपरान्त उद्धव के पूछने पर नन्द कहते हैं -

दिष्टया कंसो हतः पापः सानुगः स्वेनपाप्मना ।
साधूनां धर्मशीलानां यदूनां द्वेष्टि यः सदा ।।

यह बड़े सौभाग्य की बात है कि अपने पापों के फलस्वरूप पापी कंस अपने अनुयायियों के साथ मारा गया । क्योंकि स्वभाव से ही सदा धार्मिक परम यदुवंशियों से वह सदा द्वेष करता था ।

हम कह सकते हैं कि कृष्ण ने कंस को मारा । किन्तु नन्द बाबा जैसे तत्वदर्शी यही कहेंगे कि कंस अपने पापों के कारण मारा गया। क्या इन घटनाओं से हम कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे ? आखिर यह पाप या दुष्कर्म है क्या ? ऊपर के श्लोक में इस पर भी प्रकाश डाला गया है। राग और द्वेष यही दो प्रवृत्तियाँ हैं जो हमसे पाप कराती हैं । यदि हमारे कर्मों में कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुकावट न हों तो हमारी यह प्रवृत्तियाँ बढ़ती ही जाती हैं । स्वाभाविक ही है कि सत्पुरुष हमें बाधक प्रतीत होते हैं और हम उन्हें नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। यद्यिपि सत्पुरुष किसी राम या द्वेष से अप्रभावित रहते हुए हमारे हित की बात ही बताया करते हैं। किन्तु अपने दूषित दृष्टि कोण से हम उन्हें अपना बैरी मान लेते हैं । जब वसुदेव से देवकी का विवाह हुआ तब विवाह के बाद कंस देवकी का वध करने को तैयार हो गया। उस समय वसुदेव ने कंस की हित कामना से उसे कितनी अच्छी बात समझाई थी । वसुदेव जी ने कंस से कहा-हे भाई अनीति का मार्ग स्वयं कर्त्ता को भी दुःख पहुँचाता है ।

तस्मान्न कस्यचिद् द्रोहमाचरेत् स तथाविधः ।
आत्मनः क्षेममन्विच्छन् द्रोग्धुर्वै परतो भयम् ।।

इसलिये जो अपना कल्याण चाहता है उसे किसी से द्रोह नहीं करना चाहिये , क्योंकि जीव कर्म के अधीन हो गया है और जो किसी से भी द्रोह करेगा उसको इस जीवन में शत्रु से और जीवन के बाद परलोक से भयभीत होना ही पड़ेगा ।

वसुदेव जी के समझाने तथा अनेक आश्वासन देने के बाद यद्यपि कंस ने उस समय तो देवकी को छोड़ दिया । किन्तु क्या उसकी पाप वृत्तियों में परिवर्तन हुआ ? वह तो और भयंकर पाप कर्म करने लगा तथा उसके दुष्कर्मों से सम्पूर्ण भूमंडल त्रस्त हो उठा। उसने दूसरों को कष्ट दिया तथा स्वयं भी चैन से न रह सका। उसके बारे में बताया गया है कि वह दिन-रात ईर्षा, चिन्ता, घृणा और द्वोष की अग्नि में जलता। द्वेष दुर्गुण जिस हृदय में उत्पन्न होते हैं उसे सर्व प्रथम जलाते हैं। यदि कंस ने वसुदेव तथा अन्य सत्पुरुषों की शिक्षा के अनुसार चलने का प्रयत्न किया होता तो वह स्वयं भी सुख शान्ति पाता तथा दूसरों को सुख शांति देने में समर्थ हो सका होता ।

हम अपने क्षुद्र अहं को सन्तुष्ट करने तथा तत्काल लाभ पाने की दृष्टि से दूसरों को पीड़ा पहुँचाकर सुख शांति पाना चाहते हैं । किन्तु क्या ऐसा सम्भव है? कर्म फल सिद्धांत के अनुसार हम जैसे बीज बोते हैं वैसे फल ही हमें प्राप्त होते हैं। बबूल के बीज बोकर आम पाने की इच्छा व्यर्थ ही नहीं असम्भव भी है। जब हमारे दुष्कर्मों का परिणाम हमारे सामने आता है तब हम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरों पर दोषारोपण करने लगते हैं । भीम की गदा द्वारा घायल पड़े हुये दुर्योधन कोउसके आक्षेपों का उत्तर देते हुए भगवान कृष्ण ने कहा-

अभिमन्युश्च यद् बाल एको बहुभिराहवे ।
त्वद्दोषैर्निहतः पाप तस्मादसि हतो रणे ।।

तुम्हारी ही प्रेरणा से बहुत से योद्धाओं ने मिलकर युद्ध स्थल में अकेले बालक अभिमन्यु का वध किया था इन्हीं सब कारणों से आज तुम भी रण भूमि में मारे गये हो ।

जब तक हमारे पापों का परिणाम हमेंनहीं प्राप्त होता तब तक हम बहुत खुश रहते हैं । अपने जैसा सफल व्यक्ति किसी को भी नहीं समझते। सिद्धान्त सचमुच रूप से चलाने हेतु स्वयं ही हम सोचते हैं कि कर्मफल का सिद्धान्त झूठा है तथा हम इस व्यवस्था को चकमा देने में सफल हो गए । किन्तु-अन्धेर नहीं देर है। जब हमें अपने दुष्कर्मों का दंड मिलता है तब हम बहुत खीजते हैं । तथा दूसरों पर दोषारोपण कर अपने आप को निर्दोष बताने का प्रयास करते हैं । हमारा यह प्रयत्न कितना हास्यास्पद होता है ? दुर्योधन भी ऐसा ही कर रहा था। किन्तु कृष्ण ने उसकी पोल खोल दी। हमें स्मरण रखना चाहिए कि मात्र बातों के जमा खर्च से हम नहीं बच सकते । दुष्ट कालियानाग ने भी वृन्दावन में इसी तरह आतंक फैला रखा था। जब भगवान ने उसकी दुष्टता को रोका तथा उसे दंड दिया उस समय भगवान कृष्ण की स्तुति करते हुए नाग पत्नियों ने कहा-

न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्विषेऽस्मि
स्तवावतारः खलनिग्रहाय ।
रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टे-
र्धत्से दमं फलमेवानुशंसन् ।।

प्रभो ! आपका अवतार ही दुष्टों को दंड देने के लिये हुआ है । इसलिए इस अपराधी को दंड देना सर्वथा उचित है। आपकी दृष्टि में शत्रु और पुत्र का कोई भेदभाव नहीं है इसलिए आप जो किसी को दंड देते हैं वह उसके पापों का प्रायश्चित कराने और उसका परम कल्याण करने के लिए ही होता है।

भगवान चाहते हैं कि हम 'जियो और जीने दो' के सिद्धांत के अनुसार स्वयं भी सुख पूर्वक जीवन यापन करें तथा दूसरों को भी जीने दें । किंतु जब हम मोहवश इस व्यवस्था को भंग कर अपने और दूसरों के लिए पतन और पीड़ा का सृजन करते हैं तब अपनी सृष्टि व्यवस्था में सन्तुलन स्थापित करने के लिए प्रभु अवतरित होते हैं । भगवान के अवतार कार्यों में दुष्टों को दंड देना भी एक प्रधान कार्य होता है। इसके पीछे भगवान की दुर्भावना नहीं सद्भावना ही कार्य करती है। प्रभु के हृदय में माँ जैसी ममता है वह चाहते हैं कि उनके सभी बच्चे सुख शांति पूर्वक इस सुन्दरतम सृष्टि का आनन्द लें । किन्तु जिस तरह शरीर में पनपने वाले विषैले फोड़े को मां बेरहमी से निकलवा देती है, ताकि उसके बच्चे का भविष्य सुखमय हो सके इसी तरह भगवान भी अपने प्रिय बच्चों की हित कामना से ही दंड देते हैं । इसका उद्देश्य यही होता है कि हम दुष्कर्मों को छोड़कर सत्कर्मों को अपना सकें, दुष्कर्मों का परिणाम इतना भयंकर है कि हमें इसी जीवन में नारकीय यातनाऐं भोगनी पड़ती हैं । स्वर्ग और नरक के लिए अन्य लोकों में जाने की आवश्यकता नहीं। सत्कर्मों के परिणाम स्वर्ग के रूप में तथा दुष्कर्मों के परिणाम नरक के रूप में हमें इसी जीवन में प्राप्त हो जाते हैं भगवान कपिल देव माता देवहुति से कहते हैं -

अत्रैव नरकः स्वर्ग इति मतः प्रचक्षते ।
या यातना वै नारक्यस्ता इहाप्युपलक्षिताः ।।

माताजी ! ऐसा कहा गया है कि स्वर्ग और नरक तो इसी लोक में हैं, क्योंकि जो नारकीय यातनाएँ हैं वे यहाँ भी देखी जाती हैं ।

स्वर्ग और नरक क्या हैं ? हम सोचते हैं स्वर्ग और नरक किन्हीं लोकों का नाम है। किन्तु वास्तव में स्वर्ग और नरक इसी पृथ्वी पर है। गहराई से विचार करें तो यह हमारे चिन्तन में ही निवास करते हैं । उत्कृष्ट चिन्तन में ही स्वर्ग तथा निकृष्ट चिन्तन ही नरक है । जिस समय सद्गुण हमारे चिन्तन में रहते हैं तथा हमारे हृदय में सत्वगुण की प्रधानता रहती है उस समय हम स्वर्ग में ही निवास कर रहे होते हैं, कि **"स्वर्गः सत्वगुणोदयाः"** इसी तरह जब दुर्गुण हमारे विचारों में छा जाते हैं तथा हमारे हृदय में तमोगुण की प्रधानता रहती है तब हम नरक में ही रहते हैं। सूत्र है **"नरकस्तमउन्नाहो"** अब यह हमारी क्रिया पद्धति पर निर्भर है कि हम स्वर्ग में निवास करें या नरक में। इसी तरह हमारे सत्कर्म के सुख के रूप में तथा दुष्कर्म दुख के रूप में हमें मिलते हैं। अतः यदि हम सुख चाहते हैं तो हमें सत्कर्म ही करना चाहिए । हरिवंश पुराण में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कंस वध के उपरान्त अपने नाना उग्रसेन को समझाते हुए भगवान कृष्ण कहते हैं :-

स्वयंमात्मकृतं कर्म शुभं वा यदि वाशुभम् ।
प्राप्ते काले तु तत्कर्म दृश्यते सर्व देहिनाम् ।।

स्वयं अपना किया हुआ जो शुभ या अशुभ कर्म है, वही समय आने पर समस्त देहधारियों के समक्ष सुख-दुख के रूप में दिखायी देता है ।

इसलिए सभी शास्त्र एवं महापुरुष हमें सत्कर्म करने का परामर्श देते हैं । किन्तु इस रहस्य को न समझ पाने के कारण हम दूसरों के आगे नाक रगड़ते रहते हैं। और सोचते हैं दूसरे लोग या अन्य कर्म काण्ड हमें दुःख से बचा लेंगे । किन्तु यह असम्भव है। हम सुख के लिये कितने ही प्रयत्न करें तथा दुख से बचने की कितनी ही चेष्टा करें हमारे कर्मानुसार यथा समय सुख और दुख की प्राप्ति अवश्य होगी । अतः बुद्धिमानी इसी में है कि हम अपने कर्मों के परिणाम स्वरूप प्राप्त सुखों और दुखों को सन्तुलन पूर्वक भोग लें तथा सत्कर्म करते रहें । जब हमारे द्वारा दुष्कर्म न होंगे तब हम निष्पाप हो जायेंगे । तथा फिर दुख या नरक का कोई भय ही न रह जायगा ।

भागवत में अपने साथी असुर बालकों को समझाते हुए प्रहलाद कहते हैं-

सुखमैन्द्रियकं दैत्या देहयोगेन देहिनाम् ।
सर्वत्र लभ्यते दैवाद्यथा दुःखमयन्ततः ।।

भाइयो ! इन्द्रियों से जो सुख भोगा जाता है, वह तो-जीव चाहे जिसे योनि में रहे-प्रारब्ध के अनुसार सर्वत्र वैसे ही मिलता रहता है, जैसे बिना किसी प्रकार का प्रयत्न किये, निवारण करने पर भी दुःख मिलता है।

प्रारब्ध या भाग्य किसी देवी देवता का नहीं हमारे पूर्वकृत संचित कर्मों का ही नाम हैं । हम सदैव इन्द्रिय भोगों के लिए लालायित रहते हैं तथा उन्हें पाने के लिए अपना सारा श्रम, समय एवं मनोयोग लगाते रहते हैं । किन्तु क्या हम मन वांछित भोग पा लेते हैं ? प्रहलाद कहते हैं कि इन्द्रियों के भोग हमारे पूर्वकृत कर्मों के परिणाम स्वरूप हमारे बिना प्रयत्न किए ही हमें मिलते रहते हैं । अतः भोगों की अन्धी दौड़ से हट कर हमें अपने वास्तविक लक्ष्य की ओर गतिशील होना चाहिए। हमारा यह जीवन हमारी अनन्त जीवन श्रृंखला की एक कड़ी है अतः हमें दूर दृष्टि से सोचना चाहिए और क्षणिक तृप्तिदायक इन्द्रिय भोगों की लिप्सा छोड़कर अपने भविष्य को सजाने-सँवारने का प्रयत्न करना चाहिए। हमारे सारे साथी जिन्हें हम अपना मानते हैं तथा जिनके लिए हम न मालुम कितने पाप करते हैं यहीं छूट जाने वाले हैं । हम अनन्त पथ के यात्री हैं तथा यात्रा का सारा मार्ग हमें अकेले ही तय करना पड़ेगा । भगवान कृष्ण युधिष्ठिर से महाभारत में कहते हैं :-

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेकश्चाप्नोति दुष्कृतम् ।।

जीव अकेले जन्म लेता है, अकेले मरता है तथा अकेले ही पुण्य का फल भोगता है, अकेले ही पाप का फल भोगता है।

हम बहुत बड़े भ्रम में हैं कि हमारे कुटुम्बी और साथी सदा हमारे साथ रहेंगे । तथा पाप और पुण्य के फल भोग में भी हमारा साथ देंगे । किन्तु यह सम्भव नहीं है। या तो हम ही इन्हें छोड़कर चल देंगे या ये ही हमें छोड़कर चले जाऐंगे । डाकू रत्नाकर को भी यही भ्रम हो गया था वह अपने कुटुम्बियों को सुख पहुँचाने के लिए डाका डाला करता था तथा सोचता था कि इस पाप में मेरे परिवार वाले भी साझीदार बनेंगे । एक बार नारदजी के कहने पर उसने अपने परिवार वालों से पूछा किन्तु उन्होंने पाप कर्मों और उसके परिणामों में अपनी हिस्सेदारी से इन्कार कर दिया तब कहीं रत्नाकर का मोह भंग हुआ तथा वह दुष्कर्मों से विरत होकर सत्कर्मों के द्वारा डाकू से महर्षि वाल्मीकि बन गया । जितनी जल्दी हमारा भी भ्रम दूर हो सके उतना ही अच्छा है कर्मफल व्यवस्था बड़ी ही जटिल है। हमारे छोटे से छोटे दुष्कर्म का दण्ड भी बहुत भयंकर हो सकता है । भागवत में राजा नृग अपने उद्धार के बाद अपने पूर्व जीवन का वृत्तांत बताते हुए भगवान कृष्ण से कहते हैं -

स्वलकुतेभ्यो गुणशीलवद्भ्यः
सीदत्कुटुम्बेभ्य ऋतव्रतेभ्यः ।
तपःश्रुतब्रह्मवदान्यसद्भ्यः
प्रादां युवभ्यो द्विजपुंगवेभ्यः ।।

भगवन् ! मैं युवावस्था से सम्पन्न श्रेष्ठ ब्राह्मण कुमारों को-जो सद्गुणी,शील सम्पन्न कष्ट में पड़े हुए कुटुम्ब वाले, दम्भ रहित तपस्वी, वेदपाठी, शिष्यों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विद्यादान करने वाले तथा सच्चरित्र होते-वस्त्राभूषण से अलंकृत करता और उन गौओं का दान करता ।

राजा नृग ने बताया कि इस तरह करोड़ों गयों का मैंने सुपात्रों को दान किया । किन्तु एक छोटी सी भूल और असावधानी के कारण राजा को गिरगिट की योनि में जन्म लेना पड़ा । तथा अपने पाप का दण्ड भोग लेने के बाद ही उनका छुटकाराहुआ । यद्यपि अपने पुण्य कर्मों के कारण उन्हें भगवान का दर्शन हुआ तथा मुक्ति भी मिली किन्तु एक छोटे पाप का फल भी उन्हें भोगना ही पड़ा । कितनी सशक्त है यह व्यवस्था, और कितना हास्यास्पद है हमारा प्रयास हम छुट पुट कर्म काण्डों या दान दक्षिणा के भरोसे आशा लगाऐ बैठे रहते हैं कि हम दुष्कर्मों के दण्ड से बच जायें । हमारी यह आशा दुराशा ही सिद्ध होने वाली है। भागवत के अनुसार जब भगवान ने गाय बनकर मयासुर दैत्य के अमृत कुंड को पी लिया तथा रक्षक उन्हें नहीं रोक सके तब मयासुर ने सारी घटना पर अपना मत व्यक्त करते हुये कहा-

देवोऽसुरो नरोऽन्यो वानेश्वरोऽस्तीह कश्चन ।
आत्मनोऽन्यस्य वा दिष्टं दैवेनापोहितुं द्वयोः ।।

भाई ! देवता, असुर, पराये अथवा दोनों के लिये जो प्रारब्ध का विधान है, उसे मिटा नहीं सकता ।

कितना अच्छा होता कि हम इस सूर्य जैसे स्पष्ट सत्य को समझ सकते तथा इसके प्रकाश में अपने वर्तमान एवं भावी कर्मों का निर्धारण करते। यद्यपि हमारा भूतकाल हमारे हाथ से जा चुका है और हम उसमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकते। किन्तु हमारा वर्तमान एवं भविष्य हमारे हाथों में हैं । जब देवता भी पूर्वकृत कर्मों के विधान को नहीं मिटा सकते तो हमें उसकी चिन्ता छोड़कर अपने दुष्कर्मों के दण्ड से शिक्षा ग्रहण कर सदा सत्कर्म ही करना चाहिए । यदि हम इतने के बाद भी न चेते तो हमें मूर्ख के सिवा और क्या कहा जा सकता है ? वास्तव में यह हमारी कुबुद्धि ही है जो हमें नरक की यातनाओं में झोंकती रहती है । जीव की गर्भावस्था का वर्णन करते हुए भगवान कृष्ण गरुड़ से कहते हैं :-

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपिदाता ।
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा ।
पुराकृतं कर्म सदैव भुज्यते
देहिन् काचिन्निस्तर यत्वया कृतम् ।।

(जीव अपने-आपसे कहता है-) ओ जीव ! सुख-दुःख का दाता वस्तुतः कोई नहीं है। दूसरा कोई सुख-दुःख देता है, यह समझना तो मूर्खता मात्र है। बस, अपने पूर्व कर्मों का फल ही सदा भोगना पड़ता है।

जब हम ही अपने भाग्य विधाता हैं तो हमें दूसरों पर दोषारोपण करना छोड़कर अपनी जिम्मेदारी स्वीकार करनी चाहिए । तथा दूसरों का भरोसा छोड़कर अपने पैरों पर खड़े होना चाहिए। यदि हमारी भावनाएं कलुषित हैं तथा हमारे कर्मों के मूल में अपना लाभ तथा दूसरों की हानि करने की वृत्ति छिपी हुई है तो हम दिखावे के लिए कितने ही व्यवस्थित और कठिन कार्य करें मनवांछित परिणाम नहीं पा सकते । मात्र क्रिया ही सब कुछ नहीं है उसके मूल में छिपी हुई भावना और विचारणा का भी महत्व है । समुद्र मन्थन के बाद उसके परिणामों पर टिप्पणी करते हुए शुकदेवजी राजा परीक्षित से कहते हैं-

एवं सुरा सुरगणा समदेशकाल-
हेत्वर्थकर्ममतयोऽपि फले विकल्पाः ।
तत्रामृतं सुरगणाः फलमञ्जसाऽऽपु-
र्यत्पादपङ्कजरजः श्रयणान्न दैत्याः ।।

परीक्षित ! देखो-देवता और दैत्य दोनों ने एक ही समय एक स्थान पर एक प्रयोजन तथा एक वस्तु के लिये एक विचार से एक ही कर्म किया था, परन्तु फल में बड़ा भेद हो गया। उसमें से देवताओं ने बड़ी सुगमता से अपने परिश्रम का फल-अमृत प्राप्त कर लिया क्योंकि उन्होंने भगवान के चरणकमलों की रज का आश्रय लिया था। परन्तु उससे विमुख होने के कारण परिश्रम करने पर भी असुर गण अमृत से वंचित ही रहे।

हम क्या करते हैं इसका महत्व कम है किन्तु उसे हम किस भाव से करते हैं इसका बहुत अधिक महत्व है। यदि हम अपने क्षुद्र अहं और अपने कहलाने वाले कुछ व्यक्तियों को सुख पहुँचाने तथा दूसरों को दुख पहुँचाने की भावना से कर्म करते हैं तो हम कभी सफल नहीं हो सकते। इसी प्रसंग में शुकदेवजी आगे कहते हैं:-

यद् युज्यतेऽसुवसुकर्ममनोवचोभि-
र्देहात्मजादिषु नृभिस्तदसत् पृथकत्वात् ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तैरेव सद् भवति यत् क्रियतेपृथक्त्वात्।
सर्वस्य तत् भवति मूलनिषेचन यत्।।

मनुष्य अपने प्राण, धन, कर्म, मन और वाणी आदि से शरीर एवं पुत्र आदि के लिये जो कुछ करता है-वह व्यर्थ ही होता है, क्योंकि उसके मूल में भेद बुद्धि बनी रहती है। परन्तु उन्हीं प्राण वस्तुओं के द्वारा भगवान् ! के लिये जो कुछ किया जाता है, वह सब भेदभाव से रहित होने के कारण अपने शरीर, पुत्र और समस्त संसार के लिये सफल हो जाता है। जैसे वृक्ष की जड़ में पानी देने से उसका तना, टहनियाँ और पत्ते-सब के सब सिंच जाते हैं, वैसे ही भगवान् के लिये कर्म करने से सबके लिये हो जाते हैं।

अर्थ स्पष्ट है । इस सारी सृष्टि के मूल में भगवान ही हैं। भगवान के लिये कर्म करने का अर्थ है सब के हित की कामना से ईश्वरीय आदर्शों को ध्यान में रखकर कर्म करना। अत: हमें संकीर्णता से ऊँचे उठकर व्यापक लोक हित को ध्यान में रखते हुये निष्काम कर्म ही करने चाहिये। हमें अपने कर्तव्य पालन का ही ध्यान रखना चाहिये। किसी की प्रसन्नता या अप्रसन्नता का नहीं। यदि हम इस सिद्धान्त को समझ जायें तो कितने निर्भय और निश्चिन्त हो सकते हैं ? फिर हमें किसी को खुश करने की चापलूसी की आवश्यकता न रह जायगी। कर्म की महत्ता का प्रतिपादन करते हुये तथा इन्द्र की पूजा का निषेध करते हुये भगवान कृष्ण नन्दबाबा से कहते हैं-

किमिन्द्रेणेह भूतानाँ स्वस्वकर्मानुवर्तिनाम् ।
अनीशेनान्यथा कर्तुं स्वभावविहितं नृणाम् ।।

जब सभी प्राणी अपने-अपने कर्मों का ही फल भोग रहे हैं, तब हमें इन्द्र की क्या आवश्यकता है? पिताजी ! जब वे पूर्वसंस्कार के अनुसार प्राप्त होने वाले मनुष्यों के कर्म-फल को बदल ही नहीं सकते- तब उनसे क्या प्रयोजन ?

देहानुच्चावचाञ्जन्तु: प्राप्योत्सृजति कर्मणा।
शत्रुर्मित्रमुदासीन: कर्मैव गुरुरीश्वर: ।।

जीवन अपने कर्मों के अनुसार उत्तम और अधम शरीरों को ग्रहण करता और छोड़ता रहता है। अपने कर्मों के अनुसार ही 'यह शत्रु है, यह मित्र है, यह उदासीन है'- ऐसा व्यवहार करता है। कहाँ तक कहूँ, कर्म ही गुरु है और कर्म ही ईश्वर ।

कितना स्पष्ट प्रतिपादन है ! क्या इसके बाद भी कुछ कहने की आवश्यकता रह जाती है? जब व्यवस्था ही व्यवस्थापक है तब हमें व्यवस्थापक के पीछे न दौड़कर व्यवस्था का सम्मान और पालन करना चाहिये। फिर हम देखेंगे कि व्यवस्थापक कहीं दूर नहीं है। उसका वरद हस्त हमारे सिर पर रखा हुआ ही है। हम तो कर्मव्यवस्था का उल्लंघन कर उनके वरदानों में बाधा उत्पन्न करते हैं। यदि हम सही मार्ग अपना सकें तो वरदानों से हमारी झोली भरी हुई ही है। हमें तो वरदानों या उपलब्धियों की भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। हम निष्काम कर्म योग के राजमार्ग पर चल पड़ें तो मंजिल स्वत: हमारे पास आ जायेगी। इसमें विकल्प की कोई गुन्जाइश नहीं है क्योंकि इसका विकल्प हो ही नहीं सकता। इसी प्रसंग में भगवान कृष्ण आगे कहते हैं-

अस्ति चेदीश्वर: कश्चित् फलरूपयन्यकर्मणाम्।
कर्तारं भजते सोऽपि नह्यकर्तु: प्रभुर्हि स:।।

यदि कर्मों को ही सब कुछ न मानकर उनसे भिन्न जीवों के कर्म का फल देने वाला ईश्वर माना भी जाय, तो कर्म करने वालों को ही उनके कर्म के अनुसार फल दे सकता है। कर्म न करने वालों पर उसकी प्रभुता नहीं चल सकती।

हम बिना कर्म किये एक क्षण भी नहीं रह सकते। गीता के अनुसार **"नहिं कश्चित् क्षणमपिजातुतिष्ठत्य- कर्मकृत"** यदि हम सत् कर्म न करेंगे तो दुष्कर्म ही करेंगे। अत: सावधानी पूर्वक क्षण-क्षण आत्म निरीक्षण करते हुये ऐसे कर्म करें जो बन्धन कारक न हों। हमें आत्म विकास करते हुये निष्काम कर्म योग का सतत अभ्यास करना चाहिये ताकि जीवात्मा इस बहुमूल्य अवसर का लाभ उठा कर अपना उद्देश्य पूरा कर सकें। आइए साहस पूर्वक इस सत्य को हृदयंगम करें और जीवन को सार्थक बनायें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्पुरुष-स्वरूप और महत्ता

मगध नरेश ने कौशल नरेश पर चढ़ाई कर दी। मगध सेना का दबाव देखकर कौशल नरेश ने नागरिकों को नगर खाली करने का आदेश दिया। मगध की सेना नगर पर कब्जा करे, इसके पहले नागरिकों सहित सारा सामान सुरक्षित निकल गया किन्तु कौशल नरेश थोड़े से व्यक्तियों और अंगरक्षकों सहित मगध सेना के घेरे में आ गये। कौशल नरेश ने मगध के सेनानायक को सन्देश दिया कि यदि हमारे साथ के १० व्यक्तियों को सकुशल निकल जाने दें तो वे अपने अंग रक्षकों सहित बिना प्रतिरोध के समर्पण कर देंगे। सेना नायक ने शर्त स्वीकार कर ली और बिना खून खराबी के कौशल नरेश को बन्दी बनाकर मगध नरेश के सामने प्रस्तुत कर दिया।

मगध नरेश ने सारा विवरण सुना तो कौशल नरेश से पूछा कि जिन व्यक्तियों की सुरक्षा के लिये आपने स्वयं को कैद कर दिया वे कौन थे ? कौशल नरेश ने उत्तर दिया कि वे हमारे राज्य के लोक सेवी सन्त थे। वे सुरक्षित हैं तो राज्य में आदर्शनिष्ठ, कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों का निर्माण बराबर होता रहेगा तथा उपयुक्त शासक भी पुन: पैदा कर लिये जावेंगे। राष्ट्र की सच्ची सम्पत्ति उसके श्रेष्ठ व्यक्तित्व सम्पन्न नागरिक होते हैं और उन्हें बनाने वाले होते हैं समाज को ईश्वर का विराट् रूप मानकर उसकी सेवा करने वाले निस्प्रह आदर्शनिष्ठ सन्त। उनकी रक्षा के लिये कोई भी मूल्य चुकाया जाना उचित है।

मगध राजा ने यह सुन कर कौशल नरेश को बन्धन मुक्त करके सम्मान सहित उनका राज्य उन्हें लौटा दिया। वे बोले जिस राज्य में, जहाँ जन कल्याण में लगे हुये सत्पुरुषों को इतना महत्व दिया जाता है, वहाँ शासन में कोई परिवर्तन लाना आवश्यक नहीं है। उनसे तो हमें भी प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिये।

वास्तव में श्रेष्ठ व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति किसी भी समाज या राज्य की सबसे बड़ी सम्पत्ति होते हैं। राष्ट्र की साधन-सम्पन्नता और गौरव वही बढ़ा सकते हैं। प्रतिभा और योग्यता में अद्वितीय होते हुये भी अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताऐं कम से कम रखकर, शेष सारी शक्ति जनहित में लगा देने वाले व्यक्ति जहाँ होंगे वहाँ सुख, शान्ति और समृद्धि भी रहेगी। ऐसे ही व्यक्तियों को ब्राह्मण, संत और देवता कहा जाता रहा है। उन्हीं के कारण भारत विश्व गुरु, देव भूमि आदि का सम्मान पाता रहा है। इसीलिए उन्हें सबसे अधिक उपयोगी और सम्माननीय माना जाता था। श्री मद्भागवत में भगवान शिव ऋषि मार्कण्डेय से कहते हैं-

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवाश्चेतनोज्झिता:।
ते पुनन्त्युरुकालेन यूयं दर्शनमात्रत: ।।

मार्कण्डेयजी ! केवल जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं होते तथा केवल जड़ मूर्तियाँ ही देवता नहीं होतीं। सबसे बड़े तीर्थ और देवता तो तुम्हारे-जैसे संत हैं; क्योंकि वे तीर्थ और देवता बहुत दिनों में पवित्र करते हैं, परन्तु तुम लोग दर्शन मात्र से ही पवित्र कर देते हो।

तीर्थ का अर्थ होता है श्रेष्ठ संस्कार उदय करने वाले स्थल या साधु। सच्चे सन्तों का मुख्य कार्य जन-जन में श्रेष्ठ संस्कारों का उदय करना ही है। वे अपने व्यक्तित्व और अनुभव के आधार पर थोड़े समय में भी बहुत लाभ देने में समर्थ होते हैं। ऐसे लोगों की संगति को ही सत्संग कहा जाता है।

शिक्षा, विज्ञान, व्यायाम, व्यापार इत्यादि कोई भी क्षेत्र हो, उस विषय के मर्मज्ञ के सहयोग से सामान्य की अपेक्षा बहुत तेज गति से प्रगति की जा सकती है। व्यक्तित्वों में श्रेष्ठता उत्पन्न करने की दिशा में भी यही तथ्य लागू होता है। सत्पुरुषों की संगति से हर युग में हर स्तर का व्यक्ति उच्चतम लक्ष्य की प्रगति कर सकता है। यह तथ्य प्रगट करते हुये भगवान श्री कृष्ण सखा उद्धव से कहते हैं:-

सत्संगेन हि दैतेया यातुधाना मृगा: खगा:।
गन्धर्वाप्सरसो नागा: सिद्धाश्चारणगुह्यका:।।
विद्याधरा मनुष्येषु वैश्या: शूद्रा स्त्रियोऽन्त्यजा:।
रजस्तम: प्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन् युगेऽनघ।।

उद्धव जी ! यह एक युग की नहीं,सभी युगों की एक सी बात है। सत्संग के द्वारा ही दैत्य, राक्षस,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पशु-पक्षी, गन्धर्व-अप्सरा, नाग-सिद्ध, चारण-गुह्यक और विद्याधरों को मेरी प्राप्ति हुई है। मनुष्यों में वैश्य, शूद्र,स्त्री और अन्त्यज आदि रजोगुणी-तमोगुणी प्रकृति के बहुत से जीवों ने पापों को नष्ट करके श्रेष्ठ पद पाया है।

नारद के सत्संग से वाल्मीकि, ध्रुव, प्रहलाद आदि को दिशा मिली और वे महान बने। चन्दन के वृक्ष के प्रभाव से आस-पास के वृक्ष भी सुगन्धित हो जाते हैं।

इस तरह जहाँ सत्संग के लिये निरन्तर जागरूक प्रयास जरूरी है, वहीं कुसंगति के प्रति भी सतर्क रहना उतना ही आवश्यक है। हम तो अच्छे हैं, ओछे लोगों के साथ का हम पर क्या असर पड़ेगा यह सोचकर यदि हम लापरवाह हो गये, तो अपनी श्रेष्ठता गँवा भी सकते हैं। इसीलिये श्रीकृष्ण उद्धव को कुसंगति के प्रति सचेत करते हुये कहते हैं:-

सगं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित् ।
तस्यानुगस्तमस्यन्धे पतत्यन्धानुगान्धवत् ।।

साधारण लोगों को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि लोग विषयों के सेवन और उदरपोषण में ही लगे हुये हैं, उन असुर पुरुषों का संग कभी न करें; क्योंकि उनका अनुगमन करने वाले पुरुष की वैसी ही दुर्दशा होती है, जैसे अन्धे के सहारे चलने वाले अन्धे की। उसे तो घोर अन्धकार में ही भटकना पड़ता है।

मनुष्य का स्वभाव है कि उसके आसपास के व्यक्तियों का व्यक्तित्व उसे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करता रहता है। इसीलिये समझदार व्यक्ति श्रेष्ठ पुरुषों के साथ ही रहने की इच्छा रखते हैं। भगवान श्रीकृष्ण तक इस विषय में सतर्कता बरतते हुये नारद आदि ऋषियों से कहते हैं, ऋषिवर श्रेष्ठजनों के संग से अनायास व्यक्ति में गुणों का विकास होता है।

तदहं सज्जनमुखान्निःसृतं तत्समागमे।
कथयिष्याम्यहमहो बुद्धिदीपकरं नृणाम् ।।

अतः मैं आप साधु-सन्तों के मुख से निकले हुये वचन को मनुष्यों की बुद्धि का उद्दीपक (प्रकाशक) मानकर उसे सत्पुरुषों के समाज में कहूँगा।

लेकिन यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि केवल वेष या नाम से सन्त या संन्यासी कहे जाने वाले व्यक्ति यह लाभ नहीं दे सकते । केवल पेट भरने या यश पाने के लिये, जो व्यक्ति सन्तों का वेष बना लेते हैं, शास्त्रों में उनकी घोर निन्दा की गई है और उनसे दूर रहने का ही निर्देश दिया गया है। ऐसे व्यक्ति स्वयं भी पतित होते हैं और उनकी संगति करने वालों का भी वही हाल होता है। भगवान् श्रीकृष्ण सखा उद्धव से इस विषय में कहते हैं, हे सखा -

यस्त्वसंयतषड्वर्गः प्रचण्डेन्द्रियसारथिः।
ज्ञानवैराग्यरहितस्त्रिदण्डमुपजीवति।।
सुरानात्मानमात्मस्थं निहनुते मां च धर्महा।
अविषक्तकषायोऽस्मादमुष्माच्च विहीयते।।

जिसने पाँच इन्द्रियों और मन इन छहों पर विजय नहीं प्राप्त की है, जिसके इन्द्रिय रूपी घोड़े और बुद्धि रूपी सारथी बिगड़े हुये हैं और जिसके हृदय में न ज्ञान है और न वैराग्य, वह यदि त्रिदण्डी संन्यासी का वेष धारण कर पेट पालता है तो वह संन्यास धर्म का सत्यानाश ही कर रहा है और अपने पूज्य देवताओं को, अपने-आपको और अपने हृदय में स्थित मुझको ठगने की चेष्टा करता है। अभी उस वेष मात्र के संन्यासी की वासनाऐं क्षीण नहीं हुई हैं इसलिये वह इस लोक और परलोक दोनों से हाथ धो बैठता है।

गोस्वामी तुलसीदास जी भी इस सम्बन्ध में कहते हैं-

वचन वेष ते जो बनै सो बिगरै परिनाम।
तुलसी मन ते जो बनै, बनी बनायी राम।।

वास्तव में साधु सन्त वेष नहीं वृत्ति का नाम है। यदि वृत्ति वह है तो वेष कुछ भी हो।श्रेष्ठ व्यक्तित्व सम्पन्न सेवा परायण व्यक्तियों में जो घर छोड़ घूमते रहते थे उन्हें साधु और समाज में ही रहने वालों को ब्राह्मण कहा जाता था। भेद केवल ढंग का था। काम दोनों का एक ही जैसा था। ब्राह्मण की वृत्ति और कार्यों का वर्णन करते हुये भगवान शिव मार्कण्डेय जी से कहते हैं -

ब्राह्मणाः साधवः शान्ता निस्संग भूतवत्सलाः।
एकान्तभक्ता अस्मासु निर्वैराः समदर्शिनः ।।

ब्राह्मण स्वभाव से ही परोपकारी, शान्तचित्त एवं अनासक्त होते हैं। वे किसी के साथ वैर भाव नहीं रखते और समदर्शी होने पर भी प्राणियों का कष्ट देखकर उसके निवारण के लिये पूरे हृदय से जुट जाते हैं। उनकी सबसे बड़ी विशेषता तो यह होती है कि हमारे अनन्य प्रेमी एवं भक्त होते हैं।

सन्तों की तरह ब्राह्मणों का भी मुख्य कार्य समाज को कल्याण मार्ग पर बढ़ाना होता है। जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समाज को कल्याण मार्ग पर बढ़ाना होता है। जो वास्तव में गुणों से आचार-विचार से श्रेष्ठ हैं। वे ही व्यक्ति दूसरों को भी लाभ दे सकते हैं। श्री कृष्ण जी युधिष्ठिर से चर्चा करते हुये यही भाव व्यक्त करते हैं -

येषां सदा वै श्रुतिपुर्णकर्णा।
जितेन्द्रिया: प्राणिवधे निवृत्ता:।
प्रतिग्रहे संकुचिता गृहस्था-
स्ते ब्राह्मणास्तारयितु समर्था:।।

जिनके कान वेदों के श्रवण से पवित्र हो चुके हैं, जिन्होंने इन्द्रियों पर विजय पा ली है, जो प्राणि हिंसा से सर्वथा दूर रहते हैं, तथा जो दान लेने में संकोच करते है और गृहस्थाश्रम में निवास कर रहे हैं, वे ब्राह्मण दूसरों को तारने में समर्थ हैं।

ऐसे सच्चे ब्राह्मण को जो कुछ भी मिल जाये उसे लोक मंगल में लगा देने वाले होते हैं। उनकी संगति करना तथा उन्हें सहयोग देना पुण्य कहा गया है। लेकिन जो केवल मौर्य वंश या वेष के आधार पर अपने को ब्राह्मण कहते हैं, जिनके आचरण वैसे नहीं हैं, उनके सम्बन्ध में भगवान कृष्ण कहते हैं :-

विप्रनामघरा एते लोलुपा ब्राह्मणाधमा:।
नात्मानं तारयन्त्येते न दातारं युधिष्ठिर।।

युधिष्ठिर ! ये सब विषयलोलुप, विप्रनामधारी ब्राह्मणधर्मा हैं। ये न तो अपना उद्धार कर सकते हैं और न दाता का ही।

स्पष्ट है कि ऐसे व्यक्तियों के सम्पर्क और सहयोग का अन्य लोगों को भी पुण्य और लाभ के स्थान पर पाप और हानि का भागीदार होना पड़ता है। ब्राह्मण के लिये तप और विद्याध्यन द्वारा शक्ति और योग्यता बढ़ाना उचित है किन्तु ध्यान रहे कि मन अन्त:करण की निर्मलता सबसे अधिक महत्व रखती है। तपस्या और विद्या भी अन्त: करण की पवित्रता के बिना अनर्थ हो जाती है। तपस्या की शक्ति और विद्या की शक्ति तो उन्हें मिलेगी पर अन्त:करण यदि सात्विक न हुआ तो उस शक्ति का दुरुपयोग सम्भव है।

दुर्वासा ऋषि तपस्वी भी थे, विद्यावान भी। किन्तु उनके मन में क्रोध प्रचंड था। उस की प्रचंडता का आवेश उन्हें शक्ति के दुरुपयोग की भी प्रेरणा दे देता था। भक्त अम्बरीष पर भी उन्होंने अकारण ही क्रोध किया और अपनी तप की शक्ति से उन्हें हानि पहुँचाने के लिये तैयार हो गये। भक्त अम्बरीष तो उनके क्रोध से विचलित नहीं हुये किन्तु भगवान विष्णु को यह अन्याय कैसे सहन होता। उन्होंने अपना सुदर्शन चक्र दुर्वासा पर छोड़ दिया और उन्हें कहीं भी शरण न मिली। अन्त में उन्हें अम्बरीष से ही क्षमा माँगनी पड़ी। भगवान विष्णु ने ऋषि दुर्वासा को उद्दंडता तथा अन्याय से दूर रहने का उपदेश देते हुये कहा :-

तपो विद्या च विप्राणां नि:श्रेयस्करे उभे।
ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा।।

इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मणों के तपस्या और विद्या पर कल्याण के साधन हैं। परन्तु यदि ब्राह्मण उद्दण्ड और अन्यायी हो जायें, तो वे ही दोनों उलटा फल देने लगते हैं।

वस्तुत: सच्चे ब्राह्मण कभी अन्याय कर नहीं सकते, बल्कि वे अन्याय सह भी नहीं सकते। राजा वेन की मृत्यु के बाद जब राज्य में अराजकता फैल गई, चारों ओर अन्याय का ही राज्य छा गया। सदैव सबसे ज्यादा अन्याय दुर्बल दीन-हीनों पीड़ितों के साथ ही किया जाता है और अन्यायी शासन से दीन ही पिसते हैं, उस समय भी यही स्थिति हो गई। ब्राह्मण स्वयं तो स्वभाव से ही शान्त और समदर्शी थे, लेकिन उन्होंने देखा कि अन्याय को फैलने दिया गया, तो वह बढ़ता ही जायेगा। अन्याय सहना अथवा अन्याय का प्रतिरोध न करना भी पाप है। उस समय के उन ब्राह्मणों ने एकत्रित होकर अपने कर्तव्य का स्मरण करते हुये कहा -

ब्राह्मण: समदृक शान्तो दीनानां समुपेक्षक:।
स्रवते ब्रह्म तस्यापि भिन्नभाण्डात्पयो यथा।।

कि ब्राह्मण यदि समदर्शी और शान्त स्वभाव भी हो तो भी दोनों की उपेक्षा करने से उसका तप उसी प्रकार नष्ट हो जाता है, जैसे फूटे हुये घड़े में से जल बह जाता है।

तप एक ईश्वरीय शक्ति है। वह सुपात्रों को मिलती है। पीड़ितों-दुखियों को अन्याय से मुक्त कराने में भी यदि उसका उपयोग न किया जाये तो उसे पाने वाले की पात्रता घट जाती है और वह शक्ति नष्ट हो जाती है। श्रेष्ठ पुरुषों का कर्तव्य है कि वे अपनी दिव्य क्षमताओं को समाज का सन्तुलन बनाने में लगायें। ब्राह्मण भी अपनी आवश्यकताओं को कम से कम साधनों से पूरा करके सारा समय जन मानस के परिष्कार में उन्हें आदर्शगामी बनाने में लगाते थे। इसीलिये अपने ज्ञान और योग्यता को किसी सौदेबाजी में लगाना बहुत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बुरा मानते थे। एक ऐसे ही ब्राह्मण थे विश्वरूप। देवताओं ने उनसे पुरोहित का कार्य स्वीकार करने का प्रस्ताव रखा, बदले में जीवन की तमाम सुख सुविधायें देने की शर्त रखी। किन्तु उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया तथा कहा--

अकिञ्चानानां हि धनं शिलोञ्छनं
तेनेह निर्वतितसाधुसत्क्रियः।
कथं विगर्ह्यं नु करोम्यधीश्वराः
पौरोधप्त हृष्यति येन दुर्मतिः।।

देवगण ! हम अकिंचन हैं। खेती कट जाने पर अथवा अनाज की हाट उठ जाने पर उसमें से गिरे हुये कुछ दाने चुन लाते हैं और उसी से अपने देवकार्य तथा पितृकार्य सम्पन्न कर लेते हैं। लोकपालो ! इस प्रकार जब मेरी जीविका चल ही रही है, तब मैं पुरोहिती की निन्दनीय वृत्ति क्यों करूँ ? उससे तो केवल वे ही लोग प्रसन्न होते हैं, जिनकी बुद्धि बिगड़ गई है।

यह कथन श्रेष्ठ समाज सेविओं के आदर्श को स्पष्ट करता है। सत्पुरुष अपनी शरीर की आवश्यकताऐं केवल श्रम से पूरी करें। योग्यता-ज्ञान आदि के बदले में समाज से कुछ न लें यह आदर्श है, पुरोहितों के किये कार्य में ज्ञान की कीमत स्वीकार की जाती है। ऐसा वे लोग करते हैं जो अपनी आवश्यकतायें सीमित नहीं रख पाते और सांसारिक बड़प्पन उन्हें आवश्यक लगने लगता है। इसीलिये विश्वरूप ने यह कहा कि 'बुद्धि बिगड़ने पर ही पुरोहिती को व्यवसाय बनाया जाता है।'

जहाँ ज्ञान का मूल्य लेना भी बुरा माना जाता है-वहाँ अपने निर्वाह के लिये भीख माँगना तो और भी बुरा कहा गया है। शास्त्रों में इसे खानवृत्ति कहा है। ब्राह्मण कहे जाने वाले श्रेष्ठ व्यक्ति को यह तो कभी करना ही नहीं चाहिये। आपत्तिकाल में वह क्या करें इसकी मर्यादा बतलाते हुये भगवान श्री कृष्ण उद्धव से कहते हैं-

सीदन् विप्रो वणिग्वृत्त्या पण्यैरेवापदं तरेत्।
खड्गेन वाऽऽपदाक्रान्तो न श्ववृत्त्या कथंचन।।

यदि ब्राह्मण अध्यापन अथवा यज्ञ-योगादि से अपनी जीविका न चला सके, तो वैश्यवृत्ति का आश्रय ले ले, और जब तक विपत्ति दूर न हो जाये तब तक करे। यदि बहुत बड़ी आपत्ति का सामना करना हो तो तलवार उठाकर क्षत्रियों की वृत्ति से भी अपना काम ले, परन्तु किसी भी अवस्था में नीचों की -जिसे 'श्वानवृत्ति' कहते हैं-न करे।

व्यक्तियों को विचार और आचरण की दृष्टि से आदर्श बनाने का ब्राह्मणों का कार्य वर्ण व्यवस्था में सबसे श्रेष्ठ माना जाता रहा है। उसे अपनी अन्तःप्रेरणा के आधार पर ही कोई अपना सकता है। उसका निर्वाह न हो पाने पर अपनी स्थिति के अनुसार कुछ समय अथवा सदा के लिये दूसरा कार्य अपनाया जा सकता है। पहले समय में ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र यह चारों वर्ण मनुष्य अपनी रुचि और स्थिति के अनुसार अपना लेते थे। वंश परम्परा से भी इन्हें चलाया जाता था क्योंकि जिस घर में जो कार्य होता है उसे उस घर के बच्चे प्रारम्भ से ही सीख समझ लेते हैं। किन्तु अपनी योग्यता तथा रुचि के अनुसार उन्हें बदल लेने की छूट थी। जो लोग जिस कसौटी पर अपने आपको खरा सिद्ध कर देते थे उन्हें उस वर्ण में स्वीकार कर लिया जाता था। इसके अनेक उदाहरण सुनाते हुये श्री शुकदेवजी राजा परीक्षित को तथ्य बतलाते हैं। वे कहते हैं-

धृष्टाद् धार्ष्टमभूत् क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतं क्षितौ।
नृगस्य वंशः सुमतिर्भूतज्योतिस्ततो वसुः।।

धृष्ट के धार्ष्ट नामक क्षत्रिय हुये। अन्त में वे इस शरीर से ही ब्राह्मण बन गये। नृग का पुत्र हुआ सुमति, उसका पुत्र भूतज्योति और भूतज्योति का पुत्र वसु था।

वसु भी ब्राह्मण बने देवता कहलाये। जैन मत के प्रवर्तक प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव के सौ पुत्र थे। उनमें से एक बाहुबली ने जैन परिवृजा लेली थी। शेष के सम्बन्ध में शुकदेवजी कहते हैं -

तेषां नव नवद्वीपपतयोऽस्य समन्ततः।
कर्मतन्त्रप्रणेतार एकाशीतिर्द्विजातयः।।

भगवान ऋषभदेवजी के शेष निन्यानवे पुत्रों में नौ पुत्र तो इस भारतवर्ष के सब ओर स्थित नौ द्वीपों के अधिपति हुये, और इक्यासी पुत्र कर्म काण्ड के रचिया ब्राह्मण हो गये।

ऐसे ही अन्य उदाहरण देते हुये श्री शुकदेवजी कहते हैं-

गर्गाच्छिनिंस्ततो गार्ग्यः क्षत्राद् ब्रह्म ह्यवर्तत।
दुरितक्षयो महावीर्यात् तस्य त्रय्यारुणिः कविः।।
पुष्करारुणिरित्यत्र ये ब्राह्मणगति गताः।
वृहत्क्षत्रस्य पुत्रोऽभूद्धस्ती यद्धस्तिनापुरम् ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मन्यु पुत्र गर्ग से शिनि शनि और शनि से गार्ग्य का जन्म हुआ, यद्यपि गार्ग्य क्षत्रिय था, फिर भी उससे ब्राह्मण वंश चला। महावीर्य का पुत्र था दुरितय। दुरित क्षय के तीन हुये-त्रय्यारुणि, कवि और पुष्करारुणि। ये तीनों ब्राह्मण हो गये। वृहत्क्षत्र का पुत्र हुआ हस्ती, उसी ने हस्तिनापुर बसाया था।

गाधेरभून्माहातेजाः समिद्ध इव पावकः।
तपसा क्षात्रमुत्सृज्य यो लेभे ब्रह्मवर्चसम्।।

महाराजा गाधि के पुत्र हुये प्रज्वलित अग्नि के समान परम तेजस्वी विश्वमित्र जी। इन्होंने अपने तपोबल से क्षत्रियत्व का त्याग करके ब्रह्मतेज प्राप्त कर लिया।

किन्तु यह परिवर्तन मनमाने ढंग से नहीं हो जाते थे। इसके लिये कसौटियाँ रखी जाती थीं। विश्वामित्र जी ब्रह्मर्षि पद के अनुरूप हुये या नहीं यह निर्णय महर्षि वसिष्ठ को सौपा गया था। विश्वामित्र ने प्रचण्ड तप किया, किन्तु उनके मन में अहंकार बना रहा फलस्वरूप वशिष्ठ जी ने उन्हें मान्यता नहीं दी। उत्तेजित होकर वे एक रात छिपकर वशिष्ठ जी का वध करने पहुँचे। इससे बेखबर वशिष्ठ जी अपनी धर्म पत्नी अरुंधती से विश्वामित्र के तप की प्रशंसा करते हुये उसकी उपमा पूर्णिमा की निर्मल चाँदनी से दे रहे थे। अरुंधती ने पूछा ऐसे श्रेष्ठ तपस्वी को आप ब्रह्मर्षि की मान्यता क्यों नहीं देते। वशिष्ठ जी ने कारण बताया तथा विश्वामित्र के प्रति अपनी सद्भावना व्यक्त की। यह सुनकर विश्वामित्र जी का अहंकार जल गया। वे वशिष्ठ जी के चरणों पर जा गिरे। उनका हृदय निर्मल देखकर वशिष्ठ जी ने उन्हें ब्रह्मर्षि कहकर गले लगा लिया।

स्पष्ट है कि श्रेष्ठ पुरुषों को योग्य तपस्वी, सामर्थ्यवान होने के साथ अहंकारहीन होना भी आवश्यक है। श्रीकृष्ण के उदाहरण से श्रेष्ठ पुरुषों के लक्षण समझाते हुये शुकदेवजी परीक्षित से कहते हैं-

कुशलाचरितेनैषामिह स्वार्थो न विद्यते।
विपर्ययेण वानर्थो निरहंकारिणां प्रभो।।

परीक्षित ! वे सामर्थ्यवान् पुरुष अहंकारहीन होते हैं शुभ कर्म करने में उनका कोई सांसारिक स्वार्थ नहीं होता और अशुभ कर्म करने में अनर्थ (नुकसान) नहीं होता। वे स्वार्थ और अनर्थ से ऊपर उठे होते हैं।

ऐसे सात्विक तेजस्वी पुरुष जो कुछ भी करते हैं लोकहित को लक्ष्य करके ही करते हैं। कृष्ण ने कौरवों से युद्ध कराया, जरासंध को छल से मरवाया फिर भी उससे समाज को लाभ ही हुआ। विकार तब पैदा होता है जब ओछे स्वार्थों को प्राथमिकता दी जाय किन्तु लोकमंगल के लिये अपना सब कुछ निछावर कर देने वाले ऐसे संत पुरुष अकेले अपनी मुक्ति भी नहीं चाहते। पीढ़ा और पतन की पुकार उनकी विराट् करुणा को निरन्तर सक्रिय रखती रहती है। इसी करुणा के कारण भक्तराज प्रहलाद ने भगवान नृसिंह से कहा था -

प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा।
मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः।
नैतान्विहाय कृपणान्विमुमुक्ष एको।
नान्यंत्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये।।

बड़े-बड़े ऋषि-मुनि तो प्रायः अपनी मुक्ति के लिये निर्जन वन में जाकर मौन व्रत धारण कर लेते हैं। वे दूसरों की भलाई के लिये कोई विशेष प्रयत्न नहीं करते। परन्तु मेरी दशा तो दूसरी ही रही है। मैं इन भूले हुये असहाय गरीबों को छोड़कर अकेला मुक्त होना नहीं चाहता और इन भटकते हुये प्राणियों के लिये आपके सिवा और कोई सहारा भी नहीं दिखायी पड़ता।

बहुत बार लोग कहते हैं कि सम्पन्न व्यक्ति को ही आदर्श सूझते हैं। भूखे को केवल अपना पेट दिखाई देता है। किन्तु यह कहना सही नहीं है। वास्तव में सम्पन्नता तो लोगों को भी मदांध बना देती है। जिसमें श्रेष्ठता के संस्कार होते हैं वे किसी भी हालत में अपना स्तर नहीं छोड़ते। राजा रन्ति देव बड़े परोपकारी थे। संयोगवश उन्हें दरिद्रता में जीवन बिताना पड़ा, कई दिनों भूखे रहने पर एक दिन उन्हें एक थाली भोजन मिला। उसे भी उन्होंने अपने से अधिक भूखे व्यक्ति को सहर्ष दे दिया। एक गिलास पानी भी प्यासे को पिला दिया। मन में जरा भी दुखी न हुये। इस पर देवशक्तियाँ प्रसन्न हुईं और उन्हें वरदान मांगने को कहा। उस स्थिति में भी उन्हें अपना आदर्श याद रहा और वे बोले-

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परा-
मष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजा-
मन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मैं भगवान से आठों सिद्धियों से युक्त परम गति नहीं चाहता। और तो क्या, मैं मोक्ष की भी कामना नहीं करता। मैं चाहता हूँ तो यही कि मैं सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में स्थित हो जाऊँ और उनका सारा दु:ख मैं ही सहन करूँ, जिससे और किसी भी प्राणी को दु:ख न हो।

इस प्रकार सच्चा आदर्श निष्ठ व्यक्ति अभाव या सम्पन्नता-किसी भी स्थिति में अपना गौरव बनाये रखता है। श्रेष्ठता तथा आदर्शवादिता किसी बाहरी परिस्थिति पर नहीं व्यक्ति के आंतरिक स्तर पर निर्भर करती है। युगों-युगों से भारत ऐसे ही नर रत्नों की खदान कहलाता रहा। उनके ही कारण इसे देव भूमि 'स्वर्गादपि गरीयसी' तथा यहाँ के निवासियों को 'भूसुर' कहा जाता था। जब से व्यक्तित्वों की श्रेष्ठता की उपेक्षा होने लगी तभी से देश का पतन हो गया। जन स्तर पर फिर ऐसा ही आदर्श प्रेम ऐसी निष्ठा पैदा की जाय तो सुख वैभव में वृद्धि के साथ साथ पुन: विश्वगुरु की प्रतिष्ठा अपना देश प्राप्त कर सकता है।

परमार्थ वृत्ति की अनिवार्यता

हमें मनुष्य का शरीर क्यों मिला है ? तथा अन्य जीवधारियों की अपेक्षा हमें अधिक साधन सुविधायें क्यों दी गई हैं ? यदि इन प्रश्नों पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय तो पता चलता है कि हमारा जीवन किसी खास प्रयोजन के लिये है। क्यों बिना कारण के कोई भी कार्य नहीं होता। जब छोटे-छोटे कार्यों के पीछे कोई न कोई कारण होता है तो इतना महान जीवन निष्प्रयोजन नहीं हो सकता। तो फिर वह कौन सा कारण है जिससे हमें नर तन जैसी दुर्लभ उपलब्धि मिली है। मानव देह की विशेषताओं पर विचार करने से पता चलता है कि इतने अधिक साधन सृष्टि के किसी भी जीव धारी को उपलब्ध नहीं हैं। यदि मानव को सृष्टि का मुकुट मणि ही कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। जब यह जीवन इतना महान है तो इसका उद्देश्य भी महान होना चाहिये। आखिर मनुष्य जीवनका चरम लक्ष्य क्या हो सकता है ? आइए ! मानव जीवन की चरम सीमाओं को छूने वाले तथा इसमें छिपी हुई सभी विशेषताओं को अपने जीवन में चरितार्थ करने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीमुख से ही इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करें। भगवान् कृष्ण अपने प्रिय सखा उद्धव से कहते हैं-

एतद् विद्वान पुरा मृत्योरभवाय घटेत स:।
अथमत्त इदं ज्ञात्वा मर्त्यमप्यर्थसिद्धदम्।।

यद्यपि यह मनुष्य शरीर है तो मृत्यु ग्रस्त हो परन्तु इसके द्वारा परमार्थ की सत्य वस्तु की प्राप्ति हो सकती है। बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि यह बात जानकर मृत्यु होने के पूर्व ही सावधान होकर इसे सार्थक बनाने वाली साधना कर ले।

भगवान ने बताया कि परमार्थ ही इस जीवन का चरम लक्ष्य है। यदि हम इस सत्य को हृदयंगम कर सकें तो अपने लक्ष्य की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं। जैसा कि स्पष्ट है कि मात्र मनुष्य शरीर पा लेने से ही हम धन्य नहीं हो सकते। यह तो एक साधन या अवसर है। मात्र अवसर ही सब कुछ नहीं होता। उसका सदुपयोग भी हो सकता है तथा दुरुपयोग भी। छुरा से हम दाढ़ी भी बना सकते हैं और गर्दन भी काट सकते हैं।हमें विचार करना चाहिये कि बुद्धिमानी किसमें है। क्योंकि भगवान् कहते हैं कि सीमित समय के लिये ही हमें यह शरीर मिला है तो मौत हमारे पीछे लगी हुई है। **"अहन्यहनि: भूतानि गच्छन्ति यम मन्दिरम्"** पता नहीं कब मौत की तलवार हमारी गर्दन उड़ा दे। हमें भगवान की चेतावनी पर ध्यान देना चाहिये तथा अपने जीवनोद्देश्य को पाने के लिये शीघ्रता करना चाहिये। किन्तु क्या यह बात हमारी समझ में आती है ? हरगिज नहीं ! यही तो आश्चर्य है ! महर्षि दधीचि देवताओं से कहते हैं-

अहो दैन्यमहो कष्टं पारक्यै: क्षणभंगुरै:।
यन्नोपकुर्यादस्वार्थैर्मर्त्य: स्वज्ञातिविग्रहै:।।

जगत् के धन जन और शरीर आदि पदार्थ क्षणभंगुर हैं। ये अपने किसी काम नहीं आते, अन्त में दूसरों के ही काम आयेंगे। ओह ? यह कैसी कृपणता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है ? कितने दुःख की बात है कि यह मरणधर्मा मनुष्य इनके द्वारा दूसरों का उपकार नहीं कर लेता।

महर्षि दधीचि को हमारी कृपणता देखकर आश्चर्य होता है। जो वस्तु हमारे हाथ से छिन जाने वाली है हम उसी की सुरक्षा में सारा समय बिता देते हैं। यही है हमारी विडम्बना । बुद्धिमानी तो इसी में है कि इस जीवन के छीने जानेसे पूर्व ही हम इसका सीमान्त उपयोग करलें। महर्षि दधीचि भी हमारे आपके जैसे मनुष्य ही थे। किन्तु जब वृत्तासुर के अत्याचारों से सारा विश्व त्रस्त हो रहा था तब देवता उनके पास गये और अपनी करुण कथा सुनाकर उनसे वृत्तासुर के नाश हेतु उनकी अस्थियों की याचना की । दधीचि बुद्धिमान थे अतः उन्होंने देवताओं की प्रार्थना स्वीकार कर ली। यदि दधीचि ने यह साहस भरा कार्य न किया होता तो भी क्या मृत्यु से बच गये होते ? जिस तरह करोड़ों व्यक्तियों की अस्थियाँ कीड़ों का ग्रास बनती हैं उसी तरह उनकी भी बनी होतीं । किन्तु तब हम क्या इतने आदर और श्रद्धा पूर्वक उनका स्मरण करते ? क्या दधीचि घाटे में रहे हरगिज नहीं। किन्तु हमें यह सौदा पसन्द नहीं आता हम तो उस मूर्ख बच्चे के समान हैं जिसने पारस पत्थर के बदले में चमकीला काँच ले लिया था। हममें से अधिकांश धन के लोभ में उसी का संग्रह करते रहने के प्रयत्न में परमार्थ का अवसर गंवा देते हैं। कृष्ण उद्धव सम्वाद में एक ब्राह्मण का वर्णन आता है। धन के बारे में वह कहता है -

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ।।
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ।।

चोरी, हिंसा, झूठ बोलना, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहंकार, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, लम्पटता, जुआ और शराब-ये पन्द्रह अनर्थ मनुष्यों में धन के कारण ही माने गये हैं। इसलिये कल्याण-कामी पुरुष को चाहिये कि स्वार्थ एवं परमार्थ के विरोधी अर्थ नामधारी अनर्थ को दूर से ही छोड़ दे।

हमारी चतुरता का क्या कहना ? हमने अनर्थ को अर्थ नाम दे रखा है तथा वास्तविक अर्थ को भूल गये हैं। अभी भी समय है। हमें अपनी मान्यताओं के बारे में फिर से विचार करना चाहिये तथा सही को अपनाते और गलत को छोड़ने का साहस दिखाना चाहिये। तो क्या धन का मानव जीवन में कोई स्थान नहीं है अवश्य है ! किन्तु एक सीमा तक। हमारा दर्शन एकांगी नहीं है। मनुष्य के लिये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों को पुरुषार्थ बताया गया है। हमें चारों के पाने का अधिकार है किन्तु इन चारों में ताल मेल होना चाहिये। जब इनका सन्तुलन बिगड़ता है तभी हम लक्ष्यच्युत होते हैं। शुकदेवजी परीक्षित से कहते हैं-

पुंसस्त्रिवर्गो विहितः सुहृदो ह्यनुभावितः।
न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कल्पते।।

मनुष्य के लिये वे ही धर्म, अर्थ और काम शास्त्रविहित हैं जिनसे उसके स्वजनों को सुख मिले, जिनसे केवल अपने को ही सुख मिलता है, किन्तु अपने स्वजनों को दुःख मिलता है, वे धर्म, अर्थ और काम हितकारी नहीं हैं।

तत्व दर्शियों का मत है कि धर्म, अर्थ और काम को जब परमार्थ की दिशा में ले जाया जाता है तो मनुष्य मोक्ष का अधिकारी बनता है किन्तु हम साधनों को ही साध्य समझ लेते हैं। यही हमारी बुद्धि का भ्रम है। वास्तव में हमें धर्म, अर्थ और काम को सही दिशा में नियोजित करना चाहिये । तब ये हमारी प्रगति में बाधक न बनकर हमारे लक्ष्य में सहायक ही होंगे । हमें साध्य के लिये साधनों का प्रयोग करना चाहिये। तथा उसकी कसौटी "सबका हित" होना चाहिये। हमारी योग्यता पर विश्वास करके ही हमें खजाने की चाबी सौंपी गई है ताकि हम भगवान के इस विश्व को सुखी एवं समुन्नत बना सकें। **"सर्वभूत हिते रता"** ही होना चाहिये हमारा आदर्श । सभी हमारे हैं किन्तु हमारा मैं पन बहुत क्षुद्र एवं संकीर्ण हो गया है। परिणाम स्वरूप हम अपने शरीर और इससे सम्बन्धित दो चार व्यक्तियों को ही अपना मानकर इन्हीं के पालन पोषण में अपना सारा जीवन लगा देते हैं। इसीलिये अन्त में हाथ मलते हुए इस संसार से विदा होते हैं। अक्रूरजी धृतराष्ट्र से कहते हैं-

पुष्णाति यानधर्मेण स्वबुद्धया तमपण्डितम्।
तेऽकृतार्थं प्रहिण्वन्ति प्राणा रायः सुतादयः।।

यह मूर्ख जीव जिन्हें अपना समझकर अधर्म करके भी पालता पोसता है, वे ही प्राण, धन और पुत्र आदि इस जीव को असंतुष्ट छोड़कर ही चले जाते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जैसाकि आपको मालुम है धृतराष्ट्र अन्धे थे। आजीवन विभिन्न उपायों द्वारा अपने शरीर तथा पुत्रों को ही सम्पन्न बनाने के स्वप्न सँजोते रहे। तथा तिकड़म भिड़ाते रहे। परिणाम क्या हुआ ? सर्वनाश ! वास्तव में धृतराष्ट्र अविवेक या अज्ञान के प्रतीक हैं। आँख न होना हीनता का द्योतक है। विवेक दृष्टि ही वास्तविक दृष्टि है। दूर दृष्टि के अभाव में हमारा जीवन व्यर्थ चला जाता है। हम पड़ाव को ही मंजिल समझ कर आजीवन पड़ाव की वस्तुओं का संग्रह तथा यहाँ के सहयात्रियों की सुख सुविधा के प्रयत्न में लगे रहते हैं। तथा हमारा परमार्थ साधना के नाम पर जो पूजा अर्चना कर्मकाण्ड प्रचलित है वह पर्याप्त नहीं है। परमार्थ का सीधा सम्बन्ध सेवा साधना से है। संन्यास लेने से पूर्व भगवान ऋषभ देव अपने पुत्रों को सम्बोधित करते हुये यही मर्म समझाते हैं। वे कहते हैं-

सर्वाणि मद्भिष्ण्यतया भवद्भि-
श्चराणि भूतानि सुता ध्रुवाणि।
सम्भावितव्यानि पदे पदे वो
विवित्तदृग्भिस्तदु हार्हणं मे।।
मनोवचोदृक्करणेहितस्य
साक्षात्कृत मे परिवर्हणं हि।
विना पुमान् येन महाविमोहात्।
कृतान्तपाशान्न विमोक्तुमीशेत्।।

पुत्रो ! तुम सम्पूर्ण चराचर भूतों को मेरा ही शरीर समझकर शुद्ध बुद्धि से पद-पद पर उनकी सेवा करो, यही मेरी सच्ची पूजा है। मेरा इस प्रकार पूजन मन, वचन, दृष्टि,तथा अन्य इन्द्रियों की चेष्टाओं का प्रत्यक्ष फल के सिद्ध होता है। इसके बिना मनुष्य अपने को महा मोहमय कालपाश से छुड़ा नहीं सकता।

ऋषभ देव और धृतराष्ट्र दोनों का परिणाम हमारे सामने है । दोनों मानव जीवन के दो छोर हैं। भगवान ऋषभदेव ने जीवन के सर्वोच्च शिखर को छुआ था तथा धृतराष्ट्र खाई में गिरे थे। चुनाव की हमें पूरी स्वतंत्रता है। हम मध्य में स्थित हैं क्या हम जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य पाना चाहते हैं ? यदि हाँ ! तो हमें भगवान ऋषभदेव के निर्देशानुसार चलना चाहिये। छुटपुट पूजा पाठ और कर्मकाण्डों से काम बनने वाला नहीं है। हम विश्वात्मा एक घटक हैं तथा हमारा आत्मा ही संपूर्ण विश्व में समाया हुआ है। हमें **"आत्मावत् सर्व भूतेषु"** की अनुभूति करनी ही चाहिये तथा क्षुद्र अहं की कारा को तोड़कर विश्व हित के लिये अपने आपको समर्पित कर देना चाहिये। सारे साधन हमें इसीलिये मिले हुये हैं। इसके सिवा आत्म कल्याण का अन्य कोई मार्ग नहीं है। इसी एक तथ्य को भिन्न-भिन्न तरीकों से कहा गया है। भक्त शिरोमणि प्रहलाद अपने साथी असुर बालकों को समझाते हुये कहते हैं :-

तस्मात् सर्वेषु भूतेषु दयां कुरुत सौहृदम्।
आसुरं भावमुन्मुच्य यया तुष्यत्यधोक्षजः।।

इसलिये तुम लोग अपने दैत्यपने का, आसुरी सम्पत्ति का त्याग करके समस्त प्राणियों पर दया करो। प्रेम से उनकी भलाई करो। इसी से भगवान प्रसन्न होते हैं।

इस श्लोक में प्रहलाद ने भगवान को प्रसन्न करने का ढंग बताया है। जिस तरह माँ को प्रसन्न करने के लिये उसके बच्चों की सेवा करना आवश्यक है उसी प्रकार भगवान को खुश करने के लिये उनके सभी बच्चों से प्रेम करना तथा उनकी सेवा करना आवश्यक है। भगवान ही सब जीवों के रूप में क्रीड़ा कर रहे हैं। अतः सबका हित करना ही सच्ची ईश्वर पूजा है। भगवान कोई व्यक्ति नहीं है कि हम छुटपुट पूजा पाठ या कर्मकाण्डों के द्वारा उन्हें प्रसन्न कर सकें। वे तो आत्मा रूप में सबमें समाये हुये हैं अतः अपने और दूसरों के कल्याण की व्यवस्था करके ही हम ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिये हमें अपने दोष दुर्गुणों एवं अहंता, ममता पर विजय पानी होगी। जब हम आसुरी संपत्ति काम, क्रोध लोभ, मद मत्सर तथा मोह आदि से रहित होकर हल्का पन प्राप्त कर लेंगे, तभी हम बादलों जैसे बनकर संतप्त और पीड़ित मानवता की सेवा कर सकेंगे। भागवत में वर्षा का वर्णन व भाव बड़े सुन्दर ढंग से उभारा गया है।

तडित्वन्तो महामेघाश्चण्डश्वसनवेषिताः।
प्रीणनं जीवनं ह्यस्य मुमुचुः करुणा इव।।

जैसे दयालु पुरुष जब देखते हैं कि प्रजा बहुत पीड़ित हो रही है तब वे दयापरवश होकर अपने जीवन-प्राण तक निछावर कर देते हैं। वैसे ही बिजली की चमक से शोभायमान घनघोर बादल तेज हवा की प्रेरणा से प्राणियों के कल्याण के लिये अपने जीवन स्वरूप जल को बरसाने लगें।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यही है वास्तविक संतों और भक्तों का ढंग। इन्हीं के बारे में तुलसी दास जी ने "राम ते अधिक राम कर दासा" कहा है। हमें बादलों का आदर्श अपने सामने रखना चाहिये। बार-बार जल बरसाते रहने पर भी बादल आज तक खाली नहीं हुये। समुद्र सदा उन्हें भरे ही रखता है यद्यपि सारा जल समुद्र का ही है किन्तु समुद्र के खारे जल को मीठा बनाकर बादल जहाँ आवश्यकता होती है वहाँ - बरसते ही रहते हैं।

महापुरुष, संत या भक्त भी ऐसा ही करते हैं। परमात्मा रूपी समुद्र से ज्ञान रूपी अमृत जल लेकर वे अज्ञान-ताप से जलते हुये प्राणियों को शीतलता और जीवन दान देते ही रहते हैं। इसमें उन्हें किसी प्रकार के लाभ व लोभ या लालच नहीं होता। अपनी स्वाभाविक करुणा के कारण ही वे ऐसा करते हैं। ऋषभदेव अपने पुत्रों को सम्बोधित करते हुए परमार्थ को मनुष्य का स्वाभाविक गुण बतलाते हैं। उनका कथन है-

कस्तं स्वयं तदभिज्ञो विपश्चिद्
अविद्यायामन्तरे वर्तमानम्।
दृष्ट्वा पुनस्तं सघृणः कुबुद्धिं
प्रयोजयेदुत्पथगं यथान्धम्।।

जैसे गढ़े में गिरने के लिये उलटे रास्ते से जाते हुये मनुष्य को जब आँख वाला पुरुष उधर नहीं जाने देता वैसे ही अज्ञानी को अविद्या में फँसकर दुखों की ओर जाते देखकर कौन ऐसा दयालु और ज्ञानी पुरुष होगा जो जान बूझ कर भी उसे उसी राह पर जाने दे या जाने की प्रेरणा दे।

कितनी सुन्दर उपमा है । ज्ञानी को आँख वाला और अज्ञानी को अंधा कहा है। यदि हम आँख वाले हैं तो क्या हमारा यही कर्तव्य है कि हम मात्र अपना बचाव करलें तथा अन्धों को गढ़े में गिरने दें ? ऐसा नहीं होना चाहिये। जिस तरह अकेले अकेले मिठाई खाना अपराध है उसी तरह मानव का स्वतः के लिए ज्ञान का प्रयोग करना तथा उसे अपने स्वार्थ सिद्धि का साधन बनाना भी अनुचित है। हमारी सारी विभूतियाँ परमात्मा की अमानत हैं तथा ज्ञान तो साक्षात् परमात्मा का स्वरूप ही है। ज्ञान मिलते ही हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम अपने पिछड़े हुए भाई बहिनों की सेवा में उसे लगा दें । जिस तरह सर्व प्रथम जागने वाले व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह अन्य सोने वालों को जगा दे, उसी तरह ज्ञानी का भी कर्तव्य है कि वह अज्ञानियों को ज्ञान का प्रकाश दे । आज मानवता अज्ञान के अन्धकर में भटक रही है । हमारा कर्तव्य है कि प्रकाश स्तम्भ बनकर जीवन नौकाओं को चट्टान से टकराकर चूर-चूर होने से बचाऐं । महापुरुषों ने हमें सदा से यही प्रेरणा दी है । राजा निमि को समझाते हुए आठवें योगीश्वर चमस कहते हैं-

दूरेहरिकथाः केचिद् दूरेचाच्युतकीर्तना ।
स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकम्प्या दृशाम् ।।

बहुत-सी स्त्रियाँ और शूद्र आदि भगवान् की कथा और उनके नाम कीर्तन आदि से दूर पड़ गये हैं । वे आप जैसे भगवद् भक्तों की दया के पात्र हैं । आप लोग उन्हें ज्ञान प्राप्ति की सुविधा देकर उनका उद्धार करें ।

कहाँ तो यह उद्दात्त भावना ! और कहाँ हमारी आज की संकीर्णता ! आज तो हम कहते हैं कि स्त्रियों और शूद्रों को ज्ञान प्राप्ति तथा भगवान के नाम लेने का भी अधिकार नहीं है। क्या यह उचित है ? जिन्हें ज्ञान की सर्वाधिक आवश्यकता है उन्हीं को हमने ज्ञान से वंचित कर रखा है । परिणाम सामने है। नारियों के रूप में हमारी आधी आबादी अपंग बनी हुयी पड़ी है तथा समाज के आगे बढ़ने के मार्ग में गले का पत्थर साबित हो रही है । तथा शूद्र भी हमसे अलग होते जा रहे हैं । इस तरह हमारी जाति खंड हो गई है तथा हम किसी भी क्षेत्र में प्रगति नहीं कर पा रहे हैं। एक तरफ तो हम 'पंडितः सम दर्शिनः' की रट लगाते हैं तथा दूसरी तरफ अपने अंगों से ही घृणा करते हैं। हमें गंभीरता पूर्वक विचार करना चाहिये तथा अपनी अवांछनीय मान्यताओं में परिवर्तन करना चाहिए। यदि हम वास्तव में ज्ञानी या भक्त हैं तो हमें इस विश्व को ही भगवान का साकार स्वरूप मानकर ज्ञानदान द्वारा परमात्मा की सच्ची सेवा पूजा करनी चाहिए । तभी सच्चे विश्व प्रेमी-ईश्वर प्रेमी कहलाने के अधिकारी होंगे । भगवान् श्रृषभ देव अपने पुत्रों से कहते हैं -

गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्न
मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ।।

जो अपने प्रिय संबन्धियों को भगवत भक्ति का उपेदश मृत्यु की फाँसी से नहीं छुड़ाता, वह गुरु गुरु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं है, स्वजन स्वजन नहीं है, पिता पिता नहीं है है, माता माता नहीं है, पति पति नहीं है।

मृत्यु भय ही सबसे बड़ा भय है तथा आत्म-ज्ञान द्वारा भय से छुटकारा मिल सकता है। मनुष्य को उसके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान करा देना ही उसकी सबसे बड़ी सेवा है । इसीलिए अन्न, वस्त्र, धन आदि सभी वस्तुओं के दान से ज्ञान-दान को सर्वोपरि कहा गया है। वस्तुओं द्वारा क्षणिक आवश्यकताओं की पूर्ति तो हो सकती है, किन्तु इससे परमुखापेक्षी वृत्ति पनपती है। इससे समस्याओं का स्थाई समाधान नहीं होता। किसी को स्वावलम्बी बना देना ही उसकी वास्तविक सहायता है। अपने हृदय में स्थित अन्तर्यामी से सम्पर्क बन जाने के बाद ही जीव निर्भय बन सकता है। इसी को आत्मसाक्षात्कार, प्रभुदर्शन, भक्ति, ज्ञान आदि विभिन्न नामों से पुकारा जाता है । हमें यही करना चाहिए । महात्मा विदुर जी मैत्रेय जी से कहते हैं -

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ ।
जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ।।

पुण्यमय मैत्रेयजी ! भगवतत्व के उपेदश द्वारा जीव को जन्म मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता ।

हमें अपना सारा समय, श्रम, मनोयोग एवं पुरुषार्थ अपनी और दूसरों की इसी एक समस्या अज्ञान का निवारण तथा ज्ञान की स्थापना के समाधान में लगाना चाहिए । इससे हम घाटे में न रहेंगे । **"बाँटन वाले के लगे ज्यों मेहँदी को रंग"** भागवत में जगह-जगह इसके लिए प्रेरणा दी गई है। परम धाम गमन के पूर्व अपने प्रिय सखा उद्धव को ज्ञानोपदेश कर के उन्हें इस ज्ञान के प्रचार-प्रसार की आज्ञा देते हुए भगवान कृष्ण कहते हैं -

य एतन्मम भक्तेषु सम्प्रदद्यात् सुपुष्कलम् ।
तस्याहं ब्रह्मदायस्य ददाम्यात्मानमात्मना ।।

जो पुरुष मेरे भक्तों को इसे भली भाँति स्पष्ट करके समझायेगा उस ज्ञानदाता को मैं प्रसन्न मन से अपना स्वरूप तक दे डालूँगा,उसे आत्मज्ञान करा दूँगा। कितना स्पष्ट आश्वासन है । आत्म-ज्ञान ही तो हमारा अन्तिम लक्ष्य है। फिर हम ज्ञान-दान प्रारम्भ करके क्यों न इसे पालें ? आत्म-ज्ञान है क्या ? इस अखिल विश्व में हमारा आत्मा ही समाया हुआ है इस सत्य की स्पष्ट अनुभूति ही तो आत्म ज्ञान है।

इस सत्य के प्रकाश में व्यक्तिगत मुक्ति की आकांक्षा कितनी हास्यास्पद है ? 'मैं' की मुक्ति सम्भव है? वास्तव में 'मैं' से छुटकारा पाना ही मुक्ति है। अत: व्यक्तिगत मुक्ति की आकांक्षा ही विरोधाभास है । हमें समग्र मानव जाति की मुक्ति के लिए प्रयास करना चाहिए। इसके द्वारा हम क्षुद्र अहं के घेरे से बाहर निकल सकेंगे। विद्या के प्रचार से ही यह सम्भव हो सकेगा । विद्या नेत्र वालों को कहा गया है इसके द्वारा व्यक्ति अपनी और दूसरों की सभी समस्याओं के समाधान में सक्षम होता है। इसीलिए आज तक के सभी सन्तों, भक्तों और महापुरुषों ने अपना सारा प्रयत्न ज्ञान-दान की दिशा में ही नियोजित किया है । यही है वास्तविक परमार्थ । भविष्य पुराण में भगवान कृष्ण युधिष्ठिर को विद्या दान का महत्व समझाते हुए कहते हैं

धर्माधर्मं न जानाति विद्यया रहित: पुमान् ।
तस्मात् सदैव धर्मात्मा विद्यादानरतो भवेत् ।।
त्रैलोक्यं चतुरो वर्णाश्चत्वारश्चाश्रमा: पृथक् ।
ब्रह्माद्या देवता: सर्वा विद्यादाने प्रतिष्ठिता: ।।

विद्या विहीन जन सामान्य धर्म और अधर्म के बारे में नहीं जानते। अत: धर्मात्मा पुरुषों का कर्तव्य है कि वे सदैव विद्यादान में तत्पर रहें । तीनों लोक चारों वर्ण और आश्रम तथा ब्रह्मा आदि सभी देवता विद्यादान में ही स्थित हैं ।

यहाँ विद्या का वास्तविक अर्थ समझ लेना भी आवश्यक है। आमतौर से अक्षर ज्ञान-पढ़ने लिखने को ही विद्या कहा जाता है किन्तु यह विद्या का सीमित अर्थ है। मात्र पढ़ने लिखने से ही सारी समस्याओं का समाधान नहीं हो जाता। विद्या का वास्तविक अर्थ है **'सा विद्या या विमुक्तये'** विद्या वह है जो मुक्त करती है। यद्यपि अक्षर ज्ञान भी आवश्यक है किन्तु यह चंचु प्रवेश मात्र ही है । वास्तविक विद्या वही है जो हमारे जीवन में ओत प्रोत होकर हमारी कमजोरियों को ध्वस्त करके हमें जीवनोद्देश्य के पाने में सक्षम बना सके-इसे ही विद्या या ज्ञान कहते हैं। हमें इसी ज्ञान का प्रचार प्रसार चाहिए। विद्यादान का कितना महत्व है इसे स्वत: कृष्ण भगवान के मुख से सुनिए । वे युधिष्ठिर से कहते हैं -

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाजपेयसहस्रस्य सम्यगिष्टस्य यत्फलम् ।
तत्फलं साप्नोति विद्यादानान्न संशयः ।।

विधि पूर्वक एक हजार वाजपेय यज्ञ करने वाले को जो फल मिलता है वही फल विद्यादान करने वाले को भी मिलता है इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।

हम अक्सर शिकायत करते रहते हैं कि अर्थाभाव के कारण हम सत्कार्य नहीं कर सकते । किन्तु उपरोक्त श्लोक में स्पष्ट है कि वास्तविक सत्कार्यों के लिए धन की कोई खास आवश्यकता नहीं है । यदि हमारे पास ज्ञान की पूँजी है तो हम बिना धन के ही सम्पन्न हो सकने वाले कार्यों की अपेक्षा अनन्त गुना पुण्यार्जन कर सकते हैं । ज्ञान रूपी भंडार ऐसा है कि जितना ही खर्च किया जाता है उतना ही बढ़ता है। किन्तु यदि किन्हीं कारणों वश हम स्वतः ज्ञान-दान की स्थिति में नहीं हैं तो भी किसी न किसी तरह इस पुण्य प्रक्रिया में अवश्य ही सहायक बनना चाहिए। अनावश्यक खर्चों में कटौती कर बचे हुए धन के द्वारा ज्ञान दान में रत व्यक्तियों की सहायता करना चाहिए । संपूर्ण समाज एक अभिन्न घटक है। परस्पर के सहयोग से ही समाज की उन्नति होती है। एक ही व्यक्ति चाहे वह कितना ही महान क्यों न हो - समाज को आगे नहीं बढ़ा सकता । अतः जो ज्ञान दान में ही सारा समय लगाते हैं, उनकी आर्थिक चिन्ताओं को दूर कर हमें समाजोत्थान के पवित्र कार्य में योगदान करना चाहिए। भगवान आगे कहते हैं -

उपाध्यायस्य यो वृत्ति दत्वाध्यापयते जनः ।
किं न दत्तं भवेत्तेन धर्माकामार्थदर्शिना ।।

जो उपाध्याय की वृत्ति की व्यवस्था कर अध्यापन कार्य कराता है, उस धर्म, काम तथा अर्थ के मर्म को समझने वाला व्यक्ति द्वारा कौन-सा दान नहीं दिया गया अर्थात् उसने सब कुछ दे दिया ।

जो व्यक्ति दिन रात ज्ञानार्जन एवं उसके वितरण में ही लगे रहते हैं उनकी भी कुछ भौतिक आवश्यकताएं तो होती ही हैं । भोजन, वस्त्र एवं आवास की सबको जरुरत पड़ती है। यद्यपि जिसे ज्ञान-दान का चस्का लग जाता है वह न्यूनतम में ही अपना काम चला लेता है । फिर भी उसे अपना कुछ न कुछ समय भौतिक आवश्यकताओं के समाधान के लिए लगाना ही पड़ता है। यदि ऐसे व्यक्तियों की आर्थिक सहायता कर उन्हें इस दिशा से मुक्त किया जा सके तो वे अपना सारा समय ज्ञान के प्रचार-प्रसार में ही लगा सकते हैं । किन्तु इस दिशा में भी सावधनी अपेक्षित है। आजकल दान दक्षिणा लेना भी कुछ लोगों का व्यापार व्यवसाय बन गया है। हमें सत्पात्रों की ही सहायता करना चाहिए ताकि दान का दुरुपयोग न हो । ऐसा करना भी उच्चस्तरीय परमार्थ है ।

बहुत लोग परमार्थ मार्ग को बहुत कठिन कहते हैं। मोटी दृष्टि से है भी कठिन लेकिन जो व्यक्ति इस विश्व को ईश्वर का रूप मान लेता है उसके लिए परमार्थ कठिनाई नहीं बड़ा रोचक विषय बन जाता हे। लोकहित की दृष्टि से जब शिव जी प्रसन्नता पूर्वक गरल-पान कर लेते हैं उस प्रसंग की समीक्षा करते हुए शुकदेव जी कहते हैं-

तप्यन्ते लोभतापेन साधवः प्रायशो जनाः ।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः ।।

परोपकारी सज्जन प्रायः प्रजा का दुःख टालने के लिए स्वयं दुःख झेला ही करते हैं । परन्तु यह दुःख नहीं है, यह तो सबके हृदय में विराजमान भगवान् की परम आराधना है ।

समाज सेवा का पवित्र कार्य करते हुए हमें भी विष-पान के लिए तैयार रहना चाहिए । समुद्र मंथन से निकले हुए रत्नों को तो देवता और असुर दोनों ही तैयार रहते हैं किन्तु विष शिव को ही पीना पड़ता है। यही तो समाज सेवा का वास्तविक पुरस्कार है। अपमान, उत्पीड़न, निन्दा, उपहास विरोध आदि। ज्ञान-दान की दिशा में कार्य करने वाले महापुरुष को यही सब विष के रूप में पीना पड़ता है। आज तक के महापुरुषों का इतिहास इस बात का साक्षी है। किन्तु घबराने की आवश्यकता नहीं है । विष पीकर अन्य लोग मर सकते हैं किन्तु जिनके हृदय में शिवत्व सबके कल्याण की भावना है-उनके लिए विष ही आभूषण बन जाता है। विष-पान के बाद भगवान का नील-कंठ नाम प्रसिद्ध ही है। अतः हमें दोष-दुर्गुणों से अप्रभावित रहते हुए निरन्तर ज्ञान दान में ही लगे रहना चाहिए । हमें यह सुर दुर्लभ नर जीवन इसीलिए मिला है। आत्म कल्याण और लोक मंगल ही है हमारा चरम लक्ष्य । ये दो नाम कहने मात्र को ही हैं वास्तव में दोनों एक ही हैं । यदि इस पवित्र कार्य के लिए हमारी अस्थियाँ भी आवश्यक हो तो हमें पीछे नहीं हटना चाहिये । तभी अज्ञान रूपी वृत्तासुर से समाज को बचाया जा सकता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। वृत्तासुर से पीड़ित देवताओं को महर्षि दधीचि के पास भेजते हुए भगवान विष्णु कहते हैं ।

मघवत् यात भद्रं दध्यञ्चमृषिसत्तमम् ।
विद्याव्रततपःसारं गात्रं याचत मा चिरम् ।।

देवराज इन्द्र ! तुम लोगों का कल्याण हो । अब देर मत करो । ऋषि शिरोमणि दधीचि के पास जाओ और उनसे शरीर जो उपासना, व्रत तथा तपस्या के कारण अत्यन्त दृढ़ हो गया है - माँग लो ।

आज भी ऐसी ही परिस्थितियाँ हैं। वृत्तासुर ने तो देवताओं को ही पीड़ित किया था, किन्तु आज तो अज्ञान रूपी वृत्तासुर से सारा का सारा समाज ही आच्छादित है। जिनके कान हैं वह समाज की पीड़ा और पतन की मर्म भेदी चीत्कार सुन सकते हैं। तथा आँख वाले देख सकते हैं । यह समय व्यक्तिगत शौक मौज का नहीं है। हम युग-संधि वेला में उपस्थित हैं । शीघ्र ही या तो हम सर्वनाश के गर्त में गिरेंगे या उन्नति के उच्च शिखर पर आरुढ़ होंगे। आज आवश्यकता है दधीचि जैसे आत्मदानियों की। शरीर तो नष्ट होगा ही किन्तु यदि अपने लक्ष्य को पूरा करने में नष्ट हो तभी इसकी सार्थकता है । आइए छोटे से दीपक से प्रेरणा लेकर तिल-तिल जलते हुए इस सर्वभक्षी अन्धकार को चुनौती दें ।

ज्ञान और विवेक की साधना करें

एक बार कुछ लोग एक अन्धे को प्रकाश के बारे में समझाने का प्रयत्न कर रहे थे । उन्होंने अपनी सारी अक्ल खर्च कर डाली किन्तु वे असफल ही रहे । अन्धा कह रहा था प्रकाश मेरे हाथ में थमा दो मैं उसे टटोल कर ही उसके बारे में जान सकूंगा । अजीब उलझन थी प्रकाश भी क्या कोई टटोलने की वस्तु है ? परेशान होकर वे उसे बुद्ध के पास ले गए । और कहा आप तो ज्ञानी हैं, इसे प्रकाश के बारे में समझा दीजिए। हम तो हार गये। बुद्ध ने कहा तुम इसे गलत जगह ले आये हो । इसे किसी वैद्य के पास ले जाओ जब इसकी आँखें ठीक हो जायेंगी तब यह अपने आप प्रकाश के बारे में समझ जावेगा। अन्धे की चिकित्सा की गई। उसकी आँखें ठीक हो गईं तथा वह प्रकाश को देखकर पुलकित हो उठा। उसने बुद्ध से कहा आपकी कृपा से मैं प्रकाश को देखने-समझने में समर्थ हुआ। बुद्ध ने कहा इसमें मेरी क्या कृपा ? प्रकाश तो था ही आँखें न होने के करण तुम उसे नहीं देख सकते थे। अब वह बाधा दूर हो गई है, अतः तुम प्रकाश को देख-समझ सकते हो। यह कहानी एक आध्यात्मिक रहस्य को स्पष्ट करती है। जिस तरह प्रकाश को जानने के लिए नेत्रों की आवश्कयकता है उसी तरह तत्वज्ञान प्राप्त करने के लिए ज्ञान और विवेक की आवश्कयकता है जिसके बिना हमारा जीवन व्यर्थ है मानव की मुख्य विशेषता पर प्रकाश डालते हुए पुराण में भगवान कृष्ण गरूड़ से कहते हैं -

चतुरशीतिलक्षेषु शरीरेषु शरीरिणाम् ।
न मानुषं विनान्यत्र तत्वज्ञानं तु लभ्यते ।।

चौरासी लाख शरीरों में मनुष्य-शरीर ही तत्वज्ञान का आश्रय है। इसे छोड़कर अनय योनियों में तत्वज्ञान नहीं हो सकता ।

स्पष्ट है कि हमारे जीवन का निश्चित उद्देश्य हैं तथा हमें इस उद्देश्य को अवश्य पाना है । किन्तु विचारणीय है कि दूसरे इसमें कहाँ तक हमारी सहायता कर सकते हैं ? शास्त्र या महापुरुष इसमें हमारी सहायता तो कर सकते हैं किन्तु यदि हमारे प्रास नेत्र न हों तो क्या कोई हमें प्रकाश के बारे में बता सकता है ? कदापि नहीं हमें स्वतः तत्व ज्ञान की अनुभूति करनी पड़ेगी तथा इसके लिए विवेक की नितान्त आवश्यकता है। आइये ! विचार करें वह कौन सी बाधा है जिसके कारण हम अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पा रहे। शुकदेवजी परीक्षित से कहते हैं -

यदा जयेद रजः सत्व तमो मूढं लयं जड़म् ।
युज्येत शोकमोहाभ्यां निद्रया हिंसयाऽऽशया ।।

तमोगुण का स्वरूप है अज्ञान। उसका स्वभाव है आलस्य और बुद्धि की मूढ़ता। जब वह बढ़कर सत्वगुण और रजोगुण को दबा लेता है, तब प्राणी तरह-तरह की आशाएँ करता है, शोक-मोह में पड़ जाता है, हिंसा करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लगता है अथवा निद्रा-आलस्य के वशीभूत होकर पड़ा रहता है ।

यदि एक ही शब्द में कहा जाय तो अज्ञान ही है वह प्रधान बाधा जिसके कारण हम अपने लक्ष्य की ओर नहीं बढ़ पाते। यह एक ही है हमारा शत्रु **"एकोहि शत्रुर्न द्वितीय रस्ति, अज्ञान तुल्यो पुरुषस्य राजन्** पुरुष" का अज्ञान के सिवा अन्य कोई शत्रु नहीं है। अत: हमें अज्ञान के उन्मूलन हेतु ही सारा प्रयास करना पड़ेगा । इसके सिवा अन्य कोई चारा नहीं है। यदि हमने इस पर विजय पाली तो हमारे अन्त:करण में ज्ञान का प्रकाश आलोकित हो उठेगा। भगवान कृष्ण अपने प्रिय सखा उद्धव से कहते हैं -

ज्ञानविज्ञानसंसिद्धा: पदं श्रेष्ठं विदुर्मम ।
ज्ञानो प्रियतमोऽतो मे ज्ञानेनासौ विभर्ति माम् ।।

जो ज्ञान और विज्ञान से सम्पन्न सिद्ध पुरुष हैं, वे ही मेरे वास्तविक स्वरूप को जानते हैं। इसीलिए ज्ञानी पुरुष मुझे सबसे प्रिय हैं। उद्धवजी ! ज्ञानी पुरुष अपने ज्ञान के द्वारा निरन्तर मुझे अपने अन्त:करण में धारण करता है ।

इस श्लोक से स्पष्ट है कि ज्ञान दृष्टि के अभाव में हम आत्म-प्रकाश का अनुभव नहीं कर सकते । किन्तु इसका उपाय क्या है ? जिस तरह कुशल और अनुभवी चिकित्सक ही नेत्रों की चिकित्सा द्वारा हमें दृष्टि उपलब्ध करा सकता है उसी तरह कोई ज्ञानी ही हमें ज्ञानी बना सकता है जो ज्ञान देने में समर्थ हो उसे गुरु कहा गया। गुरु को इतना अधिक महत्व इसी लिए दिया गया है कि वह मनुष्य को ज्ञान देताहै जीवन की सार्थकता की दिशाका बोध भी कराता है तथा उस मार्ग पर बढ़ने में सहयोग भी देता है। गुरु का अर्थ यह नहीं कि गुरुडम फैलाकर एक व्यवसाय खड़ा कर लिया जाय यह तो निन्दनीय कृत्य है। सच्चा गुरु नि:स्वार्थ ज्ञान रूप तथा तीर्थ रूप होता है । इस संदर्भ में श्री कृष्ण युधिष्ठिर से कहते हैं-

द्विविध तीर्थमित्याहु: स्थावरं जंगमं तथा।
स्थवराज्जगंमं तीर्थ ततो ज्ञानपरग्रिह: ।।
कर्मणापि विशुद्धस्य पुरुषेस्यह भारत ।
हृदये सर्वतीर्थानि तीर्थभूत: स उच्यते ।।
गुरुतीर्थ परं ज्ञानमतस्तीर्थ न विद्यते ।
ज्ञानतीर्थं परं तीर्थं ब्रह्मतीर्थं सनातनम् ।।

दो प्रकार के तीर्थ बताये जाते हैं । स्थावर और जंगम-तीर्थ श्रेष्ठ हैं, क्योंकि उससे ज्ञानकी प्राप्ति होती है इस लोक में पुण्यकर्म के अनुष्ठान से विशुद्ध हुए पुरुष के हृदय में सब तीर्थ हैं वह तीर्थस्वरूप कहलाता है । गुरूरूपी तीर्थ से परमात्मा का ज्ञान प्राप्त होता है, इसलिये उससे बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है। ज्ञानतीर्थ सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है और ब्रह्मतीर्थ सनातन है।

ज्ञान ही है सच्चा तीर्थ तथा उसी में अपने अन्त:करण को स्नान करा कर हम अज्ञान से मुक्त हो सकते हैं। यदि यह रह स्य हमारी समझ में आ गया होता तो हमने समस्या के समाधान का प्रयास किया होता । तब हमने छुटपुट पूजा पाठ या किसी नदी सरोवर में डुबकी लगा लेने मात्र से ही अपनै कर्तव्य की इति श्री न समझी होती। किन्तु अज्ञान जब सिर पर चढ़ जाता है तो उल्टी बात भी सीधी लगती है। आध्यात्मिक क्षेत्र में भी अज्ञान हमें जगह-जगह भटकाता रहता है तथा जीवन के अन्त में हम पाते हैं कि हम जहां के तहां बने हुए हैं । तथा यह स्वप्न लेकर संसार से विदा होते हैं कि इस लोक में न सही परलोक में तो हमें सुख शान्ति मिलेगी ही। किन्तु जो इस लोक को ही नहीं सुधार सका वह परलोक में क्या कर लेगा। हमारा शत्रु अज्ञान तो हमारे पीछे लगा ही रहता है। विद्याधर चित्रकेतु की गलती पर जब उसे पार्वतीजी ने श्राप दिया तब अपनी भूल स्वीकार करते हुए उसने पार्वतीजी से कहा-

संसारचक्र एतस्मिञ्जन्तुरज्ञानमोहित: ।
भ्राम्यन् सुखं च दु:ख च भुङ्क्ते सर्वत्र सर्वदा ।।

देवि ! यह जीव अज्ञान से मोहित हो रहा है और इसी कारण इस संसार-चक्र में भटकता रहता है तथा सदा-सर्वदा सर्वत्र सुख और दु:ख भोगता रहता है ।

यह है अज्ञान की करतूत ! जीव जहां भी जाता है वह उसके पीछे लगा ही रहता है। चित्रकेतु एक राजा था । अपनी तपस्या के प्रभाव से उन्होंने विद्याधर पद पाया था तथा विमान में बैठकर तीनों लोकों में विचरण करते रहते थे। उन्हें अपनी तपस्या और ज्ञान का बड़ा घमंड था। एक दिन महर्षियों की सभा में पार्वती को शिव के साथ बैठी देखकर इन्होंने अपने संयम के अहंकार वश भगवान शिव की निंदा की। परिणाम स्वरूप पार्वती के श्राप के कारण इन्हें वृत्तासुर बनना पड़ा । इस घटना से पता चलता है कि देव पद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पा लेने के बाद भी यदि अज्ञान से हमारा पिण्ड नहीं छूटा तो हमें पतन के गर्त में गिरना पड़ेगा । अत: हमें इसे समूल नष्ट करने का प्रयास करना चाहिए। इसी के कारण हम तत्कालीन महापुरुषों को पहिचानने में भी असमर्थ रहते हैं । तथा उनके जाने के बाद उन्हें भगवान बना कर पूजने लगते हैं। न तो उनके जीवन काल में ही उनसे कोई शिक्षा ग्रहण करते हैं न उनके बाद ही। यही है हमारा दुर्भाग्य ! भगवान कृष्ण के परमधाम पधारने के बाद उद्धव विदुर से कहते हैं -

दुर्भगो बत लोकोऽयं यदवो नितरामपि ।
ये संवसन्तो न विदुर्हरिं मीना इवोडुपम् ।।

ओह ! यह मनुष्य लोक बड़ा ही अभागा है, इसमें भी यादव तो नितान्त भाग्यहीन हैं, जिन्होंने निरन्तर श्रीकृष्ण के साथ रहते हुए भी उन्हें नहीं पहचाना-जिस तरह अमृतमय चन्द्रमा के समुद्र में रहते समय मछलियाँ उन्हें नहीं पहचान सकी थीं।

उद्धव के कथन में कितनी व्यथा है। न मालुम कितनी बार भगवान एवं महापुरुष इस धरा धाम में पधारे किन्तु अपने अज्ञान के कारण हम उनका जरा भी लाभ न उठा सके। अब हमें गम्भीरता पूर्वक इस समस्या पर विचार करना चाहिए। जब अज्ञान से छूटे बिना कोई मार्ग ही नहीं है तो हमें इससे छुटकारा पान ही होगा किन्तु अज्ञान के विरुद्ध युद्ध करने से पूर्व हमें उसका स्वरूप समझ लेना चाहिए जिससे हम अपने बैरी को पूर्णत: समाप्त कर सकें। अज्ञान का स्वरूप समझाते हुए भगवान कृष्ण आदि पुराण में कहते है -

मामेव य: परित्यज्य वस्तुनोऽमिधावति ।
विवेकरहितो मूर्खो दु:खमेवाभिपद्यते ।।
तस्य त्रैकालिकी हानिर्भवत्येवान्यथा नहि ।

जो मुझे छोड़कर किसी दूसरी वस्तु के लिए दौड़ता है, वह विवेकरहित और मूर्ख है। उसे केवल दु:ख ही हाथ लगता है । उसे तीनों काल में हानि ही होती है और कुछ भी नहीं मिलता।

ईश्वर आदर्श गुणों का केन्द्र है। ईश्वर को छोड़कर अन्य ओर भागने का अर्थ है उच्च आदर्शों को छोड़कर छोटे स्वार्थों की ओर दौड़ पड़ना। यह ढंग अज्ञान वश समझदारी जैसा लगता है परन्तु होती उससे हानि ही है।

प्रश्न उठता है कि मनुष्य ऐसा करता क्यों है ? उसका कारण है विवेक का अभाव । विवेक न होने से विषय भोगों के आकर्षण से मनुष्य चकाचोंध हो जाता है तथा अपनी वास्तविक हानि लाभ का निर्णय नहीं कर पाता। इस अनर्थकारी आकर्षण से विवेक ही रक्षा कर सकता है। राजा चित्रकेतु से भगवान शेष यही बात कहते हैं :-

दृष्टश्रुताभिर्मात्राभिर्निर्मुक्त: स्वेन तेजसा ।
ज्ञानविज्ञानसन्तुष्टो मद्भक्त: पुरुषा भवेत् ।।

यह जानकर इस लोक में देखे और परलोक के सुने हुए विषय भोगों से विवेकबुद्धि के द्वारा अपना-अपना पिण्ड छुड़ा ले और ज्ञान तथा विज्ञान में ही संतुष्ट रहकर मेरा भक्त हो जाय।

मनुष्य को उसके गौरव से गिराने वाले शत्रुओं में विषय भोगों की तरह क्रोध, मद, लोभ आदि भी हैं । किन्तु विवेक के सहारे उन सबको परास्त करने के ढंग मिल जाते हैं । मनुष्य में अद्भुत शक्तियाँ हैं। वह अज्ञान वश स्वयं ही बंधना चाहे तो कोई भी उसे बांध नहीं सकता । ज्ञान के साधक जिज्ञासु को हर मार्ग मिल जाता है । नारद जी युधिष्ठिर को आन्तरिक शत्रुओं की पराजय के ढंग बतलाते हुए कहते हैं ।

असंकल्पाज्जयेत् कामं क्रोधं कामविवर्जनात् ।
अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्वावमर्शनात् ।।

धर्मराज ! संकल्पों के परित्याग से काम को, कामनाओं के त्याग से क्रोध को, संसारी लोग जिसे 'अर्थ' कहते हैं उसे अनर्थ समझकर लोभ को और तत्व के विचार से भय को जीत लेना चाहिये।

भगवान ने मनुष्य को प्रचुर समर्थ साधन देकर भेजा है। वह उन साधनों का ठीक प्रयोग कर के दिखादे तो उसे अनन्त शान्ति का अधिकारी मान लिया जाता है । काम,क्रोध, शत्रु, मनुष्य की परीक्षा के लिए हैं । उन्हें परास्त करने के सारे साधन मनुष्य के पास होते हैं किन्तु अज्ञान वश संशय में पड़कर क्या करुँ क्या न करू उलझन में ही वह फंस जाता है और साधन का उपयोग नहीं कर पाता । संशय रूपी उलझनों के ताने बाने ज्ञान की तलवार से ही काटे जा सकते हैं । इस संदर्भ में नारद जी का कथन है -

यावन्नृकायरथमात्मवशोपकल्पं
धत्ते गरिष्ठचरणार्चनया निशातम् ।
ज्ञानासिमच्युतबलो दधदस्तशत्रु:
स्वाराज्यतुष्ट उपशान्त इदं विजह्यात् ।।

यह मनुष्य-शरीर रूप रथ जब तक अपने वश में है और इन इन्द्रिय, मन आदि सारे साधन अच्छी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दशा में विद्यमान हैं, तभी श्री गुरुदेव के चरण कमलों की सेवा पूजा से शान धरायी हुई ज्ञान तीखी तलवार लेकर भगवान के आश्रय से इन शत्रुओंका नाश कर अपने स्वराज्य-सिंहासन पर विरज़जमान हो जाय और फिर अत्यन्त शान्तभाव से इस शरीर का भी परित्याग कर दे।

नारदजी ने इस मनुष्य-शरीर को रथ की उपमा दी है। इसमें इन्द्रियाँ घोड़े, मन लगाम, बुद्धि सारथी तथा आत्मा रथी है। जिस तरह कहीं जाने के लिए ही हम रथ पर सवार होते हैं, उसी तरह आत्मा को परमात्मा तक पहुंचने के लिए यह शरीर रूपी रथ मिला हुआ है । किन्तु जिस तरह रथी के प्रमाद के कारण सारथी और घोड़े मनमानी करने लगते हैं उसी तरह हमारे प्रमाद के कारण हमारा जीवन रथ भी गलत मार्ग पर जा रहा है । हमें याद रखना चाहिए कि एक निश्चित अवधि के लिए ही हमें यह शरीर रूपी रथ उपलब्ध हुआ है समय बीतता जा रहा है। अत: हमारी बुद्धिमानी इसी में है कि जितनी शीघ्र हो सके हम अपनी यात्रा समाप्त कर लें । यदि सारा जीवन रथ की साज सम्हाल में ही बीत गया तो यात्री और उसकी यात्रा का क्या होगा ? हमें अपने स्वरूप को समझ कर अपने सिंहासन पर बैठना चाहिए। फिर हम देखेंगे कि जिस तरह राजा के सामने कोई भी कर्मचारी अपराध करने की हिम्मत नहीं कर सकता उसी तरह आत्म बोध होते ही हमारी बुद्धि, मन और इन्द्रियाँ भी किस तरह हमारे बैरी न रहकर सहायक बन जाते हैं। यदि हम ऐसा न कर सके तो परिणाम स्पष्ट है। नारदजी आगे कहते हैं :-

नो चेत् प्रमत्तमसदिन्द्रियवाजिसूता
नीत्वोत्पथ विषदस्युषु निक्षिपन्ति ।
ते दस्यव: सहयसूतममुं तमोऽन्धे
संसारकूप उरुमृत्युभये क्षिपन्ति ।।

नहीं तो तनिक भी प्रमाद हो जाने पर ये इन्द्रियरूपी दुष्ट घोड़े और उनसे मित्रता रखने वाला बुद्धिरूप सारथि, रथ के स्वामी जीव को उल्टे रास्ते ले जाकर विषय रूपी लुटेरों के हाथों में डाल देंगे । वे डाकू सारथि और घोड़ों के सहित इस जीव को मृत्यु से अत्यन्त भयावने और अन्धकारमय संसार के कुएँ में गिरा देंगे ।

वास्तव में ज्ञान आत्मा की सजगता का प्रतीत है। इन्द्रियाँ मन आदि आत्मा को असावधान पाकर मनमानी करने लगते हैं। जिस तरह मालिक के अनुपस्थित रहने पर हर नौकर अपने आपको मालिक बताने लगता है उस तरह आत्मा के सोये रहने पर इस शरीर रूपी घर के अनेक मालिक बन जाते हैं। यह शरीर आत्मा को अपना लक्ष्य पूरा करने के लिए मिला है मन और इन्द्रियों की वासना पूर्ति के लिए नहीं। हमें अपने उद्देश्य को समझ कर अपना उचित स्थान ग्रहण करना चाहिए। नहीं तो हमारी सारी उपलब्धियाँ बेकार चली जायेंगी। यह विवेक हमें सदैव जागृत रखना चाहिए। विवेक को कुंठित करने वाले दोषों से बचकर चलना चाहिए। जब देवी सती बिना बुलाये अपने पिता के यज्ञ में जाने को तैयार हुईं तो उन्हें सावधान करते हैं शिव जी कहते हैं।

विद्यातपोवित्तवपुर्वय: कुलै:
सतां गुणै: षड्भिरसत्तमेतरै:।
स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दृश:
स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम्।

विद्या , तप, धन , सुदृढ़ शरीर, युवावस्था और उच्च कुल - छ: सत्पुरुषों के तो गुण हैं, परन्तु नीच पुरुषों में ये ही अवगुण हो जाते हैं , क्योंकि इनसे उनका अभिमान बढ़ जाता है और दृष्टि दोष युक्त हो जाती है एवं विवेक शक्ति नष्ट हो जाती है । इसी कारण महापुरुषों का प्रभाव नहीं देख पाते।

भगवान शंकर कहते हैं, नीच पुरुष की सारी विशेषताएं उसके पतन का कारण बनती हैं। जिस तरह साँप को दूध पिलाने से उसके जहर में वृद्धि होती है उसी तरह नीच के गुण भी उसके अभिमान वृद्धि का कारण बनते हैं। नीच का अर्थ है दूषित दृष्टि कोणवाला। अत: दृष्टिकोण का महत्व सर्वोपरि है। हम क्या करते हैं यह इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना हम किसलिए करते हैं। अत: हमें उपलब्धियाँ पाने से पहले दृष्टिकोण को परिमार्जित करना चाहिए-इसी का अर्थ है विवेकी बनना। यद्यपि यह मार्ग कठिनाइयों से भरा हुआ है किन्तु यदि हम ईमानदारी और सतर्कता के साथ अपनी चित्त वृत्तियों का निरीक्षण करते रहें तो एक न एक दिन अपने लक्ष्य को अवश्य पा लेंगे। संसार में ऐसे उतार चढ़ाव हर व्यक्ति के जीवन में आते हैं । जब बुद्धि लड़खड़ाने लगती है किन्तु विवेक सम्पन्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्ति सावधानी से उस समय भी मार्ग बना ही लेता है। विवेका वान का वर्णन करते हुए भगवान श्रीकृष्ण उद्धव जी से कहते हैं -

रजस्तमोभ्यां यदपि विद्वान विक्षिप्तधीः पुनः।
अतन्द्रितो मनो युञ्जन् दोषदृष्टिर्न सज्जते ।।

यद्यपि विवेकी पुरुष का चित्त भी कभी -कभी रजोगुण और तमोगुण के वेग से विक्षिप्त होता है तथापि उसकी विषयों में दोष दृष्टि बनी रहती है इसलिए वह बड़ी सावधानी से अपने चित्त को एकाग्र करने की चेष्टा करता रहता है। जिससे उसकी विषयों में आसक्ति नहीं होती ।

हमारे चित्त पर अनेक जन्मों के पशु संस्कार जमे रहते हैं। अतः हमारी चित्त वृत्तियाँ बार - बार विषयों की ओर आकर्षित होंगी ही हमें उन्हें रोक कर लक्ष्य की ओर केन्द्रित करना चाहिए।इसी का नाम है साधना तथा इसमें विवेक के सिवा कोई हमारा सहायक नहीं है। इसी तरह से हम अपने लक्ष्य को पा सकते हैं। इसीलिए सभी महापुरुषों ने इस पर बहुत जोर दिया है।

शुकदेव जी परीक्षित से कहते हैं-

किं प्रमत्तस्य बहुभिः परोक्षैर्हायनैरिह ।
वर मुहूर्त विदित घटेत श्रेयसे यतः ।।

अपने कल्याण - साधन की ओर से असावधान रहने वाले पुरुष की वर्षों लम्बी आयु भी अनजान में ही व्यर्थ बीत जाती है । उससे क्या लाभ ! सावधानी से ज्ञानपूर्वक बितायी हुई घड़ी भी श्रेष्ठ है क्योंकि उसके द्वारा अपने कल्याण की चेष्टा तो की जा सकती है।

अविवेकी व्यक्ति जरा से काम में ढेरों शक्ति और समय लगा देता है किन्तु विवेक सम्पन्न व्यक्ति थोड़े का भी बड़ा सार्थक उपयोग कर लेता है। ढेरों सम्पत्ति के बीच लोग फूहड़ जिन्दगी जीते हैं और थोड़े साधनों में भी व्यक्ति व्यवस्थित एवं शानदार ढंग से रह लेता है। यह विवेक का ही अन्तर है। जीवन भी एक सम्पदा है। निरर्थक कार्यों में सारा जीवन लगा देने से भी कुछ हाथ नहीं आता, किन्तु विवेक पूर्वक थोड़ा सा समय भी श्रेष्ठ कामों में लगता रहे तो मनुष्य का यश चारों दिशाओं में फैल जाता है। श्रेष्ठ कार्यों में अपने साधन तथा शक्तियाँ लगें इसके लिए निरर्थक विषयों और पदार्थों के साथ अपनत्व तोड़ना पड़ता है। यह मर्म अपने सखाओं को शरद वर्णन के माध्यम से समझाते हुए भगवान कृष्ण कहते हैं-

शनैः शनैर्जहुः पंङ्क स्थलान्यामं च वीरुधः।
यथाहंमतां धीराः शरीरादिष्वनात्मसु ।।

पृथ्वी धीरे-धीरे अपना कीचड़ छोड़ने लगी और घास-पात धीरे-धीरे अपनी कचाई छोड़ने लगे- ठीक वैसे ही जैसे विवेक सम्पन्न साधक धीरे-धीरे शरीर आदि अनात्म पदार्थों 'यह मैं हूँ और यह मेरा है' यह अहंता और ममता छोड़ देते हैं।

अनात्म पदार्थ उन्हें कहते हैं जो आकर्षक तो लगते हैं किन्तु मनुष्य की वास्तवविक प्रगति से उल्टी दिशा में ले जाने वाले होते हैं । उनकी ओर से अपनी दृष्टि मोड़ लेना आवश्यक है। क्योंकि मनुष्य के पास जो बुद्धि तथा समय आदि है वे इनमें निरर्थक खर्च हो जाते हैं और वास्तविक उद्देश्य में उनका प्रयोग नहीं होने पाता । इसलिए जब निरर्थक वस्तुओं की ओर से बुद्धि हटाली जाती है तो उसकी क्षमता बढ़ जाती है। विवेकवान व्यक्ति यही करता है। श्री कृष्ण उद्धव जी से इसका महत्व समझाते हुए कहते हैं-

वैशारद्य क्षयासङ्गशितया छिन्नसंशयः।
प्रतिबुद्ध इव स्वंप्नान्नात्वाद् विनिवर्तते ।।

उनकी विमल बुद्धि की तलवार असंग-भावना की शान से और भी तीखी हो जाती है, और वे उससे अपने सारे संशय-सन्देहों को काट-कूटकर फेंक देते हैं। जैसे कोई स्वप्न से जाग उठा हो, उसी प्रकार वे इस भेद बुद्धि के भ्रमों से मुक्त हो जाते हैं ।

इसलिए हमें विवेक रूपी तलवार से अपने समस्त सन्देहों को काटकर फेंक देना चाहिए। इस कार्य में हमें स्वयं ही बहादुरी और साहस का परिचय देना होगा तभी हम विजयश्री का वरण कर सकेंगे। इस कार्य में हमें न तो किसी का सहयोग ही मिलेगा और न किसी की सलाह ही हमारे काम की होगी। हमारी एक भौंड़ी मान्यता यह है कि हम कोई ऐसा कार्य करें जिससे सब लोग हमारी प्रशंसा करें । किन्तु क्या यह सम्भव है ? अन्धे कभी किसी आँख वाले की प्रशंसा कर सकते हैं? उलटे नकटों के समाज में नाक वाला ही नक्कू कहलाता है। जब साक्षात् भगवान भी सब लोगों खुश नहीं कर सके तो हमारी क्या विसात । भगवान राम द्वारा सीता के त्याग का वर्णन करते हुए श्री शुकदेव जी परीक्षित से कहते हैं-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इति लोकाद् बहुमुखाद् दुराराध्यादसंविदः ।
पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम् ।।

सचमुच सब लोगों को प्रसन्न रखना टेढ़ी खीर है क्योंकि मूर्खों की तो कमी नहीं है। जब भगवान् श्री राम ने बहुतों के मुँह से ऐसी बात सुनी तो वे लोकापवाद से कुछ भयभीत से हो गये । उन्होंने श्री सीताजी का परित्याग कर दिया और वे वाल्मीकि मुनि के आश्रम में रहने लगीं।

अतः हमें लोगों को प्रसन्न करने का विचार छोड़कर अपनी आत्मा और परमात्मा को प्रसन्न करने की चेष्टा करनी चाहिए । लोगों की निन्दा या प्रशंसा की परवाह न करते हुए हमें निर्भयता पूर्वक विवेक सम्मत मार्ग पर ही चलना चाहिए। विवेक की आवश्यकता मनुष्य देवता अथवा अवतारी पुरुष सभी को पड़ती है। विवेककी उपेक्षा जहाँ भी होगी कोई न कोई परेशानी खड़ी हो जायगी। हिरण्यकश्यप के तप के कारण उसकी पात्रता देखे बिना ही ब्रह्मा जी ने उसे वरदान दे दिया - जो सारे संसार के लिए कष्ट का कारण बन गया । उसके वध के बाद नृसिंह भगवान ब्रह्मा जी को ढर्रा छोड़कर विवेक पूर्वक वरदान देने का निर्देश देते हुए कहते हैं-

मैवं वरोऽसुराणां ते प्रदेयः पद्मसम्भव ।
वरः क्रूरनिसर्गाणामहीनाममृतं यथा ।।

श्री नृसिंह भगवान् बोले- ब्रह्माजी। आप दैत्यों को ऐसा वरदान न दिया करें । जो स्वभाव से ही क्रूर हैं, उनको दिया हुआ वरदान तो वैसा ही है जैसा साँपों को दूध पिलाना ।

दैत्य माने तमोगुणी और दुष्ट हृदय व्यक्ति, दैत्य कोई जाति या आकृति विशेष नहीं बल्कि दुष्ट प्रकृति वालों को ही दैत्य दानव या राक्षस कहा गया है। पुराणों में अनेक राक्षसों की तपस्या और वर प्राप्ति का विवरण मिलता है, किन्तु न तो वे अपना ही कोई कल्याण कर सके न दूसरों का ही। दुष्टता से हमारी सारी उपलब्धियाँ व्यर्थ हो जाती हैं। अतः हमें सर्वप्रथम इस पर ही विजय पाना चाहिए। ईश्वरीय अवतारों एवं महापुरुषों के चरित्र इस कार्य में हमारी सहायता तो अवश्य कर सकते हैं किन्तु उनका भी अन्धा अनुकरण नहीं किया जा सकता । विवेक के प्रकाश में ही हमारी गतिविधियों का निर्धारण हो सकता है।

शुकदेव जी परीक्षित से कहते हैं-

ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् ।
तेषां यत् स्ववचोयुक्तं बुद्धिमांस्तत् समाचरेत् ।।

इसलिए इस प्रकार के जो शंकर आदि ईश्वर हैं, अपने अधिकार के अनुसार उनके वचन को ही सत्य मानना और उसी के अनुसार आचरण करना चाहिए। उनके आचरण का अनुकरण तो कहीं कहीं ही किया जाता है। इसलिए बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि उनका जो आचरण उनके उपदेश के अनुकूल हो, उसी को जीवन में उतारे ।

हर महापुरुष या अवतार को तत्कालीन विकृतियों के समाधान हेतु विभिन्न प्रकार के क्रिया कलाप सम्पादित करने होते हैं तथा उस समय के बाद उस प्रकार के कार्य महत्वहीन हो जाते हैं। धर्म के मूल सिद्धान्त ही शाश्वत हैं । बाहरी क्रिया कलापों में समय के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। अतः वास्तव में विवेक ही हमारा सच्चा पथ प्रदर्शक हो सकता है। हमें अपनी हर क्रिया को इसी कसौटी पर कसना चाहिए। यदि हम विवेक हीन हैं तो गुरु भी हमारी कोई सहायता नहीं कर सकते " मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलहिं बिरंचि सम." भगवान दत्तात्रेय राजा यदु से कहते हैं -

न ह्येकस्माद् गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात् सुपुष्कलम् ।
ब्रह्मौ तदद्वितीयं वै गीयते बहुधर्षिभिः ।।

राजन् ! अकेले गुरु से ही यथेष्ट और सुदृढ़ बोध नहीं हो सकता। उसके लिए अपनी बुद्धि से भी बहुत कुछ सोचने समझने की आवश्यकता है। देखो ऋषियों ने एक ही अद्वितीय ब्रह्म का अनेकों प्रकार से गान किया है । (यदि तुम स्वयं विचार कर निर्णय न करोगे तो ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को कैसे जान पाओगे)

अतः हर तरह से यह सिद्ध हो जाता है कि हम स्वतः अपने भाग्य के निर्माता हैं। अतः हम क्यों किसी की प्रतीक्षा करें ? आइये इस सत्य के प्रकाश में ईश्वर द्वारा प्रदत्त अपने विवेक का अभिवर्धन और सदुपयोग करते हुए अपने मार्ग पर चलने का प्रयास करें ? जब हम अपनी शक्ति भर प्रयत्न करने में जुट जायेंगे तो सहायकों की भी कमी नहीं रहेगी। 'ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं।' फिर देर कैसी **'उत्तिष्ठ जागृत प्राप्य वरान्नि बोधत'** उठो। जागो और लक्ष्य को प्राप्त करो । विवेक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को आगे रखकर जीवन की हर सफलता की मंजिल तै की जा संकती है।

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम्।
यत् सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति मामृतम् ।।

विवेकियों के विवेक और चतुरों की चतुराई की पराकाष्ठा इसी में है कि वे इस विनाशी और असत्य शरीर के द्वारा मुझ अविनाशी एवं सत्व तत्व को प्राप्त कर लें।

विवेक में यह क्षमता है कि सांसारिक सफलताओं- सम्पन्नताओं को भी उचित ढंग से प्राप्त करते हुए अविनाशी ईश्वर तत्व का भी साक्षात्कार उसके द्वारा सम्भव हो सकता है। हमें परम्पराओं की अपेक्षा विवेक को महत्व देना सीखना चाहिये। विवेक को सर्वश्रेष्ठ ऋषि कहा गया है इस दृष्टि से हमें स्थूल क्रिया-कलापों की परम्परा के स्थान पर भारतीय संस्कृति की विवेक की परम्परा को महत्व देना चाहिये। ज्ञान और विवेक के संयोग से हमारे जीवन लौकिक सफलताओं और पारलौकिक सिद्धियों से भरे पूरे बन सकते हैं।

धर्म का स्वरूप समझें और अपनायें

जिस तरह किसी भी शासन तंत्र को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने के लिये संविधान की आवश्यकता होती है। उसी तरह इस मनुष्य समाज को संतुलित और सुव्यवस्थित रखने के लिये मनीषियों ने जिन मूल सिद्धान्तों का अन्वेषण किया उन्हें ही धर्म कहा जाता है। पालन से हम अपने लौकिक और पारलौकिक दोनों जीवनों को सुखी और समुन्नत बना सकते हैं। इसीलिये कहा गया है **"यतो अभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्म"** किन्तु ये सिद्धान्त मात्र कहने-सुनने तक सीमित नहीं हैं। इन्हें जीवन में धारण करना पड़ता है। **"धारणाद्धर्म इत्याहुः"** जो धारण किया जाय वही धर्म है। इसके दो भाग हैं। एक शाश्वत और एक परिवर्तन शील धर्म। शाश्वत सिद्धान्त अपरिवर्तन शील है। किन्तु इनके पालन करने के ढंग में समयानुसार परिवर्तन होता रहता है। क्योंकि बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार नियमों में परिवर्तन भी वांछनीय होता है। युधिष्ठिर को यह रहस्य समझाते हुये नारद जी कहते हैं-

प्रायः स्वभावविहतो नृणां धर्मो युगे युगे ।
वेददृग्भिः स्मृतोराजन्प्रेत्य चेह च शर्मकृत्।।

वेददर्शी ऋषि-मुनियों ने युग-युग में प्रायः मनुष्यों के स्वभाव के अनुसार धर्म की व्यवस्था की है। वही धर्म उनके लिये इस लोक और परलोक में कल्याणकारी है।

इस तरह का परिवर्तन वेददर्शी ऋषि ही कर सकते हैं। वेददर्शी का अर्थ ज्ञानी होता है। जो ज्ञानी होते हैं उन्होंने धर्म के रहस्यों का सूक्ष्म अध्ययन किया होता है। तथा वे बिना किसी राग-द्वेष के मानव मात्र के कल्याण की शुद्ध भावना से प्रेरित होकर युगानुरूप कर्तव्य निर्धारण करते हैं। तथा दूसरों को मात्र उपदेश न देकर स्वतः अपने जीवन में उन सिद्धान्तों को चरितार्थ करते हैं। हर व्यक्ति के पास इतनी सूझ-बूझ नहीं होती कि वह व्यापक दृष्टि से विचार कर अपने कर्तव्यों का स्वतः निर्धारण कर सके। अतः तत्कालीन महापुरुषों का अनुसरण ही श्रेयस्कर है। इसके द्वारा ही हम अपने उद्देश्य में सफल हो सकते हैं। भगवान कृष्ण महाभारत में युधिष्ठिर से धर्म के बारे में बताते हुये कहते हैं-

धर्मोऽयं सेवितः शुद्धस्त्रायते महतो भयात्।
धर्माद् द्विजत्वं देवत्वं धर्मः पावयते नरम् ।।

धर्म से ही मनुष्यों को ब्राह्मणत्व व देवत्व की प्राप्ति होती है। धर्म ही मनुष्यों को पवित्र करता है।

मनुष्य जीवन का उद्देश्य आत्मोन्नति है। मनुष्यत्व, द्विजत्व, और देवत्व इसकी क्रमिक विकास की अवस्थाऐं हैं। स्पष्ट है कि ब्राह्मणत्व और देवत्व कोई जाति विशेष न होकर मानव की विकसित उपलब्धियाँ हैं। धर्म सिद्धान्तों को जीवन में ओत-प्रोत कर तदनुसार आचरण से ही मनुष्य इन अवस्थाओं को प्राप्त करता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। हमें धर्म के सहारे यह विकास करना ही चाहिये। क्योंकि इन अवस्थाओं में पहुँचे बिना जीवात्मा अपना लक्ष्य पा नहीं सकता। ब्राह्मण का अर्थ है न्यूनतम भौतिक वस्तुओं से जीवन निर्वाह करते हुये अपना समग्र जीवन ज्ञान प्रसार में लगाने वाला। तथा देवता का अर्थ है अपने लिये कुछ भी न रखकर अपनी सारी उपलब्धियाँ समाज को दे देने वाला। धर्म अपने जीवन में धारण करने वाला सफल जीवन बिताता है। धर्म का अर्थ पलायनवाद नहीं है। धर्मात्मा को अपनी आन्तरिक एवं बाह्य विकृतियों से जूझते हुये जीवन बिताना पड़ता है। धर्म एक श्रेष्ठ आचरण पद्धति है। श्रेष्ठ आचरण मनुष्य को श्रेय सफलता तथा निकृष्ट आचरण मनुष्य को पतन के गर्त में डालता है। महाभारत के पश्चात धर्म का महत्व बतलाते हुये श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

धर्मेणराज्ञा धर्मज्ञ प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ।
धर्मेण निहितः सख्ये स च राजा सुयोधनः ।।
अधर्म रुचयो लुब्धाः सदा चाप्रियवादिनः ।
धार्तराष्ट्रा दुरात्मानः सानुजबन्धा निपातिताः।।

धर्मज्ञ ! राजा युधिष्ठिर ने यह निष्कण्टक राज्य धर्म के बल से ही प्राप्त किया है। धर्म से ही राजा दुर्योधन युद्ध में मारा गया है। धृतराष्ट्र पुत्र अधर्म में रुचि रखने वाले, लोभी, कटुवादी और दुरात्मा थे। इसलिये अपने सगे सम्बन्धियों सहित मार गिराये गये।

संसार में दो प्रकार की विचारधारा वाले व्यक्ति होते हैं। जो किसी भी प्रकार गलत या सही ढंग से मर्यादाओं का उल्लंघन एवं दूसरों का शोषण कर शीघ्र सफलता पा लेना चाहते हैं। इन्हें हम बालबुद्धि या भौतिकवादी कह सकते हैं। दूसरे वे व्यक्ति होते हैं जो जानते हैं कि स्थाई सफलता पाने के लिये आपेक्षित समय एवं पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। तथा उच्च साध्य को पाने के लिये उच्च साधन भी आवश्यक है। ये धैर्यपूर्वक अपने धर्म का पालन करते हुये परिणाम की प्रतीक्षा करते हैं। इन्हें अध्यात्मवादी प्रौढ़ बुद्धि या धार्मिक व्यक्ति कह सकते हैं। कौरव और पाण्डव इन्हीं दो विचार धाराओं के प्रतीक हैं परिणाम सामने है तथा चुनाव हमारे हाथ में है। धर्म का स्वरूप क्या हो सकता है। इसे अनेकों महापुरुषों ने अपने आचरण एवं मान्यताओं द्वारा हमारे सामने रखा है। महाराजा पृथु जिनके नाम पर धरती का नाम पृथ्वी पड़ा यही आदर्श प्रस्तुत करते हैं। उनके सम्बन्ध में बन्दी जन (चारण) कहते हैं-

मातृभक्तिः परस्त्रीषु पत्न्यामर्ध इवात्मनः ।
प्रजासु पितृवत्स्निग्धः किङ्करौ ब्रह्मवादिनाम् ।।

जो परस्त्री में माता के समान भक्ति रखेंगे, पत्नी को अपने आधे अंग के समान मानेंगे, प्रजापर पिता के समान प्रेम रखेंगे और ब्रह्मावादियों के सेवक होंगे।

धर्म किसी कर्मकाण्ड या पूजा पाठ का नाम नहीं है। इसका प्रभाव हमारे व्यक्तिगत पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में स्पष्ट रूप में परिलक्षित होना चाहिये। समस्त नारी जाति के प्रति, मातृ भावना, धर्म पत्नी के लिये अपने शरीर के अंग जैसा प्रेम तथा समाज के प्रति भ्रातृत्व भावना एवं महापुरुषों के प्रति आदर और श्रद्धा की अभिव्यक्ति यही है धर्म का वास्तविक स्वरूप। सबके प्रति कर्तव्यों से हम बँधे हुये हैं। धर्म हमें हमारे कर्तव्यों का सही बोध कराता है। वास्तव में कर्तव्य पालन ही धर्म है। इन धार्मिक भावनाओं का विकास करते हुये अन्त में हम **"सर्वभूत हितेरता"** की अनुभूति की गहराइयों में उतर जाते हैं और तभी होता है हमारा चरमोत्कर्ष। देवताओं द्वारा अस्थि याचना करने पर महर्षि दधीचि कहते हैं--

एतावानव्ययो धर्मः पुण्यश्लोकैरुपासितः ।
यो भूतशोकहर्षाभ्यामात्मा शोचति हृष्यति।।

बड़े-बड़े महात्माओं ने इस अविनाशी धर्म की उपासना की है । उसका स्वरूप बस, इतना ही है कि मनुष्य किसी भी प्राणी के दुःख में दुःख का अनुभव करे और सुख में सुख का।

इसी अनुभूति के द्वारा ही आत्मा को परमात्मा का पद प्राप्त होता है। यही है मानव जीवन की अंतिम उपलब्धि। इसके बाद और कुछ पाना शेष नहीं रहता। इसी चरम लक्ष्य को पाने के लिए धर्म की रचना हुई है। किन्तु एकदम से हमें यह लक्ष्य नहीं मिल जाता। इसके लिए हमें अपनी भावनाओं को क्रमशः विकसित करना पड़ता है। आत्म निर्माण, परिवार निर्माण एवं समाज निर्माण के द्वारा ही हम इस अनुभूति तक पहुँचने में सक्षम होते हैं। इसका प्रारम्भ व्यक्तिगत धर्म पालन से होता है। इसके लिए विभिन्न व्यक्तियों व विभिन्न धर्मों के बारे में हमारे शास्त्रों में प्रकाश डाला गया है। धर्म पत्नी के कर्तव्यों का वर्णन करते हुए नारद जी युधिष्ठिर से कहते हैं-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

संतुष्टालोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रियसत्यवाक् ।
अप्रमत्ता शुचि: स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत् ।।

जो कुछ मिल जाय, उसी में संतुष्ट रहे, किसी भी वस्तु के लिये ललचावे नहीं। सभी कार्यों में चतुर एवं धर्मज्ञ हो । सत्य और प्रिय बोले। अपने कर्तव्य में सावधान रहे। पवित्रता और प्रेम से परिपूर्ण रह कर, यदि पति पतित न हो तो, पत्नी उसका सहयोग करे।

इस श्लोक में आदर्श धर्म पत्नी के धर्म का वर्णन किया गया है। धर्म की दृष्टि से नर नारी में कोई भेद नहीं है। एक ही आत्मा दोनों रूपों में व्यक्ति हुई है। अत: दोनों के ऊपर समान रूप से कर्तव्य पालन का बोझ डाला गया है। यद्यपि स्वार्थ के वश होकर हमने नारी जाति पर कई अनावश्यक प्रतिबन्ध लगाये तथा धर्म पालन का सारा बोझ उन्हीं पर लाद कर निश्चिन्त हो गए। किन्तु मनीषियों ने पति और पत्नी दोनों पर समान रूप से धर्म पालन का उत्तरदायित्व सोंपा है। दृढता धर्म पालन का एक आवश्यक अंग है। हमें एक तरफा अनावश्यक दबाव से साहस पूर्वक इन्कार कर देना चाहिए। किसी की भी हर उचित-अनुचित आज्ञा मानने को धर्म हमें बाध्य नहीं करता । ऊपर के श्लोक में यह स्पष्ट बताया गया है कि हम अपने साथी के उचित कार्यों में ही सहयोग करें । नारी या नर दोनों के बारे में यही विधान है। हमारा धर्म वर्णाश्रम धर्म कहा गया है। चारों वर्णों एवं आश्रमों के लिए प्रथक प्रथक कर्तव्य विधान है किन्तु धर्म के कुछ सार्वभौम सिद्धान्त हैं जिनका पालन सबके लिए आवश्यक है। गृहस्थ धर्म के बारे में बताते हुए भगवान कृष्ण उद्धव से कहते हैं -

ब्रह्मचर्य तप: शौचं सन्तोषो भूतसौहृदम् ।
गृहस्थस्याप्यृतौ गन्तु: सर्वेषां सदुपासनम् ।।

गृहस्थ के लिये भी ब्रह्मचर्य तपस्या, शौच, संतोष और समस्त प्राणियों के प्रति सम भाव - ये मुख्य धर्म हैं। मेरी उपासना तो सभी को करनी चाहिये।

इसी तरह चारों क्यों के पालन करने योग्य सामान्य धर्म के बारे में बताते हुए कृष्ण कहते हैं-

अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता ।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिक: ।

उद्धव! चारों वर्णों और चारों आश्रमों के लिए साधारण धर्म यह है कि मन, वाणी और शरीर से किसी की हिंसा न करें, सत्य पर दृढ़ रहें, चोरी न करें, काम, क्रोध तथा लोभ से बचें और कर्मों के करने से समस्त प्राणियों की प्रसन्नता और उनका भला हो वही करें।

वर्ण और आश्रमों की स्थापना आदर्श समाज व्यवस्था के लिए की गयी थी। उनके कर्तव्यों को उनका धर्म कहा जाता है किन्तु मनुष्य का मनुष्य के नाते जो धर्म है उसे सबसे अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। वर्णाश्रम के अनुसार जो कर्तव्य है उन्हें भी मानवीय आदर्शों की कसौटी पर कस कर अपनाया जाना चाहिए । चूंकि ईश्वर को सारे आदर्शों का केन्द्र माना जाता है इसलिए आदर्श निष्ठ को ईश्वर निष्ठ भी कहा जाता रहा है। हर मनुष्य को ईश्वरीय आदर्शों को केन्द्र मानकर अपने कर्तव्यों के पालन का निर्देश देते हुए भगवान श्री कृष्ण उद्धव से कहते हैं-

मयोदितेष्ववहित: स्वधर्मेषु मदाश्रय: ।
वर्णाश्रमकुलाचारमकामात्मा समाचरेत् ।।

भगवान कहते हैं - प्यारे उद्धव ! साधक को चाहिए कि सब तरह से मेरी शरण में रहकर मेरे द्वारा उपदिष्ट अपने धर्मों का सावधानी से पालन करे। साथ ही जहाँ तक उनसे विरोध न हो वहाँ तक निष्कामभाव से अपने वर्ण आश्रम और कुल के अनुसार सदाचार का भी अनुष्ठान करे।

धर्म किन्हीं रूढ़ियों का नाम नहीं है। यह तो सतत् गतिशील एक जीवन्त व्यवस्था है इसके मूल में आत्म कल्याण एवं लोक मंगल का आदर्श निहित है । परिस्थितियों के अनुसार इसकी व्याख्याऐं बदलती रहती हैं। हमें स्वत: विवेक के प्रकाश में तत्काल अपने धर्म का निर्णय करना पड़ता है। हमारा धर्म किसी व्यक्ति विशेष या परिस्थितियों से बँधा हुआ नहीं है। धर्म मार्ग पर चलते हुए अपने आत्मीय एवं निकटस्थ व्यक्तियों का भी विरोध करना पड़ता है। यदि हमारा कोई सम्बन्धी धर्म की दुहाई देकर हम से अपनी अनुचित माँग का समर्थन कराना चाहे तो हमें दृढ़ता पूर्वक उसकी आज्ञा मानने से इनकार कर देना चाहिए। बहुत से व्यक्ति अधर्माचरण करते हुए भी हमारी धार्मिक भावनाओं का शोषण कर अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा किया करते हैं। हमें इन व्यक्तियों और परिस्थितियों से सावधान रहना चाहिए। महाभारत में अर्जुन को धर्म का रहस्य बताते हुए भगवान कृष्ण कहते हैं -

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधर्म नात्र पश्यन्ति धर्म तत्वर्यदर्शिन: ।
य: स्तेनै: सह सम्बन्धान्मुच्यते शपथैरपि ।।

धर्म के तत्व को जानने वाले (हिंसा चोरी आदि) अवसरों पर अपने और दूसरों के जान माल की रक्षा के लिए मिथ्या बोलने को भी पाप नहीं समझते।

मान लीजिए हम सत्य वादी हैं, अब यदि कोई डाकू हम से पूछे कि तुम्हारे पास कितना धन है ? और कहां रखा है? यदि हम डाकू से भी सत्य बोलें तब तो हमें सम्पत्ति से हाथ ही धोना पड़ेगा। इसी तरह यदि हम देश की सुरक्षा सेवा में कार्य कर रहे हैं। तथा, किसी देश के शत्रु के पूछने पर अपने शस्त्र भण्डार, सेना और सुरक्षा व्यवस्था के बारे में सही सही बता दें, तब तो हमने देश के प्रति अच्छी जिम्मेदारी निभाई ? हमारी यह सत्यवादिता हमें और हमारे देश को संकट में डालने वाली ही सिद्ध होगी। तथा परिणाम स्वरूप हम अपने कर्तव्य से च्युत होकर पुण्य के नहीं पाप के ही भागी होंगे। एक उदाहरण के द्वारा अपनी बात स्पष्ट करते हुए कृष्ण कहते हैं:-

तेनाधर्मेण महता बाग्दुरुक्तेन कौशिक:।
गत: स कष्टं नरकं सूक्ष्मधर्मे ष्वकोविद: ।।

इस तरह वाणी का दुरुपयोग करने से कौशिक को महान् पाप लगा, जिससे उसे नरक का कष्ट भोगना पड़ा, क्योंकि वह धर्म के सूक्ष्म स्वरूप को समझने में कुशल नहीं था।

कौशिक नाम का एक तपस्वी बन में तपस्या कर रहा था। एक बार एक गाय कसाइयों के बन्धन तोड़कर भागी। और कौशिक के देखते-देखते वन में प्रवेश कर गई। थोड़ी देर के बाद कसाई वहाँ आये और उन्होंने कौशिक से गाय के बारे में, उसकी सत्यवादिता का हवाला देकर पूछा। कौशिक ने कसाइयों को गाय का सही पता बता दिया। कसाइयों ने गाय को काट डाला। फलस्वरूप इस सत्यवादिता के कारण कौशिक को नरक की यातना भोगनी पड़ी। अत: हमें धर्म का सही स्वरूप और उसका उद्देश्य समझने का प्रयत्न करना चाहिए। अन्यथा धर्म का गलत प्रयोग करने पर हमें भी पश्चाताप करने के अवसर आ सकते हैं। धर्म की गति बहुत सूक्ष्म है। अत: खूब सोच विचार कर ही हमें अपने कर्तव्य का निर्णय करना चाहिए।

धर्म कोई व्यापार भी नहीं है कि उसके माध्यम से हम अपनी कामनाओं की पूर्ति की आशा रखें। धर्म कामना रहित और स्वत: स्फूर्त होना चाहिए। युधिष्ठिर को धर्म का मर्म समझाते हुए भगवान कृष्ण कहते हैं-

व्रतं यज्ञान् नियमान् ध्यानयोगान्
कामेन यो नारभते विदित्वा ।
यद् यच्चायं कामयते स धर्मो
न यो धर्मो नियस्तस्य मूलम् ।।

जो इस बात को जानता है-वह दान, वेदाध्ययन, तप वेदोक्त कर्म, व्रत, यज्ञ, नियम और ध्यान-योगादिक कामनापूर्वक अनुष्ठान नहीं करता तथा जिस कर्म से वह कुछ कामना रखता है, वह धर्म नहीं है । वास्तव में कामनाओं का निग्रह ही धर्म है और वही मोक्ष का मूल है।

धर्म को कर्तव्य रूप में किया जाना चाहिए। धर्म कृत्यों का उद्देश्य मनुष्य को उन्नतिशील बनाना है। कुछ लोग इस माध्यम से तुच्छ स्वार्थों की पूर्ति चाहते हैं। जब उस कर्म का लक्ष्य ही बदल गया तो वह धर्म रह ही नहीं जाता। धर्म को जो लोग व्यवसाय बना लेते हैं वे वास्तव में धर्मच्युत हो जाते हैं। सही क्रिया तथा सही भावना दोनों मिलकर , धर्म को प्रभावशाली बनाते हैं। देवर्षि नारद धर्म राजा युधिष्ठिर के सामने यह तथ्य प्रकट करते हुए कहते हैं –

यथा वार्तादयो ह्यर्था योगस्यार्थ न विभ्रति ।
अनर्थाय भवेयुस्ते पूर्तमिष्टं तथासत: ।।

जैसे खेती व्यापार आदि और उनके फल भी योग साधना के फल भगवत्प्राप्ति या मुक्ति को नहीं दे सकते वैसे ही दुष्ट पुरुष के श्रौत-स्मार्त कर्म भी कल्याणकारी नहीं होते, प्रत्युत उल्टा फल देते हैं।

किसी भी कार्य के करने की एक पद्धति होती है। गलत पद्धति से किया गया बड़े से बड़ा प्रयत्न पुरुषार्थ भी व्यर्थ सिद्ध होता है। अत: किसी कार्य के करने से पूर्व उचित पद्धति का ज्ञान एवं तदनुसार आचरण आवश्यक होता है। धर्म आडम्बर के लिए नहीं है। आडम्बर तो लोगों को धोखा देने के लिए किया जाता है यह दुष्टता का लक्षण है। यदि हम दुष्टता के पोषण के लिए धर्म के पालन का दिखावा करें तो उससे क्या बनने वाला है? यदि धर्म दुष्टता का पोषण करने लगे तो वह धर्म न रह कर अधर्म बन जायगा। अत: धर्माचरण करने से पूर्व हमारी नीयत शुद्ध होनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिए। हम क्या करते हैं इसका उतना महत्व नहीं है- जितना किस लिए करते हैं- का है। वाह्याडम्बर द्वारा दूसरों को भले धोखा दिया जा सके किन्तु भगवान को नहीं दिया जा सकता। बलराम जी रोमहर्षण सूत नामक एक धर्माडम्बर करने वाले के आचरण को देख कर कहते हैं।

अदान्तस्याबिनीतस्य वृथा पण्डितमानिनः ।
न गुणाय भवन्ति स्म नटस्येवाजितात्मनः ।
एतदर्थो हि लोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः ।
बध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः।।

यह विनयी नहीं, उद्दण्ड है। इस अजितात्मा ने झूठ मूठ अपने को बहुत बड़ा पंडित मान रक्खा है। जैसे नटकी सारी चेष्टायें अभिनय मात्र होती हैं, वैसे ही इसका सारा अध्ययन स्वाँग के लिए है। उससे न इसका लाभ है और न किसी दूसरे का जो लोग धर्म का चिह्न धारण करते हैं, परन्तु धर्म का, पालन नहीं करते, वे अधिक पापी हैं, और वे मेरे लिये वध करने योग्य हैं। इस जगत् में इसी लिए मैंने अवतार धारण किया है।

रोमहर्षण सूत व्यास जी के शिष्य थे। उन्होंने सारे धर्म शास्त्रों का विस्तृत अध्ययन किया था तथा उनकी विशद व्याख्या भी कर लेते थे। किन्तु इससे क्या? मात्र शब्दों का ज्ञान ही तो धर्म नहीं है। धर्म सिद्धान्तों का हमारे जीवन के क्रिया- कलापों में गहराई से प्रवेश होना चाहिए। किन्तु सूत जी ने इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझी। जिस तरह कानून का जानने वाला सरकारी कर्मचारी कानून का उल्लंघन करने पर सामान्य नागरिक से अधिक दंड का भागी होता है, उसी तरह धर्म को जानते हुए भी उसका पालन न करने के कारण सूत को बलराम जी द्वारा कठोर दंड दिया गया। किन्तु इससे हम शिक्षा कहाँ ग्रहण करते हैं ? आजकल तो वेष विन्यास एवं बाह्या-डम्बर को ही धर्म मान लिया गया है। हम धर्मात्माओं का ढोंग बनाकर अपने आपको धार्मिक होने का ढ़िंढोरा पीटते फिरते हैं। किन्तु इससे काम चलने वाला नहीं है। नारद जी युधिष्ठिर से कहते हैं-

गृहस्थस्य क्रियात्यागौ व्रतत्यागो वटोरपि ।
तपस्विनो ग्रामसेवा भिक्षोरिन्द्रियलोलता ।।
आश्रमापसदा ह्येते खल्वाश्रमविडम्बकाः ।
देवमायाविमूढांस्तानुपेक्षेतानुकम्पया ।।

कर्म त्यागी गृहस्थ, व्रत त्यागी ब्रह्मचारी गाँव में रहने वाला तपस्वी (वानप्रस्थ) और इन्द्रियलोलुप सन्यासी के चारों आश्रम के कलंक हैं और व्यर्थ ही आश्रमों का ढ़ोंग करते हैं । भगवान की माया से विमोहित उन मूढ़ों पर तरस खाकर उनकी उपेक्षा कर देनी चाहिए।

धर्म को वास्तविक कसौटी पर कसने से पाखण्डियों की पोल खुल जाती है। ऐसे व्यक्तियों की उपेक्षा करने की बात नारद जी ने इसलिए कही है - कि सामान्य व्यक्ति उन्हें श्रेष्ठ मानकर उनसे प्रभावित न हों इतना भर पर्याप्त है। किन्तु इस विश्व की नियामक सत्ता तो उनकी उपेक्षा नहीं कर सकती। हमें अपने स्वाँग का भरपूर दंड मिलने ही वाला है। हमें दंड भोगने के लिए तैयार रहना चाहिए। किन्तु हम अपने पापों का प्रायश्चित करना चाहें, अपनी गलती स्वीकार कर सही मार्ग अपनाना चाहें तो धर्म का उदार मार्ग आज भी हमारे लिए खुला हुआ है। इसके लिए हमें दुहरा परिश्रम करना पड़ेगा। दोषों का त्याग एवं गुणों का अभिवर्धन, किन्तु समय बहुत कम है। कार्य की गुरुता को देखते हुए शीघ्र कार्यवाही की आवश्यकता है। गरुड़ पुराण में गरुड़ को सम्बोधित करते हुए भगवान कृष्ण कहते हैं-

यावत् स्वास्थ्यं शरीरस्य तावद्धर्म समाचरेत् ।
अस्वस्थः प्रेरितश्चान्यैर्न किंचित् कर्तुमुत्सहेत् ।।
यावत् स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो: ।
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत् क्षयो नायुषः ।।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्।
संदीप्ते भवने हि कूपखनने प्रत्युद्यमः कीदृशः ।।

मनुष्य को चाहिए कि जब तक उसका शरीर स्वस्थ है,तभी तक धर्म का अनुष्ठान करले। अस्वस्थ हो जाने पर दूसरों द्वारा प्रेरित किये जाने पर भी कुछ करने का उत्साह नहीं होता। अतः जब तक शरीर स्वस्थ तथा नीरोग है, जब तक जरा- वृद्धावस्था दूर है, जब तक इन्द्रियों की शक्ति क्षीण नहीं हुई और जब तक आयु अवशेष है, तभी तक विद्वान पुरुष को आत्मकल्याण, भगवत्प्राप्ति के लिए भारी प्रयत्न कर अपना काम बना लेना चाहिए, अन्यथा घर में आग लग जाने पर - पूरे भवन प्रज्वलित हो उठने पर उसके बुझाने के लिये कुआँ खोदने के प्रयत्न से क्या लाभ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्या इससे भी अधिक कुछ कहने को रह जाता है ? विवेक का तकाजा है कि जब इसके सिवा कोई अन्य मार्ग है ही नहीं तो क्यों न प्रयत्न प्रारम्भ किया जाय? भगवान की शक्ति हमारे साथ है। संसार की कोई भी परिस्थिति हमारी आत्म चेतना को नहीं दबा सकती जब हम अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ लक्ष्य की ओर गतिशील होंगे तो बाधाऐं हमारी सीढ़ियाँ बन जायेंगीं।

रामराज्य का वर्णन करते हुए शुकदेव जी परीक्षित से कहते हैं-

त्रेतायां वर्तमानायां कालः कृतसमोऽभवत्।
रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूतसुखावहे ।।

परीक्षित! जब समस्त प्राणियों को सुख देने वाले परम धर्मज्ञ भगवान श्री राम राजा हुए तब था तो त्रेतायुग परन्तु मालूम होता था मानो सतयुग ही है।

भगवान राम का मार्ग आज भी खुला हुआ है। जब भगवान राम एवं उनके सहयोगियों के प्रबल पुरुषार्थ के फलस्वरूप त्रेता में सतयुग का वातारण निर्मित हो गया था तो आज क्यों नहीं हो सकता ? युग कोई ऐसी सत्ता का नाम नहीं है जो जबरन हमारे ऊपर हाबी हो जाती हो। मनुष्यों की आन्तरिक सुकृति या विकृति ही बाह्य वातावरण के रूप में युग के नाम से जानी जाती है। हम ही युग निर्माता हैं। अभी तक हमने अपने दुष्कर्मों द्वारा कलियुग के निर्माण में सहायता पहुँचाई । आइए अब धर्म सिद्धान्तों को अपने जीवन में ओत प्रोत कर अपने सत्कर्मों द्वारा सत्युग के अतवरण की भूमिका सम्पादित करें । इसी में हमारा और सम्पूर्ण मानव जाति का हित सन्निहित है तो आइए घोषणा करें । "हम सुधरेंगे, युग बदलेगा"।

सद्गृहस्थ का आदर्श

जीवात्मा, आत्मा से परमात्मा, अणु से विभु और लघु से महान बनने के लिए बीज रूप में सारी क्षमताओं से युक्त होकर मनुष्य रूप में पृथ्वी पर अवतरित होता है। जिस तरह बीज में वृक्ष बनने की सारी सम्भावनाऐं छिपी रहती हैं उसी तरह आत्मा में भी परमात्मा बनने की सभी सम्भावनाऐं निहित हैं। प्रश्न सिर्फ इन्हें विकसित करने का रहता है। हमारे मनीषियों ने इन्हीं सम्भावनाओं को ध्यान में रखते हुए वर्णाश्रम धर्म की रचना की है। वृक्ष को बगीचे में लगाने के पूर्व एक क्यारी में उसकी पौध तैयार करनी पड़ती है। बगीचा अपने आप में महत्वपूर्ण है किन्तु क्यारी के महत्व को भी नहीं भुलाया जा सकता । बीज को वृक्ष बनाने में जिस तरह क्यारी महत्वपूर्ण है उसी तरह चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम भी महत्वपूर्ण आश्रम की रचना करते हैं। इसके बिना समाज रचना असम्भव है। कहते हैं सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्माजी अकेले थे। वे **"एकोहंबहुस्याम"** के संकल्प के अनुसार एक से अनेक होना चाहते थे। ब्रह्माजी ने बहुत प्रयत्न किये किन्तु असफल रहे। इसी चिन्ता में उनका शरीर दो भागों में विभाजित हो गया। आधा हिस्सा पुरुष रूप में था और आधा नारी के रूप में । यही हुवे मानव जाति के आदि स्रोत तथा संसार के सर्व प्रथम गृहस्थ । सृष्टि विस्तार क्रम का वर्णन करते हुए मैत्रेय जी विदुर जी से कहते हैं -

यस्तु तत्र पुमान् सोऽभून्मनुः स्वायम्भुवः स्वराट्।
स्त्री याऽऽसीच्छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः।।

उनमें जो पुरुष था, वह सार्वभौम सम्राट स्वायम्भुव मनु हुए और जो स्त्री थी, वह उनकी महारानी शतरूपा हुई ।

एक ब्रह्म ही दो रूपों में व्यक्त हुआ। ये दोनों अपने आप में पूर्ण थे। किन्तु दोनों में अपनी अपनी कुछ विशेषताऐं भी थीं। सृष्टि विस्तार हेतु दोनों का सहयोग आवश्यक था। अतः मित्रता के नाते दोनों ने साथ रहना स्वीकार किया। तथा एक दूसरे की सहायता करते हुए ब्रह्म की इच्छा को पूर्ण किया। इस तरह गृहस्थाश्रम की नींव पड़ी। इस घटना से पता चलता है कि न तो अकेला नर गृहस्थ बन सकता है न अकेली नारी। गृहस्थ के निर्माण में नर और नारी दोनों समाप रूप से उत्तरदायी हैं। भविष्य पुराण में चारों आश्रमों के बारे में बताते हुए भगवान कृष्ण युधिष्ठिर से कहते हैं-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

चतुर्णामाश्रणां हि गृहस्थः श्रेष्ठ उच्यते ।
गृहस्थाच्च गृहं श्रेष्ठं गृहाच्छेष्ठा वराः स्त्रियः ।।

चारों आश्रमों में 'गृहस्थ' श्रेष्ठ कहा गया है। 'गृहस्थ' का मूल आधार श्रेष्ठ गृह ही है और गृह से भी श्रेष्ठ गृहणी है।

इस श्लोक में भगवान ने गृहस्थाश्रम को सभी आश्रमों से श्रेष्ठ बताया, तथा श्रेष्ठ गृहणी की महत्ता प्रतिवादिता की। यद्यपि गृहस्थ के निर्माण में नर और नारी दोनों का योगदान रहता है। किन्तु यदि दोनों में से किसी को वरीयता देनी ही हो तो वह नारी पक्ष में ही जाती है। इसीलिए कहा गया है **"गृहणी गृहमुच्यते"** वास्तव में गृहणी ही गृह है। स्पष्ट है कि अच्छे परिवार के निर्माण में नारी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। पुरुष का योग दान स्वल्प ही होता है। अतः यदि नारी को गृहस्थ जीवन की रीढ़ कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। क्या नर क्या नारी दोनों ही नारी के शरीर मन और भावनाओं से महत्वपूर्ण अनुदान पाकर ही विकसित होते हैं। हमारे अन्दर या बाहर जो कुछ भी है वह सब नारी की ही देन है। इसीलिए नारी जाति का महत्व प्रतिपादित करते हुए भगवान श्री कृष्ण युधिष्ठिर से कहते हैं-

अमृतस्येव कुण्डानि सुखानामिव राशयः।
रतेरिव निधानानि योषितः तेन निर्मिताः ।।

स्त्रियाँ मानो अमृत का कुण्ड अथवा सुख की राशि ही हैं। ब्रह्मा ने इन्हें सम्पूर्ण आनन्द के निधान के रूप में ही रचा है।

संसार में जो भी सुख या आनन्द दृष्टिगोचर हो रहा है वह नारी का ही दिव्य अनुदान है। किन्तु इन प्राचीन शास्त्रीय मान्यताओं के प्रकाश में जब हम अपनी आज की स्थिति पर विचार करते हैं तो रोना आता है। कहाँ है सुख और आनन्द ? आज तो चारों ओर पीड़ा और पतन तथा क्लेश और कलह ही बिखरा पड़ा है। कौन छीन ले गया हमारा सौभाग्य ? जिस गृहस्थ आश्रम को स्वर्ग की उपमा दी गई थी, वह आज नरक से अधिक दुखदायी बना हुआ है। तथा जब क्यारी में ही विष की पौध तैयार होने लगी तो बगीचे में चन्दन के वृक्ष कहाँ से आयें। आज विष ही विष सर्वत्र फैला दिखाई दे रहा है। क्या हम इन परिस्थितियों को बदलना चाहते हैं ? यदि हाँ ! तो आइये विचार करें कि ऐसा क्यों हो गया ? स्पष्ट है कि जिस नारी को अमृत कुण्ड कहा गया था उसे हमने विष कुंड बना डाला, तथा फिर उसकी भर पेट निन्दा की। उसके सारे मानवीय अधिकार छीन कर न मालूम कितने प्रतिबन्ध उसके ऊपर थोप दिये तथा उसे अशिक्षा, अन्धविश्वास एवं कुरीतियों के गर्त में ढकेल दिया। अब नारी रसोई दारिन, चौकीदारिन तथा बच्चे पैदा करने की मशीन मात्र रह गयी है। क्या नारी की रचना इसलिये की गई थी ? योगीश्वर निमि से कहते हैं-

एवं व्यवायः प्रजया न रत्या।
इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम् ।।

इसी प्रकार अपनी धर्मपत्नी के साथ सहवास की आज्ञा भी विषयभोग के लिये नहीं, धार्मिक परम्परा की रक्षा के निमित्त सन्तान उत्पन्न करने के लिये ही दी गई है। परन्तु जो लोग अर्थवाद के बचनों में फँसे हैं, विषयी हैं, वे अपने इस विशुद्ध धर्म को जानते ही नहीं।

इस प्रतिपादन में स्पष्ट किया है कि नारी विषयभोग की वस्तु नहीं है। विवाह का उद्देश्य काम सेवन नहीं है। विवाह का उद्देश्य बहुत उच्च है। जिस प्रकार दो मित्र परस्पर एक दूसरे की मदद करते हुये लम्बी यात्रा सम्पन्न कर लेते हैं, उसी तरह नर और नारी मिलकर गृहस्थाश्रम के माध्यम से आत्म विकास की अन्तिम मंज़िल को प्राप्त करते हैं। मात्र संतान उत्पन्न करना ही गृहस्थ आश्रम का उद्देश्य नहीं है। यदि समाज को सुयोग्य नागरिकों की आवश्यकता हो तो उसकी माँग के अनुसार अपने विनम्र अनुदान के रूप में सुनागरिक भी प्रदान किये जा सकते हैं। किन्तु जब समाज एवं राष्ट्र में बच्चों की बाढ़ आई हुई हो पेट भरने की रोटी और तन ढकने को वस्त्रों के लाले पड़े हों तब केवल अपनी कामवासना की पूर्ति के लिये अन्धाधुन्ध बच्चे पैदा करते जाना कहाँ की बुद्धिमानी है? समाज की आवश्यकता को देखते हुये ही गृहस्थ का कर्तव्य निर्धारित किया जाता रहा है। आज जैसी स्थिति में आदर्श गृहस्थाश्रम के बारे में युधिष्ठिर को बताते हुये भगवान कृष्ण कहते हैं-

अविप्लुतब्रह्मचर्यैर्गृहस्थाश्रममाश्रितैः।
पञ्चयज्ञपरैर्धर्मः स्थाप्यते पृथिवीतले।।

जो गृहस्थ आश्रम में रहकर अखंड ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये पंच यज्ञों के अनुष्ठान में तत्पर रहते हैं, वे पृथ्वी तल पर धर्म स्थापना करते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कैसा उदात्त आदर्श है ! ब्रह्मचर्य का अर्थ इन्द्रिय संयमपूर्वक महान उद्देश्य के लिये समर्पित जीवन है। हमारे जीवन का उद्देश्य क्षुद्र नहीं महान होना चाहिये। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु भगवान पंचमहायज्ञों के अनुष्ठान का सुझाव देते हैं। यज्ञ का अर्थ हवन मात्र नहीं है। यज्ञ का वास्तविक अर्थ-दान संगतिकरण एवं परोपकार है। हम देव ऋषि एवं पितृ ऋण से ऋणी हैं। यज्ञ के द्वारा हम इन ऋणों से मुक्त होते हैं। अत: अपनी सारी उपलब्धियों को वितरित करते रहना चाहिये। समाज के पीड़ा और पतन के निवारण के द्वारा हम ऋण भार से मुक्त होते हैं। अर्थ दान के द्वारा पीड़ा एवं ज्ञान दान के द्वारा पतन का निवारण किया जा सकता है। यही देव कार्य एवं ऋषि कार्य हैं। गृहस्थ एक सीमित क्षेत्र में अपने सद्गुणों के अनुदान द्वारा अपनी सेवा भावना को परिपुष्ट बनाने वाला आश्रम है। यदि हम इन कर्तव्यों का पालन करते हैं तो हमें किसी तीर्थ में जाने की आवश्यकता नहीं है। हमारा घर ही तीर्थ बन जाता है। भगवान कृष्ण युधिष्ठिर से कहते हैं-

पितृशुश्रूषणं तीर्थं मातृशुश्रूषणं तथा ।
दाराणां तोषणं तीर्थं गार्हस्थ्यं तीर्थमुच्यते ।।

माता पिता की सेवा करना, धर्मपत्नी को सन्तुष्ट रखना, गृहस्थ आश्रम का पालन करना-यह सब तीर्थ कहलाते हैं।

गृहस्थाश्रम में मात्र पति पत्नी ही नहीं माता, पिता, भाई बहिन आदि भी होते हैं। माता, पिता, भाई बहिन आदि की सेवा से हम पितृऋण से उऋण होते हैं। माता और पिता के अनुदान से ही हमारा जन्म सम्भव हुआ है। इनके हमारे ऊपर अनन्त उपकार हैं। सेवा सहायता द्वारा हम इनके ऊपर एहसान नहीं अपने कर्तव्यों का ही पालन करते हैं। छोटे भाई बहिनों की सेवा का उत्तरदायित्व स्वीकार कर हम माता पिता की चिन्ता दूर कर उन्हें समाज सेवा के लिये वानप्रस्थ जीवन की प्रेरणा और सुविधा प्रदान कर सकते हैं। भगवान धर्मपत्नी को भी सन्तुष्ट रखने की प्रेरणा देते हैं। पत्नी को बराबरी का अधिकार देकर उसकी शिक्षा-दीक्षा कीं व्यवस्था कर तथा उसे अनावश्यक प्रतिबन्धों से मुक्त कर परस्पर सहयोग के माध्यम से हम अपने घर में ही स्वर्गीय वातावरण निर्मित कर सकते हैं। फिर हमें सुख शान्ति पाने के लिये स्वर्ग या तीर्थों में जाने की आवश्यकता न पड़ेगी। हमारा घर ही स्वर्ग और तीर्थ का जीता जागता नमूना बन जायेगा। यही हैं हमारे देवता जिनकी हमें आराधना करनी चाहिये। विश्वरूप से अपनी पुरोहिती स्वीकार करने का आग्रह करते हुए देवता कहते हैं-

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्ति: पिता: मूर्ति: प्रजापते:।
भ्राता मरुत्पतेर्मूर्तिर्माता साक्षात् क्षितेस्तनु: ।।

वत्स ! आचार्य वेद की , पिता ब्रह्माजी की, भाई इन्द्र की, और माता साक्षात् पृथ्वी की मूर्ति होती है।

इस आदर्श के अनुसार सारे परिवार का सन्तुलन बनाकर चलना चाहिये। किन्तु इन सबमें माता का स्थान सर्वोपरि है। माता की पृथ्वी से उपमा दी गई है। पृथ्वी याने आधार जिस आधार पर हमारा जीवन टिका हुआ है उसका नाम पृथ्वी है। इसीलिये हम पृथ्वी को भी माता कहते हैं। पृथ्वी की उर्वरा शक्ति बनाये रखना ही उसकी वास्तविक सेवा है। उर्वर पृथ्वी से ही हम विभिन्न अनुदान प्राप्त कर सकते हैं। जो स्थान समग्र जीवन में पृथ्वी का है वही स्थान मनुष्य जीवन में मातृशक्ति या नारी का है। उसके विभिन्न रूपों से हम उपकृत होते हैं। माता रूप में वह अपने शरीर, मन, एवं भावनाओं के रूप में हमें जन्म देती है। बहिन के रूप में निर्मल प्रेम तथा धर्मपत्नी के रूप में सहयोग और बेटी के रूप में वात्सल्य रस की सृष्टि करती है। माता इन सभी रूपों का प्रतीक है। माता का अर्थ समग्र नारी जाति की सेवा। हमने मातृ जाति का निरादर और अन्धाधुन्ध शोषण किया है। इसीलिये आनन्द की यह निझरिणी सूख गई। फलस्वरूप हमारा सारा मानव जीवन ही शुष्क और नीरस हो गया। गलती का प्रायश्चित होना ही चाहिये। मातृ जाति को पुन: उसके गौरव पूर्ण पद पर प्रतिष्ठित करके ही हम आनन्द पा सकते हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण में माँ देवकी से क्षमा माँगते हुये कंस वध के बाद भगवान कृष्ण कहते हैं-

पितु: शतगुणा माता गर्भधारणपोषणात ।
माता च पृथिवीरूपा सर्वेभ्यश्च हितैषिणी।।
नास्ति मातु: परो बन्धु: सर्वेषां जगतीतले।
विद्यामन्त्रप्रद: सत्यं मातु: परतरो गुरु: ।।

परन्तु माता गर्भ में धारण एवं पोषण करती है, इसलिए पिता से सौगुनी श्रेष्ठ है। माता पृथ्वी के समान क्षमाशीला और सबका समान रूप से हित चाहने वाली है; अत: भूतल पर सबके लिए माता से बढ़कर बन्धु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरा कोई नहीं है। विद्या और मंत्र प्रदान करने वाली माता तो वास्तव में परम गुरु है।

यह है माता का भव्य स्वरूप ! किन्तु जब हम आज की परिस्थितियों पर विचार करते हैं तो हमारी आँखों के सामने अंधेरा छा जाता है। कहाँ हैं आज विद्या अर्थात् ज्ञानतथा मंत्र माने विचार प्रदानकरने वाली माताएं ? आज सारा मानव समाज मदालसा, सुमित्रा, विदुला, कुन्ती, जीजाबाई आदि माताओं को चीख चीख कर पुकार रहा है। किन्तु इसमें मातृजाति का क्या दोष? मातृजाति के नृशंस शोषण के परिणाम स्वरूप यह उर्वरा भूमि ऊसर हो गई है। अब इसे उर्वरा बनाने के लिए स्नेह रूपी जल, ज्ञान रूपी प्रकाश स्वावलम्बनरूपी गुड़ाई और श्रद्धा रूपी खाद की आवश्यकता है। तभी यह अपने खोये हुए गौरव को पा सकेगी। नारी तो प्रयत्न करेगी ही किन्तु पुरुष को अपने पापों का प्रायश्चित करना चाहिये और मातृशक्ति को पुनः उसी स्थिति तक पहुँचाना चाहिये।

गृहस्थ आश्रम में व्यक्ति अपने आत्म विकास का अभ्यास करता है। स्वार्थ से आगे बढ़कर व्यापक उत्तरदायित्व स्वीकार करता है। श्रीकृष्ण नन्द बाबा को गृहस्थों के कर्तव्य बताते हुए कहते हैं -

पिता माता गुरुर्भार्या शिष्यः पुत्रः सदाक्षमः।
अनाथा भगिनी कन्या नित्य पोष्या गुरुप्रिया।।

पिता, माता, गुरु, भार्या, शिष्य, स्वयं अपना निर्वाह करने में असमर्थ पुत्र, अनाथ बहिन, कन्या और गुरु-पत्नी का नित्य भरण पोषण करना कर्तव्य है।

गृहस्थ के सीमित क्षेत्र में हम अपनी दिव्य भावनाओं का अभ्यास करते हैं । यह एक छोटी प्रयोग शाला, व्यायामशाला जैसी है। अपनी क्षुद्र कामनाओं एवं वासनाओं से ऊपर उठकर हमें सबके हित का ध्यान रखना पड़ता है। गृहस्थाश्रम कोई शौक मौज करने का आश्रम नहीं है कि हम अपने आश्रितों की उपेक्षा कर अकेले अपनी इन्द्रियों की वासना पूर्ति करते रहें। कृष्ण युधिष्ठिर से कहते हैं :-

बालानामपि बृद्धानां श्रान्तानां चाप्रि ये नराः।
अदत्वाश्नन्ति मिष्टान्नं ते वै निरयगामिनः ।।

जो बच्चों, बूढ़ों तथा थके हुए मनुष्यों को कुछ न देकर अकेले ही मिठाई खाते हैं, उन्हें भी नरक में गिरना पड़ता है।

स्पष्ट है कि गृहस्थ अपने परिवार के सभी सदस्यों की सुविधाओं को ध्यान में रखकर ही चलना चाहिये। केवल अपनी सुख सुविधा को महत्व देने वाला भगवान कृष्ण के शब्दों में दण्ड का भागीदार है।

परिवार के सदस्यों के लिए केवल भोजन वस्त्र की सुविधा जुटा देना पर्याप्त नहीं उन्हें श्रेष्ठ संस्कार भी देना चाहिये। अन्यथा वे असंयमी होने के कारण तरह-तरह के कष्टों में फंसते ही रहेंगे। असंयमी के धन और साधन सभी नष्ट हो जाते हैं।कृष्ण अपने सखाओं को प्रकृति वर्णन के माध्यम से यह नीति सिखाते हुए कहते हैं-

गाधवारिचरास्तापमविन्दञ्छरदर्कजम् ।
यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः।।

थोड़े जल में रहने वाले प्राणियों को शरत्कालीन सूर्य की प्रखर किरणों से बड़ी पीड़ा होने लगी - जैसे अपनी इन्द्रियों के वश में रहने वाले कृपण एवं दरिद्र कुटुम्बी को तरह-तरह के ताप सताते ही रहते हैं।

गृहस्थ एक सरोवर है। अर्थ इस सरोवर के जल के समान है। जिस तरह सदैव जल वृष्टि नहीं होती उसी तरह हमारी आय के स्रोत भी सीमित होते हैं। सरोवर में रहने वाले प्राणियों को जल के आधार पर ही सुख मिलता है। यदि चार प्राणियों के लिये ही जल हो और आठ प्राणी सरोवर में आ जायें तो सबका जीवन खतरे में पड़ जायेगा। इस दुरावस्था से गृहस्थों को सावधान करते हुये भगवान सलाह देते हैं **"तेते पाँव पसारिए जेती लांबी सौर"** इन्द्रियों के संयम के द्वारा ही हम अपने परिवार में अनावश्यक प्राणियों की बाढ़ तथा अनावश्यक खर्चों को रोक सकते हैं। सन्तुलन ही साधना है। हमें **"सादा जीवन और उच्च विचार"** के आधार पर ही गृह व्यवस्था का संचालन करना चाहिये।

यह तो हुआ गृहस्थ जीवन का एक पहलू जिसमें सेवा, सहायता, प्रेम और सहयोग आदि पर बल दिया गया। किन्तु क्या इतने मात्र से काम चल सकता है? माली के हाथ में खुरपी के साथ-साथ कैंची भी चाहिये। खुरपी के द्वारा वह पौधों में मिट्टी चढ़ाता है तथा कैंची के द्वारा टेढ़ी मेढ़ी शाखाओं को काट फेंकता है।सही पौधों के निर्माण के लिये दोनों प्रकार की प्रक्रियाएं आवश्यक हैं। भागवत में कहा गया है-

परोऽप्यपत्यं हितकृद्यथौषधं।
स्वदेहजोऽप्यामयवत्सुतोऽहितः।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छिन्द्यात्तरदंङ्ग यदुतात्मनोंऽहितं।
शेषं सुखं जीवति यद्विवर्जनात।।

कोई दूसरा भी यदि ओषध के समान भलाई करे तो वह एक प्रकार से पुत्र ही है। पर यदि अपना पुत्र भी अहित करने लगे तो रोग के समान वह शत्रु है। अपने शरीर के ही किसी अंग से सारे शरीर की हानि होती हो तो उसको कटा डालना चाहिये, क्योंकि उसे काट देने से शेष शरीर सुख से जी सकता है।

काटने का अर्थ नष्ट करना नहीं है। इसमें भी बच्चे के सुखमय जीवन का उद्देश्य छिपा हुआ है। इसीलिये इसे विषैले अंग के आपरेशन की उपमा दी गई है। यदि परिवार के सदस्यों में दोष दुर्गुण पनपते रहें तो उन्हें बेरहमी से उखाड़ फेंकना चाहिये। हमारा उद्देश्य डाक्टर जैसा-बीमारी को मारना, बीमार को नहीं- होना चाहिये। इसके लिये असहयोग, वर्जन, तथा आवश्यक दण्ड का भी सहारा लिया जा सकता है। ऐसा करते हुये हम अपने कर्तव्य का ही पालन करेंगे। परिवार के स्वार्थ सम्मिलित होते हैं। इसमें हर किसी के, हर मनमाने कार्य का समर्थन नहीं किया जा सकता। निश्चित आचार संहिता के आधार पर ही गृह संचालन किया जाना चाहिये। हम अनावश्यक मोह के वश में होकर बच्चों का भविष्य बिगाड़ देते हैं। हमारे एक हाथ में प्यार तथा दूसरे हाथ में वर्जन का हथियार रहना ही चाहिये। तभी हम समाज को अच्छे नागरिक प्रदान कर सकेंगे। जब बाल कृष्ण बहुत तरह के ऊधम करने लगे तब माँ यशोदा ने उन्हें सुधारने के लिये ऊखल से बाँध दिया। इस प्रसंग का वर्णन करते हुये शुकदेव जी परीक्षित से कहते हैं-

तद् दाम वध्यमानस्य स्वार्भकस्य कृतागसः।
द्व्यङ्गलोनमभूत्तेन संदधेऽन्यच्च गोपिका।।

जब माता यशोदा अपने ऊधमी और नटखट लड़के को रस्सी से बाँधने लगीं, तब वह दो अंगुल छोटी पड़ गयी ! तब उन्होंने दूसरी रस्सी लाकर उसमें जोड़ी।

बच्चों का निर्माण बड़े उत्तरदायित्व का काम है। उनके पालन पोषण करने तथा उन्हें सुसंस्कारवान बनाने की अपनी स्थिति हो तो ही बच्चे पैदा करने चाहिये। यह मान्यता गलत है कि सन्तान हर हालत में लाभदायक सौभाग्य सूचक है। सुपुत्र कुल का उद्धार कर सकता है, तो कुपुत्र कुल का नाश भी कर सकता है। लोग पुत्र होना भगवान की कृपा का फल मानते हैं किन्तु राजा अंग पुत्र का न होना प्रभु की विशेष कृपा का चिन्ह मानते हैं। राजा अंग अपने उद्दंड आततायी पुत्र को लक्ष्य करके कहते हैं-

प्रायेणाभ्यर्चितो देवो येऽप्रजा गृहमेधिनः।
कदपत्यभृतं दुःखं ये न विन्दन्ति दुर्भरम्।।

(वे मन-हीं-मन कहने लगे-) 'जिन गृहस्थों के पुत्र नहीं हैं उन्होंने अवश्य ही पूर्वजन्म में श्रीहरि की आराधना की होगी, इसी से उन्हें कुपूत की करतूतों से होने वाले असह्य क्लेश नहीं सहने पड़ते।'

किन्तु हम इन तथ्यों पर विचार ही नहीं करते। हमारे समाज में पुत्र पैदा करना ही विवाह का चरम उद्देश्य माना जाता है। विवाह का कोई अन्य उच्च आदर्श भी है, यह बात हमारे गले उतरती ही नहीं। फलतः हम शीघ्रातिशीघ्र पुत्र रत्न की प्राप्ति के नशे में आगा-पीछा भूलकर प्रयत्न शील हो जाते हैं। हमें लगता है कि पुत्र पाकर न मालूम कितना सुख और सम्मान पा लेंगे। किन्तु क्या यह संभव है ? सुपुत्रों की आशा में हम कुपुत्रों की लाइन लगा देते हैं। परिणाम स्वरूप हमारे घर, एवं समाज चौपट हो रहे हैं। क्या सुपुत्र पाना इतना सरल है ? किन्तु हम इस पर विचार ही कहाँ करते हैं ? हम पुत्र पाना ही नहीं चाहते हमारे ऊपर तो काम वासना का नशा सदा रहता है। इस काम वासना ने हमें कठपुतली बना रखा है तथा हम इसी के इशारे पर नाचते रहते हैं। इसी क्रीड़ा में न मालूम पुत्र क्यों पैदा हो जाते हैं ? कहीं ये हमारे पापों की उपज तो नहीं हैं ? क्या हमारी हालत प्रहलाद द्वारा वर्णित व्यक्तियों जैसी तो नहीं है ? प्रहलाद अपने मित्र दैत्य बालकों से कहते हैं -

यतो न कश्चत् क्व च कुत्रचिद् वा
दीनः स्वमात्मानमलं समर्थः।
विमोचितुं कामदृशां विहार-
क्रीडामृगो यन्निगडो विसर्गः।।

कामिनियों के मनोरंजन का सामान-उनका क्रीड़ामृग बन रहा है और जिसने अपने पैरों में सन्तान की बेड़ी जकड़ ली है, वह बेचारा गरीब-चाहे कोई भी हो, कहीं भी हो-किसी भी प्रकार से अपना उद्धार नहीं कर सकता।

वास्तव में प्रहलाद हमारे बारे में ही कह रहे हैं। हमारी हालत बिलकुल इसी तरह की है। आज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कामवासना बुरी तरह हमारे ऊपर हावी हो रही है। तथा इसी के परिणामों को भोगते-भोगते हमारा अमूल्य जीवन समाप्त हो जाता है। शेख चिल्ली जैसी आकाश-पाताल मिलाने वाली कितनी भी कल्पनाऐं करते रहें। काम और मोह की ललक पूरी करने में ही हमारा जीवन समाप्त होने वाला है। तो क्या सुपुत्र की कामना व्यर्थ है ? नहीं किन्तु उसके लिये पूर्व तैयारी आवश्यक है। जिस तरह खिलौने बनाने से पूर्व साँचा बनाना आवश्यक है उसी तरह सन्तान पैदा करने से पूर्व हमें आवश्यक तैयारी करनी चाहिये। यदि पति पत्नी दोनों की शारीरिक, मानसिक, आर्थिक स्थिति इस योग्य हो तथा समाज को सुनागरिकों की आवश्यकता हो तभी हमें इस दु:साहस भरे कार्य में हाथ डालना चाहिये। महाभारत में कृष्ण द्वारा ऋषियों को बताया गया प्रसंग इस पर यथेष्ठ प्रकाश डालता है-

व्रतं चर्तुमिहायातस्त्वहं गिरिमिमं शुभम्।
पुत्रं चात्मसमं वीर्ये तपसा लब्धुमागत:।।

मैं तपस्या द्वारा अपने ही समान वीर्यवान् पुत्र पाने की इच्छा से व्रत करने के लिये इस मंगलकारी पर्वत पर आया हूँ।

विवाह के बाद भगवान कृष्ण ने रुक्मिणी के साथ योग्य पुत्र की प्राप्ति के लिये बारह वर्षों तक कठोर तप किया था फलस्वरूप प्रद्युम्न का जन्म हुआ था, जो कृष्ण के ही प्रति रूप थे। तप का अर्थ पूर्व तैयारी ही है। सर्वांगीण तैयारी से जो कार्य किया जाता है उसका परिणाम आशा जनक और यथेष्ठ ही होता है। किन्तु पूर्व तैयारी भर आवश्यक नहीं है। माँ के गर्भ में आने से लेकर जवान होने तक सुसंतति निर्माण का कार्य चलता ही रहता है। अपने बारे में बताते हुये प्रहलाद दैत्य पुत्रों से कहते हैं-

ऋषि: कारुणिकस्वस्या: प्रादादुभयमीश्वर:।
धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च मामप्युद्दिश्य निर्मलम् ।।

देवर्षि नारद जी बड़े दयालु और सर्वसमर्थ हैं। उन्होंने मेरी माँ को भागवतधर्म का रहस्य और विशुद्ध ज्ञान दोनों का उपदेश। करते समय उनकी दृष्टि मुझ पर भी थी।

गर्भ में बालक पर माता के विचारों और कार्यों का सीधा प्रभाव पड़ता है। इसलिये समझदार व्यक्ति उस समय उसे अच्छे से अच्छे वातावरण में रखते थे। प्रहलाद को सुसंस्कारवान बनाने के लिये नारद जी ने उनकी माता को आदर्श निष्ठ बनाया। फल प्रहलाद के रूप में सामने आया। यह तथ्य वैज्ञानिक भी मानते हैं कि गर्भ काल में बच्चों पर जो संस्कार पड़ते हैं वे बड़े स्थायी होते हैं। इसलिये स्वयं माता का भी यह कर्तव्य है कि गर्भ काल में आहार विहार तथा विचारों की दृष्टि से आदर्श बनी रहे तथा परिवार के अन्य लोग भी उसे इस कार्य में सहयोग दें।

इस प्रकार पूर्व तैयारी के साथ सुसंस्कार बना पुत्र ही आवश्यकतानुसार उत्पन्न किए जाने चाहिये। ऐसा एक पुत्र भी पशुओं की तरह पैदा होने और मर जाने वाले अनेक पुत्रों से श्रेष्ठ है। श्रीकृष्ण भगवान, युधिष्ठिर से इस प्रसंग में कहते हैं-

बहुभिर्मुतै: किञ्जातै: पुत्रैर्धर्मार्थवर्जितै:।
वरमेक: पथि तरुर्यत्र विश्रमते जन: ।।

धर्म और अर्थ से वर्जित बहुत से जन्म लेने वाले तथा मरने वाले पुत्रों से क्या लाभ। रास्ते पर स्थित एक वृक्ष ही श्रेष्ठ है, जिसके नीचे अनेक यात्री विश्राम करते हैं।

आज तो बच्चे पैदा करने में धर्म (श्रेष्ठ संस्कार) तथा अर्थ उपयुक्त साधन में से किसी का भी ध्यान नहीं रखा जाता। दोनों का अभाव होते हुए भी बच्चे पैदा किये जाते हैं जो अनर्थ के ही कारण बनते हैं। श्रेष्ठ संतति एक भी बहुत महत्व रखती है। राजा दुष्यंत के एक ही पुत्र हुआ भरत। उसका पालन और विकास कण्व ऋषि के आश्रम में ठीक प्रकार हुआ। फल स्वरूप इतना प्रतापी हुआ कि उसके नाम पर यह देश भारत कहलाया। उसके सम्बन्ध में भागवत् में लिखा है-

कण्व: कुमारस्य बने चक्रे समुचिंना: क्रिया:।
बद्ध्वा मृगेन्द्रांस्तरसा क्रीडति स्म स बालक:।।

महर्षि कण्व ने वन में ही राजकुमार के जात् कर्म आदि संस्कार विधि पूर्वक सम्पन्न किये। वह बालक बचपन में ही इतना बलवान् था कि बड़े-बड़े सिंहों को बलपूर्वक बांध लेता और उनसे खेला करता।

इस प्रकार बच्चों का निर्माण हो या परिवार का निर्वाह गृहस्थ को उसे आम विकास की सीढ़ी मानकर चलना चाहिये। समाज की एक पुष्ट और आदर्श इकाई के रूप में ही उसे विकसित करना चाहिये। जो लोग इस आदर्श को भूलकर मोह लोभ में फंस जाते हैं उनका विकास रुक जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव के माध्यम से इस सम्बन्ध में सावधान रहने का निर्देश देते हुये कहते हैं-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यस्त्वासक्तमतिर्गेहे पुत्रवित्तैषणातुरः ।
स्त्रैणः कृपणधीर्मूढो ममाहमिति बध्यते ।।

प्रिय उद्धव ! जो लोग इस प्रकार का गृहस्थ जीवन न बिताकर घर-गृहस्थी में ही आसक्त हो जाते हैं, स्त्री, पुत्र और धन की कामनाओं में फंस कर हाय-हाय करते रहते हैं और मूढ़तावश स्त्रीलम्पट और कृपण होकर मैं- मेरे के फेर में पड़ जाते हैं, वे बँध जाते हैं।

इसका यह अर्थ नहीं कि शरीर और परिवार की आवश्यकताओं की उपेक्षा कर दी जाय वास्तव में मनुष्य को अपना संतुलन बना कर चलना चाहिये। इसका आदर्श समझाते हुये नारदजी कहते हैं-

यावदर्थमुपासीनो देहे गेहे च पण्डितः।
विरक्तो रक्तवत् तत्र नृलोके नरतां न्यसेत् ।।

बुद्धिमान पुरुष को आवश्यकता के अनुसार ही घर और शरीर की सेवा करनी चाहिये, अधिक नहीं। भीतर से विरक्त रहे और बाहर से साधारण मनुष्यों जैसा ही व्यवहार कर ले।

नारदजी का तात्पर्य यह है कि मनुष्य शरीर और परिवार के प्रति मोह ग्रस्त न हो-केवल कर्तव्य बुद्धि से, विवेक पूर्वक उनका उचित निर्वाह करे, शेष शक्ति लोकोपयोगी कार्यों के लिये सुरक्षित रखे।

परिवार तथा समाज के हित के लिये परिवार के सदस्यों को बहुत बार एक दूसरे से दूर भी रहना पड़ सकता है। बुद्धिमान मनुष्य को चाहिये कि अपने सम्बन्धियों के साथ रहने के अपने मोह को जनहित में बाधक न बनने दे। कंसवध के बाद सार्वजनिक हित की दृष्टि से कृष्ण का मथुरा में ही रहना उचित समझा गया तथा नन्द आदि को उनसे विलग होना पड़ा तो वे दुखी हुये। तब वसुदेव जी ने नन्दबाबा को समझाते हुये कहा था :-

नैकत्र प्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम्।
ओघेन व्यूह्यमानानां प्लवानां स्रोतसो यथा।।

जैसे नदी के प्रबल प्रवाह में बहते हुये बेड़े और तिनके सदा एक साथ नहीं रह सकते, वैसे ही सगे-सम्बन्धी और प्रेमियों का भी एक स्थान पर रहना संभव नहीं है-यद्यपि वह सबको प्रिय लगता है। क्योंकि सबके प्रारब्धकर्म अलग-अलग होते हैं।

गृहस्थ जीवन में ही नहीं उसके बाद अगले चरण में भी परिवार का मोह बाधक बनता है। गृहस्थ की आयु पूरी होने पर मनुष्य को वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करके विश्वपरिवार की सेवा का कार्य प्रारम्भ करने का विधान है। इसके लिये पारिवारिक उत्तरदायित्वों से जल्द से जल्द मुक्त होने का प्रयास करना चाहिये। यदि बच्चे आत्म निर्भर न हों तो उनकी देख रेख का भार सुलक्षिणी पत्नी पर डाल कर पुरुषार्थी व्यक्ति परिवार से मुक्त होकर व्यापक क्षेत्र में सेवा के लिये निकल सकता है। उस संदर्भ में ऋषि कश्यपजी अपनी पत्नी अदिति से कहते हैं-

यामाहुरात्मनो ह्यर्धं श्रेयस्कामस्य मानिनि।
यस्यां स्वधुरमध्यस्य पुमांश्चरति विज्वरः।।

स्त्री को तो त्रिविध पुरुषार्थी की कामना वाले पुरुष का आधा अंग कहा गया है। उस पर अपनी गृहस्थी का भार डालकर पुरुष निश्चिन्त होकर विचरता है।

स्पष्ट है कि नारी से यह आशा की जाती है कि वह अकेले ही परिवार की व्यवस्था बना कर रख सके। नारी को इतना योग्य और क्षमता सम्पन्न बनाकर ही उससे अर्धाङ्गिनी के महान उत्तरदायित्व पूरे कराये जा सकते हैं।

यदि बालक स्वावलम्बी हो गये हों तो पति पत्नी दोनों को वानप्रस्थ ग्रहण करने का विधान है। किन्तु यदि किसी कारण पत्नी उस उत्तरदायित्व को सम्भालने में असमर्थ है तो पुरुष को रुकना नहीं चाहिये। ऐसी स्थिति की मर्यादा बतलाते हुये श्रीकृष्ण जी उद्धव से कहते हैं-

वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य सहैव वा।
वन एव वसेच्छान्तस्तृतीयं भागमायुषः ।।

भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं-प्रिय उद्धव ! यदि गृहस्थी मनुष्य वानप्रस्थ आश्रम में जाना चाहे, तो अपनी पत्नी को पुत्रों के हाथ सौंप दे अथवा अपने साथ ही ले ले और फिर शान्त चित्त से अपनी आयु का तीसरा भाग उसी में बिताये।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति अपने अनुयायियों को गृहस्थ के माध्यम से आत्म विकास का तथा परिवार निर्माण का निर्देश देती है तथा उसके बाद शारीरिक परिवार की सीमा से आगे बढ़कर विश्वबन्धुत्व के आधार पर वानप्रस्थ के कर्तव्य सम्भालने का विधान प्रस्तुत करती है। यह आदर्श परम्परा जब तक देश में रही परिवारों में नर रत्न पैदा होते रहे तथा सारे समाज को अनुभवी निस्प्रह लोक सेवी मिलते रहे, जिनके कारण देश हर क्षेत्र में अद्वितीय बना रहा। इसी पुण्य परम्परा को पुनः जीवित करके हम फिर उसी गौरव को पा सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धन और उसका सदुपयोग

भारतीय संस्कृति के भव्य प्रासाद का निर्माण करते हुए मनीषियों ने जिन आधारों पर मानव जीवन की सर्वांगीण आवश्यकताओं पर विचार कर इसका ढाँचा निर्मित किया उन्हें हम चार पुरुषार्थों के नाम से जानते हैं। ये हैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन्हें ही चतुर्वर्ग या पुरुषार्थ चतुष्टय कहा जाता है। धर्म पूर्वक अर्थ और काम का उपयोग करते हुये मोक्ष के लिये प्रयास करना यही है हमारा लक्ष्य। हमारा व्यक्तित्व जड़ एवं चेतन जिन्हें तम एवं सत् भी कहते हैं के संमिश्रण से बना है। जीवन को ठीक ढंग से चलाने के लिये सन्तुलन आवश्यक है। तथा भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति में संतुलन स्थापित कर ही हम अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं।

सांसारिक धन और साधनों को अर्थ कहते हैं। इनके बिना भी हमारा काम नहीं चल सकता। अतः इनका हमारे जीवन में समुचित स्थान है। इनका किस ढंग से सदुपयोग किया जाय उसका निर्धारण धर्म द्वारा किया जाता है। तथा इनके बारे में हमारे दृष्टि कोण के द्वारा ही यह पता चलता है कि हम आध्यात्मवादी हैं या भौतिक वादी। आध्यात्म वादी इनका उपयोग करता है तथा भौतिक वादी उपयोग। धन से हमारे जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। अतः हमारे यहाँ धन को लक्ष्मी कहा गया है। लक्ष्मी याने माता जिस तरह हमारा पोषण करती है उसी तरह धन से भी हमारा पोषण होंता है। किन्तु यह बात याद रखने की है कि माँ से सिर्फ पोषण पाने के ही हम अधिकारी हैं। माँ का लाभ हर क्षेत्र में उठाया जा सकता है, किन्तु उसकी मर्यादायें हैं। इसी तरह हमारे जीवन में धन के उपयोग की मर्यादायें निश्चित हैं। धन के उद्देश्य के बारे में राजा निमि को बताते हुए योगीश्वर चमस कहते हैं-

धनं धर्मैकफलं यतो वै।
ज्ञानं सविज्ञानमनुप्रशान्ति।
गृहेषु युञ्जन्ति कलेवरस्य
मृत्युं न पश्यन्ति दुरन्तवीर्यम्।।

धन का उपयोग धर्म अर्थात् सत्कार्यों में ही किया जाना चाहिये। तभी उसका फल ज्ञान विज्ञान एवं शान्ति के रूप में मिलता है। परन्तु यह कितने खेद की बात है कि लोग उस धन का उपयोग घर-गृहस्थी के स्वार्थों में या काम भोग में ही करते हैं और यह नहीं देखते कि हमारा यह शरीर मृत्यु का शिकार है और वह मृत्यु किसी प्रकार भी टाली नहीं जा सकती।

योगी चमस धन के सदुपयोग की बात के साथ मृत्यु का स्मरण दिलाते हैं। धन कितना भी अधिक संग्रह कर लिया जाय, मृत्यु के बाद साथ नहीं जा सकता। हां उसे श्रेष्ठ कार्यों में लगाने से प्राप्त पुण्य और सन्तोष साथ जा सकता है। इसीलिये ईसावास्य उपनिषद में ऋषि ने कहा है **'कस्य स्विद्धनम्'** धन किसका है ? अर्थात् वह किसी का होकर नहीं रहता। लोगों द्वारा उसका संग्रह कर भी लिया जाय तो वह अनेक प्रकार की परेशानियाँ संग्रहकर्ता को भी देता है- उसकी चपेट में दूसरे भी आ जाते हैं। राजा निमि से दत्तात्रेय जी कहते हैं-

जायात्मजार्थपशुभृत्यगृहाप्तवर्गान्
पुष्णाति यत्प्रियांचकीर्षया वितन्वन्।
स्वान्ते सकृच्छ्रमवरुद्धधनः स देहः
सृष्ट्वास्य बीजमवसीदति वृक्षधर्मा।।

जीव जिस शरीर को प्रिय करने के लिये ही अनेकों प्रकार की कामनायें और कर्म करता है वह स्त्री, पुत्र, धन, दौलत, हाथी, घोड़े, नौकर चाकर, घर द्वार और भाई बन्धुओं का विस्तार करते हुये उनके पालन पोषण में लगा रहता है। बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ सहकर धन संचय करता है। आयु पूर्ण होने पर वही शरीर स्वयं तो नष्ट होता ही है,वृक्ष के समान दूसरे शरीर के लिये बीज बोकर उसके लिये भी दुःख की व्यवस्था कर जाता है।

धन को आवश्यकता से अधिक महत्व इसलिये मिल जाता है कि हम अपने आप को मात्र शरीर मान बैठते हैं। हम शरीर नहीं हैं, यह तो हमें साधन के रूप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में मिला हुआ है। किन्तु इस तथ्य को भुलाकर हम अन्धाधुन्ध वस्तुओं और व्यक्तियों का संग्रह करने में लग जाते हैं। हम सोचते हैं कि जितनी अधिक वस्तुऐं हमारे पास होंगी हम उतने ही ज्यादा सुखी होंगे। किन्तु क्या ऐसा होना सम्भव है ? हम एक निश्चित मात्रा ही में साँसारिक वस्तुओं का उपयोग कर सकते हैं। न हम अधिक खा सकते हैं न अधिक पहिन सकते हैं। हम सोचते हैं हम न सही हमारे उत्तराधिकारी ही हमारी सम्पत्ति का उपभोग करेंगे। किन्तु ऐसा सोचकर हम अपनी सन्तानों का भविष्य भी चौपट कर डालते हैं। वास्तव में सद्गुण ही मनुष्य की सच्ची सम्पत्ति है। धन तो सद्गुणों द्वारा मिलने वाली एक साधारण उपलब्धि ही है। किन्तु हम अपनी सन्तानों को सद्गुणी बनाने की परवाह न कर उन्हें अनावश्यक संपत्ति उत्तराधिकार में देकर उन्हें आलसी और अकर्मण्य बना जाते हैं। आइए विचार करें कि क्या धन के द्वारा सुख पाया जा सकता है ? प्रहलाद अपने साथी दैत्य पुत्रों को समझाते हुये कहते हैं-

रायः कलत्रं पशवः सुतादयो
गृहा मही कुञ्जरकोशभूतयः।
सर्वेऽर्थकामाः क्षणभंगुरायुषः
कुर्न्ति मर्त्यस्य कियत् प्रियं चलाः।।

अरे भाई ! धन, स्त्री, पशु, पुत्र, पुत्री, महल, पृथ्वी, हाथी,खजाना और भाँति भाँति की विभूतियाँ और तो क्या; संसार का समस्त धन तथा भोग सामग्रियाँ इस क्षण भंगुर मनुष्य को क्या सुख दे सकती हैं। वे स्वयं ही क्षण भंगुर हैं।

संसार का अर्थ ही है सरकने वाला। यहाँ क्षण क्षण में परिवर्तन होता रहता है। अब यदि हम यहाँ स्थायित्व की कल्पना कर वस्तुओं के द्वारा सुख पाने का प्रयत्न करें तो क्या हम स्थाई सुख पा सकेंगे। जब तक कोई वस्तु हमें नहीं मिलती तब तक हमें लगता है कि सारा सुख उसी में केंद्रिन्त है। किन्तु वस्तु के मिलने पर पता चलता है कि अभी सुख तो बहुत दूर है। तब फिर हम दूसरी वस्तुओं को पाने हेतु लालायित हो उठते हैं। इसी का नाम है मृगतृष्णा। यदि यह मान भी लिया जाय कि वस्तुओं में सुख है तथा उनका संग्रह भी विपुल परिमाण में कर लिया जाय तो क्या इस संसार के नियम के अनुसार हम उनका उपभोग कर सकेंगे ? या तो वस्तुऐं ही हम से छिन जायँगी या इनका उपभोग करने वाला शरीर ही छिन जायेगा। अतः विवेक का तकाजा है कि इस अन्धी दौड़ से हम अपने आप को अलग कर लें तथा अपने वास्तविक लक्ष्य की ओर गतिशील हों। उसी के लिये धन का उपयोग कर सकें तो करें अन्यथा उसे अनर्थ का कारण न बनने दें। दत्तात्रेय भक्त प्रहलाद से कहते हैं-

स्वर्गापवर्गयोर्द्वार प्राप्य लोकमिमं पुमान्।
द्रविणे कोऽनुषज्येत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि।।

यह मनुष्य शरीर मोक्ष और स्वर्ग का द्वार है, इसको पाकर भी ऐसा कौन बुद्धिमान मनुष्य है, जो अनर्थों के धाम धन के चक्कर में फँसा रहे।

यदि हम सुख पाना चाहते हैं तो हमें स्वर्ग में प्रवेश करना चाहिये। इसके लिये मरने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि स्वर्ग किसी स्थान विशेष का नाम नहीं है। स्वर्ग वस्तुओं और परिस्थितियों में नहीं हमारे अन्दर ही निवास करता है। स्वर्ग का अर्थ है उत्कृष्ट चिन्तन। यदि हमारी विचारणा उच्चकोटि की हो तो हम कहीं भी और कैसी भी परिस्थिति में क्यों नहीं हों आनन्द से ओत-प्रोत रहेंगे। इसी तरह मुक्ति का अर्थ है वासनाओं और तृष्णाओं से मुक्ति। स्वर्ग और मुक्ति यही हैं। इस मानव जीवन के दो लाभ हैं जो कि परिस्थितियों पर निर्भर न होकर हमारी मनः स्थिति पर निर्भर हैं। लेकिन हम यह तथ्य भूल जाते हैं और सोचते हैं कि धन संग्रह से हम अपने लक्ष्य को पालेंगे। लेकिन यह बड़ी भारी भ्रान्ति है ! इस संदर्भ में मनुष्य को सावधान करते हुये भगवान कृष्ण उद्धव से कहते हैं-

अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्ष रक्षणे व्यये।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम्।।

धन को साधन और सिद्धि मानने वाले को उसकी वृद्धि करने, रक्षा करने, खर्च करने में तथा उसके नाश और उपभोग में- जहाँ देखो वहीं निरन्तर परिश्रम, भय, चिन्ता, और भ्रम का ही सामना करना पड़ता है।

धन वास्तव में अपने में कुछ भी नहीं है। वह तो जड़ है। वह एक साधन है तथा यह साधन का प्रयोग करने वाले पर निर्भर है कि वह साधन से अपना हित करता है या अहित। यदि सूझ-बूझ हो तो जहर को भी उपयोगी बनाया जा सकता है। अन्यथा उपयोग न जानने पर वह विनाश तो करेगा ही। धन भी दुधारी तलवार की तरह है जो विजय भी दिला सकता है तथा हमारी गर्दन भी कटा सकता है। जब अनावश्यक धन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

इकट्ठा हो जाता है तब वह व्यक्ति में तरह-तरह की बुराइयाँ उत्पन्न करता है। "कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय" मद, शेखी खोरी, आलस्य, प्रमाद, व्यसन, जुआ आदि न मालूम कितनी विकृतियाँ धन की उपज हैं। युधिष्ठिर द्वारा जुए में राज-पाट हार जाने के बाद कृष्ण कहते हैं-

वीर सेन सुतो यैस्तु राज्यात् प्रभ्राशितः पुरा।
अतर्कितविनाशश्च देवनेन विशाम्पते ।।

जिन दोषों ने पूर्वकाल में वीरसेन पुत्र महाराज नल को राज सिंहासन से च्युत किया था। नरेश्वर ! जुआ खेलने से सहसा ऐसा नाश उपस्थित हो जाता है, जो कल्पना में भी नहीं आ सकता।

इस प्रकार धन और उससे सम्बन्धित व्यसनों द्वारा व्यक्ति अपना भी अहित करता है तथा अपने आश्रितों के दुख का भी कारण बनता है। नल और युधिष्ठिर की कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। आदर्श महापुरुष होने के बाद भी अनावश्यक धन ने इनमें जुआ खेलने का शौक पैदा किया फलतः इन्हें और इनके आश्रितों को कष्ट उठाने पड़े वे सर्वविदित हैं। आज के धनिकों में भी धन सम्बन्धी बुराइयाँ स्पष्ट देखी जा सकती हैं। इसीलिये अनावश्यक धन संग्रह से सावधान करते हुये नारदजी युधिष्ठिर से कहते हैं -

यावद्भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ।।

मनुष्यों का अधिकार केवल उतनेही धन पर है, जितने में उनकी भूख मिट जाय। इससे अधिक सम्पत्ति को जो अपनी मानता है, वह चोर है, वह चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिये।

कैसा उच्च आदर्श है। धन किसी व्यक्ति का नहीं सम्पूर्ण समाज का है। जब कोई व्यक्ति लोभवश वस्तुओं का संग्रह करने लगता है तब समाज में आवश्यक वस्तुओं की कमी पड़ने लगती है। इसीलिये हमारे धर्म में परिग्रह को पाप और अपरिग्रह को पुण्य माना गया है। इसका यह अर्थ नहीं कि हम द्रव्योपार्जन ही न करें। या अपनी सीमित आवश्यकताओं के लिये ही कमाई करें। अपरिग्रह का अर्थ है अनावश्यक संग्रह न करना। यदि भगवान ने हमें धन कमाने की क्षमता, प्रतिभा और सुविधा दी है तो हम अवश्य **"सौ हाथों से कमाऐं और हजार हाथों से बाँटें"** धन का सर्वोत्तम उपयोग दान ही है। किन्तु दान का अर्थ जरूरत मन्दों को विनय पूर्वक देना ही है। अपने यश या अहंकार प्रदर्शन के लिये खर्च करना दान नहीं है।

आवश्यकता से अधिक धन अपने पास न रखने के आदर्श का पालन हमारे देश में बड़ी कड़ाई से किया जाता रहा है। लोग अपने जीवन काल में ही संग्रहीत धन को सत्कार्यों में लगा देते थे। यदि संयोग वश कोई व्यक्ति अधिक धन छोड़कर मर जाता था तो उसके पुत्र अथवा कन्या हितैषी उस धन को लोकोपयोगी कार्यों में लगा देते थे। श्राद्ध इसी का नाम है। मृतक पर आश्रित कोई व्यक्तिवादी आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी नहीं है, तो उसे स्वावलम्बी बनाने भर के लिये आवश्यक धन ही लिया जाने का औचित्य है। शेष धन सत्कार्यों द्वारा समाज को लौटा देने का विधान श्राद्ध कर्म में है। आज तो श्राद्ध के नाम बड़े-बड़े भोज भंडारे होते हैं जो निरर्थक ही नहीं हानिकारक भी हैं। भागवत् में नारद जी राजा युधिष्ठिर को ऐसा अपव्यय करने से रोकते हुये कहते हैं-

द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ।
भोजयेत् सुसमृद्धोऽपि श्राद्धे कुर्यान्न विस्तरम् ।।

देव कार्य में दो और पितृ कार्य में तीन अथवा दोनों में एक-एक ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये। अत्यन्त धनी होने पर भी श्राद्ध कर्म में इस प्रकार का विस्तार नहीं करना चाहिये।

श्राद्ध का अर्थ है धन का श्रद्धापूर्ण सद्व्यय । जिसका पेट भरा हुआ है ऐसे लोगों को खिलाने तथा जिनके पास धन का भंडार है तथा जो समाज सेवा नहीं करते ऐसे लोगों को दान दक्षिणा देना धन का दुरुपयोग तथा उद्धत प्रदर्शन मात्र है। इससे दाता एवं गृहीता किसी का भी नहीं भला होता। श्राद्ध के नाम पर कुप्रथा को तत्काल बन्द किया जाना चाहिये तथा मृतात्मा की शान्ति के लिये लोकोपयोगी कार्यों में ही मृतक की गाढ़ी कमाई का धन खर्च करना चाहिये।

वास्तव में ईमानदारी एवं परिश्रम पूर्वक कमाई करने पर अनावश्यक धन इकट्ठा ही नहीं होता। तथा यदि कुछ बचता भी है तो तत्काल ही उसका सद्व्यय भी हो जाता है। हमारा आदर्श भोग नहीं त्याग है। **"तेन त्यक्तेन भुंजीथा"** अपने कर्तव्यों को पूरा करने के बाद बचे हुये धन से मात्र जीवन निर्वाह का ही हमें अधिकार है संग्रह हमारा लक्ष्य नहीं होना चाहिये। गृहस्थ धर्म का वर्णन करते हुये नारदजी युधिष्ठिर से कहते हैं-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सिद्धैर्यज्ञावशिष्टार्थैः कल्पयेद् वृत्तिमात्मनः।
शेषे स्वत्वं त्यजन्प्राज्ञः पदवीं महतामियात्।।

गृहस्थ को चाहिये कि प्रारब्ध से प्राप्त और पंच यज्ञ आदि से बचे हुये अन्न से ही अपना जीवन निर्वाह करे। जो बुद्धिमान पुरुष इसके सिवा और किसी से आकर्षित नहीं उन्हें सन्तों का वरदान प्राप्त होता है।

"आत्मवत् सर्व भूतेषु" की अनुभूति ही संतत्व है। जिसे अपना ही आत्मा सब प्राणियों में रमा हुआ दिखाई देगा उसे धनी बनने और मौज मजा करने की कैसे सूझेगी। वह तो पीड़ित समाज की सेवा में अपना कण-कण और क्षण-क्षण समर्पित कर देगा। हमारी वास्तविक आवश्यकताएं बहुत थोड़ी हैं। बहुत कम में हमारा जीवन निर्वाह हो सकता है किन्तु लोभ के वश में होकर हम सारे संसार का सुख चैन छीन कर स्वयं सारी सम्पत्ति का संग्रह कर लेना चाहते हैं। नारदजी युधिष्ठिर से कहते हैं-

कामस्यान्तं च क्षुत्तृड्भ्यां क्रोधस्यैतत्फलोदयात्।
जनौ याति नलोभस्य जित्वा भुक्त्वा दिशो भुवः।।

भूख और प्यास मिट जाने पर खाने पीने की कामना का अन्त हो जाता है। क्रोध भी अपना काम पूरा करके शान्त हो जाता है। परन्तु यदि मनुष्य पृथ्वी की समस्त दिशाओं को जीत ले और भोग ले, तब भी लोभ का अन्त नहीं होता।

यह है लोभ का प्रभाव इस लोभ रूपी दैत्य का पेट आज तक कोई नहीं भर सका। पृथ्वी की सारी धन सम्पदा भी इसके लिये अपर्याप्त है। यह दैत्य जिसके पीछे लग जाता है उसका जीवन जीता जागता नरक बन जाता है। पराए धन की लालच में दिन रात वह लार टपकाता हुआ घूमता ही रहता है। इसके चंगुल में फँसे हुये व्यक्ति को ही दरिद्री कहा गया है। **"दरिद्रो यस्त्वसंतुष्टा"** जो असन्तुष्ट है वही दरिद्री है। उस लोभी की कहानी प्रसिद्ध ही है जिसने देवता से वरदान माँगा था कि मैं जिस वस्तु का स्पर्श करूँ वह सोने की हो जाय। फलतः उसका खाना, पीना, वृक्ष, पौधे, नौकर, चाकर, स्त्री, सन्तान आदि सभी सोने के हो गये थे। किन्तु, क्या सोना किसी को आज तक सुख शान्ति दे सका है ? वह लोभी भी अपनी मूर्खता पर सिर धुन-धुन कर रोया और पछताया था। यही होता है लोभ का परिणाम । नारदजी युधिष्ठिर से कहते हैं-

पश्यामि धनिनां क्लेशं लुब्धानामजितात्मनाम्।
भयादलब्धनिद्राणां सर्वतोऽभिविशङ्किनाम् ।।

लोभी और इन्द्रियों के वश में रहने वाले धनियों का दुःख तो मैं देखता रहता हूँ। भय के मारे उन्हें नींद नहीं आती। सब पर उनका सन्देह बना रहता है।

यह स्थिति आज भी समाज में देखी जा सकती है। इस तरह लोभी व्यक्ति अपने लिये, परिवार के लिये, एवं समाज के लिये अभिशाप स्वरूप होता है। नारदजी आगे कहते हैं-

राजतश्चोरतः शत्रोः स्वजनात्पशुपक्षितः ।
अर्थिभ्यः कालतः स्वस्मान्नित्यं प्राणार्थवद्भयम्।।

जो जीवन और धन के लोभी हैं-वे राजा, चोर, शत्रु, स्वजन, पशु, पक्षी, याचक और काल से यहाँ तक कि आप से भी सदा डरते रहते हैं।

अपने आपसे इसलिए डरते हैं कि यदि हमारे अन्दर सद्भावना जाग गयी तो धन दे बैठेंगे। सद्भावना आत्मा का सहज गुण है। यही है धन का सुख ! क्या इसलिये हम अपना सारा अमूल्य जीवन नष्ट कर रहे हैं ? वास्तव में पहिले तो हम सुख पाने के लिये ही धन संग्रह प्रारम्भ करते हैं, किन्तु संग्रह में इतनी मादकता है कि हमें उसी में रस आने लगता है। फिर हम धन का मूल उद्देश्य ही भूल जाते हैं तथा दिन रात संग्रह वृत्ति में ही डूबे रहते हैं। फलतः हमारी इस तरह दुर्दशा होती है। दत्तात्रेय जी प्रहलाद से कहते हैं-

विरागः सर्वकामेभ्यः शिक्षितो मे मधुव्रतात् ।
कृच्छ्राप्तं मधुवद् वित्तं हत्वाप्यन्यो हरेत्पतिम्।।

मधुमक्खी जैसे मधु इकट्ठा करती है, वैसे ही लोग बड़े कष्ट से धन संचय करते हैं; परन्तु दूसरा ही कोई उस धन-राशि के स्वामी को मार कर उसे छीन लेता है। इससे मैंने यह शिक्षा ग्रहण की कि विषय-भोगों से विरक्त ही रहना चाहिये।

आये दिन अनेकों को हम अपनी जीवन भर की कमाई से हाथ धोते हुए देखते ही रहते हैं। यदि हमने संग्रह कर भी लिया है तो उसके सुरक्षित रहने एवं हमारे ही काम आने की कोई गारन्टी नहीं है। कभी भी वह हमसे छिन सकता है। अतः बुद्धिमानी इसी में है कि तृष्णा पिशाचिनी से हम अपना पिंड छुड़ा लें, संग्रहीत धन का सदुपयोग करें तथा उस विश्वम्भर पर अडिग आस्था रखें जो चींटी से लेकर हाथी तक की निर्वाह व्यवस्था बनाता है। हमें उसी की इच्छानुसार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

चलना तथा उसी का कार्य करना चाहिये। आदि पुराण में भगवान कृष्ण कहते हैं:-

संचयो न हि कर्त्तव्यो मद्भक्तैः कृपणैर्यथा ।
संचयस्य विनाशो हि जायते निश्चितो बुधैः।।
यस्याहं च सदा दाता स कथं कृपणो भवेत् ।
यत्राहं तत्र किं नास्ति भक्तः किं कृपणायते ।।

भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं- मेरे भक्तों को कृपणों की तरह अधिक संचय नहीं करना चाहिये। बुद्धिमानों का सुनिश्चित मत है कि संचित वस्तु का एक-न-एक दिन विनाश अवश्य होता है। जिस भक्त के लिये मैं सर्वदा सब कुछ देने को प्रस्तुत हूँ, उसे कृपण बनने की क्या आवश्यकता है ? जहाँ मैं हूँ, वहाँ क्या नहीं है ? फिर मेरा भक्त कृपण कैसे हो सकता है?

कैसा सुनिश्चित आश्वासन है। वास्तव में सारी सम्पत्ति उसी की है। **"सम्पत्ति सब रघुपति कै आही"** जब हम उसके युवराज हैं तो हमें किस चीज की कमी और किस बात की चिन्ता? हम अपने कर्तव्य का पालन करें वह अपने कर्तव्य का पालन करेगा। भविष्य की अनावश्यक चिन्ताओं से मुक्त होकर हमें प्रभु के इस उद्यान को पुष्पित, पल्लवित, सुरम्य तथा सुरभित बनाने की प्राणपण से चेष्टा करनी चाहिए। यदि हम गंगा के समान लोक मंगल की भावना से, जलती हुई धरती को शीतल बनाने हेतु चल पड़ेंगे तो हिमालय रूपी हमारा पिता हमें कभी सूखने न देगा। किन्तु यदि हमने उससे सम्बन्ध विच्छेद कर अपनी मनमानी की तो हमारी दशा बरसाती नालों जैसी ही होगी। शुकदेव परीक्षित से कहते हैं-

आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः।
पुंसो यथास्वतन्त्रस्य देहद्रविणसम्पदः।।

छोटी-छोटी नदियां, जो जेठ-आषाढ़ में बिल्कुल सूखने को आ गई थीं, वे अब उमड़ घुमड़ कर अपने घेरे से बाहर बहने लगीं-जैसे अजितेन्द्रिय पुरुष के शरीर और धन-सम्पत्तियों का कुमार्ग में उपयोग होने लगता है।

वर्षा का जल प्राप्त कर बरसाती नदियां थोड़े दिनों के लिये भले ही इतरा लें। तथा अपने किनारों को तोड़ कर लोगों को नुकसान पहुँचा कर अपने अहंकार का उद्धत प्रदर्शन कर लें। किन्तु वर्षा ऋतु की समाप्ति के बाद वे खाली ही पड़ी रहने वाली हैं। इसी तरह दुष्ट लोग भी धन पाकर थोड़े दिनों के लिये संसार में तबाही मचा देते हैं। किन्तु इससे किसी का क्या भला होने वाला है ? काल चक्र अपनी गति से चलता रहता है, तथा पापों का घड़ा भर जाने पर फूटता ही है। समयानुसार उन्हें अपने पापों का दंड मिलता है। तब उनकी समझ में आता है कि हमने कितनी बड़ी गलती कर डाली। सम्पत्ति के मद में मतवाले कुबेर पुत्र नल और कूबर को फटकारते हुये नारदजी ने कहा:-

असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमञ्जनम्।
आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ।।

जो दुष्ट श्रीमद से अन्धे हो रहे हैं, उनकी आँखों में ज्योति डालने के लिये दरिद्रता ही सबसे बड़ा अंजन है, क्योंकि दरिद्र यह देख सकता है कि दूसरे प्राणी भी मेरे ही जैसे हैं।

यदि हम सम्पन्नता की चकाचौंध में मनुष्यता को न देख सके तो कब दरिद्रता देवी हमारे ऊपर सवार हो जायें कहा नहीं जा सकता। अतः हमें धर्म मर्यादाओं के अन्दर रहते हुये प्राप्त क्षमताओं का सदुपयोग ही करना चाहिये। यह कितनी कृतघ्नता है कि हमारे शेष भाई तो भूखों मरें तथा हम मौज उड़ाएँ। हमारी प्रामाणिकता की परीक्षा लेने के लिये ही ईश्वर ने हमें धन सम्पत्ति सौंपी है। हम भगवान की सम्पत्ति के कोषाध्यक्ष मात्र हैं। अपने वेतन के अतिरिक्त हमें सम्पत्ति के दुरुपयोग का कोई अधिकार नहीं है। किन्तु यदि हम ऐसा करते हैं तो निश्चित ही दंड के पात्र होंगे। महाभारत में भगवान कृष्ण युधिष्ठिर से कहते हैं-

विद्यमाने धने यस्तु दानधर्मविवर्जितः ।
मृष्टमश्नाति यश्चैको वृथा जीवति सोऽपि च ।।

जो धन होने पर भी दान और धर्म नहीं करता तथा दूसरों को न देकर अकेले ही मिठाई खाया करता है, वह भी व्यर्थ ही जीता है।

गोस्वामी तुलसी दास ने भी कृपण को मृतक कहा है। मात्र खाना पीना और स्वांस लेना छोड़ना ही जीवन की निशानी नहीं है। ऐसा तो चक्की और लुहार की धोंकनी भी करती है। तो क्या उन्हें भी जीवित मान लिया जाय ? जीवन का अर्थ है उत्सर्ग। अपनी सारी क्षमताऐं लोकमंगल के लिये अर्पित कर देना ही वास्तविक जीवन है। सृष्टि का कण-कण इसी प्रक्रिया में संलग्न है। वृक्ष, नदी, बादल, पर्वत, समुद्र आदि हमें सही जीवन की शिक्षा देते हैं। मात्र सिद्धान्तों की चर्चा

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करना ही काफी नहीं है। आध्यात्मिकता की कसौटी इसमें है कि हम सिद्धान्तों के लिये कितना त्याग करते हैं। महामानवों के जीवन इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। जब शुक्राचार्य ने बलि को भगवान वामन को दान करने से रोका तब बलि ने कहा -

सुलभा: युधि विप्रर्षे ह्यनिवृत्तास्तनुत्यज: ।
न तथा तीर्थ आयाते श्रद्धया ये धनत्यज: ।।

गुरुदेव ! ऐसे लोग संसार में बहुत हैं, जो युद्ध में पीठ न दिखाकर अपने प्राणों की बलि चढ़ा देते हैं, परन्तु ऐसे लोग बहुत दुर्लभ हैं, जो सत्पात्र के प्राप्त होने पर श्रद्धा के साथ धन का दान करें।

इस प्रसंग से हमें यह शिक्षा भी मिलती है कि अपने हितैषी कहलाने वाले लोगों के विरोध करने पर भी अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये। हमारे सहयोगियों के भी कुछ स्वार्थ होते हैं। उन्हीं के अनुसार हमें शिक्षा देते हैं। किन्तु विवेक हमारा सच्चा मार्गदर्शक है। हमें उसी के अनुसार ही चलना चाहिये। धन के सिद्धान्तनिष्ठ विवेक के बारे में हमारा दृष्टिकोण इस तरह का होना चाहिये। नारदजी युधिष्ठिर से कहते हैं-

दिव्यं भौमं चान्तरिक्षं वित्तमच्युतनिर्मितम् ।
तत् सर्वमुपभुञ्जान एतत् कुर्यात् स्वतो बुध: ।।

बुद्धिमान् पुरुष वर्षा आदि के द्वारा होने वाले अन्नादि, पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले सुवर्ण आदि अकस्मात् प्राप्त होने वाले द्रव्य आदि तथा और सब प्रकार के धन भगवान् के ही दिये हुये हैं-ऐसा समझ कर मर्यादा के अनुसार उनका उपयोग करता हुआ संचय न करे, उन्हें पूर्वोक्त सेवा आदि कर्मों में लगा दे।

यदि हम विचार करें तो समझ सकते हैं कि संसार में जो कुछ है, सब ईश्वर का ही है। हम तो खाली हाथ ही आते हैं। तथा खाली हाथ ही यहाँ से विदा होते हैं। आज तक कोई भी यहाँ से एक कण भी अपने साथ नहीं ले जा सका। फिर क्यों न हम प्रभु की वस्तु प्रभु को ही समर्पित कर बदले में त्यागी और दानी का श्रेय सम्मान और पुण्य अर्जित कर हँसते हुये विदा हों। प्रश्न विचारणीय है ? यदि साहस है तो आइए संकल्प करें।

"मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर"
"तेरा तुझ को सौंपता क्या लागत है मोर"

भेद हीन सामाजिक दृष्टिकोण

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसकी प्रगति, उन्नति एवं विकास ही नहीं सुरक्षा और अस्तित्व बनाये रखने के लिये भी दूसरों की आवश्यकता पड़ती है। अन्य जीव तो अपने-अपने बलबूते भी रह लेते हैं लेकिन मनुष्य को मनुष्य के सहयोग की आवश्यकता कदम कदम पर पड़ती है। गाय का बछड़ा जन्म के कुछ समय बाद ही फुदकने लगता है तथा अपनी आवश्यकतानुसार माँ के पास जाकर स्वयं दूध पी लेता है। किन्तु मनुष्य का बालक तो वर्षों पराश्रित ही रहता है। उसे देखें तो शिक्षा, सभ्यता, विज्ञान व्यापार, कृषि उद्योग आदि सभी क्षेत्रों में अकेला व्यक्ति कुछ अर्थ नहीं रखता, उसे सामाजिक व्यवस्था बनाकर ही रहना पड़ता है।

वास्तव में देखा जाय तो अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य की अद्भुत प्रगति के पीछे उसकी सामूहिकता-सामाजिकता की वृत्ति ही है। बुद्धि भी मनुष्य की एक बड़ी विशेषता है-किन्तु सामूहिकता की उपेक्षा करके वह भी अपना महत्व खो बैठती है। जब तक मनुष्य अपने आपको सामाज का अंग मानता है-सामाजिक मर्यादाओं का ठीक-ठीक पालन करता रहता है-सामूहिकता में स्वार्थ वृत्ति को बाधक नहीं बनने देता तब तक वह व्यक्ति और उसका समाज प्रगति करता चलता है। लेकिन जब व्यक्ति अपने स्वार्थ को समाज से अधिक महत्व देने लगता है तो समाज गिरने लगता है और कुछ ही समय बाद वह व्यक्ति स्वयं भी असामाजिकता का दंड पा जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समाज की अपेक्षा जब व्यक्तिगत स्वार्थों को महत्व देते हैं तब भारतीय संस्कृति के अनुसार असुरता का लक्षण माना जाता है। भक्त प्रहलाद अपने पिता हिरण्यकशिपु को दुष्टता छोड़कर श्रेष्ठ जीवन अपनाने का आग्रह करते हुये कहते हैं-

जह्यासुरं भावमिमं त्वमात्मनः।
समं मनो धत्स्व न सन्ति विद्विषः।।
ऋतेऽजितादात्मन उत्पथस्थितात्।
तद्धि ह्यनन्तस्य महत् समर्हणम्।।

आप अपना यह असुर भाव छोड़ दीजिये। अपने मनको सबके प्रति समान बनाइये। इस संसार में अपने वश में न रहने वाले कुमार्ग गामी मन के अतिरिक्त और कोई शत्रु नहीं है। मन में सबके प्रति समता का भाव लाना ही भगवान की सबसे बड़ी पूजा है।

हिरण्यकश्यप केवल अपनी सम्पन्नता को महत्व देता था। मेरी तरह समाज में व्यक्तियों की भी आवश्यकतायें हो सकती हैं यह सोचना ही नहीं चाहता था। यह असुरता का भाव है। इसे छोड़े बिना श्रेष्ठ जीवन क्रम अपनाया ही नहीं जा सकता। भक्त प्रहलाद सबके प्रति समता के भाव को भगवान की श्रेष्ठ पूजा कहते हैं। वास्तव में सब में भगवान की चेतना का अनुभव करने वाला व्यक्ति दूसरों की आवश्यकता देखकर उन्हें जो कुछ देता है-वह ईश्वर को समर्पित करने जैसा ही होता है। जब कोई व्यक्ति यह तथ्य भूल जाता है कि सभी में प्रकाशित होने वाला आत्मा तत्व एक ही है तभी वह स्वार्थी बनता है। ब्राह्मण विश्वरूप के सामने अपनी योजना रखते हुये देवता लोग कहते हैं-

दयाया भगिनी मूर्तिर्धर्मस्यात्मातिथिः स्वयम्।
अग्नेरभ्यागतो मूर्तिः सर्वभूतानि चात्मनः।।

इसी प्रकार बहिन दया की, अतिथि धर्म की, अभ्यागत अग्नि की और जगत् के सभी प्राणी अपने आत्मा की ही मूर्ति-आत्मस्वरूप होते हैं।

मनुष्य अपनी स्थूल बुद्धि के कारण यह तथ्य समझ नहीं पाता और उसके कारण स्वार्थी असामाजिक बन जाता है। मैं कुछ और हूँ-समाज के अन्य व्यक्ति कुछ और हैं, यह गलत है। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुये भागवत् में लिखा है-

एक एव परो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम्।
नानेव गृह्यते मूढर्यथा ज्यातिर्यथा नभः।।

समस्त देह-धारियों की आत्मा एक ही हैं और कार्य-कारण से माया से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। जल और घड़ा आदि उपाधियों के भेद से जैसे सूर्य चन्द्रमा आदि प्रकाश युक्त पदार्थ और आकाश भिन्न-भिन्न मालूम पड़ते हैं, परन्तु हैं एक ही, वैसे ही मूर्ख लोग शरीर के भेद से आत्मा का भेद मानते हैं।

यह भेद बुद्धि ही अनेक तरह के सामाजिक विग्रहों-असंतुलनों का कारण बन जाती है। स्त्री पुरुष का भेद, अवर्ण सवर्ण का भेद, धर्मों का भेद सब इसी प्रकार के अविकसित दृष्टिकोण के कारण पैदा हुये हैं। समझदारी से इनका सम्बन्ध नहीं है। मनुष्य के आचरण और स्वभाव के आधार पर उसकी उपयोगिता अनुपयोगिता की बात तो समझ में आती है, किन्तु कोई पुरुष है या स्त्री, किसी वर्ग विशेष या धर्म विशेष में पैदा हो गया है इसलिये उससे दूर-दूर रहकर सामाजिकता-सामूहिकता के लाभ से किसी दूसरे को या समाज को वंचित रखना गलत है। कुछ लोग इस भेद बुद्धि को परम्परा के नाम पर छोड़ना नहीं चाहते। लेकिन ध्यान रहे कि यह भेद शाश्वत नहीं है। तो बाद में पैदा हुये विकार हैं। इस विषय में उद्धव जी का समाधान करते हुये भगवान श्री कृष्ण कहते हैं-

आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस इति स्मृतः।
कृतकृत्याः प्रजा जात्या तस्मात् कृतयुगं विदुः।।

जिस समय इस कल्प का प्रारम्भ हुआ था और पहला सत्ययुग चल रहा था, उस समय सभी मनुष्यों का 'हंस' नामक एक ही वर्ण था। उस युग में सब लोग जन्म से ही कृतकृत्य होते थे, इसीलिये उसका एक नाम कृतयुग भी है।

जहाँ समाज में समता का भाव होगा, सभी एक दूसरे में अपना ही स्वरूप देखेंगे वहाँ सभी जीवन कृतकृत्य-धन्य होगा ही। समता का अभाव भेद बुद्धि को जन्म देकर तरह-तरह के उपद्रव खड़े कर देता है। मनुष्य को मनुष्योचित मर्यादाओं में बनाये रखने के लिये धर्म व्यवस्था खड़ी की गई थी। किन्तु भेद बुद्धि ने धर्म को ही अखाड़ा बना दिया। सांसारिक स्तर पर भेद दिखे भी तो परमात्मा में तो सबका समान हक है-वहाँ तो सब एक हैं। किन्तु बाहरी भेदबुद्धि उसने ईश्वर के नाम पर एक होना अस्वीकार कर दिया तथा बाहरी भेद भाव बनाये रखने के लिये अनेक तरह के ईश्वरों की मान्यता फैला दी। थोड़े से समय तक वह क्रम चल

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गया तो उसे भी शाश्वत सनातन परम्परा का नाम देकर छाती से लगा लिया। लेकिन यह सब भ्रान्तियाँ हैं। सृष्टि के प्रारम्भ की मर्यादायें उद्धव जी को समझाते हुये भगवान कृष्ण आगे कहते हैं-

वेदः प्रणव एवाग्रे धर्मोऽहं वृषरूपधृक् ।
उपासते तपोनिष्ठा हंसं मां मुक्तकिल्विषाः ।।

उस समय केवल प्रणव ही वेद था और तपस्या, शौच, दया, एवं सत्यरूप चार चरणों से युक्त मैं ही वृषभ धारी धर्म था। उस समय के निष्पाप एवं परम तपस्वी भक्त जन मुझ हंस स्वरूप शुद्ध परमात्मा की उपासना करते थे।

स्पष्ट है कि ईश्वर और धर्म सामाजिक समता की भावना के पोषक हैं उनके विरोधी नहीं। इसी प्रकार समाज की सुव्यवस्था के लिये ऋषियों ने कभी वर्णाश्रम व्यवस्था बनायी थी। जो व्यक्ति जिस रुचि का हो उसी तरह के कार्य को करे तो करने वाला दोनों लाभ में रहते हैं। ब्राह्मण,क्षत्री, वैश्य और शूद्र यह वर्ण आचरण और स्वभाव के आधार पर बनाये गये थे। लेकिन बाद में उन्हें जन्म से माना जाने लगा तथा एक दूसरे को छोटा बड़ा मानने, छुआछूत की परम्परा फूट पड़ी। वास्तव में यह चारों वर्ण समाजरूपी विराट शरीर के अंग हैं। शास्त्रों में भी वर्णों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यही मत है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं, उद्धव-

विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा मुखबाहूरुपादजाः ।
वैराजात् पुरुषांज्जाता य आत्माचारलक्षणाः ।।

विराट् पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य और चरणों से शूद्रों की उत्पत्ति हुई। उनकी पहचान उनके स्वभावानुसार और आचरण से होती है।

शरीर के हर अंग की उपयोगिता अलग-अलग ढंग से होती है। यह बात सही है किन्तु उसके कारण उनमें अपने पराये का भेद, छुआछूत जैसी विकृति नहीं फैल जाती। समाज के अंग विभिन्न प्रकार के कार्य करने वाले व्यक्तियों में भी ऐसा ही आदर्श दिखना चाहिये। भगवान श्री कृष्ण ने स्पष्ट कह दिया है कि वर्णों की पहचान गुणों से होती है जन्म या वेष से नहीं। समाज के लिये उपयोगी विभिन्न गुणों को यह वर्ग अपने जीवन में धारण करते हैं। उनके लक्षणों के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत में कहा है-

शमो दमस्तपः शौचं संतोषः क्षान्तिरार्जवम् ।
ज्ञानं दयाच्युतात्मत्वं सत्यं च ब्रह्मलक्षणम् ।।
शौर्य वीर्य धृतिस्तेजस्त्यागं आत्मजयः क्षमा ।
ब्रह्मण्यता प्रसादश्च रक्षा च क्षत्रलक्षणम् ।।
देवगुर्वच्युते भक्तिस्त्रिवर्गपरिपोषणम् ।
आस्तिक्यमुद्यमो नित्यं नैपुणं वैश्यलक्षणम् ।।
शूद्रस्य संनतिः शौच सेवा स्वामिन्यमायया ।
अमन्त्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्यं गोविप्ररक्षणम् ।।

शम, दम, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, सरलता ज्ञान, दया, भगवत्परायणता और सत्य - ये ब्राह्मण के लक्षण हैं। युद्ध में उत्साह, वीरता, धीरता, तेजस्विता, त्याग, मनोजय, ब्राह्मणों के प्रति भक्ति, अनुग्रह और प्रजा की रक्षा करना - ये क्षत्रिय के लक्षण हैं। देवता, गुरु और भगवान् के प्रति भक्ति , अर्थ, धर्म और काम इन तीनों पुरुषार्थों की रक्षा करना, आस्तिकता, उद्योगशीलता और व्यावहारिक निपुणता - ये वैश्य के लक्षण हैं। विनम्र रहना, पवित्रता, निष्कपट सेवा, अमन्त्र यज्ञ, चोरी न करना, सत्य तथा गौ ब्राह्मणों की रक्षा करना-ये शूद्र के लक्षण हैं।

ऊपर बतलाये गये सभी गुण समाज के लिये आवश्यक और उपयोगी हैं। खिलाड़ी रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न खेल खेलते हैं, फौज में कोई वायु सेना में रहता है, कोई जल सेना में तो कोई थल सेना में। यह नहीं कहा जा सकता कि फुटबाल का खिलाड़ी कबड्डी वाले को न छुए, थल सेना वाला जल सेना वालों को छोटा समझे। इसी प्रकार जिसे जिस प्रकार के गुण और आचरण पसन्द हैं वह उन्हें अपना कर समाज के पुष्ट अंग के रूप में अपनी भूमिका पूरी कर सकता है। जैसे रुचि बदलने पर खेल बदल सकता है - व्यवसाय बदला जा सकता है वैसे ही वर्ण भी बदल जाते हैं। इस सम्बन्ध में शक की गुजांइश नहीं है। देखिए नारद जी राजा युधिष्ठिर से क्या कहते हैं-

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् ।
यदयन्त्रापि दृश्येत तत् तेनैव विनिर्दिशेत् ।।

जिस पुरुष के वर्ण को बतलाने वाला जो लक्षण कहा गया है, वह यदि दूसरे वर्ण वाले में भी मिले तो उसे भी उसी वर्ण का समझना चाहिये।

स्पष्ट है कि वर्ण व्यवस्था आचरण और गुणों के आधार पर खड़ी की गई थी। वंश परम्परा से उसे चलाने में कोई बुराई नहीं है। डाक्टर का लड़का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

डाक्टर, व्यापारी का लड़का व्यापारी बने तो उसे औरों की अपेक्षा सुविधा ही रहेगी। परिवार के वातावरण का सहज लाभ उसे मिलेगा। इस नियम को सुविधा जनक तो कह सकते हैं किन्तु इस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता कि डाक्टर का पुत्र वकील नहीं बन सकता अथवा व्यापारी का लड़का कलाकार नहीं बन सकता। यह बात तब तो और भी उपहासास्पद बन जाती है जब वकील का निरक्षर लड़का भी यह आग्रह करे कि हमें वकील साहब कहो-अथवा यह कहा जाय कि इज्जत मास्टर साहब को अधिक मिलनी चाहिये डाक्टर साहब को कम। वास्तव में जो व्यक्ति अपने कर्तव्य को अच्छे ढंग से पूरा कर दिखाता है वही सम्मान का अधिकारी होता है। चाहे वह डाक्टर हो, वकील हो या व्यापारी हो। समाज के विभिन्न वर्ग जिन्हें वर्ण कहते हैं उनके सम्बन्ध में भी यही नियम लागू होना चाहिये, तभी स्वस्थ समाज स्थापना सम्भव है।

आश्चर्य तब होता है कि भेद बुद्धि मनुष्य पर इस हद तक हावी हो जाती है कि कुछ लोग ईश्वर पर भी अपना एक विकार जमाने का प्रयत्न करते हैं। कहते हैं कि अमुक वर्ग अशुद्ध होता है, इसलिये उसे ईश्वर की उपासना भक्ति करने का अधिकार नहीं है। आइये जरा इस सम्बन्ध में भागवत की व्यवस्था देखें। भगवान श्री कृष्ण स्वयं उद्धव से कहते हैं-

भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम्।
भक्तिः पुनातिमन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्।।

मैं सन्तों का प्रियतम आत्मा हूँ, मैं अनन्य श्रद्धा अनन्य भक्ति से ही पकड़ में आता हूँ। मुझे प्राप्त करने का यह एक ही उपाय है। मेरी अनन्य भक्ति उन लोगों को भी पवित्र कर देती है, जो जन्म से ही चाडाल हैं।

स्पष्ट है कि श्रेष्ठता-निकृष्टता जन्म से नहीं कर्म से है। दुष्ट के यहाँ जन्मा हुआ व्यक्ति भी यदि ईश्वर परायण आदर्श निष्ठ जीवन जीता है तो उसे पवित्र माना जाना चाहिये। श्रेष्ठ मार्ग से किसी को वंचित तो किया ही नहीं जाना चाहिये।

कुछ लोग अपनी भेद बुद्धि को पात्रता की आड़ में चलाना चाहते हैं। वे कहते हैं कि हर कार्य सत्पात्रों के द्वारा किया जाना चाहिये, कुपात्रों को अधिकार नहीं दिया जाना चाहिये। यह बात ठीक भी हो सकती है, किन्तु पात्रता की कसौटी गुण परक, आचरण परक होती है, वंश या वेश से उसे नहीं बाँधा जा सकता। यह तो कहा जा सकता है कि जिसे दस्त की शिकायत हो उसे दूध मत पिलाओ, लेकिन जिस घर में किसी भी व्यक्ति को दस्त लगते हैं या कभी लगे हों उसे दूध न दिया जाये यह बात बिलकुल असंगत है। भगवान की भक्ति कथा आदि के बारे में कहीं किसी ने निषेध किया होगा तो ऐसा ही कुछ कारण रहा होगा। जाति भेद तो उसका कारण हो ही नहीं सकता। स्वयं भगवान कृष्ण का कथन है-

एतैर्दोषर्विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च।
साधवेशुचये ब्रूयाद् भक्तिः स्याच्छूद्रयोषिताम् ।।

जो इन दोषों से रहित हो, ब्राह्मण भक्त हो, प्रेमी हो, साधु स्वभाव हो और जिसका चरित्र हो, उसी को यह प्रसंग सुनाना चाहिये। यदि शूद्र और स्त्री भी मेरे प्रति प्रेम-भक्ति रखते हों तो उन्हें भी इसका उपदेश करना चाहिये।

कई बार लोग यह कहते हैं कि भगवान के प्रसंग कहना सुनना तो सबके लिये ठीक है, किन्तु कर्मकाण्ड तो केवल द्विज के लिये ही है। भक्त उद्धव भगवान कृष्ण से क्रियायोग की चर्चा करते हुये कहते हैं-

एतद् वै सर्ववर्णानामाश्रमाणां च सम्मतम्।
श्रेयसामुत्तमं मन्ये स्त्रीशूद्राणां च मानद।।

मर्यादा रक्षक प्रभो ! यह क्रिया योग ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि वर्णों और ब्रह्मचारी गृहस्थ आदि आश्रमों के लिये भी परम कल्याणकारी है। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि स्त्री-शूद्रों के लिये भी यही सबसे श्रेष्ठ साधन पद्धति है।

कुछ लोग यह भी तर्क कर सकते हैं कि उन वर्णों तथा पुरुषों की तुलना में अवर्ण तथा नारियाँ कम अधिकारी हैं इसलिये उनकी चर्चा बाद में की गई है। लेकिन यह सोचना भी हमारी असामाजिक भेद बुद्धि की ही प्रतिक्रिया है। नारी और शूद्रों को हीन कभी नहीं माना गया है। स्त्रियों के सम्बन्ध में भविष्य पुराण में भगवान श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से कहते हैं-

जामयो यत्र पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते विनङ्क्ष्यत्याशु तद् गृहम्।।

जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं। जहाँ इनकी पूजा नहीं होती है, वहाँ सब नष्ट हो जाता है।

यहाँ पूजा का अर्थ रोली अक्षत चढ़ाना नहीं है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसका अर्थ है, उसे पूजनीय-सम्माननीय स्थिति तक विकसित करने से है।

नारी में देवत्व-स्नेह सद्भाव पुरुषों की अपेक्षा अधिक होते हैं। जहाँ स्त्रियाँ सम्मान योग्य अर्थात विकसित होती हैं वहाँ वे अपने दिव्य गुणों से वातावरण में दिव्यता भरे रहती हैं, उनके प्रभाव से परिवार के लोगों में देवताओं जैसे गुण पैदा हो जाते हैं। जहाँ नारियों की उपेक्षा होती है - उन्हें विकसित नहीं होने दिया जाता वहाँ दिव्यता उपेक्षित हो जाती है। हीन आचरण पनपने लगते हैं। नर और नारी समाज के आधे आधे अंग हैं। दोनों के अधिकार समान हैं। किसी के अधिकारों का अपहरण राक्षसों का काम है। देवताओं का नहीं। नारी को अविकसित स्थिति में डाले रहना राक्षसी कार्य है देव शक्तियाँ इससे रुष्ट ही होंगी। नारी की स्थिति आज हमारे समाज में भी बड़ी बिगड़ी हुई है। उसी का परिणाम सामाजिक अशान्ति के रूप में हमारे सामने है। नारी को पुरुष से हीन मानना परिवारिक तथा सामाजिक सन्तुलन पर कुठाराघात करना ही है। ऐसी अनीति करने वाले भगवान की प्रसन्नता कभी नहीं पा सकते। इसी प्रकार शूद्रों के सम्बन्ध में भी भागवत का मत स्पष्ट है। ऋषि मैत्रेय महात्मा विदुर से कहते हैं-

पद्भयां भगवतो जज्ञे शुश्रूषा धर्मसिद्धये।
तस्यां जातः पुरा शूद्रो यद्वृत्त्या तुष्यते हरिः।।

फिर सब धर्मों की सिद्धि के लिये भगवान् के चरणों से सेवा वृत्ति प्रकट हुई और उन्हीं से पहले पहल उस वृत्ति का अधिकारी शूद्रवर्ण भी प्रकट हुआ जिसकी वृत्ति से ही श्री हरि प्रसन्न हो जाते हैं।

शूद्र सेवा वृत्ति का प्रतीक है जिसे भगवान सबसे अधिक महत्व देते हैं। इसलिये उनको नीच हीन तो कहा ही नहीं जा सकता। कुछ लोग कहते हैं कि शुद्र लोग गन्दे रहते हैं इसलिये उन्हें नीच कहते हैं। यह तर्क भी गलत है। उन्हें अछूत कहकर हमने ही जबरदस्ती गन्दा रहना सिखा दिया है। उन्हें स्वच्छता सिखाना भी हमारी जिम्मेदारी है। छोटे बच्चे भी चाहे जहाँ अस्वच्छता फैला देते हैं - इसलिये कोई उन्हें अछूत कहकर दूर नहीं हटा देता। उन्हें सफाई से रहना सिखाने तक लोग स्वयं गन्दगी बर्दाश्त करते हैं। हमारे वे भाई जो किसी कारण सफाई नहीं सीख सके उनके प्रति भी हमारी भावना, तथा हमारा व्यवहार छोटे भाइयों बच्चों जैसा ही होना चाहिये। वे हमारी सेवा करते हैं, इसलिये यदि उन्हें उपेक्षा सहनी पड़ेगी तो सेवा वृत्ति समाप्त हो जायेगी और समाज का सन्तुलन बिगड़ जायेगा। इसीलिये भगवान स्वयं भी सेवा भावना को प्रोत्साहन देते हैं। भक्त प्रहलाद नृसिंह की स्तुति के साथ उनके इस नियम का उल्लेख करते हुये कहते हैं-

संसेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः।
सेवानुरूपमुदयो न परावरत्वम्।।

सेवा के अनुसार ही जीवों पर आपकी कृपा का उदय होता है। उसमें जातिगत उच्चता या नीचता कारण नहीं है।

समाज में श्रेष्ठ प्रकृतियां बनाये रखने का एक महत्व पूर्ण ढंग है - श्रेष्ठ कार्य करने वालों को सम्मान देना सहयोग देना, तथा प्रशंसा प्रोत्साहन प्रदान करना। ईश्वर की इच्छा है कि समाज में श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ रहें ताकि सुख सन्तोष बना रहे। इसलिये किसी जाति में जन्म के कारण नहीं सत्प्रवृत्तियाँ देखकर ही वे अपनी कृपा बरसाते हैं। इसके विपरीत जो सद्प्रवृत्तियों की अपेक्षा जन्म के आधार पर ऊंच नीच की बात सोचता है उसे वे दंड देते हैं। वे युधिष्ठिर से कहते हैं-

मद्भक्तान् शूद्रसामान्यादवमन्यन्ति ये नराः।
नरकेष्वेव तिष्ठन्ति वर्षकोटिं नराधमाः।।

जो मनुष्य मेरे भक्तों का शूद्र जाति में जन्म होने के कारण अपमान करते हैं, वे नराधम करोड़ों वर्ष तक नरकों में निवास करते हैं।

भक्ति का अर्थ ईश्वर निष्ठ- आदर्श निष्ठ जीवन ही है सामाजिक समता सद्भावना की मर्यादा का उल्लंघन मनुष्य अपने हीन स्वार्थों में ही उलझ जाने से करता है। अपने शरीर तथा अपने कुटुम्ब तक ही जो सोच पाते हैं वे सामाजिक कर्तव्यों को समझ ही नहीं पाते। केवल अपने शरीर को ही महत्व देने वाले कुबेर के स्वार्थी पुत्रों नल एवं कूबर को समझाते हुये नारद जी कहते हैं-

एवं साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाप्यतम्।
को विद्वानात्मसात् कृत्वा हन्ति जन्तूनृतेऽसतः।।

यह शरीर एक साधारण सी वस्तु है। प्रकृति से पैदा होता है और उसी में समा जाता है। ऐसी स्थिति में मूर्ख पशुओं के सिवा और ऐसा कौन बुद्धिमान है जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसको अपना आत्मा मानकर दूसरों को कष्ट पहुँचायेगा, उनके प्राण लेगा।

अपने शारीरिक सुख के लिये दूसरों को कष्ट देना नारद जी के मत से मनुष्यों का नहीं पशुओं का कार्य है। यह प्रवृत्ति समाज में चल पड़े तो सामाजिक असन्तुलन हो जाता है।

सामाजिकता का आदर्श तो यह है कि जिसमें अधिक क्षमता हो वह समाज के हित साधन का उतना ही अधिक अपना उत्तरदायित्व समझे। समुद्र मन्थन के बाद जब कालकूट सबको त्रस्त करने लगा तब शिवजी अपने कर्तव्य का निर्धारण करते हुये पार्वती जी से कहते हैं-

आसां प्राणपरीप्सूनां विधेयमभयं हि मे।
एतावान्हि प्रभोरर्थो यद् दीनपरिपालनम्।।

ये बेचारे किसी प्रकार अपने प्राणों की रक्षा करना चाहते हैं। इस समय मेरा यह कर्तव्य है कि मैं इन्हें निर्भय कर दूँ। जिनके पास शक्ति-सामर्थ्य है, उनके जीवन की सफलता इसी में है कि वे दीन दुखियों की रक्षा करें।

प्रश्न उठता है कि कोई क्यों दूसरों के लिये स्वयं को खतरे में डाले? इसके दो समाधान हैं। एक तो यह कि जो व्यक्ति आत्मा के स्तर पर देखता है उसे समाज के अन्य व्यक्ति भी अपने शरीर के ही अंग जैसे लगते हैं - वे पराये लगते ही नहीं। सिर को बचाने के लिये हाथ चोट खा लेते हैं-पैर कंकरीली जमीन में भी तेजी से दौड़ पड़ते हैं। इसी तरह सामाजिक दृष्टिकोण वाला व्यक्ति समाज को अपना शरीर ही मान कर उसके लिये सहर्ष कष्ट सह लेता है।

दूसरा तथ्य यह है कि मनुष्य जन्म से लेकर अन्त तक समाज के अनुदानों के सहारे ही आगे बढ़ता है। इसलिये उस पर समाज का ऋण होता है। यदि कभी अपनी कोई विशेषता समाज के हित में काम आती है तो उसे उसमें लगाकर कुछ अंशों में ऋण मुक्त होने जैसा सन्तोष अनुभव किया जाना चाहिये। ऐसा करना मनुष्य की आत्मिक प्रगति का भी प्रतीक है। जो अपनी आत्मा को जितने व्यापक क्षेत्र में फैला अनुभव करता है-उसमें उतना ही अधिक ईश्वर का प्रकाश होना सिद्ध होता है। इसके प्रमाण में नारद जी का कथन है जो वे युधिष्ठिर के सामने व्यक्त करते हैं-

तेष्वेषु भगवान्राजंस्तारतम्येन वर्तते ।
तस्मात् पात्रं हि पुरुषो यावानात्मा यथेयते।।

युधिष्ठिर ! एक रस रहते हुये भी भगवान् शरीरों में उनकी विभिन्नता के कारण न्यूनाधिक रूप से प्रकाशमान हैं। जो अपनी आत्मा को ही व्यापक रूप में फैला देखता है उसमें ईश्वरत्व की उतनी ही अधिक पात्रता सिद्ध होती है।

स्पष्ट है कि समाज की प्रगति तथा आत्मिक उत्कर्ष दोनों ही मनुष्य के विकसित दृष्टिकोण के प्रतिफल हैं। सामाजिकता और व्यक्तिगत उत्कर्ष में परस्पर कोई विरोध नहीं है। वह तो एक दूसरे के पूरक हैं। समाज को एक विशाल शरीर मानकर उसके अंग के रूप में अपने आपको विकसित और पुष्ट करना, दूसरे अंगों का अधिकार न छीनना-उनके साथ तालमेल बिठाकर चलना आदि ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जिन्हें अपना कर दुहरा लाभ उठाया जा सकता है। उन्हें अपनाने में शास्त्रों की मर्यादा बाधक नहीं हैं-बाधक है हमारा अज्ञान और आत्मिक संकीर्णता। ईश्वर करे हम संकीर्णता से ऊपर उठकर आत्म कल्याण के अधिकारी बनें तथा आदर्श समाज की स्थापना का श्रेय भी पा सकें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनीति का उन्मूलन भी अनिवार्य है

इस सृष्टि की संचालक सत्ता जिन तीन प्रधान शक्तियों के द्वारा अपना कार्य करती है उन्हें ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के नाम से जानते हैं। सृजन शक्ति को विष्णु तथा संहारक शक्ति को रुद्र कहा जाता है। सृष्टि के सुव्यवस्थित संचालन के लिये यह तीनों प्रक्रियाऐं आवश्यक हैं तथा परस्पर एक दूसरे की पूरक हैं। सृजन और पालन तो हमारी समझ में आता है किन्तु लगता है संहार की क्या आवश्यकता है ? जबकि संहार के बिना न सृजन हो सकता है न पालन। संहार शक्ति का एक नाम शिव भी है। शिव अथात् कल्याण। शिव ही रुद्र भी है इसका मतलब है संहार के पीछे शिवत्व छिपा रहता है। यह संसार द्वन्द्वात्मक है यहाँ सदैव तमोगुण सत्वगुण को निगलने के लिये प्रस्तुत रहता है। अत: तमोगुण का प्रतिकार भी सत्वगुण की स्थापना का एक अनिवार्य अंग है। अच्छाई एवं बुराई में कोई समझौता नहीं है। जहाँ अच्छाई होगी वहाँ बुराई नहीं रह सकेगी तथा बुराई होगी वह अच्छाई को समाप्त कर देगी। इसीलिये बुराई को समाप्त किये बिना अच्छाई की स्थापना असंभव है। इस सृष्टि में सन्तुलन स्थापित करने वाली सत्ता जब भी अवतरित होती है तो दुष्टता का विनाश उसका एक प्रधान कार्य होता है। **"विनाशाय च दुष्कृता"** उसका घोषित कार्यक्रम है। क्योंकि कुछ दुष्ट बुद्धि व्यक्ति किसी के कहने से या तो औचित्य की बात समझते ही नहीं हैं अथवा समझकर भी मन मानी करने पर तुले रहते हैं। ऐसी स्थिति में समाज का सन्तुलन बनाये रखने के लिये दण्ड नीति का सहारा लेना ही पड़ता है। श्री कृष्ण जी के बड़े भाई बलराम जी ने दुर्योधन को गदा युद्ध का प्रशिक्षण दिया था। इस नाते वे उसके गुरु भी थे। लेकिन उन्होंने जब कौरवों को अनीति छोड़ने को कहा तो उन्होंने सुना नहीं। तब बलराम जी विचार करने लगे-

नूनंनानामदन्नाद्धा: शांतिनेच्छन्त्यसाधव: ।
तेषां हि प्रशमो दण्ड: पशूनां लगुडो यथा।।

'सच है, जिन दुष्टों को अपनी कुलीनता, बल-पौरुष और धन का घमण्ड हो जाता है, वे शान्ति नहीं चाहते। उनको दमन करने का रास्ते पर लाने का उपाय समझाना नहीं, बल्कि दण्ड देना है- ठीक वैसे ही, जैसे पशुओं को ठीक करने के लिये डंडे का प्रयोग आवश्यक होता है।

बलराम जी ने दुष्टता को पशुता से उपमा दी। पशु का अर्थ है पशु प्रवृत्तियों से संचालित नर पशु जो किसी भी सामाजिक नियम या व्यवस्था को नहीं मानते। मान लीजिये आप कृषक हैं तथा आपने बड़े परिश्रम पूर्वक अपनी फसल तैयार की है। पशु उसे चर जाना चाहते हैं। अब आप उन्हें कितनी भी सैद्धान्तिक शिक्षा दें, हाथ जोड़ कर प्रार्थना करें, नियम एवं मर्यादाओं का हवाला दें, किन्तु क्या वे मान जायेंगे ? वह तो आपकी फसल चौपट ही कर देंगे। तब फसल को बचाने के लिये डण्डे के अलावा और क्या मार्ग है ? इसलिये सुव्यवस्थित समाज व्यवस्था में दण्ड को भी एक नीति के रूप में स्वीकार किया गया है। लेकिन दण्ड अन्तिम उपाय है तथा तीन नीतियों के असफल हो जाने पर ही इसका प्रयोग किया जाता है। कौरव और पाण्डव दोनों पक्षों में युद्ध की तैयारी हो चुकी थी। कृष्ण अनावश्यक रक्त पात को टालना चाहते थे। अत: शान्ति दूत बनकर हस्तिनापुर जाने की तैयारी करते हुये उन्होंने युधिष्ठिर से कहा-

यात्वा चाहं कुरून् सर्वान् युष्मदर्थमहापयन् ।
यतिष्ये प्रशमं कर्त्तु लक्षयिष्ये च चेष्टितम् ।।
कौरवाणां प्रवृत्तिं च गत्वा युद्धाधिकारिकाम्।
निशम्य विनिवर्तिष्ये जयाय तव भारत ।।

वहाँ पहुँच कर आपके स्वार्थ की सिद्धि में तनिक भी त्रुटि न आने देते हुये मैं समस्त कौरवों से संधि-स्थापन के लिये प्रयत्न करूँगा और उनकी चेष्टाओं पर दृष्टि रक्खूँगा। भारत ! मैं कौरवों की युद्ध विषयक तैयारी की बातें जान-सुनकर आपकी विजय के लिये पुन: यहाँ लौट आऊँगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह संसार सब का है। तथा इसकी सम्पदा का मिल बाँट कर सबको उपयोग करने का अधिकार है। किन्तु दुष्टता सब कुछ हड़प लेना चाहती है। यदि उसका वश चले तो वह अपने सिवा किसी को जीवित भी नहीं रहने देना चाहती इसीलिये समाज निर्माताओं ने चार वर्णों का विभाजन करते हुये वर्ण को दुष्टता का प्रतिरोध करने के लिये बनाया है। समाज में दुष्टों पर नियन्त्रण रखना ही क्षत्रिय का धर्म है। जहाँ सच्चे क्षत्रिय होते हैं वहाँ दुष्टता पनप ही नहीं सकती। क्षात्र धर्म पर प्रकाश डालते हुये भगवान कृष्ण युधिष्ठिर से कहते हैं-

जयो वधो वा संग्रामे धात्राऽऽदिष्टः सनातनः।
स्वधर्मः क्षत्रियस्यैष कार्पण्यं न प्रशस्यते ।।

उसके लिये विधाता ने यही सनातन कर्तव्य बताया है कि वह संग्राम में विजय प्राप्त करे अथवा वहीं प्राण दे दे। यही क्षत्रिय का स्वधर्म है। दीनता अथवा कायरता उसके लिये प्रशंसा की वस्तु नहीं है।

समाज में हर व्यक्ति अपनी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। इसलिये व्यक्ति की स्वाभाविक क्षमताओं को देखते हुये हर व्यक्ति के कन्धों पर समाज सेवा का उचित उत्तरदायित्व सौंपा गया है। यही है वर्ण व्यवस्था । जिनमें पौरुष है जो अनीति के प्रतिरोध की क्षमता रखते हैं तथा जो अन्याय को मिटाने में अपना बलिदान तक करने को सदैव प्रस्तुत रहते हैं उन्हें ही क्षत्री कहा गया है। क्षत्री माने छतरी जिस तरह छतरी वर्षा एवं ताप को अपने ऊपर झेलकर शरीर को सुरक्षित रखती है, उसी तरह क्षत्रिय भी अपनी रक्षा में असमर्थ व्यक्तियों की रक्षा करता है। यह अत्यधिक पुण्य का कार्य है। यदि इस कार्य में प्राण भी त्यागने पड़ें तो भी वह मानव जीवन का चरम लक्ष्य पा लेता है। इसलिये कहा गया है-

ब्राह्मणार्थे च गुर्वर्थे स्त्रीणां बालवकेषु च ।
प्राणत्यागपरो यस्तु स वै मोक्षमवाप्नुयात् ।।

ब्राह्मण, गुरु, नारी एवं बालकों की रक्षा में प्राण त्यागने वाला मुक्ति का अधिकारी होता है।

ब्राह्मण ज्ञान द्वारा, गुरु आध्यात्म के उपदेश द्वारा, स्त्री अपने अनन्त अनुदानों द्वारा तथा बालक भविष्य की महान संभावनाओं द्वारा समाज की आशा के केन्द्र होते हैं। अतः इनकी सुरक्षा आवश्यक है। इसका मतलब है सत्प्रवृत्तियों का संरक्षण। सत्प्रवृत्तियों के संरक्षण के लिये ही क्षात्र धर्म का सृजन हुआ है। आदर्शों की सुरक्षा हेतु हर सम्भव प्रयास होना ही चाहिये। इसके लिये युद्ध कौशल आवश्यक है। आँख मूँद कर आग में कूद पड़ना ही बुद्धिमानी नहीं है। समय और परिस्थिति के अनुसार ही कार्य करना चाहिये। बलिदान से डरना भी नहीं चाहिये किन्तु जोश में होश खोकर स्वयं को नष्ट कर देना परोक्ष रूप से समाज की ही हानि है। अस्तु प्रतिरोध के समय समझदारी से स्थिति को तौलकर कार्य पद्धति निश्चित करनी चाहिये। दुष्ट जरासंध का नष्ट करने की सलाह करते हुये भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

व्यूढानीकैरतिबलैर्न युद्धयेदरिभिः सह ।
इति बुद्धिमतां नीतिस्तन्ममापीह रोचते ।।

जिनकी सेनाऐं मोर्चा बाँधकर खड़ी हों और जो अत्यन्त बलवान् हों, ऐसे शत्रुओं के साथ (सम्मुख होकर) युद्ध नहीं करना चाहिये, यह बुद्धिमानी की नीति है। यही नीति यहां मुझे भी अच्छी लगती है।

यदि बिना पूर्व तैयारी के संघर्ष किया जाय तो वह विशेष फल दायक नहीं होता। संघर्ष के पूर्व अपनी और शत्रु की शक्ति का अन्दाज लगाकर ही कार्य प्रारम्भ करना चाहिये। हमारा उद्देश्य किसी भी तरह दुष्टता को मिटा देना ही होना चाहिये। जो नियमानुसार नहीं चलते उन्हें समाप्त करने में प्रचलित नियम सहायक नहीं होते। दुष्टों की कमजोरियों का पता लगाकर वहीं प्रहार कर उसकी दुष्टता को समाप्त किया जा सकता है। जरासंध को समाप्त करने में भगवान कृष्ण ने इसी नीति का आश्रय लिया। उसकी राज धानी में मुख्य द्वार से न जाकर परकोटे को लांघकर ही प्रवेश किया। इसका कारण बताते हुये उन्होंने जरासंध से कहा-

अद्वारेण रिपोर्गेहं द्वारेण सुहृदोगृहान् ।
प्रविशन्ति नरा धीरा द्वाराण्येतानि धर्मतः ।।

वीर मनुष्य शत्रु के घर में बिना दरवाजे के और मित्र के घर में दरवाजे से जाते हैं। शत्रु और मित्र के लिये ये धर्मतः द्वार बतलाये गये हैं।

दुष्ट की एक विशेषता होती है कि वह स्वयं तो अनीति करता है तथा दूसरों से नीति की आशा करता हैं।जब तक धर्मभीरु नीति रत रहकर उसकी दुष्टता में सहयोग करते रहते हैं तब वह बड़ा प्रसन्न रहता है। किन्तु जब नहले पे दहला पड़ता है तब वह खीझने लगता है। पर दुष्टता को मिटाने का इसके सिवाय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्य कोई मार्ग ही न हो तब क्या किया जाय ? इसीलिये **"शठे शाठ्यं समाचरेत"** का उपदेश दिया गया है। भगवान कृष्ण ने इसी नीति के आधार पर दुष्टों का उन्मूलन किया था। जरासंध दूसरों से तो नीति एवं धर्म की आशा करता था किन्तु उसका आचरण किस प्रकार का था ? भगवान कृष्ण ने युधिष्ठिर से जरासंध के बारे में बताते हुये कहा-

षड़शीतिः समानीताः शेषा राजश्चतुर्दश ।
जरासंधेन राजानस्ततः क्रूरं प्रवर्त्स्यते ।।
प्रायुयात् स यशो दीप्त तत्र यौ विघ्नमाचरेत् ।
जयेद् यश्च जरासंध स सम्राण्नियतं भवेत् ।।

राजन् जरासंध ने छियासी प्रतिशत राजाओं को तो कैद कर लिया है केवल चौदह प्रतिशत शेष हैं। उनको भी बन्दी बनाने के पश्चात वह क्रूर कर्म में प्रवृत्त होगा। जो उसके इस कर्म में विघ्न डालेगा, वह उज्ज्वल यश का भागी होगा तथा जो जरासंध को जीत लेगा, वह निश्चय ही सम्राट होगा।

जरासंध सब राजाओं को बन्दी बनाकर नरमेध करना चाहता था। तथा इसे उसने धर्म का रूप दे रखा था। उसने इतनी विशाल शक्ति अर्जित कर रखी थी कि सामने से युद्ध करके उसे पराजित नहीं किया जा सकता था। तो क्या उस समय यही उचित था कि उसे मनमानी करने दी जाय ? जब धर्म के अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो गया था तो उस समय धर्म रक्षार्थ येन केन प्रकारेण इस क्रूर नर संहार को रोकना ही सबसे बड़ा धर्म था। अन्याय करने की तरह अन्याय सहना भी पाप है। इसीलिये हर सम्भव प्रयास करके भगवान कृष्ण ने जरासंध का बध करवाया। जब कृष्ण को जरासंध की इस क्रूर योजना का पता चला तब उन्होंने अपने सभासदों से विचार विमर्श किया। उद्धव ने अपनी राय देते हुये कहा-

ब्रह्मवेषधरो गत्वा तं भिक्षेत वृकोदरः ।
हनिष्यति न संदेहो द्वैरथे तव संनिधौ ।।

इसलिये भीम सेन ब्राह्मण के वेश में जायें और उससे युद्ध की भिक्षा माँगें। भगवन् ! इसमें संदेह नहीं कि यदि आपकी उपस्थितिमें भीमसेन और जरासंध का द्वन्द्व युद्ध हो, तो भीमसेन उसे मार डालेंगे।

काँटे से ही काँटा निकाला जा सकता है। तथा उद्देश्य भिन्न होने के कारण क्रिया में एक रूपता रहने पर भी परिणाम भिन्न होते हैं। पैर में चुभे हुये काँटे का उद्देश्य शरीर को पीड़ा पहुँचाना और उसे निकालने के लिये पैर में घुसने वाले काँटे का उद्देश्य शरीर को पीड़ा रहित बनाना होता है। मित्रता, क्षमा, दया, प्रेम, अहिंसा आदि का मूल्य बहुत अधिक है किंतु अस्तित्व रक्षा इन सबसे ज्यादा मूल्यवान है। क्योंकि अस्तित्व सुरक्षित होन पर ही इनका प्रयोग सम्भव है। धर्म का सही स्वरूप न समझने के कारण हमने बार बार धोखा खाया तथा परिणाम स्वरूप हजारों वर्षों की गुलामी सही। महत् उद्देश्य के लिये किया जाने वाला हर कार्य उचित है। समयानुसार कार्य करना ही बुद्धिमानी है। समुद्र मन्थन के पूर्व देवताओं को समझाते हुये भगवान विष्णु कहते हैं-

अरयोऽपि हि सन्धेयाः सति कार्यार्थगौरवे ।
अहिमूषकवद् देवा ह्यर्थस्य पदवीं गतैः ।।

देवताओं ! कोई बड़ा कार्य करना हो तो शत्रुओं से भी मेल मिलाप कर लेना चाहिये। यह बात अवश्य है कि काम बन जाने पर उनके साथ साँप और चूहेवाला बर्ताव कर सकते हैं।

समाज की सर्वांगीण उन्नति तथा सुख-शान्ति ही मुख्य लक्ष्य हैं। इसके लिये ही प्रयास करना चाहिये तथा इस लक्ष्य में बाधक तत्वों को निरस्त कर देना चाहिये। समुद्र मन्थन से उत्पन्न अमृत पर असुरों का अधिकार देख भगवान ने सोचा-

असुराणां सुधादानं सर्पाणमिव दुर्नयम् ।
मत्वा जातिनृशंसानां न ता व्यभजदच्युतः ।।

भगवान ने मोहिनी रूप में यह विचार किया कि असुर तो जन्म से ही क्रूर स्वभाव वाले हैं। इनको अमृत पिलाना सर्पों को दूध पिलाने के समान बड़ा अन्याय होगा। इसलिये उन्होंने असुरों को अमृत में भाग नहीं दिया।

दुष्टता का पोषण खतरनाक है। इसके व्यक्तिगत जीवन में दोष और दुर्गुण पारिवारिक जीवन में मोह के वशीभूत होकर परिजनों की हर माँग का समर्थन तथा सामाजिक जीवन में कुरीतियाँ अन्ध विश्वास आदि। इन्हें सहन करना या इनके प्रति उपेक्षा बरतना ही इनका पोषण है तथा यह सांप को दूध पिलाने जैसा ही है। दुष्प्रवृत्तियाँ कहीं भी हो उन्हें कुचला ही जाना चाहिये। यदि ऐसा न किया गया तो हमारा अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा। सत्प्रवृत्तियां याने देवत्व ही अमरता का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिकारी है। दुष्प्रवृत्तियाँ या असुरत्व नहीं। जब असुरों ने अमृत छीन लिया तब भगवान ने देवताओं से कहा-

इति तद्दैन्यमालोक्य भगवान्भृत्यकामकृत ।
माखिद्यत मिथोऽर्थ व: साधयिष्य स्वमायया।।

उनकी दीन दशा देखकर भक्तवांछाकल्पतरु भगवान ने कहा- देवताओं ! तुम लोग खेद मत करो मैं अपनी माया से उनमें आपस में फूट डालकर अभी तुम्हारा काम बनादेता हूँ।

दुष्टता प्रतिरोध ईश्वरी कार्य है। भगवान स्वत: यह कार्य करने रहते हैं। तथा इस कार्य में रत व्यक्तियों की सहायता भी करते हैं । दुष्टता जब कभी जड़ पकड़ लेती है तो बड़ी तेजी से फैलती है। यदि उसे रोका न जाये तो वह कुछ ही समय में सर्वग्राही रूप ग्रहण कर लेती है। हमें सज्जनता का ही प्रश्रय देना चाहिये। दुष्टता तो जहरां कहीं भी हो उसका प्रतिरोध होना ही चाहिये। यह संसार जियो और जीने दो के आधार पर ही चलरहा है सज्जनता तो इस नियम को मानती है किन्तु दुष्टता जीने दो के सिद्धान्त को नहीं मानती।इसीलिये समर्थ व्यक्तियों का कर्तव्य है कि सज्जनता की सुरक्षा हेतु कड़े कदम उठायें।पृथ्वी को राजा का कर्तव्य समझाते हुये आदि राजा पृथु कहते हैं-

पुमान् योषिदुत क्लीव आत्मसम्भावनोऽधम:।
भूतेषु निरनुक्रोशो नृपाणां तद्वधोऽवध: ।।

जो दुष्ट अपना ही पोषण करने वाला तथा अन्य प्राणियों के प्रति निर्दय हो- वह पुरुष, स्त्री अथवा नपुंसक कोई भी हो- उसका मारना राजाओं के लिये न मारने के ही समान है।

राजा का अर्थ है व्यवस्थापक। हमारे जिम्मे कोई व्यवस्था अवश्य होती है। और कुछ नहीं तो हम अपने शरीर तथा परिवार के व्यवस्थापक तो होते ही हैं। अत: हमारा कर्तव्य है कि हम अपने और अपने परिवार के जीवन में पनपने वाली दुष्प्रवृत्तियों को दृढ़ता पूर्वक समाप्त करने का प्रयत्न करें। अनीति करने वाला कोई भी क्यों न हो हमें उसका प्रतिरोध अवश्य ही करना चाहिये। जब वशिष्ठ ने राजा निमिको अकारण ही श्राप दे दिया तब उन्होंने भी उनका प्रतिरोध किया। शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहते हैं-

निमि: प्रतिददौ शापं गुरवेऽधर्मवर्तिने ।
तवापि पतताद् देहो लोभाद् धर्ममजात:।।

निमि की दृष्टि में गुरु वशिष्ठ का शाप धर्म के अनुकूल नहीं, प्रतिकूल था। इसलिये उन्होंने भी शाप दिया कि 'आपने लोभ वश अपने धर्म का आदर नहीं किया, इसलिये आपका शरीर भी गिर जाय ।

यद्यपि वशिष्ठ जी राजा निमि के गुरु थे फिर भी निमि ने उनका विरोध ही किया। हम व्यक्ति विशेष से बँधे न होकर धर्म से बँधे हुए हैं। जिस तरह रोग चाहे हमारे शरीर में हो या दूसरों के हम उसकी ओषधि करते ही हैं। उसी तरह किसी के भी द्वारा अनीति बरती जा रही हो हमें अवश्य उसका प्रतिरोध करना चाहिये। भगवान के अवतार का यह एक प्रधान कर्तव्य होता है। कंस वध के उपरान्त उसकी रानियों को समझाते हुये कृष्ण हरिवंश पुराण में कहते हैं-

कंसस्य हि वध: श्रेयान् प्रागेवांभिमतो मम।
सतामुर्द्वेजनोयस्य पापेष्वभिरतस्य च ।।

मैंने तो पहले से यह निश्चय कर लिया था कि कंस का वध ही श्रेष्ठ है। जो सदा पापों में तत्पर रहने के कारण साधु पुरुषों की दृष्टि में उद्वेजनीय (उद्वेग में डालने योग्य) हो गया हो उसे नष्ट कर देना ही श्रेयस्कर है।

जिस तरह छूत की बीमारी की रोक थाम न की जाये तो वह बढ़ती ही चली जाती है। उसी तरह यदि दुष्टता को न रोका जाये तो वह सारे समाज पर छा जाती है। इसलिये बुराई के उत्पन्न होते ही उसे समाप्त करने की कोशिश करनी चाहिये। भगवान कृष्ण आजीवन यही करते रहे तथा अपने भक्तों को भी इसी प्रकार की प्रेरणाऐं देते रहे। महाभारत युद्ध में जब दुर्योधन अर्जुन के सामने आया तब अर्जुन का उत्साह बढ़ाते हुए कृष्ण कहते हैं-

तमनार्यं सदा क्रुद्धं पुरुषं कामचारिणम् ।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा जहि पार्थाविचारयन्।।

पार्थ ! तुम युद्ध में श्रेष्ठ बुद्धि का आश्रय लेकर बिना किसी सोच-विचार के सदा क्रोध में भरे रहने वाले स्वेच्छाचारी दुष्ट पुरुष को मार डालो।

दुष्ट की एक पहिचान स्वेच्छा चारिता भी है। स्वेच्छाचारी व्यक्ति समाज के लिये बहुत दुखदायी होते हैं। न तो वे धर्म को मानते हैं न नियम को। वे सदा मन माना बर्ताव करते हैं। यदि समाज में मन मानी करने की वृत्ति पनपने लगे तो मत्स्य न्याय के अनुसार कमजोरों का कोई अस्तित्व ही संभव नहीं है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसीलिये शक्तिशाली व्यक्तियों का कर्तव्य है कि असहायों और दुर्बल का संरक्षण करें। तथा आंतकवादी तत्वों पर नियंत्रण बनाये रखें। किन्तु अक्सर होता यह है कि हम दूसरों पर तो नियंत्रण स्थापित कर लेते हैं। किन्तु हमारे अपने कहे जाने वाले कुटुम्बी, साथी या सहयोगी ही उच्छृंखल हो जाते हैं। तथा संकोच या मोह वश हम उनके कार्यों के मूक दर्शक या समर्थक बने रहते हैं। किन्तु क्या यह उचित है ? अनीति करने वाला कोई भी हो उसका संहार होना ही चाहिये। जब ब्रह्मा जी ने भगवान कृष्ण से गोलोक पधारने की प्रार्थना की तब श्री कृष्ण ने उनसे कहा-

तदिदं यादवकुलं वीर्यशौर्यश्रियोद्धतम् ।
लोकं जिघृक्षद् रुद्धं मे वेलयेव महार्णवः ।।
यद्यसंहृत्य दृप्तानां यदूनां विपुलं कुलम् ।
गन्तास्म्यनेन लोकोऽयमुद्वेलेन विनङ्क्ष्यति ।।

परन्तु अभी एक काम बाकी है, वह यह कि यदुवंशी बल विक्रम, वीरता, शूरता और धन सम्पत्ति से उन्मत्त हो रहे हैं। ये सारी पृथ्वी को ग्रस लेने पर तुले हुए हैं। इन्हें मैंने ठीक वैसे ही रोक रक्खा है, जैसे समुद्र को उसके तट की भूमि। यदि मैं घमंडी और उच्छृङ्खल यदुवंशियों का यह विशाल वंश नष्ट किये बिना ही चला जाऊँगा तो ये सब मर्यादा का उल्लंघन करके सारे लोकों का संहार कर डालेंगे।

अतः भगवान ने जिस प्रकार दूसरों को उनकी दुष्टता का दण्ड दिया था उसी तरह उन्होंने अपने कुटुम्बियों का भी संहार करा दिया। यही है वास्तविक क्षत्रियत्व भगवान कृष्ण ने आजीवन यही किया। इसके पीछे उनकी दुर्भावना नहीं सद्भावना ही छिपी हुई थी। अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की सिद्धि के लिये नहीं वरन् लोक मंगल के लिये ही उन्होंने ऐसा किया। पूरे देश के सर्वाधिक शक्तिशाली व्यक्ति होते हुये भी उन्होंने कहीं का भी राजा बनना स्वीकार नहीं किया। विशुद्ध कर्मयोगी की भांति सदा दुष्ट दलन के पुनीत कार्य में लगे रहे सुत जी शौनक से कहते हैं-

एवं नृपाणां क्षितिभारजन्मना-
मक्षौहिणीभिः परिवृत्ततेजसाम् ।
विधाय वैरं श्वसनो यथानलं-
मिथो बधेनोपरतो निरायुधः ।।

जैसे वायु बाँसों के संघर्ष से दावानल पैदा करके उन्हें जला देता है, वैसे ही पृथ्वी के भारभूत और शक्तिशाली राजाओं में परस्पर फूट डालकर बिना शस्त्र ग्रहण किये ही भगवान श्री कृष्ण ने उन्हें कई अक्षौहिणी सेना सहित एक दूसरे से मरवा डाला और उसके बाद आप भी उपराम हो गये।

जिस तरह आपरेशन हो जाने के बाद चिकित्सक अपने औजारों को रखकर मरहम पट्टी तथा रोगी के स्वास्थ्य सुधार के हेतु अन्य आवश्यक सामग्री जुटाने में लग जाता है। उसी प्रकार भगवान कृष्ण ने कभी भी अनावश्यक रक्त पात नहीं किया। जितने संघर्ष की आवश्यकता थी उतना ही किया और करवाया। वे सदैव अपने साथियों को इसकी प्रेरणा देते रहे। जब दुर्योधन ने छल पूर्वक युधिष्ठिर का राज्य हड़प लिया तब भगवान कृष्ण ने पाण्डवों तथा अपने अन्य साथियों से कहा-

ततः सर्वेऽभिषिञ्चामो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
निकृत्योपचरन् वध्य एष धर्मः सनातनः ।।

'हम सब लोग धर्मराज युधिष्ठिर को पुनः चक्रवर्ती नरेश के पदपर अभिषिक्त करें। जो दूसरों के साथ छल-कपट अथवा धोखा करके सुख भोग रहा हो, उसे मार डालना चाहिये, यह सनातन धर्म है।'

अतः अपने आप को कृष्ण का अनुयायी या भक्त कहने वालों का भी यह कर्तव्य है कि उनके मार्ग का अनुकरण करें। आज हमारे भीतर एवं बाहर सब तरफ दुष्प्रवृत्तियों का बोल बाला है। इनसे त्राण पाने के लिये संघर्ष के सिवा अन्य कोई चारा नहीं है। यह स्मरण रखना चाहिये कि हमारा संघर्ष बीमारियों से है बीमार से नहीं। आज हर तन और मन में असुर अपना अड्डा जमाए बैठे हैं। हमारा संघर्ष उन्हीं के खिलाफ होना चाहिये। तथा इसकी शुरुआत अपने आप से होनी चाहिये। आइए इस पुनीत ईश्वरीय कार्य में अपना विनम्र योग दान देकर सुखद एवं सुन्दर समाज रचना में संलग्न हों।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सत्यनारायण व्रत-प्रेरणा

उद्देश्य

सत्यनारायण व्रत कथा लोकप्रिय तो बहुत है किन्तु वर्तमान प्रचलित क्रम में उसका उपयोगी रूप लुप्तप्राय हो गया है। ऋषियों ने सत्यनारायण व्रत का प्रचार इस उद्देश्य से किया था कि लोग भगवान को मनुष्य-रूप में नहीं भाव-रूप, सिद्धान्त-रूप एवं शक्ति-रूप में समझें। सत्य ही नारायण है, यह भाव सत्यनारायण कथा से उभरता है। सत्य रूप में भगवान को मानकर उसकी आराधना ही सत्य-व्रत है।

सत्यनारायण व्रत कथा से सभी वर्गों को मार्गदर्शन दिया जा सकता है। समाज में चार शक्तियाँ प्रधान रूप से सक्रिय रहती हैं। १-ज्ञान २-बल ३-धन एवं ४-श्रम। इन सभी शक्तियों का विकास और सदुपयोग समाज की सुव्यवस्था के लिए आवश्यक है। इन्हीं शक्तियों से सम्पन्न व्यक्तियों को क्रमशः १- ब्राह्मण २- क्षत्रिय ३- वैश्य एवं ४- शूद्र कहा जाता है। इन शक्तियों को सत्य-परायण बनाकर कैसे सुख-समृद्धि पायी जाय, यह मार्गदर्शन सत्य-व्रत कथा से मिलता है।

इस दृष्टि से सत्यनारायण व्रत कथा बहुत लोकोपयोगी है। लोकप्रिय कथा को लोकोपयोगी ढंग से प्रस्तुत किया जा सके तो समाज का उल्लेखनीय लाभ हो सकता है। लोग सत्य-व्रत का सही रूप सत्यनारायण कथा के माध्यम से समझ लें, तो सच्चे अर्थों में आस्तिक बनें तथा सुख-समृद्धि के अधिकारी बन जायें। इसके लिये कथा वाचकों को अपने गंभीर उत्तरदायित्व को समझना और पालन करना होगा।

इन दिनों एक बड़ी कठिनाई लोगों के पास समय की कमी की है। पुण्य की दृष्टि से कथा कहने-सुनने वाले तो जल्दी-जल्दी फर्राटा मारकर किसी प्रकार कथा पूरी करके सन्तोष कर लेते हैं किन्तु जहाँ लोकशिक्षण और लोगों को सही दिशा प्रदान करना मुख्य उद्देश्य हो वहाँ ऐसा सम्भव नहीं। पूरी कथा व्याख्या सहित कहने में समय बहुत लग जाता है। पाँच दिवसीय कथा आयोजनों में अथवा किन्ही विशेष प्रसंगों में तो उतना समय निकाल भी लिया जाता है परन्तु घरेलू स्तर पर कथा-आयोजन करने में समय की मर्यादा आवश्यक हेा जाती है। इसका मतलब यह है कि कथा के कुछ महत्वपूर्ण अंशो पर जोर देते हुए सामान्य घटनाक्रम को तेजी से पूरा कर दिया जाए, किन्तु इतना कर पाना हर कार्यकर्ता के लिये सम्भव नहीं हो पाता।

सत्यनारायण व्रत-प्रेरणा विशेष रूप से इन्हीं समस्याओं के हल के रूप में प्रस्तुत की गयी है। कुछ चुने हुए श्लोकों को ही इसमें लिया गया है। नीचे के कथा प्रसंगों की श्रंखला सरल भाषा में मिला दी गई है। महत्वपूर्ण व्याख्या के स्थलों पर रोचक-प्रेरक कथा प्रसंग भी संक्षेप में दे दिये गये हैं। इन कथा प्रसंगों में से आवश्यकता के अनुसार एक या अधिक प्रसंग उस संदर्भ में सुनाये जा सकते हैं। समय के अनुसार उन्हें संक्षिप्त करना अथवा विस्तार देना कठिन कार्य नहीं है। इतना अभ्यास तो कथा वाचक को कर ही लेना चाहिये। आवश्यकतानुसार कथा वाचकों के लिए संकेत ० के अन्दर दे दिये गये हैं। चिन्ह लगाकर कथा प्रवाह को सुगम भाषा में आगे बढ़ाया गया है। इन संकेतों को ध्यान में रखकर कथा करने में सुगमता रहेगी। उदाहरण, दृष्टांत स्थान-स्थान पर दिए हैं । कथावाचक अपनी विशेषता से उन्हें सरसता प्रदान करते रह सकते हैं। इसी प्रकार के अन्य उपयुक्त उदाहरणों का उपयोग भी किया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्यनारायण व्रत कथा

प्रथमोऽध्याय:

व्यास उवाच-

एकदा नैमिषारण्ये ऋषय: शौनकादय: ।
पप्रच्छुर्मुनय: सर्वे सूतं पौराणिकं खलु ।। १।।

एक बार नैमिषारण्य नामक पुण्य स्थल में शौनक आदि ऋषियों ने महान् पौराणिक सूत जी से अपनी जिज्ञासा प्रकट की।

शौनक उवाच-

व्रतेन तपसा किम्वा प्राप्यते वाच्छितं फलम् ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महामुने ।। २।।

श्रोता ऋषियें ने पूछा-ऐसा कौन सा व्रत अथवा तप है, जिसे करने से सभी लोग वांछित फल पा सकते हैं। यह विषय हमें कृपया भली प्रकार समझाइये।

सूतजी बोले-एक बार देवर्षि नारद ने भी भगवान विष्णु से ऐसा ही प्रश्न किया था। उस प्रसंग को मैं कहता हूँ आप लोग ध्यानपूर्वक सुनें।

एकदा नारदो योगी परानुग्रहकांक्षया ।
पर्यटन्विविधांल्लोकान् मर्त्यलोकमुपागत: ।। ३।।

एक बार नारदजी लोक कल्याण की भावना से विविध लोकों में विचरण करते हुए मृत्यु लोक (पृथ्वी) में पहुँचे।

ततो दृष्ट्वा जनान्सर्वान् नानाक्लेशसमन्वितान् ।
नाना योनिसमुत्पन्नान् क्लिश्यमानान्स्वकर्मभि: ।। ४।।

वहाँ उन्होंने अधिकांश मनुष्यों को अपने ही असत्कर्मों के प्रभाव से नाना प्रकार के कष्ट पाते देखा।

यहाँ अपने ही कर्मों के कारण दु:ख भोगने के तथ्य पर प्रकाश डालते हुए आवश्यक विस्तार के साथ नीचे की एक या अधिक कथाओं द्वारा अपने कथन की पुष्टि की जाय।

उदाहरण

१-राजा दशरथ राम के वियोग में जल विहीन मछली की तरह छटपटा रहे थे। देवी कौशल्या उन्हें समझाकर धैर्य दिलाने का प्रयास कर रही थीं। मन्त्री सुमन्त्र के मन में प्रश्न उठा कि पुत्र वियोग तो रानी को भी है, पर दु:ख राजा को अधिक क्यों भोगना पड़ रहा है। प्रश्न का समाधान तब हुआ जब होश आने पर दशरथ स्वयं कौशल्या जी को अपने द्वारा श्रवण कुमार के वध की कथा सुनाने लगे। सुमन्त्र समझ गये कि राजा के अपने कर्म ही उन्हें दु:ख दे रहे हैं।

२-ज्ञानी योद्धा बर्बरीक के सिर को दिव्य दृष्टि प्रदान करके भगवान कृष्ण ने उसे एक वृक्ष की चोटी पर महाभारत का युद्ध देखने के लिये रख दिया था। युद्ध के बाद पाण्डव योद्धा अपनी-अपनी शेखी दिखाते हुए युद्ध-विजय में अपनी भूमिका का बखान करने लगे। भगवान कृष्ण ने प्रत्यक्षदर्शी बर्बरीक से निर्णय लेने की सलाह दी। बर्बरीक उनकी बातें सुनकर हंसे और कहने लगे कि तुम सब कृष्ण के साथ रहकर भी अज्ञानी ही रहे। अरे, यह तो सब अपने दुष्कर्मों के प्रभाव से चलती-फिरती लाशों की तरह ही थे। इनके दुष्कृत्यों ने इन्हें खोखला कर दिया था। ईश्वरीय नियमानुसार यह स्वत: ही नष्ट हुए हैं।

३-कृष्ण बहेलिये का तीर खाकर पीड़ा से छटपटा उठे। बहेलिया क्षमा माँगने तथा दु:ख प्रकट करने लगा। कृष्ण ने उत्तर दिया-तुम दु:ख मत करो, बालि को इसी प्रकार मारने के कारण मुझे कर्म व्यवस्थानुसार यह कष्ट सहना आवश्यक था।

४-कंस वध के बाद देवर्षि नारद मथुरा पहुँचे। राजा उग्रसेन ने उनसे पूछा-देवर्षि ! कंस का वध तो अब हुआ किन्तु वर्षों तक वह मर्मांतक पीड़ा पाता रहा। उसे नींद नहीं आती थी और विक्षिप्त की तरह चीख-चीख पड़ता था। क्या यह मृत्यु के भय से था अथवा अन्य कोई कारण था। नारदजी बोले "राजन् वह उसके स्वयं के पाप कर्मों की प्रतिक्रिया थी। उसके कुकर्म ही उसे पीड़ा पहुँचाते रहे अन्यथा मृत्यु तो हर मनुष्य की स्वाभाविक ढंग से आ जाती है। उसके पूर्व वर्षों तक भयानक कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।"

५-राजा नहुष को ऋषि शाप के कारण इन्द्र पद से च्युत होकर अजगर योनि में जाना पड़ा। उसकी दुर्दशा देखकर वायु देव ने देवगुरु बृहस्पति से पूछा कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे इस स्थिति में पहुँचाने के लिए क्या किसी ने कपट-चाल चलकर उसे श्राप दिलवा दिया? गुरु वृहस्पति ने उत्तर दिया-नहीं परन्तु उसे श्राप दिलाने तथा इस प्रकार दीन-हीन स्थिति में ठेल देने के लिये उसके अपने ही पाप कर्म उत्तरदायी हैं। अपने ही श्रेष्ठ कर्मों से वह इन्द्र पद का अधिकारी बना था और पाप कर्मों में प्रवृत्त होकर स्वयं ही अपने पतन का कारण बन गया।

लोगों को पीड़ित देखकर देवर्षि दुःखी हुए और समस्या का समाधान खोजने लगे:-

केनोपायेन चैतेषां दुःखनाशो भवेत् ध्रुवम् ।
इति संचिन्त्य मनसा विष्णुलोकं गतस्तदा ।। ५ ।।

प्राणियों के कष्ट और दुःख कैसे मिटें, यह सोचते हुए वे विष्णुलोक जा पहुँचे।

वहाँ उन्होंने भगवान से प्राणियों के कष्ट निवारण का उपाय पूछा:- भगवान ने उन्हें बतलाया कि जब मनुष्य अपने लिए निर्धारित सत्य पथ से विचलित हो जाते हैं तभी ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है। इस स्थिति से उबरने के लिए व्रतपूर्वक निर्धारित अनुशासनों के पालन का अभ्यास करना चाहिए।

श्री भगवानुवाच-

सत्यनारायणस्यैकं व्रतं सविधिविधानतः ।
कृत्वा सद्यः सुखं भुक्त्वा चांते मोक्षमवाप्नुयात् ।। ६ ।।

भगवान विष्णु बोले-हे नारद ! "सत्य नारायण व्रत" एक ऐसा व्रत है जिसे विधि-विधानपूर्वक करने से इस जीवन में सुख की प्राप्ति होती है और मरने पर सद्गति अथवा यश मिलता है।

नारायणस्वरूपं हि सत्यमस्ति च यो नरः ।
व्रतं गृह्णाति सत्यस्य भवति तस्यानुकम्पितः ।। ७ ।।

भगवान ने कहा-सत्य ही भगवान का सच्चा स्वरूप है। ऐसा समझकर जो मनुष्य सत्यव्रत को अपनाता है, वह प्रभु की कृपा का लाभ अवश्य पाता है।

भगवान व्यक्ति रूप नहीं भाव रूप हैं। सत्य उनका सर्वश्रेष्ठ स्वरूप है यह प्रतिपादन करते हुए समर्थन में नीचे दी हुई कथाओं का उपयोग किया जा सकता है।

कथा प्रसंग

१-राजा हरिश्चन्द्र परीक्षा में सफल हुए तथा भगवान ने प्रकट होकर उन्हें अपने श्रेष्ठ भक्त की मान्यता दी। प्रश्न उठा कि वह तो वर्षों तक अनवरत श्रम में लगे रहे, पूजा-उपासना का इन्हें समय ही नहीं मिला फिर इन्हें श्रेष्ठ भक्त का सम्मान क्यों कर मिल गया ? देवगुरु वृहस्पति ने समझाया, "वत्स ! हरिश्चन्द्र सतत् उपासना में लगे रहे हैं, उन्होंने सत्य रूप में प्रभु की उपासना की है। उनके मन से सत्य की मर्यादा प्रतिष्ठा का विचार क्षण भर को भी नहीं हटा। भगवान की यह श्रेष्ठ उपासना है इसीलिए उन्हें यह सम्मान मिला।

२-राजा दशरथ राम का विछोह सह नहीं सकते थे। लोगों ने सलाह दी कि आपको अपना निर्णय बदलने का हक है। कैकेयी की बात मत मानिये। राजा ने कहा कि मुझे राम का पिता बनने का सौभाग्य जिस सत्याचरण के प्रभाव से मिला है, उसे त्याग कर मैं अपने स्तर से गिरना नहीं चाहता। मुझे वचन सोच-समझकर देना चाहिए था पर अब सत्य की मर्यादा भंग करके जीवन का मोह करना मुझे स्वीकार नहीं और सत्यनिष्ठ राजा इसलिए जीवन मुक्त की गति पा सके।

३-गाँधी जी से एक अंग्रेज ने पूछा कि विपरीत स्थिति में विरोधियों के बीच भी आप सही बात कहने में जरा भी नहीं झिझकते, इसका क्या कारण है ? गाँधी जी बोले-मैं सत्य को परमात्मा का रूप ही मानता हूँ। सत्य के पक्ष में रहने से मुझे लगता है कि मैं सर्व समर्थ प्रभु की गोद में बैठा हूँ। उसकी गोद में होने से फिर किसी का भय कैसे लग सकता है ?

४-भीष्म शर-शैय्या पर लेटे थे। मामा शकुनि उनके पास गये और बोले- "आपने शत्रु पक्ष को अपनी दुर्बलता बताकर स्वयं भी कष्ट पाया तथा हमारी भी हानि की ऐसा करना आपके लिए उचित न था।" भीष्म ने कहा- "शकुनि तुम भूलते हो कि कौरवों के अन्न से शरीर पालने के कारण केवल शरीर से मैं तुम्हारे पक्ष में था। मेरा अन्तःकरण प्रभु के अनुदानों से पलता है, अतः मन से मैं उसी पक्ष में हूँ जिस पक्ष में भगवान कृष्ण हैं।" शकुनि ने प्रश्न किया- "क्या आप भी उस छलिया कृष्ण को ईश्वर मानते हैं ?" भीष्म बोले-कृष्ण को ईश्वर मानूँ न मानूँ पर सत्य पाण्डवों के पक्ष में है। मैंने जीवन भर सत्य को ही ईश्वर मानकर उसकी आराधना की है। इसलिए अपनी प्रतिज्ञायें जीवन भर निभा सका। वही मेरा सच्चा इष्ट है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नारद ! मर्त्यलोकेऽस्मिन् मानवा: सत्यधर्मयो: ।
लभन्ते दु:खमत्यन्तं त्यागेनैव च सर्वथा ।। ८।।

हे नारद ! संसार में लोग सत्य धर्म की उपेक्षा करने के कारण ही अत्यधिक कष्ट पा रहे हैं।

व्यवहारं च सत्यं चेत् ते धर्माचरणं तथा ।
समुद्यता: स्यु: कर्त्तुं वै मुक्तिं दु:खेभ्य: प्राप्नुयु: ।।९।।

यदि संसारी मनुष्य शब्दों से ही नहीं, आचरण से भी सत्य धर्म के पालन के लिए तत्पर हो जायें, तो निश्चित रूप से दु:खों से छुटकारा पा सकते हैं।

चत्वार: सन्ति धर्मस्य पादा वृषभरूपिण: ।
विवेक: संयम: सेवा तुरीय: साहसं शुभ: ।। १०।।

धर्मरूपी वृषभ के चार चरण कहे गये हैं। (१)विवेक (२) संयम (३) सेवा और (४) साहस। सत्य धर्मपालक के जीवन में यह सभी गुण रहते हैं।

धर्म के चार चरणों का महत्व समझाते हुए, उन्हें जीवन में धारण करने विकसित करने और प्रयुक्त करने की प्रेरणा दी जाय। उदाहरण रूप में निम्नलिखित कथाओं का उपयोग किया जा सकता है।

उदाहरण

विवेक- धर्म विवेक-सम्मत ही होता है। विवेकपूर्ण निर्णय लेने वालों को धर्म पालन में अग्रणी माना गया है। स्थूल दृष्टि से भले ही उनके आचरण विपरीत दिखते हों, जैसे-

पिता तज्यो प्रह्लाद विभीषण बन्धु, भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज बनितन, भे मुद मंगलकारी ।।

पिता, बड़े भाई, माता, गुरु एवं पति की आज्ञा मानना धर्म संगत कहा जाता है किन्तु प्रहलाद का पिता हिरण्यकश्यप, विभीषण का भाई रावण, भरत की माँ कैकेयी, बलि के गुरु शुक्राचार्य तथा गोपियों के पति उन्हें श्रेष्ठ-मार्ग पर ईश्वरीय मार्ग पर बढ़ने से रोकते थे। अत: उन्होंने परम्परा की जगह विवेक को महत्व दिया तथा उनकी अवज्ञा कर दी। विवेक-सम्मत होने से उन्हें धर्म परायण ही माना गया।

संयम- धर्म का एक चरण संयम भी है। संयमशील ही धर्माचरण में स्थिर रह पाता है अन्यथा असंयम उसे पतित कर देता है। संयम की महत्ता के अनेक उदाहरण हैं जैसे-

१-लक्ष्मण ने संयम द्वारा ही वह शक्ति प्राप्त की थी जिसके द्वारा मेघनाद को मारकर धर्मस्थापना में योगदान दे सके।

२-अर्जुन भी इन्द्रियजयी कहे जाते थे इसीलिये अपराजेय रहे। स्वर्ग में अप्सरा उर्वशी ने उन्हें विचलित करने का प्रयास किया किन्तु वे दृढ़ रहे। उसे भी उन्होंने माँ रूप में ही स्वीकार किया।

३-शिवाजी पर भवानी की कृपा थी। वह भी इसलिये कि वे नारी मात्र के प्रति मातृ भावना रखते थे। शत्रु पक्ष की सुन्दरी गौहरबानू को भी उन्होंने माँ कहकर ही सम्बोधित किया।

४-सती गांधारी की आँखों में दिव्य शक्ति होने का उल्लेख मिलता है। दुर्योधन के जितने शरीर पर उनकी दृष्टि पड़ी वह वज्र जैसा हो गया था। वह शक्ति संयम से ही आयी थी। पति के अंधे होने के कारण उन्होंने स्वयं भी नेत्रों का उपयोग करना छोड़ दिया था। सांसारिक आकर्षण में शक्ति का अपव्यय बचा और उनमें अद्भुत क्षमता जाग गई।

सभी ऋषि मुनि संयम द्वारा अपनी आवश्यकताओं को कम से कम करके तथा आंतरिक शक्तियों को विकसित करके स्वयं गौरव पाते थे और समाज का हित साधन करने में समर्थ होते थे।

सेवा- धर्माचरण में सेवा आवश्यक है । सेवा का महत्व समझने वालों ने यश और जीवनोद्देश्य की प्राप्ति सफलतापूर्वक की है-

१-भगवान राम ने हनुमान जी को सेवा का महत्व बताते हुए कहा -

सोई अनन्य जाके अस मति न टरई हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ।।

हनुमान जी ने उसे अपना गुरु मंत्र बना लिया और पूरी तत्परता से सेवा कार्य में अपनी सारी शक्ति-सामर्थ्य लगा दी। फलस्वरूप वे भगवान के साथ-साथ पूजा के अधिकारी बन गये।

२-भगवान कृष्ण सेवा का महत्व समझते थे और उसकी प्रतिष्ठा चाहते थे। इसलिये उन्होंने पाण्डवों के राजसूय यज्ञ में अतिथियों के पैर धुलाने और जूठी पत्तलें उठाने का कार्य अपने जिम्मे लिया था।

३-शबरी भीलनी थी। उसे लोग अन्य प्रकार का भजन-पूजन न करने देते थे। उसने मातंग ऋषि के आश्रम में रहने वाले तपस्वियों और ब्रह्मचारियों आदि की सेवा का कार्य मूक निष्ठा के साथ प्रारम्भ कर दिया। उनके मार्ग को साफ करना, सरोवर को गन्दा न होने देना आदि कार्य तत्परता से करती रही। बदले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

में कुछ आकांक्षा भी नहीं की। फलस्वरूप भगवान राम स्वयं उसके यहाँ पहुँचे और उसे उच्चतम सम्मान दिया।

४-सिक्खों के गुरु रामदास के अनेक योग्य शिष्य थे। अर्जुनदास उनकी तुलना में कम योग्य थे किन्तु सेवा-साधना में उनकी तन्मयता तथा लगन अनुपम थी। बर्तन साफ करने जैसा छोटा समझा जाने वाला कार्य, वे पूरी निष्ठा और तत्परता से करते रहे। यही कारण था कि गुरु रामदास जी ने उन्हें ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया।

साहस-धर्माचरण के लिये सत् साहस अनिवार्य है अन्यथा व्यक्ति समर्थ होकर भी श्रेष्ठ मार्ग पर कदम नहीं बढ़ा पाता। साहस के उदाहरण निम्न प्रसंगों में स्पष्ट होते हैं-

१-जटायु ने देखा कि राक्षसराज रावण सीता को उनकी इच्छा के विरुद्ध ले जा रहा है। प्रतिरोध न होने से गलत कार्य करने वाले का हौंसला बढ़ता है। उसने राक्षसराज को चुनौती देते हुए भरपूर प्रतिरोध किया और धर्माचरण की दिशा में एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया।

२-नचिकेता के पिता ने यज्ञ किया और दिखावे के रूप में निरर्थक वस्तुओं का दान करने लगे। नचिकेता को यह बुरा लगा। उसने साहसपूर्वक पिता से सही ढंग से दान करने का आग्रह किया। उन्होंने डर-भय दिखाने के लिये कहा "तू ही बड़ा उपयोगी है तुझे ही दान कर दूँगा।" नचिकेता विचलित न हुआ पूछा-"मुझे किसको दान में देते हैं।" पिता ने झल्लाकर कहा "यम को"। लोगों के हजार मना करने पर भी नचिकेता नहीं माना। स्वयं यमराज के पास चला गया और संजीवनी विद्या का अधिकारी बना। चोट खाकर उसके पिता ने भी दिखावा छोड़कर सही मार्ग अपना लिया।

३-पाण्डव जब अज्ञातवास में थे। चक्रपुर में उन्हें पता लगा कि एक राक्षस के भोजन के लिये नित्य एक व्यक्ति भेजा जाता है। इस अनीति को समाप्त करना उचित था भीम राक्षस को मारने में समर्थ भी थे। पर अज्ञातवास का भेद खुलने पर पुनः अज्ञातवास की अवधि पूरी करनी पड़ती। पाण्डवों ने धर्म कार्य के लिये साहस दिखाया। पुनः अज्ञातवास का खतरा उठाने को तैयार हो गये। भीम को एक ब्राह्मणी के इकलौते पुत्र के स्थान पर राक्षस का आहार बनने भेज दिया और भीम ने उसे द्वन्द्व युद्ध में मार गिराया।

४-इन्द्र ने वज्र बनाने के लिये ऋषि दधीचि से उनकी हड्डियों की माँग कर दी। ऋषि ने उसे साहस के साथ स्वीकार किया तथा लोक हित में शरीर छोड़ने में जरा भी नहीं हिचके।

५-समर्थ गुरु रामदास विवाह मण्डप में बैठे थे। परम्परा के अनुसार पुरोहित बोला "लड़के-लड़की सावधान", रामदास ने विचारा कि यही अवसर है निर्णय का, परिवार में फसूँ या लोकमंगल के पथ पर बढ़ चलूँ। बुद्धि ने लोग मंगल का पक्ष लिया। साहस ने साथ दिया और वह उठकर भाग खड़े हुए किसी के हाथ न आये। समय पर साहस दिखा सकने के कारण ही वे समर्थ गुरु रामदास बन सके।

माल्याकारः इवोद्याने सदा कृत्यपरायणः।
पोषणं वर्धनं चास्य कुरुते नियमैर्व्रतः ।। ११।।

सत्यधर्मपराण व्यक्ति अपने परिवार और समाज को एक उपवन मानकर कर्तव्यनिष्ठ माली की तरह उसका शोधन, पोषण और संवर्धन करता है।

माली के कर्तव्यों उत्तरदायित्वों के माध्यम से संसार को सुरम्य बनाने की प्रेरणा दी जाय। निम्नलिखित कथा द्वारा कर्त्तव्यों को स्पष्ट किया जा सकता है।

उदाहरण

१-एक राजा ने दो माली रखे और उन्हें एक-एक बगीचा सौंप दिया । मंत्रियों ने उन्हें समझाया कि राजा को प्रसन्न रखना उनका परम कर्तव्य है । एक माली ने बगीचे में राजा का चित्र स्थापित करके अधिकांश समय उसकी पूजा, वंदना, आरती में लगाना प्रारम्भ कर दिया । दूसरे ने राजा की रुचि का ध्यान रखकर उसी के अनुसार सुन्दर फल-फूल उगाने प्रारम्भ कर दिये। राजा निरीक्षण के लिये पहुँचे तो पहले माली से उन्हें बहुत निराशा हुई और दूसरे को उन्होंने पारितोषिक देकर सम्मानित किया ।

२- शिष्य त्रिविक्रम और चित्रांगद गुरु के पास पहुँचे तथा अपने-अपने उपवनों की प्रगति की सूचना दी। गुरु देव ने उनका निरीक्षण किया तो पाया चित्रांगद के बगीचे के वृक्ष कमजोर थे और अस्त-व्यस्त एवं कुरुप भी। त्रिविक्रम के बाग में वृक्ष पुष्ट तथा सुडौल थे। चित्रांगद कहने लगे गुरु देव मैंने पौधों को खाद-पानी त्रिविक्रम से कम नहीं दिया। उनको जरा भी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुडौल थे। चित्रांगद कहने लगे गुरु देव मैंने पौधों को खाद-पानी त्रिविक्रम से कम नहीं दिया। उनको जरा भी कष्ट नहीं होने दिया फिर भी ये पुष्ट नहीं लगते हैं दैव का प्रकोप है। गुरु हँसे-बोले -बेटा मात्र खाद-पानी ही सब कुछ नहीं तुमने उनकी कटाई-छँटाई नहीं की इसलिये यह बेडौल हैं। इनके आस-पास अनेक झाड़-झंखाड़ उग आये हैं। यह उनके हिस्से का आहार खींच लेते हैं। वत्स ! निराई और छँटाई भी सीखो ।

लोभममत्वमात्सर्य मदकामादिदूषणैः ।
रहितं हृदयं तेषां न छिद्रान्वेषिणश्च ते ।। १२।।

सत्यनिष्ठ लोगों का हृदय लोभ, ममत्व (मोह), मात्सर्य (ईर्ष्या-डाह), मद (अहंकार) और काम (इच्छा) आदि दोषों से शुद्ध होता है तथा वे दूसरों के दोष भी नहीं ढूँढ़ा करते।

(उक्त दोषों की हानियाँ समझाकर सत्यपरायण बने रहने की प्रेरणा के लिये नीचे लिखे उदाहरणों में से कुछ का उपयोग कर सकते हैं।)

लोभ-

किसी वस्तु पद अथवा यश के आकर्षण में व्यक्ति विवेक खो बैठता है। सत्यसाधक विवेक से यथार्थ को समझ कर लालच में नहीं पड़ता। लोभी सत्य भूल कर दुर्गति वरण कर लेता है।

उदाहरण-१ मछली काँटे में लगे आटे के लालच में जान गँवाती है । पक्षी दाने के लोभ में शिकारी का जाल नहीं देख पाते और फँसते हैं। मनुष्य स्वादिष्ट भोजन के लोभ में पेट खराब करके रोगी बन जाते हैं। पैसे के लालच में पड़ कर लोग मनुष्यता भूल जाते हैं, भाईचारा तोड़कर कुकृत्य करते देखे जाते हैं।

२-दुर्योधन द्वारा सेनापति बनाये जाने के लालच में अश्वत्थामा ने नियम विरुद्ध रात में सोते हुए पाण्डव पुत्रों की नृशंसहत्या कर दी और जीवन भर के लिये कलंक तथा अपयश कमाया मिला कुछ भी नहीं।

३-लालच में पड़कर जयचंद ने पृथ्वीराज को धोखा दिया-मोहम्मद गोरी का साथ दिया। अंभि ने पोरस को धोखा देकर सिकन्दर का साथ दिया। दीवान दूल्हाजू नामक सरदार ने रानी झांसी को धोखा देकर अंग्रेजों की मुखबिरी की। अंग्रेजों ने काम निकल जाने पर उसे तोप से उड़ा दिया। सभी घाटे में रहे।

मोह-प्रेम अपने आत्मीय भाव के विस्तार के लिये तथा दूसरों को प्रगति पथ पर बढ़ाने के लिये होता है। मोह में पड़कर व्यक्ति प्रेम का विकृत उपयोग करने लगता है। इस कारण उचित-अनुचित भूलकर अपनी और दूसरों की प्रगति में बाधक बनता है।

१-राजा दशरथ कैकेयी के मोह में पड़कर बिना सोचे वचन दे बैठे जो सभी के लिए गंभीर संकट का कारण बना।

२-पुत्र मोह में पड़कर द्रोणाचार्य ने गुरुकुल चलाने की अपेक्षा राजा की नौकरी कर ली। फलस्वरूप शिष्यों-कौरवों से अपमानित होते रहना पड़ा धर्मपक्ष छोड़ना पड़ा और पुत्र मोह में ही मारे गये।

काम- कामेच्छा के वशीभूत भी मनुष्य सत्यपथ भूल जाता है। क्षणिक सुख के लिए स्थायी सुख-सौभाग्य खो देता है- (इन दुर्गुणों से होने वाली हानियाँ समझाने के लिए नीचे लिखे कथनों की भी सहायता ले सकते हैं)

उदाहरण

१-सुन्द-उपसुन्द महाबली दैत्य थे। उन्होंने वरदान माँगा था कि वे परस्पर एक दूसरे को मारें तभी मरें अन्यथा नहीं। उनमें बड़ा प्रेम था। भगवान ने मोहिनी रूप बनाया। दोनों उस पर मोहित हो गये। मोहिनी ने उनसे अलग-अलग बातचीत की। मोहिनी की आसक्ति में वे एक दूसरे से लड़कर नष्ट हो गये।

२-इन्द्र और चन्द्रमा ने मिलकर गौतम ऋषि तथा उनकी पत्नी अहिल्या से छल किया। चन्द्रमा ने मुर्गा बनकर बाँग लगाई, सबेरा हुआ समझ कर ऋषि गंगा स्नान करने चल पड़े। इन्द्र ने ऋषि का वेष बनाकर अहिल्या का सतीत्व भंग कर दिया। फलस्वरूप दोनों को शाप लगा और वे सदा के लिये कलंकित हो गये।

३-राजा ययाति ने अपनी आयु पूरी होने पर अपने पुत्र की जवानी माँग ली फिर भी कामेच्छा तृप्त न हुई फलतः उसे निकृष्ट योनि में जाना पड़ा। नहुष इन्द्र पद पाने के बाद भी इन्द्राणी पर कुदृष्टि डालने के कारण ही सर्प योनि में गये।

मात्सर्य (ईर्ष्या-डाह)

यह दूसरे की प्रगति को देखकर स्वयं ऊंचा उठने की प्रेरणा लेने के स्थान पर उन्हें गिराने-अपमानित करने की प्रवृत्ति है। मनुष्य इसी दोष के कारण यह सत्य भूल जाता है हमारी विभूतियाँ स्वयं को तथा दूसरों को उठाने के लिए हैं गिराने के लिए नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उदाहरण

१ भक्त अंबरीष की ख्याति, निश्छल स्वभाव और सेवा भावना के कारण फैलने लगी। ऋषि दुर्वासा को उनके यश से ईर्ष्या हुई और वे अकारण नीचा दिखाने के लिए शिष्यों सहित पहुँचे और केवल इस बात पर क्रुद्ध हो उठे कि अंबरीष ने उन्हें भोजन कराये बिना चरणामृत और तुलसीदल क्यों पान कर लिया ? उन पर कृत्या शक्ति छोड़ दी। अम्बरीष शान्त बने रहे। भगवान विष्णु ने यह अनीति देखकर सुदर्शन चक्र छोड़ा। कृत्या को समाप्त करके वह दुर्वासा के पीछे लग गया जब तक उन्होंने अंबरीष से क्षमा नहीं माँग ली, वे तीनों लोकों में भागने पर भी निर्भय न हो सके।

२-पाण्डवों को छल से जुए में हराकर कौरवों ने उन्हें शर्त के अनुसार वनवास के लिए भेज दिया। वे परस्पर सद्भाव के कारण वहाँ भी सुख से रहने लगे। ईर्ष्यावश उन्हें चिढ़ाने के लिए कौरव दल-बल सहित वैभव प्रदर्शन करने जंगल में पहुँचे। वहाँ यक्षों के सरोवर में स्नान करने पर झगड़ा हुआ और यक्षों ने कौरवों को बन्दी बना लिया। सूचना पाकर पाण्डवों ने ही उन्हें छुड़ाया। कौरवों को बहुत शर्मिन्दा होना पड़ा ।

३-ऋषि वशिष्ठ ने विश्वामित्र को बिना पात्रता पाये ब्रह्मर्षि कहने से इन्कार कर दिया। विश्वामित्र उनसे द्वेष करने लगे तथा अनेक प्रकार से हानि पहुँचाने का प्रयास किया। छल से उनके १०० पुत्रों को मार डाला। इससे उन्हें बहुत बदनामी उठानी पड़ी। पर जब इसे छोड़कर वे वशिष्ठ जी के सामने नम्र बने, तभी ब्रह्मर्षि पद के योग्य बन सके।

४-एक परिवार में बुड्ढा-बुढ़िया तथा एक बच्चा केवल तीन थे। उन पर दया करके शिव-पार्वती ने उनसे एक-एक वरदान माँगने को कहा। बुड्ढा और बुढ़िया का ईर्ष्यालु स्वभाव था। बुढ़िया ने मांगा "मुझे सुन्दर युवती बना दें। बुड्ढा ईर्ष्या से जल उठा और मांगा "इसे सुअरिया बना दें।" यह देख बच्चा रो उठा और उसने मांगा "मेरी मां ज्यों की त्यों हो जाये" तीनों वरदान पूरे हो गये पर हाथ कुछ भी न लगा।

३-उक्ति है "उघरें अन्त न होहि निबाहू कालनेमि जिमि रावण राहू ''- छल करने वालों का भेद कभी न कभी खुल ही जाता है और फिर वे हानि उठाते हैं। कालनेमि संजीवनी बूटी लेने जाते हुए हनुमान को धोखा देने ऋषि बनकर बैठा था पर मारा गया। रावण ने छल से सीता हरण किया पर उसे अपमान सहते हुए वंश सहित नष्ट होना पड़ा। राहु देवताओं का वेष बनाकर अमृत पान करने उनकी पंक्ति में जा बैठा पर सूर्य व चन्द्र ने पहचान लिया तथा सिर कटा बैठा।

मद (अहंकार)

यह मनुष्य एवं देव सभी को श्रेष्ठ मार्ग से भटका देता है।

१-रावण, कंस,हिरण्यकश्यप, भस्मासुर आदि राक्षसों को अहंकार हो गया था कि उनका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता, इसीलिए वे खुला अनीति करने लगे थे। यह शाश्वत सिद्धान्त वे भूल गये कि अनीति का अन्त आना ही है ; उन्हें भी तिरस्कार, अपमान एवं घृणा का पात्र बनना और नष्ट होना पड़ा।

२-भीम को अपनी शक्ति का अहंकार हो गया। कृष्ण भगवान ने सोचा कि इनका अभिमान दूर न किया गया तो अनिष्ट होगा। अत: हनुमान जी को समझा कर भेज दिया। वे मार्ग में बुड्ढे का वेष बनाकर पड़ गये। भीम आये, तो उन्हें रास्ता रोकने के लिए अहंकारपूर्वक अभद्र शब्द कहने लगे। हनुमानजी ने विनय की कि मैं चल नहीं सकता आप ही मुझे एक ओर खिसका दें। भीम ने तिरस्कारपूर्वक प्रयास किया फिर सारा बल लगा दिया, पर उन्हें हिला भी न सके। उनका अहंकार गल गया तो हनुमान जी ने अपना रूप दिखाकर उन्हें नम्र बने रहने का उपदेश दिया।

३-नारद जी की तपस्या कामदेव भंग न कर सका। नारद जी को अहंकार हो गया। सबसे अपनी बड़ाई कहते फिरे किन्तु विश्वमोहिनी पर मोहित होकर स्वयं तमाशा बनना पड़ा भगवान से भी लड़ पड़े। बाद में बोध हुआ तो पछताना पड़ा।

नारायणं सत्यरूपं य: स्थापयति सर्वदा ।
स एव जायते पात्रं प्रसादस्य प्रभो सदा ।। १३।।

नारायण सत्य रूप ही हैं, जो व्यक्ति यह आस्था, निष्ठापूर्वक सुदृढ़ता के साथ जीवन में समाविष्ट कर लेता है वह निस्संदेह भगवान की परम कृपा का अधिकारी बन जाता है।

नारद जी भगवान से सत्यनारायण व्रत का माहात्म्य और विधि-विधान समझ कर चल पड़े और संसार में व्रत का प्रचार करने लगे।

।। इति श्री सत्यनारायणव्रतकथायां प्रथमोऽध्याय: समाप्त: ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

द्वितीयोऽध्यायः

सूत उवाच-

अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि कृतं येन पुरा द्विज ।
कश्चित्काशीपुरे रम्ये ह्यासीद्विप्रोऽतिनिर्धनः ।। १४ ।।

सूतजी कहने लगे-हे ऋषियों ! अब आपको सत्यव्रत धारण करने वालों की कथा सुनाता हूँ। किसी समय काशी नगरी में एक बहुत गरीब ब्राह्मण निवास करता था।

द्विज नाम्ना सदानन्दो दैन्यभावमुपागतः ।
उदरपूर्त्तये भिक्षन् दुःखेनाविचरत्सदा ।। १५ ।।

ब्राह्मण का नाम सदानन्द था। वह दरिद्रता के कारण दीन भाव से व्याकुल होकर उदर पूर्ति के लिए भीख माँगता हुआ इधर-उधर घूमता फिरता था।

भगवान उसे सही दिशा देने के उद्देश्य से एक वृद्ध ब्राह्मण के रूप में उसके पास पहुँच कर बोले-

वृद्ध ब्राह्मण उवाच-

दूरं गतस्त्वं हे विप्र ! ह्यपेक्षितं सत्कर्मणः ।
कष्टं प्राप्नोषि तेनैव निदानं त्वसत्सेवनम् ।। १६ ।।

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा-हे सदानन्द तुम ब्राह्मणोचित सत् मार्ग से भटक गये हो, असत् मार्ग पर चलने के कारण ही तुम यह कष्ट पा रहे हो।

ब्राह्मण के कार्य हैं- १- स्वयं अपना तथा समाज का ज्ञान संवर्धन २- अपना तथा समाज का चरित्र संवर्धन तथा ३- श्रेष्ठ कार्यों के लिये सहयोग देना और दिलाना। (इनकी व्याख्या करें तथा आवश्यकतानुसार उदाहरण दें।)

उदाहरण

ज्ञान संवर्धन-

अज्ञान ही मनुष्य के दुःखों का कारण बनता है परन्तु ज्ञान का संग्रह और प्रसार तपस्वी कर सकते हैं। यह उत्तरदायित्व ब्राह्मण का है-

१-ऋषियों ने देश में धर्म तन्त्र के द्वारा ज्ञान संवर्धन की व्यापक व्यवस्था बना रखी थी। स्थान-स्थान पर चर्चा तथा सत्संगों के माध्यम से यह कार्य किया जाता था। आश्रम में ऋषि ज्ञानार्जन करते थे और उसे समाज में फैलाते थे, इसीलिए उनका सम्मान था। जन सामान्य से लेकर राजा तक उनसे मार्गदर्शन लेते थे। सूत-शौनक, याज्ञवल्क्य-वशिष्ठ आदि के नाम इस संदर्भ में प्रख्यात हैं। नारद जी तो इसी उद्देश्य से बराबर घूमते ही रहते थे।

२-नानक सामान्य व्यापारी के पुत्र थे, कबीर अनाथ थे। जुलाहे ने उन्हें पाला, वे शिक्षित भी नहीं थे, नामदेव और रैदास छोटे स्तर के व्यवसाय करके निर्वाह चलाते थे, किन्तु ज्ञान साधना और दूसरों को ज्ञान देने के कारण ही श्रेष्ठ संत-पूजनीय बने।

३-राजकुमार सिद्धार्थ रोगी, वृद्ध और मृतक को देखकर भयभीत हो गये थे। किन्तु ज्ञान प्राप्त होने पर बुद्ध कहलाये। सारे एशिया में ज्ञान का प्रसार करके अवतार के रूप में पूजित हुए।

चरित्र संवर्धन-

मनुष्य की श्रेष्ठता की परख उसके आचरण से होती है। जानकारी होना अच्छी बात है पर उसके आधार पर आचरण न किया जा सके तो वह ज्ञान भी निरर्थक हो जाता है।

१-रावण पुलस्त्य ऋषि के वंश का था, विद्वान भी बेजोड़ था, किन्तु चरित्र निर्माण में चूक जाने के कारण राक्षस बन गया।

२-बलि राक्षस वंश के थे। किन्तु शुक्राचार्य के सान्निध्य से अपने चरित्र को इतना श्रेष्ठ बनाया कि देवता भी लज्जित होने लगे। देवताओं की सहायता के लिए भगवान भी उनका अनिष्ट न करके उनके सामने याचक बनकर पहुँचे तथा चरित्र की श्रेष्ठता स्वीकार की।

३-देवताओं के लिए शुक्राचार्य से संजीवनी विद्या सीखने के लिये देवगुरु बृहस्पति के पुत्र कच ने साहस किया। उन्होंने शुक्राचार्य को अपना असली परिचय देकर आने का उद्देश्य भी बता दिया। कहा कि यदि अपने आचरण से मैं आपको प्रसन्न कर सकूँगा, तो विद्या लेकर ही जाऊंगा। शुक्राचार्य देवताओं को वह विद्या बताना नहीं चाहते थे। किन्तु चरित्र की विजय हुई। शुक्राचार्य तथा उनकी पुत्री देवयानी कच के चरित्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

से इतने प्रभावित हुए कि संजीवनी विद्या दे ही दी।

४-रामराज्य और रावणराज्य में वैभव और सम्पन्नता समान थी। किन्तु अन्तर केवल राजा और नागरिकों के चरित्र का था। राम के पास गुरु वशिष्ठ जैसे चरित्र सम्पन्न ब्राह्मण नागरिकों को सच्चरित्रता का पाठ पढ़ाते रहते थे। इसीलिये रामराज्य आदर्श राज्य हुआ।

(सेवा-सहयोग का प्रसंग चौथे अध्याय में जोड़ा गया है।)

आकर्षणं हि भिक्षाया: त्याज्यं चान्नमयन्त्वया ।
समाजाल्लभते विप्रो यदनेकगुणं पुन: ।
सेवासाधनरूपेण तं ददाति सुनिश्चितम् ।। १७।।

वृद्ध ब्राह्मण ने समझाया-भिक्षा आदि का असत् आर्कषण छोड़ दो ब्राह्मण के लिये यह उचित नहीं। ब्राह्मण तो समाज से जितने अनुदान लेता है, उससे अनेक गुने अनुदान ज्ञान-दान तथा सेवा-साधना के रूप में समाज को देता रहता है।

यहाँ भिक्षा-व्यवसाय की भर्त्सना करते हुए कुछ दृष्टांत सुनाये जा सकते हैं।

अपने निर्वाह के लिये भिक्षा माँगना जघन्य पाप है। जिसमें जरा भी स्वाभिमान शेष है, वह ऐसा नहीं कर सकता। लोक मंगल के लिये स्वयं अपने अनुदान देना और दूसरों से दिलाने का तो औचित्य है पर भिक्षा-व्यवसाय तो मनुष्यता पर कलंक है।

१-ऋषि लोग एकांत स्थान में रहकर तप और शोध कार्य किया करते थे। वहाँ वे अपने आहार की व्यवस्था कृषि अथवा कंदमूल फलों से कर लेते थे। माँगते नहीं थे। कणाद और पिप्पलाद ऋषि तो अन्न व्यवस्था के अभाव में बिखरे हुए अन्न के दाने एकत्रित करके और पीपल के बीजों को खाकर ही रह जाते थे पर समाज पर भार नहीं बनते थे।

२-द्रोणाचार्य ब्राह्मण थे। राजा द्रुपद उनसे सहायता का वादा करके मुकर गये इस कारण उन्हें कुछ समय तक बड़े अभाव में रहना पड़ा। बच्चों को दूध की जगह चावल पीस कर पिलाये पर भीख नहीं माँगी। भीष्म पितामह के आग्रह पर राजकुमारों को शिक्षा देने के बदले ही कुछ सहायता लेना स्वीकार किया।

३-भीख माँगना ओछा कार्य है, स्वयं भगवान को भी बलि से कुछ माँगना पड़ा तो वे वामन (छोटे) बनकर गये। यह भिक्षावृति के छोटेपन का ही आलंकारिक प्रदर्शन है।

४-सुदामा से उनकी पत्नी ने कहा कि अभाव दूर करने के लिए किसी से कुछ माँग क्यों नहीं लेते। सुदामा ने उत्तर दिया "ब्राह्मण का काम समाज को देना है,उससे लेना नहीं। ब्राह्मण की योग्यता का लाभ समाज अधिक लेना चाहे तो स्वयं ही उसका सहयोग करे-ऐसी मर्यादा है।" वे कृष्ण से मिलने गये उनके कार्य का महत्व समझकर कृष्ण ने उन्हें प्रचुर सहायता दी परन्तु उन्होंने वहाँ भी माँगा कुछ नहीं।

त्यक्त्वा दैन्यं भयं चापि ह्यालस्यं चाकर्मण्यताम् ।
कुरुष्व जाग्रतं स्वीयं ब्रह्मतेजश्च विप्र! त्वम् ।।१८।।

हे विप्र ! तुम दीनता, भय, आलस्य और अकर्मण्यता छोड़कर अपने ब्रह्म तेज को जागृत करने के लिए साधना करो।

विद्याध्येता च स्वाध्यायी भव धर्मं प्रचारय।
गुणकर्मस्वभावानां दृष्ट्याऽदर्शो भवेत्तथा ।। १९।।

विद्या की वृद्धि करो, स्वाध्याय करो और धर्म का प्रचार करो। तुम्हें स्वयं गुण, कर्म और स्वभाव की दृष्टि से दूसरों के सामने उच्च आदर्श उपस्थित करना चाहिए।

गत्वा प्रतिगृहं सर्वं जनचेतसि धार्मिकीम् ।
जागृतिं कुरु सर्वत्र कर्त्तव्यञ्च तवास्ति तत् ।। २०।।

तुम्हारा प्रधान कर्तव्य है कि घर-घर जाकर जन-जन में सच्ची धार्मिक चेतना जागृत करो।

भगवतो वच: श्रुत्वा वृद्धब्राह्मणरूपिण: ।
कृत: सुधारो दीनेन ह्याचारं परिवृत्य च ।। २१।।

वृद्ध ब्राह्मण के रूप में बोलने वाले भगवान का आदेश मानकर सदानन्द ने दीनता छोड़कर अपने आचरण को पूरी तरह सुधार लिया।

तेन जाता प्रतिष्ठा वै तेजस्वित्वमयापयत् ।
श्रद्धया सहयोगेन, सर्वेऽभावा ह्यक्षीयत ।। २२।।

सत्यव्रत के पालन से उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी, समाज के श्रद्धायुक्त सहयोग से उसके सारे अभाव मिट गये और वह तेजस्वी जीवन जीने लगा।

स विप्रो हि तत: सत्यनारायणव्रतस्य च ।
ख्यापयितुं महत्वं तु धर्मानुष्ठानरूपिणम् ।। २३।।

तब वह सत्य धर्म की महत्ता दर्शाने के लिए धर्म-आयोजन भी करने लगा।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राप्तः काष्ठस्य विक्रेता महत्तां दृष्टवान् स्वयम् ।
लालायितोऽभवद् ज्ञातुं सत्यस्य शुभदं व्रतम् ।। २४ ।।

ऐसे ही एक आयोजन के अवसर पर एक लकड़हारा वहाँ पहुँचा। आयोजन समाप्त होने पर लकड़हारे ने सदानन्द से सत्यनारायणव्रत के नियम बताने की प्रार्थना की।

सदानन्द उवाच-

श्रमस्य महती सम्पत् वर्तते तव सन्निधौ ।
सम्मान्यो हि श्रमो नित्यं कार्यश्च लग्नचेतसा ।। २५ ।।

सदानन्द ने कहा-हे भाई ! तुम अपने आपको दीन मत समझो, तुम्हारे पास तो श्रम की महान् पूँजी है। तुम श्रम के प्रति सम्मान के भाव जागृत करो, पूरे मनोयोग से काम करो।

(श्रम की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए दृष्टांत प्रस्तुत किये जा सकते हैं।)

उदाहरण

परिश्रम मनुष्य की बड़ी भारी पूँजी है। ज्ञानार्जन, धनार्जन सभी में श्रम करना पड़ता है। श्रम से बचने से अथवा श्रम के प्रति सम्मान का भाव न रखने से मनुष्य दीन-दरिद्र रहता है।

१-राजा जनक श्रम की प्रतिष्ठा के प्रबल समर्थक थे। राजकार्य तथा ज्ञानप्रसार की व्यस्तता में भी श्रमपूर्वक अपने लिये स्वयं अन्न उपार्जन करते थे। इसलिये उनकी प्रतिष्ठा बढ़-चढ़कर रही।

२-एक बार अनावृष्टि का योग पड़ा। लोगों ने कहा कि १२ वर्ष तक जल नहीं बरसेगा। किन्तु एक किसान फावड़ा लेकर खेत पर नित्य काम करता रहा। एक बार बादल वहाँ से निकले और किसान से पूछा कि जब पानी बरसना ही नहीं है तो बेकार मेहनत क्यों कर रहा है ? किसान ने उत्तर दिया-"इसीलिये कि १२ वर्ष में मेरा श्रम का अभ्यास न छूट जाय"। बादलों को बात ठीक लगी और उन्होंने कहा कि हमारा भी बरसने का अभ्यास न छूट जाय ? इसीलिये वे बरसने लगे। वस्तुतः वे किसान की श्रम निष्ठा का ईनाम उसे दे गये।

३-एक व्यक्ति सन्त सुकरात के पास बार-बार सम्पन्नता का आशीर्वाद लेने जाता पर वे उसे बहला कर टाल देते। एक बार सन्त ने देखा वह व्यक्ति फल बेचने के लिये ले जा रहा है, तो स्वयं जाकर उसे सम्पन्नता का आशीर्वाद दिया। उसने पूछा कि बार-बार आग्रह पर भी पहले आशीर्वाद नहीं दिया पर अब स्वयं देने क्यों आये ? सन्त ने कहा परिश्रमहीन व्यक्ति को आशीर्वाद भी फलित नहीं होता। अब तुम श्रम करने लगे, अतः स्वयं आशीर्वाद दिया।

धारितं च व्रतं तेन काष्ठविक्रयिणा ततः ।
गुणकर्मस्वभावाश्च सत्यानुसृतिशोधिताः ।। २६ ।।

वह लकड़ी बेचने वाला भी लकड़ी बेचने के साथ सत्यव्रत का पालन करने लगा और उसने अपने गुण, कर्म, स्वभाव में सत्यव्रत के अनुरूप संशोधन कर लिया।

आसीत्पूर्वं तु तस्यापि चात्यल्पः काष्ठविक्रयः ।
समृद्धोऽसौ व्रतेनैव कृतः सत्यप्रभोः खलु ।। २७ ।।

पहले उस लकड़हारे की बहुत कम बिक्री होती थी। सत्यव्रत के आलम्बन लेने से उसका कारोबार बढ़ा तथा वह धनी हो गया।

(ईमानदारी के कारण लोगों का विश्वासपात्र बन जाने से उसका कारोबार बढ़ा ऐसी टिप्पणी करते हुए ईमानदारी के समर्थन में उदाहरण दें।)

उदाहरण

१-बुद्ध के दो शिष्य पद्म और विधु-श्रावस्ती में रहते थे। दोनों धर्म प्रचार के लिये अनुदान दिया करते थे। विधु कुछ समय तक बढ़-चढ़कर अनुदान देता रहा पर फिर उसका क्रम रुक गया। पद्म के अनुदान क्रमशः बढ़ते चले गये। बुद्ध ने कारण की जाँच की तो पता लगा कि विधु ने अपने उत्पादन में चालाकी करके अधिक धन कमाना प्रारम्भ कर दिया था। प्रारम्भ में तो लाभ अधिक मिला पर फिर प्रतिष्ठा गिर गयी और व्यवसाय बिगड़ गया। बुद्ध दुखी हुए और विधु को उसका धन अनुचित कहकर लौटा दिया। विधु बोला प्रभु यह सब श्रम से कमाया था, अनुचित नहीं है। बुद्ध हँसे और बोले-वत्स श्रम तो अंगुलिमाल भी कम नहीं करता था, पर नैतिकता भी तो चाहिए। ईमानदारी ने हो तो श्रम उपार्जित धन भी अनैतिक है। फिर तू स्वयं मुहताज हो गया है, अपना धन ले और निर्वाह कर। विधु लज्जित हुआ और पुनः ईमानदारी से श्रम करने लगा।

वर्तमान समय के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं । लोग पैकबन्द मँहगा शहद खरीद लेते हैं, घर आकर देने वालों से सस्ता नहीं लेते। श्रम घर जाकर बेचने वालों को अधिक पड़ता है। जिनकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ईमानदारी पर विश्वास है उन फर्मों का माल घर बैठे बिक जाता है। शेष चक्कर काटते रहते हैं। उदाहरण बाटा, स्विस कम्पनी आदि।

विप्रः काष्ठस्य विक्रेता समृद्धोऽभवत्पूर्णतः ।
सद्गतिं सुखशांतिं च सम्प्राप्य हि व्रतेन च।। २८।।

ब्राह्मण और लकड़हारे ने सत्यव्रत के प्रभाव से सुख, शान्ति और सद्गति प्राप्त करके जीवन सार्थक बना लिया ।

एवं सत्यव्रतं धृत्वा श्रद्धया चेच्च स्वीकृतिः ।
तथान्येऽपि स्वकल्याणं कर्तुंशक्ता भवन्ति वै ।। २९।।

इस प्रकार अन्य सब मनुष्य भी सत्यव्रत को धारण करके निश्चय रूप से अपना कल्याण कर सकते हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

।। इति श्री सत्यनारायणव्रतकथायां द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ।।

तृतीयोऽध्यायः

सूत उवाच-

पुनरग्रे प्रवक्ष्यामि श्रृणुध्वं मुनिसत्तमाः ।
पुरा चोल्कामुखो नाम नृपश्चासीन्महामतिः ।। ३०।।

सूतजी ने कहा-हे श्रेष्ठ मुनिगण ! अब आगे की कथा कहता हूँ उसे ध्यान से सुनिये। प्राचीन काल में उल्कामुख नाम का एक बुद्धिमान राजा था। वह सत्यव्रती था और सत्यव्रत के प्रचारार्थ सार्वजनिक आयोजन किया करता था।

भद्रशीला नदी तीरे शुभायोजन ईदृशे ।
सम्मिलितोऽभवत्साधुः नामा व्यापारव्यावृतः ।। ३१।।

भद्रशीला नदी के तट पर एक ऐसे ही आयोजन में साधु नामक व्यापारी भी सम्मिलित हुआ और उस आयोजन से प्रभावित होकर राजा से व्रत के सम्बन्ध में विशेष जानकारी माँगी।

राजा उवाच-

वैश्य धर्मः समाजस्य पदार्थानां व्यवस्थितिम् ।
अपेक्षितांस्तु मूल्येन करोत्युत्पादनस्य च ।। ३२।।

राजा बोले-वैश्य का धर्म समाज की आवश्यकतानुसार शुद्ध वस्तुओं के उत्पादन और उनके उचित मूल्य पर वितरण की व्यवस्था करना है।

उदाहरण

उत्पादन का अर्थ है, कम उपयोगी को अधिक उपयोगी बनाना। उत्पादन खेतों और कारखानों में होता है, दुकानों में तो वितरण होता है। बीज एक से अनेक होते हैं, सामान्य धातु के कीमती उपकरण बनाना भी उत्पादन है। लोगों में उत्पादन की क्षमता होने से समृद्धि रहती है। उदाहरणार्थ-

१-गाय घास खाकर दूध देती है। उसमें उत्पादन की क्षमता होने से ही उसे उपयोगी एवं पूजनीय माना जाता है।

२-बीज स्वयं को गलाकर अनेक दानों में बदल देता है। जो अपने स्वरूप का मोह करते हैं वे उत्पादक सिद्ध नहीं हो पाते।

३-बादल धरती से कहने लगे तू पगली है। तुझे लोग सड़े-गले पदार्थ देते हैं और अन्न-फल ले लेते हैं। तू भी उनके बदले में कीमती चीजें क्यों नहीं माँगती ? पृथ्वी बोली-भाई जितनी कीमत की चीज दूँ उतनी कीमत की लूँ तो मै उत्पादक नहीं रह जाऊँगी, फिर मुझे लोग माता नहीं वैश्या कहेंगे। मैं तो चाहती हूँ, मैं और भी कम लेकर और भी अधिक दूँ। मेरी यह क्षमता बढ़ती ही रहे और मेरे बच्चे मुझसे प्रेरणा लेकर प्रसन्न रहें।

वितरण का अर्थ है-जहाँ उत्पादन है वहाँ से लेकर जहाँ आवश्यकता है, वहाँ वस्तु को पहुँचाना। संसार में आवश्यकता के अनुसार वस्तुएँ तो हैं पर वितरण व्यवस्था ठीक न होने से ही कहीं अपव्यय और कहीं अभाव की स्थिति पैदा हो जाती है।

उदाहरण

१-शिष्य ने प्रश्न किया "शरीर में पेट को वैश्य की संज्ञा क्यों दी गयी ?" गुरु ने समाधान किया, शरीर को पोषण की आवश्यकता होती है। पोषण खाद्य पदार्थों से प्राप्त होता है, परन्तु उस रूप में शरीर के हर अंग में वह पहुँच नहीं सकते, पेट उन्हें पचाकर रस का उत्पादन करता है तथा आवश्यकतानुसार शरीर के सभी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भागों में भेज देता है। स्वयं भी आवश्यकता के अनुपात से ही रस लेता है अधिक रस नहीं लेता। समाज में वैश्य का भी यही कर्म है।

२-पृथ्वी पर भयंकर सूखा पड़ गया। वायुदेव ब्रह्मा से बोले-प्रभु आपने पृथ्वी से पानी क्यों हटा लिया? ब्रह्मा ने कहा "वत्स" पृथ्वी पर जल अभी भी उतना ही है। समुद्र में तथा पहाड़ों पर झीलों और हिम रूप में जमा है। पृथ्वीवासियों ने प्रकृति का सन्तुलन बिगाड़ दिया। अत: वितरण व्यवस्था बिगड़ गयी है। तुम मदद करो, बादलों को जल देकर अपने साथ आवश्यकता के स्थानों तक पहुँचाकर बरसाओ, जल की कमी नहीं पड़ेगी।

३-भेड़ की ऊन कट गयी रीछ हँसा बोला-"पगली अब सर्दियों में ठण्डक से मरेगी।" भेड़ बोली चिन्ता मत करो भैया, मैं तो भगवान की दी सम्पदा के वितरण में विश्वास करती हूँ। सर्दियों तक मुझे तो पुन: ऊन मिल जायेगी पर तुम्हें मनुष्य का प्यार और सम्मान कभी नहीं मिल सकेगा।

४-पहाड़ से नदी बह उठी, शिलायें बोलीं, आगे मत जा कच्ची धरती में सूखकर तेरा अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा, पर वह शान्त भाव से बढ़ती चली गयी, उसे तो प्यासों तक जल पहुँचाना था। वह सूखी नहीं, एक-एक करके धारायें मिलती गयीं और वह विशाल होती चली गयी। वितरण से वह बढ़ी, घटी नहीं।

वैश्य: स्वीय समाजस्य संवर्ध्य निजकर्मभि: ।
शान्तिं सौख्यं यशोभागी जायते जगतीतले ।। ३३।।

सत्य धर्म पालन करने वाला वैश्य अपनी तथा समाज की सम्पन्नता एवं सुख-शान्ति बढ़ाते हुए जीवन में प्रचुर यश का भागीदार बनता है।

व्रत की प्रेरणा पाकर और विधि-विधान समझकर वैश्य अपने घर पहुँचा।

पत्नीं लीलावतीं सर्वं वृत्तं सोऽकथयत्तत: ।
सापि व्रतं च सत्यस्य श्रद्धयाऽपालयत्तथा ।। ३४।।

उस वैश्य ने अपनी पत्नी लीलावती को सारा वृतान्त सुनाया और वह भी सत्य धर्म का पालन श्रद्धापूर्वक करने लगी।

(पत्नी को पति द्वारा किये जाने वाले अच्छे कार्यों में श्रद्धा और प्रसन्नतापूर्वक सहयोग करना चाहिए। दाम्पत्य की इस मर्यादा का महत्व बताते हुए समर्थन में उदाहरण प्रस्तुत करें।)

उदाहरण

१-भगवान राम ने देवताओं के कार्य के लिए वन जाना स्वीकार किया। सीता ने भी उनका साथ दिया। राज्य सुख त्याग कर वन में संकट प्रसन्नता से स्वीकार किये।

२-पण्डित वाचस्पति मिश्र वेदान्त शास्त्र पर दुर्लभ ग्रन्थ लिख रहे थे। कार्य में इतने तल्लीन थे कि अपने शरीर तथा आस-पास की सुधि भी नहीं थी। उनकी पत्नी वर्षों तक चुपचाप उनके लिये समय पर भोजन, वस्त्र, प्रकाश आदि की व्यवस्था करती रहीं। लोगों ने कहा "तुम्हें इस प्रकार कष्ट सहने की आवश्यकता नहीं। पण्डित से कहो कि गृहस्थ के कर्त्तव्य पूरे करें और तुम्हारी देखभाल करें।" पत्नी ने उत्तर दिया "वे तो सारे समाज के लिये अद्भुत अनुदान दे रहें हैं। अपने स्वार्थवश थोड़े ही बैठे हैं। अर्धांगिनी के नाते उनका आधा काम मुझे भी करना चाहिये। उतनी मेरी योग्यता नहीं पर उनके कार्य में विघ्न न डालूँ, छोटी-छोटी सहायता करती रहूँ इसी में मेरे जीवन की सार्थकता है। ग्रन्थ पूरा होने पर पण्डित वाचस्पति ने उसका नाम पत्नी के नाम पर 'भामती' ही रखा।

३-याज्ञवल्क्य ऋषि संन्यास की तैयारी करने लगे । पत्नियों से कहा कि अपनी आवश्यकता बता दें, ताकि उसकी पूर्ति करके वे मुक्त हों। मैत्रेयी ने कहा आप जिस महान् उद्देश्य के लिये यह सब छोड़ रहे हैं, उस के लिये मैं भी आपका सहयोग करूँगी, मुझे कुछ नहीं चाहिये और वे ऋषि के साथ ही हो लीं।

४-अत्रि ऋषि चित्रकूट क्षेत्र में तप तथा सेवा-साधना में संलग्न थे। वहाँ पानी की कमी पड़ जाया करती थी। उनकी पत्नी अनुसूया ने आवश्यकता समझी और प्रचण्ड तप द्वारा गंगाजी को प्रसन्न कर लिया। फलस्वरूप मंदाकिनी की धारा वहाँ बह उठी। ऋषि का कार्य सुगमता से चलने लगा।

भार्याया: वर्धनं साधुर्ज्ञानस्य कृतवान् वणिक् ।
सुस्थिति: परिवारस्य समृद्धिश्चाभवत्खलु ।। ३५।।

सत्यव्रती वैश्य धर्मपत्नी का ज्ञान और योग्यता भी बढ़ाने लगा। फलस्वरूप उसके घर में व्यवस्था-सम्पन्नता तेजी से बढ़ने लगी। उन दोनों ने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अपनी आय का एक अंश सत् कार्यों में नियमित रूप से लगाते रहने का संकल्प किया।

(यहाँ सम्पन्नता के सदुपयोग पर बल देकर उसके पक्ष में उदाहरण प्रस्तुत करें ।)

उदाहरण

मनुष्य की बुद्धिमानी की परीक्षा धन कमा लेने में नहीं उसके सदुपयोग में है। जिन्होंने सही अवसर पर सही ढंग से धन खर्च किया वे धन्य हो गये।

१-विश्वामित्र जी को आवश्यकता पड़ गयी तो राजा हरिश्चन्द्र ने अपना सारा राज्य तो दे ही दिया, स्वयं तथा स्त्री बच्चे को बेचकर भी उसकी पूर्ति की।

२-भगवान बुद्ध का संदेश समाज तक पहुँचाने के लिये परिव्राजकों के भरण-पोषण के लिये सम्राट् अशोक एवं हर्षवर्धन ने सारे राज्य की सम्पत्ति कई बार लगा दी।

३-राष्ट्र हित में महाराणा प्रताप की आवश्यकता पूरी करने के लिए भामाशाह ने घर की एक-एक पाई उन्हें सौंप दी।

४-महात्मा गाँधी के कार्य के लिये जमनालाल बजाज ने अपनी सारी सम्पत्ति अर्पित कर दी।

वैश्य दम्पति अपने मन में सन्तानोत्पदान की इच्छा अनुभव करने लगे। ऐसी इच्छा मन में उठने पर-

प्राप्त: स्वप्ने हि निर्देश: कन्याया: कामनां प्रति ।
सौभाग्यादरयोश्चैषा चिन्हं सूनोरपेक्षया ।। ३६।।

उन्हें स्वप्न में निर्देश मिला कि वे पुत्र की अपेक्षा पुत्री प्राप्ति की कामना करें क्योंकि कन्या सौभाग्य और आदर का चिन्ह है।

(पुत्र से पुत्री का होना श्रेष्ठ है इस तथ्य का प्रतिपादन करें तथा उदाहरण प्रस्तुत करें।)

उदाहरण

शास्त्र का वचन है-

१- "दश पुत्र समा कन्या यस्या: शीलवती सुता" अर्थात् सुलक्षिणी कन्या दस पुत्रों के समान होती है।

२- सावित्री राजा अश्वपति की इकलौती कन्या थी। उसने सांसारिक वैभव सम्पन्न नहीं, गुण एवं चरित्र सम्पन्न युवक सत्यवान से विवाह किया तथा अपने चरित्र बल से यमराज को भी नतमस्तक करके पति को छुडा लिया। पिता का भी नाम अमर कर दिया।

३- सीता से मिलने जब जनक चित्रकूट गये, तब सीता को तापसी के वेष में देखकर गद्गद हो गये। उनके मुख से निकल पड़ा, बेटी तूने दोनों कुलों का नाम ऊँचा कर दिया। पुत्र एक ही कुल का नाम ऊँचा कर पाता है।

४- सुकन्या से भूलवश च्यवन ऋषि की आँखें फूट गयीं। उसने राजपुत्री हो कर भी जीवन भर उनकी सेवा का उत्तरदायित्व सँभाल लिया और अपनी साधना और बुद्धिमानी से उन्हें पुन: जवान बना दिया।

निर्देशं दम्पती प्राप्य ह्याचारं प्रतिपालयन् ।
सुसंस्कारैर्हि सम्पन्ना कन्या चोत्पादितस्तदा ।।३७।।

उन्होंने प्राप्त निर्देशानुसार नियमित जीवन क्रम अपनाकर एक सुसंस्कारवान् कन्या को जन्म दिया।

यदा वयस्का सा जाता कुलीनपरिवारिणा।
यूना गुणवता साकं सुशीलेन विवाहिता।। ३८।।

कन्या कलावती के वयस्क और सुशिक्षित हो जाने पर उन्होंने उसका विवाह एक कुलीन परिवार के गुणवान् युवक के साथ सम्पन्न कर दिया।

पुत्रवद् वणिजा तेन युवकं शिक्षितस्तदा ।
स्वहितै: सह केतुर्वत् स चिन्तयति वै हितम् ।
यस्तं रक्षत्यवहितो व्यापारी सत्य एव स: ।। ३९।।

वैश्य ने उस होनहार युवक को अपने पुत्र की तरह मानकर शिक्षित किया। जौ वैश्य अपने हित के साथ खरीददार के हितों की भी रक्षा करता है वही सच्चे अर्थों में व्यापारी कहलाता है।

साधु वैश्य अपने जामात्र सहित व्यापार तो बढाने लगा किन्तु अपनी आय का एक अंश सत् कार्यों के लिये दान करते रहने के अपने संकल्प को भूल गया।

बहुशो बोधित: पत्न्या सत्कार्येऽर्थे तु सद्व्यय:।
तेन चोपेक्षितं सर्वं विस्मृतं कल्पितं पुरा ।। ४०।।

उन दोनों ने बहुत बार पत्नियों द्वारा स्मरण दिलाने पर भी अपनी आय का एक अंश सत्कार्यों में लगाते रहने के संकल्प की अपेक्षा कर दी ।

(पति को अनुचित कार्य से रोकने के पत्नी के उत्तरदायित्व पर प्रकाश डालें उदाहरण आगे दिये गये हैं।)

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उदाहरण

१- रावण बड़ा क्रोधी था तथा उसका भयंकर आंतक सब पर था। किन्तु मन्दोदरी ने उसके हर अनुचित कदम पर उसे सावधान किया तथा रोका। रावण ने उस पर शत्रु की प्रशंसा करने का आक्षेप लगाया, फिर भी वह अविचलित भाव से सत्य का आग्रह करती ही रही। भगवान ने उसकी भावना के कारण स्वयं उसका सम्मान किया।

२- राजा यशवन्त सिंह एक बार युद्ध से पीठ दिखाकर अपने साथियों को छोड़कर किले में संरक्षण के लिये पहुँच गये। रानी किले की सुरक्षा सँभाल रही थीं। उन्होंने राजा को पहचानने से इनकार कर दिया। दरवाजा नहीं खोला और कहा "मैं यशवन्त सिंह को भली प्रकार जानती हूँ। वे अपने सहयोगियों को छोड़कर अकेले अपनी सुरक्षा के लिये कभी नहीं भाग सकते।" राजा को अपने कर्तव्य का ध्यान आया और वे फिर शत्रु को परास्त करके ही लौटे।

३- तुलसीदास रत्नावली के मोह में अपनी प्रतिज्ञा का ठीक उपयोग नहीं कर रहे थे। रत्नावली ने उन्हें समझाया। पर जब न माने, तो ऐसे चुभते हुए वाक्य कहे कि उनके मोह का नशा उतर ही गया तब प्रतिभा को सही दिशा मिल गयी।

संति गार्हस्थ्यनिर्वृते वानप्रस्थस्य जीवनम् ।
जामात्रा च सहान्यत्र व्यापारार्थं तु प्रस्थितः।।४१।।

नियम तो यह है कि मनुष्य अपने गृहस्थ सम्बन्धी उत्तरदायित्व से निवृत होकर वानप्रस्थ जीवन में प्रवेश करे, लेकिन वह साधु वैश्य पैसे के लोभ में अपने जमाई को साथ लेकर व्यापार के लिये चल पड़ा।

त्यागाद्धर्मस्य कार्याणां मानवे कुप्यतीश्वरः।
दुःखमनुभवत्येव सदा तत्कोपभाजनः ।। ४२।।

स्वधर्म के त्याग से भगवान रुष्ट होते हैं तथा उनके क्रोध के कारण मनुष्य अनेक प्रकार के दुःखों में फँस जाता है।

साधु वैश्यः सत्यधर्मं विस्मृत्य ह्यविचारतः।
उचिताऽनुचितं चैव तद्वृत्योपार्जयेद्धनम् ।। ४३।।

कर्तव्य भुला देने से साधु वैश्य की सद्बुद्धि क्षीण हो गयी तथा वह लोभवश उचित अनुचित का विचार किए बिना अनीतिपूर्वक धन कमाने लगा।

रत्नसार पुरस्यास्य सत्यनिष्ठप्रजाजनैः ।
राज्याधिकारिभिः काराबद्धो जाते नृपश्च सः।।४४।।

इस अपराध के कारण रत्नसारपुर के सत्यनिष्ठ प्रजाजनों ने उसे राज कर्मचारियों द्वारा बन्दी बनवाकर राजाज्ञा से जेल भिजवा दिया।

(राज्य में अनीति न पनपे, इसके लिये प्रजाजनों द्वारा अनीति निवारण में सहयोग तथा संघर्ष की आवश्यकता प्रतिपादित की जाय।)

उदाहरण

१ राजा पुरूरवा का पुत्र प्रद्योत राजमद के कारण उचित अनुचित भूल गया। उसके साथी मित्र उसका बल पाकर नगर में मनमानी करने लगे। प्रजाजनों ने राजकुमार को समझाने का प्रयास किया। वह न माना तो नगर के वीरों ने राजकुमार के मित्रों को कैद कर लिया। राजकुमार उन्हें छुड़ाने पहुँचे, तो उन्हें भी साथ में लेकर राज दरबार में उपस्थित कर दिया। राजा को पुत्र की धृष्टता पर क्रोध आया, उसे दो वर्ष के लिये राज्य से निष्कासित कर दिया तथा सिद्धान्तनिष्ठ नागरिकों को पारितोषिक देकर अभिनन्दित किया।

२- उज्जयिनी का श्रेष्ठ "गोपद"अनीति से धन कमाने लगा। नागरिकों ने राज्याधिकारियों से शिकायत की तो गोपद के विरुद्ध प्रमाण नही पा सके प्रजाजनों को पता लगा कि गोपद अपने नौकरों को धन का लालच देकर अनीति के प्रमाण दबा देता है। वह बात श्रेष्ठ " विपुल" को बतायी गयी। उन्होंने गोपद के सेवकों को अधिक धन देकर सारे प्रमाण खुलवा दिये और फिर उन लालची सेवकों को भी दण्डित करा दिया।

३-राजा कुम्भवर्मा को शराब की लत पड़ गयी। धीरे धीरे उनमें और भी दोष पनप गये। राजा स्वभाव से चिड़चिड़ा तथा चापलूसी पसन्द हो गया। इस दोष के कारण निष्पक्ष न्याय सम्भव न रहा और राज्य में अनीति आचरण बढने लगे। जनता को चिन्ता हुई और सबने मिलकर मन्त्रि परिषद् को उनके उत्तरदायित्व का स्मरण दिलाया। प्रधानमंत्री ने राजा को वस्तुस्थिति बतायी और मन्त्रि परिषद् ने व्यवस्था सँभाल ली। राजा लाल पीले हुए पर जन समर्थन के आगे कुछ चल न सकी। युवराज शम्भुवर्मा को गुरूकुल का समय पूरा होते ही बुलाकर उन्हें अभिषेक करा दिया गया। कुम्भवर्मा के लिये राज्य से दूर सामान्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

नागरिक की तरह जीवनयापन की व्यवस्था कर दी गयी।

अर्द्धांगिन्यपि कर्त्तवं कुर्तुस नानुरोधितः ।
सापि तस्माद्भगवतो जाता च क्रोधभाजना।। ४५।।

उसकी धर्मपत्नी ने पति से धर्म पालन कराने के अपने कर्त्तव्य को पूरा नहीं किया, इससे वह भी भगवान सत्यनारायण के क्रोध का भाजन बनी।

सर्वा सम्पद् गृहान्नूनं विलीना तस्य तत्क्षणात्।
ताभ्यामितश्च तत्रापि ज्ञातं च दुःखकारणम्।
कर्त्तव्यस्य त्यागो हि चैकमेवास्ति केवलम् ।। ४६।।

इससे उनके घर की सारी संचित धनराशि विलीन हो गयी। इस प्रकार कष्ट पाने से वह साधु नामक वैश्य और उसकी पत्नी ने अपने मन में समझ लिया कि हमारी यह दुरवस्था धर्म कर्त्तव्य से विमुख हो जाने के कारण ही हुई।

साधु वैश्य ने राजा चन्द्रकेतु से अपनी भूल की क्षमा माँगी और सदाचार की मर्यादा में रहकर व्यापार करने का आश्वासन दिया।

अनीतिर्धनिनां सर्वान् कुरुतेऽनीतिकारिणः।
व्यवस्था च समाजस्य भ्रष्टा भवति सर्वदा।।४७।।

राजा चन्द्रकेतु ने कहा जब विभूतिवान् धनी व्यक्ति अनीति का मार्ग पकड़ लेते हैं, तो जन सामान्य द्वारा भी वही राह ली जाती है और समाज भ्रष्ट हो जाता है।

अन्यायोपार्जनं त्यक्त्वा स्वीयं मूलधनेन च।
विधातुं च स्वव्यापारं समर्थाः सन्तु वै तथा।।४८।।

हे वैश्य ! तुमने जो अनीतिपूर्वक धन कमाया है उसको छोड़कर अपनी मूल सम्पति से तुम पुनः व्यापार प्रारम्भ कर सकते हो।

अथैवं कृत्वा वैश्य कृपया सत्प्रभोस्तदा।
विपुलोपार्जनं तस्य वित्तस्व चाप्यजायत।।४९।।

वैश्य ने राजा के कथनानुसार पुनः सत्यव्रती बनकर व्यापार किया तथा भगवान सत्यनारायण की कृपा से विपुल धन अर्जित कर लिया।

कलावत्यपि विज्ञाता लीलावत्या सह पुनः।
हित्वा पूर्वं विलासेन जीवनं च प्रधानता ।। ५०।।
सेवासद्भावयोर्दत्ता कर्मठत्वस्य च ध्रुवम् ।
प्राप्तोऽधिकांशतोत्वर्थो जाता सत्यप्रभोः कृपा।। ५१।।

उधर लीलावती और कलावती ने भी अपनी भूल समझी और उन्होंने पहले वाला विलासिता से भरा जीवन क्रम छोड़कर कर्मठता एवं सेवा सद्भावना को जीवन में प्रधानता दी। भगवान सत्यनारायण की कृपा हुई और उनका अधिकांश धन पुनः प्राप्त हो गया। उनका समय पुनः सुख से बीतने लगा।

(विलासिता की खंडन तथा सादगी का समर्थन करते हुए कुछ उदाहरणों से बात की पुष्टि करें)

उदाहरण

सादगी मनुष्यता का गौरव है। जितने भी संत और महापुरुष हुए वे सब सादगी से रहते थे। विलासिता बौद्धिक बचकानेपन अथवा हृदयहीनता की प्रतीक है।

१- बुद्ध से एक नागरिक ने पूछा "भगवन् आपके अनुयायियों में शारीरिक साज सज्जा की आकांक्षा क्यों नहीं उठती? तथागत बोले हे श्रेष्ठ, जब अतः करण सजा लिया जाता है तो शरीर की सजावट निरर्थक लगने लगती है। शरीर पर तो निर्वाह मात्र के लिये जितना आवश्यक है, उतना ही ध्यान जाता है।

२- रघुनाथ शास्त्री को राजा देवसिंह बहुत मानते थे। एक बार महारानी ने उनकी धर्मपत्नी को राजमहल बुलाया। वहाँ उन्हें कीमती वस्त्राभूषण पहनाकर पालकी में बिठाकर भेजा। शास्त्री जी ने उन्हें देख कर कहारों से कहा "आप गलत जगह आ गये। " और द्वार बन्द कर लिया। उनकी पत्नी वापिस राजमहल गयीं। वहाँ सादा धोती पहन कर पैदल ही घर लौटीं तो शास्त्री जी ने द्वार खोल दिया। कहा "देवी हम आभूषण के आर्कषण में पड़ जायेंगे, तो जन साधारण का क्या होगा?"

३- एक सम्पन्न बुढ़िया को यमदूत ले गये। उसे स्वर्ग का अधिकारी माना गया, पर उसने एक वर्ष का समय यह कहकर माँगा कि मुझे अभी बहुत कुछ करना है। एक वर्ष तक वह शान शौकत से रही। समय पर यमदूत उसे पुनः ले गये पर अब उसे स्वर्ग का अधिकारी नहीं माना गया। बताया गया कि उसने पिछली अवधि में सादगी से रहकर जो पुण्य कमाया था, वह एक वर्ष विलासितापूर्ण जीवन के कारण समाप्त हो गया।

सत्यसाधक सम्पति को ईश्वर की धरोहर मानकर उसे व्यसन विलास में नहीं सत्कार्यों में खर्च करते और भगवान के प्रेम के अधिकारी बनते हैं।

।। इति श्री सत्यनारायणव्रतकथां तृतीयोऽध्यायः समाप्तः।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चतुर्थोऽध्यायः

सूत उवाच-

प्रचुर धनमादाय स्वर्णालंकारत्नवत् ।
नौकयासो स्वकं साधुः पुरं गन्तुमुपाक्रमत् ।। ५२ ।।

सूतजी कहने लगे- अब वह साधु वैश्य बहुत सा सोना जवाहरात और धन लेकर नाव द्वारा अपने नगर को चल दिया।

साधुः परीक्षितः सत्यनिष्ठायां यत्र स वणिक् ।
प्रभुणा तर्हि वयसा वृद्धर्षित्वमुपेत्य वै ।। ५३ ।।

भगवान ने एक गुरुकुल संचालन करने वाले ऋषि के रूप में साधु वैश्य के पास पहुँचकर उसकी सत्य निष्ठा की परीक्षा ली।

ऋषि उवाच-

धनं सहायतार्थं तु स्वीयं सार्म्थ्यश्रद्धया ।
प्रदातुं शक्यते चात्र भवते यदि रोचते ।। ५४ ।।

ऋषि साधु वैश्य से बोले-आप चाहें तो अपनी सामर्थ्य और श्रद्धा के अनुसार इस आश्रम के कार्यों के संचालन हेतु स्वेच्छा से सहयोग दे सकते हैं।

(यहां श्रेष्ठ कार्यों में यथासाध्य सहयोग करने के उत्तरदायित्व पर बल देकर दृष्टान्तों द्वारा उसकी पुष्टि की जा सकती है।)

उदाहरण-

१- आचार्य चाणक्य तब तक्षशिला विश्वविद्यालय के कुलपति थे। देश के सम्पन्न व्यक्ति तथा राजा लोग उनकी आर्थिक सहायता करते थे। आवश्यकता पड़ने पर आचार्य स्वयं भी सम्पन्न व्यक्ति को सूचना देकर धन मँगा लेते थे। एक शिष्य ने शंका की "आचार्यवर- आप परीक्षा के रूप में लोगों से धन की याचना करते है?" चाणक्य ने कहा-"नही वत्स! हम राष्ट्र हित के लिये कार्य कर रहे हैं। बडे कार्य अनेक व्यक्तियों के सहयोग से ही चलते हैं। हमारे पास जो है वह हम लगा रहे हैं। अन्य भावनाशीलों के पास भगवान का दिया हुआ बहुत कुछ है। उन्हें प्रेरित करके श्रेष्ठ कार्य में उनके साधन लगवा देना भी पुण्य है।

२- कर्ण सत्कार्य के लिये सहयोग माँगने वाले किसी भी व्यक्ति को निराशा नहीं जाने देते थे। श्रीकृष्ण उनकी इस श्रेष्ठता का विश्वास कराने के लिये दो बार कर्ण को कसौटी पर कसा।

एक बार एक ब्राह्मण को वर्षा ऋतु में यज्ञ के लिये सूखी चंदन की लकडी लेने भेजा। पहले युधिष्ठिर के पास भेजा। उन्होंने २-३ दिन में व्यवस्था कर देने का आश्वासन दिया किन्तु कर्ण ने सूखी लकड़ी न मिलने पर अपने भवन के चदंन के किवाड फाड़ कर तुरन्त उसे दे दिये।

दूसरी बार जब कर्ण युद्धभूमि में अन्तिम श्वाँस ले रहे थे। कृष्ण और अर्जुन ब्राह्मण वेष में पहुँचे और सोने की माँग की। कर्ण ने उस स्थिति में भी अपना दाँत तोड़कर उस पर मढा सोना निकाल कर दे दिया।

३- राक्षसों के वध के लिये इन्द्र ने ऋषि दधीचि से उनकी हड्डियॉ माँगी। ऋषि ने सहज भाव से शरीर छोडकर हड्डियॉ दान करदीं। उनका मत था कि सत् कार्य में शरीर लगता है तो शुभ ही है।

४- लंका के लिये पुल बन रहा था। एक गिलहरी भी उसके लिये अपने बालों में रेत भरभर कर पहुँचाने लगी। बन्दर हँसे भगवान राम के पास ले गये। " पूछा तू क्या करती है"? गिलहरी ने उत्तर दिया "भगवान ने मुझे जितनी सामर्थ्य दी है, उसे ही सत्कार्य में लगाती हूँ। " राम ने उसकी पीठ थप थपाई और कहा मेरी दृष्टि में इसकी सहायता का महत्व किसी समर्थ की सहायता से कम नहीं है।

निषेधो विहितस्तेन विस्कीपष्टवचनैस्तदा ।
कोपस्य भाजनं जातो वैश्यस्तुच्छधिया प्रभोः ।। ५५ ।।

साधु वैश्य के मन में धन संग्रह का लोभ पुनः आ गया और उसने अपनी नाव में लता पत्र भरे होने का बहाना बनाकर ऋषि को सहायता देने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। अपनी इस तुच्छ बुद्धि के कारण उसे पुनः भगवान के क्रोध का भाजन बनना पड़ा।

(यहाँ जमाखोरी - वृत्ति की भर्त्सना करते हुए कुछ दृष्टान्त दिये जा सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उदाहरण

जमाखोरी का अर्थ है, वस्तुओं को उपयोग चक्र से बाहर कर लेना। इससे अनेक विकृतियाँ पनपने लगती हैं। मैं सम्पन्न व्यक्ति कहलाऊँ, इस कामना से प्रभावित मनुष्य अकारण संचय में लगकर अपना और समाज का संन्तुलन बिगाड़ देता है। ऐसे व्यक्ति को इस अनीति का दण्ड भोगना पड़ता है।

१- हिरण्याक्ष नामक राक्षस की दृष्टि धन पर ही जमी रहती थी। कहीं से भी, किसी प्रकार भी धन प्राप्त करने के प्रयास में वह लगा रहता था। तमाम सम्पत्ति उसने जमीन में गाड़कर रख ली थी। भगवान ने वाराह रूप रखकर उसका नाश करके उस संचित सम्पदा का वितरण पुनः समाज में किया। कंस हिरण्यकश्यप द्वारा संचय तथा रावण द्वारा सोने की लंका बनाने के भी ऐसे ही परिणाम निकले।

२- शहद की मक्खी बहुत अधिक संचय करती है। फलस्वरूप उसके घर पर लोगों की निगाह लगी रहती है तथा समय पाते ही उसका घर नष्ट करके संचित शहद प्राप्त कर लेते हैं। धन संचय करने वालों द्वारा भी समाज में इस प्रकार की अपहरण की वृत्ति को बढ़ावा मिलता रहता है। वे समाज की वृत्ति भी बिगाड़ते हैं और स्वयं भी नष्ट होते हैं।

३- शरीर में बेचैनी होने लगी है। सिर में चक्कर, पेट में दर्द, मुँह में छाले, हाथ पैरों में सुस्ती, आँखों के सामने अँधेरा छाने जैसे अनेक रोग हो गये। रोगी सबकी चिकित्सा का आग्रह करने लगा। वैद्य ने कहा रोग एक ही है, वह यह कि पेट ने अन्न संचय करना प्रारम्भ कर दिया है। जुलाब देकर पेट साफ कराते ही सारे ठीक हो गये। समाज में भी जमाखोरी के कारण ऐसे ही कष्ट पैदा हो जाते है।

भूत्वा दुर्घटनाग्रस्ता नौका मग्नाह्यभूत्तदा ।
प्रयासैर्नाविकानां च सजायो रक्षितोऽभवत् ।। ५६ ।।

उसकी नौका दुर्घटनाग्रस्त होकर समस्त धन सहित डूब गई। नाविकों के प्रयास से साधु वैश्य दामाद सहित किसी प्रकार बच गया।

बुद्धिसेवापरायणां वित्तं सर्वं नदीतलात् ।
निःसृतं स प्रयासेन मनोयोगेन वासिनाम् ।। ५७ ।।

नदी तट पर रहने वोले बुद्धिमान, सेवापरायण तथा परिश्रमी आश्रमवासियों के मनोयोग पूर्ण प्रयास से सारा धन नदी तल से निकाल लिया गया।

उदाहरण

१- एक पथिक जंगल में भटक गया रात्रि हो गयी। वर्षा से भीगकर ठिठुर रहा था। एक पेड़ के नीचे भूखा प्यासा सिकुडकर बैठा था। ऊपर कबूतरों ने उसे देखा। सोचा, बेचारा इस कष्ट में न जाने सबेरे तक जिन्दा रहे या न रहे? उन्होंने उसके लिये अग्नि लाकर दी तथा भोजन के लिये स्वयं अपना शरीर अर्पित कर दिया। स्वयं आग में कूद पड़ा तथा उसके कष्ट का निवारण किया।

२- बंगाल में अकाल पड़ा। विवेकानन्द जी ने अपने साथी संन्यासियों के साथ सहायता कार्य प्रारम्भ किया। धन की कमी पड़ी तो तो वे बैलूर मठ बेचने को तैयार हो गये। उनका कथन था मठ तो फिर भी बन जायेगा किन्तु हजारों व्यक्तियों के प्राण फिर कहाँ से लाये जा सकेगें ? उनकी करुणा से सम्पन्न व्यक्ति प्रभावित हुए और धन की व्यवस्था हो गयी।

३- राजा दशरथ को पता लगा कि राक्षस ऋषियों को परेशान किये हैं, तो अपनी सेना के साथ स्वयं चलने को तैयार हो गये। विश्वामित्र जी ने राम लक्ष्मण को माँगा तो प्राण से प्यारे पुत्रों को भी उन्हें सौंप दिया।

४- धर्मराज को " नरो वा कुंजरों वा" का भ्रम पैदा करने के कारण नरक तक ले जाया गया। उनके शरीर से स्पर्श हुई हवा से नरकवासियों को आराम मिला, यह जानकर उन्होंने यमराज से प्रार्थना की कि मुझे नर्क में रहने दें क्यों कि इससे पीड़ितों को आराम मिलता है।

साधु वैश्य ने अपनी भूल का पश्चात्ताप किया तथा अपनी सम्पति में से पर्याप्त अशं श्रेष्ठ कार्यों के लिए दान देकर अपनी निष्ठा का परिचय देता हुआ घर लौट आया।

भूत्वा च सत्यनिष्ठौ तौ वर्धने जनसम्पदाम् ।
पूर्णे स्वजीवने जातौ सुखसौभाग्यभागिनौ ।। ५८ ।।

वे वैश्य दम्पति उसके बाद जीवन भर निष्ठापूर्वक सत्यव्रती बने रहकर समाज की समृद्धि बढाते रहे तथा स्वयं भी सुख यश और पुण्य के भागी बने।

धनं निर्वाहमात्रं च गृहीत्वा निखिलं पुनः ।
त्रिनियुज्य तत्प्रचारे सर्वे सुखमवाप्नुवन् ।। ५९ ।।

सामान्य व्यक्ति की तरह निर्वाह मात्र का धन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने लिए खर्च करके शेष सब सद्वृत्तियों के प्रचार प्रसार में लगाने लगे।

तेषां प्रयत्नैरधिका जाता धर्मप्रवृत्तयः ।
गन्तुमसंख्याः सन्मार्गं प्रेरिता मानवास्ततः।। ६०।।

उनके सत् प्रयासों से समाज में धर्म प्रवृत्तियाँ बढ़ीं और असंख्य व्यक्तियों ने सन्मार्ग की प्रेरणा पाकर जीवन को सार्थक बनाया।

।। इति श्रीसत्यनारायणव्रतकथायां चतुर्थोऽध्यायः समाप्त।।

पंचमोऽध्यायः

अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ।
आसीत्तुंगध्वजो राजा प्रजापालनतत्परः ।। ६१।।

सूतजी कहने लगे- हे मुनियो ! और आगे की कथा मैं कहता हूँ, उसे ध्यान से सुनो। किसी समय तुंगध्वज नाम का प्रजापालक राजा राज्य करता था।

नृपतिरेकदा चासौ स्वीयं राज्यं निरीक्षितुम्।
श्रोतुं च सुख-दुःखानि प्रजायाःबहिरभ्रमत्।। ६२।।

एक बार वह प्रजा की स्थिति की जानकारी प्राप्त करने के उदेश्य से अपने राज्य का निरीक्षण करने निकला।

तत्र वटतलेऽपश्यद् वन्ये गोपगणाश्च सः।
धारयितुं सत्यव्रतं धर्मानुष्ठानं कुर्वतः ।। ६३।।

उसने एक स्थान पर वट वृक्ष के नीचे गोप परिवारों को एकत्रित देखा जो सत्यव्रत धारण करने वाले थे और उस समय धर्मानुष्ठान में लगे थे। यह गोपगण सामूहिक श्रमदान द्वारा उस क्षेत्र को स्वच्छ सुन्दर तथा व्यवस्थित बनाये हुये थे।

उदाहरण

१- समुद्र पार करना असम्भव सा लगता था, किन्तु रीछ बन्दरों ने सामूहिक रूप से अपनी योग्यता और श्रम का उपयोग किया, तो पुल देखते देखते बन गया।

२- ब्रज में बाढ़ से हर बार नुकसान होता था। लोग इन्द्र का प्रकोप मानकर पूजा अर्चना करते थे। श्रीकृष्ण ने कहा- मेरे साथ आओ, सामूहिक श्रम से इसका हल निकलेगा। जन सहयोग से गोवर्धन पर्वत जैसा बाँध तैयार हो गया जिसे सामूहिक श्रम के प्रतीक के रूप में आज भी पूजा जाता है।

३- बूँद बूँद रस एकत्रित करके शहद बनाने का चमत्कार मधुमक्खी सामूहिक श्रमदान से ही करती हैं। चीटियाँ मनुष्य से भी ऊँचे अपने निवास के स्थान इसी वृत्ति से बना लेती हैं।

४-देवताओं और राक्षसों ने मिलकर श्रम करना स्वीकार कर लिया, तो समुद्र मंथन द्वारा दुर्लभ १४ रत्न प्राप्त करने में सफल हुए। स्वयं भगवान ने भी उनकी सहायता में अपना गौरव समझा।

प्रज्ञाबलयुतैश्चापि विद्यासत्ताधनान्वितैः ।
योगदानं च कर्त्तव्यं सत्प्रतिष्ठानकर्मणि ।। ६४।।

समाज में जो व्यक्ति बुद्धि बल, सत्ता सम्पत्ति और विद्या से सम्पन्न हों उनका कर्तव्य है कि अवसर मिलने पर श्रेष्ठ की प्रतिष्ठा में अवश्य योगदान करें।

अकुर्वन्ननुरोधं ते गोपा गत्वा नृपान्तिके।
गृहीतुं तत्प्रसादं च भागं नेतुं तदर्चने।। ६५।।

गोपगणों ने राजा केपास जाकर उस धर्मानुष्ठान में भाग लेने तथा प्रसाद ग्रहण करने का अनुरोध किया।

मत्वा नीचकुलोत्पन्नान् तेषां सान्निध्यमेव च।
दोषं हि जायते राजा स्पर्शमात्रादपि तदा।। ६६।।

किन्तु राजा ने उन्हें नीच कुल में उत्पन्न समझकर, उनके साथ बैठने और उन्हें स्पर्श करने में भी दोष माना। यह भेद बुद्धि तथा कर्त्तव्य की उपेक्षा राजा के लिये हानिकारक सिद्ध हुई।

उदाहरण

१- भगवान राम असुरता के उन्मूलन के लिये अयोध्या से निकले, तो उन्होंने केवट निषादराज गुह, कोल भीलों तथा शबरी भीलनी आदि सबसे समानता का व्यवहार किया। छूत-अछूत की भ्रान्ति में वे नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पड़े और इसीलिए सबके प्रिय बने, सबका सहयोग ले सके और सफल हुए।

२- रामानुजाचार्य रुग्ण होने पर गंगा स्नान को जाते समय किसी का भी सहारा लेकर चले जाते थे। लौटते समय किसी अछूत कहे जाने वाले के कंधें पर हाथ रखकर लौटते थे। लोगों ने कारण पूछा तो बोले "शरीरों में नहीं, भावनाओं में दोष होते हैं। लोगों को मैं यही विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि छूआ छूत निरर्थक है उससे अपनी पवित्रता में अन्तर नहीं पडता।"

३- शंकराचार्य गंगा स्नान करके आ रहे थे। मार्ग में एक अछूत बैठा था। वे नाराज हुए, बोले- "ऐ मूर्ख देखता नहीं, मैं नहाकर आ रहा हूँ हट जा एक ओर। " वह बोला - भगवन् किसे दूर ले जाऊं यह शरीर अथवा आत्मा?"

शंकराचार्य को अपनी भूल का बोध हुआ और उससे क्षमा माँगी।

४- संत एकनाथ स्नान करके किसी शूद्र बालक को स्नान कराते। लोगों ने पूछा तो बोले - मैं तो भगवान के चरण धोता हूँ। प्रश्न कर्ता न समझा तो स्पष्ट किया कि शास्त्र में लिखा है कि कि शूद्र विराट् ब्रह्म के चरण है। मैं विराट् ब्रह्म का उपासक हूँ। अतः स्नान के बाद भगवान के चरण पखारकर जीवन धन्य बनाता हूँ।

अवहेलनाया: सत्य धर्मस्य चापि भूपते: ।
भिन्ना परिजना जाता ये ह्यासत्कर्मकारिण:।। ६७।।

राजा द्वारा सत्कर्तव्यों की अवहेलना के कारण राज परिवार और राज कर्मचारी भी उससे विमुख हो गये।

व्यवस्था निखिला जाता सम्पदा लुप्तप्राय च ।
समागत: विपतेश्च हेतुमन्विष्य ज्ञातवान् ।
नृपोऽपि यदहंकारकर्त्तव्य - च्युतिस्वार्थता ।। ६८।।

फलस्वरूप सारी व्यवस्थाएँ बिगड गयीं तथा राजा का धन सम्मान लुप्त हो गया। इस प्रकार विपत्ति आने पर राजा ने विचार किया तो उसे अपने अहंकारग्रस्त तथा कर्तव्य विमुख होने का ध्यान आया।

विलोक्य दुर्दशां स्वीयाम् कुर्वन्दोषिणोऽपरान्।
भूपो विश्लेषणं स्वस्य कृतवान्स्वयमेव च ।। ६९।।

बुद्धिमान राजा ने अपनी इस दुर्दशा के लिए किसी अन्य को दोष न देकर स्वयं आत्म- विश्लेषण किया।

उदाहरण

१- रावण, कंस, दुर्योधन आदि यदि आत्म समीक्षा करते तो आसानी से अपनी भूलों को ठीक करके सुख सौभाग्य पा सकते थे, किन्तु उस प्रवृति के अभाव में भूल पर भूल करते गये और नष्ट हुए।

२- कालिदास निरक्षर थे। कुछ कौतुकियों ने धोखे से उनका विवाह विद्योत्तमा जैसी विदुषी से करा दिया। कालिदास को अपमानित होना पड़ा। उन्होंने आत्म समीक्षा की विद्याध्ययन का संकल्प किया तथा पाण्डित्य का कीर्तिमान् स्थापित किया।

३- बालक वोपदेव अपने आप को मंद बुद्धि मानकर पढ़ाई से जी चुराता था। एक बार कुँए के पत्थरों पर रस्सी द्वारा पड़े निशान देखकर आत्म समीक्षा की। सोचा मुलायम रस्सी बार- बार घिस कर पत्थर काट सकती है तो मंद बुद्धि भी घिसाई से विद्वता पा सकती है। इसी संकल्प के कारण वोपदेव शास्त्री बने।

४- राजा चम्पतराय बुन्देलखण्ड को मुगलों से मुक्त कराने के लिए जीवन भर संघर्ष करते रहे किन्तु सफल न हुए। उन्होंने आत्मसमीक्षा की और अपने पुत्र छत्रसाल से कहा हमारी शैली में कोई दोष है। तुम दक्षिण जाकर शिवाजी से रणनीति सीखकर आना तब अपना अभियान प्रारम्भ करना। इस समीक्षा के आधार पर ही छत्रसाल ने गोरिल्ला युद्ध सीखकर सफलता पायी।

बुद्ध्याचावगतं तेन सद्धर्मोपेक्षया मम ।
अधोऽध: पतनं जातं नान्यदत्र च कारणम्।। ७०।।

उसकी समझ में यह तथ्या आ गया कि उसके द्वारा सत्य धर्म की उपेक्षा होने से ही यह पतर्न हुआ है।

अपमानं कृतं पूर्व तिरस्कृत्येति गोपकान् ।
ध्यात्वा तेषां समीपे च ह्यनुतप्तो गतो नृप:।। ७१।।

राजा को गोपगणों की याद आयी। अपने द्वारा उनकी उपेक्षा की जाने का पश्चात्ताप करके राजा उनके पास स्वयं गया। राजा ने अपनी भूल के लिये उनसे मार्गदर्शन माँगा। उनमें से एक वयोवृद्ध ने उन्हें समझाया।

गोप उवाच-

कार्या हि सत्यव्रतिना त्यक्त्वा भेदस्य भावनाम्।
वृत्तिर्गृहीतुं श्रेष्ठानि तत्वानि प्रतिस्थानत: ।। ७२।।

गोप बोले-सत्य मार्ग अपनाने वाले को चाहिए

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि वह भेद भाव छोड़कर श्रेष्ठ तत्व जहाँ से भी प्राप्त हों वहाँ से प्राप्त करे।

हम सब श्रम का सम्मान करते हैं और उसी में लगे रहते हैं। सामूहिकता और श्रम की प्रवृतियों के बिना समाज का संतुलन नहीं बन सकता।

स्वात्मयोग्यतया स्वीय परिवाराय चाधिकम्।
लाभं दातुं समुत्साहः सर्वेषु भवति ध्रुवः।। ७३।।

हममें से हर एक में अपनी योग्यता और श्रम के द्वारा अपने सारे समाज को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाने का उत्साह हर सदस्य में बना ही रहता है। यही प्रवृतियाँ अपने सहयोगियों में आप भी बढायें।

(यहाँ अपनी क्षमताओं और साधनों का मिल जुलकर सहयोग करने की सामाजिक प्रवृति का महत्व बताते हुए उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।)

उदाहरण

१- अपनी योग्यता का श्रेय स्वयं को ही मिले इसी प्रवृति के कारण कौरव अपनी शक्तियों का युद्ध में पूरा प्रयोग न कर सके। " मुझे सेनापति बनाओ तो चमत्कार दिखाऊं" का आग्रह अनेक श्रेष्ठ योद्धओं में रहा। पाण्डवों ने सामूहिक प्रवृत्ति का परिचय दिया। युद्ध मर्यादा के लिये धृष्टद्युम्न को सेनापति बनाया पर सभी योद्धा आवश्यक्तानुसार आगे आकर अपनी विशेषताओं का लाभ देते रहे और विजयी हुए।

२- देवता अलग अलग प्रयास करके हार गये पर महिषासुर न मरा। तब प्रजापति के कहने से उन्होंने अपनी विशेषतायें सयुक्त करने का प्रयास किया तो दुर्गा शक्ति प्रकट हो गयी और राक्षस का अन्त हुआ।

सत्यज्ञानं श्रुतं राज्ञा मननं च कृतं तदा।
निर्धारितस्ततश्चैव रुचिरः जीवनक्रमः ।। ७४।।

राजा ने सत्य धर्म सम्बन्धी बातों को बड़े ध्यान से सुना तथा उन सिद्धान्तों का मनन करके तदनुकूल अपने जीवनक्रम का निर्धारण भी किया। श्रम प्रतिष्ठा अभियान में लोगों की भरपूर सहायता की। राज्य में श्रमशीलता तथा सामूहिकता की वृतियों का विकास करने से वह पुनः धन धान्य तथा प्रतिष्ठा का अधिकारी बन गया।

सूत उवाच-

य इदं कुरुते सत्यव्रतं परम दुर्लभम् ।
दरिद्रो लभते वित्तं बद्धो मुच्येत बन्धनात्।। ७५।।

सूतजी बोले - हे ऋषिगणों ! जो मनुष्य इस सत्य व्रत को अपनाता है वह दरिद्र भी भगवान की कृपा से धन धान्य से पूर्ण हो जाता है और सब प्राणियों को सब प्रकार के बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है।

भीतो भयाद्विमुच्येत सत्यमेव न संशयः ।
ईप्सितं च फलं लब्ध्वा चान्ते सत्यपुरं व्रजेत् ।।७६।।

भयभीत लोगों को निर्भयता प्राप्त होती है। साधक संसार में इच्छित फल प्राप्त करके अन्त में सत्यलोक में स्थान पा लेता है। इसमें कोई संशय नहीं।

।। इति श्री सत्यनारायणव्रतकथायां पंचमोऽध्यायय: समाप्तः।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आरती सत्यनारायण जी की

आरती सत्यनारायण जी की

सत्यमार्ग दिखलाने वाले, धर्म - नीति सिखलाने वाले।
भूलों को सद्ज्ञान सिखा दो, भटको को सन्मार्ग दिखा दो।।
हो सद्गति, निश्चित सब ही की ।। आरति०
विद्या विनय विवेक हमें दों, ज्ञान भावना नेक हमें दो।
तप की शक्ति सभी पहचानें, सादा जीवन को शुभ मानें ।
नियत सदा शुभ हो सब ही की।। आरति०
धन को बन्धन नहीं बनाना, सद् उपयोग हमें सिखलाना।।
दुख अभाव टिकने ना पायें, सबमें वह उदारता आये।।
सम्पति सब माने प्रभु ही की ।। आरति०
हम सब में सत्साहस आये, दुनियाँ से अनीति मिट जाये।
संघ बद्ध हम सब हो जायें, सबको सबके हक दिलवायें।
नीति सिखा दो सबको नींकी।। आरति०
श्रम का शुभ सम्मान बढायें, कर्म वीर हम सब कहलायें।
भेद भाव को दूर हटायें, आपस में सब प्रेम बढायें ।
होवे श्रेष्ठ प्रगति सब ही की ।।आरति०
निज चरणों में भक्ति हमें दो, लक्ष्य प्राप्ति की शक्ति हमें दो।
भव- बन्धन से मुक्ति हमें दो, भव तरने की युक्ति हमें दो ।।
नैया हो उस पार सभी की।। आरति०

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्री सत्यनारायण व्रत कथा

श्री सत्यनारायण व्रत कथा की क्रिया पद्धति

श्री सत्यनारायण व्रत - कथा का तात्पर्य है, सत्य को साक्षात् भगवान मानकर जीवन में सत्यनारायण का व्रत लेने की चर्चा। सत्य बोलने भर की छोटी क्रिया नहीं वरन् जीवन के हर क्षेत्र में धर्म - कर्तव्य, नीति, सदाचार, मर्यादा एवं विवेक के आधार पर विचार एवं आचरण करना, सत्यनिष्ठा का समग्र रूप है। सच बोलना भी सत्यनिष्ठा का एक छोटा रूप है। उसकी आवश्यकता है, पर जिस सत्य को नारायण कहा गया है वह सच बोलने तक सीमित नहीं। सारी मनोवृतियों, आकांक्षाओं एवं क्रिया- कलापों को जब धर्म मर्यादाओं के अनुरूप बना लिया जाय तो समझना चाहिए कि सत्यरूपी भगवान का जीवन में अवतरण हुआ। यह अवतरण ईश्वर प्राप्ति या ईश्वर - दर्शन का एक रूप है।

"श्री सत्यनारायण व्रत कथा में भिक्षाजीवी ब्राह्मण, लकड़हारा, लीलावती - कलावती, साधु वैश्य तुंगध्वज, चन्द्रकेतु आदि का वर्णन है, उनमें एक ही तथ्य का प्रतिपादन है कि सत्यनिष्ठा अपनाने से, सत्यनारायण का व्रत लेने से लौकिक और पारलौकिक दोनों ही जीवन सुख शान्तिमय बनते हैं और इस सत्यवृति को छोड़ देने से नाना प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता है। इन कथानकों में ऐसे ही उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं और सुनने वालों को समझाया गया है कि उन्हें चक्रधारी कृष्ण या धनुर्धारी राम को ही भगवान मानकर सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए वरन् यह भी अनुभव करना चाहिए कि नारायण का प्रत्यक्ष सम्पर्क हम सत्याचरण के द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। सदाचारी व्यक्ति अनायास ही ईश्वर का कृपा पात्र बन जाता है। उसकी हर जीवन दिशा आनन्द मंगल से परिपूर्ण रहती हैं जिनने नारायण को सत्य के रूप में नहीं पहचाना वरन भोग नैवेद्य से और स्तवन पूजन मात्र से उसे फुसलाने की बाल - क्रीड़ा करते रहे वे उस विडम्बना से कुछ वास्तविक लाभ न पा सकेंगे।

सदाचरण की सद्भावनायें जन मानस में प्रतिष्ठापित कराने के लिए श्री सत्यनारायण व्रत-कथा का अधिकाधिक प्रचार आवश्यक है। पर खेद है कि उसका वास्तविक तात्पर्य आज न तो समझा जाता है और न समझाया जाता है। कथा सुन - लेने और पंचामृत, पंजीरी का प्रसाद खा लेने मात्र से लोग अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं। सवा रुपया दक्षिणा देकर लोग समझ लेते हैं कि उन्हें पुण्य मिल गया और जो लाभ कथा में वर्णित पात्रों को मिला था हमें भी मिल जायेगा। यह आशा निराशा में ही परिणत होती है। ईश्वर की कृपा इतनी सस्ती नहीं है जो दो चार रुपया या एक दो घण्टे का समय किसी कर्मकाण्ड की टंट घंट में लगा देने मात्र से मिल जाय। इसके लिये जीवन शोधन, निर्माण एवं विकास की प्रक्रिया अनिवार्य रूप से पूर्ण करनी होती है। श्री सत्यनारायण व्रत कथा के इस कार्य को जनमानस में यदि ठीक तरह पहुँचाया जा सके तो उससे वस्तुतः एक बड़े पुण्यफल का उदभव होगा। कथावाचकों एवं विचारशील सुनने वालों को इस व्रत के धर्मानुष्ठान का ऐसा ही सदुपयोग करना चाहिए।

'युग निर्माण योजना' के अन्तर्गत जनजीवन में सत्यनिष्ठा जागृत करने तथा तदनुरूप आचरण करने का साहस जागृत करने के लिए श्री सत्यनारायण व्रत कथा को एक अति उपयोगी माध्यम के रूप में अपनाया गया है। कथा में केवल व्रत की फलश्रुति ही नहीं, व्रत का सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक रूप भी उभारा गया है। लोग उसे सुन समझ कर सत्यनिष्ठ बनें, सत्यमय जीवन- क्रम अपनाकर व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन समुन्नत एवं सुखी बनावें, और सत्याचरण के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करने तथा जन जीवन को उसकी प्रेरणा देने के लिए कथा -समारोह करें, यह एक स्वस्थ परिपाटी है, जिसे अपनाया जाना चाहिये।

सत्यव्रत की कथा देश में अनेक भागों में बहुत लोकप्रिय है। लोगों की श्रद्धा भावना इस प्रसंग में सहज ही उभर आती है। कुशल कथावाचक श्री सत्यनारायण के तथ्यों को विविध उदाहरणों के प्रयोग से उभारकर इस माध्यम से प्रखर लोकशिक्षण कर सकते हैं। युग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्माण योजना द्धारा यह अभियान चलाया जा रहा है कि कथा के आयोजनों के माध्यम से जन साधारण को सच्चा सत्यवती बनाया जाय।

कथा आयोजन विभिन्न ढंग से विभिन्न स्तरों पर किये जा सकते हैं। पारिवारिक स्तर पर अथवा सार्वजनिक स्तर पर भी इनका प्रचलन किया जाता है। कथा किसी भी स्तर की हो उसे आकर्षक तथा सुरुचिपूर्ण वातावरण बनाकर कहने का काम अपनाया जाय। प्रचलित परिपाटी एक ही बार में सम्पूर्ण कथा कहने की है, किन्तु अधिक व्याख्या के साथ समझाने के लिए उसे पाँच दिन तक प्रतिदिन एक अध्याय कहकर पाँच दिवसीय आयोजन बनाया जा सकता है।

कथा व्यवस्था के लिए आकर्षक मण्डप बनाया जाय और उसमें सत्यरूपी भगवान की प्रतिमा या तस्वीर स्थापित की जाये ।पूजा उपकरणों से चौकी को सुसज्जित किया जाय, केले के खम्भ, आम - अशोक आदि के पत्ते, पुष्प गुच्छ, झण्डियों आदि के द्वारा वह सजावट ऐसी की जाये जिससे दर्शकों में स्वत: ही उल्लास एवम् आकर्षण उत्पन्न हो। कलश, घृत-दीप, अगरबत्ती आदि यथा स्थान स्थापित किये जाँय।

साज सज्जा समयानुकूल न्यूनाधिक भी की जा सकती है। एक दिवसीय पारिवारिक आयोजन में सामान्य सजावट भी पर्याप्त मानी जा सकती है और सार्वजनिक पंचदिवसीय आयोजनों में देवमण्डप, व्यासपीठ आदि अधिक आकर्षक बनाने उचित हैं।

वातावरण में उत्साह भरने के लिए ऐसे सार्वजनिक कथा आयोजनों के पूर्व यज्ञों की तरह जल - यात्रा तथा वेदी स्थापना के प्रकरण भी जोड़े जा सकते हैं। ऐसे आयोजनों के अन्त में पूर्णाहुति भी गायत्री यज्ञ द्वारा कराई जानी चाहिए। प्रथम दिन जल यात्रा एवं देवपूजन के बाद कथा प्रारम्भ की जाय तथा अन्त में कथा समाप्त करके गायत्री यज्ञ किया जाय। नित्य एक अध्याय की कथा उपयुक्त उपकरणों के साथ विस्तारपूर्वक कही जाने से लोगों की मनोभूमि में विषय भली प्रकार बैठता चलता है।

इस प्रकार के पंचदिवसीय कथा आयोजनों की शृंखला गाँव गाँव में, मोहल्लों - मोहल्लों में बनाई जा सकती है। कथा का समय ऐसा रखा जाय जिसमें अधिक से अधिक नर नारियों को एकत्रित होने की सुविधा हो। इन आयोजनों के साथ सामूहिक संस्कार कराने का क्रम भी चलाया जा सकता है। कथा कहने के अतिरिक्त बचे हुए समय में लोक सेवी कथावाचक जन सम्पर्क द्वारा विभिन्न रचनात्मक गतिविधियॉ भी चला सकते हैं। इस प्रकार सार्थक एवं लोकोपयोगी कथा आयोजनों को सम्पन्न कराने का विधिवत् प्रशिक्षण देने की व्यवस्था भी युग निर्माण योजना द्वारा बनाई गई है।

सामान्य रूप से कथा के पहले समयानुसार देवपूजन, स्वस्तिवाचन आदि कराकर कथा आरम्भ की जाय। श्रोताओं के हाथ में अक्षत, पुष्प देकर कथा प्रारम्भ करना अच्छी रीति है। अन्त में वही अक्षत पुष्प पुष्पाञ्जलि मन्त्र के साथ भगवान को समर्पित किये जायें। पांच दिवसीय कथा क्रम में नित्य ही यह क्रम अपनाया जा सकता है। सार्वजनिक आयोजनों में श्रोता यदि बहुत अधिक हों और यह व्यवस्था न बन सकती हो तो अक्षत पूर्ण भाव से कथा सुनने तथा श्रद्धा सुमन चढ़ाने की भावनात्मक व्याख्या करक देनी चाहिए।

अन्त में आरती, शुभकामना, विसर्जन तथा प्रसाद वितरण आदि सहज क्रम से कराये जायें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्यनारायण व्रत कथा

प्रथम अध्याय

व्यास उवाच-
एकदा नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः।
प्रप्रच्छुर्मुनयः सर्वे सूतं पौराणिकं खलु।। १।।
उपायं चिन्तयामासु मिलित्वा मुनयो नृणम्।
निवारणार्थं कष्टानां सुख सम्बर्धनाय च ।। २।।

व्यास जी ने कहा - एक बार नैमिषारण्य नामक पुण्य स्थल में शौनकादि ऋषियों ने महान पौराणिक श्री सूत जी से अपनी जिज्ञासा प्रकट की। ऋषि-मुनि समय समय पर इसी प्रकार एकत्रित होकर मनुष्य मात्र के दुःख निवारण और सुख सम्वर्धन के उपाय खोजा करते थे।। १-२।।

शौनक उवाच-
व्रतेन तपसा किम्वा प्राप्यते वाञ्छितं फलम्।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामः कथयस्य महामुने ।। ३।।
सूत उवाच-
नारदेनैव संपृष्टो भगवान्कमलापतिः ।
सुषेये यथैवाह तच्छृणुध्व समाहिताः ।। ४।।
एकदा नारदो योगी परानुग्रहकाङ्क्षया ।
पर्यटन्विवधॉल्लोकान्मृत्यृलोकमुपागतः ।। ५।।

ऋषियों ने पूछा- ऐसा कौन सा व्रत या तप है जिसे करने से सभी लोग वांछित फल पा सकते हैं, यह विषय हमें भली प्रकार समझाइये।

सूत जी बोले- एक बार नारदजी ने भी भगवान विष्णु से ऐसा ही प्रश्न किया था। उस प्रसंग को मैं कहता हूँ, आप लोग ध्यानपूर्वक सुनें। एक बार नारद जी लोक कल्याण की भावना से विविध लोकों में विचरण करते हुए मृत्यु लोक पहुँचे ।। ३-४-५।।

ततो दृष्टवा जनान्सर्वान्नाना क्लेश समन्वितान।
नाना योनि समुत्पन्नान्क्लिश्यामानान्स्वकर्मभिः।। ६।।
केनोपायेन चेतेषां दुःखनाशो भवेद् ध्रुवम् ।
इति संचिन्त्य मनसा विष्णुलोकं गतस्तदा ।। ७।।
तंद्रष्टुं नारदो गत्वाविष्णुं स्तोतुमुपाक्रमात्।
स्तुत्याऽवोचत्प्रहष्टवा तंभगवॉल्लोकरक्षकः ।। ८।।

वहाँ उन्होंने अधिकांश मनुष्यों को अपने ही असत्कर्मों के प्रभाव से नाना प्रकार के कष्ट पाते देखा। उनके मन में करुणा उत्पन्न हुई तथा प्राणियों के कष्ट और दुख कैसे मिटें, यह सोचते हुए विष्णुलोक जा पहुँचे। वहाँ भगवान विष्णु के सामने पहुँचकर उन्होने उन जगद्पालक की स्तुति की। स्तुति सुनकर भगवान ने नारदजी से उनका उद्देश्य पूछा ।। ६-७-८।।

श्री भगवान उवाच -
किमर्थमागतोऽसि त्वं किं ते मनसि वर्त्तते।
कथयस्व महाभाग तत्सर्वं कथयामि ते ।। ९।।
नारद उवाच -
मर्त्यलोके जनाः सर्वे नाना क्लेश समन्विताः।
नानायोनि समुत्पन्नाः पच्यन्ते पाप कर्मभिः ।। १०।।
उपायः कथ्यतां कश्चित्कृपाचेतन्ममोपरि ।
येन कर्म विपेर्भंगो न स्याच्च कष्ट-मोचनम् ।।११।।

भगवान बोले - हे नारद आप किस उद्देश्य से आये हैं, अपने मन की बात निःसंकोच कहें। मैं आपकी शंका का समाधान बताऊँगा।

नारद जी बोले - हे प्रभो ! मृत्युलोक में प्राणी अपने पाप कर्मों के फलस्वरूप तरह तरह की हीन परिस्थितियों में जन्म लेकर भीषण कष्ट पा रहे हैं। आप मेरे ऊपर कृपा भाव रखते हैं तो कोई ऐसा उपाय बतायें कि कर्मफल का नियम भी न टूटे और प्राणियों के दुखों का निवारण भी हो जाय ।। ९-१०-११।।

श्री भगवान उवाच -
साधु पृष्टं त्वया वत्स लोकानुग्रह काङ्क्षया।
यत्कृत्वा मुच्यते मोहात्त्च्छृणुव वदामि ते ।।१२।।
सत्यनारायणस्यैकं व्रतं विधिविधानतः ।
कृत्वा सद्यः सुखं भुक्त्वा चान्ते मोक्षमवाप्नुयात् ।।१३।।
नारद उवाच-
किं फलं किं विधानं च कृतं केन तद्व्रतम्।
तत्सर्वं विस्तराद् ब्रूहि कदा कार्यंव्रत प्रभो ।। १४।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भगवान ने कहा- नारदजी ! आपने लोक हित की भावना से बड़ा सुन्दर प्रश्न किया, इससे मुझे प्रसन्नता हुई। मैं तुम्हें ऐसा व्रत बताता हूँ जिससे यह दुविधा दूर हो। 'श्री सत्य नारायण व्रत' ऐसा व्रत है, जिसे विधि - विधानपूर्वक करने से इस लोक में सुख और अन्त में सद्गति प्राप्त होती है।

नारद जी ने पूछा- हे प्रभो ! इस व्रत का क्या विधान है ? क्या फल है ? और उसे किसने पहले किया- यह सब कुछ मुझे विस्तारपूर्वक समझाइये ।।१२-१३-१४।।

श्री भगवान उवाच-

नारायण स्वरूपं हि सत्वमस्ति च यो नरः।
व्रतं ग्रहणाति सत्यस्य भवति तस्यानुकम्पितः।।१४।।
न्यायित्वं समदर्शित्वं कर्मप्राधान्य चिन्तनम् ।
ह्येषा सत्य प्रभोः सन्ति प्रीतिपात्रा भवन्ति ते।।१६।।
ते लभन्ते सुखं लोके चिर शान्ति परत्र च ।
सेव्यमतो हरेर्नित्यं सत्यं रूपं हि निश्चितम्।।१७।।

भगवान बोले- सत्य ही भगवान का स्वरूप है। ऐसा समझकर जो व्यक्ति सत्य व्रत अपनाता है वह प्रभु की कृपा का लाभ अवश्य पाता है। न्यायकारी, समदर्शी और कर्म को प्रधानता देने वाले सत्यरूपी प्रभु सत्य साधना से प्रसन्न होते हैं। और उनकी कृपा से साधकों को लौकिक सुख और पारलौकिक शान्ति निश्चित रूप से प्राप्त होती है।।१५-१६-१७।।

नारद मर्त्य लोकेऽस्मिन्मानवाः सत्यधर्मयोः।
लभन्त दुःखमर्त्यन्तं त्यागेनैव च सर्वथा।।१८।।
ते चेत्सत्यव्यवहारं धर्मस्य चरणे तथा ।
समुद्मताः स्युःकर्त्तुर्वै मुक्तिं दुखेभ्य प्राप्नुयुः।।११।।

नारद उवाच -

सत्य धर्मस्य किंचापि स्वरूपं व्यवहारिकम्।
प्रभो ! वद मां सुस्पष्टं कृपां कृत्वा ममोपरि।।२०।।

हे नारद ! मृत्युलोक में लोग सत्यधर्म की उपेक्षा के कारण ही अत्यधिक कष्ट पा रहे हैं। वे यदि केवल शब्दों से नहीं आचरण से भी सत्यधर्म के पालन के लिये तत्पर हो जायें तो निश्चित रूप से दुःखों से छुटकारा पा सकते हैं।

नारदजी पूछने लगे- सत्यधर्म का व्यावहारिक स्वरूप क्या है? हे प्रभो ! कृपा करके स्पष्ट कहिये ।।१८-१९-२०।।

किमाचरेत्वकोदृशं च लोके नित्यं हि मानव।
सम्यग बोधय तत्सर्वं धर्त्ता सत्यव्रतस्य वै ।।२१।।

श्री भगवान उवाच -

ज्ञेयं सत्य- व्रतेनापि मर्म सत्यस्वरूपिणः ।
श्रुणु सावहितं सत्यर्क तथैव च समाचरेत् ।।२२।।
न चास्ति शब्दवशं सत्यं केवलं वचः ।
धर्मस्य रक्षणं येन स सत्यः प्राणिनां हितः ।।२३।।

सत्य व्रत धारण करने वाला व्यक्ति संसार में किस प्रकार आचरण करे ? यह समझाइये।

भगवान बोले-हे नारद। सत्यव्रती को चाहिए कि वह सत्यव्रत का मर्म भली प्रकार समझे और उसी के अनुसार आचरण करे। केवल वचन से ही सत्य का पालन नहीं हो जाता और न सत्य शब्दों के वश में होता है, जिससे धर्म की रक्षा और प्राणिमात्र का हित होता है। वही वस्तुतः सत्य है।। २१-२२-२३।।

चत्वारः सन्ति धर्मस्य पादा वृषभरूपिणः ।
विवेकः संयमः सेवा तुरीयः साहसः शुभः ।।२४।।
एसा चतुष्टयी प्रोक्ता गुणानां नित्यव्रतिनाम्।
कर्त्तव्या सबला हेयषा सत्यव्रतेन सर्वदा ।।२५।।
आत्मनो बोधने शोधे विकासे निर्मितौ क्वचित् ।
विरतिं न भव येषां ये सत्यव्रत पोषकाः ।।२६।।

धर्मरूपी वृषभ के चार चरण कहे गये हैं, विवेक संयम, सेवा और साहस। सत्य साधक को चाहिए कि इन श्रेष्ठ गुणों को सतत् व्यवहार में लाता रहे और उन्हें क्रमशः अधिक सफल बनाता चले। उसे आत्मचिन्तन, आत्मशोधन,आत्मनिर्माण और आत्मविकास के क्रम में किसी भी प्रकार की ढील नहीं आने देनी चाहिए ।। २४-२५-२६।।

स्वीयौदार्येण व्रतिनः पतितोत्थान कर्मणि ।
श्रम साहस धैर्याश्च प्रयतन्ति निरन्तरम्।।२७।।
निखिलं कार्यजातं ते विवेक -निकषे सदा।
शोधयन्तः समुचितं तन्याय्यं स्वीकुर्वन्ति च।।२८।।
व्यापकत्वं दयालुत्वं निष्पक्षत्वं च सर्वदा ।
न्यायप्रियता जानन्ति सत्यनारायणस्य च ।।२९।।

सत्यव्रती का कर्त्तव्य है कि उदारतापूर्वक नीचे गिरे हुए लोगों को ऊँचा उठाने की चेष्टा करे और इस कार्य में साहस तथा धैर्य पूर्वक निरन्तर लगा रहे । सत्यव्रत वाला प्रत्येक विषय को विवेक और न्याय की कसौटी पर कसता है और समुचित बात को ही स्वीकार करता है। ऐसा व्यक्ति अच्छी तरह जान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेता है कि सत्यरूपी भगवान सर्वत्र उपस्थित हैं और दयालु होते हुए भी निष्पक्षता और न्याय का पालन करते हैं।।२७-२८-२९।।

अतस्तदर्चां कुर्वन्ति व्रतिनः सत्य वादिनः।
सद्व्यवहारैरेव लोके सततं च कर्मभिः ।। ३०।।
विश्वं व्रतिनो मन्यन्त स्वरूपं वृहद्ब्रह्मणः ।
भक्तिरतो भगवतः सेवैवाऽस्ति प्राणिनाम् ।। ३१।।
त्यक्त्वा स्वीयसुखानां च चिन्तां तु व्रतधारिणः।
समाज सुख वृद्धयर्थ सततं प्रयतन्ति च ।। ३२।।

इसलिए सत्यव्रती का निश्चय होता है कि संसार में सदा उत्तम व्यवहार और शुभ कर्म करना ही भगवान की सच्ची पूजा है। वह इस समस्त जगत को भगवान का ही विराट् रूप मानता है, इसलिए समस्त प्राणियों की सेवा, हित चिन्तन ही उसे भगवान की सच्ची भक्ति और अर्चना जान पड़ती है। ऐसा मनुष्य अपने सुख की चिन्ता नहीं करता वरन् समाज के सुख के अभिवृद्धि का ही सबसे पहले ध्यान रखता है ।। ३०-३१-३२।।

नास्वस्थं च वपुश्चितं व्रतिनः क्वापि कुर्वते।
संयमेनोभस्यापि ह्यारोग्यं हि नयन्ति ते ।। ३३।।
स्वीयाहारविहारौ च विधेयौ नियमान्वितौ ।
इन्द्रियाणा तितिक्षुर्हि कर्तव्य नमनं दृढम् ।। ३४।।
सत्य -व्रतवती चिन्ता नैराश्योद्वेगभीतयः ।
मनो विकृत्तिभिर्नूनं भ्रान्तिर्नैव प्रजायते ।। ३५।।

इस सेवा कार्य को समुचित रीति से सम्पन्न करने के लिए वह अपने शरीर और मन के आरोग्य को भी स्थिर रखने का पूरा ध्यान रखता है। आहार विहार की नियमितता तथा निरीक्षण द्वारा इन्द्रियों को उपयुक्त कार्यों में ही लगाये रखता है। भटकने नहीं देता। सत्यव्रती को चिन्ता, निराशा, उद्वेग, भय आदि मनोविकार भ्रान्ति में नहीं डाल पाते हैं।।३३-३४-३५।।

दार्ढ्यं सन्तुलनं दूरदर्शित्वं भीति हीनता ।
प्रसादश्चोज्ज्वले नूनं भविष्ये प्रत्ययो दृढः ।। ३६।।
स्वभाविका गुणा ह्येते वसन्ति तस्य मानसे।
प्रकाशन्ते मलं शुभं स्वरूपं चाम्य मानुषम् ।। ३७।।
विनय सौजन्य पूर्णावाणी सत्प्रेम - संयुता ।
मधुरा च प्रिया भद्रा परेषां हितकारिणी ।। ३८।।

दृढता, सन्तुलन, दूरदर्शिता, निर्भयता, प्रसन्नता और उज्ज्वल भविष्य पर दृढ विश्वास सत्यव्रती के स्वाभाविक गुण होते हैं। जो दोषों को दूर रखकर व्यक्तित्व को श्रेष्ठ बनाते हैं। उसकी वाणी नम्रता, सज्जनता, सत्य प्रेम से युक्त मधुर और प्रिय लगने वाली होने के साथ दूसरों का हित साधन करने में भी समर्थ होती है ।।३६-३७-३८।।

सौक्ष्यमसत्यं सत्यं च कर्तव्यं मन्यते व्रती ।
महाप्रलोभनाच्चापि कर्तव्यं न जहाति सः ।। ३९।।
उपार्जनं विधातव्यं श्रमेण न्याय पूर्वकम् ।
कार्पण्यापव्ययाभावः सत्यव्रतस्य लक्षणम् ।। ४०।।
विश्वा विभूतयः सर्वा धर्म ज्ञानादिकाः स्मृताः।
मान्यः स पूत निक्षेपो नेमं स्वार्थे प्रयोजयेत्।।४१।।

वह कर्तव्यों की तुलना में सुखों को तुच्छ मानता है और बड़े से बड़े प्रलोभन भी उसे कर्तव्य से डिगा नही पाते। श्रम और न्यायपूर्वक उपार्जन कृपणता तथा अपव्यय से दूर रहकर धन का उचित व्यय करना सत्यव्रती के लक्षण हैं। वह धन ज्ञानादि विभूतियों को ईश्वर की पवित्र धरोहर मानता है और केवल उन्हें स्वार्थ में ही न लगाये रहकर जनहित के लिए भी लगाता रहता है।। ३९-४०-४१।।

मालाकार : इवोद्याने सदा कृत्य - परायणः।
पोषण वर्धन चास्य कुरुतो निथमैर्युतः ।। ४२।।
सर्वेषां हि हितिं स्वीय मन्यते योनरः सदा।
स्वस्मै यदप्रियं भाति न परेभ्यस्तदाचरेत् ।। ४३।।
नालसाः सन्ति ते क्वापि स कर्म श्रमिणः सदा।
व्रतिनः क्षणमप्येकं व्यर्थं कुर्वन्ति न क्वचित्।। ४४।।

ऐसा व्यक्ति अपने परिवार और समाज को उपवन मानकर कर्तव्य निष्ठ माली की तरह उनका शोधन, पोषण और सम्बर्धन करता रहता है। उसे सबके हित में ही अपना भी हित दिखाई देता है तथा स्वयं को बुरा लगने वाला व्यवहार वह दूसरों के साथ नहीं करता। वह आलसी या प्रमादी नहीं होता, वरन् सत्कार्य में श्रम करने को सदा तत्पर रहता है। एक क्षण भी व्यर्थ नही गँवाता ।। ४२-४३-४४।।

निदेर्ष्या द्वेष पैशुन्य मद मात्सर्यादि दूषणैः।
रहितं हृदयन्तेषां न छिद्रान्वेषिणाश्च ते।। ४५।।
एवं स्वहृदि नारद जीवनाचरणेऽपिच ।
नारायणं सत्यरूपं यः स्थापयति सर्वदा ।। ४६।।
कुरुते तत्समावेशं निष्ठया च दृढः खलु ।
स एव जायते पात्रं प्रसादस्य प्रभोः सदा ।। ४७।।

वे दूसरों में ही दोष ढूँढने के स्वभाव से मुक्त रहते हैं, परनिन्दा करने तथा ईर्ष्या द्वेष, चुगलखोरी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मद मत्सर आदि दोषों से दूर रहते हैं। इस प्रकार जो मनुष्य सत्यरूपी भगवान को अपने हृदय में स्थापित करता है और आचरणों में निष्ठापूर्वक समाविष्ट कर लेता है वह निस्सन्देह भगवान की कृपा का अधिकारी बन जाता है ।। ४५-४६-४७ ।।

पलायन्ते च कष्टानि त्रस्तानीव तु सत्यत: ।
सर्व विघ्नानि लोकेऽत्र सत्यस्य व्रतधारिणाम् ।। ४८ ।।
सुखशान्तिमयं ते च व्यतीयन्ति स्व जीवनम् ।
भवबाधाविनिर्मुक्त: स्वर्गवासि सुरा इव ।। ४९ ।।
तस्मान्नारदत्वं मर्त्य-लोकंगत्वा च सत्वरम् ।
मनुष्येभ्यो हि सत्यस्य व्रत सन्देशं ब्रूहि च ।। ५० ।।

सत्यव्रत धारियों के पास से संसार के सभी कष्ट आपत्तियाँ डरकर भाग जाते हैं। वे विघ्न-बाधा रहित जीवन जीते हैं। उन्हें भव-बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है और वे स्वर्ग के देवताओं की तरह सुख और संतोष का जीवन व्यतीत करते हैं । इसलिए हे नारद ! तुम मृत्युलोक में जाकर शीघ्र ही मनुष्यों तक उत्तम व्रत का सन्देश पहुँचा दो ।। ४८-४९-५० ।।

श्रावय प्रेरणां यच्छ तदाचारस्य जीवने ।
तेषामेवं हि दु:खानि दूरं याभ्यन्ति निश्चितम् ।। ५१ ।।
भगवतोऽनुकम्पां च मत्वान्ते नारदस्तदा ।
सत्यव्रत-प्रसाराय प्राणिषु प्राचलद् द्रुत्तम ।। ५२ ।।

इस व्रत को सुनकर, उससे प्रेरणा लेकर अपने आचरण में इसे लाने से उनके समस्त कष्ट अवश्य दूर हो जायेंगे। नारदजी भगवान का अनुग्रह मानते हुए उनके चरणों में प्रणाम करके, इस महाव्रत का संसार में प्रसार करने तुरन्त चल पड़े ।। ५१-५२ ।।

।। इति श्री सत्यनारायण व्रत कथायां प्रथमोध्याय: ।।

सत्यनारायण व्रत कथा

द्वितीय अध्याय

सूत उवाच-

अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि कृतं येन पुरा द्विज ।
कश्चित्काशी पुरे रम्ये ह्यासीद्विप्रोऽति निर्धन: ।। १ ।।
द्विजो नाम्ना सदानन्दो दैन्यभावमुपागत: ।
उदर-पूर्त्तये भिक्षांकुर्वन् हि व्यचरत्सदा ।। २ ।।

सूतजी कहने लगे-हे श्रेष्ठजनो ! अब मैं आपको सत्यव्रत धारण करने वालों की कथा सुनाता हूँ। किसी समय काशीपुरी में सदानन्द नाम का एक बहुत गरीब ब्राह्मण निवास करता था। दरिद्रता के कारण दीन भाव से व्याकुल होकर वह उदर पूर्ति के लिए भीख माँगता इधर-उधर घूमा करता था ।। १-२ ।।

भगवान्सर्वदा लोके जिज्ञासूनां कृते खलु ।
प्रेरणया विचारस्य रूपे दिशेच्च पद्धतिम् ।। ३ ।।
कृपालुर्मनसाभूत्वा प्रादुर्भूतो गतस्तु तम् ।
साहाय्यं तस्य कर्तुं च जातं मनसि श्री हरे ।। ४ ।।

वृद्ध ब्राह्मण उवाच-

किमर्थं भ्रमते विप्र महीं नित्यं सु दु:खित: ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथ्यतां द्विजसत्तम ।। ५ ।।

लोकरक्षक भगवान जिज्ञासुओं को सही सद्विचार तथा सत्प्रेरणा द्वारा मार्ग-दर्शन देने के लिए स्वयं प्रकट होते हैं। वे सदानन्द की सहायता के लिए करुणा रूप होकर एक वृद्ध महाभाग के रूप में उदय हुए और उसके पास जाकर कहने लगे-हे विप्र ! तुम इस प्रकार दुखित अवस्था में इधर-उधर क्यों भटकते फिरते हो । मैं तुम्हारा सब वृतान्त जानना चाहता हूँ ।। ३-४-५ ।।

सदानन्द उवाच-

दरिद्रोऽस्मि द्विजो ह्यर्चा कुर्वन्नपि क्षुत्पीड़या ।
विचरामि समादातुं भिक्षां जठर-पूर्त्तये ।। ६ ।।
उपायं वद में दूरीकर्तुं जानासि चेत्प्रभो ।
दारिद्र मोचनेयत् भवेद् दुर्भाग्य-जीविन: ।। ७ ।।

वृद्ध ब्राह्मण उवाच-

सुदूरं हि गतस्त्वं तु विप्रोचित सत्कर्मण: ।
कष्टं प्राप्नोषि तेनैव निदानं ह्यसत्सेवनम् ।। ८ ।।

सदानन्द ने कहा- हे महाभाग ! मैं एक दरिद्र ब्राह्मण हूँ, भजन-पूजन करता हूँ तथा भूख मिटाने के लिए भीख माँगता घूमता हूँ। इस दीन और अभावग्रस्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन से मैं बहुत दुःखी हूँ। इसके निवारण का कुछ उपाय आप जानते हों तो कृपा करके बतायें।

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा-हे सदानन्द ! तुम ब्राह्मणोचित सन्मार्ग से भटक गये हो। असत् मार्ग पर चलने के कारण ही तुम यह कष्ट पा रहे हो ।। ६-७-८।।

सत्यधर्मस्त्वया विप्र पालनीयो निरन्तरम् ।
सत्यव्रताचरणं तु हि सौभाग्यं प्राप्स्यीन महत्।। ९।।
आकर्षणं हि भिक्षायास्त्याज्यं चान्नमयं त्वया ।
सत्यमार्गवलम्बेन सेवनीया दया हरेः ।। १०।।
यज्ञार्थमुपकारार्थं विपश्च निवारणे ।
याचनापि शुभा ध्येयान स्वार्थे तां प्रयोजयेत् ।।११।।

तुम्हें अपना सत्यधर्म समझना होगा तथा सत्यव्रत का पालन करने से तुम इस भ्रान्तिपूर्ण जीवन से मुक्ति पाकर ब्राह्मणोचित गौरव पा सकोगे। भिक्षा आदि का असद् आकर्षण छोड़ दो, सत्यमार्ग का अवलम्बन तुम्हें भगवान की कृपा का पात्र बना देगा। याचना तो केवल यज्ञार्थ, जनहित के लिए अथवा विपत्ति निवारण के लिए ही करनी चाहिए, स्वार्थ पूर्ति के लिए माँगना अनुचित है ।। ९-१०-११।।

उद्देश्योदर-पूर्ति च भिक्षा हि वृजिनं भवेत् ।
दैन्यमुत्पादयत्येतन्नाशकं ब्रह्मतेजसः ।। १२।।
समाजाल्लभते विप्रो यदनेकगुणं पुनः ।
सेवा साधन रूपेण तं ददाति सुनिश्चितम् ।। १३।।
त्यक्त्वा दैन्यं भयं चापि दुरालस्यमकर्मण्यताम् ।
कुरुष्व जाग्रतं स्वीयं ब्रह्मतेजस्तु विप्र! त्वम् ।।१४।।

पेट भरने का माध्यम भिक्षा को बनाना तो पाप है। इससे ब्रह्म तेज का नाश होता है और दीनता का भाव बढ़ता है। ब्राह्मण तो समाज से जितने अनुदान लेता है उससे अनेक गुने अनुदान ज्ञानदान तथा सेवा साधना के रूप में समाज को देता रहता है। हे विप्र ! तुम दीनता,भय, आलस्य और अकर्मण्यता छोड़कर अपने ब्रह्म तेज को जागृत करने के लिए साधना करो।। १२-१३-१४।।

दुर्मतिर्जायते नाशाद् विप्रस्य हि ब्रह्मतेजसः ।
भूसुरश्च भवत्येव दुर्मत्येवासुरस्तथा ।। १५।।
स्व कर्तव्यच्युतो विप्रो दुःखमाप्नोति च स्वयम् ।
सत्समाजोहि पतितः पतन्ति यत्र ब्राह्मणः ।। १६।।
मुक्तिं लभस्व दुर्भाग्यात्सन्त्यज्य विप्र दीनताम् ।
ब्रह्म कर्मसु संलग्नो भवानन्दयुतश्च त्वम् ।। १७।।

ब्रह्म तेज नष्ट हो जाने से ब्राह्मण की बुद्धि दूषित हो जाती है और भूसुर कहा जाने वाला ब्राह्मण दुर्बुद्धि के कारण असुरों जैसे आचरण करने लगता है। अपने कर्तव्य से गिरकर ब्राह्मण स्वयं तो दुःख पाता ही है साथ ही जिस समाज में ब्राह्मण वर्ग पतित हो जाता है उस समाज का भी पतन हो जाता है। इसलिए दीनता को छोड़कर इस दुर्भाव से मुक्ति पाओ, ब्राह्मणोचित कार्यों में लगकर आनन्दपूर्वक रहो ।। १५-१६-१७।।

तवोत्थानाद्धि सर्वेषां श्रेयो निष्पद्यते खलु ।
अतस्त्वंशीघ्रमुत्थाय कल्याणं कुरु संस्कृतेः ।। १८।।
विद्याध्येया च स्वाध्यायी भव धर्म प्रचारय ।
गुण कर्म स्वभावानां दृष्टयोऽदर्शोभवेत्तथा ।। १९।।
गत्वा प्रतिगृह सर्व-जन-चेतसि धार्मिकीम् ।
जागृतिं कुरु सर्वत्र कर्त्तव्यञ्च तवारित तत् ।।२०।।

ब्राह्मणों द्वारा सत्य धर्माचरण से संसार का कल्याण होता है, यह समझकर तुम शीघ्र संसार के हितकारी कार्यों में लग जाओ। विद्या की वृद्धि करो, स्वाध्याय करो और धर्म का प्रचार करो। तुम्हें स्वयं गुण, कर्म और स्वभाव की दृष्टि से दूसरों के सामने उच्च आदर्श उपस्थित करना चाहिए। तुम्हारा कर्तव्य है कि घर-घर जाकर जन-जन में सच्ची धार्मिक चेतना जागृत करो ।। १८-१९-२०।।

भगवतो वचः श्रुत्वा वृद्ध ब्राह्मण-रूपिणः ।
कृतः सुधारो दीनन ह्याचारं परिवर्तनं च ।। २१।।
प्रतिष्ठा वर्धते तेन लोकः श्रद्धां करोति च ।
सर्वेऽभावा विनश्यन्ति तेजस्वित्वच गच्छति ।। २२।।
सविप्रो हि ततः सत्यनारायण व्रतस्य च ।
ख्यापयितुं महत्वं तु धर्मानुष्ठानरूपिणम् ।। २३।।

वृद्ध ब्राह्मण के रूप में भगवान का आदेश मानकर ब्राह्मण सदानन्द ने दीनता छोड़कर अपने आचरण को पूरी तरह सुधार लिया। सत्यव्रत के पालन से उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी तथा समाज के श्रद्धायुक्त सहयोग से उसके सारे अभाव मिट गये और वह तेजस्वी जीवन जीने लगा। तब वह सत्यधर्म की महत्ता दर्शन के लिए धर्म का आयोजन भी करने लगा।। २१-२२-२३।।

आयोजनममायां वा पूर्णिमाया रवौ तथा ।
दिने च नियमेनैव विदधातिस्म शोभने ।। २४।।
आयोजने तु सम्प्राप्ते हीदृशे कुत्रचित्कृता ।
स्वेच्छा सातु व्रतं चेमं सत्यनारायण प्रभोः ।। २५।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राप्तः काष्ठस्य विक्रेता महत्तां दृष्टवान स्वयम् ।
अभूत्सो सादृत स्तं च प्रार्थयद्विनयेन सः ।। २६ ।।

सदानन्द नियमपूर्वक रविवार, पूर्णिमा, अमावस्या अथवा अन्य शुभ अवसरों पर सत्यव्रत के प्रचार के लिए आयोजन करता था। ऐसे ही एक आयोजन के अवसर पर एक लकड़हारा वहाँ पहुँचा। समारोह देखकर उसके मन में भी अधिक जानने की जिज्ञासा प्रकट हुई तथा सत्यव्रत का महत्व समझकर उसे प्रेरणा मिली तथा अभूतपूर्व उत्साह उसने अपने अन्दर अनुभव किया ।। २४-२५-२६ ।।

सदानन्द उवाच-

लालायितोऽभवद्र क्षातुं सत्यस्य शुभदं व्रतम् ।
व्यक्तेच्छा पालने तस्य याचितं मार्ग दर्शनम् ।। २७ ।।
श्रमस्यमहती सम्पद् वर्तते तव सन्निधौ ।
भ्रातः ! व्रतेन सत्यस्य ते विनश्यत्य ऽभावता ।। २८ ।।
सम्मान्यो हि श्रमो नित्यं कार्यश्च लग्नचेतसा ।
कुर्यात् सद्व्यवहारेण सत्येन धर्म साधनम् ।। २९ ।।

आयोजन समाप्त होने पर लकड़हारे ने सदानन्द से सत्यव्रत के नियम बताने तथा तत्सम्बन्धी मार्गदर्शन का आग्रह किया।

सदानन्द ने कहा- हे भाई ! तुम अपने आप को दीन मत समझो, तुम्हारे पास तो श्रम की महान पूँजी है, सत्यव्रत पालन करने से तुम्हारे अभाव अवश्य नष्ट होंगे। तुम श्रम के प्रति सम्मान के भाव जागृत करो, पूरे मनोयोग से काम करो, ईमानदारी तथा सद्व्यवहार का पालन करके तुम सत्य धर्म के साधक बनो ।। २७-२८-२९ ।।

सत्यनारायण स्येदं व्रतं सर्वेप्सित प्रदम् ।
तस्य प्रसादान्मे सर्वं धन धान्यादिकं महत् ।। ३० ।।
तस्माद्देतद् व्रतं ज्ञात्वा काष्ठ क्रेताऽति हर्षितः ।
सत्यनारायणं देवं चिन्तयन्नगरं ययौ ।। ३१ ।।
धारितं च व्रतं तेन काष्ठ विक्रयिणा ततः ।
गुण कर्मस्वभावश्चसुत्यानु सृति शोधिताः ।। ३२ ।।

सत्यनारायण का यह व्रत समस्त मनोकामनाओं की पूर्ति करने वाला है, इसी के पालन से मुझे धन-वैभव प्राप्त हुआ है। काष्ठ विक्रेता ब्राह्मण से यह सब विचार जान कर प्रसन्न होकर, सत्यनारायण के व्रत का चिन्तन करता हुआ अपने स्थान को चला गया। वह भी लकड़ी बेचने के साथ सत्यव्रत का पालन करने लगा और उसने अपने गुण, कर्म, स्वभाव में सत्यव्रती के अनुरूप संशोधन कर लिया ।। ३०-३१-३२ ।।

यत्रापि वर्तते सत्यं प्रतिभा तत्र वै ध्रुवा ।
प्रतिष्ठा च तयावश्यं नाभावः कश्चिदेव च ।। ३३ ।।
आसीत्पूर्वतु तस्यापि चात्यल्पः काष्ठविक्रयः ।
समृद्धोऽसौ व्रतेनैव कृतः सत्य प्रभोः खलु ।। ३४ ।।
प्रबुद्धमर्जितं स्वीयं शक्तिञ्चापिन्ययोजयेत् ।
स व्यापक प्रचाराय सत्यनारायणस्य तु ।। ३५ ।।

जहाँ सत्य का पालन होता है, सद्बुद्धि निश्चित रूप से बनी रहती है। सद्बुद्धि के कारण समाज में प्रतिष्ठा बढ़ती है और प्रतिष्ठा पा लेने पर सारे अभाव स्वयं दूर हो जाते हैं। पहले उस लकड़हारे की बहुत कम बिक्री होती थी सत्यव्रत का अवलंबन लेने सेउसका कारोबार बढ़ा तथा वह धनी हो गया। अपने द्वारा अर्जित धन को वह सत्यनारायण व्रत के व्यापक प्रचार में नियोजित करने लगा ।। ३३-३४-३५ ।।

जातं तेनास्य सत्पुण्यंसौख्यं लोक हि चाधिकम् ।
व्रतस्यैव प्रभावोऽयं नाश्चर्यं किञ्चिदस्ति व ।। ३६ ।।
विप्रः काष्ठस्य विक्रेता समृद्धोऽभव पूर्णतः ।
सद्गति सुख शांतिं च सम्प्राप्य हि व्रतेन च ।। ३७ ।।
सत्यव्रत पालनस्य श्रद्धया चेच्च स्वीकृतिः ।
तथाऽन्यऽपि स्वकल्याणां कर्तुं शक्ता भवन्ति वै ।। ३८ ।।

ऐसा करने से उसे बहुत पुण्य की प्राप्ति हुई और वह सुखी जीवन व्यतीत करने लगा। सत्यव्रत वाले को इस प्रकार का लाभ मिलना स्वभाविक ही है इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। ब्राह्मण और लकड़हारे ने सत्यव्रत के प्रभाव से सुख, शान्ति और सद्गति प्राप्त करके जीवन को सार्थक बना लिया। इस प्रकार अन्य सब मनुष्य भी सत्यव्रत को धारण करके निश्चित रूप से अपना कल्याण कर सकते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।। ३६-३७-३८ ।।

।। इति श्री सत्यनारायण व्रत कथायां द्वितीयोध्यायः ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्यनारायण व्रत कथा

तृतीय अध्याय

सूत उवाच-

पुनरग्रे प्रवक्ष्यामि श्रृणुध्वं मुनिसत्तमाः ।
पुराचोल्कामुखो नाम नृपश्चासीन्महामतिः ।। १।।
स्वकर्त्तव्य परो ह्यासीत्सत्य निष्ठो जितेन्द्रियः।
अवितरत्सत् कार्यषु प्रदत्त प्रचुरं धनम् ।। २२।।

सूतजी ने कहा- हे श्रेष्ठ मुनिगण ! अब आगे की कथा कहता हूँ उसे ध्यान से सुनिये। प्राचीन काल में उल्कामुख नामक एक बुद्धिमान राजा था वह जितेन्द्रिय, सत्यनिष्ठ एवं कर्तव्य परायण था। श्रेष्ठ कार्यों के लिए प्रचुर धन दान भी किया करता था ।। १-२।।

तस्य भार्यापि कर्त्तव्य-पालनेऽतिपरायण ।
सहयोगं हि कुर्वाणा चासीत्तत्कर्मसु सदा ।। ३।।
आस्तां तौ ददतुर्नित्यं सत्यव्रत परौ धनम् ।
आयोजनैः प्रजाभ्यश्च सत्यस्य प्रेरणां मुदा ।। ४।।
भद्रशीला नदी तीरे हीदृशयोजनै शुभे ।
सम्मिलितोऽभवत्साधुर्नामा व्यापार-व्यावृतः ।। ५।।

राजा उल्कामुख की पत्नी धर्म परायण थी और कर्तव्य पालन में राजा का सब प्रकार सहयोग किया करती थी। दोनों सत्यव्रत में बहुत निष्ठा रखते थे और सार्वजनिक आयोजनों द्वारा प्रजाजनों को सत्यधर्म की प्रेरणा दिया करते थे। भद्रशीला नदी के तट पर एक ऐसे ही आयोजन में साधु नामक व्यापारी भी सम्मिलित हुआ और उस आयोजन से प्रभावित होकर राजा से पूछने लगा ।। ३-४-५।।

साधु उवाच-

किमर्थं क्रियते राजन् ! एतदायोजनं महत् ।
लाभं चास्य प्रभावं मे कृपया वद विस्तृतम् ।। ६।।

राजा उवाच-

अयमस्ति समारोहः सत्यनारायण प्रभोः ।
सत्यव्रतस्य नित्यं च प्रसारः क्रियते मया ।। ७।।
आचारेयुः स्वयं श्रेष्ठ पुरुषाः सत्य धर्मना ।
देया स्वानुभवेनापि परेभ्यः प्रेरणा सदा ।। ८।।

साधु वैश्य ने पूछा - हे राजन् ! आप यह आयोजन किसलिये किया करते हैं ? इसका क्या लाभ और प्रभाव है ? कृपया मुझे भी यह सब बताईये। राजा ने उत्तर दिया- यह भगवान श्री सत्यनारायण का पूजन समारोह है, मैं सत्यव्रत का पालन करता हूँ और उसी का प्रचार भी किया करता हूँ। श्रेष्ठ पुरुषों को चाहिए कि स्वयं सत्याचरण करें और दूसरों को वैसा ही करने के लिए अनुभव से प्रेरणा देते रहें ।। ६-७-८।।

स्वीकारेण क्रमस्यास्य मम परिजनैः सह ।
परमं शान्ति-सौख्यं च ह्युपलब्ध निरन्तरम् ।। ९।।

साधु उवाच-

भूपस्य वचनं श्रुत्वा साधुः प्रोवाच सादरम् ।
सर्वं कथय मे राजन्! करिष्येऽहं तवोदितम् ।। १०।।
अभाव कष्टं क्षोभश्च ममाप्यस्ति स्वजीवने ।
मुञ्चेयं शरणत्वे हि सत्यनारायणस्य च ।। ११।।

हे वैश्य ! जीवन में यही क्रम अपनाकर चलने के कारण भगवान सत्यनारायण की कृपा से मुझे अपने परिजनों तथा प्रजाजनों सहित सुख शान्ति उपलब्ध है। राजा के वचन सुनकर साधु वैश्य विनयपूर्वक कहने लगा कि हे राजन् ! इस विषय में मुझे विस्तार से समझाइये। मेरे भी मन में दुःख कष्ट और अभाव रहते हैं मैं भी भगवान श्री सत्यनारायण की शरण लेकर उनसे मुक्ति पाऊँगा।। ९-१०-११।।

राजा उवाच-

वैश्य धर्मः समाजस्य पदार्थानां व्यवस्थितम् ।
अपेक्षितेन मूल्येन करोत्युत्पादनस्य च ।। १२।।
वैश्यः स्वीय समाजस्य संवर्ध्य निजकर्मभिः ।
शान्ति सौख्यंयशोभागी जायते जगतीतले ।। १३।।
पालयत्वं सत्यधर्मो स्वकीय जीवने सदा ।
सुख सौभाग्य-सम्पन्नो त्वं भविष्यसि वै ध्रुवम् ।।१४।।

राजा बोले-वैश्य का धर्म समाज की आवश्यकतानुसार शुद्ध वस्तुओं का उत्पादन और उनके उचित मूल्य पर वितरण की व्यवस्था करना है। सत्यधर्म का पालन करने वाला वैश्य अपनी तथा समाज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की सम्पन्नता एवं सुख-शान्ति बढ़ाते हुए जीवन में प्रचुर यश का भागीदार बनता है। तुम भी अपने जीवन में सत्यधर्म का पालन करो। भगवान सत्यनारायण की कृपा से तुम्हें भी सुख सौभाग्य तथा सम्पन्नता अवश्य प्राप्त होगी ।। १२-१३-१४ ।।

ज्ञात्वा रूपं नृपात् सत्य व्रतस्य जीवनेऽपि तत् ।
धर्तुं च कृत संकल्पस्तं सम्पूज्य गतौ गृहम् ।। १५ ।।
पत्नी लीलावतीं सर्व वृतं सोऽकथयत्ततः ।
सापि व्रतं च सत्यस्य श्रद्धयाऽपालयात्तथा ।। १६ ।।
भर्याया वर्धनं साधुर्ज्ञानस्य कृतवान् वणिक् ।
सुस्थितः परिवारस्य समृद्धिश्चाऽभवत्खलु ।। १७ ।।

राजा से सत्यव्रत का स्वरूप भली प्रकार समझकर साधु वैश्य ने अपने जीवन में सत्यव्रत पालन का संकल्प लिया और अपने घर चला गया। घर में उसने अपनी पत्नी लीलावती को सारा वृतान्त सुनाया और वह भी सत्यधर्म का पालन श्रद्धापूर्वक करने लगी। सत्यव्रती वैश्य धर्मपत्नी का ज्ञान और योग्यता भी बढ़ाने लगा फलस्वरूप उसके घर में व्यवस्था तथा सम्पन्नता तेजी से बढ़ने लगी ।। १५-१६-१७ ।।

जीविकाया महानशः प्रसाराय प्रतिश्रुतः ।
नारायणस्य सत्यस्य लोके ताभ्यां व्रतस्य च ।। १८ ।।
शरणागतो हि सत्य नारायणस्यावर्धत ।
समृद्धिर्वणिजस्तेन जीवनं यापितं मुदा ।। १९ ।।
सन्तुलने हि वित्तस्य जाते मानसिकेऽपि च ।
कामना सन्ततेर्जाताऽभ्युदयश्च तयोस्तदा ।। २० ।।

उन्होंने अपनी आय का बड़ा अंश संसार में सत्यव्रत के प्रचारमें लगाते रहने का निश्चय किया। सत्यनारायण भगवान की शरण में जाने से उनके जीवन में सब प्रकार सम्पन्नता आने लगी तथा जीवन का समय प्रसन्नता से बीतने लगा। उनका आर्थिक तथा मानसिक सन्तुलन सध जाने पर वह वणिक दम्पत्ति अपने मन में सन्तानोत्पादन की इच्छा का अनुभव करने लगे ।। १८-१९-२० ।।

प्राप्य स्वप्ने हि निर्देशः कन्यायाः कामनां प्रति ।
सौभाग्यारयौश्चैवा चिन्हं सूनोरपेक्षया ।। २१ ।।
निर्देश दम्पती प्राप्य ह्याचारं प्रतिपालितौ ।
सुसंस्कारैश्च सम्पन्ना कन्या चोत्पादित सबु ।। २२ ।।
नाम्ना कलावती कन्या सुसंस्कारैः समन्विता ।
विहित विधिना ताभ्यां खलु समयानुसारतः ।। २३ ।।

ऐसी इच्छा मन में उठने पर उन्हें स्वप्न में निर्देश मिला कि वे पुत्र की अपेक्षा पुत्री प्राप्ति की कामना करें क्योंकि कन्या सौभाग्य और आदर का चिन्ह है। उन्होंने प्राप्त निर्देशानुसार नियमित जीवन क्रम अपनाकर एक सुसंस्कारवती कन्या को जन्म दिया। कलावती नाम की इस कन्या के शुभ संस्कार जाग्रत करने के लिए उन्होंने उसके सभी संस्कार समय-समय पर विधिपूर्वक सम्पन्न कराये ।। २१-२२-२३ ।।

कलावत्या स्वहृदये देहस्य पौषणौः सह ।
सद्ज्ञानस्य गुणनां च दत्वा ध्यानं विशेषतः ।। २४ ।।
सद्गुणानां च कन्याया विधेयं समुत्पादनम् ।
पूतं पित्रोश्च कर्तव्यं शिष्टत्व व्यवहारयोः ।। २५ ।।
यदा वयस्का सा जाता शिक्षित परिवारिणा ।
यूना सगुणवता साकं सारव्यनवनोद्वाहिता ।। २६ ।।

कलावती के लिए शारीरिक पोषण की समुचित व्यवस्था बनाने के साथ-साथ उसके ज्ञान और गुण के विकास पर भी पूरा ध्यान दिया गया। कन्या को श्रेष्ठ गुण और क्षमताओं से सम्पन्न, शिष्ट, व्यवहार में कुशल बनाना माता-पिता का पवित्र कर्तव्य है। कन्या कलावती के वयस्क और सुशिक्षित हो जाने पर उन्होंने उसका विवाह एक कुलीन परिवार के गुणवान युवक के साथ कर दिया ।। २४-२५-२६ ।।

पुत्रवद् वणिजा तेन युवकः शिक्षितस्तदा ।
सद्धर्मरय विधानेषु व्यापार नियमेषु च ।। २७ ।।
आवश्यकं पदार्थानां समये समुत्पादनं ।
श्रमेण कौशलेनापि कर्त्तव्यमवधानतः ।। २८ ।।
स्वहितेन सह क्रेतुर्वत्स चिन्तयति हितम् ।
यस्तं रक्षत्यवहितो व्यापारी सत्य एव सः ।। २९ ।।

वैश्य ने उस होनहार युवक को अपने पुत्र की तरह मानकर स्वधर्म पालन तथा व्यापार संचालन के नियम सिखाये। साधु वैश्य ने उसे समझाया कि समाज की आवश्यकतानुसार वस्तुओं का प्रचुर मात्रा में उत्पादन और विक्रय श्रमपूर्वक सावधानी एवं कुशलता से किया जाना चाहिए। जो वैश्य अपने हित के साथ खरीददार के हितों की भी रक्षा करता है, वही सच्चे अर्थों में व्यापारी कहलाता है ।। २७-२८-२९ ।।

उभावेवं वैश्य धर्म पालयन्तौ हि नित्यशः ।
उन्नतिं लब्धवन्तौ च सहकारित्व साधनात् ।। ३० ।।
साधु उवाच-
बहुधा चात्र साफल्यं समृद्धिर्व्यवसायिनाम् ।
लक्ष्याद् भ्रंशयति नूनं तज्जातं वणिजोऽपि सह ।। ३१ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बहुषो बोधितः पत्नया सत्कार्येऽथ सद्व्ययः ।
चोपेक्षितं तेन सर्वं विस्मृतं कल्पितं पुरा ।। ३२।।

वे दोनों वैश्य धर्म का पालन करते हुए, सहकारिता का निर्वाह करते हुए सतत् उन्नति और सफलता प्राप्त करने लगे। सफलता और समृद्धि कई बार मनुष्य को अपने लक्ष्य से विचलित कर देती है। इन वैश्यों के साथ भी ऐसा ही हुआ। पत्नियों द्वारा स्मरण दिलाने पर भी अपनी आय का एक अंश सत्कार्यों में लगाते रहने के संकल्प की उन्होंने उपेक्षा कर दी ।। ३०-३१-३२।।

सद्गार्हस्थ्यान्निवृत्तेतु वानप्रस्थस्य जीवनम् ।
धर्माचारे समाजस्य सेवायां यापयेन्नरः ।। ३३।।
वैश्यस्तु धनं लोभेनाचिन्तयदधिकं धनम् ।
जामात्रा च सहान्यत्र व्यापारार्थंतु प्रस्थितः ।। ३४।।
त्यागाद्धर्मस्य कार्याणां मानवे कुप्यतीश्वरः ।
दुःखमनुभवत्येव सदा तत्कोपभाजनः ।। ३५।।

नियम तो यह है कि अपने गृहस्थ सम्बन्धी उत्तरदायित्वों से निवृत्त होकर मनुष्य वानप्रस्थ जीवन में प्रवेश करके धर्म प्रचार तथा समाज सेवा के कार्यों में जीवन लगा दें। किन्तु साधु को धन देखकर और अधिक धन का लालच हुआ तथा वह अपने जमाता को साथ लेकर धन कमाने निकल पड़ा। स्वधर्म के त्याग से भगवान रुष्ट् होते हैं तथा उनके क्रोध के कारण जीवन अनेक प्रकार के दुःखों में फँस जाता है ।। ३३-३४-३५।।

साधु वैश्यः सत्यधर्मं विस्मृत्य ह्यविचारतः ।
उचितं चाप्यनुचितं कृत्वाह्युपार्जयद्धनम् ।। ३६।।
रत्नसार पुरम्यास्य सत्यनिष्ठैः प्रजाजनः ।
राज्यधिकारिभिः कारावद्धो जातौनृपेणः सः ।। ३७।।
अर्द्धांगिन्यापि कर्त्तव्यं कर्तुं स नानुरोधितः ।
सापि तस्माद्भगवतो जाता च क्रोधभाजना ।। ३७।।

साधु वैश्य की सद्बुद्धि क्षीण हो गई वह लोभवश उचित-अनुचित का विचार किए बिना अनीतिपूर्वक धन कमाने लगा। इस अपराध के कारण रत्नसारपुर के सत्यनिष्ठ प्रजाजनों ने उसे राज्य कर्मचारियों द्वारा बन्दी बनवा राज्याज्ञा से जेल भिजवा दिया। उसकी धर्मपत्नी ने भी पति से धर्मपालन कराने के अपने कर्तव्य को पूरा नहीं किया इससे वह भी भगवान श्री सत्यनारायण के क्रोध का भाजन बनी।। ३६-३७-३८।।

सुखोपभोगलीनस्य चाप्यसत्कर्म-कारिणः ।
सर्वा सम्पदगृहान्नूनं विलीना तस्य तत्क्षणात् ।। ३९।।
दुःखेवास्त्यैव लाभोऽपित्यक्त्वाहंकृति गौरवम् ।
प्रभुं स्मरत्यनुतापं विधते पापकर्मणाम् ।। ४०।।
ताभ्यामिंतश्च तत्रापि ज्ञातं च दुःखकारणम् ।
कर्तव्यस्य विरते हि चैकमेवारित केवलम् ।। ४१।।

लीलावती कलावती सुखोपभोग में मग्न होकर अपने सत्कर्तव्यों से विरत हो गयीं इससे उनके घर की सारी संचित धनराशि विलीन हो गई। दुःख आ पड़ने से एक बड़ा लाभ यह होता है कि मनुष्य अपने झूठे अहंकार और स्वार्थ को त्यागकर भगवान को याद करने लगता है और उसे अपने अनुचित कर्मों पर पश्चात्ताप होता है। इसी प्रकार कष्ट पाने से वह साधु नामक वैश्य और उसकी स्त्री ने अपने मन में समझ लिया कि हमारी यह दुरावस्था धर्मकर्तव्य से विमुख हो जाने के कारण ही हुई है ।। ३९-४०-४१।।

स्वार्थ बुद्धिं परित्यक्त्वा परिशोध्य निजां त्रुटिम् ।
परमार्थं ततः कर्तुं जातस्तु कृत निश्चयः ।। ४२।।
चन्द्रकेतोर्नृपस्याग्र स्वीकृत स्वीय विस्मृतम् ।
सत्यव्रते ततो वैश्यौ भूयोऽजनथत्प्रत्ययम ।। ४३।।
चन्द्रकेतु उवाच-
असामान्योऽस्ति ते वैश्य ह्यन्याये धनार्जनम् ।
महापराधो मे राज्ये कठोरा तस्य दण्डता ।। ४४।।

तब उन्होंने अपनी स्वार्थ बुद्धि छोड़कर अपनी भूलों का प्रायश्चित करने तथा अपने परमार्थ कर्तव्यों के पालन का निश्चय किया। साधु वैश्य ने राजा चन्द्रकेतु के सामने अपनी भूल स्वीकार की तथा भविष्य में सत्यनिष्ठ रहने का विश्वास दिलाया।

राजा ने कहा-हे वैश्य तुम्हारा अपराध असाधारण है। अनीतिपूर्वक धन कमाने के अपराध पर मेरे राज्य में उसका कठोर दण्ड़ दिया जाता है।। ४२-४३-४४।।

धनिनोऽनीति कुर्वन्ति जनाश्चानुसरन्तिताः ।
व्यवस्था च समाजस्य भ्रष्टा भवति सर्वदा ।। ४५।।
सन्ति कर्मकरा ये च मे राज्ये निखिला जनाः ।
वारन्ति मिथोऽनीतिं योगेन सत्यधारिणः ।। ४६।।
इत्थं प्रतीयते नूनं यूयं सर्वेऽनुपातकाः ।
दीयते मन्निर्देशेन सुधारावसरः पुनः ।। ४७।।

जब विभूतिवान् धनी व्यक्ति अनीति का मार्ग पकड़ लेते हैं तो जन सामान्य द्वारा भी वही राह अपना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ली जाती है और समाज भ्रष्ट हो जाता है। मेरे राज्यकर्मचारी और प्रजाजन भी सभी सत्यनिष्ठ हैं तथा कहीं भी अनीति को पनपने नहीं देते। चूँकि ऐसा लगता है कि तुम सचमुच अपनी भूल का पश्चात्ताप कर रहे हो इसलिए तुम्हें आत्मसुधार करके सत्यव्रती बनने का अवसर दिया जाता है ।। ४५-४६-४७।।

अन्यान्योपार्जनं त्यक्त्वा स्वीय मूल धनेन च ।
विधातुंच स्वव्यापारं समर्थाः सन्तु वै तथा ।। ४८।।
अर्थव कृतवान्वैश्य कृपया सत्प्रभोस्तदा ।
विपुलोपार्जनं तस्य वित्तस्य चाप्यजायत ।। ४९।।
कलावत्यापि विज्ञाता लीलावत्या सह पुनः ।
विस्मृतिः स्वीकृता पूर्वयाचिता च प्रभोः क्षमा ।।५०।।

हे वैश्य ! तुमने जो अनीतिपूर्वक धन कमाया है उसको छोड़कर अपनी मूल सम्पत्ति से तुम पुनः व्यापार प्रारम्भ कर सकते हो। वैश्य ने राजा के कथानुसार पुनः सत्यव्रती बनकर व्यापार किया तथा भगवान श्री सत्यनारायण की कृपा से विपुल धन अर्जित कर लिया। उधर लीलावती तथा कलावती ने भी अपनी भूल समझी तथा भगवान सत्यनारायण से उसके लिए क्षमा याचना की।।४८-४९-५०।।

हित्वा पूर्व विलासेन जीवन च प्रधानता ।
सेवा सद्भावयोर्दत्ता कर्मठत्वस्य च ध्रुवम् ।। ५१।।
भृत्यैरपहृतं सर्वमर्थं चानवधानतः ।
अस्त व्यस्तं कृतं नूनं स्वायत्ते च धृतं खलु ।।५२।।
सद्भाव वर्धनास्तत्र तत्परत्यस्य च पुनः ।
प्राप्तोऽधिकांश तेश्चार्थःजातासत्य प्रभोः कृपा ।।५३।।

उन्होंने विलासिता भरा जीवनक्रम छोड़कर कर्मठता, हर्ष, सेवा, सद्भाव को जीवन में प्रधानता दी। उनकी असावधानी के कारण घर के नौकरों ने ही धन एवं सामान को अस्त-व्यस्त करके चुरा लिया था। उन दोनों ने अपना काम सुधारा, भगवान सत्यनारायण की कृपा हुई और तत्परता तथा सद्भावना बढ़ने से उनका अधिकांश धन पुनः प्राप्त हो गया।।। ५१-५२-५३।।

संसारेऽस्मिन्प्रभोरिच्छा सर्वापरि विराजते ।
अवबुध्येति ततः कार्य येनैव स प्रसीदति ।। ५४।।
नास्ति किमपि कष्टञ्च यन्न नश्यति सर्वथा।
प्रभोरनुग्रहाल्लोके परलोकेऽपि चाथवा ।। ५५।।

इस संसार में भगवान के निर्देशों का पालन करना ही सबसे प्रमुख बात है, इसलिए मनुष्य को ऐसे ही कार्य करने चाहिए जिनसे प्रभु प्रसन्न हो। भगवान श्री सत्यनारायण की कृपा प्राप्त कर मनुष्य सांसारिक कष्टों से मुक्ति पाता है और परलोक में भी उसकी सद्गति होती है ।। ५४-५५।।

।। इति श्री सत्यनारायण व्रत कथायां तृतीयोध्यायः ।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्री सत्यनारायण व्रत कथा

।। चतुर्थ अध्याय ।।

सूत उवाच-

प्रचुरंधनमादाय स्वर्णालंकाररत्नवत् ।
नौकयासौ स्वकं साधुः पुरं गन्तुमुपाक्रमत् ।। १।।
समाराधने हि सत्यनारायणस्य द्वेऽपि ते ।
तज्ज्योतिर्ज्वालने लीलावती कलावत्यौ सदा ।। २।।

सूत जी कहने लगे-अब वह साधु वैश्य बहुत सा सोना, जवाहरात और धन लेकर नाव द्वारा अपने नगर को चल दिया। उधर लीलावती और कलावती भी भगवान श्री सत्यनारायण की समुचित रीति से उपासना करने लगीं ।। १-२।।

अयापयतामत्यते भक्ति-भाव पुरस्सरम् ।
कल्याणस्य कामनया स्वसमयथापि च ।। ३।।
परीक्ष्यते भगवता मानवानां हि कर्मसु ।
यदस्ति वास्तविकताऽवास्तविकत्वमेव वा ।। ४।।
छद्मान्वितोऽनभीष्टश्व शुद्धिश्वाति प्रियः प्रभोः ।
सदा विशुद्ध भावेन प्रीणाति जगदीश्वरः ।। ५।।

उनका अधिकांश समय धर्म और परोपकार के कार्यों में ही लगता था और वे हृदय से सत्यव्रत का पालन कर रही थीं। भगवान हमेशा मनुष्य के कर्मों की परीक्षा किया करते हैं कि इसके विचारों में कुछ सच्चाई है या कोरा नकलीपन ही है। कपटी और झूठा मनुष्य भगवान को कभी स्वीकार नहीं होता वे तो सच्चे व्यक्ति से ही प्रेम रखते हैं। हृदय की शुद्ध भावनायें ही उस जगत्पति को सबसे अधिक पसन्द आती हैं ।। ३-४-५।।

कृत्रिम ग्लायति तुष्टो वास्तविकच्च मानवात् ।
वचनाडम्बरैर्नापि प्रसन्नश्चास्ति कर्मभिः ।। ६।।
सेवया दुःख दीनानां प्रीतिमाप्नोति वै प्रभुः ।
अप्रिय मन्यते चासौ साधु पुरुषोत्पीड़नम् ।। ७।।
मत्वा साक्षात्प्रभो रूपं सतां साहाय्य सद्व्रती ।
सत्य व्रतेन कर्त्तव्ये बालोत्पीड़ित सन्नृणाम् ।। ८।।

भगवान दिखावटीपन से विरत रहते हैं और यथार्थ कर्मों से ही प्रसन्न होते हैं। उन्हें केवल बातों के आडम्बर से प्रसन्न नहीं किया जा सकता। दुःखी और दीन की सेवा सहायता करने वाले भगवान को प्रिय हैं तथा सत्पुरुषों को सताने वाले उन्हें कष्ट-दुःख पहुँचाते हैं। सत्यव्रती को चाहिए कि वह बालक, पीड़ित व्यक्ति तथा सत्कार्य परायण पुरुष को प्रभु रूप मानकर उसकी यथाशक्ति सेवा-सहायता करे ।। ६-७-८।।

साधुः परिक्षितः य सत्य-निष्ठायां यत्र स वणिक् ।
प्रभुणा तर्हि वयसा वृद्ध ऋषित्वमुपेत्य वै ।। ९।।

ऋषि उवाच-

सान्निध्ये वर्तते वैश्य ! सेवाश्रमस्तु यत्र हि ।
साधनैः शिक्षणैश्चापि निर्माणं जायते सताम् ।।१०।।
सर्वांगीण-विकासाय पूर्णता ब्रह्मचारिण ।
बुद्धिमान शरीराणांचलत्येव गुरोः कुलम् ।। ११।।

भगवान ने एक गुरुकुल संचालन करने वाले ऋषि के रूप में साधु वैश्य के पास पहुँच कर उसकी सत्यनिष्ठा की परीक्षा ली। ऋषि बोले- हे महानुभाव! यहाँ निकट ही एक आश्रम है जिसमें मनुष्यों को आध्यात्मिक साधना तथा शिक्षण द्वारा श्रेष्ठ जीवन का अधिकारी बनाया जाता है। ब्रह्मचारियों के सर्वांगीण शारीरिक, बौद्धिक तथा भावनात्मक विकास के लिए गुरुकुल चलता है ।। ९-१०-११।।

वानप्रस्थाश्च शिक्ष्यन्ते बहुशः सन्तु ते क्षमाः ।
साधनायाः सशिक्षाभि लोकसेवात्म-श्रेयसे ।। १२।।
रचनात्मक कार्येषु ज्ञानस्य चेह प्रसृतौ ।
समाज-सेविनां कृते क्रियते मार्ग दर्शनम् ।। १३।।
यत्नेनैव विधीयते सत्यधर्मस्य पालनं ।
कर्तुं जनोन्नतिं चात्र समुच्चस्तरमास्मिकम् ।। १४।।

वानप्रस्थों में साधना स्वाध्याय, शिक्षण तथा अभ्यास द्वारा लोकमंगल एवं आत्मकल्याण कर सकने की क्षमता विकसित हो जाती है। समाजसेवियों को ज्ञान प्रसार एवं रचनात्मक कार्यो का मार्गदर्शन और प्रशिक्षण एवं सहयोग भी यहाँ से उपलब्ध होता है। समाज को समुन्नत बनाने तथा मनुष्यों का आत्मिक स्तर ऊँचा उठाने में इस आश्रम का बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहता है ।। १२-१३-१४।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

त्वं सत्यस्य व्रती चासि श्रुतं श्रद्धान्वितमिति ।
सत्यकार्येषु धनं योज्यं विधिरेष सुसंस्कृताम् ।। १५ ।।
धनं सहायतार्थं तु स्वीयं सामर्थ्य श्रद्धया ।
प्रदातुं शक्यते चात्र भवत यदि रोचते ।। १६ ।।
प्रदर्शितं च वैश्यैन कार्पण्य पुनुरेव तत् ।
धर्मार्थमपि लाभश्च न तु स्वल्पीकृतः खलु ।। १७ ।।

सत्कार्यों में सुसंस्कारी तथा श्रद्धायुक्त धन ही लगाने का नियम है। हमने सुना है कि आप सत्यव्रत के पालन करने वाले हैं। अतः आप चाहें तो अपनी सामर्थ्य और श्रद्धा के अनुसार इस आश्रम के कार्यों के संचालन हेतु स्वेच्छा से सहयोग दे सकते हैं। किन्तु साधु वैश्य पुनः लोभ के वशीभूत हो गया। धर्म कार्यों के लिए भी उसका अर्थमोह बाधक बन गया।। १५-१६-१७ ।।

निषेधो विहितस्तेन विस्पष्ट वचनस्तदा ।
अदूरदर्शितत्वेन ह्यविचिन्त्य परम्पराम् ।। १८ ।।
सत्यहीन धनस्यापि लोभो मज्जयति नरम् ।
कोपस्य भाजनं जातो वैश्यस्तुच्छधिया प्रभो ।। १९ ।।
भूवा दुर्घटना ग्रस्ता नौका भग्नाह्यभूत्तदा ।
प्रयासैर्नाविकानां च सजायो रक्षितोऽभवत् ।। २० ।।

उसने ऋषि को सहायता देने से स्पष्ट इन्कार कर दिया और अपनी अदूरदर्शिता के कारण पिछले प्रसंगों को एकदम भुला दिया। लोभ और अदूरदर्शिता मनुष्य को डुबो ही देते हैं। साधु वैश्य अपनी तुच्छ बुद्धि के कारण भगवान का कोप भाजन बन गया। उसकी नौका दुर्घटनाग्रस्त होकर समस्त धन सहित डूब गई। नाविकों के प्रयासों से साधु वैश्य दामाद सहित किसी प्रकार बच गया ।। १८-१९-२० ।।

धनेनं दुर्मदान्धानां सा नेत्रोन्मीलनाय हि ।
अस्तीति चोच्यते लोके विपत्तिः परमाञ्जनम् ।। २१ ।।
तदा तेन प्रतिज्ञातं दृष्टं तज्जीवने पुनः ।
अपेक्षितोपयोगाच्च देयमतिरिक्तं धनम् ।। २२ ।।
ऋषि तमेव सम्प्राप्तो ज्ञात्वा वैश्यः स्व विस्मृतिम् ।
ज्ञापयन्स्वीयसंकल्प याचिता तत्सहायता ।। २३ ।।

कहा गया है कि धन के मद में जो विवेक की दृष्टि से अन्धा हो गया हो ऐसे व्यक्ति के लिए विपत्ति अंजन का काम करती है। साधु वैश्य को भी अपनी भूल का ध्यान हुआ और उसने संकल्प किया कि अपनी आवश्यकता की पूर्ति से जो धन बचेगा वह सबका सब सत्यव्रत पालन और प्रचार में लगायेगा। वह उन्हीं ऋषि के पास पहुँचा, अपनी भूल स्वीकार की तथा अपना संकल्प बताकर सहायता माँगी ।। २१-२२-२३ ।।

लोभादसत्यमाश्रित्य त्यक्तवान् पात्रता स्वयम् ।
नव्यर्थस्ते सु संकल्पो भविष्यति न संशय ।। २४ ।।
इयं हि राष्ट्र सम्पत्तिः प्राप्ता नाश न शक्यते ।
अतरतां तु समुद्धर्त्तुं वयं च प्रयतामहे ।। २५ ।।
बुद्धि सेवा-पराणां च वित्तं सर्वनदी तलात् ।
निः सृतं स प्रयासेन मतोयोगेन वासिनाम् ।। २६ ।।

ऋषि बोले-धन के लोभ से झूठ बोलकर तुमने अपनी पवित्रता खो दी है। किन्तु तुम्हारा शुभ संकल्प भी निरर्थक नहीं जायेगा। सम्पत्ति सब राष्ट्र की होती है उसे जल में डूबकर नष्ट नहीं होने दिया जा सकता इसलिए हम उसे निकालने का प्रयास करते हैं और बुद्धिमान सेवा परायण तथा परिश्रमी आश्रमवासियों के मनोयोगपूर्ण प्रमास से सारा धन नदी तल से निकाल लिया गया ।। २४-२५-२६ ।।

ऋषि पार्थितवान्वैश्यो व्यक्तकुर्बन्कृतज्ञताम् ।
आश्रमस्योपकारार्थं नेतुं स्व प्रचुरं धनम् ।। २७ ।।
मया पुरार्थितो योगी ज्ञात्वा त्वां सत्य धर्मिणम् ।
किन्त्वद्य मूल्य स्वीकारः साहाष्टयेचापिनोचितः ।। २८ ।।
गृहाण स्वधनं वैश्य चिन्तय कर्म मानसम् ।
अनुसृत्य स्व संकल्पं सूपयोगो विधीयताम् ।। २९ ।।

तब वैश्य ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए ऋषि के आश्रम के लिए उस धनराशि में से धन स्वीकार करने का आग्रह किया। ऋषि ने कहा- पहले हमने तुम्हें सत्यधर्म का साधक समझकर सहयोग माँगा था अब तुम्हारी सहायता के बदले कुछ भी स्वीकार करना अनुचित होगा। हे वैश्य ! तुम अपना धन स्वयं सँभालो, किन्तु अपने संकल्प के अनुसार उसके सदुपयोग की बात बराबर ध्यान में रखना ।। २७-२८-२९ ।।

निर्मलं हृदयं जातं साधोः पूर्व हि तत्खलु ।
अस्वीकारेण चार्थस्य दुःखितःसोऽब्रवीच्चतम् ।। ३० ।।
ऋषे ! ममातिपापेन राष्ट्रसम्पत्तु मज्जिता ।
उद्धारस्तव पुण्येन तवेवेयं सुनिश्चिता ।। ३१ ।।
एवमुक्त्वा साधुवैश्यः प्रणम्यः पादयोर्गतः ।
धनं सन्त्यज्य तत्रैव प्रयातुमुद्यतोऽभवत् ।। ३२ ।।

साधु वैश्य का हृदय निर्मल हो चुका था-ऋषि द्वारा धन अस्वीकार किये जाने से वह अत्यन्त दुःखी होकर बोला- हे ऋषिवर ! मेरे पाप कर्मों ने तो राष्ट्र की इस सम्पत्ति को डुबो ही दिया था, आप सबके पुण्य ने इसे पुनः उबारा है इसलिए यह सब धन आपका ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है मेरा नहीं। ऐसा कहकर ऋषि के चरणों में प्रणाम करके वह सारा धन वहीं छोड़कर चलने को उद्यत हो गया ।। ३०-३१-३२।।

ऋषिस्तदा प्रहृष्टोऽभूदालोक्य श्रुत भावनाम् ।
तत्कालापेक्षया किञ्चित्स्वीकृतमाश्रमस्य तत् ।। ३३।।
कृत्वा संरक्षकं शेष निजस्याज्ञापितो हि सः ।
वर्धयितुं तद् व्यापारैश्चोपवतुं सुकर्मसु ।। ३४।।
प्रभूक्तिवद्ऋषेर्वाक्यं कृत्वा शिरसि श्रद्धया ।
गृहं पुनः प्रयातः स जमात्रा सह हर्षितः ।। ३५।।

ऋषि उसकी पवित्र भावना का प्रमाण पाकर सन्तुष्ट हुए और आश्रम की तात्कालिक आवश्यकता के अनुसार कुछ धन उन्होंने स्वीकार कर लिया। उन्होंने साधु को आज्ञा दी कि शेष धन को वह राष्ट्र की धरोहर माने तथा उसके संरक्षक बनकर, व्यापार द्वारा उसे बढ़ाने और राष्ट्रहित में लगाते रहने का क्रम अपनाये। वैश्य ने ऋषि वचन को भगवान का आदेश मानकर शिरोधार्य किया तथा दामाद सहित घर लौट गया ।। ३३-३४-३५।।

भूत्वा सत्यनिष्ठौ तौ वर्धने जन सम्पदाम् ।
पूर्णे स्वजीवने जातौ सुख-सौभाग्य भागिनौ ।। ३६।।
धनं निर्वाहमात्रं च गृहीत्वा निखिलं पुनः ।
तत्प्रचारे विनियुज्य सर्वे सुखमवाप्नुवन् ।। ३७।।
तेषां प्रयत्नैरधिका जाताः धर्म-प्रवृत्तयः ।
गन्तुमसख्याः सन्मार्ग प्रेरिता मानवास्ततः ।। ३८।।

उसके बाद वे जीवन भर निष्ठापूर्वक सत्यव्रती बने रहकर, समाज की समृद्धि बढ़ाते रहे तथा स्वयं भी सुख, यश और पुण्य के भागी बने। सामान्य व्यक्ति की तरह निर्वाह मात्र का धन अपने लिए खर्च करके शेष सब सत्प्रवृत्तियों के प्रसार में लगाने लगे। उनके सत्प्रयासों से समाज में धर्म प्रवृत्तियाँ बढ़ी और असंख्य व्यक्तियों ने सन्मार्ग की प्रेरणा पाकर जीवन को सार्थक बनाया ।। ३६-३७-३८।।

प्रभुश्च प्रीतिमापन्नो विधिवैः शुभकर्मभिः ।
सत्यनारायणस्यापि जातास्ते प्रीति भाजनाः ।। ३९।।
लीलावती कलावत्यौ लोके स्वपतिभ्यां सह ।
लब्ध्वा चाति सौख्यशान्ति सत्येऽन्ते परम सुखम् ।। ४०।।
अनिर्वाच्यो हि महिमा सत्यस्य सर्वसौख्यदा ।
कल्याणं जायते नृणां तस्यैव शरणागतौ ।। ४१।।

भगवान विविध शुभ कर्म करने वालों से प्रसन्न होते हैं। ऐसे व्यक्ति भगवान श्री सत्यनारायण की कृपा के अधिकारी बनते हैं। लीलावती कलावती भी अपने पतियों के साथ इस लोक में सुख सौभाग्य पाती रहीं और अन्त में परमसुख की अधिकारिणी बनीं। भगवान सत्यनारायण की महिमा अपरम्पार है उनकी शरण में जाने से मनुष्य सभी प्रकार के सुख तथा कल्याण के अधिकारी बन जाते हैं ।। ३९-४०-४१।।

।। इति श्री सत्यनारायण व्रत कथायां चतुर्थोध्यायः ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्यनारायण व्रत कथा

।। पंचमोऽध्याय ।।

सूत उवाच-

अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि श्रृणुध्वं मुनिसत्तमाः ।
आसीत्तुंगध्वजो राजा प्रजापालनतत्परः ।। १।।
नृपस्य राज कार्येषु रुचिरूत्पन्न तेन तु ।
अज्ञानात्सत्य धर्मस्य ज्ञातुं मर्म ह्या पेक्षितम् ।। २।।

सूतजी कहने लगे- हे मुनियो ! और आगे की कथा भी मैं कहता हूँ उसे ध्यान से सुनो ! किसी समय तुंगध्वज नाम का प्रजा पालक राजा राज्य करता था। उसकी राज-काज में रुचि तो थी किन्तु सत्यधर्म का मर्म न समझने से उस दिशा में उपेक्षा बरतता था ।। १-२।।

नृपतिरेकदांचासौ त्वं यं राज्यं निरीक्षितुम् ।
ज्ञानं च सुख दुःखानि प्रजाया बहिरभ्रमत् ।। ३।।
तत्र वट-तलेऽपश्चद्वने गोपगणाश्च सः ।
धारयितुं सत्यव्रतं धर्मानुष्ठानं कुर्वतः ।। ४।।
प्रज्ञा बल युतैश्चापि विद्यासत्ता धनान्वितौ ।
योगदान च कर्त्तव्यं सत्प्रतिष्ठान-कर्मणि ।। ५।।

एक बार वह प्रजा की स्थिति की जानकारी करने के उद्देश्य से अपने राज्य का निरीक्षण करने निकला। उसने एक स्थान पर वटवृक्ष के नीचे गोप परिवारों को एकत्रित देखा जो सत्यव्रत के पालक थे और उस समय धर्मानुष्ठान में लगे थे । समाज में जो व्यक्ति बुद्धि, बल, सत्ता सम्पत्ति और विद्या से सम्पन्न हों, उनका कर्तव्य है कि अवसर मिलने पर सत्यधर्म की प्रतिष्ठा में आवश्यक सहयोग करें ।। ३-४-५।।

योगदानमपि पुण्यं बुद्धिश्रम-धनादिभिः ।
सत्कर्मसु भवत्येव तदवश्यं कुर्यान्नरः ।। ६।।
अकुर्वन्ननुरोधंते गोप गत्वा नृपान्तिके ।
गृहीतुं तत्प्रसादे च भाग नेतुं तदर्चने ।। ७।।
ज्ञात्वा नीच कुलोत्पन्नान्तेषा सान्निध्यमेव च ।
दोषहि ज्ञायते राजा स्पर्श मात्रादपि तदा ।। ८।।

सत्यकार्य में बुद्धि से, श्रम द्वारा अथवा धन के माध्यम से सहयोग करना पुण्य कार्य है जो अवश्य किया जाना चाहिए। गोपगणों ने राजा के पास जाकर उस धर्मायोजन में भाग लेने तथा प्रसाद ग्रहण करने का अनुरोध किया किन्तु राजा ने उन्हें नीच कुल में उत्पन्न समझकर उनके साथ बैठने और उन्हें स्पर्श करने में भी अपना दोष माना ।। ६-७-८।।

दर्पादुन्मुच्य धर्मस्य महदायोजनं नृपः ।
चाग्रह गोपावालानां निवृतः स्वगृहं प्रति ।। ९।।
सत्पद्धतिं परित्यज्य योनरोऽस्त्यसन्मार्गगः ।
स तु सत्यप्रभोर्नूनं जायते कोप-भाजनः ।।१०।।
अवहेलनया सत्य-धर्मस्य चापि भूपतेः ।
भिन्ना परिजना जाता ये ह्यासत्कर्म कारिणः ।।११।।

इसलिए अहंकार के वशीभूत वह राजा गोपगणों का आग्रह ठुकराकर तथा धर्मायोजन की उपेक्षा करके अपने निवास स्थान को लौट गया। जो व्यक्ति सत् को छोड़कर असत् के मार्ग पर चलता है उसे भगवान श्री सत्यनारायण के कोप का सामना करना पड़ता है। राजा के द्वारा सत्यकर्तव्यों की अवहेलना के कारण राज-परिवार और राजकर्मचारी भी उससे विमुख हो गये ।। ९-१०-११।।

कटुत्वं कलहो द्वेषो व्यसनालस्यस्वार्थ काः ।
समुद्भूताः स्वभावे च नृपस्य स्वयमेव हि ।। १२।।
भगवतोऽवज्ञया तत्र सत्यनारायण प्रभोः ।
व्यवस्था निखिला जाता लुप्तप्राया श्री सम्पदः ।।१३।।
समागत विपत्तेश्च निमित्त च तस्या नृपः ।
ज्ञातवान यदहंकार-कर्तव्य-च्युतिस्वार्थता ।। १४।।

कलह, कटुता, द्वेष, आलस्य, स्वार्थ एवं व्यसनादिक घातक दोष उन सबके स्वभावों में प्रविष्ट हो गये। भगवान श्री सत्यनारायण की अवज्ञा के फलस्वरूप सारी व्यवस्थायें बिगड़ गयीं तथा राजा का धन-सम्मान लुप्त हो गया। इस प्रकार विपत्ति आने पर राजा ने विचार किया तो उसे अपने अहंकारग्रस्त तथा कर्तव्य विमुख होने का ध्यान आया ।। १२-१३-१४।।

विलोक्य दुर्दशां स्वीयामकुर्वन्दोषिणोऽपरान् ।
भूपो विश्लेषणां स्वस्य कृतवान्स्वयमेव च ।। १५।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बुद्धयाचावगतं तेन सद्धर्मोपेक्षया मम् ।
अधोऽध: पतनं जातं नान्यदत्र च कारणम् ।। १६ ।।
विपदो वारयितुं दूरं सत्यानुभवशालिन: ।
उचितं निश्चितं तेन प्रलब्धुं मार्गदर्शनम् ।। १७ ।।

बुद्धिमान राजा ने अपनी इस दुर्दशा के लिए किसी अन्य को दोष न देकर स्वयं आत्म विश्लेषण किया। उसकी समझ में यह तथ्य आ गया कि उसके द्वारा सत्यधर्म की उपेक्षा होने से ही यह पतन हुआ है। ऐसी स्थिति में विपत्ति निवारण के लिए किसी अनुभवी सत्यव्रती से मार्गदर्शन प्राप्त करना ही राजा ने उचित समझा ।। १५-१६-१७ ।।

अपमानं कृतं पूर्व तिरस्कृत्येति गोपकान् ।
ध्यात्वा तेषां समीपे च ह्यनुतसो गतो नृप: ।।१८।।

राजा उवाच-

श्रूयतां मे वचो वाला ! च्युतोऽस्मि सत्यधर्मत: ।
नेतुं प्रकाशमायातो भूयो युष्मत्सुसन्निधौ ।। १९ ।।
सर्व साधन युक्तोऽपि भूत्वा विस्मरणैश्च मे ।
नरक तुल्योऽभवत्नूनं परिवारोऽखिलो मम ।। २० ।।

राजा को गोपगणों की याद आई। अपने द्वारा उनकी उपेक्षा किये जाने का पश्चात्ताप करने राजा उनके पास स्वयं गया।

राजा ने कहा- हे गोपगणों ! मैं सत्यधर्म से गिर जाने के कारण दु:ख में फँस गया हूँ और आप लोगों के पास मार्गदर्शन की आशा से आया हूँ। मेरी भूलों के कारण सब प्रकार साधन सम्पन्न होते हुए भी मेरा परिवार नरक तुल्य बन गया है ।। १८-१९-२० ।।

विनाशाद्राज कार्याणां प्रतिष्ठायाश्च नाशनात् ।
जीवन्नपि मृत्यु तुल्यं कष्टं च प्राप्तवानहम् ।। २१ ।।
भवन्त: सुखिन: सर्वे परिवार: सह सदा ।
कुर्वन्त: प्रगतिं नित्यं जिज्ञासा मे तन्मर्मण: ।। २२ ।।
अहंकारोचितातत्र त्रुटिश्चाभूत्तदा मम ।
तस्या हि शोधनेच्छा में पर्याप्तं दण्डमाप्तवान ।। २३ ।।

राज व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाने और प्रतिष्ठा नष्ट हो जाने के कारण मैं जीवित होते हुए भी मरणासन्न कष्ट पा रहा हूँ। आपके परिवार सामान्य स्थिति में सुखी हैं और बराबर प्रगति कर रहे हैं इस बात का मर्म समझने की मेरी जिज्ञासा है । पिछली बार मुझसे जो अहंकारवश भूल हुई उसका पर्याप्त दण्ड मैं पा चुका हूँ और अब उसका सुधार कर लेने की मेरी हार्दिक इच्छा है ।। २१-२२-२३ ।।

तेषां विवेकशीलेन ह्येकेन कथितं नृप ।
स्वदोष-दुर्गुण एव निमित्तमज्ञातापदाम् ।। २४ ।।
दोषान्वारयितुं त्वं हियो मार्गोह्यात्मसात्कृत: ।
त्वयाहि स्वीकृत स भविष्यति कल्याण कृत ।। २५ ।।
सदा सत्यस्वरूपोऽस्ति प्रभुर्वे निश्चितं नृप ।
ज्ञातुं स सत्यधर्मं हि ददात्यवसरं नृणाम् ।। २६ ।।

उनमें से एक विवेकवान ने राजा से कहा कि अपने ऊपर आने वाली विपत्तियों के प्रधान कारण अपने स्वयं के दोष ही होते हैं। आपने अपने दोषों के निवारण द्वारा विपत्ति निवारण का जो मार्ग अपनाया है वह अवश्य कल्याणप्रद सिद्ध होगा। हे राजन् ! भगवान सत्यरूप हैं और वे हर व्यक्ति को सत्यधर्म समझने तथा उसका अनुसरण करने का समुचित अवसर प्रदान करते हैं ।। २४-२५-२६ ।।

अहंकारं वशाल्लोके उपेक्षन्ते नरास्तु तान् ।
पतन्ति ते भवानिव विपदां घोर सागरे ।। २७ ।।
कार्याहि सत्यव्रतिना त्यक्त्वा भेदस्य भावनाम् ।
वृत्तिर्ग्रहीतुं श्रेष्ठानि तत्वानिप्रति स्थानत: ।। २८ ।।
अस्माकं परिवारेषु य सुखं तोष: दृश्यते ।
तत्तु सत्य प्रभो सर्व वर्त्तते सत्कृपा-फलम् ।। २९ ।।

लोग अपने मिथ्या, अहंकार के वशीभूत होकर उन अवसरों की उपेक्षा करके आपकी ही भाँति घोर विपत्ति में आ जाते हैं। सत्य मार्ग अपनाने वाले को चाहिए कि वह भेदभाव छोड़कर श्रेष्ठ तत्व जहाँ से भी प्राप्त हो सकता हो वहाँ से प्राप्त करे। आपको हमारे परिवारों में जो सुख और सन्तोष दिखाई देता है वह सब निश्चित रूप से भगवान श्री सत्यनारायण की ही कृपा का फल है ।। २७-२८-२९ ।।

परिवारेषु चास्माकं भरणै:-पोषणै: सह ।
कर्त्तुं प्रदीयते ध्यानं प्रत्येकं च सुसंस्कृतम् ।। ३० ।।
न केवलाद्धि कथनात् सिद्धान्ता: श्रवणच्यते ।
लाभदा: किलाचरणेऽभ्यासेनैव भवन्ति च ।। ३१ ।।
विधातुं सत्य व्रतिन: सर्वोच्च प्रयतामहे ।
वयं निर्मायोपयुक्तं वातारवरणं तत्र वै ।। ३२ ।।

हमारे परिवार में हर सदस्य के भरण-पोषण के साथ-साथ उसको सुसंस्कारवान बनाने पर भी पूरा ध्यान दिया जाता है। श्रेष्ठ सिद्धान्त केवल कहने-सुनने से लाभ नहीं पहुँचाते, इसके लिए उन्हें सतत् अभ्यास द्वारा आचरण में लाना पड़ता है। हम परिजनों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्यव्रतशील बनाने के लिए प्रयासपूर्वक पारिवारिक वातावरण उसके अनुकूल बनाये रखते हैं।। ३०-३१-३२।।

सदभ्यस्ता विधीयन्ते येन योग्या भवन्तु वे ।
कृते स्वात्मजनानां च हिताय सुखदाः सदा ।। ३३।।
सत्यव्रत प्रभावेण व्यासनालस्यादिकान्वै ।
विहाय सन्ति संयुक्ताः स्नेहानुभूति कर्मभि ।। ३४।।
स्वात्म योग्यतया स्वीय-परिवाराय चाधिकम् ।
लाभं दातुं समुत्साहः सर्वेषु भवति ध्रुवः ।। ३५।।

परिवार के हर सदस्य के वास्तविक हित को ध्यान में रखकर उसे सत्यधर्म के अनुरूप अभ्यास कराया जाता है। राजन् सत्यव्रत के प्रभाव से ही हमारे परिवार के सदस्य आलस्य और व्यसनादि से मुक्त होकर स्नेह, सहानुभूति, और कर्मठता आदि गुणों से युक्त हैं। अपनी योग्यता के द्वारा सारे परिवार को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाने का उत्साह हर सदस्य के अन्दर बना ही रहता है ।। ३३-३४-३५।।

अवबुध्य स्वकंराजन् कर्त्तव्याचं मनीषया ।
धर्म-प्रदर्शनं त्यक्त्वा पालयेत्सत्यधर्मकम् ।। ३६।।
एवं कृते स्वयं सत्य प्रभोरनु ग्रहेण च ।
कष्टानिच प्रणश्यन्ति जीवन लाभोनिश्चितम् ।। ३७।।

सूत उवाच-

सत्यज्ञान श्रुतं राजा मननं च कृतं तदा ।
निर्धारितरतश्चैव रुचिरः जीवन-क्रम ।। ३८।।

हे राजन् ! आप भी अपने कर्तव्य को समझें तथा धार्मिकता का दिखावा छोड़कर सत्यधर्म का पालन करना प्रारम्भ करें। ऐसा करने से भगवान सत्यनारायण की कृपा से आपके कष्टों का निवारण अवश्य होगा तथा जीवन लाभ प्राप्त होगा। राजा ने सत्यधर्म सम्बन्धी बातों को बड़े ध्यान से सुना तथा उन सिद्धान्तों का मनन करके तदनुकूल अपने जीवनक्रम का निर्धारण भी किया ।। ३६-३७-३८।।

गोपोपदेशेनात्मानं ह्युपकृतममन्मत ।
नृपोः विभूतिः परमा ज्ञानमेवास्ति संमृतौ ।। ३९।।
सत्यदेव-प्रसादेन धनपुत्रान्वितोऽभवत् ।
इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते सत्यपुरंययौ ।। ४०।।
य इदं कुरुते सत्य-व्रतं परम-दुर्लभम् ।
श्रृणोति च कथां पुण्यां भक्तियुक्तः फलप्रदाम् ।। ४१।।

राजा ने इस प्रकार सत्यधर्म का ज्ञान कराने वाले गोपों का उपकार माना तथा उसे विश्वास हो गया कि ज्ञान भव बन्धन से मुक्त कर सकता है। उसी के अनुसार आचरण करके राजा प्रभु की अनुकम्पा से परिवार सहित धनधान्य तथा सुख भोगकर अन्त में सत्यलोक का अधिकारी बना। सूत जी बोले-इस पुण्यप्रद कथा का भक्तिपूर्वक श्रवण करके दुर्लभ सत्य अपनाने से अद्भुत फल प्राप्त होता है ।। ३९-४०-४१।।

धनधान्यादिकं तस्य भवेत्सत्यप्रसादतः ।
दरिद्रो लभते वित्तं बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।। ४२।।
भीतो भयाद्विमुच्येत सत्यमेव न संशयः ।
ईप्सितं च फलं लब्धा चान्ते सत्य पुरं व्रजेत् ।। ४३।।

सत्यव्रत को अपनाने वाला दरिद्र भी भगवान की कृपा से धनधान्य से पूर्ण हो जाता है और प्राणियों को सब प्रकार के बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है। भयभीत लोगों को निर्भयता प्राप्त होती है। साधक संसार में इच्छित फल प्राप्त करके अन्त समय में सत्य लोक में स्थान पा लेता है। इसमें कोई संशय नहीं है।। ४२-४३।।

।। इति श्री सत्यनारायण व्रत कथायां पंचमोध्यायः ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आरती सत्यनारायण-जी की

सत्यमय नारायण स्वामी, सत्यमय नारायण स्वामी,
सुख सम्पत्ति पावे तव व्रत अनुगामी ।
सुख सागर, गुण नागर देवा भक्ति ज्ञान दाता,
निराकार ॐकार ज्ञान घन भव बारिध त्राता ।।
अखिल विश्वव्यापी अगोचर नूतन भाव भरो, काम,
क्रोध, मद, लोभ, मोह, भय, तृष्णा, दूर करो ।
दया, शील, सन्तोष, मित्रता, बल, विवेक दायी,
अभय मोक्ष पद पावे नित सन अनुयायी ।।
आलस, पाप अविद्या नाशै, बैरभाव बिसरे,
शौर्य शक्ति, आरोग्य मिले, सब दुःख दारिद्र्य तरे ।
हे ! शाश्वत, अज ब्रह्मज्ञान घन, दोष हरो देवा,
पुण्य प्रताप बढ़ाओ करें धर्म सेवा ।।
तुम समान तप और न कोई दया दृष्टि करिये,
उर के काम विकार नाथ सब पलभर में हरिये ।
कृपा सिन्धु दुःख हर्ता जग पालन कर्त्ता,
चरण-शरण प्रभु दीजै कलिमल संहर्त्ता ।।
सत्य पढ़ें सच बोलें हम हों सद्विचार वाले,
झूँठ-कपट से दूर रहें हम सत के मतवाले ।
हाथ जोड़कर खड़े हुए हम आरत खल कामी,
रहें सदा हे नाथ आपके सच्चे अनुगामी ।।
सत्यमय नारायण स्वामी, जय सत्यमय नारायण स्वामी ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवन काल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युगनिर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्रनिर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़ पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद कांग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रंगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका-मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोबा जी के चले जाने के बाद अस्तित्त्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि. संवत् २०६८ में जन्में राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराम मत्त कहलाने वाले, आचार्य श्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रांति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माता जी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका-अपनी लेखनी से लिखी ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उनने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाब लाये कोई क्रांति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्व दर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में संपन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरु सत्ता को देखकर त्याग करने की यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उनने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेघ के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से संपन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी **गायत्री तपोभूमि, मथुरा** जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक आँवल खेड़ा से अपनी जन्मभूमि से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी 12 वर्ष पूर्व आरंभ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंत: स्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा

हवेली कहा जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, **अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा** के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जोकि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ बनाई गई। १९५३ में एवं क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों- प्रज्ञा संस्थानों भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों-चरणपीठों का महत्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्य पूर्ण था।

परम पूज्य गुरुदेव की महत्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ, इस प्रकार हैं-

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शांतिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष जन्मा संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन ब्राह्म मुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर १९११ के दिन आती थी। एक श्री मंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित-पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थी। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुआँ जिसे पूरे गाँव का एक मात्र मीठे जल वाला कुआँ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीर धारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशा धारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इंटर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धन राशि द्वारा विनिर्मित्त है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ-एवं कन्या इंटर कालेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा एवं एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित संस्कारवान आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्‌भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव निर्माण की सांस्कृतिक-भावनात्मक क्रांति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीया मण्डी, मथुरा में स्थित हैं। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रांतिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरंभ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तंभ व अन्यान्य

लेखों की पंक्तियों के माध्यम से संपन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतस्तल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुखी, तनाव ग्रसित व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परम वंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी टेण्ड्रिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजा घर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में 1942-43 में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ सहस्र कुण्डीयज्ञ की आधार शिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परम वंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं संपन्न हुआ। जन सम्मेलनों छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन विस्तार डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परम वंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू० गुरुदेव की साधना स्थली व प्रातः काल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञायोजन संपन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा संपन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्य श्री ने युग निर्माण योजना के शत सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युगनिर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरंभ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युगनिर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शांतिकुंज, हरिद्वार- ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुनः एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विराट रूप देने,

सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया । इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने 24 कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़ गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था । पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्त्तन सत्र जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े । यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का तांता लगा रहता है । पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं ।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्त ऋषियों की मूर्त्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को संपन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार संपन्न होते हैं। इस बीच परम वंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ संपन्न करना आरम्भ रखा । देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया । इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा ।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक अकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थ स्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया । यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी । स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है ।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परम-पूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवी स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७९ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था । वर्तमान शांतिकुंज-गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्त्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फल-श्रुतियों सहित स्थापित हैं । द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्त्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये । इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है । यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों-जैव विद्युत आदि पर पड़ा यह देखा जाता है । विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं । तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित हैं, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं । यहाँ प्रायः ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं । यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता ।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीला संदोह रचकर चली गयी । प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान २४००० से अधिक प्रज्ञा मण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जायें तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है । ❑❑❑

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
(सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६.ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे—

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org